पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला सं० २०

सम्पादक
पं० दलसुख मालवणिया
डॉ० मोहनलाल मेहता

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

भाग – ६

काव्य-साहित्य

सम्पादक
पं० दलसुख मालवणिया
डॉ० मोहनलाल मेहता

लेखक
डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी – ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला सं० २०

सम्पादक
पं० दलसुख मालवणिया
डॉ० मोहनलाल मेहता

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास

भाग – ६

काव्य-साहित्य

सम्पादक
पं० दलसुख मालवणिया
डॉ० मोहनलाल मेहता

लेखक
डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी – ५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला सं० २०

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास खण्ड – ६

सम्पादक : पं० दलसुख मालवणिया
डॉ० मोहनलाल मेहता

प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ
आई० टी० आई० रोड, करौंदी,
वाराणसी – २२१००५

दूरभाष : ३१६५२१, ३१८०४६

द्वितीय संस्करण : १९९८

मूल्य : १५०.०० रुपये

Parshvanath Vidyapeeth Series No. 20

Title : Jaina Sāhitya kā Bṛhad Itihāsa Vol. 6

Editors : Pt. Dalsukh Malvania
Dr. M. L. Mehta

Publisher : Parshvanath Vidyapeeth
I.T.I Road Karaundi
Varanasi – 221005

Phone : 316521, 318046

Second Edition : 1998

Price : Rs. 150.00

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—भाग-६ में मुख्य रूप से जैन काव्य-साहित्य वर्णित है। प्राकृत शोध संस्थान वैशाली के पूर्व निदेशक, डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी द्वारा लिखित एवं पद्मभूषण पं० दलसुख मालवणिया तथा डॉ० मोहन लाल मेहता द्वारा सम्पादित इस महत्त्वपूर्ण भाग का प्रथम संस्करण सन् १९७३ में प्रकाशित हुआ था। इसकी उत्तरोत्तर बढ़ती मांग को दृष्टिगत रखते हुए इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

प्रस्तुत कृति के लेखक डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी एवं सम्पादकद्वय-पद्मभूषण पं० दलसुख मालवणिया एवं डॉ० मोहनलाल मेहता के हम बहुत आभारी हैं जिन्होंने इस छठे भाग को पूर्ण कर प्रकाशनार्थ विद्यापीठ को दिया। हम विद्यापीठ के मानद् निदेशक डॉ० सागरमल जैन के भी आभारी हैं जिन्होंने इसके द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करने का बहुमूल्य सुझाव दिया। विद्यापीठ के प्रकाशनाधिकारी एवं प्रवक्ता डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं जिन्होंने इसके प्रकाशन सम्बन्धी सम्पूर्ण दायित्व का कुशलता से निर्वहन किया।

प्रथम संस्करण के प्रूफ संशोधनकर्ता डॉ० हरिहर सिंह एवं कु० मधूलिका मेहता के साथ हम श्रीमती लब्बादेवी धर्मपत्नी लाला लद्देशाह के प्रति भी आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने प्रथम संस्करण का प्रकाशन-व्यय भार वहन किया था।

इस द्वितीय संस्करण के मुद्रण कार्य को सुन्दर ढंग से पूर्ण करने के लिए वर्द्धमान मुद्रणालय निश्चय ही धन्यवाद के पात्र हैं।

जैन साहित्य का इतिहास के सभी छः भागों का विद्वद्वर्ग एवं सामान्य पाठकों ने हार्दिक स्वागत किया है तथा शोध की दृष्टि से ये समस्त भाग अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आशा है इस छठे भाग के द्वितीय संस्करण को पुनर्प्रकाशित कर हम इसकी बढ़ती मांग को पूरी कर सकेंगे।

भूपेन्द्रनाथ जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत ग्रन्थ में

१. प्रास्ताविक ३–३०

जैन काव्य-साहित्य ७

तत्कालीन परिस्थितियां ८

जैन काव्य-साहित्य के निर्माण में मूल प्रेरणाएँ १५

भारतीय काव्य-साहित्य और जैन काव्य-साहित्य १९

जैन महाकाव्यों का अन्य साहित्य में स्थान २६

२. पौराणिक महाकाव्य ३६–२३०

जैन पौराणिक महाकाव्यों की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियां ३१

प्रतिनिधि रचनाएँ और उन पर आधारित संक्षिप्त कृतियां ३३

राम-विषयक पौराणिक महाकाव्य ३५

महाभारत-विषयक पौराणिक महाकाव्य (संस्कृत) ४३

तिरसठ शलाका महापुरुष-विषयक पौराणिक महाकाव्य ५५

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित से प्रभावित रचनाएँ ७६

तिरसठ शलाका पुरुषों के स्वतंत्र पौराणिक महाकाव्य ७९

आदिनाहचरिय ८०

सुमईनाहचरिय ८०

पउमपभचरिय ८१

सुपासनाहचरिय ८१

चंदप्पहचरिय ८२

सेयंसचरिय ८४

वसुपुज्जचरिय ८४

अनन्तनाहचरिय ८५

संतिनाहचरिय ८६

मुनिसुव्वयसामिचरिय ८७

नेमिनाहचरिय ८७

पासनाहचरिय ८८

महावीरचरिय ८९

पद्मानन्द-महाकाव्य ९३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम तीर्थंकर पर अन्य रचनाएँ	९५
अजितनाथपुराण	९५
चन्द्रप्रभचरित	९७
श्रेयांसनाथचरित	९९
वासुपूज्यचरित	१०१
विमलनाथचरित	१०२
शान्तिनाथपुराण	१०४
शान्तिनाथचरित	१०५
मल्लिनाथचरित	११०
मुनिसुव्रतचरित	११३
नेमिनाथ-महाकाव्य	११६
नेमिनाथचरित	११६
पार्श्वनाथचरित	११८
महावीरचरित	१२४
वर्धमानचरित	१२६
अममस्वामिचरित	१२७
बारह चक्रवर्ती तथा अन्य शलाका पुरुषों पर स्वतंत्र रचनाएँ	१२८
प्रत्येकबुद्धचरित	१६०
केवलिचरित	१७७
प्रकीर्णक पात्रों के चरित्र	१७८
महावीरकालीन श्रेणिक-परिवार के चरित्र	१९०
महावीरकालीन अन्य पात्रों के चरित	१९४
प्रभावक आचार्य-विषयक कृतियां	२०२
खरतरगच्छीय आचार्यों के जीवनचरित्र	२२०
कुमारपालचरित	२२३
वस्तुपाल-तेजपालचरित	२२६
विमलमंत्रिचरित	२२६
जगडूचरित	२२७
सुकृतसागर	२२८
पृथ्वीधरप्रबंध	२२८
नाभिनन्दनोद्धारप्रबंध	२२९
जावडचरित्र और जावडप्रबंध	२२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मवंशोत्कीर्तनकाव्य २२९
क्षेमसौभाग्यकाव्य २३०

३. कथा–साहित्य **२३१–३९१**
औपदेशिक कथा-संग्रह २३३
धर्मकथा-साहित्य की स्वतंत्र रचनाएँ २६५
पुरुषपात्र-प्रधान प्रमुख रचनाएँ २६६
पुरुषपात्र-प्रधान लघु कथाएँ ३१७
स्त्रीपात्र-प्रधान रचनाएँ ३३४
तीर्थमाहात्म्य-विषयक कथाएँ ३६०
तिथि-पर्व-पूजा-स्तोत्रविषयक कथाएँ ३६५
तिथिव्रत, पर्व एवं पूजाविषयक अन्य कथाएँ ३७१
परीकथाएँ ३७४
मुग्धकथाएँ ३८६
नीतिकथा-साहित्य ३८७

४. ऐतिहासिक साहित्य **३९२-४७४**
ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियां ३९३
गुणवचनद्वात्रिंशिका ३९४
द्वयाश्रयमहाकाव्य ३९६
वस्तुपाल-तेजपाल का कीर्तिकथा-साहित्य ४०३
सुकृतसंकीर्तन ४०३
वसन्तविलास ४०५
कुमारपालभूपालचरित ४१०
हम्मीरमहाकाव्य ४११
कुमारपालचरित ४१५
वस्तुपालचरित ४१६
जगडूचरित ४१७
सुकृतसागर या पेथडचरित ४१८
प्रबन्ध-साहित्य ४१८
प्रबंधावलि ४१९
प्रभावकचरित ४२१
प्रबंधचिन्तामणि ४२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविधतीर्थकल्प ४२६
प्रबन्धकोश ४२७
पुरातनप्रबन्धसंग्रह ४२९
विविध प्रकार के जैन ग्रन्थों में ऐतिहासिक सामग्री ४२९
तुगलक वंश के जैन स्रोत ४३०
नाभिनन्दनोद्धारप्रबन्ध अपरनाम शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबन्ध ४३१
मालवा के प्रान्तीय मुस्लिम शासक ४३१
मुगलकाल के जैन स्रोत ४३२
प्रशस्तियाँ ४३५
वस्तुपाल और तेजपाल के सुकृतों की स्मारक प्रशस्तियां ४३७
सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी ४३७
वस्तुपाल-तेजपालप्रशस्ति ४३८
वस्तुपाल प्रशस्ति ४३९
ग्रन्थ, दाता तथा लिपिकार-प्रशस्तियां ४४१
मुनिसुव्वयसामिचरिय की प्रशस्ति ४४२
सुपासनाहचरिय की प्रशस्ति ४४३
नेमिनाहचरिउ की प्रशस्ति ४४३
अममस्वामिचरित की प्रशस्ति ४४४
पट्टावली और गुर्वावलि ४४९
विचारश्रेणी या स्थविरावली ४५१
गणधरसार्धशतक ४५२
खरतरगच्छ-बृहद्गुर्वावलि ४५२
वृद्धाचार्य-प्रबंधावलि ४५३
खरतरगच्छ-पट्टापली-संग्रह ४५४
गुर्वावलि ४५५
गुर्वावलि या तपागच्छ-पट्टावलीसूत्र ४५५
सेनपट्टावली ४५६
बलात्कारगण की पट्टावलियां ४५६
काष्ठासंघ-माथुरगच्छ-पट्टावली ४५९
काष्ठासंघ-लाडबागड-पुन्नाटगच्छ-पट्टावली ४५९
तीर्थमालाएँ ४५९
विज्ञप्तिपत्र ४६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिलेख-साहित्य	४६५
प्रतिमा या मूर्ति-लेखसंग्रह	४७१
५. **ललित वाङ्मय**	४७५-६०७
प्रद्युम्नचरितकाव्य	४७६
नेमिनिर्वाणमहाकाव्य	४७७
चन्द्रप्रभचरितमहाकाव्य	४८१
वर्धमानचरित	४८५
धर्मशर्माभ्युदय	४८६
सनत्कुमारचरित	४९२
जयन्तविजय	४९५
नरनारायणानन्द	४९९
मुनिसुव्रतकाव्य	५०३
श्रेणिकचरित	५०५
शान्तिनाथचरित	५०८
जयोदय-महाकाव्य	५११
बालभारत	५१२
लघुकाव्य	५१५
श्रीधरचरितमहाकाव्य	५१५
जैनकुमारसंभव	५१६
कादम्बरीमण्डन	५१९
चन्द्रविजयप्रबंध	५१९
काव्यमण्डन	५२०
संधान या अनेकार्थक काव्य	५२१
द्विसन्धानमहाकाव्य	५२४
सप्तसंधान	५२९
गद्यकाव्य	५३१
तिलकमंजरी	५३१
तिलकमंजरीकथासार	५३६
गद्यचिन्तामणि	५३६
चम्पूकाव्य	५३८
कुवलयमाला	५३९
यशस्तिलकचम्पू	५३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन्धरचम्पू	५४१
पुरुदेवचम्पू	५४३
चम्पूमण्डन	५४४
गीतिकाव्य	५४४
रसमुक्तक पाठ्य गीतिकाव्य—दूत या सन्देशकाव्य (खण्डकाव्य)	५४५
पार्श्वाभ्युदय	५४६
नेमिदूत	५४८
जैनमेघदूत	५४९
शीलदूत	५५०
पवनदूत	५५१
१७-२० वीं शती के दूतकाव्य	५५२
जैन पादपूर्ति-साहित्य	५५४
गीतवीतरागप्रबन्ध	५५६
सुभाषित	५५९
वज्जालग्ग	५६०
स्तोत्र-साहित्य	५६३
दृश्यकाव्य—नाटक	५७२
कवि रामचन्द्र	५७४
सत्यहरिश्चन्द्र	५७५
नलविलास	५७६
मल्लिकामकरन्द	५७७
कौमुदीमित्राणन्द	५७८
रघुविलास	५७९
निर्भयभीमव्यायोग	५८१
रोहिणीमृगांक	५८१
राघवाभ्युदय	५८१
यादवाभ्युदय	५८२
वनमाला	५८२
चन्द्रलेखाविजयप्रकरण	५८२
प्रबुद्धरोहिणेय	५८३
द्रौपदीस्वयंवर	५८४
मोहराजपराजय	५८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रितकुमुदचन्द्र	५८७
धर्माभ्युदय	५८९
शमामृत	५८९
हम्मीरमदमर्दन	५९०
करुणावज्रायुध	५९२
अंजनापवनंजय	५९५
सुभद्रानाटिका	५९६
विक्रान्तकौरव	५९६
मैथिलीकल्याण	५९७
ज्योतिष्प्रभानाटक	५९८
रम्भामंजरी	५९९
ज्ञानचन्द्रोदयनाटक	६०१
ज्ञानसूर्योदयनाटक	६०१
साहित्यिक टीकाएँ	६०२
अनुक्रमणिका	६०९
सहायक ग्रन्थों की सूची	७०१
शुद्धि-वृद्धिपत्र	७०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का

व्य

सा

हि

त्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण १

प्रास्ताविक

जैन काव्य-साहित्य से हमारा तात्पर्य उस विशाल साहित्य से है जो काव्य-शास्त्रसम्मत विधि-विधान को यथासम्भव मानकर महाकाव्य, कथा (प्राकृत में काव्य को कथा नाम से कहते हैं) तथा काव्य की अनेक विधाओं में अर्थात् दृश्य-काव्य एवं श्रव्यकाव्य—शास्त्रीयकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य, दूतकाव्य, गीति-काव्य आदि के रूप में लिखा गया हो। इसे हम प्रमुख तीन खण्डों में विभक्त कर विवेचन करेंगे। पहले खण्ड में पौराणिक महाकाव्य और सभी प्रकार की कथाएँ रहेंगी। द्वितीय खण्ड में ऐतिहासिक साहित्य यथा ऐतिहासिक काव्य, प्रबन्ध-साहित्य, प्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, प्रतिमा-लेख, अन्य अभिलेख, तीर्थमालाएँ, विज्ञप्तिपत्रादि का विवेचन होगा। तृतीय खण्ड में ललित वाङ्मय अर्थात् शास्त्रीय महाकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पू, नाटक आदि अलंकार तथा रस-शैली पर लिखा हुआ साहित्य समाविष्ट होगा। यह विशाल साहित्य अनेक भाषाओं में लिखा गया है पर प्रस्तुत भाग में भाषा की दृष्टि से हमने प्राकृत तथा संस्कृत में उपलब्ध को ही ग्रहण किया है। अपभ्रंश या अन्य भाषाओं में उपलब्ध इस प्रकार का साहित्य अगले भागों का विषय होगा।

सर्वप्रथम जैनों के परम्परा-सम्मत वाङ्मय में 'काव्यसाहित्य' की क्या स्थिति है यह जान लेना परमावश्यक है।

भगवान् महावीर के समय से लेकर विक्रम की २० वीं शताब्दी के अन्त तक लगभग २५०० वर्षों के दीर्घकाल में जैन मनीषियों ने प्राकृत और संस्कृत के जिस विपुल वाङ्मय का निर्माण किया है उसे सुविधा की दृष्टि से, आधुनिक विद्वानों ने, पुरानी परिभाषाओं का ध्यान रखकर प्रमुख तीन भागों में बाँटा है : पहला आगमिक, दूसरा अनुआगमिक और तीसरा आगमेतर। आगमिक साहित्य आज हमें आचारांग आदि ४५ आगमों तथा उनपर लिखे विशाल टीकासाहित्य—निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य और टीकाओं के रूप में उपलब्ध है। अनुआगम साहित्य दिगम्बरमान्य शौरसेनी आगमों—कसायपाहुड, षट्खण्डागम तथा कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के रूप में पाया जाता है। इन दोनों प्रकार का साहित्य इस बृहद् इतिहास के पूर्व भागों में प्रकाशित हो चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमेतर साहित्य से हमारा तात्पर्य उस साहित्य से है जो जैनागमों की, विषय और शैली की दृष्टि से, अनुयोग नामक एक विशेष व्याख्यान पद्धति के रूप में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से लिखा जाने लगा था। इसके आविष्कारक आचार्य आर्यरक्षित माने जाते हैं। अनुयोग पद्धति चार प्रकार से बतलायी गई है: १. चरणकरणानुयोग, २. धर्मकथानुयोग, ३. गणितानुयोग, ४. द्रव्यानुयोग। इनके विशेष विवेचन में न जाकर केवल इतना सूचित करना है कि चरणकरणानुयोगविषयक साहित्य औपदेशिक प्रकरणों के रूप में और गणितानुयोग और द्रव्यानुयोगविषयक साहित्य आगमिक प्रकरणों के रूप में जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के पूर्व भागों में निरूपित हो चुका है। यहाँ धर्मकथानुयोग के सम्बन्ध में ही कुछ कहना आवश्यक है।

'धर्मकथानुयोग' का विषय विशुद्ध आचरण करनेवाले महापुरुषों की जीवनियाँ हैं। इसमें समाविष्ट विषयवस्तु एक समय जैन आगम के १२वें अंग दृष्टिवाद के चतुर्थ विभाग अनुयोग की विषयवस्तु[1] थी। वहाँ वह दो उपविभागों में विभक्त थी: १. मूल प्रथमानुयोग और २. गण्डिकानुयोग। मूल प्रथमानुयोग में अरहन्तों के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्माण-सम्बन्धी इतिवृत्त तथा शिष्य समुदाय का वर्णन समाविष्ट किया गया था और गण्डिकानुयोग में कुलकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि अन्य महापुरुषों का चरित्र था। मान्यतानुसार दृष्टिवाद अंग का विच्छेद हो गया था अतः उसका एक विभाग अनुयोग भी विच्छिन्न माना गया। आर्यरक्षित ने उसका उद्धार 'धर्मकथानुयोग' के अन्तर्गत किया, पर ईस्वी सन् के प्रारम्भ होते-होते वह भी विशीर्ण हो गया।

पंचकल्पभाष्य[2] के अनुसार शालिवाहन नृप के समकालीन आचार्य कालक (वीर० नि० ६०५ के लगभग) ने जैन परम्परागत कथाओं के संग्रहरूप में प्रथमानुयोग नाम से इस विशीर्ण साहित्य का पुनरुद्धार किया। वसुदेवहिंडी[3],

---

१. समवायांग, सू० १४७, नन्दिसूत्र, सू० ५६.

२. गा० १५४५–४९.

३. तत्थ ताव सुहम्मसामिणा जंबूनामस्स पढमाणुओगे तित्थयरचक्कवट्टिदसारवंसपरूवणागयं वसुदेवचरियं कहियं ति।

—वसुदेवहिंडी, प्रथम खण्ड, पृ० २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यकचूर्णि[1], आवश्यकसूत्र[2] और अनुयोगद्वार की हारिभद्रीया[3] वृत्ति तथा आवश्यकनिर्युक्ति[4] में प्रथमानुयोग नाम से जिस साहित्य का उल्लेख है वह पुनरुद्धरित प्रथमानुयोग को लक्ष्य करके है। दिगम्बर परम्परा में अनुयोग या धर्मकथानुयोग का सामान्य नाम प्रथमानुयोग दिया गया है। सम्भवतः इसकी विशालता, उपादेयता और लोकप्रियता के कारण इसे प्रथम-अनुयोग कहा गया है। कुछ विद्वानों का अनुमान[5] है कि इस साहित्य का वास्तविक नाम तो प्रथमानुयोग था क्योंकि इस नाम से इसके अनेक उल्लेख हैं। पर उसके लुप्त होने के कारण आचार्य कालक द्वारा पुनरुद्धरित प्रथमानुयोग से भेद प्रकट करने के लिए आगमसूत्रों—समवायांग और नन्दिसूत्र में समागत प्रथमानुयोग को 'मूलप्रथमानुयोग' नाम दिया गया है। यद्यपि उक्त आगमसूत्रों के अनुसार मूल-प्रथमानुयोग का विषय केवल तीर्थंकर और उनके शिष्यसमुदाय का चरित्र-चित्रण है पर भाष्य, चूर्णि एवं वृत्ति साहित्य के अनुसार प्रथमानुयोग में तीर्थंकरों के चरित के साथ चक्रवर्ती, नारायण आदि के चरितों के वर्णन होने की बात भी लिखी है। इसका भाव यही समझना चाहिए कि तीर्थंकरों के चरितों के साथ अनिवार्य रीति से सम्बन्ध रखनेवाले चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के चरित्र भी प्रथमानुयोग के विषय हैं। यदि यह भाव न होता तो आगमसूत्रों की व्याख्या करनेवाले साहित्य में ऐसी बात न लिखी होती। आर्य कालक द्वारा पुनरुद्धार किये गये प्रथमानुयोग में गण्डिकानुयोग की बातें भी सम्मिलित समझनी चाहिए। उक्त आगमसूत्रों और पंचकल्पभाष्य में उल्लिखित 'गण्डिकानुयोग' की वर्ण्यवस्तु को देखते हुए यह निर्धारण करना कठिन है कि उसका विषय वास्तव में क्या था?

---

१. एते सव्वं गाहाहिं जहा पढमाणुओगे तहेव इहइपि वन्निजति वित्थरतो।
—आवश्यकचूर्णि, भा० १, पृ० १६०.

२. पूर्वभवाः खल्वमीषां प्रथमानुयोगतोऽवसेयाः।
—आवश्यकहारिभद्रीयवृत्ति, पृ० ११९-२.

३. अनुयोगद्वारहारिभद्रीयवृत्ति, पृ० ८०.

४. परिआओ पव्वज्जा भावाओ नत्थि वासुदेवाणं।
होइ बलाणं सो पुण पढमाणुओगाओ णायव्वो॥
—आवश्यकनिर्युक्ति, गा० ४१२.

५. विजयवल्लभसूरि-स्मारक-ग्रन्थ, पृ० ५२ : प्रथमानुयोगशास्त्र अने तेना प्रणेता स्थविर आर्यकालक (मुनि पुण्यविजयजी).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचकल्पभाष्य के अनुसार आर्य कालक प्रथमानुयोग, लोकानुयोग और संग्रहणियों के प्रणेता थे। लोकानुयोग अष्टांग निमित्तविद्या का ग्रन्थ था। उसके नष्ट हो जाने पर गण्डिकानुयोग की रचना की गई[1]। तथ्य जो हो पर आज प्रथमानुयोग हमारे सामने नहीं है और न गण्डिकानुयोग। इसलिए प्रथमानुयोग की भाषा-शैली, वर्णनपद्धति, विषयवस्तु, छन्द आदि में क्या-क्या विशेषताएँ थीं, यह जानने के हमारे पास अब कोई साधन नहीं।

प्रथमानुयोग-विषयक हमें जो प्रतिनिधि रचनाएँ मिलती हैं—यथा विमलसूरि का पउमचरियं, जिनसेन का हरिवंशपुराण, जिनसेन का महापुराण, शीलांक का चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, भद्रेश्वरकृत कहावलि और हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित—उन सबमें उन्हें प्रथमानुयोग विभाग की रचना कहा गया है और प्रथमानुयोग के आधार से रची गई अनेक प्राचीन रचनाओं (जिनमें से अनेक अनुपलब्ध हैं) को अपना स्रोत माना[2] गया है। प्रथमानुयोग और उसके आधार पर रची गई प्राचीन कृतियाँ (जोकि ईस्वी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में रची गई थीं) भले न मिलती हों, पर प्रथमानुयोग और एतद्विषयक पश्चात्कालीन सैकड़ों रचनाएँ, तथा अन्य अनुयोगों (चरणकरण, गणित और द्रव्यानुयोग) की भी रचनाएँ आगमेतर साहित्य की विशालता, व्यापकता और लोकप्रियता की अवश्य द्योतक हैं।

चूँकि आगमिक साहित्य बहुत पीछे (ई० सन् ४५३–४६६ में) लिपिबद्ध हुआ था इसलिए आगमिक और आगमेतर साहित्य के बीच निश्चित भेदक रेखा खींचना संभव नहीं। फिर भी आगमिक साहित्य के पूर्ण होने के पहले ही आगमेतर साहित्य की रचना प्रारम्भ[3] हो गई थी और तब से अब तक जारी है। हमने ऊपर यह भी बतलाया है कि आगमेतर साहित्य आगमिक साहित्य

१. पच्छा तेण सुत्ते णट्ठे गंडियानुयोगा कया।

२. विमलसूरि ने पूर्वगत में से नारायण और बलदेव का चरित्र सुनकर पउमचरियं की रचना की। चउपन्नमहापुरिसचरियं निबद्ध नामावलियों (समवायांग, सूत्र १३२) के आधार पर लिखा गया और पद्मचरित अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर की रचना के आधार पर तथा जिनसेन के आदिपुराण का आधार कवि परमेष्ठीकृत वागर्थसंग्रह बतलाया गया है।

३. पादलिप्तसूरिकृत तरंगलोला (ई० दूसरी शताब्दी), भद्रबाहुकृत वासुदेवचरित आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से एकदम स्वतन्त्र नहीं। उसने प्राचीन आगमों से ही बीजसूत्रों को लिया है और बाहरी उपादानों तथा नवीन शैलियों द्वारा उन्हें पल्लवित कर एक स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया है।

आगमेतर साहित्य की प्रथमानुयोग-विषयक सामग्री का नवीन काव्य-शैलियों में प्रस्तुतीकरण ही हमारा 'जैन काव्य-साहित्य' है।

जैन काव्य-साहित्य :

जैन विद्वान् नूतन काव्य शैली में, ईस्वी तीसरी-चौथी शताब्दी से ही रचनाएँ लिखने लगे थे। इस शैली में रचित कृतियों में काव्य की अनेक विधाओं और कथाओं के बहुरंगी रूपों के दर्शन होते हैं। उन्होंने विशालकाय पौराणिक महाकाव्यों, सामान्य काव्यों, शास्त्रीय महाकाव्यों, खण्डकाव्यों, गद्यकाव्यों, नाटक, चम्पू आदि विविध काव्यविधाओं की तथा रमन्यास, उपन्यास, दृष्टान्त-कथा, नीतिकथा, पुराणकथा, लौकिककथा, परीकथा और नानाविध कौतुक-वर्धक अद्भुत कथाओं की रचना की है।

जैन काव्य-साहित्य की विषय वस्तु वस्तुतः विशाल है। उसमें ऋषभादि २४ तीर्थंकरों के समुदित तथा पृथक्-पृथक् अनेक नूतन चरित, भरत, सनत्कुमार, ब्रह्मदत्त, राम, कृष्ण, पाण्डव, नल आदि एवं चक्रवर्ती जैसी प्रसिद्धि पानेवाले अनेकों नरेशों के विविध प्रकार के आख्यान, नाना प्रकार के साधु और साध्वियों और राजा-रानियों के, ब्राह्मणों और श्रमणों के, सेठ और सेठानियों के, धनिक तथा दरिद्रों के, चोर और जुआड़ियों के, धूर्त और गणिकाओं के, धर्मी और अधर्मियों के, पुण्यात्मा और पापात्माओं एवं नाना प्रकार के मानवों को उद्देश कर लिखे गए कथा-ग्रन्थ हैं।

जैन काव्य-साहित्य की, ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से पाँचवी तक कतिपय कृतियाँ उल्लेख रूप में ही मिलती हैं। पाँचवीं से दसवीं तक सर्वाङ्गपूर्ण, विकसित एवं आकर-ग्रन्थों के रूप में ऐसी विशाल रचनाएँ मिलती हैं जिन्हें हम प्रतिनिधि रचनाएँ कह सकते हैं किन्तु वे हैं अंगुलियों पर गिनने लायक। परन्तु ग्यारहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक एतद्विषयक रचनाएँ विशाल गंगा की धारा के समान प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध होती हैं, और अब भी मन्द एवं क्षीण धारा के रूप में प्रवाहित हैं।

भाषा के क्षेत्र में जैन काव्यसाहित्य किसी एक भाषा में कभी नहीं बद्ध रहा। एक ओर उन्होंने प्रांजल, प्रौढ़, उदात्त संस्कृत में तो दूसरी ओर सर्व-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोध संस्कृत में तथा प्राकृत, अपभ्रंश एवं नाना जनपदीय भाषाओं–तमिल, कन्नड, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी में विशाल काव्य साहित्य की रचना की है।

प्रस्तुत भाग में हम प्राकृत और संस्कृत में लिखे गये एतद्विषयक साहित्य का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

तत्कालीन परिस्थितियाँ :

किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के विशिष्ट साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का परिचय प्राप्त करना समीचीन होगा।

जैनों के काव्य साहित्य की उपलब्ध सामग्री के आधार से हम कह सकते हैं कि उसका निर्माण ईसा की पाँचवीं शती से प्रारम्भ हो गया था। राजनीतिक दृष्टि से यह गुप्तवंशी राज्यसत्ता के अस्त का काल था। उत्तर भारत में सन् ४५० के लगभग हूणों का आक्रमण हुआ था। भारत में केन्द्रीय शासन का अभाव हो गया था और वह अनेक स्वतन्त्र संघर्षरत राज्यवंशों में विभक्त हो गया था, और यह स्थिति प्रायः अंग्रेजी शासन स्थापित होने के पूर्व तक बराबर बनी रही।

(अ) राजनीतिक परिस्थितियाँ—जैनधर्म ने गुप्तकाल के समय या उससे कुछ पूर्व पश्चिम और दक्षिण भारत को अपने विशिष्ट कार्य-कलापों का केन्द्र बनाया था। वैसे जैनधर्मानुयायी मध्यकाल में बंगाल, उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश के कतिपय स्थानों में बराबर बने रहे पर उनकी तत्कालीन साहित्यिक गतिविधियों का हमें कोई पता नहीं। मध्यकाल में मालवा, राजस्थान, उत्तरी गुजरात तथा दक्षिण भारत के कर्नाटक आदि प्रान्तों में जैनधर्म का अच्छा समादर रहा और अपने साहित्यिक कार्यकलापों में उन्हें जैन जनता के अतिरिक्त राज्यवर्ग से संरक्षण और प्रेरणा मिलती रही। दक्षिण के पूर्वमध्यकालीन राज्यवंशों जैसे गंग, कदम्ब, चालुक्य और राष्ट्रकूटों ने और उनके अधीन अनेक सामन्तों, मन्त्रियों और सेनापतियों ने जैनधर्म को आश्रय ही नहीं दिया बल्कि वे जैन विधि से चलने के लिए प्रवृत्त भी हुए थे। मान्यकूट के कुछ राष्ट्रकूट नरेश तो पक्के जैन थे और उनके संरक्षण में कला और

---

१. विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' (५३० वि० सं०) तथा संघदास-धर्मदास-गणिकृत 'वसुदेवहिंडी' (६ ठी शताब्दी के पूर्व)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य के निर्माण में जैनों का योगदान बड़े महत्त्व का है। इस युग से सम्बद्ध प्रमुख कवियों और ग्रन्थकारों की एक मण्डली थी जिनकी साहित्यिक रचनाएँ महान् पाण्डित्य के उदाहरण हैं। वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, शाकटायन, महावीराचार्य, स्वयंभू, पुष्पदन्त, मल्लिषेण, सोमदेव, पम्प आदि इसी युग के हैं। उनकी संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और कन्नड साहित्य में कृतियाँ एवं लाक्षणिक साहित्य—गणित, व्याकरण, राजनीति आदि पर रचनाएँ स्थायी महत्त्ववाली हैं। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (लग० सन् ८१५–७७ ई०) जिनसेन का भक्त था और अपने जीवन के अन्तिम भाग में उसने जैनधर्म स्वीकार किया था तथा कतिपय जैन ग्रन्थों को रचा था। दक्षिण भारत में विजयनगर साम्राज्य (१४–१५ वीं शताब्दी) के पतन के बाद भी कई जैन सामन्त राजा थे जो कि अंग्रेजी शासन के आगमन के समय बने रहे। उत्तरमध्यकाल में जैनों की साहित्यिक प्रवृत्ति के केन्द्र गुजरात में अणहिलपुर, खंभात और भड़ौच, राजस्थान में भिन्नमाल, जाबालिपुर, नागपुर, अजयमेरु, चित्रकूट और आघाटपुर तथा मालवा में उज्जैन, ग्वालियर और धारानगर थे। उस समय गुजरात में चौलुक्य और बघेल, राजस्थान में चाहमान[1], परमार वंश की शाखाएँ और गुहिलौत तथा मालवा और पड़ोस में परमार, चन्देल और कल्चुरि राजा राज्य करते थे। इन शासक वंशों ने जैनधर्म और जैन समाज के साथ बहुत सहानुभूति और समादर का व्यवहार किया, इससे जैन साधुओं और गृहस्थों को निर्विघ्न साहित्यिक सेवा और जीवनयापन में बड़ी प्रगति और सफलता मिली। गुजरात के चौलुक्य नरेशों, विशेषकर सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल के आश्रय में जैनधर्म ने अपने प्रतापी दिन देखे और उस युग में कला और साहित्य के निर्माण में जैनों के योगदान ने गुजरात को महान् बना दिया, जो आज भी है। इस समय से गुजरात में साहित्यिक क्रिया-कलाप का एक युग प्रारम्भ हुआ और इसका श्रेय हेमचन्द्र और उनके बाद होनेवाले अनेक जैन कवियों को है। राज दरबारों में जैनाचार्यों और विद्वानों के त्यागी जीवन और उसके साथ विद्योपासना की भी बड़ी प्रतिष्ठा की जाती थी और अनेक राजवंशी लोग भी उनके भक्त और उपासक होने में अपना कल्याण समझते थे।

मुस्लिम शासन काल में यद्यपि जैनों के मन्दिर यत्र-तत्र नष्ट किये गये पर संभवतः उतने अधिक परिमाण में नहीं। उस काल में भी जैनाचार्यों और जैन

---

१. डा० दशरथ शर्मा, अर्ली चौहान डाइनेस्टी, पृ० २२७–२२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थों की प्रतिष्ठा कायम थी। दिल्ली का बादशाह मुहम्मद तुगलक जिनप्रभसूरि का बड़ा समादर करता था। मुगल सम्राट् अकबर और जहांगीर ने आचार्य हीरविजय, शान्तिचन्द्र और भानुचन्द्र के उपदेशों से प्रभावित हो जीवरक्षा के लिए फरमान निकाले थे। अकबर ने आचार्य हीरविजय जी को जगद्गुरु की उपाधि दी थी और उनके अनुरोध पर पज्जूसण के जैन वार्षिकोत्सव के समय उन स्थानों में प्राणिहिंसा की मनाही कर दी थी जहाँ कि जैन लोग रहते थे।

इस राजनीतिक स्थिति का प्रभाव जैन काव्य साहित्य पर विविध रूप से पड़ा और पाँचवीं शती ईस्वी से अनवरत जैन काव्य-साहित्य का निर्माण होता रहा।

(आ) **धार्मिक परिस्थितियाँ**—गुप्तकाल से अब तक भारत में धार्मिक परिस्थिति ने अनेक करवटें बदली हैं। गुप्तयुग में एक नवीन ब्राह्मणधर्म का उदय हो रहा था जिसका आधार वेदों की अपेक्षा पुराण अधिक माने जाते थे। ब्राह्मणधर्म में नाना अवतारों की पूजा और भक्ति की प्रधानता थी। गुप्त नरेश स्वयं भागवत धर्मानुयायी अर्थात् विष्णुपूजक थे परन्तु वे बड़े ही धर्मसहिष्णु और अन्य धर्मों को संरक्षण देनेवाले थे। बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय का गुप्त राज्यों के संरक्षण में अच्छा प्रचार था। नालन्दा और पश्चिम में वलभी बौद्धधर्म के नये केन्द्रों के रूप में विकसित हो रहे थे। जैनधर्म भी विकसित स्थिति में था। वलभी में देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने जैनागमों का पाँचवीं शताब्दी में संकलन किया था। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विभिन्न धर्मों में परस्पर आदान-प्रदान और संमिश्रण अधिक मात्रा में बढ़ने लगा था। जैन तीर्थंकर ऋषभदेव और भगवान् बुद्ध हिन्दू अवतारों में गिने जाने लगे थे। उस समय के अनेक धार्मिक विश्वासों में उलट-पलट हो रही थी, धार्मिक जीवन में विधर्मी तत्त्वों का प्रवेश होने लगा था और एक ही कुटुम्ब और राज्यवंश में विभिन्न धर्मों की एक साथ उपासना होने लगी थी। तांत्रिक धर्म का विस्तार बढ़ने लगा था। हिन्दूधर्म के भागवत, शाक्त और शैव सम्प्रदायों में तथा बौद्धधर्म में तांत्रिक धर्म प्रविष्ट हो चुका था। जैनधर्म में वह मंत्रवाद के रूप में प्रविष्ट हो रहा था। तांत्रिक देवी-देवताओं के रूप में चमत्कार-प्रदर्शन के लिए या वाद-विवाद में पराजय के लिए कुछ देवियों—जैसे ज्वालामालिनी, चक्रेश्वरी, पद्मावती आदि का आविष्कार होने लगा था। उनकी स्वतंत्र मूर्तियाँ व मन्दिरों का निर्माण भी होने लगा था तथा उनके लिए स्तोत्र-पूजाएँ भी रची जाने लगी थीं। शैव और वैष्णव धर्मों के प्रभाव के कारण तीर्थंकरों को कर्त्ता-हर्त्ता मानकर उनके भक्तिपरक स्तोत्र बनने लगे।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

जैनाचार्यों ने ऐसे लौकिक धर्मों को भी अपने धर्म में शामिल कर लिया जो धर्म-सम्मत न होते हुए भी लोक में अपना विशेष प्रभाव रखते थे। नाना प्रकार के पर्व, तीर्थ, मंत्र आदि का माहात्म्य माना जाने लगा और उसके निमित्त नाना प्रकार का कथा-साहित्य लिखा जाने लगा था। इस युग में ससंघ तीर्थयात्रा को महत्त्व भी दिया जाने लगा।

जैन श्रमणसंघ की व्यवस्था में भी अनेकों परिवर्तन होने लगे थे। महावीर-निर्वाण के लगभग ६ सौ वर्ष बाद जैन मुनिगण वन-उद्यान और पर्वतोपत्यका का निवास छोड़ ग्रामों-नगरों में ठहरना उचित समझने लगे थे। इसे 'वसति-वास' कहते हैं। गृहस्थवर्ग जो पहले 'उपासक' नाम से संबोधित होता था वह धीरे-धीरे नियत रूप से धर्मश्रवण करने लगा और अब वह उपासक-उपासिका की जगह श्रावक-श्राविका कहलाने लगा। वसतिवास के कारण मुनियों और गृहस्थ श्रावकों के बीच निकट सम्पर्क होने से जैन संघ में अनेक मतभेद और आचार-विषयक शिथिलताएँ आने लगीं। ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में मूर्ति तथा मन्दिरों का निर्माण श्रावक का प्रधान धर्म बन गया। मुनियों का ध्यान भी ज्ञानाराधना से हटकर मन्दिरों और मूर्तियों की देखभाल में लगने लगा था। वे पूजा और मरम्मत के लिए दानादि ग्रहण करने लगे थे। फलतः सातवीं शताब्दी के बाद से जिनप्रतिमा, जिनालयनिर्माण और जिनपूजा के माहात्म्य पर विशेष रूप से साहित्य निर्माण होने लगा।

ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में मुनियों के समुदाय कुल, गण और शाखाओं में विभक्त थे जिनमें मुनियों का ही प्राबल्य था पर धीरे-धीरे गृहस्थ श्रावकों के प्रभाव के कारण नये नाम वाले संघ, गण, गच्छ एवं अन्वयों का उदय होने लगा तथा कई गच्छ-परम्पराएँ चल पड़ी थीं। पहले जैन आगम-सूत्रों का पठन-पाठन जैन साधुओं के लिए ही नियत था पर देशकाल के परिवर्तन के साथ श्रावकों के पठन-पाठन के लिए उनकी रुचि का ध्यान रख आगमिक प्रकरण और औपदेशिक प्रकरणों के साथ नूतन काव्यशैली में पौराणिक महाकाव्य, बहुविध कथा-साहित्य और स्तोत्रों तथा पूजा-पाठों की रचना होने लगी। पाँचवीं से दसवीं शताब्दी तक जैन मनीषियों द्वारा ऐसी अनेक विशाल एवं प्रतिनिधि रचनाएँ लिखी गईं जो आगे की कृतियों का आधार मानी जा सकती हैं।

ईसा की ११वीं और १२वीं शताब्दी में देश की राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ जैनसंघ के उभय सम्प्रदायों—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर और श्वेताम्बर के आन्तरिक संगठनों में नवीन परिवर्तन हुए जिससे जैन साहित्य के क्षेत्र में एक नूतन जागरण हुआ। दिग० सम्प्रदाय में तब तक अनेक संघ, गण और गच्छ बन चुके थे और उनके अनेक मान्य आचार्य मठाधीश जैसे बन गये थे और धीरे-धीरे एक नवीन संगठन भट्टारक व महन्त वर्ग के रूप में उदय हो रहा था जो पक्का चैत्यवासी बनने लगा था। इसी तरह श्वेताम्बर सम्प्रदाय चैत्यवास और वसतिवास के विवादस्वरूप अनेकों गणों और गच्छों में विभक्त होने लगा था और विभिन्न गच्छ-परम्पराएँ चलने लगी थीं। गण-गच्छनायकों ने अपने-अपने दल की प्रतिष्ठा के लिए एवं अनुयायियों की संख्या बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रदेशों और नगरों में विशेष रूप से परिभ्रमण किया। इन लोगों ने अपने विद्याबल एवं प्रभावदर्शक शक्ति-सामर्थ्य से राजकीय वर्ग और धनिक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया और बढ़ते हुए शिष्यवर्ग को कार्यक्षम और ज्ञानसमृद्ध बनाने के लिए नाना प्रकार की व्यवस्था की। इसके फलस्वरूप दक्षिण और पश्चिम भारत के अनेक स्थानों में ज्ञानसत्र और शास्त्रभण्डार स्थापित हुए। वहाँ आगम, न्याय, साहित्य और व्याकरण आदि विषयों के ज्ञाता विद्वानों की व्यवस्था की गई, स्वाध्यायमण्डल खोले गये और अध्यापक और अध्ययनार्थियों के लिए आवश्यक और उपयोगी सामग्री उपलब्ध करायी गई। 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' इस युक्ति को महत्त्व देकर जैन साधु और गृहस्थ वर्ग अपनी विद्या-विषयक समृद्धि बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान देने लगे। जैन सिद्धान्त के अध्ययन के बाद अन्य दार्शनिक साहित्य का तथा व्याकरण, काव्य, अलंकार, छन्दशास्त्र और ज्योतिःशास्त्र आदि सार्वजनिक साहित्य का भी विशेष रूप से आकलन होने लगा और इस विषय के नये-नये ग्रन्थ रचे जाने लगे।

(इ) सामाजिक परिस्थितियाँ—हमारे इस आलोच्य युग के पूर्वमध्य-काल में सामाजिक स्तब्धता धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी। भारतीय समाज जाति-प्रथा से जकड़ता जा रहा था और धार्मिक तथा रीति-रिवाज के बंधन दृढ़ होते जा रहे थे। उत्तरमध्यकाल (११-१२वीं शताब्दी) आते-आते समाज अनेकों जातियों और उप-जातियों में विभाजित होने लगा था। धीरे-धीरे प्रगतिशील और समन्वय एवं सहिष्णुता के स्थान पर स्थिर रूढ़िवाद और कठोरता ने पैर जमा लिये थे। समाज में तन्त्र-मन्त्र, टोना टोटका, शकुन-मुहूर्त आदि अंधविश्वास अशिक्षित और शिक्षित दोनों में घर कर गये थे। धार्मिक क्षेत्र तथा सामाजिक क्षेत्र में उत्तरोत्तर भेदभाव बढ़ता जा रहा था। क्रिया-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काण्ड और शुद्धि-अशुद्धि के कारण ब्राह्मण वर्ग में छूताछूत का विचार बढ़ रहा था। जातियों के उपजातियों में विभक्त होने से उनमें खान-पान, रोटी-बेटी का सम्बन्ध बन्द हो रहा था। क्षत्रिय और वैश्य वर्ग में भी इन नये परिवर्तनों का प्रभाव पड़ने लगा था। क्षत्रिय वर्ग के राजवंशों से शासन कार्य प्रायः छिन रहा था। इस काल के अनेक राजवंश प्रायः अक्षत्रिय वर्ग के थे। उत्तर भारत में थानेश्वर के पुष्पभूति वैश्य थे। मौखरी और पश्चात् कालीन गुप्तराजा अक्षत्रिय ही थे। बंगाल के पाल और सेन शूद्र थे। कन्नौज के गुर्जर-प्रतिहार विदेशी थे जो पीछे क्षत्रिय बनाये गये थे। इसी तरह परमार और चौहान भी थे। तात्पर्य यह कि क्षत्रियवर्ग में अनेक तत्त्वों का संमिश्रण हो रहा था। सामान्य क्षत्रिय व्यापार कर वैश्यवृत्ति धारण कर रहे थे और धार्मिक दृष्टि से वे किसी एक धर्म के माननेवाले न थे तथा पश्चिम और दक्षिण भारत में बहुसंख्यक जैनधर्मावलम्बी भी हो गये थे।

इस काल में वैश्यवर्ग में भी नूतन रक्त संचार हुआ। ६ठी शताब्दी के लगभग वे जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण कृषि कर्म छोड़ चुके थे क्योंकि उत्तर भारत में उस समय कृषकों की अपेक्षा व्यापारिक वर्ग सम्माननीय समझा जाता था। इस काल में अनेक क्षत्रिय वैश्यवृत्ति स्वीकार करने लगे थे। कई जैन स्रोतों से मालूम होता है कि कुछ क्षत्रिय अहिंसा के प्रभाव से शस्त्र-जीविका बदलकर व्यापार और लेन-देन वृत्ति करने लगे थे। हमारे युग में वैश्य लोग अनेक जातियों और उप-जातियों में बँट गये थे। इस काल का जैनधर्म अधिकांशतः व्यापारिक वर्ग के हाथ में था। दक्षिण भारत में जैनधर्मानुयायियों में अब भी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं पर प्रायः सभी व्यापार वृत्ति करते हैं। दक्षिण और पश्चिम भारत में धनिक व्यापारिक वर्ग के संरक्षण में जैनधर्म बड़ा ही फला-फूला। अनेक जैन वैश्यों को राज्य कार्यों में सक्रिय सहयोग देने का अवसर मिला था और वे राज्य के छोटे-बड़े अधिकार-पदों पर सुशोभित हुए थे। अनेक जैन विभिन्न राज्यों के महामात्य और महादण्डनायक जैसे पदों पर भी प्रतिष्ठित हुए थे। दक्षिण और पश्चिम भारत के अनेक शिलालेख उनकी अमर गाथाओं को गाते हुए पाये गये हैं। मुस्लिम काल में भी जैन गृहस्थों के कारण जैनाचार्यों की प्रतिष्ठा कायम थी। दिल्ली, आगरा और अहमदाबाद के कई जैन परिवारों का, उनके व्यापारिक सम्बन्धों एवं विशाल धनराशि के कारण, मुगल दरबारों में बड़ा प्रभाव था। राजपूत राज्यों में भी अनेक जैन सेनापति और मंत्रियों के महत्त्वपूर्ण पदों पर थे। मुगलों से दृढ़ता-पूर्वक लड़नेवाले राणा प्रताप के समय के भामाशाह, आशाशाह और भरमल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि प्रसिद्ध हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय में जगत्सेठ, सिंघी आदि विशिष्ट परिवार थे जो राजसेठ माने जाते थे और राज्यशासन में उनका बड़ा प्रभाव था।

राजकीय प्रतिष्ठा के साथ-साथ इस काल में जैन वैश्य बड़ा ही सुपठित और प्रबुद्ध था। जैनाचार्यों के समान ही वह भी साहित्यसेवा में रत था। इस काल में जैन गृहस्थों ने अनेकों ग्रन्थों की रचना भी की है। अपभ्रंश महाकाव्य पद्मचरित के रचयिता स्वयम्भू, तिलकमंजरी जैसे पुष्ट गद्यकाव्य के प्रणेता धनपाल, कन्नड चामुण्डरायपुराण के लेखक चामुण्डराय, नरनारायणानन्द महाकाव्य के रचयिता वस्तुपाल, धर्मशर्माभ्युदयकार हरिश्चन्द्र, पंडित आशाधर, अर्हद्दास, कवि मंडन आदि अनेक जैन गृहस्थ ही थे। जैनाचार्यों द्वारा अनेक ग्रन्थ प्रणयन कराने, उनकी प्रतियों को लिखाकर वितरण करने तथा अनेक शास्त्रभण्डारों के निर्माण कराने में जैन वैश्य वर्ग का प्रमुख हाथ रहा है।

(ई) साहित्यिक अवस्था—आलोच्य युग के पूर्व गुप्तकाल संस्कृत साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। उस समय तक वाल्मीकि-रामायण, महाभारत, अश्वघोष के काव्य बुद्धचरित एवं सौन्दरनन्द तथा कालिदास के रघुवंश, कुमार-संभव आदि एवं प्राकृत के गाथासप्तशती एवं सेतुबंध आदि बन चुके थे और एक विशिष्ट काव्यात्मक शैली का प्रादुर्भाव हो चुका था तथा संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में उत्तरोत्तर उच्चकोटि की रचनाएँ होने लगी थीं। तब तक ब्राह्मणों के मुख्य पुराण भी अन्तिम रूप धारण कर रहे थे। इस युग में काव्यों को शास्त्रीय पद्धति पर बाँधने के लिए भामह, दण्डि, रुद्रट प्रभृति विद्वानों के काव्यालंकार, काव्यादर्श आदि ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। रीतिबद्ध शैली पर इस युग में अनेक काव्यों की सृष्टि होने लगी थी जिनमें भारविकृत किरातार्जुनीय, माघकृत शिशुपालवध, श्रीहर्षकृत नैषधीय-चरित बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। शास्त्रीय पद्धति पर काव्य की अनेक विधाओं जैसे गद्य-काव्य, चम्पू, दूतकाव्य, अनेकार्थकाव्य, नाटक आदि की सृष्टि इस युग में हुई।

जैन विद्वानों ने भी इस युग की माँग को देखा। उनका धर्म वैसे तो त्याग और वैराग्य पर प्रधान रूप से बल देता है। उनके शुष्क उपदेशों को बिना प्रभावोत्पादक ललित शैली के कौन सुनने को तैयार था? जैन मुनियों को शृङ्गार आदि कथाओं को सुनने और सुनाने का निषेध था पर श्रावक वर्ग को साधारणतया इस प्रकार की कथाओं में विशेष रसोपलब्धि होती थी। युग की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माँग के अनुरूप जैन-विद्वद्वर्ग ने न केवल संस्कृत में बल्कि प्राकृत और अपभ्रंश में भी अनेकविध रचनाएँ लिखीं। जैन विद्वान् स्वभावतः संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के विद्वान् थे। प्राकृत उनके धर्म-ग्रन्थों की भाषा थी और सामान्य वर्ग तक पहुँचने के लिए वे अपभ्रंश में रचनाएँ लिखकर उसका विकास कर रहे थे तथा पण्डित एवं अभिजात वर्ग से सम्पर्क के लिए संस्कृत में भी परम निष्णात थे। संस्कृत यथार्थतः उस काल तक पाण्डित्यपूर्ण विवेचनों और रचनाओं की भाषा बन गई थी। एतन्निमित्त जैनों ने न्याय, व्याकरण, गणित, राजनीति एवं धार्मिक-उपदेशप्रद विषयों के अतिरिक्त आलंकारिक शैली में पुराण, चरित एवं कथाओं पर गद्य एवं पद्य काव्यरूप में संस्कृत रचनाएँ निर्मित कीं। साहित्य-निर्माण के क्षेत्र में जैनों का सर्वप्रथम ध्यान लोकरुचि की ओर रहा है इसलिए उन्होंने सामान्य जन भोग्य प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त अनेक प्रान्तीय भाषाओं—कन्नड, गुजराती, राजस्थानी एवं हिन्दी आदि में ग्रन्थों का प्रचुर राशि में प्रणयन किया। जैनों के साहित्य-निर्माण कार्य में राजवर्ग और धनिकवर्ग की ओर से बड़ा प्रोत्साहन एवं प्रेरणा मिली थी। उसकी चर्चा हम कर चुके हैं।

(उ) **लेखनकार्य में सुविधा**—जैन विद्वानों को लेखनकार्य में साधुवर्ग और समाज की ओर से भी अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। जब कोई विद्वान् नवीन ग्रन्थ रचने का प्रयास करता था तो वह एतन्निमित्त लकड़ी की पाटी या कपड़े पर शब्दों को लिखा करता था और उन शब्दों की व्युत्पत्ति पर एक-दूसरे से विचार-विमर्श करता था। शब्दों के उपयुक्त प्रयोगों के लिए प्राचीन कवियों के ग्रन्थों से नमूने लिए जाते थे और भावानुकूल रचना का निर्माण कर संशोधन-कर्ताओं से उसका संशोधन करा लिया जाता था। इस प्रकार ग्रन्थ के संशोधित रूप को पत्थर-पाटी-स्लेट अथवा लकड़ी की पाटी आदि पर लिखकर उसे सुलिपिकों द्वारा ग्रन्थरूप में लिखा लिया जाता था। ग्रन्थ-रचना करते समय विशेष-विशेष सूचना देने के लिए विद्वान् शिष्य और साधुगण सहायक रहते थे। कितनी बार विद्वान् उपासक भी इस प्रकार की सहायता करते थे।[१]

जैन काव्य-साहित्य के निर्माण में मूल प्रेरणाएँ :

(अ) **धार्मिक भावना**—पूर्व और उत्तर मध्यकाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों तथा लेखन कार्य की सुविधाओं का

१. प्रभावकचरित—हेमचन्द्राचार्यचरितम्.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव हमारे आलोच्य युग के जैन काव्य साहित्य पर विशेष रूप से पड़ा। जैन-काव्यकारों का दृष्टिकोण, इस साहित्य को देखने से स्पष्ट झलकता है कि धार्मिक था। जैनधर्म के आचार और विचारों को रमणीय पद्धति से एवं रोचक शैली से प्रस्तुत कर धार्मिक चेतना और भक्तिभावना को जाग्रत करना उनका मुख्य उद्देश्य था। जैन कवियों ने जैन काव्यों की रचना एक ओर स्वान्तः सुखाय की है तो दूसरी ओर कोमलमति जनसमूह तक जैनधर्म के उपदेशों को पहुँचाने के लिए की है। इसके लिए उन्होंने **धर्मकथानुयोग** या **प्रथमानुयोग** का सहारा लिया है। जन-सामान्य को सुगम रीति से धार्मिक नियम समझाने के लिए कथात्मक साहित्य से बढ़कर अधिक प्रभावशाली साधन दूसरा नहीं है। उनकी कुछ रचनाओं को छोड़कर अधिकांश कृतियाँ विद्वद्वर्ग के लिए नहीं अपितु सामान्य कोटि के जनसमूह के लिए हैं। इस कारण से ही उनकी भाषा अधिक सरल रखी गई है। जनता को प्रभावित करने के लिए अनेक प्रकार की जीवन-घटनाओं पर आधारित कथाओं और उपकथाओं की योजना इन काव्यग्रंथों की विशेषता है। इन विद्वानों ने चाहे प्रेमाख्यानक काव्य रचा हो अथवा चरितात्मक, सभी में धार्मिक भावना का प्रदर्शन अवश्य किया है। इस धार्मिक भावना को प्रकट करने में उन्होंने जैनधर्म के जटिल सिद्धान्तों और मुनिधर्म-सम्बन्धी नियमों को उतना अधिक व्यक्त नहीं किया जितना कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र के सामान्य विवेचन के साथ अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रहस्वरूप सार्वजनिक व्रतों, दान, शील, तप, भाव, पूजा, स्वाध्याय आदि आचरणीय धर्मों को प्रतिपादित किया है।

(आ) विभिन्न वर्गों के अनुयायियों की प्रेरणा—त्यागी वर्ग—चैत्यवासी, वसतिवासी, यति, भट्टारक—में क्रियाकाण्डविषयक भेदों को लेकर नये-नये गण-गच्छों का प्रादुर्भाव हुआ। उनके नायकों ने अपने-अपने गण की प्रतिष्ठा के लिए और अनुयायियों की संख्या बढ़ाने की दृष्टि से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों का विशेष रूप से भ्रमण करना शुरू किया। उन लोगों ने अपने उच्च-चारित्र्य, पाण्डित्य तथा ज्योतिष, तंत्र-मंत्रादि से तथा अन्य चमत्कारों से राजवर्ग और धनिक वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करना प्रारम्भ किया तथा विभिन्न स्थलों पर चैत्य, उपाश्रय आदि धर्मायतनों की स्थापना करने लगे और अपने बढ़ते हुए शिष्य-समुदाय की प्रेरणा से अपने आश्रयदाताओं के अनुरोध से व्रत, पर्व, तीर्थादि माहात्म्य तथा विशिष्ट पुरुषों का चरित्र वर्णन करने के लिए कथात्मक ग्रंथों की रचना की ओर विशेष ध्यान दिया। इस युग के अनेक जैन कवियों को या तो राज्याश्रय प्राप्त था या वे मठाधीश थे। राष्ट्रकूट अमोघवर्ष और उसके उत्तरा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धिकारियों के संरक्षण में जिनसेन और गुणभद्र ने महापुराण, उत्तरपुराण की, कुमारपाल के गुरु हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित की तथा वस्तुपाल के आश्रय पर पश्चात्कालीन कई आचार्यों ने अनेक प्रकार से काव्य-साहित्य की सेवा की। अनेकों काव्यग्रन्थों में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रेरणाओं का साभार उल्लेख भी मिलता है।

(इ) **गच्छीय स्पर्धा**—यद्यपि त्यागी वर्ग को राज्याश्रय और धनिक वर्ग का आश्रय प्राप्त था तथापि उन्हें धन की इच्छा नहीं थी। उनसे प्राप्त सुविधा का उपयोग वे अपनी गच्छीय प्रतिष्ठा और साहित्य-निर्माण में करते थे। काल की दृष्टि से पाँचवीं से दसवीं शताब्दी तक काव्यग्रन्थों का निर्माण उतनी तीव्र गति और प्रचुर मात्रा मे नहीं हुआ जितनी कि ग्यारहवीं से चौदहवीं शताब्दी तक। दसवीं शताब्दी के पूर्व यदि कई विशाल एवं प्रतिनिधि रचनाएँ लिखी गई थीं, तो दसवीं शताब्दी के बाद तीन सौ वर्षों में यह संख्या बढ़कर सैकड़ों की तादाद तक पहुँच गई। जैन विद्वानों में मानो उस समय कथा-साहित्य[1] की रचना करने में परस्पर बड़ी स्पर्धा हो रही थी। अमुक गच्छवाले अमुक विद्वान् ने अमुक नाम का कथाग्रंथ बनाया है, यह जानकर या पढ़कर दूसरे गच्छवाले विद्वान् भी इस प्रकार के दूसरे कथाग्रन्थ बनाने में उत्सुक होते थे। इस रीति से चन्द्र-गच्छ, नागेन्द्रगच्छ, राजगच्छ, चैत्रगच्छ, पूर्णतल्लगच्छ, वृद्धगच्छ, धर्मघोषगच्छ, हर्षपुरीयगच्छ आदि विभिन्न गच्छ, जोकि इन शताब्दियों में विशेष प्रसिद्धि पाये थे और प्रभावशाली बने थे, इन प्रत्येक गच्छ के विशिष्ट विद्वानों ने इस प्रकार के कथाग्रन्थों की रचना करने के लिए सबल प्रयत्न किये। इस युग में एक ही पीढ़ी के विभिन्न गच्छीय दो-दो, तीन-तीन विद्वानों ने तिरसठ शलाका महापुरुषों के चरित्रों तथा व्रत, मंत्र, पर्व, तीर्थमाहात्म्य प्रसंगों को लेकर एक ही नाम की दो-दो, तीन-तीन रचनाएँ लिखीं। लोककथा, नीतिकथा, परीकथा तथा *पशु-पक्षी आदि हजारों कथाओं को लेकर इन्होंने विशालकाय कथाकोष ग्रंथ भी लिखे।*

(ई) **ऐतिहासिक और समसामयिक प्रभावक पुरुषों के आदर्श जीवन**—यद्यपि जैन कवि धनादि भौतिक कामनाओं से परे थे फिर भी कथात्मक साहित्य के अतिरिक्त जैन विद्वानों ने युग की परिणति के अनुकूल ऐतिहासिक और अर्ध-ऐतिहासिक कृतियों की रचना की। इन कृतियों में प्रायः ऐसे ही राजवंश या

१. प्राकृत में कथा और काव्य प्रायः एक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावक व्यक्ति की प्रशंसा या इतिवृत्त लिखा गया जिन्होंने जैनधर्म की प्रभावना के लिए अपना तन, मन और धन लगा दिया था। सिद्धराज जयसिंह, परमार्हत कुमारपाल, महामात्य वस्तुपाल, जगडूशाह और पेथडशाह आदि उदारमना धर्मपरायण व्यक्ति थे जो किसी भी देश, समाज, जाति के लिए प्रतिष्ठा की वस्तु थे। जैन-साधुओं ने उनके जैनधर्मानुकूल जीवन से प्रभावित होकर उन्हें अपने काव्यों का नायक बनाया और उनकी प्रशस्तियाँ लिखीं। आचार्य हेमचन्द्र ने कुमारपाल के वंश की कीर्ति-गाथा में 'द्वयाश्रयकाव्य' का प्रणयन किया, बालचन्द्रसूरि ने वस्तुपाल के जीवन पर 'वसन्तविलास' एवं उदयप्रभसूरि ने 'धर्माभ्युदय' काव्य की रचना की। इसी तरह प्रभावक आचार्यों और पुरुषों के नाम लघु निबन्धों के रूप में प्रबन्धसंग्रह, प्रबन्धचिन्तामणि, प्रभावकचरित आदि लिखने की प्रेरणा मिली। ये कृतियाँ निकट अतीत या समसामयिक ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन पर आधारित होने से तत्कालीन इतिहास जानने के लिए बड़ी ही उपयोगी हैं।

(उ) **अन्य महाकवियों की शैली आदि का अनुकरण**—संस्कृत साहित्य की कतिपय ख्यातिप्राप्त काव्य-कृतियों से प्रेरणा पाकर भी जैन कवियों ने उनके अनुकरण पर या उस शैली में अनेक काव्यों की रचना की। इस तरह हम देखते हैं कि बाण की कादम्बरी की शैली पर धनपाल ने 'तिलकमंजरी' और ओडयदेव वादीभसिंह ने 'गद्यचिन्तामणि' और 'किरातार्जुनीय' और 'शिशुपालवध' की शैली पर हरिचन्द्र ने 'धर्मशर्माभ्युदय' और मुनिभद्रसूरि ने 'शान्तिनाथचरित्र' और वस्तुपाल ने 'नरनारायणानन्द' तथा जिनपाल उपाध्याय ने 'सनत्कुमारचरित' जैसे प्रौढ़ काव्यों की रचना की। इन रीतिबद्ध शास्त्रीय महाकाव्यों की रचना के पीछे कालिदास, भारवि, बाण आदि महाकवियों की समकक्षता प्राप्त करने या वैसा यश प्राप्त करने तथा विद्वत्ता-प्रदर्शन की भावना झलकती-सी लगती है।

(ऊ) **धार्मिक उदारता, निष्पक्षता एवं सहिष्णुता**—साहित्य-सेवा के क्षेत्र में जैनाचार्यों की नीति निष्पक्ष तथा धार्मिक उदारता से प्रेरित थी। उन्होंने अनेक कृतियाँ इन भावनाओं से प्रेरित होकर भी लिखीं और पढ़ीं और उनका संरक्षण किया है। इस तरह हम देखते हैं कि अमरचन्द्रसूरि ने वायडनिवासी ब्राह्मणों की प्रार्थना पर 'बालभारत' की तथा नयचन्द्रसूरि ने 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना की। माणिक्यचन्द्र ने काव्यप्रकाश पर संकेत टीका लिखी तथा अनेक जैनेतर महाकाव्यों पर जैन विद्वानों ने प्रामाणिक टीकाएँ लिखीं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा अनेक जैनेतर कथाग्रन्थों—पंचतंत्र, वेतालपंचविंशतिका, विक्रमचरित, पंचदण्डछत्रप्रबन्ध आदि का प्रणयन किया। इतना ही नहीं, उनकी उदार साहित्य सेवा से प्रभावित हो अन्य धर्म और सम्प्रदाय के लोग उनसे अभिलेख साहित्य का निर्माण कराकर अपने स्थानों में उपयोग करते थे। उदाहरणार्थ चित्तौड़ के मोकलजी मन्दिर के लिए दिगम्बराचार्य रामकीर्ति (वि० सं० १२०७) से प्रशस्ति लिखायी गई थी। इसी तरह राजस्थान की सुन्ध पहाड़ी के चामुण्डा देवी के मन्दिर के लिए बृहद्गच्छीय जयमंगलसूरि से और ग्वालियर के कच्छवाहों के मन्दिर के लिए यशोदेव दिगम्बर से और गुहिलोत वंश के घाघसा और चिर्वा स्थानों के लिए रत्नप्रभसूरि से शिलालेख लिखाये गये थे।[1]

इस तरह हम इस आलोच्य युग में (पाँचवीं से अब तक) जैन काव्य साहित्य के निर्माण में अनेक प्रकार की प्रेरणाएँ देखते हैं उनमें से कुछ प्रमुख हैं—

(अ) धर्मोपदेश और धार्मिक भावना,

(आ) गच्छीय अनुयायियों का अनुरोध,

(इ) गच्छीय स्पर्धा,

(ई) ऐतिहासिक और समसामयिक प्रभावक पुरुषों के आदर्श जीवन का चित्रण करने की प्रेरणा,

(उ) जैनेतर महाकवियों और काव्यों की समकक्षता या शैली के अनुकरण की भावना,

(ऊ) धार्मिक उदारता, निष्पक्षता एवं सहिष्णुता।

भारतीय काव्य-साहित्य और जैन काव्य-साहित्य :

साहित्य—'साहित्य' शब्द सहित से बना है। साहित्य में सामूहिकता का भाव है। इसमें शब्द और अर्थ के सहभाव द्वारा इस लोक, पर लोक, मित्र, शत्रु सज्जन, दुर्जन सभी के समान हित का प्रतिपादन होता है।

साहित्य शब्द का प्रयोग व्यापक और संकुचित दोनों अर्थों में होता है। कुछ उपाधियों के साथ वह व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है, जैसे भारतीय

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, तृतीय भाग की प्रस्तावना (मा० दि० जै० ग्र०), बम्बई, १९५७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्य, ब्राह्मण-जैन-बौद्ध साहित्य, संस्कृत साहित्य, प्राकृत साहित्य आदि। इस व्यापक अर्थ में भी उपाधियों के द्वारा साहित्य के अर्थ का उत्तरोत्तर संकोच किया गया है। पर साहित्यकार, साहित्याचार्य आदि शब्दों में साहित्य का प्रयोग अति संकुचित और एक विशिष्ट दिशा की ओर हुआ है। यहाँ साहित्य लेखक के व्यक्तित्व का प्रकाशन करता है। साहित्य केवल सिद्धान्त, दर्शन, तर्क आदि ज्ञानात्मक और गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विज्ञानात्मक ही नहीं अपितु संवेगात्मक, रागात्मक और कल्पनात्मक भी होता है। साहित्यकार या साहित्याचार्य की दृष्टि से साहित्य उन ग्रन्थों में नहीं है जो स्थायी बौद्धिक रुचि के तथ्यों और सत्यों से व्याप्त हैं अपितु उनमें है जो स्वयं ही स्थायी रुचि के हैं। इस प्रकार के साहित्य में तीन तत्त्व प्रमुख रूप से दिखाई पड़ते हैं: १. जीवन और जगत् की प्रखर अनुभूति, २. साहित्यकार का संवेगसंवलित व्यक्तित्व और ३. ललित-प्रेरक शाब्दिक अभिव्यक्ति। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीवन और जगत् के प्रखर अनुभवों की संवेगसंवलित शाब्दिक अभिव्यक्ति साहित्य है।

अंग्रेजी में 'लिटरेचर' और उर्दू में 'अदब' शब्द साहित्य के अर्थ को द्योतित करते हैं। अंग्रेजी का लिटरेचर तो Letters से बना है। तदनुसार समस्त अक्षर ज्ञान का विस्तार ही साहित्य है। पर उसके व्यापक अर्थ को संकुचित करते हुए ब्रिटेनिका विश्वकोष में Literature का अर्थ 'The best expression of the best thoughts reduced to writing' स्वीकार कर उत्कृष्ट विचार, उत्कृष्ट अभिव्यक्ति-संयत लेखन में साहित्य माना गया है। उर्दू में कोमलता, कला, शिष्टता और अदा को अधिक महत्त्व मिला है अतः 'अदब' शब्द साहित्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।

काव्य—संस्कृत साहित्य शास्त्र में उपर्युक्त साहित्य का पर्यायवाची शब्द काव्य है क्योंकि सुदीर्घकाल तक साहित्य सृजन कविता में ही होता रहा है। आचार्य भामह ने (६ठी श०) **'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'**[१] कहकर शब्द और अर्थ के साहित्य (सम्मेलन) को काव्य माना है और बाद में इसकी परिभाषा करते हुए पंडितराज जगन्नाथ ने कहा है—**'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'**[२]। इस परिभाषा में रमणीय अर्थ और शब्द इन दोनों के द्वारा काव्य

---

१. **काव्यालंकार.**

२. **रसगंगाधर.**

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

में रस, अलंकार और ध्वनि का समन्वय निहित है। पंडितराज जगन्नाथ से बहुत पहले जैनाचार्य जिनसेन ने काव्य शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार बतलायी है—

> कवेर्भावोऽथवा कर्म काव्यं तज्ज्ञैर्निरुच्यते।
> तत्प्रतीतार्थमग्राम्यं सालङ्कारमनाकुलम्॥[१]

कवि के भाव अथवा कर्म को काव्य कहते हैं। कवि का काव्य सर्वसम्मत अर्थ से सहित, ग्राम्यदोष से रहित, अलंकार से युक्त और प्रसाद आदि गुणों से शोभित होता है अर्थात् शब्द और अर्थ का वह समुचित रूप जो दोषरहित तथा गुण और अलंकारसहित (रमणीय) हो, काव्य है। जिनसेन ने अर्थ और शब्द दोनों के सौन्दर्य को काव्य के लिए ग्राह्य बताते हुए उन लोगों की आलोचना की है जो किसी एक के सौन्दर्य को उपादेय मानते हैं। उनका कहना है कि अलंकार सहित, शृंगारादि रस से युक्त, सौन्दर्य से ओतप्रोत और उच्छिष्टतारहित मौलिक काव्य सरस्वती के मुख के समान शोभायमान होता है। जिसमें रीति की रमणीयता नहीं, न पदों का लालित्य और न रस का ही प्रवाह, वह अनगढ़ काव्य है, वह तो कर्णकटु ग्रामीण भाषा के समान है।[२]

जिनसेन प्रतिपादित उक्त परिभाषा को देखने पर ज्ञात होता है कि आचार्य ने काव्य में बहिरंग तत्त्व—रीति, पदलालित्य (गुण और शब्दालंकार) तथा अन्तरंग तत्त्व—रस, भाव, अर्थालंकार, एवं मौलिकता का होना आवश्यक माना है।

परन्तु काव्य की परिधि को बढ़ते हुए देखकर काव्य-शास्त्रियों ने उसकी परिभाषा में आवश्यक संशोधन किया। आचार्य मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश (सन् ११०० के लगभग) में काव्य में अलंकार के अभाव में भी काव्यत्व सुरक्षित माना है। उसने दोषरहित, गुणवाली, अलंकारयुक्त तथा कभी-कभी अलंकाररहित शब्दार्थमयी रचना को काव्य कहा है।[३] इसी तरह अपने युग की रचनाओं को ध्यान में रखकर आचार्य हेमचन्द्र ने काव्य की परिभाषा 'अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्' मानते हुए भी इस

---

१. आदिपुराण, १. ९४.

२. वही, १. ९५-९६.

३. तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र की वृत्ति में 'चकारो निरलंकारयोरपि शब्दार्थयोः क्वचित् काव्यत्वख्यापनार्थः'[1] लिखा है और दूसरे जैन साहित्यशास्त्री वाग्भट (१२वीं श०) ने भी 'शब्दार्थौ, निर्दोषौ सगुणौ प्रायः सालंकारौ काव्यम्' कहकर इस सूत्र की वृत्ति में 'प्रायः सालंकाराविति निरलंकारयोरपि शब्दार्थयोः क्वचित्काव्यत्वख्यापनार्थम्'[2] द्वारा निरलंकार शब्दार्थ को भी काव्य माना है। पीछे १५वीं शताब्दी के कवि नयचन्द्रसूरि ने अपने हम्मीरमहाकाव्य (वि. सं. १४५० के लगभग) में अपशब्द शब्द (व्याकरण की दृष्टि से सदोष) के प्रयोग को भी काव्य में स्थान देते हुए कहा है—'प्रायोऽपशब्देन न काव्यहानिः समर्थताऽर्थे रससंक्रमश्चेत्'[3] अर्थात् यदि किसी कृति में रसमग्न करने की क्षमता है तो फिर उसमें यदि कुछ अपशब्द (सदोष शब्द) भी हों तो उनसे काव्यत्व की हानि नहीं है।

इस तरह हम देखते हैं कि काव्य की परिभाषा युग की आवश्यकता के अनुसार बदलती रही है और विशाल एवं बहुविध काव्य राशि को देखते हुए उनके काव्यत्व को जाँचने के लिए एक मापदण्ड स्थापित करना कठिन है। सचमुच में 'निरंकुशाः कवयः' यह लोकोक्ति कवियों के लिए चरितार्थ है।

काव्य के प्रकार—साधारणतः काव्य के तीन भेद होते हैं—उत्तम, मध्यम और जघन्य। उत्तम व्यंजनाप्रधान, मध्यम लक्षणाप्रधान और अधम अभिधाप्रधान काव्य होते हैं। काव्य विधा की दृष्टि से काव्य के दो प्रकार हैं : १. प्रेक्ष्य-काव्य और २. श्रव्य-काव्य। जो रंगमंच पर अभिनय करने के लिए रचे गये हों वे प्रेक्ष्य-काव्य हैं। उनका अभिनय आखों द्वारा देखा जाता है। जो काव्य कानों द्वारा सुने जायँ उन्हें श्रव्य-काव्य कहा जाता है। प्राचीन समय में काव्य अधिकतर सुने जाते थे, उनका प्रचार गान द्वारा होता था। पढ़ने के रूप में पुस्तकें कम उपलब्ध होती थीं। आचार्य हेमचन्द्र ने प्रेक्ष्य-काव्य के दो भेद किये हैं—१. पाठ्य और २. गेय। पाठ्य के अन्तर्गत उन्होंने नाटक, प्रकरण, नाटिका, समवकार, व्यायोग, प्रहसन, सट्टक आदि माना है और गेय के अन्तर्गत रासक, श्रीगदित, रागकाव्यादि माने हैं। श्रव्य-काव्य के तीन प्रकार माने गये हैं : १. गद्य, २. पद्य और ३. मिश्र। गद्य का अर्थ है जो बोलचाल योग्य हो। फिर भी

---

१. काव्यानुशासन.

२. वही.

३. सर्ग १४. ३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य के रूप में छन्दोयोजना से रहित तथा काव्य के आवश्यक गुणों से संयुक्त रचना को गद्य काव्य कहा जाता है। गद्य काव्य को आख्यायिका और कथा इन दो भेदों में विभक्त किया गया है। आख्यायिका वह है जिसमें कोई धीरोदात्त नायक अपने जीवन वृत्तान्त को अनेक रोमांचक तत्त्वों के साथ अपने ही मुख से अपने मित्रादि को बताये। संस्कृत के हर्षचरित जैसे ग्रन्थ आख्यायिका के अन्तर्गत माने गये हैं। कथा उसे कहते हैं जिसमें कवि स्वयं नायक के जीवन वृत्तान्त का वर्णन गद्य में करे। इस वर्ग में दशकुमारचरित्र, कादम्बरी आदि आते हैं।

पद्य काव्य छन्दोबद्ध रचना को कहते हैं। पद्य काव्य के दो भेद होते हैं: १. प्रबन्ध काव्य और २. मुक्तक काव्य। प्रबन्ध काव्य में एक कथा होती है और उसके सभी पद्य एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। प्रबन्ध काव्य में वर्णन, प्राक्कथन, पारस्परिक सम्बंध और सामूहिक प्रभाव की प्रधानता रहती है। जिनसेन के अनुसार 'पूर्वापरार्थघटनैः प्रबंधः'[1] अर्थात् पूर्वापर सम्बन्ध निर्वाहपूर्वक कथात्मक रचना प्रबन्ध काव्य है। मुक्तक काव्य के पद्य स्वतः पूर्ण होते हैं। उसमें प्रायः प्रत्येक पद्य की स्वतंत्र सत्ता रहती है। स्फुट कविताएँ इस विधा के अन्तर्गत आती हैं। सुभाषितों और स्तोत्रों के रूप में यह विधा अभिप्रेत है।

प्रबंध काव्य दो रूपों में पाया जाता है: १. महाकाव्य और २. कथाकाव्य। महाकाव्य में जीवन का सर्वांगीण चित्रण होता है और वह सर्गबद्ध रचना है और उसका आकार भी बृहत् होता है। जिनसेन के अनुसार महाकाव्य वह है जो इतिहास और पुराण प्रतिपादित चरित का रसात्मक चित्रण करता हो तथा धर्म, अर्थ और काम के फल को प्रदर्शित करता हो।[2] कथाकाव्य वह है जिसमें रसात्मक एवं अलंकार शैली में रोमाञ्चक तत्त्वों के समावेश के साथ कथावर्णन हो। यह छन्दोबद्ध रचना होने से आख्यायिका और गद्य कथा से भिन्न है पर तत्त्वों की दृष्टि से एक है। हेमचन्द्र ने कथाकाव्य के आख्यान, मन्थल्लिका, परिकथा, उपकथा, सकलकथा, खण्डकथा आदि अनेक भेदों का वर्णन किया है। इनमें से दो प्रमुख हैं: १. सकलकथा और २. खण्डकथा। सकलकथा काव्य में महाकाव्य की तरह जीवन के पूर्ण भाग का चित्रण होता है। इसका कथानक विस्तृत होता है और इसमें अवान्तर-कथाओं की योजना भी होती है परन्तु महाकाव्यीय बन्धनों (सर्गबद्धता, छन्दप्रयोग, भाषा की गुरुता आदि) के अभाव में सकलकथाकाव्य, महाकाव्य से भिन्न विधा है। जैनों के अधिकांश

१. आदिपुराण, १.१००.
२. वही, १.९९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरितकाव्य इसी विधा के अन्तर्गत आते हैं। जैसे—समरादित्यचरित (प्रद्युम्न-सूरिकृत), निर्वाणलीलावती (जिनेश्वरसूरिकृत) आदि।[१] खण्डकथा काव्य में जीवन के एक पक्ष का चित्रण होता है, अथवा एक ही घटना को महत्ता दी जाती है। अवान्तर कथाओं की योजना भी प्रायः उसमें नहीं होती। इसे खण्ड-काव्य नाम से भी कहा जाता है। कालिदास का मेघदूत और जैन विद्वानों कृत इस विधा के अनेक काव्य इसके अन्तर्गत आते हैं।

मुक्तक काव्य पाठ्य और गेय भेद से दो प्रकार का है। भर्तृहरि के नीति-शतक आदि पाठ्यमुक्तक के और जयदेव का गीतगोविन्द गेयमुक्तक के उदा-हरण हैं। पद्यों की संख्या के अनुसार भी मुक्तक के अनेक भेद हैं जैसे एक पद्य की स्फुट कविता मुक्तक, दो पद्यवाली युग्म या सन्दानितक, तीन पद्यवाली त्रिशेषक, पाँच पद्यवाली कलापक, पाँच से बारह या चौदह तक कुलक, शत पद्यवाली शतक आदि।

महाकाव्यों के प्रकार—पाश्चात्य समीक्षाशास्त्रियों ने महाकाव्य के दो रूप स्वीकार किए हैं: १. संकलनात्मक महाकाव्य (Epic of growth) और २. अलंकृत महाकाव्य। संकलनात्मक वे विकसनशील महाकाव्य हैं जिन्हें अनेक विद्वानों ने समय-समय पर सजाया, सम्हाला, परिवर्धित किया है और युगों के बाद उनका वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। वे प्राचीन कुछ गाथाओं के आधार से पल्लवित हुए हैं। उदाहरण के रूप में रामायण और महाभारत के नाम आते हैं।

अलंकृत महाकाव्य की रचना व्यक्ति विशेष द्वारा की जाती है। इसमें कवि कलापक्ष और भाषा-शैली की सुन्दरता पर विशेष ध्यान रखता है। अलंकृत महाकाव्यों का प्रादुर्भाव रामायण और महाभारत के पश्चात् ही हुआ है। इनमें उन दोनों की स्वाभाविकता नहीं पाई जाती। इनमें कलात्मकता, कृत्रिमता की ओर विशेष झुकाव है। अलंकृत महाकाव्यों के कथानकों और शैली पर रामायण और महाभारत का प्रभाव भी प्रायः देखा जाता है इसलिए उन्हें अनुकृत महा-काव्य भी कहते हैं।

जैन काव्य साहित्य में विकसनशील महाकाव्य नहीं है। अलंकृत या अनुकृत काव्यों का ही बाहुल्य है। अलंकृत महाकाव्यों को शैली की दृष्टि से तीन भेदों में

---

१. जैनों के विशाल कथाकाव्यों (कथासाहित्य) का विवेचन महाकाव्यों के वर्णन के बाद दिया जा रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभक्त किया जा सकता है : १. शास्त्रीय महाकाव्य, २. ऐतिहासिक महाकाव्य, ३. पौराणिक महाकाव्य। कुछ ऐसे अन्य महाकाव्य हैं जिनमें मिलीजुली शैलियों के भी दर्शन होते हैं। एक ओर शास्त्रीय शैली तो दूसरी ओर ऐतिहासिक शैली, जैसे हेमचन्द्राचार्य का कुमारपालचरित। इसी तरह एक ओर पौराणिक तो दूसरी ओर ऐतिहासिक, जैसे उदयप्रभसूरि का धर्माभ्युदयकाव्य। कुछ विद्वान् कतिपय पौराणिक महाकाव्यों में प्रेम तत्त्व और लौकिक आख्यानों की प्रचुरता के कारण उन्हें रोमांचक महाकाव्य कहते हैं पर यथार्थ में देखा जाय तो भारतीय कवियों ने उन कथाओं को भी जो कदाचित् लौकिक प्रेमकहानी है, अच्छी तरह पौराणिक रूप में प्रस्तुत किया है अतः वे पौराणिक महाकाव्य ही हैं।

१. **शास्त्रीय महाकाव्य**—ये तीन रूपों में पाये जाते हैं। प्रथम तो वे जो भामह, दण्डी आदि अलंकारविदों द्वारा निरूपित लक्षणग्रन्थों के पूर्व रचे गये थे। उनमें लक्षणशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य सम्बंधी सभी रूढ़ियों और नियमों का अन्धानुकरण नहीं किया गया। इसमें कवि द्वारा अपनी प्रतिभा का स्वाभाविक उपयोग हुआ है जिससे स्वाभाविकता के साथ कलात्मकता को भी स्थान मिला है। इन्हें काव्यशास्त्र की रीतियों से बँधा न होने के कारण रीतिमुक्त महाकाव्य कहते हैं। इस प्रकार के महाकाव्यों में अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरनन्द, कालिदास के रघुवंश और कुमारसंभव उल्लेखनीय हैं।

दूसरे प्रकार के रीतिबद्ध महाकाव्य हैं जो काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रणीत रीतियों से बद्ध हैं। इनमें कृत्रिमता, दुरुहता और पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रचुरता रहती है। ऐसे काव्यों में कथावस्तु की उपेक्षा और अलंकार, वाक्चातुर्य, पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं कल्पनाओं की भरमार रहती है। भारविकृत किरातार्जुनीयम्, माघकृत शिशुपालवध, वस्तुपालकृत नरनारायणानन्द आदि इस श्रेणी के महाकाव्य हैं।

तीसरे प्रकार के शास्त्रीय काव्यों को हम शास्त्रकाव्य और बह्वर्थक काव्य के रूप में देखते हैं। शास्त्रकाव्य में काव्य के साथ-साथ व्याकरण शास्त्र के नियमों का प्रदर्शन होने से उक्त नाम से कहते हैं, जैसे भट्टिकाव्य, हेमचन्द्र का द्वयाश्रयकाव्य आदि। बह्वर्थक महाकाव्यों में दो या दो से अधिक कथानकों को विविध अलंकारों द्वारा ऐसा बुना जाता है कि पढ़नेवालों को चमत्कार-सा लगता है। ऐसे काव्यों में धनंजय का द्विसंधान और हेमचन्द्र तथा मेघविजय के सप्तसंधान प्रभृति अनेक काव्य हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **ऐतिहासिक महाकाव्य**—रोम, यूनान, चीन जैसी इतिहास लेखन की परम्परा भारतीय इतिहास में यद्यपि नहीं देखी जाती पर भारतीय कवि उस शैली से एकदम अपरिचित हों यह नहीं कहा जा सकता। इतिहास को रखने की विविध शैलियों—अभिलेख, ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ, प्रतिमालेख, पट्टावलियाँ, तीर्थमालाएँ आदि के दर्शन हमें भारतीय साहित्य में प्रचुररूपेण होते हैं। ऐतिहासिक महाकाव्य के रूप में गौडवहो, भुवनाभ्युदय, नवसहसाङ्कचरित, विक्रमाङ्कदेवचरित, राजतरंगिणी, द्वयाश्रयकाव्य, सुकृतसंकीर्तन आदि भी उपलब्ध हैं। इन ऐतिहासिक महाकाव्यों को काव्यकारों ने अनेक पौराणिक, काल्पनिक एवं अनैतिहासिक घटनाओं से रंग दिया है, अतः उन्हें विशुद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य नहीं कह सकते।

३. **पौराणिक महाकाव्य**—पौराणिक महाकाव्यों के आदि उदाहरण रामायण और महाभारत हैं। रामायण की रचना की उत्तरावधि दूसरी शताब्दी ईस्वी और महाभारत के अन्तिम रूप धारण करने की उत्तरावधि पाँचवीं शताब्दी ईस्वी मानी जाती है। उनके बाद ही ६ठी शताब्दी में विमलसूरि की प्राकृत कृति पउमचरिउ, ७वीं शताब्दी में रविषेण का संस्कृत पद्मपुराण तथा बाद की शताब्दियों में सैकड़ों रचनाएँ इस शैली में लिखी गई हैं। जैन कवियों ने मध्यकाल में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में अनेक पौराणिक महाकाव्य निर्मित किये हैं। इन भाषाओं के महाकाव्यों ने अपने समकालीन अन्य भाषाओं के महाकाव्यों को प्रभावित किया है। अपभ्रंश के प्रेमाख्यानक काव्यों में जो रोमांचक तत्त्व प्राप्त होते हैं उनका समावेश भी इन पौराणिक महाकाव्यों में यत्र-तत्र हुआ है।

जैन महाकाव्यों का अन्य साहित्य में स्थान :

विश्व-साहित्य की श्रेणी में जैन महाकाव्यों की स्थिति जानने के लिए तथा भारतीय महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियों की समकोटि में उनकी देन को अवगत करने के लिए यह आवश्यक है कि पाश्चात्य और भारतीय महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियों पर एक दृष्टिपात कर लें।

पाश्चात्य साहित्य में महाकाव्य को 'एपिक' कहा जाता है। प्राचीन और अर्वाचीन काव्यमनीषियों ने अर्थात् अरस्तू, केम्स, हाब्स, विलियम रोज बैनिट, वाल्टेयर, एम० डिक्सन, एबरक्रोम्बी, टिलयार्ड, सी० एम० बाबरा, डब्ल्यू० पी० केर प्रभृति विद्वानों ने महाकाव्य की जो व्याख्याएँ और परिभाषाएँ निर्धारित की हैं उनसे निम्नांकित प्रमुख तत्त्वों की जानकारी होती है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. महाकाव्य का उद्देश्य महान् होता है, वह आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों क्षेत्रों को स्पर्श करता है। उसका उद्देश्य कथानक के माध्यम से शिक्षा देना, आनन्द प्रदान करना और नवीन मानव सत्यों का उद्घाटन कर नवीन मानव समाज का निर्माण करना है।

२. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रख्यात, विशाल एवं महत्त्वपूर्ण कथानक चुनना चाहिये जो कि परम्परा-प्राप्त कथाओं या ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हो।

३. उक्त उद्देश्यों का प्रतिनिधित्व ऐसे नायक द्वारा होता है जिसे महापुरुष, शूरवीर और विजयी होना चहिये। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह मानव ही हो, देवता आदि अलौकिक व्यक्ति भी नायक हो सकते हैं।

४. महाकाव्य में जीवन के विविध और समग्र रूप का चित्रण होना चाहिये। इस उद्देश्य के लिए महाकाव्य में गौणपात्रों की अवतारणा, विविध घटनाओं की सृष्टि, अवान्तर कथाओं की योजना आदि अनेक तत्त्वों के सम्मिश्रण से संघटित कथानक का निर्माण करना चाहिये।

५. महाकाव्य के कथानक की पूर्व और अपर घटनाओं को एक दूसरे से सम्बद्ध होना चाहिये। कथानक को अन्वितिपूर्ण, गतिशील और सुसंगठित होना चाहिये।

६. महाकाव्य में अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का समावेश होना सम्भव है। ईलियड, औडिसी, पैराडाइज लास्ट जैसे महाकाव्यों में भूत, प्रत, देवता आदि अतिप्राकृत पात्रों और उनके अलौकिक कार्यों का समावेश हुआ है।

७. महाकाव्य की शैली उदात्त, गम्भीर और मनोहारी होनी चाहिये।

८. महाकाव्य को छन्दोबद्ध रचना होना चाहिये। छन्द का प्रयोग वर्ण्य विषय के अनुकूल होना चाहिये तथा आदि से अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये।

भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य में निम्नलिखित तत्त्व होने चाहिये—

१. उसे सर्ग, आश्वास या लम्भकों से बद्ध होना चाहिये। सर्गों को न अधिक विस्तृत और न अधिक लघु होना चाहिये। महाकाव्य में कम-से-कम आठ सर्ग होने चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ और काम के फल को प्रदर्शित करना है।[१] इसलिए इसका कथानक विशाल होना चाहिये और किसी महती घटना पर आश्रित होना चाहिये।

३. महाकाव्य में इतिहास एवं पुराण से सम्बद्ध अथवा परम्परा की दृष्टि से प्रख्यात महापुरुषों का चरित्रचित्रण होना चाहिये। कथानक अनुत्पाद्य (इतिहास-पुराणाश्रित) तथा उत्पाद्य (कविकल्पनाजन्य) रीति से दो प्रकार का होता है। अनुत्पाद्य का केवल कथापंजर लेकर कवि अपनी कल्पना से महाकाव्य को सुगठित करता है।

४. कथानक का विस्तार संगठित और व्यवस्थित रूप से करने के लिए पाँच नाट्यसंधियों की योजना करनी चाहिये।

५. जीवन के व्यापक और गम्भीर अनुभवों का चित्रण करने के लिए महाकाव्य में अवान्तर कथाओं की योजना करनी आवश्यक है।

६. नायक के अतिरिक्त प्रतिनायक और गौणपात्रों की अवतारणा भी महाकाव्य में होनी चाहिये।

७. महाकाव्य में अतिप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का होना आवश्यक है। अलौकिक कार्य देवता, राक्षस, यक्ष, व्यन्तर आदि द्वारा ही नहीं बल्कि मनुष्यों और मुनियों द्वारा भी दिखाना आवश्यक है।

८. महाकाव्य में कविसम्प्रदाय-सम्मत रात्रि, प्रातःकाल, मध्याह्न, संध्या, षट्ऋतु, पर्वत, वन, उद्यान-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा तथा अन्य बातों का वर्णन होना चाहिये।

९. काव्य के आरम्भ में मंगलाचरण, वस्तु-निर्देश, सज्जन-प्रशंसा और दुर्जन-निन्दा होना आवश्यक है। काव्य के अन्त में हेमचन्द्राचार्य के मत से कवि को अपना उद्देश्य प्रकट करना चाहिये।

१०. महाकाव्य के मूल तत्त्व के रूप में रस का स्थान प्रमुख है। सभी आचार्यों ने महाकाव्य में नवरसों का विधान अनिवार्य माना है। विश्वनाथ ने रस का क्षेत्र सीमित करते हुए कहा है कि शृङ्गार, वीर और शान्त में से कोई एक रस प्रधान तथा अन्य रस गौण होना चाहिये।

---

१. महापुराणसम्बन्धिमहानायकगोचरम्।
त्रिवर्गफलसन्दर्भं महाकाव्यं तदिष्यते॥ आदिपुराण, १. ९९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. महाकाव्य के अनिवार्य तत्त्वों में अलंकार की गणना में सभी आचार्य एकमत नहीं हैं।

१२. महाकाव्य को छन्दोबद्ध होना आवश्यक है। कुछ आचार्यों के मत से सर्ग के अन्त में भिन्न छन्दों का प्रयोग करना चाहिये।

१३. महाकाव्य में उदात्त भाषा का प्रयोग होना चाहिये। उसे समस्त रीतियों, गुणों और अलंकार से युक्त होना चाहिये। महाकवि का भाषा पर असाधारण अधिकार होना चाहिये।

१४. विश्वनाथ के अनुसार महाकाव्य का नामकरण कवि, कथावस्तु अथवा चरितनायक के नाम पर होना चाहिये।

१५. वाग्भट के अनुसार प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद्य कवि द्वारा अभिप्रेत श्री, लक्ष्मी आदि शब्दों से अंकित रहना चाहिये।

पाश्चात्य और भारतीय महाकाव्यविषयक मान्यताओं पर यदि सरसरी दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि उनमें विशेष अन्तर नहीं है। फिर भी भारतीय काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य को कविपरम्परा-सम्मत नियमों से कसने की कोशिश की है। वे मानते हैं कि महाकाव्य में सुनिश्चित वर्ण्य विषयों का वर्णन अवश्य होना चाहिये। महाकाव्य के आरम्भ में मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन-दुर्जन चर्चा, कवि द्वारा आत्मलाघव प्रदर्शन आदि तथा महाकाव्य के अन्त में गुरु-परम्परा की प्रशस्ति आदि होना चाहिये। महाकाव्य को सर्गबद्ध होना चाहिये और सर्गों की संख्या कम-से-कम आठ होनी चाहिये तथा सर्ग के अन्तिम पद्य में कवि द्वारा अभिप्रेत शब्द की मुद्रा लगानी चाहिये।

महाकाव्य के उपर्युक्त तत्त्वों के प्रकाश में जैन महाकाव्यों में जो समानता और विशेषता है उसे निम्न प्रकार से देख सकते हैं—

१. जैन महाकाव्य सर्ग के अतिरिक्त, आश्वासक, परिच्छेद, उत्साह, कांड, पर्व, लम्भक, प्रकाश आदि में विभक्त हैं।

२. प्रायः सभी महाकाव्यों का प्रारम्भ मंगलाचरण, वस्तुनिर्देश, सज्जन-दुर्जन-चर्चा, आत्मलघुता, पूर्वाचार्यों के स्मरण से होता है और अधिकांश जैन-काव्यों के अन्त में कवि का परिचय और उसकी गुरु-परम्परा दृष्टिगत होती है।

३. उनका कथानक इतिहास, पुराण, दन्तकथा, प्राचीन महाकाव्य, समसामयिक घटना या व्यक्ति पर आधारित है। उनका कथानक व्यापक और सुसंगठित है। अधिकांश महाकाव्यों में पाँच नाट्यसंधियों की योजनापूर्वक कथानक का विस्तार किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. कर्मफल बताने के लिए प्रायः सभी जैन महाकाव्यों में पूर्व भव की कथाओं एवं अवान्तर कथाओं की योजना की गई है।

५. जैन महाकाव्यों में कविसमय-सम्मत वर्ण्य-विषयों का वर्णन अर्थात् संध्या, रात्रि, सूर्योदय, ऋतु, वन, पर्वत, जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन कभी मूल-कथा के साथ तो कभी अवान्तर कथाओं के साथ दिया गया है। अमरचन्द्रसूरि ने तो वर्ण्य-विषयों के उपवर्ण्य विषय को बताकर वस्तुवर्णन प्रसंग को बढ़ा दिया है।

६. जैन काव्यों ने रस को मूलतत्त्व के रूप में माना है। अधिकांश जैन काव्यों में शान्त रस की ही प्रधानता है; शृंगार, वीर आदि को गौण रूप दिया गया है।

७. जैन महाकाव्यों में आवश्यकतानुसार अलंकारों का उपयोग हुआ है। वाग्भट ने अलंकारों को महाकाव्य के प्रमुख लक्षणों में नहीं माना है।

८. जैन महाकाव्यों में अनेकों की भाषा-शैली प्रौढ़ है पर अधिकांश पौराणिक काव्यों की भाषा गरिमापूर्ण नहीं है। उनमें प्राकृत, अपभ्रंश, देशी शब्दों के संमिश्रण दिखते हैं।

९. जैन महाकाव्यों का उद्देश्य विशेषकर धर्म के फल को प्रदर्शित करना है फिर भी उनमें त्रिवर्ग धर्म, अर्थ और काम के फल की चर्चा है और अन्तिम फल मोक्षप्राप्ति बताया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण २

पौराणिक महाकाव्य

जैन पौराणिक महाकाव्यों की प्रमुख विशेषताएँ और प्रवृत्तियाँ :

१. जैन पौराणिक महाकाव्यों की कथावस्तु जैनधर्म के शलाकापुरुषों—तीर्थंकर, राम, कृष्ण आदि ६३ महापुरुषों के जीवनचरितों को लेकर निबद्ध की गई है। इनके अतिरिक्त अन्य धार्मिक पुरुषों के जीवनचरित भी वर्णित हुए हैं। कभी-कभी किसी व्रत, तीर्थ, पंच नमस्कार आदि के माहात्म्य को प्रदर्शित करने के लिए भी काव्य रचना की गई है। इन काव्यों को पुराण, चरित या माहात्म्य नाम से भी कहते हैं।

२. इन जीवनचरितों का उद्गम जैन आगमों और भाष्यों तथा प्राचीन पुराणों में है। कथानक में कल्पना द्वारा भी परिवर्तन करने की चेष्टा नहीं की गई है।

३. ये सभी धार्मिक काव्य हैं। कथा के माध्यम से धर्मोपदेश देना इनका उद्देश्य है। इसलिए इनमें काव्यरस गौण और धर्मभाव प्रधान है। आत्मज्ञान, संसार की नश्वरता, विषय-त्याग, वैराग्यभावना, श्रावकों के आचार आदि का प्रतिपादन तथा नैतिक जीवन की उन्नति के लिए आदर्शों की योजना इन कृतियों के मुख्य विषय हैं।

४. कर्मफल की अनिवार्यता दिखाने के लिए चरितनायकों एवं अन्य पात्रों के पूर्वभवों की कथा मूल कथा के आवश्यक अंग के रूप में कही गई है।

५. अनेक काव्यों में स्तोत्रों की योजना की गई है जिनमें तीर्थंकरों या पौराणिक पुरुषों या मुनियों की स्तुति की गई है। किसी-किसी काव्य में तीर्थ-स्थानों और व्रतों का माहात्म्य भी वर्णित है।

६. कई काव्यों में ब्राह्मण, बौद्ध, चार्वाक आदि दर्शनों के सिद्धान्तों का खण्डन और जैन दर्शन का मण्डन है।

७. कुछ काव्य भावात्मक काम, मोह, अहंकार, अज्ञान, रागादि तत्त्वों को प्रतीक योजना द्वारा पात्र रूप से प्रस्तुत करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. अधिकांश काव्यों में मूल कथा के साथ अनेक अवान्तर कथाएँ दी गई हैं, जिनसे कथानक में शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। फिर भी इन अवान्तर कथाओं में प्रचलित लोककथाओं के प्रचुरमात्रा में दर्शन होते हैं। ये अवान्तर कथाएँ कभी-कभी एक तृतीयांश तो कभी आधे से भी अधिक भाग को घेरे रहती हैं।

९. रचनाविन्यास में प्रारम्भ प्रायः एक-सा दिखायी पड़ता है—जैसे तीर्थंकरों की स्तुति, पूर्व कवियों और विद्वानों का स्मरण, सज्जन-दुर्जन चर्चा, देश, नगर, राजा, रानी का वर्णन, तीर्थंकर या मुनि का नगर के बाहर उद्यान में आना, राजा या नगरवासियों का वहाँ जाना, उपदेश सुनना और संवाद रूप में पूरी कथा का वर्णन।

१०. शास्त्रीय महाकाव्योचित वर्ण्य विषयों में नदी, पर्वत, सागर, प्रातः, संध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, सुरापान, सुरति, जलक्रीड़ा, उद्यानक्रीड़ा, वसन्तादि ऋतु, शारीरिक सौन्दर्य, जन्म, विवाह, युद्ध और दीक्षा आदि के वर्णन से समग्र जीवन का चित्र उपस्थित करना।

११. इन महाकाव्यों में अलौकिक एवं अप्राकृत तत्त्वों की प्रधानता दिखायी पड़ती है। ये दिव्यलोकों, दिव्यपुरुषों और दिव्ययुगों की कल्पना से भरे हैं, साथ ही समय-समय पर विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व, देव, राक्षस आदि की उपस्थिति से पात्रों की सहायता की गई है। उनकी उपस्थिति का सम्बन्ध पूर्व भवों के कर्मों से जोड़कर उस अस्वाभाविकता को दूर करने का प्रयत्न किया गया है।

१२. इनमें अनेक प्रेमाख्यानक काव्य हैं जिनमें प्रेम, मिलन, दूतप्रेषण, सैनिक अभियान, नगरावरोध, युद्ध और विवाह को महत्त्व दिया गया है।

१३. पौराणिक महाकाव्यों में महाकाव्य की परम्परा के विपरीत कहीं-कहीं क्षत्रियकुलोत्पन्न धीरोदात्त नृप को नायक न बनाकर मध्यम श्रेणी के वणिक् आदि पुरुषों को और कहीं स्त्री को प्रमुख पात्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

१४. ये काव्य रस की दृष्टि से अधिकांश में शान्त रस पर्यवसायी हैं। यद्यपि इनमें आवश्यकतानुसार श्रृंगार, वीर, रौद्र, भयानक रसों का वर्णन है पर प्रधानता शान्त रस को दी गई है। जीवन की अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त करने के बाद भी अन्त में किसी मुनि के उपदेश-श्रवण द्वारा जीवन और संसार से विरक्ति दिखाना, संक्षेप में यही सभी पौराणिक महाकाव्यों का लक्ष्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. शास्त्रीय नियमों के अनुसार 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' अर्थात् महाकाव्य को सर्गबद्ध होना आवश्यक है। अधिकांश पौराणिक महाकाव्य सर्गबद्ध हैं। किन्तु कुछ महाकाव्यों की कथा का विभाजन उत्साह, पर्व, लम्भक आदि नामों से हुआ है।

१६. ये महाकाव्य शिक्षित और पण्डित वर्ग की अपेक्षा जनसाधारण को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं। इसलिए इनकी भाषा सरल और स्वच्छन्द है। १३वीं-१४वीं शताब्दी तथा उसके आगे के काव्यों में मुहावरों, लोकोक्तियों तथा देशज शब्दों के प्रयोग से भाषा व्यावहारिक एवं बोल-चाल जैसी हो गई है।

१७. इन महाकाव्यों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग अधिक हुआ है। अन्य छन्दों में उपजाति, मालिनी, वसन्ततिलका आदि प्रमुख छन्दों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। इनमें अनेक प्रकार के अर्धसम और विषम वर्णिक छन्दों तथा अप्रचलित छन्दों का प्रयोग भी हुआ है जिनमें षट्पदी, कुण्डलिक, आख्यानकी, वैतालीय, वेगवती के नाम उल्लेखनीय हैं। वर्णिक छन्दों में छन्द-शास्त्र के नियम के अनुसार जहाँ-जहाँ यति का विधान है वहाँ अन्त्यानुप्रास के प्रयोग द्वारा छन्द को नवरूपता प्रदान की गई है। कई महाकाव्यों में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। किन्तु कहीं-कहीं इन छन्दों में अन्त्यानुप्रास के प्रयोग से छन्दों में गेयता का गुण अधिक आ गया है और लय में गतिशीलता आ गई है। यह अन्त्यानुप्रास प्रत्येक चरण के अन्त में ही नहीं अपितु चरण के मध्य में भी पाया जाता है।

प्रतिनिधि रचनाएँ और उनपर आधारित संक्षिप्त कृतियाँ :

जैन पौराणिक महाकाव्यों का परिचय देने के क्रम में हमारी पद्धति यह है कि सर्व प्रथम हम उन प्रतिनिधि रचनाओं का विवेचन करेंगे जो उत्तरवर्ती पौराणिक काव्यों के आधार हैं, स्रोत हैं, उपादान हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि रचना के साथ उनके आधार पर रची संक्षिप्त कृतियों का भी विवरण दिया जायगा ताकि एक-एक का चित्र सामने आता जाय। इसके बाद अलग-अगल तीर्थंकरों एवं अन्य शलाका पुरुषों के चरितों का विवरण दिया जायगा और इसी तरह अन्य प्रभावक आचार्यों और पुरुषों का भी।

जैन महाकाव्यों की अनेक प्रतिनिधि रचनाएँ आज तक अनुपलब्ध हैं। दाक्षिण्यांक आचार्य उद्योतन सूरि ने अपनी 'कुवलयमाला' कथा की प्रस्तावना में पादलिप्त की तरंगवती, षट्पर्णक कवियों की रचना गाथाकोश, विमलांक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पउमचरियम्, देवगुप्त के सुपुरुषचरित, हरिवर्ष के हरिवंशोत्पत्ति, सुलोचना-कथा, राजर्षि प्रभंजन का यशोधरचरित आदि अनेक कवियों और रचनाओं का उल्लेख किया है उनमें से कुछ ही मिल सकी हैं और अनेकों अनुपलब्ध हैं। इसी तरह संघदासगणि का वसुदेवहिण्डी ग्रन्थ खण्डित मिला है। भद्रबाहुकृत वसुदेवचरित का उल्लेख भर मिलता है। कवि परमेष्ठिकृत 'वागर्थसंग्रह' तथा चतुर्मुख का 'पउमचरिउ' और हरिवंशपुराण आज तक अनुपलब्ध है। जो उपलब्ध हैं उन्हीं का परिचय प्रस्तुत किया जायगा।

भारतीय साहित्य में कुछ ऐसे राष्ट्रीय चरित्र हैं जो सभी वर्गों को रुचिकर हैं। राम और कृष्ण तथा कौरव-पाण्डवों के चरित्र इसी प्रकार के हैं। इनकी कथावस्तु को लेकर रामायण, महाभारत और हरिवंशपुराण की रचना हुई है। वाल्मीकि का रामायण आदिकाव्य माना जाता है। जैनों के पौराणिक महाकाव्य भी इन्हीं राष्ट्रीय चरित्रों को लेकर प्रारंभ होते हैं। इस क्रम में वि० सं० ५३० में रचित विमलसूरि का पउमचरियं प्राकृत का प्रथम जैन महाकाव्य है। उसके आधार पर कतिपय संस्कृत-प्राकृत रचनाएँ भी लिखी गई हैं। इसी तरह कौरव पाण्डवों के चरित को लेकर जिनसेन ने शक सं० ७०५ में हरिवंशपुराण की रचना की। उसके अनुकरण पर बाद की शताब्दियों में प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत में कई रचनाएँ बनी। रामायण और महाभारत विषयक रचनाओं के बाद काल की दृष्टि से महापुराणों का क्रम आता है जिनमें त्रिषष्टिशलाका[1] पुरुषों के चरित वर्णित हैं। इनका प्रारंभ जिनसेन-गुणभद्र के 'महापुराण-उत्तर-पुराण (९वीं श० का उत्तरार्ध) से होता है। उनके आधार पर कई रचनाएँ उसी

१. इनका उल्लेख जैनागमों में अर्थात् समवायांग, ज्ञाताधर्मकथा, कल्पसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, आवश्यकनिर्युक्ति-चूर्णि, विशेषावश्यकभाष्य और वसुदेवहिण्डी में मिलता है। वहाँ इन्हें 'उत्तम पुरुष' की संज्ञा दी है। किन्तु बाद में 'शलाका पुरुष' संज्ञा विशेष रूढ़ हुई। इन शलाका पुरुषों की संख्या जिनसेन और हेमचन्द्र ने ६३ दी है। समवायांग (सू० १३२) में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ बलदेव को ही 'उत्तम पुरुष' मान ५४ संख्या दी है पर उनमें ९ प्रतिनारायणों को जोड़ ६३ की संख्या बनती है। भद्रेश्वर ने अपनी कहावली में ९ नारदों की संख्या जोड़कर शलाका पुरुषों की संख्या ७२ दी है। हेमचन्द्र ने 'शलाकापुरुष' का अर्थ 'जातरेखाः' किया और भद्रेश्वरसूरि ने 'सम्यक्त्वरूप शलाका से युक्त' अर्थ किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम पर या पुराणसारसंग्रह या चतुर्विंशतिजिनेन्द्रचरित्र, त्रिषष्टिस्मृति आदि नाम से भी बनी। इस विषय का प्राकृत ग्रन्थ 'चउपन्नमहापुरिसचरियं' और 'कहावलि' भी उल्लेखनीय है। संस्कृत में विरचित हेमचन्द्राचार्य का 'त्रिषष्टि-शलाकापुरुषचरित' महान् आकर ग्रन्थ है। उसमें ही अनेक पौराणिक महाकाव्यों का समावेश है। उसके लघुसंस्करण रूप कतिपय रचनाएँ मिली हैं। उनका क्रमशः विवेचन प्रस्तुत किया जायगा।

रामायण, महाभारत तथा महापुराणों के पश्चात् अलग-अलग तीर्थंकरों के जीवनचरित अधिक संख्या में पाये जाते हैं जो १० वीं से १८ वीं शताब्दी तक लिखे गए थे। उनका विवेचन भी क्रमशः प्रस्तुत किया जायगा।

राम-विषयक पौराणिक महाकाव्य :

पउमचरिय—प्राकृत भाषा में निबद्ध यह[1] कृति जैन पुराण साहित्य में सबसे प्राचीन कृति है। इसमें जैन मान्यतानुसार रामकथा का वर्णन है। यह ग्रन्थ ११८ अधिकारों में विभक्त है जिनमें कुल मिलाकर ८६५१ गाथाएँ हैं जिनका मान १२ हजार श्लोक प्रमाण है।

इसमें राम का नाम पद्म दिया गया है, वैसे राम नाम भी ग्रन्थ में व्यवहृत हुआ है। इस ग्रन्थ के रचने में ग्रन्थकार का मूल उद्देश्य यह था कि वह प्रचलित राम-कथा के ब्राह्मण रूप के समान अपने सम्प्रदाय के लोगों के लिए जैन रूप प्रस्तुत करे। कितनी ही बातों में इसकी कथा वाल्मीकि रामायण से भिन्न है। लगता है कि विमलसूरि के सम्मुख रामकथा सम्बन्धी कुछ ऐसी सामग्री भी उपस्थित थी जो वाल्मीकि रामायण में उपलब्ध नहीं थी या कुछ भिन्न थी, जैसे राम का स्वेच्छापूर्वक वनवास, स्वर्णमृग की अनुपस्थिति, सीता का भाई भामण्डल, राम और हनुमान के अनेक विवाह, सेतुबंध का अभाव आदि। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें रावण, कुम्भकर्ण और सुग्रीव, हनुमान आदि राक्षसों और वानरों को दैत्यों और पशुओं के रूप में चित्रित नहीं किया बल्कि उन्हें सुसंस्कृत मनुष्य जाति के रूप में दिखाया गया है।

---

१. प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६२. ग्रन्थ का नाम प्रत्येक सर्ग के अन्त में 'पउमचरियम्' दिया हुआ है। इसे यदाकदा राघवचरित, रामदेवचरित और रामारविन्दचरित भी कहा गया है। इसके अतिरिक्त इसकी पुराण संज्ञा भी दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थकर्त्ता ने अपने पूर्व स्रोतों को सूचित करते हुए कहा है कि उन्हें यह कथानक 'पूर्व' नामक आगम में कथित एवं नामावलिनिबद्ध तथा आचार्य परम्परागत रूप से मिला था। जिन सूत्रों के आधार से यह ग्रन्थ रचा गया है, उनका निर्देश ग्रन्थ के प्रथम उद्देश में किया गया है फिर भी ग्रन्थ रचना की प्रेरणा में जो स्पष्टीकरण दिया गया है उससे संकेत मिलता है कि लेखक के सम्मुख वाल्मीकि रामायण अवश्य थी और उसी से प्रेरणा पाकर उन्होंने अपने पूर्व साहित्य और गुरु परम्परा से प्राप्त सूत्रों को पल्लवित कर यह ग्रन्थ लिखा।

लेखक के अनुसार इसकी कथावस्तु सात अधिकारों में विभक्त है—स्थिति, वंशोत्पत्ति, प्रस्थान, रण, लवंकुशोत्पत्ति, निर्वाण और अनेक भव। कथानक जैन मान्यतानुसार सृष्टि के वर्णन के साथ प्रारंभ होता है और प्रथम २४ उद्देशों में ऋषभादि तीर्थंकरों के वर्णन के साथ इक्ष्वाकुवंश, चन्द्रवंश की उत्पत्ति बतलाते हुए विद्याधरवंशों में राक्षसवंश और वानरवंशों का परिचय कराया गया है। राम के जन्म से उनके लंका से लौट कर राज्याभिषेक तक अर्थात् रामायण का मुख्य भाग २५ से ८५ तक के ६१ उद्देश्यों या पर्वों में दिया गया है। ग्रन्थ के शेष भाग में सीता-निर्वासन, लवांगकुश उत्पत्ति, देशविजय व समागम, पूर्वभवों का वर्णन आदि विस्तारपूर्वक देकर अन्त में राम को केवलज्ञान की उत्पत्ति और निर्वाण प्राप्ति के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है।

रामचरित पर यह एक ऐसी प्रथम जैन रचना है जिसमें यथार्थता के दर्शन और अनेक उटपटांग तथा अतार्किक बातों का निरसन हुआ है। इसमें पात्रों के चरित्र-चित्रण में परिस्थितिवश उदात्त भूमिका प्रस्तुत की गई है और पुरुष तथा स्त्री चरित्र को ऊँचा उठाया गया है। इसमें कैकेयी को ईर्ष्या जैसी दुर्भावना के कलंक से बचाया गया है। दशरथ ने वृद्धत्व के कारण जब राज्य छोड़ वैराग्य धारण करने का विचार किया तभी गंभीर-प्रकृति भरत को भी वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया। कैकेयी के समक्ष पति एवं पुत्र दोनों के वियोग की समस्या आ पड़ी और उसने भरत को गृहस्थ जीवन में बाँधे रखने की भावना से उसे राज्यपद देने के लिए दशरथ से वर माँगा। राम स्वेच्छा से (न कि दशरथ की आज्ञा से) वन जाते हैं। राम को लौटाने के लिए स्वयं कैकेयी वन में जाती है और राम से कहती है कि भरत को अभी बहुत कुछ सीखना है। राज्य तो तुम्हीं को करना है। अकस्मात् जो मुझसे बन पड़ा उसे मत सोचो, क्षमा कर दो और अयोध्या लौट चलो। इसी तरह बालि और रावण का चरित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी यहाँ उदात्त दिखाया गया है। रावण धार्मिक और व्रती पुरुष के रूप में अंकित किया गया है। वह सीता का अपहरण तो कर ले गया परन्तु उसने उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार करने का विचार या प्रयत्न नहीं किया क्योंकि उसने किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध सम्भोग न करने का व्रत ले रखा था। वह सीता को लौटा देना चाहता था पर लोकदृष्टि में डरपोक समझे जाने के भय से ऐसा न कर सका। उसका विचार युद्ध में राम-लक्ष्मण पर विजय प्राप्त करने के बाद वैभव के साथ सीता को वापस करने का था।

पउमचरियं रामचरित के अतिरिक्त अनेक कथाओं का आकर है। इसमें अनेकों अवान्तर कथाएँ दी गई हैं तथा परम्परागत अनेकों कथाओं को यथोचित परिवर्तन के साथ प्रसंगानुकूल बनाया गया है और कुछ नवीन कथाओं की सृष्टि की गई है।

यदि वाल्मीकि रामायण संस्कृत साहित्य का आदि काव्य है तो पउमचरियं प्राकृत साहित्य का। इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है। इसमें देश, नगर, नदी, समुद्र, अटवी, ऋतु, शरीर सौन्दर्य के वर्णन महाकाव्यों के समान हैं। शृङ्गार, वीर और करुण रसों की अच्छी अभिव्यक्ति भी स्थान-स्थान पर हुई है तथा उचित स्थानों पर भयानक, रौद्र, वीभत्स, अद्भुत एवं हास्य रसों के उदाहरण भी मिलते हैं। वर्णन के अनुसार भाषा ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणयुक्त होती गई है। उपमादि विविध अलंकारों के प्रयोग भी प्रचुर मात्रा में दिखायी देते हैं तथा गाथा छन्द के अतिरिक्त उद्देशों के मध्य में संस्कृत के छन्द उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वसन्ततिलका, रुचिरा, शार्दूलविक्रीडित आदि का प्राकृत भाषा में प्रयोग किया गया है।

पउमचरियं के अन्तः परीक्षण मे हमें गुप्त-वाकाटक युग की अनेक प्रकार की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री मिलती है। इसमें वर्णित अनेक जन-जातियों, राज्यों और राजनैतिक घटनाओं का तत्कालीन भारतीय इतिहास से सम्बन्ध स्थापित किया गया है। दक्षिण भारत के कैलकिलों और श्रीपर्वतीयों का उल्लेख है तथा आनन्दवंश और क्षत्रप रुद्रभूति का भी उल्लेख है। उज्जैन और दशपुर राजाओं के बीच संघर्ष, गुप्त राजा कुमारगुप्त और महाक्षत्रपों के बीच संघर्ष की सूचना देता है। इसमें नंद्यावर्तपुर का उल्लेख है जिसका वाकाटकों की राजधानी नन्दिवर्धन से साम्य स्थापित किया जाता है।[1]

---

१. इन आधारों से इसके रचनाकाल का निर्धारण किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म के सिद्धान्त निरूपण की दृष्टि से पउमचरियं ऐसी रचना है जो साम्प्रदायिकता से परे है। ग्रन्थ में वर्णित अनेक तथ्यों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इसमें श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय सभी सम्प्रदायों का समावेश हो गया है। संभवतः विमलसूरि उस युग के थे जब जैनों में साम्प्रदायिकता का विभाग गहरा न हो सका था। उनपर साम्प्रदायिकता का कोई प्रभाव नहीं है। उन्होंने परम्परा से जो सुना, पढ़ा और देखा उसीका वर्णन किया है भले वह श्वेताम्बर या दिगम्बर दोनों परम्पराओं के प्रतिकूल बैठे।

रचयिता और रचना-काल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्त्ता नाइलकुल वंश के विमलसूरि थे जो कि राहु के प्रशिष्य और विजय के शिष्य थे। इसके अतिरिक्त कवि के जीवन पर विशेष प्रकाश नहीं मिलता है।

प्रशस्ति में एक गाथा से पता चलता है कि यह कृति ५३० वीर निर्वाण संवत् में अर्थात् ई० सन् ४ में लिखी गई थी। पर इस पर पाश्चात्य विद्वान् ह० याकोबी और जैन विद्वान् मुनि जिनविजय, मुनि कल्याणविजय और पं० परमानन्द शास्त्री तथा जैनेतर विद्वान् के० एच० ध्रुव ने शंका प्रकट की है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिस नाइल कुल के ये आचार्य हैं वह नाइली शाखा के रूप में वी० नि० सं० ५८० या ६०० के लगभग वज्र (वी० नि० ५७५) के शिष्य वज्रसेन ने स्थापित की थी और उस शाखा में उत्पन्न होने से ये अवश्य कई पीढ़ी बाद हुए हैं। इसलिए वर्ष ५३०, वीर नि० न होकर बाद का कोई संवत् होना चाहिए। याकोबी ने इसे तृतीय शताब्दी की रचना माना है[1] और डा० के० आर० चन्द्र ने इसे वि० सं० ५३० की कृति माना है।[2]

पउमचरियम् के अतिरिक्त विमलसूरि की कुछ अन्य रचनायें बतायी जाती हैं। पर उनका कर्तृत्व विवादास्पद है। 'प्रश्नोत्तरमालिका' एक ऐसी रचना है जिसे बौद्ध, ब्राह्मण और जैन अपने-अपने मत की बताते हैं। हरिदास शास्त्री और कुछ अन्य विद्वानोंकी मान्यता है कि यह विमलसूरि द्वारा रचित है। कुछ विद्वान् इसे राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष (९वीं शता०) की रचना बताते हैं।[3]

---

१. पउमचरियम्, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६२, देखें—डा० वी० एम० कुलकर्णी द्वारा लिखित प्रस्तावना, पृ० ८-१५.

२. ए क्रिटिकल स्टडी आफ पउमचरियं, पृ० १७.

३. पउमचरियं की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० १७, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, १९६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुवलयमाला की प्रस्तावना गाथाओं में विमलांक विमलसूरि को स्मरण किया गया है और उनकी 'अमृतमय सरस प्राकृत' की प्रशंसा की गई है (कृति पउमचरियम् का उल्लेख नहीं है पर लक्ष्य वही है)। एक अन्य गाथा—यथा[1]

बुहयणसहस्सदयियं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं।
वंदामि वंदियंपि हु हरिवरिसं चेय विमलपयं ।।

(जिसका अर्थ डा० आ० ने० उपाध्ये ने यह किया है : 'प्रथम हरिवंशोत्पत्तिकारक हरिवर्ष कवि की बुधजनों में प्रिय और विमल अभिव्यक्ति (पदावली) के कारण बन्दना करता हूँ') में कुछ शब्दों का परिवर्तन कर कुछेक विद्वान् कल्पना करते हैं कि इससे 'हरिवंशचरियं के प्रथम रचयिता विमलसूरि' की ध्वनि निकलती है। पर उक्त गाथा से विमलसूरि का हरिवंश कर्तृत्व सिद्ध नहीं होता है। डा० उपाध्ये ने उक्त गाथा की द्वितीय पंक्ति में 'हरिवरिसं चेय विमल पयं' के स्थान में 'हरिवंसं चेय विमलपयं' के रूप में परिवर्तन करने में आपत्ति उठायी है[2] कि उक्त गाथा में हरिवंश शब्द की पुनरावृत्ति हो जाती है। दूसरी बात यह कि उद्योतनसूरि ने प्रस्तावना गाथाओं में काल-क्रम से अजैन और जैन (श्वेता० तथा दिग०) कवियों का स्मरण किया है। उक्त क्रम में विमलांक विमल के बाद तिपुरिसयसिद्ध 'सुपुरुषचरित' के रचयिता गुप्तवंशी देवगुप्त, फिर प्रथम हरिवंशोत्पत्तिकारक हरिवर्ष, इसके बाद सुलोचनाकथाकार, यशोधरचरितकार, प्रभंजन, वरांगचरितकार जटिल, पद्मचरितकार रविषेण तथा समरादित्यकथाकार एवं अपने गुरु हरिभद्र का स्मरण किया है। यदि विमलसूरि की हरिवंस नाम से कोई रचना होती तो उसका उल्लेख विमल के क्रम में होना चाहिए था। पर ऐसा नहीं हुआ है। वहाँ तो एक कवि और उसकी रचना का अन्तराल देकर हरिवंश का उल्लेख हुआ है। यह 'हरिवंसुप्पत्ति' ग्रन्थ प्राकृत में या संस्कृत में भी हो सकता है क्योंकि प्रस्तावना गाथाओंमें प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं के कवियों को स्मरण किया गया है इसलिए उक्त गाथा से विमलसूरि कृत 'हरिवंसचरियं' की ध्वनि निकालना संभव नहीं दिखता।

सीताचरित्र—इसमें ४६५ प्राकृत गाथाओं में भुवनतुंगसूरि ने सीता का चरित्र लिखा है।[3] सीताचरित्र पर प्राकृत में अज्ञात कर्तृक दो और रचनायें

१. कुवलयमाला (सि० जै० ग्र० ४५), पृ० ३.
२. वही, भाग २, प्रस्तावना, पृ० ७६ और नोट्स पृ० १२६.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलती हैं। एक का ग्रंथाग्र ३१०० या ३४०० है। दूसरे की हस्त० प्रति में सं० १६०० दिया गया है।[1]

रामलक्ष्मणचरित्र—इसे भी २०८ गाथाओं में भुवनतुंगसूरि ने सीताचरित्र के रचना-क्रम में लिखा है।[2]

पद्मचरित या पद्मपुराण—इस चरित[3] की कथावस्तु आठवें बलभद्र पद्म (राम), आठवें नारायण लक्ष्मण, प्रतिनारायण रावण तथा उनके परिवारों और सम्बद्ध वंशों का चरित वर्णन करना है। यह रचना संस्कृत में है। इसमें १२३ पर्व हैं जिनमें अनुष्टुम् मान से १८०२३ श्लोक हैं। संस्कृत जैन कथा साहित्य में यह सबसे प्राचीन ग्रन्थ है।

इसमें अधिकतर अनुष्टुम् छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक पर्व के अन्त में छन्द परिवर्तन कर विविध वृत्तों का प्रयोग किया गया है।, ४२वें पर्व की रचना नाना छन्दों में की गई है। ७८वें पर्व की विशेषता यह है कि उसमें वृत्तगन्धि गद्य का भी प्रयोग हुआ है जिसमें भुजंगप्रयात छन्द का आभास मिलता है।

ग्रन्थकार ने रचना के आधार की सूचना देते हुए कहा है कि इसका विषय श्री वर्धमान तीर्थंकर से गौतम गणधर को और उनसे धारिणी के सुधर्माचार्य को प्राप्त हुआ। फिर प्रभव को और बाद में श्रेष्ठ वक्ता कीर्तिधर आचार्य को प्राप्त हुआ। तदनन्तर उनसे लिखित को आधार बना रविषेण ने यह ग्रन्थ प्रकट किया।[4] अपभ्रंश पउमचरिउ के रचयिता स्वयम्भू ने भी अनुत्तरवाग्मी कीर्तिधर का उल्लेख किया है, पर इनकी कृति अबतक उपलब्ध नहीं है और न ही कीर्तिधर की आचार्य परम्परा।

प्राकृत के 'पउमचरियम्' की कथावस्तु के विन्यास के समान ही इस कृति में वस्तु विन्यास दिखाई पड़ता है। विषय और वर्णन प्रायः ज्यों के त्यों तथा पर्व-प्रतिपर्व और प्रायः लगातार अनेक पद्य-प्रतिपद्य मिल जाते हैं। इससे लगता है कि यह ग्रन्थ विमलसूरिकृत पउमचरियं को संमुख रख कर रचा गया हो,

१. वही, पृ० ४४२.

२. वही, पृ० ३३१.

३. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से ३ भागों में सानुवाद प्रकाशित, सन् १९५८-५९; मूल—मा० दि० जै० ग्रन्थमाला, बम्बई, ३ भाग, सन् १९८५; जि० र० को०, पृ० २३३.

४. पर्व १२३, प० १६६.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

और अनेक अंशों में उसका छायानुवाद हो। फिर भी दोनों ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से विद्वद्वर्ग ने अनेकविध व्यतिक्रम, परिवर्त्तन, परिवर्धन, विभिन्न सैद्धान्तिक मान्यताओं प्रभृति तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया है। इसके अतिरिक्त रविषेण के कई विवेचन इतने पल्लवित और परिवर्धित हैं कि संस्कृत की यह कृति प्राकृत पउमचरियम् से डेढ़ गुने से भी अधिक हो गई है। फिर भी विषय की दृष्टि से इसमें कोई नवीन कथावस्तु का समावेश नहीं है।[१]

इन दोनों की तुलना से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि रविषेण ने जब कि इस कृति को पूर्णतः दिग० परम्परा के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया है तो पउमचरियम् साम्प्रदायिकता से परे है या श्वेताम्बर-दिग० मान्यता से अलग किसी तीसरी परम्परा यापनीय की कृति है।

जैन साहित्य में रामकथा के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप तो विमलसूरि के पउमचरियं में, प्रस्तुत पद्मचरित में और हेमचन्द्रकृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में तथा दूसरा गुणभद्र के उत्तरपुराण, पुष्पदन्तकृत महापुराण एवं कन्नड चामुण्डरायपुराण में। पहला रूप अधिकांशतः वाल्मीकि रामायण के ढंग का है जब कि दूसरा रूप विष्णुपुराण तथा बौद्ध दशरथजातक से मिलता-जुलता है।[२]

ग्रन्थकार-परिचय और रचना-काल—इस कृति के रचयिता का नाम रविषेण है। इन्होंने पद्मचरित के १२३वें पर्व के १६७ वें पद्य के उत्तरार्ध में अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख इस प्रकार किया है—इन्द्रगुरु के शिष्य दिवाकर यति, दिवाकर यति के अर्हन्मुनि, अर्हन्मुनि के शिष्य लक्ष्मणसेन और उनके शिष्य रविषेण। पर रविषेण ने अपने किसी संघ या गणगच्छ का कोई उल्लेख नहीं किया है और न स्थानादि की चर्चा की है। परन्तु सेनान्त नाम से अनुमान होता है कि वे संभवतः सेन संघ के हों। उनके गृहस्थ जीवन और अन्य रचनाओं के विषय में भी कुछ नहीं मालूम। सौभाग्य से ग्रन्थकार ने इसकी रचना का संवत् दे दिया है। तदनुसार महावीर निर्वाण के १२०३ वर्ष ६ माह बीत जाने पर[३] यह कृति लिखी गई थी। इस सूचना से इसकी रचना वि० सं० ७३४ या सन् ६७६ ई० में हुई है।

---

१. पं० ना० रा० प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ८७-१०८; पद्मपुराण, प्रस्तावना, पृ० २१-३२.
२. वही, पृ० ९३-९८.
३. पर्व १२३.१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परवर्ती आचार्यों ने रविषेण और उनकी कृति का ससम्मान उल्लेख किया है। उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला में[1] और जिनसेन (द्वि०) ने हरिवंशपुराण में[2] इनका स्मरण किया है।

रविषेण ने सुधर्माचार्य, प्रभव और कीर्तिधर के अतिरिक्त किसी पूर्वाचार्य या पूर्ववर्ती कृति का उल्लेख नहीं किया है।

इस पद्मचरित पर राजा भोज (परमार) के राज्य काल सं० १०८७ में धारानगरी में श्रीचन्द्र मुनि ने एक टिप्पण लिखा है।[3]

रामायण—यह[4] सरल संस्कृत गद्य में लिखी हुई रचना है जो पूर्ववर्ती किसी पद्यात्मक रचना का परिवर्तित रूप है। इसे जैन रामायण भी कहते हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना तपागच्छीय विजयदानसूरि के प्रशिष्य और रामविजय के शिष्य देवविजय ने वि० सं० १६५२ में की थी। इसका संशोधन धर्मसागर गणि के शिष्य पद्मसागर ने किया था।

पद्मपुराण नाम की अन्य[5] कृतियाँ (संस्कृत)—१. पद्मपुराण—जिनदास (१६वीं शती)। ये भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य थे। इसमें उन्होंने रविषेण के पद्मपुराण का अनुसरण किया है। इसका अपरनाम रामदेवपुराण भी है।

२. पद्मपुराण (रामपुराण)—सोमसेन (सं० १६५६)
३. ,, —धर्मकीर्ति (सं० १६६९)
४. ,, —चन्द्रकीर्ति भट्टारक
५. ,, —चन्द्रसागर
६. ,, —श्रीचन्द्र
७. पद्म-महाकाव्य —शुभवर्धन गणि (प्रकाशित—हीरालाल हंसराज जामनगर, सन् १९१७)
८. रामचरित्र —पद्मनाभ
९. पद्मपुराण-पंजिका —प्रभाचन्द्र या श्रीचन्द्र

---

१. पृ० ४ (सि० जै० ग्रन्थमाला, ४५).
२. सर्ग १.३६.
३. प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २८६-२९०.
४. जि० र० को०, पृ० ३३१.
५. वही, पृ० २३४, ३३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामकथा से सम्बद्ध अन्य[1] रचनाएँ (संस्कृत)—१. सीताचरित्र—इस काव्य में ४ सर्ग हैं, जिनमें क्रमशः ९५, ९९, १५३, और २०९ पद्य हैं। यह अप्रकाशित है। इसकी हस्तलिखित प्रति में सं० १३३९ दिया गया है।

२. सीताचरित्र—शान्तिसूरि
३. ,, ब्रह्म नेमिदत्त
४. ,, अमरदास

महाभारत-विषयक पौराणिक महाकाव्य (संस्कृत):

हरिवंशपुराण—एक महाकाव्य की शैली पर रचा गया यह ब्राह्मण पुराणों के अनुकरण का एक पुराण है। इस ग्रन्थ का मुख्य विषय हरिवंश में उत्पन्न हुए २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित्र वर्णन करना है।[2] इसका दूसरा नाम अरिष्टनेमिपुराणसंग्रह भी है जिसका प्रत्येक सर्ग के पुष्पिका वाक्य में उल्लेख किया गया है। इसके विषय का ग्रन्थकार ने लोक के आकार का वर्णन, राजवंशों की उत्पत्ति, हरिवंश का अवतार, वसुदेव की चेष्टाएँ, नेमिनाथ का चरित, द्वारिका निर्माण, युद्ध वर्णन और निर्वाण इन आठ अधिकारों में प्रतिपादन किया है। इस ग्रन्थ में ६६ सर्ग हैं, जिनका कुल मिलाकर १२ हजार श्लोकप्रमाण आकार है।

यह ग्रन्थ नेमिनाथपुराण ही नहीं है बल्कि उसे मध्यबिन्दु बनाकर इसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति, धर्मनीति आदि अनेक विषयों तथा अनेक उपाख्यानों का वर्णन हुआ है। लोक-संस्थान के रूप में सृष्टि-वर्णन ४ सर्गों में दिया गया है। राज्यवंशोत्पत्ति और हरिवंशावतार नामक अधिकारों के उपलक्षण में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव नारायण आदि तिरसठ शलाका पुरुषों का और सैकड़ों अवान्तर राजाओं और विद्याधरों के चरितों का वर्णन किया गया है। इस तरह यह अपने में एक महापुराण को भी अन्तर्गर्भित किये हुए है। हरिवंश के प्रसंग में ऐल और यदुवंशों का भी वर्णन दिया गया है।

---

१. वही, पृ० ४४२.

२. मा० दि० जै० ग्र० बम्बई, २ भाग, सन् १९३०-३१; भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन जैन साहित्य में कृष्ण के पिता वसुदेव का चरित बड़े रोचक और व्यापक रूप से वर्णित है। इस वर्णन में १-२ ही नहीं बल्कि १५ सर्ग (१९–३३ सर्ग) लगाये गये हैं। यह बड़ा भाग ग्रन्थ के चतुर्थांश जैसा ही है। इस ग्रन्थ के पूर्व भद्रबाहु कृत 'वसुदेवचरित' (अनुपलब्ध) और वसुदेवहिण्डी (संघदास-गणिकृत) में वसुदेव की कौतुकपूर्ण कथा वर्णित है। वसुदेव के चरित से सम्बद्ध श्री कृष्ण, बलराम तथा अन्य यदुवंशी पुरुषों—प्रद्युम्न, साम्ब, जरत्कुमार आदि के चरितों और राजगृह के राजा जरासंध और महाभारत के नायक कौरव-पाण्डवों का वणन भी जैन मान्यतानुसार प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थ के उत्तरार्ध को हम यदुवंशचरित और जैन महाभारत भी कह सकते हैं।

नेमिनाथ का इतना वर्णन इससे पूर्व अन्यत्र कहीं स्वतन्त्र रूप में देखने को नहीं मिलता। केवल उत्तराध्ययन सूत्र के 'रहनेमिज्ज' नामक २२वें अध्ययन में वह चरित्र अंश रूप से ४९ गाथाओं में दिया गया है। ग्रन्थ में चारुदत्त और बसन्तसेना का वृत्तान्त विस्तार से दिया गया है। इसके पूर्व वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोक संग्रह में भी यह कथानक आया है जिसका स्रोत गुणाढ्य की बृहत्कथा माना जाता है। मृच्छकटिक में इस कथानक का नाटकीय रूप दिया गया है।

हरिवंशपुराण न केवल एक कथाग्रन्थ है बल्कि महाकाव्य के गुणों से गुँथा हुआ एक उच्चकोटि का काव्य भी है। इसमें सभी रसों का अच्छा परिपाक हुआ है। युद्ध वर्णन में जरासंध और कृष्ण के बीच रोमांचकारी युद्ध वीर रस का परिपाक है। द्वारिका-निर्माण और यदुवंशियों का प्रभाव अद्‌भुत रस का प्रकर्ष है। नेमिनाथ का वैराग्य और बलराम का विलाप करुण रस से भरा हुआ है। इस काव्य का अन्त शान्त रस में होता है। प्रकृति-चित्रण रूप ऋतु-वर्णन, चन्द्रोदय-वर्णन आदि अनेक चित्र काव्यशैली में दिये गये हैं।

ग्रन्थ की भाषा प्रौढ़ एवं उदात्त है तथा अलंकार और विविध छन्दों से विभूषित है। रस के वर्णन के अनुकूल ही कवि ने छन्द चुने हैं। पचपनवाँ सर्ग यमकादि अलंकारों से सुशोभित है। नेमिनाथ के स्तवन में पूरा ३९वाँ सर्ग वृत्तानुगन्धी गद्य में लिखा गया है। पद्यमय ग्रन्थों में इस प्रकार का प्रयोग रविषेण के पद्मचरित के अतिरिक्त यहाँ ही देखने को मिलता है, अन्यत्र नहीं। कवि की वर्णन-शैली अपूर्व है। वसुदेव की संगीत-कला के वर्णन में १९वें सर्ग के १२० श्लोक लगाये गये हैं। वह वर्णन भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से अनुप्राणित है। इस ग्रन्थ का लोकविभाग और शलाकापुरुषों का वर्णन 'तिलोयपण्णत्ति' से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा द्वादशांग का वर्णन राजवार्तिक से मेल खाता है। व्रतविधान, समवसरण और जिनेन्द्रविहारवर्णन भी बड़े ही परिपूर्ण हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से हरिवंशपुराण अपने समय की कृतियों में निराला है। इसके कर्ता ने अपना परिचय भले प्रकार से दिया है। उन्होंने अपनी रचना शक सं० ७०५ में सौराष्ट्र के वर्धमानपुर[1] में समाप्त की थी और ग्रन्थ समाप्ति-वर्ष के काल में अपने चारों ओर भारतवर्ष की राजनीतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए जिनसेन ने कहा है कि उस समय उत्तर दिशा में इन्द्रायुध, दक्षिण दिशा में कृष्ण का पुत्र श्रीवल्लभ और पूर्व में अवन्तिनरेश वत्सराज और पश्चिम में सौरों के अधिमण्डल-सौराष्ट्र में वीर जयवराह राज्य करते थे।[2] इतना ही नहीं इस रचना में ऐतिहासिक चेतना के और भी दर्शन होते हैं, यथा—भगवान् महावीर के समय से लेकर गुप्तवंश एवं कल्कि के समय तक मध्यदेश पर शासन करनेवाले प्रमुख राजवंशों की परम्परा का उल्लेख, अवन्ती की गद्दी पर आसीन होनेवाले राजवंश और रासभवंश (जिसमें प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य हुआ है) का क्रम दिया है[3], साथ ही जैन इतिहास की दृष्टि से भगवान् महावीर से लगाकर ६८३ वर्ष की सर्वमान्य गुरु-परम्परा और उसके आगे अपने समय तक की अन्यत्र अनुपलब्ध अविच्छिन्न गुरु-परम्परा भी दी गई है[4] एवं अपने से पूर्ववर्ती अनेक कवियों और कृतियों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

इस तरह हम हरिवंशपुराण में पुराण, महाकाव्य, विविध विषयों को प्रतिपादन करनेवाले विश्वकोश तथा राजनीतिक और धार्मिक इतिहास के स्रोत आदि के समुदित दर्शन करते हैं। ग्रन्थकार ने अपने इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में स्वयं इस प्रकार कहा है कि जो इस हरिवंश को श्रद्धा से पढ़ेंगे उन्हें अल्प यत्न से ही अपनी आकांक्षित कामनाओं की पूरी सिद्धि होगी तथा धर्म, अर्थ और

---

१. वर्धमानपुर की पहचान और इस प्रशस्ति में उल्लिखित नरेशों की पहचान पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। इन सबकी समीक्षा डा० आ० ने० उपाध्ये ने कुवलयमाला (सि० जै० ग्र० ४६) भाग २ की अंग्रेजी प्रस्तावना के पृष्ठ १०५–१०७ में विस्तार से की है।

२. सर्ग ६६.५२-५३.

३. सर्ग ६०.४८७–४९२.

४. सर्ग ६६.२१–२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष का भी लाभ मिलेगा।[1] अन्त में ग्रन्थकार ने हरिवंश को समीहित सिद्धि के लिए श्रीपर्वत कहा है।[2] यह श्रीपर्वत आन्ध्रदेश का नागार्जुनीकोण्डा है जो जिनसेन के समय भी ऋद्धि-सिद्धि के लिए देश-प्रसिद्ध केन्द्र माना जाता था।

ग्रन्थकार-परिचय और रचनाकाल—इस ग्रन्थ की समाप्ति पर ६६वें सर्ग में एक महत्त्वपूर्ण प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता पुन्नाटसंघीय जिनसेन हैं। इससे स्पष्ट है कि ये महापुराण (आदिपुराण) के रचयिता मूलसंघीय सेनान्वयी जिनसेन से भिन्न थे। इनके गुरु का नाम कीर्तिषेण और दादागुरु का नाम जिनसेन था जबकि दूसरे जिनसेन के गुरु का नाम वीरसेन और दादागुरु का आर्यनन्दि था।

पुन्नाट कर्नाटक का प्राचीन नाम है और इस देश से निर्गत मुनि संघ का नाम पुन्नाटसंघ पड़ा। हरिवंश के छासठवें सर्ग में महावीर से लेकर लोहाचार्य अर्थात् वी. नि. ६८३ वर्ष के बाद तक की आचार्य परम्परा दी गई है जो श्रुतावतार आदि अन्य ग्रन्थों में मिलती है। इसके बाद जो आचार्य परम्परा दी गई है उसमें पुन्नाटसंघ के पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों के नाम दिये गये हैं यथा—विनयधर, श्रुतिगुप्त, ऋषिगुप्त, शिवगुप्त (जिन्होंने अपने गुणों से अर्हद्बलिपद प्राप्त किया), मन्दरार्य, मित्रवीर, बलदेव, बलमित्र, सिंहबल, वीरवित्, पद्मसेन, व्याघ्रहस्ति, नागहस्ति, जितदण्ड, नन्दिषेण, दीपसेन, धरसेन, धर्मसेन, सिंहसेन, नन्दिषेण, ईश्वरसेन, अभयसेन, सिद्धसेन, अभयसेन, भीमसेन, जिनसेन, शान्तिषेण, जयसेन, अमितसेन (पुन्नाटसंघ के अगुआ और सौ वर्ष तक जीनेवाले), इनके बड़े गुरुभाई कीर्तिषेण और उनके शिष्य जिनसेन (ग्रन्थ कर्ता)।[3]

इसमें अमितसेन को पुन्नाटसंघ का अग्रणी कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि वे ही पुन्नाटसंघ को छोड़ सबसे पहले उत्तर की तरफ बढ़े होंगे और उनसे पूर्ववर्ती जयसेन गुरु तक यह संघ पुन्नाटदेश में ही विचरण करता रहा होगा—अर्थात् जिनसेन से ५०-६० वर्ष पहले ही काठियावाड़ में इस संघ का प्रवेश हुआ होगा। जिनसेन ने इस ग्रन्थ की रचना शक सं० ७०५ (सन् ७८३) अर्थात् वि० सं० ८४० में की थी।[4] उपर्युक्त गुर्वावली से हम इस निष्कर्ष पर

१. सर्ग ६६.४६.
२. सर्ग ६६.५४ : दृष्टोऽयं हरिवंशपुण्यचरितः श्रीपर्वतः सर्वतो।
३. सर्ग ६६.२२–३१.
४. सर्ग ६६, पद्य ५२ : शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पंचोत्तरेषूत्तरां…।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुँचते हैं कि वीर-निर्वाण के बाद से विक्रम सं० ८४० तक की अविच्छिन्न गुरु-परम्परा इस ग्रन्थ में सुरक्षित है जो अन्यत्र देखने को नहीं मिलती और इस दृष्टि से यह प्रशस्ति महत्त्वपूर्ण है।

ज्ञात होता है कि पुन्नाटसंघ की परम्परा वर्धमानपुर (वढ़वाण—काठियावाड़) में जिनसेन के बाद लगभग १५० वर्षों तक चलती रही। इसका प्रमाण हमें हरिषेण के 'कथाकोश' से मिलता है। हरिषेण भी पुन्नाटसंघ के थे और उनके कथाकोश की रचना जिनसेन के हरिवंश रचने के १४८ वर्ष बाद अर्थात् वि० सं० ९८९ (शक सं० ८५३) में हुई थी। हरिषेण ने अपने गुरु भीमसेन, उनके गुरु हरिषेण और उनके गुरु मौनिभट्टारक तक का उल्लेख किया है। यदि एक-एक गुरु का समय पचीस-तीस वर्ष गिना जाय तो इस अनुमान से हरिवंश-कर्ता जिनसेन, मौनिभट्टारक के गुरु के गुरु हो सकते हैं या एकाध पीढ़ी और पहले के। यदि जिनसेन और मौनिभट्टारक के बीच के एक-दो आचार्यों का नाम और कहीं से मालूम हो जाय तो फिर इन ग्रन्थों से वीर नि० से श० सं० ८५३ तक की अर्थात् १४५८ वर्ष की एक अविच्छिन्न गुरुपरम्परा तैयार हो सकती है।[1]

पुन्नाटसंघ का उल्लेख इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त अभी तक अन्यत्र नहीं मिला है। विद्वानों का अनुमान है कि पुन्नाट (कर्नाटक) से बाहर जाने पर ही यह संघ पुन्नाटसंघ कहलाया जिस तरह कि आज कल जब कोई एक स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाकर रहता है तब वह अपने पूर्व स्थानवाला कहलाने लगता है।

इस ग्रन्थ की रचना नन्नराजवसति पार्श्वनाथ मन्दिर में बैठकर की गई थी।[2]

यद्यपि ग्रन्थकर्ता दिग० सम्प्रदाय के थे फिर भी हरिवंश के अन्तिम सर्ग में भगवान् महावीर के विवाह की बात लिखी है[3] जो दिग० सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थ में नहीं देखी जाती। लगता है यह मान्यता श्वेता० या यापनीय सम्प्रदाय के किसी ग्रन्थ से ली गई है।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १२०-१२१.

२. हरिवंशपु०, सर्ग ६६.५२-५५.

३. हरि० पु०, सर्ग ६६.८ : यशोदयायां सुतया यशोदया पवित्रया वीर-विवाहमंगलं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनसेन ने अपने से पूर्ववर्ती जिन विद्वानों का उल्लेख किया है वे हैं— समन्तभद्र, सिद्धसेन, देवनन्दि, वज्रसूरि, महासेन (सुलोचनाकथा के कर्ता), रविषेण (पद्मपुराण के कर्ता), जटासिंहनन्दि (वरांगचरित के कर्ता), शान्त (किसी काव्य ग्रन्थ के कर्ता), विशेषवादि (गद्यपद्यमय विशिष्ट काव्य के रचयिता), कुमारसेन, वीरसेन (कवियों के चक्रवर्ती), जिनसेन (पार्श्वाभ्युदय के कर्ता) तथा एक अन्य कवि (वर्धमानपुराण के कर्ता) ।[1]

उद्योतनसूरि ने कुवलयमाला (श० सं० ७००=वि० सं० ८३५=सन् ७७८ ई०) में अपने पूर्ववर्ती अनेक जैन (श्वेता० दिग०) एवं अजैन कवियों का स्मरण किया है। कुछ विद्वान् रविषेण के पद्मचरित और जटानन्दि के वरांगचरित के समान एक गाथा से इस हरिवंश की स्तुति की भी कल्पना करते हैं, जो कि सम्भव नहीं है क्योंकि हरिवंश, कुवलयमाला के बाद (५ वर्ष बाद) की रचना है। पूर्ववर्ती रचना में परवर्ती रचना के उल्लेख की कम ही संभावना रहती है। दूसरी बात यह है कि कुवलयमाला के निम्नांकित पद्य में प्रथम हरिवंशोत्पत्ति कारक हरिवर्ष कवि की, बुधजनों में प्रिय और विमल अभिव्यक्ति (पदावली) के कारण, वन्दना की गई है :

बुहयणसहस्सदयियं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं ।
वन्दामि वंदियंपि हु हरिवरिसं चेय विमलपयं ।।

इससे विदित होता है कि वह हरिवंश अन्य कर्ता की कृति थी, यह नहीं थी ।[2]

कुछ विद्वान् उक्त गाथा से विमलसूरि कृत हरिवंशचरियं होने की संभावना करते हैं और मानते हैं कि संभवतः जिनसेन का हरिवंश विमलसूरि के प्राकृत हरिवंशचरियं की छाया हो। इस विषय में हमने पउमचरियं के प्रसंग में उक्त संभावना का खण्डन कर दिया है। हाँ, हरिवर्षकृत प्राकृत या संस्कृत में कोई हरिवंसुप्पत्ति उपलब्ध हो तब जिनसेन के हरिवंश का मूल क्या था, इस

---

१. सर्ग १.३१-४०; इसमें विशेषवादि से कहीं उद्योतनसूरि का तो अभिप्राय नहीं ? उनकी कुवलयमाला गद्य-पद्यमय उक्ति-विशेषों से भरा हुआ काव्य है।

२. कुवलयमाला (सि० जै० ग्र० ४५), पृ० ३; वही, द्वि० भा०, प्रस्तावना पृ० ७६ और नोट्स पृ० १२६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय पर भले ही कुछ प्रकाश पड़ सके और उसमें भगवान् महावीर के विवाह के उल्लेख की संगति बैठ सके।

पाण्डवचरित—यह एक सर्गबद्ध कृति है।[1] इसमें १८ सर्ग हैं। इसका कथानक लोकप्रसिद्ध पाण्डवों के चरित्र पर आधारित है जोकि जैन-परम्परा के अनुसार वर्णित है, साथ में नेमिनाथ का चरित भी स्वतः आ गया है। इसके नायक पाँच पाण्डव धीरोदात्त एवं उदात्त क्षत्रिय-कुल सम्भूत हैं। यह वीररस प्रधान काव्य है किन्तु इसका पर्यवसान शान्तरस में हुआ है। शृंगार, अद्भुत एवं रौद्र रसों की योजना भी इसमें अंगरूप हुई है। इसमें काव्य-परम्परा के अनुकूल प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन किया गया है। इसमें महाकाव्यीय वर्ण्य विषयों—नगरी, पर्वत, वन, उपवन, बसन्त, ग्रीष्म आदि का समावेश यथास्थान हुआ है। इसके सर्गों के नामकरण भी वर्ण्य-विषय के आधार पर किये गये हैं। यद्यपि इसमें महाकाव्योचित सभी गुण हैं परन्तु भाषा-शैलीगत प्रौढ़ता और उदात्त कवित्व कला के अभाव में यह सामान्य पौराणिक काव्य रह गया है। पौराणिक काव्यों के समान इसमें अनेक बातें कल्पनापूर्ण एवं अतिशयोक्ति से भरी हैं। वर्णन में अनेक अलौकिक और अप्राकृतिक शक्तियों का आश्रय लिया गया है। यत्र तत्र अवान्तर कथाओं की योजना भी की गई है जैसे नलकूबर की कथा। भवान्तरों के कथन में भी अनेक अवान्तर कथाएँ आ गई हैं।

पाण्डवचरित के कथानक का आधार 'षष्ठांगोपनिषद्' तथा हेमचन्द्राचार्य का 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' तथा कुछ अन्य ग्रन्थ हैं। इस बात को ग्रन्थकर्ता ने स्वयं इन शब्दों में प्रकट किया है :[2]

> षष्ठांगोपनिषत्त्रिषष्टिचरितानालोक्य कौतूहला-
> देतत् कन्दलयांचकार चरितं पाण्डोः सुतानामहम्॥

पाण्डवचरित का ग्रन्थ-प्रमाण लगभग आठ हजार श्लोक है। इसके सभी सर्गों में अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है। सर्गान्तों में प्रयुक्त अन्य छन्दों की संख्या ४० है। उनमें प्रमुख वसन्ततिलका, शिखरिणी, शार्दूल विक्रीडित, मालिनी प्रमुख हैं। ग्रन्थकार ने भाषा की प्रौढ़ता के अभाव को अलंकारों के प्रयोग द्वारा कुछ अंशों में दूर करने का प्रयत्न किया है। शब्दालंकारों में

---

१. काव्यमाला सिरीज, बम्बई, १९११; जि० र० को०, पृष्ठ २४२.

२. पाण्डवचरित, सर्ग १८, पद्य २८०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुप्रास, यमक तथा वीप्सा का प्रयोग बहुत हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलंकारों का यथेष्ट प्रयोग दर्शनीय है।

इस काव्य में कवि ने अपने युग का समाज-चित्रण दिया है। इसमें उस युग के अनेक रीति-रिवाज, विवाह-संस्कार तथा प्रचलित अन्धविश्वासों की अच्छी झाँकी मिलती है। पाण्डवचरित एक धार्मिक काव्य भी है। इसमें स्थल-स्थल पर धार्मिक उपदेश की योजना की गई है जिसमें दया, दान, शील, तप तथा संसार की अनित्यता प्रतिपादित है।

रचयिता एवं रचना-काल—पाण्डवचरित में दी गई प्रशस्ति से कवि का विशेष परिचय नहीं मिलता। उससे केवल इतना ज्ञात होता है कि पाण्डवचरित के रचयिता देवप्रभसूरि मलधारी गच्छ के थे। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना हर्षपुरीय गच्छ के हेमचन्द्रसूरि-विजयसूरि-चन्द्रसूरि-मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य देवानन्दसूरि के अनुरोध से की थी। प्रशस्ति में रचना-काल नहीं दिया गया पर देवानन्दसूरि, जिनके अनुरोध पर यह ग्रन्थ रचा गया था[1], प्रमुख ग्रन्थ संशोधक प्रद्युम्नसूरि के गुरु कनकप्रभसूरि के गुरु थे। प्रद्युम्नसूरि का साहित्यिक काल सं० १३१५ से सं० १३४० तक २५ वर्ष का माना जा सकता है क्योंकि उन्होंने सं १३२२ में श्रेयांसनाथचरित (मानतुंगसूरिकृत) तथा उसी वर्ष मुनिदेवकृत शान्तिनाथचरित का संशोधन तथा सं० १३२४ में अपने काव्य समरादित्यचरित की रचना तथा सं० १३३४ में प्रभाचन्द्रकृत प्रभावकचरित का संशोधन किया था। यदि इस काल से पहले २५ वर्ष तक प्रद्युम्नसूरि के गुरु कनकप्रभ का साहित्यिक काल और उनसे २५ वर्ष पूर्व तक कनकप्रभ के गुरु देवानन्द का साहित्यिक काल माना जाय तो कनकप्रभ का साहित्यिक जीवन सं० १२९० के पश्चात् और देवानन्द का साहित्यिक जीवन सं० १२६५ के पश्चात् मानना चाहिये। इस अनुमान से कि देवानन्दसूरि का साहित्यिक काल सं० १२६५ के लगभग बैठता है देवप्रभसूरि की कृति पाण्डवचरित का रचनाकाल सं० १२६५ के कुछ काल बाद सिद्ध होना चाहिये। दूसरे अनुमान से भी हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं। वह है देवप्रभसूरि के शिष्य नरचन्द्रसूरि का समय। नरचन्द्रसूरि भी पाण्डवचरित के संशोधकों में एक थे।[2] इन्हीं नरचन्द्रसूरि ने उदयप्रभसूरिकृत धर्माभ्युदय महाकाव्य (सं० १२७७–१२९०) का संशोधन भी किया था। इससे भी उसी काल के आस-पास पाण्डवचरित का

१. पाण्डवचरित, प्रशस्ति, पद्य ८-९.
२. पाण्डवचरित, प्रशस्ति, पद्य १०-११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाकाल प्रतीत होता है। पाण्डवचरित के सम्पादकों ने इसका रचनाकाल वि० सं० १२७० माना है[1] जो कि उक्त अनुमानों के आस-पास ही बैठता है।

हरिवंशपुराण—जिनसेन के हरिवंश पुराण के आधार पर रचित इस[2] कृति में ४० सर्ग हैं। इसमें हरिवंशकुलोत्पन्न २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ और श्री कृष्ण तथा उनके समकालीन पाण्डव और कौरवों का वर्णन है। इसके प्रथम १४ सर्गों की रचना भट्टारक सकलकीर्ति और शेष सर्गों की रचना उनके शिष्य ब्रह्म जिनदास ने की है। इसमें रविषेण और जिनसेन का उल्लेख है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के प्रथमांश के रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति हैं। मध्यकालीन उत्तर भारत में सकलकीर्ति नाम के अनेक भट्टारक हो गये हैं किन्तु उनमें से सर्वप्रथमज्ञात सकलकीर्ति ने अनेक शासन-प्रभावक कार्य किये थे और विपुल साहित्य प्रणयन किया था। इनकी कृतियाँ संस्कृत और राजस्थानी दोनों भाषाओं में प्राप्त हैं।

इनके समय के सम्बन्ध में विवाद है। डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल इनका जन्म वि० सं० १४४३ और स्वर्गवास १४९९ मानते हैं, जब कि डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने जन्म १४१८ और स्वर्गवास १४९९ माना है। इन दोनों के मत से डा० मो० विन्टरनित्स द्वारा निर्धारित स्वर्गवास का समय (सं० १५२१) ठीक नहीं है और न डा० जोहरापुरकर द्वारा निर्धारित काल सं० १४५०–१५१० ये डूंगरपुर (ईडर) पट्ट के संस्थापक तथा बागड (सागवाड़ा) बड़साजन पट्ट के भी संस्थापक थे। इन्होंने ३४ के लगभग ग्रन्थ लिखे हैं जिनमें २८ तो संस्कृत में और ६ राजस्थानी में।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थ : १. मूलाचारप्रदीप, २. प्रश्नोत्तरोपासकाचार, ३. आदिपुराण, ४. उत्तरपुराण, ५. शान्तिनाथचरित्र, ६. वर्धमानचरित्र, ७. मल्लिनाथचरित्र, ८. यशोधरचरित्र, ९. धन्यकुमारचरित्र, १०.

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास (मो० द० देसाई) में पाण्डवचरित का रचनाकाल सं० १२७० के लगभग माना गया है।

२. जि० र० को०, पृ० ४६०; राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २७.

३. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १-२१, जैन सन्देश, शोधांक १६, पृ० १८१-१८८ तथा २०८-२०९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुकुमालचरित्र, ११. सुदर्शनचरित्र, १२. सद्भाषितावली, १३. पार्श्वनाथपुराण, १४. सिद्धान्तसारदीपक, १५. व्रतकथाकोष, १६. पुराणसारसंग्रह, १७. कर्मविपाक, १८. तत्त्वार्थसारदीपक, १९. परमात्मराजस्तोत्र, २०. आगमसार, २१. सारचतुर्विंशतिका, २२. पंचपरमेष्ठीपूजा, २३. अष्टाह्निकापूजा, २४. सोलहकारणपूजा, २५. जम्बूस्वामिचरित्र, २६. श्रीपालचरित्र, २७. द्वादशानुप्रेक्षा, २८. गणधरवलयपूजा।

इनका स्वर्गवास गुजरात के महसाना नामक स्थान में सं० १४९९ में हुआ था जहाँ उनकी समाधि-निषद्या अब तक विद्यमान बताई जाती है।

उक्त पुराण के द्वितीयांश के रचयिता ब्रह्म जिनदास हैं जो भट्टारक सकलकीर्ति के शिष्य एवं लघुभ्राता थे। इनका संस्कृत और राजस्थानी पर समान अधिकार था पर राजस्थानी से विशेष अनुराग था। इनकी संस्कृत में रचना अंगुलियों पर गिनने लायक हैं जब कि राजस्थानी में ५० से भी अधिक हैं। ब्रह्म जिनदासकी निश्चित जन्मतिथि के सम्बन्ध में इनकी रचनाओं के आधार पर कोई जानकारी नहीं मिलती। ये कब तक गृहस्थ रहे और कब से साधु जीवन विताया, इस विषय की भी सूचना नहीं मिलती। इनकी माता का नाम शोभा एवं पिता का नाम कर्णसिंह था। ये पाटण के रहने वाले हूंबड़ जाति के श्रावक थे। इनका जन्म भट्टारक सकलकीर्ति के बाद है क्योंकि वे इनके अग्रज थे। ब्रह्म जिनदास ने अपनी केवल दो रचनाओं में संवत् दिया है, शेष में नहीं। तदनुसार रामराज्यरास में वि० सं १५०८ तथा हरिवंशपुराण में वि० सं० १५२० दिया गया है। संभवतः हरिवंशपुराण इनकी अन्तिम कृति थी। संस्कृत में अन्य रचनायें हैं—जम्बूस्वामिचरित्र, रामचरित्र (पद्मपुराण) तथा पुष्पांजलिव्रतकथा और ८ के लगभग पूजा-विषयक लघु रचनाएँ हैं।

पाण्डवपुराण—इस पौराणिक काव्य[1] में पाण्डवों की रोचक कथा का वर्णन किया गया है। इसमें २५ पर्व हैं। इसकी श्लोक–सं० ६००० है। इस पुराण की रचना में ग्रन्थकर्ता ने जिनसेन के हरिवंशपुराण आदि व उत्तरपुराण तथा श्वेता० रचना देवप्रभसूरि रचित पाण्डवचरित्र का पर्याप्त उपयोग किया है। ग्रन्थ के अन्तरंग [2]परीक्षण से यह बात स्पष्ट होती है। फिर भी इस पुराण की कथा में अन्य जैन पुराणकारों की रचनाओं से भेद है। यह ग्रन्थ जैन महाभारत

१. जीवराज जैन ग्रन्थमाला, सं० ३, सोलापुर, १९५४.

२. वही, प्रस्तावना, पृष्ठ १-४०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी कहलाता है। पर्वों की रचना अनुष्टुभ् छन्दों में की गई है पर पर्वान्त में छन्द परिवर्तन किये गये हैं। प्रत्येक पर्व का प्रारम्भ तीर्थंकर की स्तुति से होता है। तृतीय पर्व से प्रारंभ कर ऋषभ के क्रम से चलकर पच्चीसवें पर्व में पार्श्व की स्तुति की गई तथा प्रथम में वृषभादि चौबीस तीर्थंकरों की और द्वितीय में महावीर की स्तुति की गई है। ग्रन्थरचना सरस, सरल संस्कृत में है।

ग्रन्थकर्ता और रचनाकाल—प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता भट्टारक शुभचन्द्र हैं। ये भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य और ज्ञानभूषण के प्रशिष्य थे। इनके शिष्य श्रीपाल वर्णी थे। इनकी सहायता से भट्टारक शुभचन्द्र ने वाग्वर (वागड) प्रान्त के अन्तर्गत (सागवाड़ा) नगर में वि० सं० १६०८ भाद्रपद द्वितीया के दिन इस पाण्डवपुराण की रचना की है। पच्चीसवें पर्व के अन्त में एक कवि-प्रशस्ति दी गई है। उसमें गुरुपरम्परा का परिचय दिया गया है और साथ में उनके द्वारा रचित २५-२६ ग्रन्थों की सूची।[1]

भट्टारक शुभचन्द्र बड़े ही विद्वान् थे। त्रिविधविद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम और परमागम के ज्ञाता) और षट्भाषाकविचक्रवर्ती—ये उनकी उपाधियाँ थीं।

इनके द्वारा रचित काव्यग्रन्थ—चन्द्रप्रभचरित, पद्मनाभचरित, जीवन्धर-चरित, चन्दनाकथा, नन्दीश्वरकथा हैं तथा अन्य पूजा-विधान, प्रतिष्ठा आदि के ग्रन्थ हैं।

पाण्डवपुराण—इस पौराणिक काव्य में १८ सर्ग हैं।[2]

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टा० वादिचन्द्र थे जो कि मूल-संघ के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इनकी गद्दी गुजरात में ही कहीं पर थी। इन्होंने कई ग्रन्थ लिखे हैं यथा पार्श्वपुराण, ज्ञान-सूर्योदयनाटक, पवनदूत, श्रीपालआख्यान (गुजराती-हिन्दी), यशोधरचरित्र, सुलोचनाचरित्र, होलिकाचरित्र और अम्बिका-कथा।

पाण्डवपुराण की रचना सं० १६५४ में नोघकनगर में हुई थी।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ०, ३८३-३८४.

२. जयपुर के तेरहपंथी बड़े मन्दिर में इस ग्रन्थ की एक प्रति है। जि० र० को०, पृ० २४३; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाण्डवपुराण—यह जिनसेन, सकलकीर्ति और अन्य ग्रन्थकर्ताओं के ग्रन्थों के आधारों से रचित सरल संस्कृत पद्यात्मक कृति है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता काष्ठासंघीय नन्दीतट गच्छ के भट्टारक श्रीभूषण हैं। इनके बनाये हुए शान्तिनाथपुराण, पाण्डवपुराण और हरिवंशपुराण उपलब्ध हैं। सभी ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रचना संवत् दिया हुआ है। इसकी रचना का समय वि० सं० १६५७ पौष शुक्ल तृतीया रविवार दिया गया है।[1] ये एक भट्टारक थे और सोजित्रा (गुजरात) की गद्दी पर आसीन थे। प्रशस्ति में गुरुपरम्परा भी दी गई है। प्रस्तुत पुराण की रचना सौर्यपुर अर्थात् सूरत में की गई थी।

पाण्डवचरित्र—यह काव्य ग्रन्थ[2] देवप्रभसूरि कृत पाण्डवचरित्र का सरल संस्कृत में गद्यात्मक रूपान्तर है। इसमें यत्र-तत्र देवप्रभ की रचना से तथा अन्यत्र से कतिपय पद्य भी उद्धृत किये गये हैं। इसमें भी १८ सर्ग हैं।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—लेखक ने ग्रन्थ के अन्त में एक संक्षिप्त प्रशस्ति में अपने वंश और गुर्वादि का परिचय दिया है। जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता देवविजय गणि हैं जो तपागच्छ के विजयदानसूरि के शिष्य रामविजय के शिष्य थे। इन्होंने अहमदाबाद में रहकर यह ग्रन्थ सं० १६६० में लिखा था। इसका संशोधन शान्तिचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र ने किया था।

हरिवंशपुराण—इसकी[3] रचना का आधार जिनसेन, सकलकीर्ति आदि द्वारा रचित हरिवंशपुराण है।

इसे सोजित्रा के भट्टारक श्रीभूषण ने सं० १६७५ चैत्र सुदी १३ के दिन पूर्ण किया था।

पाण्डवचरित्र—शुभवर्धनगणिकृत इस ग्रंथ[4] को हरिवंशपुराण भी कहते हैं। यह ग्रन्थ सत्यविजय ग्रन्थमाला अहमदाबाद से बालाभाई मूलचन्द्र ने प्रकाशित किया है।

---

१. परमानन्द शास्त्री, प्रशस्ति-संग्रह, पृ० ९६; जैन साहित्य और इतिहास (प्रेमी), पृ० ३८९; जि० र० को०, पृ० २४३.
२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० २६, वाराणसी, वी० सं० २४३८.
३. राजस्थान के शास्त्रभण्डारों की सूची, द्वि० भा०, पृ० २१८; परमानन्द शास्त्री, प्रशस्तिसंग्रह, पृ० ४९.
४. जि० र० को०, पृ० २४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिवंशपुराण और पाण्डवपुराण-विषयक[1] अन्य रचनाएँ—१. पाण्डव-चरित्र (लघुपाण्डवचरित्र)—अज्ञात ।

२. पाण्डवपुराण—कवि रामचन्द्र (सं० १५६० के पूर्व) ।
३. हरिवंशपुराण—धर्मकीर्ति भट्टारक (सं० १६७१) ।
४. ,, श्रुतकीर्ति ।
५. ,, जयसागर ।
६. ,, जयानन्द ।
७. ,, मंगरस ।

तिरसठ शलाका महापुरुष-विषयक पौराणिक महाकाव्य :

महापुराण : आदिपुराण—महापुराण[2] जिनसेन और गुणभद्र की उस विशाल रचना का नाम है जो ७६ पर्वों में विभक्त है । ४७ पर्व तक की रचना का नाम आदिपुराण है और उसके बाद ४८-७६ तक का उत्तरपुराण । इस बृहत्काय ग्रन्थ का अनुष्टुभ् छन्दों में परिमाण १९२०७ श्लोक हैं । उनमें से आदिपुराण में ११४२९ श्लोक हैं और उत्तरपुराण में ७७७८ ।

जिनसेन ने ६३ शलाका पुरुषों के चरितों को बृहत्प्रमाण में लिखने की प्रतिज्ञा की थी पर अत्यन्त वृद्ध होने के कारण वे केवल आदिपुराण के बयालीस पर्व और तेतालीसवें पर्व के तीन पद्य अर्थात् १०३८० श्लोक प्रमाण रचकर स्वर्गवासी हो गये । इसके बाद उनके सुयोग्य शिष्य ने शेष कृति को अपेक्षाकृत संक्षेप रूप में पूर्ण किया ।

आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर ऋषभ के दश पूर्वभवों और वर्तमान भव का तथा भरत चक्रवर्ती के चरित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है ।

प्रथम दो पर्व तो प्रस्तावना रूप हैं, तीसरे में काल और भोगभूमियों और पाँच से लेकर एकादश पर्व तक ऋषभदेव के दश पूर्वभवों का विस्तृत वर्णन है । बारह से पन्द्रह तक ४ पर्वों में ऋषभदेव के गर्भ, जन्म, बाल्यावस्था, यौवन तथा विवाह का वर्णन है । सोलहवें में भरतादि सन्तानोत्पत्ति, प्रजा के लिए असि,

---

१. जि० र० को०, पृ० २४२-२४३, ४६०.

२. स्याद्वाद ग्रन्थमाला, इन्दौर, वि० सं० १९७३-७५, हिन्दी अनुवाद सहित । भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, भाग १-३, १९५१-५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मषि, कृषि, वाणिज्य, सेवा और शिल्प इन छह आजीविकाओं का प्रतिपादन तथा क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की स्थापना का वर्णन है।

सत्तरहवें में वैराग्य, दीक्षा, अठारहवें में ६ माह की तपस्या, उन्नीसवें में धरणेन्द्र द्वारा नमि, विनमि के लिए विजयार्ध की नगरियों का प्रदान, बीसवें में तपश्चरण के बाद इक्षुरस आहार ग्रहण वर्णित है।

इक्कीसवें पर्व में ध्यान का, और बाईस से लेकर पच्चीस तक केवल ज्ञान प्राप्ति, समवसरण, पूजा-स्तुति आदि का वर्णन है।

छब्बीसवें से लेकर अड़तीसवें तक १३ पर्वों में भरत चक्रवर्ती की चक्ररत्न-प्राप्ति से लेकर दिग्विजय तथा नगर प्रवेश के पूर्व भरतबाहुबलि युद्ध, बाहुबलि का वैराग्य एवं दीक्षा तथा भरत द्वारा ब्राह्मण वर्ण की स्थापना का वर्णन किया गया है।

उनतालीस से लेकर इकतालीस तक तीन पर्वों में विभिन्न प्रकार की क्रियाओं और संस्कारों का वर्णन है। तैंतालीस से लेकर सैंतालीस तक पाँच पर्वों में जयकुमार और सुलोचना की रोचक कथा दी गई है और सैंतालीस के अन्त में जयकुमार का वैराग्य, दीक्षा, गणधर पद प्राप्ति तथा भरत की दीक्षा और केवलज्ञान प्राप्ति और ऋषभदेव की कैलास पर्वत पर निर्वाण प्राप्ति की कथा दी गई है।

जिनसेन ने अपनी कृति को 'पुराण' और 'महाकाव्य' दोनों नाम से कहा है। वास्तव में यह न तो ब्राह्मणों के विष्णुपुराण आदि जैसा पुराण है और न शिशुपालवधादि के समान महाकाव्य। यह महाकाव्य के बाह्य लक्षणों से सम्पन्न एक पौराणिक महाकाव्य है। आचार्य ने पुराण और महाकाव्य दोनों की परिभाषा को परिमार्जित करते हुए लिखा हैं :—जिसमें क्षेत्र, काल, तीर्थ, सत्पुरुष और उनकी चेष्टाओं का वर्णन हो, वह पुराण है। इस प्रकार के पुराण में लोक, देश, पुर, राज्य, तीर्थ, दान-तप, गति और फल इन आठ बातों का वर्णन होना चाहिये।[1] पुराण का अर्थ है 'पुरातनं पुराणं'—अर्थात् प्राचीन होने से पुराण कहा जाता है। पुराण के दो भेद हैं—'पुराण' और 'महापुराण'। जिसमें एक महापुरुष के चरित का वर्णन हो, वह 'पुराण' है और जिसमें तिरसठ शलाका-

---

१. पर्व १-२१-२५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुरुषों के चरित का वर्णन रहता है वह **'महापुराण'** कहलाता है। जो पुराण का अर्थ है वही धर्म है—**स च धर्मः पुराणार्थः**। अर्थात् पुराण में धर्मकथा का प्ररूपण होना चाहिये। महाकाव्य की व्याख्या करते हुए जिनसेन कहता है कि जो प्राचीनकाल के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाला हो, जिसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों का चरित्र चित्रण हो तथा जो धर्म, अर्थ और काम के फल को दिखाने वाला हो उसे **'महाकाव्य'**[1] कहते हैं। इस तरह परिमार्जित परिभाषा द्वारा पुराण और महाकाव्य के बीच समन्वय स्थापित किया गया है।

आदिपुराण के विस्तृत कलेवर में हम पुराण, महाकाव्य, धर्मकथा, धर्मशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र और युग की आदि व्यवस्था को सूचित करने वाले एक बृहत् इतिहास के दर्शन करते हैं। यह आदिपुराण दिग० जैनों का एक ऐसा विश्वकोश है तथा एक प्रकार से वह सब कुछ है जो कि उन्हें जानना चाहिये। इसमें अनेक प्रकार के भौगोलिक नाम, बहुरंगी समाज-रचना, सांस्कृतिक जीवन के चित्र, नाना गोष्ठियाँ, नाना प्रकार की कलाएँ, आर्थिक एवं राजनीतिक सिद्धान्त, दार्शनिक तथा धार्मिक बातों की विस्तार के साथ सूचना मिलती है। इस पौराणिक महाकाव्य में ही सर्व प्रथम गर्भादि १६ संस्कारों का उल्लेख किया गया है। संभवतः ब्राह्मण सम्प्रदाय के अनुकरण पर उन्होंने अपने मत के अनुयायियों के लिए यह विकल्परूप रखा है।

साहित्यिक गुणों की दृष्टि से इसके अनेक खण्ड संस्कृत काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। महाकाव्य के नायक रूप में ऋषभदेव के अतिरिक्त भरत, बाहुबलि आदि अनेक पात्र हैं जिनमें से अनेकों चरित्रों का अच्छा विकास हुआ है। पूर्वभवों के निमित्त से अनेक अवान्तर कथाएँ दी गई हैं जिनमें कई पात्रों के चरित्रों का अच्छा विश्लेषण किया गया है। प्रकृति-चित्रण इस काव्य में पृष्ठभूमि के रूप में प्रचुर मात्रा में किया गया है। कहीं लताओं का वर्णन है तो कहीं सरिताओं और पर्वत-मालाओं का। षड्ऋतु[2] वर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय, जलविहार आदि प्रसंगों में प्रकृतिचित्रण[3] बड़े स्वाभाविक रूप में हुआ है। सौन्दर्यचित्रण में कवि ने शास्त्रीय पद्धति अपनायी है और मरुदेवी तथा श्रीमती आदि का नख से लेकर शिखा तक वर्णन किया है।[4]

---

१. वही, १.९९.

२. वही, ९.११, १२, १७; २६.१४८.

३. वही, ३.

४. वही, ६.६९, ७०, ७५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसयोजना की दृष्टि से इसमें शृङ्गार, करुण, वीर, रौद्र एवं शान्तरस के प्रमुख रूप से दर्शन होते हैं। मरुदेवी-नाभिराय, श्रीमती-वज्रजंघ, जयकुमार-सुलोचना आदि के प्रसंग में संयोग-शृङ्गार का साङ्गोपाङ्ग चित्रण किया गया है। इसी तरह ललितांग, श्रीमती-वज्रजंघ के प्रसंग में वियोग-शृङ्गार का वर्णन हुआ है। शान्तरस तो इस पुराण का प्रधान रस है। भरत-बाहुबलि और जयकुमार और अर्ककीर्ति के प्रसंग में वीररस का भी प्रतिपादन हुआ है।

इस काव्य में भाव और भाषा को सजाने के लिए अलंकारों की योजना बड़ी चातुरी से की गयी है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसंख्या, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, व्यतिरेक आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है।

जहाँ-तहाँ कवि ने चित्रकाव्य तथा यमकादि शब्दालंकारों का प्रचुर प्रयोग किया है। भाषा तो प्रांजल है ही, उसे व्यावहारिक बनाने के लिये अनेक सुभाषितों से विभूषित किया गया है। यह महाकाव्य अपने कल्पना-प्रकर्ष, चित्रण-प्राचुर्य, पद्य-रचना की धारावाहिकता आदि गुणों के कारण अनेक विद्वानों द्वारा प्रशंसित हुआ है।

आदिपुराण की रचना अधिकांशतः अनुष्टुभ् छन्द में हुई है, पर पर्वान्त में कई छन्दों का प्रयोग हुआ है। कई पर्वों में विविध छन्दों का प्रयोग देखने लायक है। इस दृष्टि से २८वाँ पर्व विशेष महत्त्व का है। कवि का मानों छन्दों पर पूर्ण आधिपत्य था। उसने ६७ विभिन्न छन्दों का प्रयोग इस काव्य[1] में किया है।

इस कृति का पश्चात्वर्ती अनेक रचनाओं ने अनुकरण किया है।

इस महापुराण पर भट्टारक ललितकीर्ति द्वारा रचित संस्कृत टिप्पण मिलते हैं जो प्रकाश में आ गये हैं।[2] ललितकीर्ति सम्भवतः १८ वीं–१९ वीं के भट्टारक थे।

---

१. उत्तरपुराण की प्रस्तावना (भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी), पृष्ठ ११–१२.

२. भारतीय ज्ञानपीठ काशी से प्रकाशित संस्करण में ये टिप्पण उपयोग में लिये गये हैं पर खेद है कि सम्पादक ने उनका परिचय नहीं दिया। इस ग्रन्थ का पं० दौलतरामजी, पं० लालारामजी तथा पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने हिन्दी अनुवाद किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि-परिचय और रचनाकाल—इस महापुराण के रचयिता दो व्यक्ति हैं—जिनसेन और उनके शिष्य गुणभद्र। जिनसेन को सम्मान के लिए भगवज्जिनसेन भी कहा जाता है। महापुराण के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गयी पर उत्तर-पुराण के अन्त में जो प्रशस्ति है उससे इस कवि के जीवन का थोड़ा परिचय मिलता है। इनकी अन्यतम कृति जयधवल टीका से ज्ञात होता है कि ये बाल्य-काल में ही दीक्षित हो गये थे, सरस्वती के बड़े आराधक थे तथा शरीर से दुबले-पतले तथा आकृति से भव्य और रम्य नहीं थे। कुशाग्र बुद्धि, ज्ञानाराधना और तपश्चर्या से इनका व्यक्तित्व महनीय हो गया था। इन्होंने ब्राह्मण स्मृतियों का बहुत अध्ययन किया था इसलिये या स्वयं ब्राह्मण होने के कारण स्मृतियों के प्रभाव से जैनाचार को नया मोड़ दिया है।

जिनसेन मूलसंघ के पंचस्तूपान्वय के आचार्य थे। इनके गुरु का नाम वीर-सेन था और दादागुरु का नाम आर्यनन्दि। वीरसेन के एक गुरुभाई जयसेन थे। जिनसेन ने अपने आदिपुराण में इनका भी स्मरण किया है। जिनसेन के सधर्मी या सतीर्थ दशरथ मुनि थे। जिनसेन और दशरथ के शिष्य गुणभद्र हुए जिन्होंने महापुराण के शेषांश और उत्तरपुराण की रचना की।[1]

अपने साहित्यिक जीवन में जिनसेन का तीन स्थानों से सम्बन्ध था—चित्र-कूट, बंकापुर और वाटग्राम।[2] चित्रकूट में एलाचार्य का निवास था। जिनसे इनके गुरु वीरसेन ने सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़े थे। चित्रकूट वर्तमान चित्तौड़ है। वाट-ग्राम में रहकर इनके गुरु ने धवला टीका लिखी थी। वाटग्राम, वटपद्र नामों का विद्वानों ने बड़ौदा के साथ साम्य स्थापित किया है। बंकापुर में रहकर जिनसेन और गुणभद्र ने महापुराण की रचना की थी। तत्कालीन राष्ट्रकूट नरेश अमोघ-वर्ष (सन् ८१५-८७७ ई०) जिनसेन का बड़ा भक्त था।[3] उस समय अमोघवर्ष का राज्य केरल से लेकर गुजरात, मालवा और चित्रकूट तक फैला हुआ था। जिनसेन का सम्बन्ध चित्रकूट आदि के साथ होने से तथा अमोघवर्ष द्वारा सम्मानित होने से उनके जन्म-स्थान का अनुमान महाराष्ट्र और कर्णाटक के सीमावर्ती प्रदेश में किया जा सकता है।

---

१. उत्तरपुराण, प्रशस्ति, पद्य १-२०.

२. जैन साहित्य और इतिहास (पं० नाथूराम प्रेमी), पृ० १२७-१५४; महापुराण, प्रस्तावना, पृ० ३१-३२.

३. उत्तरपुराण, प्रशस्ति, पद्य ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिपुराण की उत्थानिका में जिनसेन ने अपने पूर्ववर्ती सुप्रसिद्ध कवियों और विद्वानों का, उनके वैशिष्ट्य के साथ, स्मरण किया है—१. सिद्धसेन, २. समन्तभद्र ३. श्रीदत्त, ४. प्रभाचन्द्र, ५. शिवकोटि, ६. जटाचार्य, ७. काणभिक्षु, ८. देव (देवनन्दि), ९. भट्टाकलंक, १०. श्रीपाल, ११. पात्रकेसरी, १२. वादिसिंह, १३. वीरसेन, १४. जयसेन, १५. कविपरमेश्वर।

इस ग्रन्थ से इसके रचनाकाल का पता नहीं चलता फिर भी अन्य प्रमाणों से ज्ञात होता है कि ये हरिवंशपुराणकार द्वितीय जिनसेन के ग्रन्थकर्तृत्वकाल (शक सं० ७०५ सन् ७८३) में जीवित थे। उनकी ख्याति पार्श्वाभ्युदय रचयिता[1] के रूप में फैली थी। जिनसेन ने अपने गुरु वीरसेन की अधूरी कृति जयधवला को शक सं० ७५९ (सन् ८३७) में समाप्त किया था। उसके बाद वृद्धावस्था काल में ही आदिपुराण की रचना प्रारंभ की थी जिसे समाप्त करने के पूर्व ही वे दिवंगत हो गये थे। स्व० पं० नाथूराम प्रेमी ने[2] अनुमान किया है कि उनका जीवन ८० वर्ष के लगभग रहा होगा और वे श० सं० ६८५ (सन् ७६३) में जन्मे होंगे। जिनसेन द्वितीय के काल (शक सं० ७०५) में वे २०-२५ वर्ष के लगभग रहे हों, जयधवला की समाप्ति काल में ७४ वर्ष और प्रस्तुत पुराण के लगभग १० हजार श्लोकों की रचना के समय ८० या उससे कुछ अधिक रहे होंगे। इनकी उपर्युक्त तीन रचनाओंके अतिरिक्त और कोई कृति नहीं मिलती।

उत्तरपुराण—यह पुराण[3] महापुराण का पूरक भाग है। इसमें अजितनाथ से लेकर २३ तीर्थंकरों, सगर से लेकर ११ चक्रवर्तियों, ९ बलदेवों, ९ नारायणों और ९ प्रतिनारायणों तथा उनके काल में होनेवाले जीवन्धर आदि विशिष्ट पुरुषों के कथानक दिये गये हैं। अवान्तर कथानकों में कई तो बड़े रोचक ढंग से लिखे गये हैं जो पश्चाद्वर्ती अनेकों काव्यों के उपादान बने हैं। इसमें आठवें, सोलहवें, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें तीर्थंकरों को छोड़कर अन्य तीर्थंकरों के चरित्र अत्यन्त संक्षेप में दिये गये, परन्तु वर्णन शैली की मधुरता से वे भी रोचक

---

१. हरिवंशपुराण, १. ४०.

२. जैन साहित्य और इतिहास, पृ. १४१.

३. स्याद्वाद ग्रन्थमाला, इन्दौर, सं. १९७३-७५ हि.अ.स.; भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १९५४.

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

बन पड़े हैं। अवान्तर कथानकों में राजा वसु और पर्वत आख्यान, अभयकुमार का चरित्र तथा जीवन्धरचरित्र बड़े ही मनोहर हैं।

उत्तरपुराण के ६७ और ६८ वे पर्वों में रामकथा दी गई है जो पउमचरिय (प्रा०) और पद्मचरित्र (सं०) में वर्णित कथा से अनेक बातों में भिन्न है। इस पुराण में राजा दशरथ, वाराणसी के राजा थे। राम की माता का नाम सुबाला और लक्ष्मण की माता का नाम कैकयी था। सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न बतायी गई है जिसे रावण ने अनिष्टकारिणी जानकर पेटी में रखकर मिथिला में जमीन के अन्दर गड़वा दिया था और वहां से वह राजा जनक को प्राप्त हुई थी। दशरथ पीछे अपनी राजधानी अयोध्या ले गये थे और वहां से राम ने दशरथ का निमंत्रण पा सीता से विवाह किया था। राम के बनवास का वहां कोई उल्लेख नहीं है। राम सीता सहित अपने पूर्वजों की भूमि देखने बनारस गये और वहां के चित्रकूट वन से रावण ने सीता का अपहरण किया था। यहाँ सीता के आठ पुत्रों का उल्लेख है किन्तु लव-कुश का नहीं, लक्ष्मण की मृत्यु एक असाध्य रोग के कारण हुई, राम ने लक्ष्मण के पुत्र को राजा बनाया तथा अपने पुत्र को युवराज बनाकर दीक्षा लेली, आदि। यह कथा पालि 'दशरथ-जातक' तथा अद्भुत रामायण के कुछ अनुरूप लगती है, पर इसकी अन्य विशेष बातों का पता लगाना कठिन है।

इसी तरह ७१वें पर्व में बलराम, श्रीकृष्ण, उनकी आठ रानियों तथा प्रद्युम्न आदि के भवान्तर दिये गये हैं। इसमें जिनसेन (द्वि०) के हरिवंशपुराण में दिये गये कई स्थानों के नामों तथा कथानक आदि में भेद पाया जाता है।

इस उत्तरपुराण में ४८-७६ तक २९ पर्व हैं। अति विस्तार के भय से, थोड़े में ही कथाएँ समाप्त करना सोचकर कवि ने अपने कवित्व का प्रदर्शन नहीं किया है और केवल पौने आठ हजार श्लोकों में कथाभाग को पूरा किया है। फिर भी बीच-बीच में कितने ही सुभाषित आ गये। इसके प्रतिपर्व की रचना अनुष्टुभ् छन्द में हुई है और सर्गान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। इसमें सब मिलाकर १६ प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। अनुष्टुभ् मान से इसका ग्रन्थप्रमाण ७७७८ श्लोक है।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में ४३ पद्यों की विविध छन्दों में निर्मित एक प्रशस्ति दी गई है जिसके दो भाग हैं। प्रथम भाग १-२७ तक के लेखक गुणभद्र हैं तथा दूसरे भाग के लेखक उनके शिष्य लोकसेन। प्रथम भाग में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थ कर्ता ने अपनी गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है। तदनुसार वे मूलसंघ सेनान्वय में हुए वीरसेन मुनि के प्रशिष्य और जिनसेन के शिष्य थे। उक्त प्रशस्ति से सूचना मिलती है कि अमोघवर्ष जिनसेनका बड़ा भक्त था। उसी प्रशस्ति में महापुराण और उत्तरपुराण का आधार कवि परमेश्वरकृत 'गद्यकथा-ग्रन्थ'[१] बतलाया है। गुणभद्र ने लिखा है कि अति विस्तार के भय से और अतिशय हीन काल के अनुरोध से अवशिष्ट महापुराण को उतने संक्षेप में संग्रह किया है।

ग्रन्थकर्ता ने कहीं भी ग्रन्थ समाप्ति का काल नहीं दिया। प्रशस्ति के दूसरे भाग में उनके शिष्य लोकसेन ने लिखा है कि जब राष्ट्रकूट अकालवर्ष के सामन्त लोकादित्य बंकापुर राजधानी से सारे वनवास देश का शासन कर रहे थे तब शक सं. ८२० की श्रावण कृष्णा पंचमी के दिन इस पुराण की भव्यजनों द्वारा पूजा की गई।

अब तक विद्वानों ने शक सं० ८२० को ग्रन्थ समाप्ति का संवत् माना था जो गलत है।[२] स्व० पं० प्रेमी के मत से उत्तरपुराण की समाप्ति जिनसेन के दिवंगत होने अर्थात् श० सं० ७६५ के अनतिकाल बाद पांच-सात वर्षों में अर्थात् लगभग ७७० या ७७२ होनी चाहिये।[१]

गुणभद्र की अन्य कृतियों में २७२ पद्यों का आत्मानुशासन नामक ग्रन्थ मिलता है जो वैराग्यशतक की शैली में लिखा गया है।

कुछ विद्वान् जिनदत्तचरित्र (९ सर्ग) को भी इनकी रचना बताते हैं। पर लगता है कि यह किसी पश्चात्कालीन भट्टारक गुणभद्र की रचना है।[२]

पुराणसार—इसमें चौबीस तीर्थंकरों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। यह संक्षिप्त रचनाओं में प्राचीन रचना है।[३]

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता लाट बागड़संघ और बलात्कार गण के आचार्य श्रीनन्दि के शिष्य मुनि श्रीचन्द्र हैं। इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १०८० में समाप्त की थी। इनकी अन्य कृतियों में महाकवि पुष्पदन्त के महापुराण पर टिप्पण तथा शिवकोटि की मूलाराधना पर टिप्पण हैं।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १४१-१४२.

२. वही, पृ० ५६५; ३. वही, पृ० २८७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन ग्रन्थों के पीछे प्रशस्ति दी गई है जिससे मालूम होता है कि ये सब ग्रन्थ प्रसिद्ध परमार नरेश भोजदेव के समय में धारा में रहकर लिखे गये थे।

पुराणसारसंग्रह[1]—प्रस्तुत ग्रन्थ में आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्र संकलित हैं। आदिनाथ चरित्र में ५ सर्ग, चन्द्रप्रभ में १ सर्ग, शान्तिनाथ चरित्र में ६ सर्ग, नेमिनाथ चरित्र में ५ सर्ग, पार्श्वनाथ चरित्र में ५ सर्ग, महावीर चरित्र में ५ सर्ग—इस तरह इसमें २७ सर्ग हैं। इनमें से केवल दस सर्गों के अन्तिम पुष्पिका वाक्यों में ग्रन्थ का नाम पुराणसार संग्रह दिया गया है, बारह में पुराणसंग्रह, दो में महापुराणे-पुराणसंग्रहे, एक में महापुराणसंग्रह और एक में केवल महापुराण और तीन में केवल अर्थाख्यानसंग्रह सूचित किया गया है।

इसके रचयिता दामनन्दि की अनेक कृतियों में चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण[2] नाम से एक कृति श्रवण बेल्गोला के भट्टारक के निजी भण्डार में है।[3] लुइस राइस ने अपनी मैसूर और कुर्ग की हस्तलिखित ग्रन्थ-सूची में प्रस्तुत रचना और उक्त पुराण दोनों रचनाओं को अभिन्न सूचित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के उक्त पुष्पिका वाक्यों से प्रतीत होता है कि लेखक ने भिन्न-भिन्न समयों में शनैः-शनैः चौबीसों तीर्थंकरों के चरित्र-निबद्ध किये। उनकी रचना के समय ग्रन्थकार ने पूरे ग्रन्थ का कोई एक नाम निश्चित नहीं किया था, इसलिये किसी सर्ग के अन्त में कोई नाम दिया और किसी में कोई। इसलिये प्रतीत होता है कि ग्रन्थ पूर्ण होने पर पूरे ग्रन्थ का नाम चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण या महापुराण प्रसिद्ध हुआ होगा और सर्गान्त वाक्यों के आधार पर वह अर्थाख्यानसंग्रह, अर्थाख्यानसंयुत, पुराणसारसंग्रह, या पुराण-संग्रह भी कहलाता रहा। किसी कारणवश उक्त पूरे ग्रन्थ में से उक्त ६ चरित्र निकाल कर उनका पृथक् संकलन भी प्रचार में आ गया होगा और उसकी प्रसिद्धि 'पुराणसंग्रह' नाम से ही प्रायः हुई होगी।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस ग्रन्थ के रचयिता दामनन्दि आचार्य हैं, ऐसा अनेक सर्गों के अन्त में दिये गये पुष्पिका वाक्यों से ज्ञात होता है। साहित्य और

1. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९५४ में दो भागों में प्रकाशित (सं० और अनु० डा० गुलाबचन्द्र चौधरी)।
2. जि० र० को०, पृ० २५२.
3. जि० र० को०, पृ० ११६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शिलालेख आदि से दामनन्दि नाम के कई आचार्यों का पता चलता है। सबका समय ११वीं से १३ शताब्दी तक के बीच है। कर्नाटक प्रदेश के चिक्कहन-सोगे तालुके में प्राप्त कई शिलालेखों में दामनन्दि का उल्लेख मिलता है।[1] जिनसे ज्ञात होता है कि दामनन्दि भट्टारक का और उनकी शिष्य-परम्परा का हनसोगे (पनसोगे) के चङ्गाल्व तीर्थ की समस्त वसदियों (जिनालयों) में तथा पास-पड़ोस की वसदियों में पूर्ण एकाधिकार था। हनसोगे में चार प्रसिद्ध बसदियाँ थीं—आदीश्वर, शान्तीश्वर, नेमीश्वर और जिनवसदि। अन्तिम जिन-वसदि में तीन स्वतंत्र खण्ड थे जिनमें क्रमशः चन्द्रप्रभ, पार्श्वनाथ एवं वर्धमान प्रतिमाएँ मूल नायक के स्थान पर प्रतिष्ठित थीं। अनुमान किया जाता है कि ये दामनन्दि भट्टारक ही उक्त चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण के रचयिता थे और स्थानीय महत्त्व की दृष्टि से इस महापुराण में से उपर्युक्त छः तीर्थंकरों के चरित्र संकलित करके एक पृथक् ग्रन्थ के रूप में उन्होंने या उनके शिष्यों ने प्रसिद्ध कर दिये। सम्भवतः यही (प्रस्तुत) वह कथित पुराणसारसंग्रह है। शान्तिनाथचरित्र के अपेक्षाकृत अधिक विस्तार को एवं सर्गान्त वाक्यों को तथा उसके अन्तिम सर्ग के अन्तिम पद्य को देखने से ऐसा लगता है कि ग्रन्थ रचयिता का स्थायी निवास हनसोगे (पनसोगे) की शान्तीश्वर वसदि ही था। वहीं उन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की। भगवान् शान्तिनाथ के वे विशेष भक्त रहे प्रतीत होते हैं। इन दाम-नन्दि का समय ११वीं शताब्दी के मध्य के लगभग पड़ता है।

डा० ज्योतिप्रसाद जैन की मान्यतानुसार[2] ये दामनन्दि एक दूसरे दामनन्दि अर्थात् रविचन्द्र के शिष्य भी हो सकते हैं जिनका समय लगभग १०२५ ई० है। ये चतुर्विंशतिपुराण, जिनशतक (श्लोक सं० ४०००) नामक स्तुति-स्तोत्र-संग्रह, नागकुमारचरित्र, धन्यकुमारचरित्र तथा दानसार (श्लोक सं० ३०००)—इन पाँच ग्रन्थों के रचयिता हैं।[3] डा० जैन ने अनुमान किया है कि ये ही दाम-नन्दि एक महावादी विष्णुभट्ट को पराजित करने वाले थे तथा 'आयज्ञानतिलक' के रचयिता भट्टवोसरि के गुरु थे तथा अपने समय के प्रभावक आचार्य थे।

पुराणसार नाम से कुछ अन्य रचनाएँ मिलती हैं जिनमें भ० सकलकीर्ति कृत गद्यात्मक है और दूसरी अज्ञातकर्तृक है।

---

१. जै० शि० ले० सं० भा० २, नं० २२३, २३९, २४१.

२. जैन सन्देश, शोधांक २२, भा० दि० जै० सं० मथुरा, अक्टू० १९६५.

३. जि० र० को०, पृ० ११६, २५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुराण—इसके[1] अपर नाम 'त्रिषष्टिमहापुराण' या 'त्रिषष्टिशलाकापुराण' हैं। इसका परिमाण दो हजार श्लोकों का है जिसमें तिरसठ शलाका पुरुषों की संक्षिप्त कथा है। रचना सुन्दर और प्रसाद गुण युक्त है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता मुनि मल्लिषेण हैं। महापुराण में रचना का समय शक सं० ९६९ (वि० सं० ११०४) ज्येष्ठ सुदी ५ दिया गया है। इसलिए मल्लिषेण विक्रम की ११वीं के अन्त और १२वीं सदी के प्रारंभ के विद्वान् हैं। मल्लिषेण की गुरुपरम्परा इस प्रकार है: अजितसेन (गंगनरेश रायमल्ल और सेनापति चामुण्डराय के गुरु) के शिष्य कनकसेन, कनकसेन के जिनसेन और उनके शिष्य मल्लिषेण। ये एक बड़े मठपति थे और कवि होने के साथ-साथ बड़े मंत्रवादी थे। धारवाड़ जिले के मुल्गुन्द में इनका मठ था वहीं उक्त महापुराण लिखा गया था। इनकी अन्य कृतियों में नागकुमार-काव्य, भैरवपद्मावती-कल्प, सरस्वतीमंत्रकल्प, ज्वालिनीकल्प और कामचाण्डाली-कल्प मिलते हैं।

त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र—इसमें ६३ शलाका महापुरुषों के जीवनचरित अति-संक्षिप्त रूप में दिये गये हैं।[2] यह भगवज्जिनसेन और गुणभद्र के महापुराण का सार है। यह ग्रन्थ खांडिल्यवंशी जाजाक नामक पण्डित की प्रार्थना और प्रेरणा से नित्य स्वाध्याय करने के लिए रचा गया था। इसके पढ़ने से महापुराण का सारा कथा भाग स्मृति गोचर हो जाता है। ग्रन्थकार ने टिप्पणी रूप में इसपर स्वोपज्ञ 'पंजिका' टीका लिखी है। सम्पूर्ण रचना को २४ अध्यायों में विभक्त किया गया है और इस ग्रन्थ का प्रमाण ४८० श्लोक है। समस्त ग्रन्थ की रचना सुललित अनुष्टुप् छन्दों में की गई है।

ग्रन्थकर्ता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध पं० आशाधर हैं। ये बघेरवाल जाति के जैन थे तथा प्रसिद्ध धारा नगरी के समीप नलकच्छपुर (नालछा) के निवासी थे। इन्होंने लगभग १९ ग्रन्थों की रचना की है उनमें कई प्राप्त हैं और प्रकाशित हैं और कई अब तक अनुपलब्ध हैं। काव्यग्रन्थों में इनके

---

१. जि० र० कोश, पृ० १६३ और ३०५; जैन० सा० और इतिहास, पृ० ३१४-३१९.

२. माणिक्यचन्द्र दि० जै० ग्र० मा० बम्बई, १९३७; जिनरत्नकोश, पृ० १६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. भरतेश्वराभ्युदय काव्य स्वोपज्ञटीका सहित, २. राजीमतीविप्रलम्भ तथा ३. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र हैं। शेष श्रावक-मुनि आचार, स्तोत्र, पूजा, विधान तथा टीकाएँ हैं।

इनके ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ परमारवंशी राजाओं के इतिहास-काल जानने के लिए बड़ी उपयोगी हैं।[१]

इस ग्रन्थ के अन्त में जो प्रशस्ति दी गई है उससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना परमारनरेश जैतुगिदेव के राज्यकाल में विक्रम सं० १२९२ में नलकच्छपुर के नेमिनाथ मन्दिर में हुई थी।

आदिपुराण[२]-उत्तरपुराण[३]—आदिपुराण को 'ऋषभदेवचरित' तथा 'ऋषभनाथचरित' नाम से भी कहा जाता है। इसमें बीस सर्ग हैं। उत्तरपुराण का विशेष विवरण नहीं मिल सका है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इन दोनों कृतियों के लेखक भट्टारक सकलकीर्ति हैं। इनका परिचय इनकी अन्यतम कृति हरिवंशपुराण के प्रसंग में दिया गया है।

तिरसठ महापुरुषों के चरित से संबंधित केशवसेन (सं० १६८८) और प्रभाचन्द्र के कर्णामृतपुराण[४] भी उल्लेखनीय हैं।

रायमल्लाभ्युदय—इसमें चौबीस तीर्थंकरों का चरित्र महापुराण के अनुसार दिया गया है। यह अबतक अप्रकाशित है तथा हस्तलिखित प्रति के रूप में खंभात के कल्याणचन्द्र जैन पुस्तक भण्डार में है। पत्र संख्या १०५ है। यह ग्रन्थ अकबर के दरबारी सेठ चौधरी रायमल्ल (अग्रवाल दिग०) की अभ्यर्थना और प्रेरणा से रचा गया था, इसलिये इसका नाम 'रायमल्लाभ्युदय' रखा गया।[५]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता उपाध्याय पद्मसुन्दर हैं जोकि नागौर तपागच्छ के बहुत बड़े विद्वान् थे। उनके गुरु का नाम पद्ममेरु और प्रगुरु का आनन्दमेरु था। पद्मसुन्दर अपने युग के प्रभावक आचार्य थे।

---

१. विशेष परिचय के लिए देखें—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३४३–३५८.
२. जि० र० को०, पृ० २८. ३. वही, पृ० ४२. ४. वही, पृ० ६८.
५. इसका परिचय प्रो० पीटर पिटर्सन ने जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, बम्बई ब्रांच (एक्स्ट्रा नं० सं० १८८७) में विस्तार से दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बादशाह अकबर के दरबार में ३३ हिन्दू सभासदों के पाँच विभागों में से उनका नाम प्रथम विभाग में था। उनने अकबर के दरबार में एक महापण्डित को वाद-विवाद में परास्त भी किया था और सम्मानित हुए थे। जोधपुर के हिन्दू नरेश मालदेव ने भी इनका सम्मान किया था। 'अकबरशाहि-शृंगारदर्पण' की प्रशस्ति से मालूम होता है कि पद्मसुन्दर के दादागुरु आनन्दमेरु का अकबर के पिता हुमायूँ और पितामह बाबर के दरबार में बड़ा सम्मान था।

पद्मसुन्दर बड़े ही उदारबुद्धि थे। उन्होंने दिगम्बर सम्प्रदाय के रायमल्ल के अनुरोध पर उक्त ग्रन्थ की ही नहीं बल्कि पार्श्वनाथकाव्य की भी रचना की है। उक्त दोनों ग्रन्थों की प्रशस्तियों में रायमल्ल के वंश का परिचय तथा काष्ठा-संघ के आचार्यों की गुरु-परम्परा दी गई है।

पद्मसुन्दर ने कई ग्रन्थ लिखे थे: भविष्यदत्तचरित, रायमल्लाभ्युदय, पार्श्वनाथकाव्य, प्रमाणसुन्दर, सुन्दर प्रकाश शब्दार्णव (कोष), शृंगारदर्पण, जम्बूचरित (प्राकृत), हायनसुन्दर (ज्योतिष) और कई लघु कृतियाँ। ये समस्त रचनाएँ उन्होंने वि० सं० १६२६ और १६३९ के बीच रची थीं। उनका स्वर्गवास वि० सं० १६३९ में हुआ था।[1]

चउप्पन्नमहापुरिसचरियं—इस चरित[2] में केवल ५४ महापुरुषों का वर्णन किया गया है। जैन साहित्य में महापुरुषों के सम्बंध में दो मान्यताएँ हैं। समवायांग सूत्र के २४६ से २७५ वें सूत्र तक ६३ शलाकापुरुषों के नाम दिये गये हैं पर ९ प्रतिवासुदेवों को छोड़ शेष ५४ को ही सूत्र सं० १३२ में 'उत्तमपुरुष' कहा गया है। इस चरित में भी ९ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर शेष ५४ को ही 'उत्तमपुरुष' कहा गया है। पर चरित्र प्रतिपादन की दृष्टि से देखा जाय तो इसमें ५१ महापुरुषों का ही वर्णन है क्योंकि शान्ति, कुन्थु और अरनाथ ये तीन नाम तीर्थंकर और चक्रवर्तियों-दोनों में सामान्य हैं। इतना ही नहीं, विषय-सूची देखने से ज्ञात होता है कि वास्तविक चरित ४० ही रह जाते हैं क्योंकि पिता-पुत्र, अग्रज-अनुज के सम्बंध से कुछ चरित साथ-साथ दिये गये हैं इसलिए विशिष्ट चरितों की संख्या ४० शेष रह जाती है।

---

१. अनेकान्त, वर्ष ४ अं० ८; अगरचन्द्र नाहटा—'उपाध्याय पद्मसुन्दर और उनके ग्रन्थ' तथा वही, वर्ष १० अं० १ 'कवि पद्मसुन्दर और श्रावक रायमल्ल'; नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९५-४०३.

२. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, सन् १९६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापुरुषों के समुदित चरित्र को प्राकृत भाषा में वर्णन करनेवाले उपलब्ध ग्रन्थों में इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम स्थान है। संस्कृत-प्राकृत भाषाओं में एक-कर्तृक की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ सर्वप्रधान है। संस्कृत में इसके पूर्व 'महापुराण' मिलता है पर वह भी एककर्तृक नहीं है। इसकी पूर्ति जिनसेन के शिष्य गुणभद्राचार्य ने की थी।

इस ग्रन्थ का श्लोकपरिमाण १०८०० है। यह एक गद्य-पद्यमिश्रित रचना है। प्रारंभ में ऋषभदेव चरित के मध्य एक **'विबुधानन्दनाटक'** (संस्कृत-प्राकृतमिश्रित) दिया गया है और यत्र-तत्र अपभ्रंश के सुभाषित भी दिये गये हैं। देशी शब्दों का भी प्रयोग उचित मात्रा में हुआ है।

लेखक ने कथावस्तु के पूर्व स्रोतों के रूप में आचार्यपरम्परा द्वारा प्राप्त प्रथमानुयोग का निर्देश किया है पर उनके समक्ष शायद ही प्रथमानुयोग रहा हो। ग्रन्थकार ने पूर्ववर्ती रचनाओं से कथावस्तु ग्रहण की है परन्तु उसमें भी कई बातों में भिन्नता प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए रामकथा को ही लें। अधिकांश वर्णन तो विमलसूरि रचित पउमचरियं के समान है पर कुछ बातों में भेद है यथा—रावण की बहिन को पउयचरियं में चन्द्रनखा कहा है तो यहाँ उसका नाम सूर्पनखा, पउमचरियं में रावण लक्ष्मण के स्वर में सिंहनाद करके राम को धोखा देता है किन्तु यहाँ सुवर्णमय मायामृग का प्रयोगकर, यहां राम के हाथ से बालि का वध बताया गया है जबकि पउमचरियं में दीक्षा लेना। इन बातों से लगता है कि इस रचना पर वाल्मीकि रामायण का अधिक प्रभाव है। वैसे ग्रन्थ के अन्त में शीलांक ने स्पष्टतः कहा है कि राम-लक्ष्मण का चरित्र पउमचरियं में विस्तार से वर्णित है।

इस ग्रन्थ के ४० चरित्रों में २१ चरित तो कथाओं के अति संक्षिप्त नोट जैसे लगते हैं। कई तो ५-७ पंक्तियों में या आधे-पौन पृष्ठ में और अधिक से अधिक एक या सवा पृष्ठ में समाप्त किये गये हैं। केवल १९ चरित्र अनेकों विशेषताओं के कारण विस्तृत हुए हैं—जैसे महापुरुष के क्रम से १-२. ऋषभ-भरत चरित, ३०-३१. शान्तिनाथ चरित (तीर्थ० चक्र०), ४१. मल्लिस्वामि और ५३. पार्श्वस्वामिचरित–इन चार चरित्रों में कथानायक के पूर्वभवों का विस्तार से वर्णन है। ७. सुमतिस्वामिचरित पूर्व भव की कथा तथा शुभाशुभ कर्म विपाक के लम्बे उपदेश के कारण विस्तार से वर्णित है। ४. सगरचरित,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. सनत्कुमारचरित, ३८. सुभूमचरित, ४९-५०-५१ नेमिनाथ-कृष्ण-बलदेव-चरित, ५२. ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति, तथा ५४. वर्धमानस्वामिचरित—इन छः चरित्रों में कथानायकों के विविध प्रसंगों का विस्तार है। ३. अजितस्वामि-चरित, १७-१८. द्विपृष्ठ-विजयचरित, २०-२१ स्वयम्भू-भद्रबलदेवचरित्र, ३४-३५ अरस्वामि (तीर्थ-चक्र०)-चरित—इन चार चरित्रों में अवान्तर कथाओं के कारण विस्तार किया गया है। १४-१५. त्रिपृष्ठ-अचलचरित्र में सिंहवध-घटना के अतिरिक्त मुख्य रूप से पूर्वभवों के वृत्तान्त के कारण विस्तार हुआ है। ५. संभवचरित, ८ पद्मप्रभचरित १०. चन्द्रप्रभचरित्र—इन तीन चरितों में क्रमशः कर्मबन्ध, देव-नरक गति तथा नरकों से सम्बद्ध उपदेश ही अधिक हैं, चरित तो एक तालिका मात्र ही रह गए हैं।

इसमें समागत वरुणवर्मकथा, विजयाचार्यकथा और मुनिचन्द्रकथा—इन तीन अवान्तर कथाओं की तथा ब्रह्मदत्तचक्रवर्ति-चरित के अधिकांश भाग की रचनाशैली आत्मकथात्मक है।

अन्य चरित-ग्रन्थों से इसमें विशेषता यह है कि इसमें सर्वप्रथम हमें नाटक रूप में अवान्तर कथा रचे जाने का नमूना मिलता है।

इस काव्य का पश्चात्कालीन संस्कृत-प्राकृत कई काव्यों पर प्रभाव है।

सांस्कृतिक सामग्री की दृष्टि से इसमें युद्ध, विवाह, जन्म एवं उत्सवों के वर्णन में तत्कालीन प्रथाओं और रीति-रिवाजों के अच्छे उल्लेख मिलते हैं। इसमें चित्रकला और संगीतकला की अच्छी सामग्री दी गई है। इसकी भाषा, शैली आदि महाकाव्य के अनुरूप ही हैं।

ग्रन्थकार और उनका समय—इस चरित ग्रन्थ के रचयिता ने अपनी पहचान तीन नामों से दी है—१. शीलांक या सीलंक, २. विमलमति और ३. सीलाचरिय। ग्रन्थ के अन्त में पाँच गाथाओं की एक प्रशस्ति दी गई है उससे ज्ञात होता है कि ये निर्वृत्ति कुल के आचार्य मानदेवसूरि के शिष्य थे।[1] लगता है आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व और उसके बाद ग्रन्थकार का नाम क्रमशः विमलमति और शीलाचार्य रहा होगा। 'शीलांक' तो उपनाम जैसा प्रतीत होता है जो संभवतः उनकी अन्य रचनाओं में भी प्रयुक्त हुआ हो।

१. प्रस्तावना, पृ० ५२-५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशीनाममाला में हेमचन्द्र द्वारा प्रयुक्त कुछ उद्धरणों से प्रतीत होता है कि शीलांक रचित कोई 'देशी नाममाला' या 'देशी शब्दकोश' की टीका रही होगी। वैसे शीलांक नाम के अन्य भी आचार्य हो गये हैं पर उनकी आगमविषयक ही रचनाएँ हैं। बृहट्टिप्पनिका में 'चउप्पन्नमहापुरिसचरियं' का रचना-समय वि० सं० ९२५ दिया है। ये शीलाचार्य अपने समकालीन शीलाचार्य अपरनाम तत्त्वादित्य से भिन्न हैं। तत्त्वादित्य ने आचारांग तथा सूत्रकृतांग पर वृत्ति लिखी थी।

कहावलि—इस ग्रन्थ[1] में तिरसठ महापुरुषों का चरित्र वर्णित है। इसकी रचना प्राकृत गद्य में की गई है पर यत्र-तत्र पद्य भी पाये जाते हैं। ग्रन्थ में किसी प्रकार के अध्यायों का विभाग नहीं। कथाओं के आरम्भ में 'रामकहा भण्णइ', 'वाणरकहा भण्णइ' आदि रूप से निर्देश मात्र कर दिया गया है। यह कृति पश्चात् कालीन त्रिषष्टिशलाकापुरुषमहाचरित (हेमचन्द्र) आदि रचनाओं का आधार है। इसके ऐतिहासिक भाग 'थेरावलीचरियं' की सामग्री का हेमचन्द्र ने 'परिशिष्टपर्व' अपरनाम 'स्थविरावलीचरित' में उपयोग किया है। इसमें रामायण की कथा विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' का अनुसरण करती है पर यहाँ-वहाँ कुछ फेरफार किया गया है, जैसे सीता के गृह-निर्वास प्रसंग में कहा गया है कि जब सीता गर्भवती हुई तो उसे स्वप्न में दिखा कि उसके दो पराक्रमी पुत्र होंगे। स्वप्न की यह बात सपत्नियों के लिये ईर्ष्या का विषय हो गई और उन्होंने छल से राम के आगे उसे बदनाम करना चाहा। उन्होंने सीता से रावण का चित्र बनाने का आग्रह किया। सीता ने यह कहते हुए कि उसने रावण के मुखादि अंग तो देखे नहीं, केवल उसके पैरों का चित्र बना दिया। इसपर सपत्नियों ने लांछन लगाया कि वह रावण पर अनुरक्त है और उसीके चरणों का वन्दन करती है। राम ने यद्यपि इसपर तत्काल कोई ध्यान नहीं दिया पर सपत्नियों ने जनता में जब अपवाद फैलाना शुरू किया तो राम को विवश होकर उसे निर्वासित करना पड़ा।

रावण के चित्र की घटना हेमचन्द्र ने अपने त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में भी दी है।

---

१. इसका सम्पादन उ० प्रे० शाह गाय० ओरि० सि० बड़ौदा के लिए कर रहे हैं।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

कर्ता एवं रचनाकाल—इस महत्त्वपूर्ण कृति के रचयिता भद्रेश्वरसूरि हैं। ये अभयदेवसूरि के गुरु थे। अभयदेव के शिष्य आषाढ का समय वि० सं० १२४८ है। अतः भद्रेश्वर का समय १२वीं शताब्दी के मध्य के आसपास मान सकते हैं। परन्तु इस ग्रन्थ की भाषा चूर्णियों की भाषा के बहुत समीप है। सम्पादक ने दिखाने का प्रयास किया है कि कहावलि ग्रन्थ १२वीं शताब्दी से बहुत पहले का है। उक्त ग्रन्थ के स्थविरावली के अंश में निम्न अवतरण

'जो उण मल्लवाई व पुव्वगयावगाही खमापहाणो समणो सो खमा समणो नाम जहा आसो इह संपयं देवलाय (देवलोयं) गओ जिणभद्दि (द) गणि खमासमणो त्ति रयि याई च तेण विसेसावस्सय विसेसणवई सत्थाणि जेसु केवल नाणदस्सणवियारावसरे पयडियाभिप्पाओ सिद्ध-सेन दिवायरो।'

से ज्ञात होता है कि जिनभद्र क्षमाश्रमण संपयं (इसी समय) देवलोक को गये हैं। इससे कहावलि को जिनभद्र से एकदम छः शताब्दी पीछे नहीं रखा जा सकता। जिनभद्र के बहुत ख्यातिप्राप्त होने से उनके लिये साम्प्रत शब्द दो शताब्दी पूर्व तक के लिये लग सकता है। इसलिए कहावलि को आठवीं के बाद की रचना कहना उचित न होगा।[1]

चउप्पन्नमहापुरिसचरिय—यह प्राकृत भाषानिबद्ध ग्रंथ १०३ अधिकारों में विभक्त है। इसका मुख्य छन्द गाथा है। इसका श्लोक-परिमाण १००५० है जिसमें ८७३५ गाथाएँ और १०० इतर वृत्त हैं। यह ग्रंथ अब तक अप्रकाशित है।

इसमें भी चौवन महापुरुषों के चरित्र का वर्णन है। ग्रंथ-समाप्ति पर उपसंहार में कहा गया है कि ५४ में ९ प्रतिवासुदेवों को जोड़ने से तिरसठ शलाकापुरुष बनते हैं। इसमें तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षिणियों का उल्लेख है जो प्राचीनतम ग्रंथों में नहीं मिलता अतः सम्भावना की जा सकती है कि यह ग्रंथ शीलांक के चउप्पन्नम० के बाद रचा गया होगा।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता आम्र कवि हैं। ग्रंथ के प्रारम्भ और अन्त में ग्रंथकार ने अपने लिए अम्म शब्द के अतिरिक्त कोई विशेष परि-

---

1. जैन सत्यप्रकाश, भाग १७, सं० ४, जनवरी १९५९ में उ० प्रे० शाह का लेख; आल इण्डिया ओरि० का० वर्ष २० भाग २ के पृ० १४७ में भी सम्पादक का उक्त अभिप्राय अंकित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्यायक सामग्री नहीं दी है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वि० सं० ११९० में रचित 'आख्यानकमणिकोश' वृत्तिकार आम्रदेव और इस चरित के रचयिता एक ही हैं पर उक्त वृत्ति में अम्म और आम्रदेव के अभिन्न होने का कोई आधार नहीं मिलता है।[1]

इस ग्रंथ की अनुमानतः १६वीं शताब्दी की हस्तलिखित प्रति खम्भात के विजयनेमिसूरीश्वर-शास्त्रसंग्रह में उपलब्ध है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित—इस महाचरित में जैनों के कथानक, इतिहास, पौराणिक कथाएँ, सिद्धान्त एवं तत्त्वज्ञान का संग्रह है।[2] यह सम्पूर्ण ग्रन्थ १० पर्वों में विभक्त है। प्रत्येक पर्व अनेकों सर्गों में विभक्त हैं। इस ग्रंथ की आकृति ३६००० श्लोकप्रमाण है।[3] महासागर समान इस विशाल ग्रंथ की रचना हेमचन्द्राचार्य ने अपनी उत्तरावस्था में की थी। उनकी सुधावर्षिणी वाणी का गौरव और माधुर्य इस काव्य में स्वयं अनुभव किया जा सकता है। समकालीन सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक प्रणालियों का प्रतिबिम्ब इस विशाल ग्रन्थ में अनेकों स्थलों में देख सकते हैं। इस प्रकार से इसमें गुजरात के उस समय का समाज और उसका मानस अच्छी तरह प्रतिबिम्बित हुआ है। इस दृष्टि से त्रि० श० पु० च० का महत्त्व हेमचन्द्राचार्य की कृतियों में विशिष्ट है। इनके 'द्वयाश्रय' में जितना वैविध्य दृष्टिगोचर होता है उसे अधिक इस ग्रंथ में होता है।

तिरसठ-शलाका-पुरुषों का चरित १० पर्वों में इस प्रकार समाविष्ट है :—

१ पर्व में आदीश्वर प्रभु और भरतचक्री।

२ पर्व में अजितनाथ तथा सगरचक्री।

३ पर्व में सम्भवनाथ से लेकर शीतलनाथ तक आठ तीर्थंकरों का चरित।

---

१. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी से प्रकाशित 'आख्यानकमणिकोश' की भूमिका, पृ० ४२.

२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९०६–१३.

३. जिनमण्डन ने 'कुमारपालचरित' में इसको ३६००० श्लोकप्रमाण लिखा है, मुनि पुण्यविजय ३२००० श्लोकप्रमाण बतलाते हैं, प्रो० याकोबी ने ३७००० श्लोकप्रमाण बतलाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४ पर्व में श्रेयांसनाथ से लेकर धर्मनाथ तक पाँच तीर्थंकर, पाँच वासुदेव, पाँच प्रतिवासुदेव और पाँच बलदेव तथा दो चक्रवर्ती—मघवा और सनत्कुमार इस प्रकार सब मिला कर २२ महापुरुषों का चरित ।

५ पर्व में शान्तिनाथ का चरित । ये एक ही भव में तीर्थंकर और चक्रवर्ती दोनों थे । उनके दो चरित गिनती में आये ।

६ पर्व में कुन्थुनाथ से मुनिसुव्रत तक चार तीर्थंकर, चार चक्रवर्ती, दो वासुदेव, दो बलदेव तथा दो प्रतिवासुदेव—इन १४ महापुरुषों का चरित । उनमें भी कुन्थुनाथ और अरनाथ उसी भव में चक्रवर्ती हुए थे । उनकी दो चक्रवर्तियों के रूप में भी गिनती की जाती है ।

७ पर्व में नेमिनाथ, १०वें-११वें चक्रवर्ती हरिषेण और जय तथा आठवें बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव—राम, लक्ष्मण तथा रावण—के चरित मिलाकर ६ महापुरुषों के चरित । इस पर्व का अधिक भाग रामचन्द्र आदि के चरित का वर्णन करता है । इसे जैन रामायण अथवा पद्मचरित भी कहते हैं ।

८ पर्व में नेमिनाथ तीर्थंकर तथा नवम वासुदेव, बलदेव और प्रतिवासुदेव—कृष्ण, बलभद्र और जरासंध को मिलाकर ४ महापुरुषों के चरित । पाण्डव-कौरव भी नेमिनाथ के समकालीन थे । उनके चरित भी इस पर्व में आ गये हैं । इस पर्व की कथावस्तु जैन हरिवंशपुराण के रूप में भी कही जाती है । दिग० आचार्य जिनसेन का संस्कृत में रचा हरिवंशपुराण खूब प्रख्यात है । इसके उपरांत कवियों में स्वयंभू, धवल आदि ने भी अपनी कुशल लेखनी इस विषय पर चलाई है ।

९ पर्व में पार्श्वनाथ तीर्थंकर और ब्रह्मदत्त नामक बारहवें चक्रवर्ती के चरित ।

१० पर्व में भग० महावीर का जीवनचरित है । अन्य पर्वों की अपेक्षा यह पर्व बहुत बड़ा है । सम्पूर्ण पर्व में कुल १३ सर्ग हैं और ग्रन्थकार की प्रशस्ति है । इस पर्व में श्रेणिक, कोणिक, सुलसा, अभयकुमार, चेटकराज, हल्लविहल्ल, मेघकुमार, नन्दिषेण, चेलना, दुर्गन्धा, आर्द्रकुमार, ऋषभदत्त, देवनन्दा, जमालि, शतानीक, चण्डप्रद्योत, मृगावती, यासासासा, आनन्द आदि दश श्रावक, गोशालक, हालीक, प्रसन्नचन्द्र, दर्दुराङ्कदेव, गौतमस्वामी, पुण्डरीक-कंडरीक, अंबड, दशार्णभद्र, धन्ना-शालिभद्र, रौहिणेय, उदयन शतानीक-पुत्र, अन्तिम राजर्षि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदायन, प्रभावती, कपिलकेवली, कुमारनन्दि सोनी, उदायि, कुलवालुक और कुमारपाल राजा आदि के चरित्र और प्रबन्ध बहुत प्रभावक रूप में वर्णित हैं। इनमें भी श्रेणिक, कोणिक, अभयकुमार, आर्द्रकुमार, दर्दुराङ्कदेव, अन्तिम राजर्षि उदायन और गोशालक आदि के वृत्तान्त बहुत विस्तार से दिये गये हैं। इनमें से कई अंश अन्य ग्रन्थों में अलभ्य हैं। पाँचवें और छठे आरा (काल) का तथा उत्सर्पिणी काल में आने वाला वृत्तान्त भी बड़े विस्तार से आया है। इन और अन्य अनेक बातों से परिपूर्ण यह चरित है।

त्रि० श० पु० च० में तत्कालीन अनेक सामाजिक चित्र दृष्टिगोचर होते हैं यथा ऋषभदेव के विवाह प्रसंग में हेमचन्द्राचार्य ने समकालीन प्रथाएँ और रीति-रस्में दी हैं।[१]

धार्मिक दृष्टि से इसकी महत्ता दश पर्वों में अलग-अलग तीर्थंकरों की देशना द्वारा जैन सिद्धान्तों के विवेचन से ज्ञात होती है। इसमें नयों का स्वरूप, क्षेत्रसमास, जीवविचार, कर्मस्वरूप, आत्मा का अस्तित्व, बारह भावना, संसार से विरक्ति आदि का सरल और चित्ताकर्षक भाषा में वर्णन किया गया है।[२]

ऐतिहासिक दृष्टि से भी त्रि० श० पु० च० के दशवें पर्व के दो विभाग अत्यन्त उपयोगी हैं। एक तो कुमारपाल के भविष्य कथन रूप में लिखा हुआ चरित और दूसरा ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति। अन्त्य प्रशस्ति की कई बातें तो प्रकरण के प्रारम्भ में दी गई हैं परन्तु अखिल प्रशस्ति ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। १०वें पर्व के १२वें सर्ग में कुमारपाल के चरित का उल्लेख किया गया है। उसमें पाटन का, कुमारपाल का, उसके राज्यविस्तार का, जिनप्रतिमा के प्रासाद का तथा दूसरी अनेक बातों का वर्णन आया है। राज्यविस्तार का वर्णन करते[३] हुए लिखा है कि :—

'स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगाम्।
याम्यामाविन्ध्यमाम्भोधिं पश्चिमां साधयिष्यति[४]॥'

---

१. पर्व १ स० २. ७९६–८०४.

२. गुजराती भाषान्तर पर्व १-२ की प्रस्तावना, पृ० ३.

३. पर्व १०, स० १२, श्लो० ३७–९६.

४. वही, श्लो० ५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् वह राजा उत्तर दिशा में तुरुष्क देश तक, पूर्व में गंगा नदी तक, दक्षिण में विन्ध्यगिरि तक और पश्चिम में समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का शासन करेगा।

काव्य और शब्दशास्त्र की दृष्टि से भी यह काव्य बड़े महत्त्व का है। यह प्रसाद-गुण व्याप्त है। अलंकारों और कवि-कल्पनाओं तथा शब्द-माधुर्य से व्याप्त है। इसमें सरल पर गौरव पूर्ण भाषा है। इस ग्रन्थ को पढ़ने से शब्दशास्त्र, छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र, तत्त्वज्ञान, पौराणिक कथा, इतिहास आदि अनेक बातों की उपलब्धि एक साथ होती है।

हेमचन्द्र के साथ कुमारपाल का प्रथम मिलन निम्न प्रकार बतलाया गया :—

एक समय वज्रशाखा और चन्द्रकुल में हुए आचार्य हेमचन्द्र उस राजा की दृष्टि में आवेंगे। आचार्य द्वारा जिनचैत्य में धर्मदेशना देते समय उनकी वन्दना करने के लिये अपने श्रावक मंत्री के साथ वह राजा आवेगा। तत्त्व को न जानता हुआ भी शुद्धभाव से आचार्य की वन्दना करेगा। पश्चात् उनके मुख से शुद्ध धर्मदेशना प्रीतिपूर्वक सुनकर वह राजा सम्यक्त्व पूर्वक अणुव्रत स्वीकार करेगा और पूर्णरीति से बोध प्राप्त कर श्रावक के आचार का पारगामी होगा।

सोमप्रभकृत कुमारपाल प्रतिबोध के आरम्भ के कथानक के साथ यह वर्णन बहुत कुछ मिलता है। इसलिये ऐतिहासिक सत्य की दृष्टि से भी आचार्य के साथ कुमारपाल का सम्बन्ध वाग्भट जैसे जैन मंत्रियों की प्रेरणा से बहुत दृढ़ हुआ और जैनधर्म के प्रति उसका आध्यात्मिक भाव उनके सहृदय उपदेशों से व्याप्त हो गया।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र हैं जिनके जीवन-चरित पर बहुविध सामग्री उपलब्ध होती है। उनके जीवन-चरित पर पूर्व भागों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

त्रि० श० पु० च० में बड़ी प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना हेमचन्द्र ने चौलुक्य नृप कुमारपाल के अनुरोध से की थी।[१] सम्भवतः कुमारपाल के जैनधर्म स्वीकार करने के बाद उसके अनुरोध पर हेमचन्द्र

१. पर्व १०, प्रशस्ति, पद्य १६–२०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में इसकी रचना की थी। डा० बूल्हर ने इसकी रचना का समय वि० सं० १२१६-१२२८ माना है। वि० सं० १२२९ में हेमचन्द्र का स्वर्गवास हुआ था।[१]

प्रशस्ति से यह भी मालूम होता है कि इसकी रचना योगशास्त्र की रचना के बाद की गई थी। योगशास्त्र की वृत्ति में कई श्लोक त्रि० श० पु० च० से उतारे गये हैं। इससे यह मान सकते हैं कि उक्त वृत्ति और इस चरित की रचना एक साथ हुई थी। इतना ही नहीं परिशिष्टपर्व की योजना भी उस समय बन गई थी। इसके भी कई प्रमाण मिलते हैं।

हेमचन्द्र ने यद्यपि पूर्वाचार्यों या उनकी कृतियों का उल्लेख नहीं किया है, फिर भी उन्होंने अनेक पूर्वाचार्यों की कृतियों का उपयोग किया है। उनसे पूर्व दिग० और श्वेता० दोनों सम्प्रदायों के कवियों ने इस विषय को संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में लिखा है। उस समय तक तीर्थंकरों के अलग-अलग अनेक आख्यान भी लिखे गये थे। विमलसूरि, रविषेण, शीलांक, जिनसेन प्रथम, द्वितीय, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धवल आदि के ग्रन्थों के अतिरिक्त, आवश्यक तथा दूसरे सूत्रों के ऊपर लिखी चूर्णियाँ तथा हरिभद्रसूरि की टीकाएँ आदि में आनेवाली कथाएँ भी हेमचन्द्राचार्य के समक्ष थी हीं। पुरोवर्ती आचार्यों की अनेक कृतियों का हेमचन्द्राचार्य ने अपनी इस कृति में न्यूनाधिक रूप से उपयोग किया है।

त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषचरित से प्रभावित रचनाएँ :

चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरितानि (अमरचन्द्रसूरि)—ई० सन् १२३८ के पूर्व रचित इस कृति में २४ अध्याय और १८०२ पद्य हैं। इसमें २४ तीर्थंकरों के संक्षिप्त जीवन चरित्र दिये गये हैं। रचयिता का भाव सभी जिनों के चरित्र को थोड़े में लिखने का था इसलिए इसमें काव्यकला प्रदर्शन करने का कोई अवसर नहीं मिला। प्रत्येक अध्याय में मुख्य विषयों की चर्चा इस प्रकार है—१. पूर्वभव, २. वंशपरिचय, ३. तीर्थंकर को विशेष नाम दिये जाने की व्याख्या, ४. च्यवन, गर्भ, जन्म, दीक्षा और मोक्ष के दिन, ५. चैत्यवृक्ष की ऊँचाई, ६. गणधर, साधु, साध्वी, चौदहपूर्वी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी,

---

१. विशेष जीवनचरित्र के लिये देखें—हेमचन्द्राचार्य-जीवन-चरित्र (कस्तूरमल बांठिया), चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी १. परिशिष्ट 'अ' और 'ब' में ग्रंथ-सूची दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवली, विक्रिया ऋद्धिधारी न्यायवादी, श्रावक और श्राविका-परिवार, ७. आयु, शैशवावस्था, राज्यावस्था (यदि हो तो), छद्मस्थावस्था और केवली अवस्था का वर्णन।[1]

ग्रन्थ-कर्ता अपने समय के बहुत बड़े कवि थे। उनके अन्य ग्रन्थ हैं: पद्मानन्द, बालभारत आदि १३ ग्रन्थ। बालभारत के परिचय के साथ इस कवि का विशेष परिचय दिया गया है।

महापुरुषचरित—इस रचना में पांच सर्ग हैं।[2] ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और वर्धमान इन पाँच तीर्थंकरों का वर्णन है। इस पर एक टीका भी है, जो संभवतः स्वोपज्ञ है। उसमें उक्त कृति को काव्योपदेशशतक या धर्मोपदेश-शतक भी कहा गया है।

इसके रचयिता मेरुतुंग हैं। इनकी अन्य रचना प्रबंधचिन्तामणि (सन् १३०६) है। कवि का विशेष परिचय प्रबंधचिन्तामणि के प्रसंग में दिया जायगा।

लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित—यह ग्रन्थ[3] हेमचन्द्राचार्य कृत त्रि० श० पु० च० के अनुकरण पर निर्मित हुआ है। इसमें भी १० पर्व हैं पर इसकी वर्णनशैली अलग दिखती है। इसमें किसी तीर्थंकर के चरित्र में दिक्कुमारिकाओं का महोत्सव विस्तार से दिया गया है, तो किसी में दीक्षामहोत्सव, तो किसी में समवशरण की रचना अति विस्तार से वर्णित है। सर्वत्र इन्द्रों की स्तुति और तीर्थंकरों की देशना संक्षेप से दी गई है। अवान्तर कथाएँ भी संक्षिप्त रूप में दी गई हैं।

यद्यपि यह ग्रन्थ हेमचन्द्र के बृहत्काय ग्रन्थ के अनुकरण पर बनाया गया है फिर भी इसमें शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरित्रों के

---

१. गायकवाड़ ओरि० सिरीज सं० ५८, बड़ौदा, १९३२, परिशिष्ट 'क'; जि० र० को०, पृ० २३४ में पद्मानन्दकाव्य के परिचय के साथ।

२. जि० र० को०, पृ० ३०५.

३. जि० र० को०, पृ० ३३५; इसका गुजराती अनुवाद पं० मफतलाल झवेरचन्द्रकृत छोटालाल मोहनलाल शाह, उनादा (उ० गुजरात) द्वारा वि० सं० २००५ में प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकलन में ग्रन्थकार ने त्रि० श० पु० च० की अपेक्षा उक्त तीर्थंकरों पर लिखी स्वतंत्र रचनाओं का विशेष उपयोग किया है, इसलिए इसमें अनेक प्रसंग नये आ गये हैं जोकि त्रि० श० पु० च० में नहीं हैं।

इस कृति के छोटी होने पर भी इसमें अनेक बातों का संग्रह आ गया है। तीर्थंकरचरित्र, रामायण, महाभारत, चक्रवर्तिचरित्र, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और उनके अनेक कथाप्रसंग और ऐतिहासिक प्रसंग इसमें भरपूर हैं।

इस कृति के नाम के पीछे दो बातों का अनुमान किया जा सकता है—एक तो यह कि त्रि० श० पु० च० को सामने रखकर यह कृति बनायी गई हो या उक्त कृति में जो अनेक प्रसंग नहीं हैं उनको शामिल करने पर भी आकार की दृष्टि से लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित नाम रखा गया हो। यह कृति संक्षेपरुचि-वालों के लिए बड़ी उपकारक है। इसका ग्रन्थाग्र ५००० श्लोकप्रमाण है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता मेघविजय उपाध्याय हैं। इनके गृहस्थ जीवन का इतिहास तो कहीं से नहीं मालूम होता पर इनके अनेक ग्रन्थों में जो प्रशस्तियाँ दी गई हैं उनमें इनने अपना नाम, अपने गुरु कृपाविजय का, और उपाध्याय विजयप्रभसूरि के नाम का उल्लेख किया है। ये प्रसिद्ध सम्राट अकबर के कल्याणमित्र तपागच्छीय हीरविजयसूरिजी की परम्परा में हुए हैं। इनके ग्रन्थों में जो प्रशस्तियाँ दी गई हैं उनमें कुछ का रचनाकाल दिया गया है जो वि० सं० १७०९ से १७६० तक होता है। प्रस्तुत रचना का समय नहीं दिया गया। इस तरह इन्होंने ५० वर्ष तक लगातार साहित्यसेवा की थी। यदि २०-२५ वर्ष की उम्र से साहित्यरचना प्रारंभ की हो तो इनकी आयु ८० वर्ष अनुमान की जा सकती है।

इन्होंने अनेक काव्यग्रन्थ रचे हैं व किरातार्जनीय, शिशुपालवध, नैषधीय, मेघदूत का अच्छा अभ्यास किया था और नैषधीय की समस्या-पूर्ति पर 'शान्तिनाथचरित्र', शिशुपालवध की समस्यापूर्ति पर 'देवानन्दमहाकाव्य', 'किरातसमस्यापूर्ति' तथा 'मेघदूतसमस्यालेख' रूपी ५ समस्यापूर्ति काव्य तथा सप्तसंधानमहाकाव्य, दिग्विजयमहाकाव्य, लघु त्रि० श० पु० च०, भविष्यदत्त-कथा, पञ्चाख्यान, विजयदेवमाहात्म्यविवरण, युक्तिप्रबोधनाटक (न्याय-ग्रंथ), धर्ममंजूषा, चन्द्रप्रभा (हेमकौमुदी), हैमशब्दचन्द्रिका, हैमशब्द-प्रक्रिया, वर्षप्रबोध (ज्योतिष ग्रन्थ), रमलशास्त्र, हस्तसंजीवन, उदयदीपिका,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नसुन्दरी, वीसायंत्रविधि, मातृकाप्रसाद, ब्रह्मबोध, अर्हद्गीता प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ तथा अनेक गुजराती ग्रन्थों की रचना भी इन्होंने की है।[1]

लघुत्रिषष्ठि—सोमप्रभकृत इस ग्रन्थ का उल्लेख मेघविजयकृत ल० त्रि० श० च० की गुजराती प्रस्तावना में पं० मफतलाल ने किया है।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित और महापुराण पर आधारित कुछ अन्य रचनाएँ— १. लघुमहापुराण या लघुत्रिषष्टिलक्षणमहापुराण—चन्द्रमुनिकृत[2]।

२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र—विमलसूरि।
३. ,, ,, —वज्रसेन।
४. त्रिषष्टिशलाकापंचाशिका (५० पद्यों में)—कल्याणविजय के शिष्य।
५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषविचार (६३ गाथाओं में)—अज्ञात[3]।

तिरसठ शलाका पुरुषों के स्वतंत्र पौराणिक महाकाव्य :

रामकथा, महाभारतकथा तथा समुदित तिरसठ शलाका पुरुषों के पौराणिक महाकाव्यों (महापुराणों) और उनके संक्षिप्त रूपों के पश्चात् स्वतन्त्र रूप से तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों, बलदेवों, वासुदेवों आदि के जीवनचरित भी खूब लिखे गये। १० वीं शती से १८ वीं शती तक ये रचनाएँ निर्बाधगति से लिखी जाती रहीं। १२ वीं और १३ वीं शताब्दी में ये रचनाएँ प्रचुरमात्रा में लिखी गयीं पर आगे की शताब्दियों में भी उनका क्रम चलता रहा। तीर्थंकरों में सबसे अधिक महाकाव्य शान्तिनाथ पर उपलब्ध हैं। वे चक्रवर्ती पदधारी भी थे। द्वितीय श्रेणी में २२ वें नेमि और २३ वें पार्श्वनाथ पर कई काव्य लिखे गये थे। तृतीय क्रम में आदि जिन वृषभ, अष्टम चन्द्रप्रभ और अन्तिम महावीर पर भी चरितकाव्य लिखे गए। वैसे भी अन्य तीर्थंकरों और अन्य महापुरुषों पर चरित्र ग्रन्थ लिखे जाने के छिटफुट उल्लेख मिलते हैं।

पहले प्राकृत—विशेषकर महाराष्ट्री प्राकृत में रचित इन ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया जायगा और पीछे संस्कृत में रचित का।

---

१. दिग्विजयमहाकाव्य और देवानन्दमहाकाव्य (सि० जै० ग्र०) की प्रस्तावना।
२. जि० र० को०, पृ० १६३, ३०५.
३. वही, पृ० १६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिनाहचरिय :

ऋषभदेव के चरित का विस्तार से वर्णन करनेवाला यह प्रथम ग्रन्थ है। इसमें पाँच परिच्छेद हैं। ग्रन्थाग्र ११००० श्लोकप्रमाण है। इस ग्रन्थ का दूसरा नाम ऋषभदेवचरित भी है।[1] इसकी रचना पर 'चउप्पन्नमहापुरिसचरियं' का प्रभाव है। उक्त ग्रन्थ की एक गाथा इसमें गाथा सं० ४५ रूप में ज्यों की त्यों उद्धृत की गयी है। अपभ्रंश की गाथायें भी इस रचना में पाई जाती हैं। यह अबतक अप्रकाशित है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानाचार्य हैं। इनकी दूसरी रचनाएँ १५००० गाथाप्रमाण मनोरमाचरियं (सं० ११४०) तथा धर्मरत्नकरंडवृत्ति (सं० ११७२) भी हैं। आदिनाहचरियं का रचनाकाल सं० ११६० दिया गया है।

प्रथम तीर्थंकर पर रिसभदेवचरिय नाम से ३२३ गाथाओं की एक रचना और मिलती है जिसका दूसरा नाम धर्मोपदेशशतक भी है। इसके रचयिता भुवनतुंगसूरि हैं।[2]

दूसरे और तीसरे तीर्थंकर पर प्राकृत में कोई रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। चौथे अभिनन्दननाथ पर केवल एक रचना का उल्लेख मिलता है।[3]

सुमईनाहचरिय :

पाँचवें तीर्थंकर सुमतिनाथ के चरित का वर्णन करनेवाला प्राकृत तथा संस्कृत में यह पहला ग्रन्थ है।[4] इसका प्रमाण ९६२१ श्लोक है। इसमें अनेक पौराणिक कथायें दी गयी हैं। यह पाटन के ग्रन्थभण्डारों की सूची में दृष्टिगोचर होता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके लेखक विजयसिंहसूरि के शिष्य सोमप्रभाचार्य हैं जो बृहद्गच्छ के थे। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कुमारपालप्रतिबोध' प्रकाशित हो चुका है। इनका विशेष परिचय उक्त प्रसंग में दे रहे हैं। यह ग्रन्थ उन्होंने कुमारपाल नृपति के राज्यकाल में लिखा था। संभवतः यह आचार्य की प्रथम कृति है इसलिए इसे कुमारपाल के राज्यारोहण सं० ११९९ में लिखी होना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८ और ५७.

२. वही, पृ० ५७.

३. वही, पृ० १४.

४. वही, पृ० ४४६.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

चाहिए। इनकी अन्य कृतियों में शतार्थकाव्य, श्रृंगारवैराग्यतरंगिणी, सूक्तिमुक्तावली और कुमारपालप्रतिबोध है।

पउमपभचरिय :

इसमें छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ का चरित वर्णित है। यह एक अप्रकाशित रचना है।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता देवसूरि हैं। इनकी दूसरी कृति सुपार्श्वचरित (प्राकृत) का भी उल्लेख मिलता है। इनका थोड़ा-सा परिचय प्राप्त है। ये जालिहरगच्छ के सर्वानन्द के प्रशिष्य तथा धर्मघोषसूरि के शिष्य एवं पट्टधर थे। ग्रन्थकार ने बतलाया है कि प्राचीन कोटिक गण की विद्याधर शाखा से जालिहर और कासद्रहगच्छ एक साथ निकले थे। अन्य सूचनाएँ जो उन्होंने दी हैं, उनमें ये हैं कि उन्होंने देवेन्द्रगणि से तर्कशास्त्र पढ़ा था और हरिभद्रसूरि से आगम। उनके दादागुरु सर्वानन्द पार्श्वनाथचरित के रचयिता थे। एक सर्वानन्दसूरि के पार्श्वनाथचरित का संस्कृत चरितों में परिचय दिया गया है पर वे अपने को सुधर्मागच्छीय बतलाते हैं और उनके पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल सं० १२९१ है जबकि प्रस्तुत प्राकृत कृति का समय सं० १२५४ बतलाया गया है।[2]

सुपासनाहचरिय :

यह एक सुविस्तृत और उच्चकोटि की रचना है। इसमें लगभग आठ हजार गाथाएँ हैं। समस्त ग्रन्थ तीन प्रस्तावों में विभक्त है। नाम से स्पष्ट है कि इसमें सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ का जीवनचरित वर्णित है। प्रथम प्रस्ताव में सुपार्श्वनाथ के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है और शेष में उनके वर्तमान जन्म का। प्रथम प्रस्ताव में सुपार्श्वनाथ के मनुष्य और देवभवों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए बतलाया गया है कि किस प्रकार उन्होंने अनेक भवों में सम्यक्त्व और संयम के प्रभाव से अपने व्यक्तित्व का विकासकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सातवें तीर्थंकर पद को पाया था। दूसरे प्रस्ताव में उनके जन्म, विवाह और निष्क्रमण का वर्णन किया गया है जो अन्य तीर्थंकरों की भाँति ही है। यहाँ मेरुपर्वत पर देवों द्वारा जन्माभिषेक का सरस वर्णन प्रस्तुत है। तीसरे प्रस्ताव में केवल ज्ञान के वर्णन-प्रसंग में अनेक आसनों तथा विविध तपों का वर्णन किया

---

१. वही, पृ० २३४.
२. वही, पृ० ४४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। इस तरह इसमें विविध धर्मोपदेश और कथा-प्रसंगों के बीच सुपार्श्वनाथ का संक्षिप्त चरित बिखेरा गया है। अधिकांश भाग में सम्यग्दर्शन का माहात्म्य, बारह श्रावक व्रत, उनके अतिचार तथा अन्य धार्मिक विषयों को लेकर अनेकों कथाएँ दी गयी हैं जिनसे तत्कालीन बुद्धिवैभव, कलाकौशल, आचार-व्यवहार, सामाजिक रीतिरिवाज, राजकीय-परिस्थिति एवं नैतिक जीवन आदि के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।[१]

इस चरित की भाषा पर अपभ्रंश का पूरा प्रभाव है। इसमें लगभग ५० पद्य अपभ्रंश के भी समाविष्ट पाये जाते हैं। संस्कृत की शब्दावली भी अपनायी गयी है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके प्रणेता का नाम लक्ष्मणगणि है। इनके गुरु का नाम हेमचन्द्रसूरि था जो हर्षपुरीयगच्छ के थे और जयसिंहसूरि के प्रशिष्य और अभयदेवसूरि के शिष्य थे। इनके गुरुभाइयों में विजयसिंहसूरि और श्रीचन्द्रसूरि थे। इस ग्रन्थ की रचना उनने धंधुकनगर में प्रारम्भ की थी और समाधि मंडलपुरी में। उन्होंने इसे वि० सं० ११९९ में माघ शुक्ल १० गुरुवार के दिन रचकर समाप्त किया था। उस वर्ष चौलुक्य नृप कुमारपाल का राज्याभिषेक भी हुआ था।[२]

सुपार्श्वनाथ चरित पर प्राकृत में जालिहरगच्छ के देवसूरि तथा किसी विबुधाचार्य की रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[३]

चंदप्पहचरिय :

प्राकृत भाषा में आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ पर कई कवियों ने रचनाएँ की हैं। उनमें प्रथम रचना सिद्धसूरि के शिष्य वीरसूरि ने सं० ११३८ में की थी।[४]

जिनेश्वरसूरिकृत द्वितीय चरित[५] में ४० गाथाएँ हैं जो बड़ी सरस हैं। इसमें चन्द्रप्रभ नाम की सार्थकता में कवि कहता है कि चूँकि माता को गर्भकाल में

१. जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला, बनारस, सन् १९१८; जिनरत्नकोश, पृ० ४४५; इसका गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सन् १९२५ में प्रकाशित हुआ है।

२. विक्कमसएहिं एक्कारसेहिं नवनवइवास अहिएहिं—प्रशस्ति, गा० १५-१६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५.

४. वही, पृ० ११९.

५. इसका प्रकाशन महावीर ग्रन्थमाला से विक्रम सं० १९९२ में हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रयान का दोहद उत्पन्न हुआ था इस कारण इनका नाम चन्द्रप्रभ रखा गया (गाथा १२)। जिनेश्वरसूरि नाम के कई आचार्य हो गये हैं। प्रथम तो वर्धमानसूरि के शिष्य और खरतरगच्छ के संस्थापक (११ वीं शती उत्तरार्ध) थे और उनके ग्रन्थों के नाम सुज्ञात हैं। लगता है चन्दप्पहचरियं के रचयिता दूसरे जिनेश्वरसूरि हैं। एक जिनेश्वरसूरि ने सं० ११७५ में प्राकृत मल्लिनाहचरियं[1] (ग्रन्थाग्र ५५५५) तथा नेमिनाहचरियं की रचना की थी। सम्भवतः ये ही उक्त चन्द० चरियं के रचयिता हों।

तृतीय चन्दप्पहचरियं[2] के रचयिता उपकेशगच्छीय यशोदेव अपरनाम धनदेव हैं जो देवगुप्तसूरि के शिष्य थे। इन्होंने ग्रन्थाग्र ६४०० प्रमाण काव्य की रचना सं० ११७८ में की थी। इनके अन्य ग्रन्थ हैं नवपदप्रक० बृ० की बृहद्वृत्ति और नवतत्त्वप्र० की वृत्ति।

चतुर्थ चन्दप्पहचरियं के रचयिता बड़गच्छीय हरिभद्रसूरि हैं। इनकी उक्त रचना की एक प्रति पाटन के भण्डार में विद्यमान है जिसका ग्रन्थाग्र ८०३२ श्लोक प्रमाण है। ग्रन्थकार के दादागुरु का नाम जिनचन्द्र तथा गुरु का नाम श्रीचन्द्रसूरि था। कहा जाता है कि सूरि ने सिद्धराज और कुमारपाल के महामात्य पृथ्वीपाल के अनुरोध पर चौबीस तीर्थंकरों का जीवनचरित लिखा था पर उनमें प्राकृत में लिखे चन्द० चरियं और मल्लिनाहचरियं तथा अपभ्रंश में णेमिणाहचरिउ ही उपलब्ध है। सूरि प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। ग्रन्थकार का समय १२ वीं का उत्तरार्ध और १३वीं का पूर्वार्ध रहा है।[3]

पंचम चन्दप्पहचरि० के रचयिता खरतरगच्छीय जिनवर्धनसूरि हैं। इनके आचार्य पद पर स्थापित होने का समय सं० १४६१ है। ये पिप्पलक नाम की खरतर शाखा के संस्थापक थे।[4] इस चन्द० चरियं पर खरतरगच्छीय जिनभद्रसूरि के प्रशिष्य और सिद्धान्तरुचि के शिष्य साधुसोमगणि ने ग्रन्थाग्र १३१५ प्रमाण टीका लिखी है। टीका में सूचना दी है कि जिनवर्धनसूरि ने इस चरित के अतिरिक्त चार और चरितों की भी रचना की है पर उन चरितों का नाम

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२.
२. वही, पृ० ११९.
३. अनेकान्त, वर्ष १७, कि० ५, पृ० २३२.
४. पट्टावली-पराग, पृ० ३६३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं दिया।[१] अन्य रचनाओं में महाराज शास्त्र भण्डार नागौर में दामोदर कविकृत प्राकृत चन्द्रप्रभचरित उपलब्ध है।

चन्द्रप्रभ पर नागेन्द्रगच्छ के विजयसिंहसूरि के शिष्य देवेन्द्रगणि ने सं० १२६४ में ५३२५ श्लोक प्रमाण कृति को संस्कृत-प्राकृत उभयमिश्र भाषा में रचा है।[२] अपभ्रंश में यशःकीर्ति की रचना २४०९ श्लोक-प्रमाण ११ सन्धियों में मिलती है।

नववें और दशवें तीर्थंकर पुष्पदन्त और शीतलनाथ पर प्राकृत में लिखे चरितों के उल्लेखमात्र मिलते हैं। नन्दिताढ्यकृत गाथालक्षण के टीकाकार रत्नचन्द्र ने उसमें आये हुए दो पद्यों पर टीका करते हुए बतलाया है कि ये पद्य एक प्राकृत रचना पुप्फदन्तचरियं से लिये गये हैं।[३]

सेयंसचरिय:

ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ पर दो प्राकृत पौराणिक काव्य उपलब्ध हैं। प्रथम तो बृहद्गच्छीय जिनदेव के शिष्य हरिभद्र का जो सं० ११७२ में लिखा गया था। इसका ग्रन्थाग्र ६५८४ श्लोक प्रमाण है।[४] द्वितीय चन्द्रगच्छीय अजितसिंहसूरि के शिष्य देवभद्र ने ग्रन्थाग्र ११००० प्रमाण रचा था।[५] इसकी रचना का समय ज्ञात नहीं फिर भी यह वि० सं० १३३२ से पहले बनी है क्योंकि मानतुंगसूरि ने अपने संस्कृत श्रेयांसचरित (सं० १३३२) का आधार इस कृति को ही बतलाया है। इस रचना का उल्लेख प्रवचनसारोद्धारटीका में उनके शिष्य सिद्धसेन ने किया है। देवभद्र की अन्य रचनाओं में तत्त्वबिन्दु और प्रमाणप्रकाश भी है।

वसुपुज्जचरिय:

बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य पर चन्द्रप्रभ[६] की ८००० ग्रंथाग्र प्रमाण रचना उपलब्ध है। इसका प्रारम्भ 'सुहसिद्धिबहुवसीकरण' से होता है। चन्द्रप्रभ ने

१. जिनरत्नकोश, पृ० ११९.
२. आत्मवल्लभ सिरीज सं० ९, अम्बाला; जिनरत्नकोश, पृ० ११९.
३. जिनरत्नकोश, पृ० २५३; भांडारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना की पत्रिका, भाग १४, पृ० ३.
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३९९.
५. वही, पृ० ४००.
६. वही, पृ० ३४८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने पूर्ववर्ती आचार्यों में पादलिप्त, हरिभद्र और जीवदेव का उल्लेख तथा ग्रंथों में तरंगवती का उल्लेख किया है। चन्द्रप्रभ नाम के कई गच्छों में अनेक आचार्य हो गये हैं। १२ वीं शताब्दी में एक चन्द्रप्रभ महत्तर ने सं० ११२७–३७ में विजयचन्द्रचरित्र की रचना की थी और दूसरे चन्द्रप्रभसूरि ने पौर्णमासिक गच्छ की स्थापना सं० ११४९ में की थी और प्रमेयरत्नकोश, दर्शनशुद्धि की रचना की थी। कह नहीं सकते कि प्रस्तुत रचना के रचयिता कौन चन्द्रप्रभ हैं।

१३ वें तीर्थंकर पर भी प्राकृत में विमलचरियं लिखे जाने का उल्लेख मिलता है।[1]

अनन्तनाहचरिय :

इसमें १४ वें तीर्थंकर का चरित वर्णित है। ग्रन्थ में १२०० गाथाएँ हैं।[2] ग्रन्थकार ने इसमें भव्यजनों के लाभार्थ भक्ति और पूजा का माहात्म्य विशेष रूप से दिया है। इसमें पूजाष्टक[3] उद्धृत किया गया है जिसमें कुसुम पूजा आदि का उदाहरण देते हुए जिनपूजा को पाप हरण करनेवाली, कल्याण का भण्डार और दारिद्रय को दूर करने वाली कहा है। इसमें पूजाप्रकाश[4] या पूजाविधान भी दिया गया है जो संघाचारभाष्य, श्राद्धदिनकृत्य आदि से उद्धृत किया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता आम्रदेव के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि हैं। इन्होंने इसकी रचना सं० १२१६ के लगभग की है। सम्भवतः ये आख्यानकमणिकोश, महावीरचरियं (सं० ११३९) आदि के कर्ता नेमिचन्द्रसूरि से काल की दृष्टि से भिन्न हैं। उक्त नेमिचन्द्र का समय १२ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

१५ वें तीर्थंकर धर्मनाथ पर प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है।[5]

---

१. वही, पृ० ३५८.

२. वही, पृ० ७.

३. ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर जैन संस्था, रतलाम, सन् १९३९; प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५६९-५७०.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २५५.

५. वही, पृ० १८९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतिनाहचरिय :

यह गुणसेन के शिष्य और हेमचन्द्राचार्य के गुरु पूर्णतल्लगच्छीय देवचन्द्राचार्य कृत १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित है।[1] इसका परिमाण ग्रन्थाग्र १२००० है। इसकी रचना सं० ११६० में हुई थी। यह प्राकृत गद्य-पद्यमय है। बीच-बीच में अपभ्रंशभाषा भी प्रयुक्त हुई है। इसकी रचना खंभात में की गई थी। इसकी प्रस्तावना में निम्नलिखित आचार्यों का उल्लेख है: इन्द्रभूति (कविराज चक्रवर्ती), भद्रबाहु जिन्होंने वसुदेवचरित लिखा (सवायलक्खं बहुकहाकलियम्), हरिभद्र समरादित्य कथा के प्रणेता, दाक्षिण्यचिह्नसूरि कुवलयमाला के कर्ता तथा सिद्धर्षि उपमितिभवप्रपंचा के कर्ता। यह अबतक अप्रकाशित है।

इनकी एक अन्य कृति मूलशुद्धिप्रकरणटीका (अपरनाम स्थानकप्रकरणटीका) है। इसके चौथे एवं छठे स्थानक में आनेवाले चन्दनाकथानक तथा ब्रह्मदत्तकथानक को देखने से ज्ञात होता है कि इनमें आनेवाली अधिकांश गाथाएं तथा कतिपय छोटे-बड़े गद्यसंदर्भ शीलांकाचार्य के चउप्पन्नमहापुरिसचरिय में आनेवाले 'वसुमइसंविहाणय' और बंभयत्तचक्कवट्टिचरिय के साथ अक्षरशः मिलते हैं। इन कथाओ के अवशिष्ट भागों में से भी कितना ही भाग अल्पाधिक शाब्दिक परिवर्तन के साथ चउप्पन्नपुरि० का ही ज्ञात होता है। अनुमान है कि संतिनाहचरियं पर भी चउप्प० चरिय० का प्रभाव हो। चूंकि यह अप्रकाशित है इससे कुछ कहना कठिन है।

शान्तिनाथ पर इस विशाल रचना के अतिरिक्त प्राकृत में एक लघु रचना ३३ गाथाओं में जिनवल्लभ सूरि रचित तथा अन्य सोमप्रभ सूरि रचित का उल्लेख मिलता है।[2] संस्कृत में तो शान्तिनाथ पर अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं।

१७ वें तीर्थंकर कुन्थुनाथ और १८ वें अरनाथ पर प्राकृत में कोई रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

१९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथ पर प्राकृत में ३-४ रचनाएँ मिलती हैं। उनमें जिनेश्वरसूरि कृत का प्रमाण ५५५५ ग्रन्थाग्र है।[3] इसकी रचना सं० ११७५ में

---

१. वही, पृ० ३७९; श्रेष्ठि हालाभाई के पुत्र भोगीलाल का अणहिल्लपुर स्थित फोफलीयावाडा आगलीशेरी भाण्डागार, पाटन.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३८०.

३. वही, पृ० ३०२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई थी। जिनेश्वर सूरि के प्राकृत चरित चन्दप्पहचरियं और नमिनाहचरियं भी इस काल के लगभग लिखे गये थे। द्वितीय रचना चन्द्रसूरि के शिष्य बडगच्छीय हरिभद्रसूरि की है जिसका ग्रन्थाग्र ९००० प्रमाण[1] है। यह तीन प्रस्तावों में विभक्त है। इसकी रचना में सर्वदेवगणि ने सहायता की थी। ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इन्होंने कुमारपाल के मंत्री पृथ्वीपाल के अनुरोध पर इस चरित की तथा अन्य चरित ग्रन्थों की रचना की थी उनमें केवल चन्दप्पहचरियं और अपभ्रंश में णेमिणाहचरिउ उपलब्ध हैं। तीसरा चरित भुवनतुंगसूरि कृत ५०० ग्रन्थाग्र प्रमाण जैसलमेर के भण्डारों में ताडपत्र पर लिखित है[2] तथा चतुर्थ १०५ प्राकृतगाथाओं में अज्ञातकर्तृक है।[3] इसकी हस्तलिखित प्रति पर सं० १३४५ पड़ा है।

मुनिसुव्वयसामिचरिय :

प्राकृत में २० वें तीर्थंकर पर श्रीचन्द्रसूरि की एक मात्र रचना उपलब्ध होती है।[4] इसमें लगभग १०९९४ गाथाएँ हैं। यह अप्रकाशित रचना है। ग्रन्थकार हर्षपुरीय गच्छ के हेमचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनकी अन्य कृतियों में संग्रहणीरत्न और प्रदेशव्याख्याटिप्पन (सं० १२२२) मिलते हैं। प्रस्तुत चरित का समय निश्चित नहीं है पर एक हस्तलिखित प्रति के अनुसार सं० ११९३ है। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से मालूम होता है कि लेखक ने आसापल्लिपुरी (वर्तमान अहमदाबाद) में श्रीमालकुल के श्रेष्ठ श्रावक श्रेष्ठि नागिल के सुपुत्र के घर में रहकर लिखा था।

२१ वें तीर्थंकर नमिनाथ सम्बंधी एक प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है।[5]

नेमिनाहचरिय :

२२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ पर प्राकृत में तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रथम जिनेश्वरसूरि की है जो सं० ११७५ में लिखी गई थी।[6] दूसरी मलधारी हेमचन्द्र

1. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २७९.
2. वही.
3. वही.
4. वही, पृ० ३११.
5. वही, पृ० २०२.
6. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० १३५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(हर्षपुरीय गच्छ के अभयदेव के शिष्य) की ५१०० ग्रन्थाग्र प्रमाण (१२ वीं का उत्तरार्ध) है तथा तीसरी बृहद्गच्छ के वादिदेव सूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि कृत विशाल रचना है जिसका रचना-संवत् १२३३ है। यह गद्य-पद्यमय रचना ६ अध्यायों में विभक्त है। इसका ग्रन्थाग्र १३६०० प्रमाण है।[१]

पासनाहचरिय :

इसमें २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित विस्तार से दिया है जो पांच प्रस्तावों में विभक्त है। यह प्राकृत गद्य-पद्य में लिखी गई सरस रचना है जिसमें समासान्त पदावली और छन्द की विविधता देखने में आती है। इसमें संस्कृत के अनेक सुभाषित भी उद्धृत हैं। इसका ग्रन्थाग्र ९००० प्रमाण है।[२]

इस ग्रन्थ की अपनी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में पार्श्वनाथ के दस भवों का वर्णन मिलता है। तीसरे, पांचवें, सातवें और नवें भव में देवलोक एवं नव ग्रैवेयक में देव रूप से पार्श्वनाथ उत्पन्न हुए थे। इन चार भवों की गणना इस चरित्र के लेखक ने नहीं ली, इसलिए शेष छः भवों का वर्णन ही दिया गया है।

पहले प्रस्ताव में पार्श्वनाथ के दो पूर्व भवों का उल्लेख है। पहले भव में मरुभूति नाम से मंत्रिपुत्र हुए। उसमें कमठ नाम के अपने भाई से मृत्यु पाई। दूसरे भव में मरुभूति और कमठ क्रमशः हाथी और कुक्कुट सर्प हुए। दूसरे प्रस्ताव में तीसरे भव में दोनों क्रमशः कनकवेग विद्याधर और सर्प हुए। चौथे भव में वे वज्रनाभ राजा और भील का रूप धारण करते हैं। भील के बाण से उक्त राजा की मृत्यु हुई। पांचवे भव में वे दोनों क्रमशः कनक चक्रवर्ती और सिंह हुए। सिंह ने मुनि अवस्था में चक्रवर्ती को मार डाला। तीसरे प्रस्ताव में छठे भव में मरुभूति वाराणसी के राजा अश्वसेन और वामा के पुत्र २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के रूप में जन्म लेते हैं और कमठ कठ नामक तापस तथा मेघमाली नामक देव हुआ। इसी प्रस्ताव में पार्श्वनाथ की दीक्षा और तपस्या का वर्णन है तथा मेघमाली देव द्वारा उपसर्ग का वर्णन है। चतुर्थ प्रस्ताव में पार्श्वनाथ को केवल ज्ञान की प्राप्ति तथा धर्मोपदेश के प्रसंग में अपने पिता के प्रश्न पर दश गणधरों के पूर्व भवों का वर्णन है। पांचवें प्रस्ताव में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २४४; प्रकाशित—अहमदाबाद, १९४४; गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० २००५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मथुरा, काशी, आमलकल्पा आदि नगरों में विहार और धर्मोपदेश का वर्णन है। अन्त में सम्मेदशिखर पर पहुँच मोक्ष पाने का वृत्तान्त है।

इस प्राकृतचरित में संस्कृत के गुणभद्र रचित उत्तरपुराण में दिये गये पार्श्वनाथ चरित से कुछ बातों में अन्तर है यथा मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा कमठ की ओर स्वयं आकृष्ट हुई। इसमें ६ठे भव के वज्रनाभ के विवाह के प्रसंग में जो युद्ध का वर्णन है वह रघुवंश के इन्दुमती-अज के स्वयंवर में हुए युद्ध की याद दिलाता है उसी तरह आठवें भव के कनकबाहु चक्रवर्ती का खेचरराज की पुत्री पद्मा से विवाह का प्रसंग अभिज्ञान-शाकुंतल में दुष्यन्त-शकुंतला के विवाह का स्मरण दिलाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इस चरित ग्रन्थ के कर्ता देवभद्राचार्य हैं। ये विक्रम की १२वीं शताब्दी के महान् विद्वान् एवं उच्चकोटि के साहित्यकार थे। इनका नाम आचार्य पदारूढ़ होने के पहले गुणचन्द्रगणि था। उस समय संवत् ११३९ में श्री महावीरचरियं नामक विस्तृत १२०२४ श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ रचा। दूसरा ग्रन्थ कथारत्नकोष है जो आचार्य पदारूढ़ होने के बाद वि० सं० ११५८ में रचा था। प्रस्तुत पासनाहचरियं की रचना उनने वि० सं० ११६८ में गोवर्द्धन श्रेष्ठि के वंशज वीरश्रेष्ठि के पुत्र यशदेव श्रेष्ठि की प्रेरणा से की थी।

इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में लेखक की गुर्वावली इस प्रकार दी गई है :— चन्द्रकुल वज्रशाखा में वर्धमानसूरि हुए। उनके दो शिष्य थे जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि। जिनेश्वरसूरि के शिष्य अभयदेवसूरि और उनके शिष्य प्रसन्नचन्द्र हुए। प्रसन्नचन्द्र के शिष्य सुमतिवाचक और इनके शिष्य थे देवभद्रसूरि।

१. महावीरचरिय :

अन्तिम तीर्थंकर महावीर के जीवन पर जो प्राकृत रचनाएँ उपलब्ध हैं उनमें यह सर्व प्रथम है। यह एक गद्य-पद्यमय काव्य है जो आठ प्रस्तावों (सर्गों) में विभाजित है और परिमाण में १२०२५ श्लोक प्रमाण है।[१] इसके प्रारंभिक चार सर्गों में भगवान् महावीर के पूर्वभवों का वर्णन है और अन्तिम चार में उनके वर्तमान भव का। इस पर तथा इनकी अन्य कृति पासनाहचरियं पर कालिदास, भारवि और माघ के संस्कृत काव्यों का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। इस महाराष्ट्री प्राकृत प्रधान रचना में यत्र-तत्र संस्कृत के तथा अपभ्रंश के पद्य

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०६; प्रकाशित—देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई, सन् १९२९, गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, वि० सं० १९९४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्धृत हैं। इसमें छन्दों की विविधता द्रष्टव्य है। प्रचुरमात्रा में तद्भव और तत्सम शब्दों का प्रयोग देशी शब्दों के बदले में किया गया है।

प्रथम प्रस्ताव में सम्यक्त्व प्राप्ति का वर्णन है। दूसरे में प्रथम पूर्व भव के प्रसंग में ऋषभ, भरत, बाहुबलि एवं मरीचि के भवों का निरूपण है। तृतीय में विश्वभूति की वसन्तक्रीड़ा, रणयात्रा एवं वैराग्य का वर्णन है। इसी में नारायण त्रिपृष्ठ का प्रतिनारायण अश्वग्रीव के साथ युद्ध और चक्रवर्ती प्रियमित्र का दिग्विजय एवं प्रव्रज्या वर्णन है। चतुर्थ प्रस्ताव में प्रियमित्र के जीव का नन्दन नाम से नृप होना और उसके द्वारा प्रोठिल मुनि से नरविक्रम का चरित पूछना। यह चरित बड़ा ही रोचक है। नन्दन नृप का जीव ही क्षत्रियकुण्ड के नरेश सिद्धार्थ के यहाँ त्रिशला से महावीर के रूप में जन्म ग्रहण करता है। इस प्रस्ताव में मंत्र, तंत्र, विद्यासाधन तथा वाममार्गिय और कापालिकों के क्रियाकाण्ड का वणन है। इसी प्रस्ताव में भग० महावीर के २८वें वर्ष में उनके माता-पिता का स्वर्गवास होने और बड़े भाई नन्दिवर्धन का राज्याभिषेक होने एवं बड़े भाई से अनुमति लेकर दीक्षा ग्रहण करने का वर्णन है।

पाँचवें प्रस्ताव में शूलपाणि यक्ष और चण्डकौशिक सर्प को प्रबुद्ध करने का वृत्तान्त है। छठे प्रस्ताव में आजीवक मत के प्रवर्तक मंखलीपुत्र गोशाल का महावीर के साथ संबंध का वर्णन है। सातवें में महावीर के परीषह-सहन और केवलज्ञान प्राप्ति का निरूपण है। आठवें में महावीर के निर्वाण-लाभ का प्ररूपण है। इसमें महावीर के उपदेश, गणधरों के वर्णन, चतुर्विध संघ की स्थापना, महावीर के दामाद जमालि की दीक्षा, उसके द्वारा निह्नव, गोशालक द्वारा श्रावस्ती में तेजोलेश्या छोड़ना आदि अन्यान्य बातों का विस्तार से वर्णन है।

इस काव्य में अनेकों अवान्तर कथायें दी गई हैं तथा नगर, वन, अटवी, विवाह-विधि, उत्सव, विद्यासिद्धि आदि के वर्णन द्वारा बड़ा ही रोचक बनाया गया है।

यह एक गद्य-पद्यमय रचना है। कवि को वर्णन के अनुकूल जब जैसी आवश्यकता हुई गद्य-पद्य का प्रयोग करने की स्वतंत्रता रही है।

रचयिता और रचनाकाल—इस महत्त्वपूर्ण कृति के रचयिता गुणचन्द्रसूरि हैं जो आचार्य पद पाने के बाद देवभद्रसूरि कहलाने लगे थे। इन्होंने अपने छत्रावली (छत्राल) निवासी सेठ शिष्ट और वीर की प्रार्थना पर वि० सं० ११३९ ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया सोमवार के दिन इस ग्रन्थ की रचना की थी। प्रशस्ति में शिष्ट और वीर के परिवार का परिचय दिया गया है।

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

इनकी तीन विशाल कृतियों के पीछे दिये गये प्रशस्ति पद्य बड़े महत्त्व के हैं जिनसे इनकी गुरुपरम्परा तथा रचनाओं का संवत् मालूम होता है। तदनुसार आचार्य देवभद्र सुमतिवाचक के शिष्य थे, आचार्य पद पर आरूढ होने के पहले उनका नाम गुणचन्द्रगणि था। इसी नाम से उनने वि० सं० ११२५ में संवेगरंगशाला नाम से आराधनाशास्त्र का संस्कार किया था और वि० सं० ११३९ में महावीरचरियं का निर्माण किया था। संवेगरंगशाला की पुष्पिका में 'तद्विनेय श्री प्रसन्नचन्द्रसूरि समभ्यर्थितेन गुणचन्द्रगणिना तथा तव्वयणेणं गुणचंदेणं' पदों से ज्ञात होता है कि आचार्य प्रसन्नचन्द्र और देवेन्द्रसूरि का पारस्परिक सम्बन्ध दूर से था और दोनों परस्पर गुणानुरागी थे। गुणचन्द्र उन्हें बड़े आदर से देखते थे यह कथारत्नकोश और पार्श्वनाथ की प्रशस्ति में आनेवाले 'तस्सेवगेहिं' और 'पयपउमसेवगेहिं' पदों से ज्ञात होता है। प्रसन्नचन्द्र ने गुणचन्द्र के गुणों से आकर्षित होकर उन्हें आचार्य पद पर आरूढ़ किया था।

इन्होंने अपने नाम के साथ किसी गण-गच्छ का उल्लेख नहीं किया पर विस्तृत प्रशस्तियों में अपना संबंध वज्रशाखा, चन्द्रकुल की परम्परा से बतलाया है।

इनके अतिरिक्त और कुछ कृतियाँ भी मिलती हैं: प्रमाण-प्रकाश, अनन्तनाथ-स्तोत्र, स्तंभनकपार्श्वनाथ तथा वीतरागस्तव।[1]

२. महावीरचरियं :

यह महावीर पर प्राकृत में द्वितीय रचना है जो पद्यबद्ध ३००० ग्रन्थाग्र प्रमाण है। इसमें कुल २३८५ पद्य हैं।[2]

इसका प्रारंभ महावीर के २६ वें भव पूर्व में भगवान् ऋषभ के पौत्र मरीचि के पूर्वजन्म में एक धार्मिक श्रावक की कथा से होता है। उसने एक आचार्य से आत्मशोधन के लिए अहिंसाव्रत धारण कर अपना जीवन सुधारा और आयु के अन्त में भरतचक्रवर्ती का पुत्र मरीचि नाम से हुआ। एक समय

---

१. आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित एवं स्व० मुनि पुण्यविजयजी द्वारा सम्पादित कहारयणकोसो (१९४४) के अन्त में ये सभी लघु कृतियाँ प्रकाशित हैं।

२. जिनरत्नकोश पृ० ३०६; प्रकाशित—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० संवत् १९७३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरतचक्रवर्ती ने भगवान् ऋषभ के समवशरण में आगामी महापुरुषों के सम्बन्ध में उनका जीवन परिचय सुनते हुए पूछा—भगवन्, तीर्थंकर कौन-कौन होंगे ? क्या हमारे वंश में भी कोई तीर्थंकर होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् ऋषभ ने बतलाया कि इक्ष्वाकुवंश में मरीचि अन्तिम तीर्थंकर का पद प्राप्त करेगा। भगवान् की इस भविष्यवाणी को अपने सम्बन्ध में सुनकर मरीचि प्रसन्नता से नाचने लगा और अहं भाव से विवेक तथा सम्यक्त्व की उपेक्षा कर तपभ्रष्ट हो मिथ्यामत का प्रचार करने लगा। इसके फलस्वरूप वह अनेक जन्मों में भटकता फिरा।

इस रचना में भगवान् महावीर के २५ पूर्व-भवों का वर्णन रोचक पद्धति से हुआ है। भाषा सरल और प्रवाहमय है। भाषा को प्रभावक बनाने के लिए अलंकारों की योजना भी की गई है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता बृहद्गच्छ के आचार्य नेमिचन्द्रसूरि हैं। इनका समय विक्रम की १२वीं शती माना जाता है। इनकी छोटी-बड़ी ५ रचनाएँ मिलती हैं—१. आख्यानमणिकोश (मूलगाथा ५२), २. आत्मबोधकुलक अथवा धर्मोपदेशकुलक (गाथा २२), ३. उत्तराध्ययनवृत्ति (प्रमाण १२००० श्लोक), ४. रत्नचूड़कथा (प्रमाण ३०८१ श्लोक) और ५. महावीरचरियं (प्रमाण ३००० श्लोक)। प्रस्तुत रचना उनकी अन्तिम कृति है और इसका रचनाकाल सं० ११४१ है।

इनकी अन्तिम तीन कृतियों में दिये गये प्रशस्ति पद्यों से इनकी गुरुपरम्परा का परिचय इस प्रकार मिलता है :—बृहद्गच्छ (प्रा० वड्ड, वडगच्छ) में देवसूरि के पट्टधर नेमिचन्द्रसूरि हुए, उनके पट्टधर उद्योतनसूरि के शिष्य आम्रदेवोपाध्याय के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि हुए। रचयिता के दीक्षागुरु तो आम्रदेव उपाध्याय थे पर वे आनन्दसूरि के मुख्य पट्टधर के रूप में स्थापित हुए थे। पट्टधर होने के पहले इनकी सामान्य मुनि अवस्था (वि० सं० ११२९ के पहले) का नाम देविंद (देवेन्द्र) था। पीछे उनके देवेन्द्रगणि और नेमिचन्द्रसूरि दोनों नाम मिलते हैं। इनके सम्बन्ध में और विशेष जानकारी नहीं मिलती।

महावीरचरित पर दो अन्य प्राकृत रचनाओं का उल्लेख मात्र मिलता है। वे हैं : मानदेवसूरि के शिष्य देवसूरि की तथा जिनवल्लभसूरि की। अन्तिम कृति ४४ गाथाओं में है। इसका दूसरा नाम दुरियरायसमीरस्तोत्र है।[1]

१. जिनरत्नकोश. पृ० ३०६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत में तीर्थंकरों के जीवनचरित-संबंधी अनेक पृथक्-पृथक् काव्य मिले हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है :

पद्मानन्द-महाकाव्य :

यह महाकाव्य आदि तीर्थंकर ऋषभदेव के चरित्र से सम्बद्ध है।[1] इसकी रचना पद्ममंत्री की प्रार्थना पर हुई थी इसलिए इसका नाम पद्मानन्द महाकाव्य रखा गया। इस काव्य का दूसरा नाम जिनेन्द्रचरित्र भी है। कवि की दूसरी कृति बालभारत की भांति यह भी 'वीराङ्क' चिह्न से विभूषित है। इसमें १९ सर्ग हैं और अनुष्टुभ् प्रमाण से श्लोक संख्या ६३८१ है। इसकी कथा का आधार 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र' है।

कवि ने परम्परागत कथानक में बिना कुछ परिवर्तन किये उसे श्रेष्ठ महाकाव्य के गुण से सम्पन्न बनाने में सफलता प्राप्त की है। प्रथम सर्ग प्रस्तावना के रूप में है, दूसरे से छठे सर्ग तक ऋषभदेव के १२ पूर्वभवों का वर्णन है, सातवें में जन्म, आठवें में बाललीला, यौवन, विवाह; नवम में सन्तानोत्पत्ति, दशम में राज्याभिषेक, ग्यारह-बारहवें में षट्ऋतु-क्रीडा और अन्त में दीक्षा-ग्रहण, तेरहवें में केवलज्ञान प्राप्ति, चौदहवें में समवशरण—देशना आदि, सोलह-सत्तरह-अठारह में भरत-बाहुबलि-मरीचि के वृत्तान्त के साथ अन्त में ऋषभदेव एवं भरत के निर्वाण का वर्णन किया गया है। वास्तव में कथा १८वें सर्ग में ही समाप्त हो जाती है पर उन्नीसवे सर्ग में कवि ने प्रशस्ति के रूप में अपनी गुरु-परम्परा, काव्यरचना, उद्देश्य, प्रेरणादायक, पद्ममंत्री की वंशावली का विवरण दिया है। इस तरह आदि और अन्त के सर्ग प्रस्तावना और प्रशस्ति रूप में हैं, शेष १७ सर्गों में कथा का वर्णन है।

इस काव्य में ऋषभदेव, भरत और बाहुबलि के चरित्र को ही विकसित रूप दिया गया है, शेष को नहीं। प्रकृति-चित्रण भी भव्यरूप से किया गया है। सौन्दर्य चित्रण में बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अंकित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।

---

१. गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज बड़ौदा, १९३२; जिनरत्नकोश, पृ० २३४. विशेष परिचय डा० श्या० शं० दीक्षित लिखित '१३-१४वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य' के अप्रकाशित अंश में दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस काव्य के परिवेश में कवि ने अपने समय में प्रचलित सामाजिक रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों, विवाहविधि आदि को देकर तत्कालीन समाज का परिचय दिया है।[1]

कवि को अपनी अन्यतमकृति 'बालभारत' में जैनधर्म के सिद्धान्तों-नियमों के निरूपण करने का अवसर नहीं मिला था पर इस काव्य में उनके निरूपण को प्रमुख स्थान दिया गया है। धार्मिक चर्चा द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और तेरहवें सर्ग में देखी जा सकती है।

काव्य में विविध रसों और अलंकारों की योजना अनेक स्थलों पर सुन्दर ढंग से की गई है। भाषा-पाण्डित्य को प्रकट करने के लिए यमक और अनुप्रास का प्रयोग अधिक मात्रा में किया गया है।[2] अर्थालंकारों में मालोपमा, अर्थान्तर-न्यास और रूपक की योजना अनेक स्थलों पर हुई है। अन्य अलंकारों में असंगति, मुद्रादीपक, विषम, सहोक्ति, विरोध, परिवृत्ति के भी सुन्दर प्रयोग हुए हैं।[3]

इस काव्य के अधिकांश सर्गों में एक छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। १४-१५ वें सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग भी हुआ है। पद्मानन्द काव्य में ३४ छन्दों का प्रयोग हुआ है उनमें से अनेक ऐसे छन्द हैं जिनका प्रयोग अन्यत्र कम ही हुआ है जैसे सुन्दरी, मेघविस्फूर्जिता, चन्द्रिणी, प्रबोधिता, उत्थापिनी आदि।[4]

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के लेखक सुप्रसिद्ध कवि अमरचन्द्रसूरि हैं। इस काव्य की एक हस्तलिखित प्राचीन प्रति सं० १२९७ की मिलती है। इस प्रति से वह सिद्ध होता है कि यह उस समय से पूर्व रची गई होगी। इस काव्य की रचना वीसलदेव (सं० १२९४—१३३८) के राज्यकाल में उसके मंत्री पद्म के अनुरोध पर[5] की गई थी। इससे वीसलदेव के प्रथम राज्यवर्ष सं० १२९४

१. सर्ग ९.७१,७३-१०२; २.१७७.

२. वही, सर्ग २.१७; १४.६७, ७३-७४, १०६-१०७ आदि.

३. वही, सर्ग २.२४, ७३, १६६; ४.५७, ५८, १००, १८५, २१६, २४०; ६.१०३; १२.६७; १६.७१ आदि.

४. पीटर्सन की प्रथम रिपोर्ट, पृ० ५८ तथा पद्मानन्द की अंग्रेजी भूमिका, पृ० ३४.

५. पद्मानन्द, सर्ग १.९, श्लोक ६०—६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के पश्चात् इसका रचा जाना ज्ञात होता है। इससे इसका रचनाकाल सं० १२९४ और १२९७ के बीच होना चाहिये। इसकी रचना बालभारत के बाद की गई थी।

प्रथम तीर्थंकर पर अन्य रचनाएँ :

आदिनाथचरित पर दूसरी रचना विनयचन्द्र की है जिसका रचनाकाल वि० सं० १४७४ है।[1] विनयचन्द्र नाम के अनेक विद्वान् हुए पर ये विनयचन्द्र कौन है ? यह ज्ञात नहीं। एक विनयचन्द्र (रविप्रभसूरि के शिष्य) के मल्लिनाथचरित, मुनिसुव्रतनाथचरित तथा पार्श्वचरित मिलते हैं, पर उनका समय वि० सं० १३०० के लगभग है। स्पष्ट है कि आदिनाथचरित के रचयिता उक्त विनयचन्द्र से अन्य हैं।

सकलकीर्ति (१५ वीं शती) द्वारा रचित आदिनाथपुराण में २० सर्ग हैं और श्लोक संख्या ४६२८। इसकी वर्णनशैली सुन्दर एवं सरस है। इसका दूसरा नाम वृषभनाथचरित्र भी है[2]। भट्टारक सकलकीर्ति का परिचय उनके हरिवंशपुराण के प्रसंग में दिया गया है।

एतद्विषयक अन्य रचनाओं में चन्द्रकीर्ति (१७ वीं शती), शान्तिदास तथा धर्मकीर्ति आदि द्वारा रचित का उल्लेख मिलता है[3]। नेमिकुमार के पुत्र वाग्भट ने काव्यमीमांसा में अपने ऋषभदेवचरित का उल्लेख किया है।[4] इसके अतिरिक्त संस्कृत नाटककार हस्तिमल्ल कृत कन्नड गद्य में आदिपुराण और श्रीपुराण उपलब्ध हैं जिनपर जिनसेन के आदिपुराण का स्पष्ट प्रभाव है।

अजितनाथपुराण :

द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ पर कान्हणसिंह के पुत्र अरुणमणि उपनाम लालमणि ने अजितनाथपुराण की रचना की[5]। इस भाग के लेखक ने इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में देखी थी। यह मौलिक कृति न होकर जिनसेन के आदिपुराण और हरिवंशपुराण आदि ग्रन्थों से लम्बे-

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८.
२. वही, पृ० २८; प्रकाशित—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, १९३७.
३. वही, पृ० २८-२९.
४. वही, पृ० ५७.
५. वही, पृ० २.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लम्बे अंशों को उद्धृत कर तथा उक्त तीर्थंकर का कुछ चरित्र देकर बनायी गई रचना है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के रचयिता अरुणमणि गृहस्थ प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने गृहस्थाश्रम के अपने पिता का नाम दिया है। उनने स्वयं को काष्ठासंघ, माथुरगच्छ, पुष्करगण का अनुयायी बताया है तथा श्रुतकीर्ति के शिष्य बुधराघव का अपने को शिष्य बताया है। इस ग्रन्थ को लेखक ने जहानाबाद के पार्श्वनाथ मन्दिर में बैठकर लिखा था। जहानाबाद बिहार प्रान्त में है, और इसकी हस्तलिखित प्रति आरा में मिली है।

तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ पर संस्कृत में संभवनाथचरित्र का उल्लेख मिलता है[1]। इसके रचयिता एक मेरुतुंगसूरि माने जाते हैं। इस काव्य की रचना सं० १४१३ में हुई थी। इनकी अन्य कृति कामदेवचरित्र (सं० १४०९) का उल्लेख मिलता है।[2] मेरुतुंग नाम के तीन सूरि हुए हैं उनमें से इनका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता।

चौथे और पाँचवें तीर्थंकर पर भी संस्कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है[3]।

छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ पर भी अनेक संस्कृत काव्यों का उल्लेख मिलता है उसमें सर्व प्रथम सं० १२४८ में लिखित अपनी प्रवचनसारोद्धारटीका में सिद्धसेनसूरि ने स्वरचित पद्मप्रभचरित्र का उल्लेख किया है। सिद्धसेन चन्द्रगच्छसे संबंधित राजगच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य थे।[4]

भट्टारक युग में पद्मप्रभ के चरित पर संस्कृत में अनेक रचनाएँ लिखी गई थीं। उनमें से भ० सकलकीर्ति कृत का उल्लेख मिलता है तथा भ० ज्ञानभूषण के शिष्य भ० शुभचन्द्र (१६-१७वीं शती) का ग्रन्थाग्र २५०५ प्रमाण और भ० विद्याभूषण (सं० १६८०) तथा सोमदत्त (सं० १६६०) के पद्मनाभपुराण ग्रन्थ-भण्डारों में मिलते हैं[5]।

सातवें तीर्थंकर सुपार्श्व पर संस्कृत में कोई काव्य उपलब्ध नहीं है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४२२.
२. वही, पृ० ८४.
३. वही, पृ० ४४६.
४. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३२८; जिनरत्नकोश, पृ० २३४.
५. जिनरत्नकोश, पृ० २३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रप्रभचरित :

आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ पर अनेक संस्कृत काव्य उपलब्ध हैं। उनमें प्रथम आचार्य वीरनन्दि (११वीं शती का प्रारम्भ) कृत चन्द्रप्रभ महाकाव्य है जिसका विस्तार से वर्णन महाकाव्यों के प्रसंग में किया गया है। दूसरी कृति असग कवि (सं० १०४५ के लगभग) कृत का उल्लेख मिलता है।[1] असग कवि कृत शान्तिनाथचरित और वर्द्धमानचरित भी उपलब्ध हैं।

तीसरी रचना ५३२५ श्लोक प्रमाण है। इसमें वज्रायुध नृप की कथा बड़े विस्तार से दी गई है जिसका उत्तर भाग नाटक शैली में लिखा गया है। इसके रचयिता नागेन्द्रगच्छीय विजयसिंहसूरि के शिष्य देवेन्द्र या देवचन्द्रसूरि हैं। रचना-संवत् १२६० दिया गया है।[2]

चतुर्थ रचना का वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जाता है :

तेरह सर्गों का यह काव्य अब तक अप्रकाशित है।[3] इसमें जैनों के अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित वर्णित है। सर्गों के नाम वर्ण्य वस्तु के आधार पर हैं जैसे प्रथम सर्ग दानवर्णन, द्वितीय शीलवर्णन और तृतीय तपोवर्णन। इसमें चन्द्रप्रभ के भवान्तरों का वर्णन है ही, साथ ही विविध स्तोत्र और धर्मोपदेश समस्त काव्य में फैले हैं और कोई भी सर्ग अवान्तर कथाओं से खाली नहीं है। अवान्तर कथाओं में कलावान्-कलावती, धनदत्त-देवकी, चारित्रराज, समरकेतु आदि की कथाएँ प्रमुख हैं। मूलकथा और अवान्तर कथाएँ अनेक चमत्कार-पूर्ण घटनाओं से परिपूर्ण हैं।

यद्यपि यह काव्य तेरह सर्गों में है, किन्तु इसकी कथा प्रथम, षष्ठ और सप्तम इन तीन सर्गों में ही वर्तमान है। शेष सर्गों में विभिन्न देशनाएँ और अवान्तर कथाएँ हैं। द्वितीय सर्ग से पंचम सर्ग तक युगन्धर मुनि की देशनाएँ तथा अष्टम सर्ग से त्रयोदश तक चन्द्रप्रभ तीर्थंकर की देशनाएँ हैं। विभिन्न अवान्तर कथाओं और धर्म-देशनाओं के कारण मूल कथानक अति शिथिल-सा लगता है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ११९.

२. आत्मवल्लभ ग्रन्थ० सं० ९, मुनि चरणविजय द्वारा सम्पादित, अम्बाला, १९३०; जिनरत्नकोश, पृ० ११९.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ११९; हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटन, वस्ता सं० ७८, ग्रन्थ सं० १८८९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथा और उपकथाओं के अनेक पात्रों का चरित्र-चित्रण इसमें हुआ है पर प्रकृति-चित्रण और कलात्मक सौन्दर्य-चित्रण कम ही हुआ है। इस काव्य में धर्मोपदेश को अधिक स्थान दिया गया है।

इसकी भाषा सरल तथा वैदर्भी रीति से युक्त है। इसमें पग-पग पर अनुप्रास-मण्डित पदविन्यास उपलब्ध होता है। मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों का इस चरित की भाषा में अभाव है। इसमें देशी भाषा के शब्द भी प्रयुक्त नहीं हुए तथा समस्त पदावली का प्रयोग भी कम ही हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग इस चरित में अधिक हुआ है।

इसकी रचना अनुष्टुभ् वृत्त में हुई है पर सर्गान्त में अन्य छन्दों का प्रयोग हुआ है। कवि ने इस चरित का परिमाण ६१४१ श्लोक प्रमाण बतलाया है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में एक प्रशस्ति दी गई है जिसमें कवि की गुरु-परम्परा दी गई है। तदनुसार सर्वानन्दसूरि सुधर्मागच्छीय थे। सुधर्मागच्छ में जयसिंह नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान् हुए जिनकी पट्ट-परम्परा में क्रमशः चन्द्रप्रभसूरि, धर्मघोषसूरि और शीलभद्रसूरि हुए। शीलभद्रसूरि के शिष्य गुणरत्नसूरि हुए जो प्रस्तुत कवि के गुरु थे। सर्वानन्दसूरि ने इस काव्य की रचना वि० सं० १३०२ में की[1] थी। इनकी अन्य कृति पार्श्वनाथ-चरित (सं० १२९१) उपलब्ध है।

पंचम कृति भट्टारक शुभचन्द्रकृत १२ सर्गात्मक चन्द्रप्रभचरित उपलब्ध है।[2] अन्य कवियों द्वारा लिखित उक्त काव्य के उल्लेख मिलते हैं जिनमें पण्डिताचार्य (अज्ञात समय), आंचलिकगच्छ के एक सूरि, पं० शिवाभिराम (१७ वीं शती) तथा धर्मचन्द्र के शिष्य दामोदर (सं० १७२७) के नाम ज्ञात हुए हैं।[3] दामोदर की कृति जयपुर के पटोदी मन्दिर में है।

नवें तीर्थंकर पुष्पदन्त के सम्बन्ध में संस्कृत में कोई **एक रचना ज्ञात है**। दसवें शीतलनाथ पर एक कृति का उल्लेख मिलता है।[4]

१. प्रशस्ति, श्लो० ७—श्री **सर्वानन्दसूरिर्भुजगगनशमीगर्भशुभ्रांशुवर्षे (१३०२).**

२. **राजस्थान के सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १००; जिनरत्नकोश, पृ० ११९.**

३. **जिनरत्नकोश, पृ० ११९.**

४. **वही, पृ० ३८४.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेयांसनाथचरित :

ग्यारहवें तीर्थंकर पर संस्कृत में दो कृतियाँ मिलती हैं। उनमें प्रथम है मानतुंगसूरिकृत।[१] इस काव्य में १३ सर्ग हैं। यह ५१२४ श्लोक प्रमाण है। सर्गों का नाम वर्ण्य विषय के आधार पर है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में उस सर्ग का कथानक प्रस्तुत करना श्रेयांसनाथचरित की विशेषता है। इसमें श्रेयांसनाथ के केवल दो भवों—नलिनीगुल्म और महाशुक्रदेव का ही वर्णन है। काव्य में रत्नसार, सत्यकिश्रेष्ठी, श्रीदत्त, कमला आदि अनेक अवान्तर कथाएँ हैं जिनमें भवान्तर वर्णनों की प्रमुखता है। स्थान-स्थान पर जैन धर्म के सिद्धान्तों, उपदेशों और स्तोत्रों का वर्णन है। कथानक में अनेक अप्राकृत और अलौकिक तत्त्वों का समावेश है। फिर भी इस काव्य के कथानक के प्रवाह में गति और प्रबन्धात्मकता है। कतिपय अवान्तर कथाओं के होते हुए भी श्रेयांसनाथचरित के कथानक में शिथिलता नहीं है।

इस चरित के प्रमुख पात्रों में भुवनभानु, नलिनीगुल्म और श्रेयांसनाथ हैं। नलिनीगुल्म और भुवनभानु के चरित्र में तो कुछ विकास हुआ है। श्रेयांसनाथ के चरित्र में किसी स्वतंत्र व्यक्तित्व के दर्शन नहीं होते हैं। उनका जन्म और अन्य महोत्सव अन्य तीर्थंकरों की भाँति ही दिखाये गये हैं। विविध उपदेशों में उनका उपदेशक स्वरूप दृष्टिगत होता है। इसमें प्रकृति-चित्रण, कथानक की पृष्ठभूमि और घटनाओं एवं चरित्र के अनुरूप वातावरण निर्माण करने के लिए किया है।[२] पात्रों के रूपवर्णन में कवि ने विशेष रुचि ली है।[३] जैन धर्म के अति प्रचलित नियमों का वर्णन ही इस काव्य में किया गया है। कवि ने कठिन दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन की ओर अपनी रुचि नहीं दिखलाई। साहित्य-शास्त्र मान्य विविध रसों की योजना में इस चरित्र के प्रणेता को पर्याप्त सफलता मिली है।[४]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४००; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर; विशेष परिचय डा० श्या० शं० दीक्षित लिखित '१३-१४वीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य' में दिया गया है।

२. वही, सर्ग १. ३६-३७; ५. २५-२६, २८, २९; १०. ३४-३६, ५५-५६.

३. वही, सर्ग ७. १७६, १७७, १७९, १८३, २५०, २५५.

४. वही, सर्ग १. २१६-२२०, ४६८-७०; २. २३३-२३६; ६. २४८-२५१, २५३-५४; १०. ८७-९०, २३८-२४०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चरित्र की भाषा सरल, सुन्दर और मधुर है। सर्वत्र प्रसंगानुकूल और भावानुवर्तिनी है। मुहावरों का प्रयोग कम ही हुआ है। इसकी भाषा आलंकारिक है। अनुप्रास और यमक के प्रयोग से भाषा श्रुतिमधुर और प्रवाहपूर्ण बन गई है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग बहुत हुआ है।[1] इनके साथ अतिशयोक्ति, दृष्टान्त, परिसंख्या, व्यतिरेक, भ्रान्तिमान् आदि अलंकारों के सुन्दर प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं।

समस्त श्रेयांसनाथचरित अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है। केवल प्रत्येक सर्ग के अन्तिम दो-दो पद्य अन्य छन्दों में हैं। इस प्रकार इस चरित्र में अनुष्टुप् उपजाति, लक्ष्मी, वसन्ततिलका, आर्या, स्वागता तथा शार्दूलविक्रीडित—इन सात छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस चरित्र के अन्त में कवि ने एक प्रशस्ति दी है। तदनुसार ग्रन्थकार मानतुंगसूरि कोटिकगण की वैरिशाखा के अन्तर्गत चन्द्रगच्छ से सम्बन्धित थे। चन्द्रगच्छ में शीलचन्द्र आचार्य के चन्द्रसूरि, भरतेश्वरसूरि, धनेशसूरि, सर्वदेवसूरि तथा धर्मघोषसूरि—ये पाँच शिष्य थे। इनमें धर्मघोषसूरि गच्छाधिपति हुए। सर्वदेवसूरि की शिष्य-परम्परा में क्रमशः चन्द्रप्रभसूरि, जिनेश्वरसूरि, रत्नप्रभसूरि हुए। इन रत्नप्रभसूरि के शिष्य प्रस्तुत काव्य के रचयिता मानतुंगसूरि थे। इस काव्य की रचना वि० सं० १३३२ में हुई थी।[2] इस काव्य का आधार देवभद्राचार्य विरचित प्राकृत श्रेयांसनाथचरित है। यह बात कवि ने सर्ग प्रथम के १३ और १८ वें पद्य में सूचित की है। इस काव्य का संशोधन प्रसिद्ध संशोधक प्रद्युम्नसूरि ने किया था।[3]

श्रेयांसनाथ पर दूसरी रचना भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (सं० १७२२–३३) कृत का उल्लेख मिलता है।[4]

---

१. वही, सर्ग १. १७०, २५१, ४२७, ४२८; २.३२९-१३०; ७.६१.

२. वही, प्रशस्ति, श्लो० १२.

३. पुण्डरीकचरित, सर्ग १३.१४४-१४५.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ४००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासुपूज्यचरित :

बारहवें तीर्थंकर पर संस्कृत में एक मात्र काव्य मिलता है जिसका विवेचन इस प्रकार है :

इस काव्य में वासुपूज्य का चरित वर्णित है[1]। यह ग्रन्थ यद्यपि चार ही सर्गों में विभक्त है पर ग्रन्थपरिमाण लगभग ५॥ हजार श्लोक प्रमाण है। इस काव्य के कथानक का आधार प्राचीन जैन पुराण ग्रन्थ हैं।

यह आह्लादनाङ्कित काव्य है। सर्गों का नाम वर्ण्यविषय के आधार पर किया गया है। इसमें वासुपूज्य के भवान्तरों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। समस्त कथानक में स्तोत्र और धर्मोपदेश फैले हुए हैं। इसमें अपने समय में रचित काव्यों की अपेक्षा अधिक अवान्तर कथाएँ दी गई हैं। पुण्याढ्य, हंस-केशव, रतिसार, विद्यापति, सनत्कुमार, शृंगारसुन्दरी, संवर, चन्द्रोदर, सूरचन्द्र, विक्रम, हंस, लक्ष्मीकुंज, नागिल, सिंह, धर्म, सुरसेन-महासेन, केशरी, सुमित्र, मित्रानन्द और सुमित्रा इन उन्नीस अवान्तर कथाओं की योजना इस काव्य में की गई है। इन कथाओं के भीतर भी उपकथाएँ दी गई हैं। कथाओं में अनेक चमत्कारी तत्त्वों का समावेश हुआ है।

चरित्रविकास की दृष्टि से इसमें तीर्थंकर वासुपूज्य के चरित्र का पूर्ण विकास हुआ है। शेष चरित्र—विमलबोधि, वज्रनाभ, जया आदि कुछ समय के लिए ही हमारे समक्ष आते हैं। कवि के प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य-चित्रण प्रायः धार्मिकता से ओतप्रोत हैं और जो हैं वे कम ही हैं। धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों की चर्चा यत्रतत्र खूब की गई है। प्रस्तुत काव्य के अन्त के दो सर्गों में सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं और विश्वासों का सुन्दर चित्रण हुआ है[2]। वासुपूज्य के जन्म से लेकर दीक्षा के अवसर तक लौकिक रीतिरिवाजों का उल्लेख किया गया है।

इस चरित की भाषा सरस और सरल संस्कृत है। इसके अनुष्टुप् छन्दों में मधुरता और लालित्य भरा हुआ है। कहीं-कहीं ८–१० श्लोकों के कुलकों में लम्बे-लम्बे समासों से युक्त पदावली का प्रयोग हुआ है[3]। पर कवि ने प्रायः असमस्त शैली का प्रयोग ही किया है। इस चरित की भाषा में आलंकारिता

---

१. जैन-धर्म प्रसारक सभा भावनगर, सं० १९६६; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२८–३०; जिनरत्नकोश, पृ० ३४८.

२. वही, सर्ग ३. ३५०–४००, ५४०–५९६.

३. वही, सर्ग २. ९९१; ३. ४०६–४०९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वत्र विद्यमान है। अनुप्रास और यमक जैसे अलंकारों का प्रयोग इसमें बहुत हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना भी यत्रतत्र हुई है[1]। इस तरह विविध अलंकारों के प्रयोग से रचयिता ने अपने काव्य के कलापक्ष को समृद्ध किया है।

प्रस्तुत काव्य में अनुष्टुभ् और वसन्ततिलका केवल इन दो छन्दों का ही प्रयोग हुआ है। समस्त सर्गों में अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में अन्तिम दो पद्यों में वसन्ततिलका का प्रयोग किया गया है। इस चरित का रचना-परिमाण ५४९४ श्लोक-प्रमाण है। यह बात स्वयं कवि ने प्रशस्ति में कही है[2]।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति में कवि की गुरु-परम्परा का परिचय दिया गया है। तदनुसार ग्रन्थकर्ता वर्धमानसूरि नागेन्द्रगच्छीय थे। नागेन्द्रगच्छ में वीरसूरि के शिष्य परमारवंशीय वर्धमानसूरि हुए। उनके पट्टपर क्रमशः श्री रामसूरि, चन्द्रदेवसूरि, अभयदेवसूरि, धनेश्वरसूरि और विजयसिंहसूरि हुए। विजयसिंहसूरि के शिष्य ही प्रस्तुत काव्य के रचयिता वर्धमानसूरि हैं। उन्होंने अणहिल्लपुर में इस काव्य की रचना सं० १२९९ में की थी[3]।

विमलनाथचरित :

तेरहवें तीर्थंकर पर संस्कृत में चार रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनमें पहली है पाँच सर्गों का गद्य में रचित सुन्दर चरितकाव्य[4]। इसका नाम तो विमलनाथ-चरित है पर इसके प्रथम तीन सर्गों का नाम क्रमशः दानधर्माधिकार, शील-तप-धर्माधिकार और भावाधिकार है, शेष दो में तीर्थंकर विमलनाथ के गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान, देशना आदि का वर्णन है। पहले दानधर्माधिकार में विमलनाथ के पूर्वभव के जीव राजा पद्मसेन के वर्णन प्रसंग में, धर्म की श्रेष्ठता पर सुबुद्धि की कथा, कदाग्रह पर कुलपुत्रक की कथा, दानधर्म पर रत्नचूड़ की कथा

---

१. वही, सर्ग १. १, ४४; २. ७६२, ७६३, २०७६; ३. ९, २०, ४३३, ४३४, ६५६.

२. वही, प्रशस्ति, श्लोक २८–३१.

३. ततोऽसौ निधिनिध्यर्कसंख्ये (१२९९) विक्रमवत्सरे ।
आचार्यैश्चरितं चक्रे वासुपूज्यविभोरिदम् ॥

४. हीरालाल हंसराज, जामनगर, सन् १९१०; इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सं० १९८५ में प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(इसमें बालक रोहक की अवान्तर कथा), अति लोभ पर सोमशर्मा की कथा तथा वाणी से जीतनेवाली सेठानी की कथा दी गई है। दूसरे शीलतपधर्माधिकार में शील के माहात्म्य पर शीलवती की कथा, तप-धर्म पर निर्भाग्य की कथा, जिन-पूजा पर देवपाल की कथा, गुरुभक्ति पर श्रेष्ठिपुत्र मुग्ध की कथा, धर्मभक्ति पर अमरसिंह और पूर्णकलश की कथा तथा प्रमाद पर विष्णुशर्मा की कथा दी गई है। तीसरे भावाधिकार में भावधर्म के ऊपर चन्द्रोदर की कथा तथा विमलनाथ के पूर्वभव के जीव पद्मसेन राजा द्वारा पंचसमिति और त्रिगुप्ति पालन तथा पंचसमिति और त्रिगुप्ति में से प्रत्येक समिति के माहात्म्य पर एक-एक कथा दी गई है।

इसके बाद पद्मसेन नृप ने २० स्थानक की आराधना से तीर्थंकर प्रकृति बांधी और मरकर सहस्रार लोक गया। चतुर्थ सर्ग में सहस्रार स्वर्ग से च्युत होकर विमलनाथ का गर्भ में आना तथा जन्म-महोत्सव, व्रतग्रहण, केवलज्ञान का वर्णन है। बीच में वरुण सेठ के चार पुत्रों की कथा तथा लोभाकर लोभानन्दी की कथाएँ आती हैं। पाँचवें सर्ग में श्रावकधर्म के उपदेश पर १२ व्रतों पर क्रमशः नृपशेखर, विमलकमल, सुरदत्त-कमलसेन, चन्द्र-सुरेन्द्रदत्त, देवदत्त-जयदत्त, रौहिणेय और उसके पिता, स्वर्णशेखर-महेन्द्र, वीरसेन-पद्मावती, वानर-अरुणदेव, वाकजंघ, मलयकेतु, शान्तिमती-पद्मलोचना की कथाएँ और सम्यक्त्व पर कुलध्वज की कथा दी गई है। पीछे गणधर की धर्मदेशना और विमलनाथ के निर्वाण गमन का वर्णन है।

ग्रन्थकार तथा रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में एक प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि स्तंभतीर्थ (खंभात) में बृहत्तपागच्छ के रत्नसिंह के शिष्य ज्ञानसागर ने संवत् १५१७ में श्रावण कृष्ण पञ्चमी के दिन शाणराज सेठ की प्रार्थना पर इस ग्रन्थ को बनाया था। शाणराज सेठ ने रत्नसिंहसूरि के उपदेश से गिरनार पर्वत पर विमलनाथ का मन्दिर बनाया था और सम्भव है उनका चरित लिखने की उसने प्रार्थना भी की थी। इनकी दूसरी रचना शान्तिनाथ-चरित मिलती है।

अन्य रचनाओं में ब्रह्मचारी कृष्णजिष्णु या कृष्णदास का विमलपुराण[1] १० सर्गात्मक मिलता है। इसमें २३६४ श्लोक हैं। ग्रन्थकर्ता ने अपने को भट्टारक

१. मूल और पं० गजाधरलालकृत अनुवाद—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, सं० १९८१; श्रीलाल शास्त्रीकृत अनुवाद—भा० जै० सि० प्र० कलकत्ता तथा जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, कलकत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री रत्नभूषण के आम्नाय का तथा उभय भाषा-चक्रवर्ती कहा है। अपने पिता का नाम हर्षदेव और माता का नाम वीरिका दिया है। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपने अनुज ब्र० मंगलदास की सहायता से की थी। यह प्रसादपूर्ण चित्ताकर्षक रचना है।

एक अन्य रचना सं० १५७८ में इन्द्रहंसगणिकृत है तथा दूसरी रत्ननन्दि-गणिकृत और कुछ अज्ञातकर्तृक भी उपलब्ध हैं।[१]

चौदहवें तीर्थंकर पर वासवसेनकृत अनन्तनाथपुराण नामक रचना का उल्लेखमात्र मिलता है।[२]

पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ पर कुछ साधारण कोटि की तथा कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। सं० १२१६ में नेमिचन्द्रकृत धर्मनाथचरित मिलता है। सम्भवतः ये नेमिचन्द्र वही हैं जिन्होंने सं० १२१३ में प्राकृत में अनन्तनाथचरित की रचना की थी। दूसरी रचना महाकवि हरिचन्द्रकृत धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य है। इसका वर्णन हम शास्त्रीय महाकाव्यों के प्रसंग में करेंगे। तृतीय रचना भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं शती) कृत है।[३]

सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ, तीर्थंकर के अतिरिक्त पंचम चक्रवर्ती तथा कामदेवों में से एक थे। उनका चरित जैन लेखकों को बड़ा रोचक लगा इसलिए उन पर अनेकों काव्य संस्कृत में लिखे गये हैं। यहाँ उनका परिचय दिया जाता है।

शान्तिनाथपुराण :

इस चरित में १६ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर २५०० पद्य हैं। इसकी रचना शक सं० ९१० के लगभग हुई है। रचयिता असग कवि हैं जिनके चन्द्रप्रभचरित और महावीरचरित उपलब्ध हैं। इस काव्य के सातवें सर्ग में नासिक्य नगर के बाहर गजध्वज शैल का उल्लेख है जिसे गजपंथ तीर्थ के आस-पास के क्षेत्र से पहचाना गया है। यह उक्त तीर्थ की प्राचीनता का द्योतक है।[४]

कवि असग की एक अन्यकृति लघुशान्तिपुराण भी मिलती है जिसमें १२ सर्ग हैं। यह लगता है कि कवि के १६ सर्गात्मक शान्तिपुराण का लघुरूप है।[५]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३५८.

२. वही, पृ० ७.

३. वही, पृ० १८९.

४. सर्ग ७.९८; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४३१.

५. जिनरत्नकोश, पृ० ३३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. शान्तिनाथचरित :

यह मम्मटकृत काव्यप्रकाश के टीकाकार माणिक्यचन्द्रसूरि की दूसरी रचना है। इसकी एक ताडपत्रीय प्रति मिलती है।[1] इसमें आठ सर्ग हैं। इसका रचना-विस्तार ५५७४ श्लोक-प्रमाण है जो कवि ने स्वयं निर्दिष्ट किया है।[2] इसका आधार हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा माना जाता है।

इसमें वैसे महाकाव्य के प्रायः सभी बाह्यलक्षण समाविष्ट हैं पर भाषा-शैथिल्य, सर्वांगीण जीवन के चित्र उपस्थित करने की अक्षमता एवं मार्मिक स्थलों की कमी इसे प्रमुख महाकाव्य मानने में बाधक हैं। सर्गों के नाम वर्णित घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। इसमें स्थान-स्थान पर जैनधर्म-संबंधी उपदेश हैं। सप्तम सर्ग तो जैनधर्म के सिद्धान्तों से ही परिपूर्ण है। काव्य वैराग्यमूलक और शान्तरस पर्यवसायी है। इसका कथानक शिथिल है और इसमें प्रबन्धरूढ़ियों का पालन हुआ है। मंगलाचरण परमब्रह्म की स्तुति से प्रारंभ होता है। चरित में अवान्तर कथाओं की भरमार है। छठे, सातवें और आठवें सर्ग में विविध आख्यानों का समावेश है। कई स्थलों पर स्वमत-प्रशंसा और परमत-खण्डन किया गया है। इस काव्य में स्तोत्रों और माहात्म्य वर्णनों की प्रचुरता भी दिखाई देती है। छठे और आठवें सर्ग में तीर्थंकर शान्तिनाथ के स्तोत्र तथा कई तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन है।

इस शान्तिनाथचरित का कथानक ठीक वही है जो मुनिभद्रसूरिकृत शान्तिनाथ महाकाव्य का है पर इसमें कथानक का विभाजन नवीन ढंग से किया गया है। इसमें प्रथम सर्ग में शान्तिनाथ के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भव का वर्णन है, द्वितीय सर्ग में चतुर्थ और पंचम भव, तृतीय सर्ग में षष्ठ और सप्तम भव का, चतुर्थ सर्ग में अष्टम और नवम भव का तथा पंचम सर्ग में दशम और एकादश भव का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में शान्तिनाथ के जन्म, राज्याभिषेक, दीक्षा, केवलोत्पत्ति तथा देशना का वर्णन है। सप्तम सर्ग में देशना के अन्तर्गत द्वादशभाव तथा शील की महिमा का वर्णन है और अष्टम सर्ग में श्री शान्तिनाथ के निर्वाण का वर्णन है। कथानक-विभाजन की दृष्टि से ही नहीं अपितु नवीन अवान्तर

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८०; हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, प्रति ४६।८६५.

२. चतुःसप्ततिसंयुक्ते पंचपंचाशता शतो (?)।
प्रत्यक्षरगणनया ग्रन्थमानं भवेदिह ॥ ग्रन्थाग्रं ५५७४ ॥
—प्रशस्ति, श्लोक २०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं की योजना में भी माणिक्यचन्द्रसूरि ने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है। इसमें केवल चार ही पात्रों अर्थात् शान्तिनाथ, चक्रायुध, अशनिनिर्घोष और सुतारा के चरितचित्रण का प्रयास कवि ने किया है। शेष पात्रों का चरित्र परम्परा-सम्मत है, उसका विकास नहीं हुआ।

इसकी भाषा सरल और प्रसादगुण युक्त है। अधिकतर इसमें छोटे समासों वाली या समासरहित पदावली का प्रयोग हुआ है। इसमें शब्दालंकार के यमक और अनुप्रास के प्रयोग से भाषा में प्रवाह और माधुर्य आ गया है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक एवं विरोधाभास आदि अलंकारों की सुन्दर योजना हुई है। इसमें प्रायः अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है पर प्रत्येक सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया गया है और मालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित आदि कुछ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—काव्य के अन्त में जो प्रशस्ति दी गई है उसमें उपलब्ध गुरुपरम्परा का वर्णन कवि कृत पूर्वरचना पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति के विवरण से पूर्णतः मिलता है। इससे यह निर्विवाद है कि इसके रचयिता माणिक्यचन्द्रसूरि हैं। इस काव्य की समाप्ति कसाम्बिति नगर में दीपावली के दिन सोमवार को हुई थी, जैसा कि कवि ने प्रशस्ति में कहा है :

दीपोत्सवे शशिदिने श्रीमन्माणिक्यसूरिभिः।
कसामिवत्यां महापुर्यां श्रीग्रन्थोऽयं समर्थितः॥

पर इससे इस ग्रन्थ का रचना-संवत् नहीं मालूम होता। माणिक्यचन्द्र की अन्यकृति पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल उसकी प्रशस्ति में वि० सं० १२७६ दिया गया है। सं० १२७६ में ही वस्तुपाल को मंत्रीपद मिला था और जिनभद्रकृत प्रबंधावली में वस्तुपाल और माणिक्यचन्द्र के अच्छे सम्पर्क का विवरण दिया गया है। इससे उनका वि० सं० १२७६ के बाद तक जीवित रहना सुनिश्चित है। माणिक्यचन्द्र की एक अन्यकृति काव्यप्रकाश पर संकेत टीका है जिसकी प्रशस्ति से उसकी रचना की ध्वनि सं० १२४६ अथवा सं० १२६६ निकलती है। इससे संभव है कि उक्त रचना संकेत टीका और पार्श्वनाथचरित के बीच या कुछ बाद अवश्य हुई होगी। मोटे रूप से शान्तिनाथचरित की रचना विक्रम की तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध मानने में आपत्ति न होनी चाहिए। अनुमान किया जाता है कि यह कवि की वृद्धावस्था की कृति होगी क्योंकि इस कृति में कवि अपने पाण्डित्य प्रदर्शन के प्रति उदासीन है जब कि काव्य-प्रकाशसंकेत में उनके प्रौढ़ पाण्डित्य और असामान्य बुद्धि के दर्शन होते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। कवि ने इस काव्य की रचना धर्मभावना से प्रेरित होकर स्वान्तः सुखाय की है।[1] कवि का विशेष परिचय उनकी अन्यकृति पार्श्वनाथचरित के प्रसंग में दिया गया है।

२. शान्तिनाथचरित :

यह ६ सर्गात्मक कृति है। इसमें ५००० श्लोक हैं। इसके रचयिता पौर्णमिकगच्छीय अजितप्रभसूरि हैं जो वीरप्रभसूरि के शिष्य हैं[2]। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी : पौर्णमिकगच्छ में चन्द्रसूरि, उनके शिष्य देवसूरि, उनके तिलकप्रभ और उनके शिष्य वीरप्रभ। इस ग्रन्थ की रचना सं० १३०७ में हुई थी। इस सूरि का एक अन्य ग्रन्थ भावनासार मिलता है जो उक्त चरित से पहले बनाया गया था[3]।

३. शान्तिनाथचरित :

यह सात सर्ग का एक काव्य है।[4] इसका प्रमाण ४८५५ श्लोक है। इस काव्य के कथानक का आधार प्राचीन चरित ग्रन्थ हैं। सर्गों के नाम वर्णनीय कथा पर आधारित हैं। एक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त में विभिन्न छन्दों के द्वारा कथा परिवर्तन की ओर किंचित् संकेत किया गया है। इसमें शान्तिनाथ, वज्रायुध, अशनिघोष, सुतारा आदि के भवान्तरों का वर्णन किया गया है। अन्य पुराणों की भाँति इसमें अलौकिक और अतिप्राकृतिक कार्यों की भरमार है। मंगलकुम्भ धनद, अमरदत्त नृप आदि अनेक अवान्तर कथाओं की योजना के कारण कथानक में शिथिलता आ गई है।

---

१. शान्तिनाथचरित, सर्ग १, श्लोक ३३-३४:
प्रक्रान्तोऽयमुपक्रमः खलु मया किं तर्ह्यगर्ह्यक्रमः।
स्वस्यानुस्मृतये जडोपकृतये चेतो विनोदाय च॥

२. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, सं० १९७३; जिनरत्नकोश, पृ० ३७९; बिब्लियो० इण्डिका। इसका गुजराती अनुवाद भी उपलब्ध है जो जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सं० २००३ में प्रकाशित हुआ है।

३. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१०.

४. हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटन, हस्त० क्र० ४२९ तथा ६८४०. इस कृति का परिचय डा० श्यामशंकर दीक्षित के शोधप्रबन्ध 'तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत-महाकाव्य' के अप्रकाशित अंश में विस्तार के साथ द्रष्टव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत काव्य मुनिभद्रसूरिकृत शान्तिनाथचरित महाकाव्य से पहले लिखा गया है। दोनों के कथानक और अवान्तर कथाओं में पूर्ण साम्य है। कथाओं का क्रम भी दोनों में एक-सा है। इसलिए मुनिभद्रसूरि की कृति का आधार प्रस्तुत ग्रन्थ ही है। किन्तु मूल कथा के विभाजन में दोनों मौलिक हैं। मुनिभद्रसूरि ने कथा को १९ सर्गों में विभाजित किया है जबकि प्रस्तुत काव्य में कथानक का विभाजन ७ सर्गों में ही हुआ है। इसके प्रथम सर्ग में शान्तिनाथ के प्रारम्भ के तीन भवों का, द्वितीय में चतुर्थ और पंचम भव का, तृतीय सर्ग में षष्ठ और सप्तम भव का, चतुर्थ सर्ग में अष्टम और नवम भव का तथा पंचम में दशम और एकादश भव का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में शान्तिनाथ के जन्म से दीक्षा तक एवं देशनाओं का और सप्तम में उनके मोक्षगमन का वर्णन है। विविध अवान्तर कथाओं के कारण कथानक के प्रवाह में शिथिलता-सी आ गई है। इसमें शान्तिनाथ, उनके पुत्र चक्रायुध और अशनिघोष तथा सुतारा ये चार पात्र ही प्रमुख हैं। प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य-चित्रण धार्मिकता से अनुप्राणित होने के कारण व्यापक रूप से स्थान नहीं पा सके हैं। जैनधर्म के सिद्धान्तों और नियमों का विवेचन अनेक स्थलों पर हुआ है।

इस काव्य की भाषा सरल और प्रसाद गुण प्रधान है और भाव व्यक्त करने में सक्षम है। अलंकारों की योजना करने में कवि का विशेष आग्रह नहीं दिखाई पड़ता फिर भी कुछेक तो भाषाप्रवाह में आ गये हैं। शब्दालंकार में अनुप्रास और यमक का प्रयोग अधिक हुआ है और अर्थालंकार में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का।

इसमें अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन हुआ है जिनमें शार्दूलविक्रीडित, आर्या, शिखरिणी, वसन्ततिलका तथा उपजाति छन्दों का प्रयोग है। कवि ने इस काव्य का रचना परिमाण ४८५५ श्लोक-प्रमाण बताया है[1]।

ग्रन्थकार व रचनाकाल—काव्य के अन्त में प्रशस्ति देकर कवि ने अपना परिचय दिया है। जिससे ज्ञात होता है कि मुनिदेवसूरि बृहद्गच्छीय थे। उन्होंने गुरुपरम्परा भी दी है। तदनुसार इस गच्छ में मुनिचन्द्र नामक विद्वान् सूरि हुए,

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक १८ :

प्रत्यक्षरं च संख्यानात् पंचपंचाशताधिका।
अस्मिन्ननुष्टुभामष्टचत्वारिंशच्छतीत्येव ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी पट्टपरम्परा में क्रमशः देवसूरि, भद्रेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, मदनचन्द्रसूरि हुए। प्रस्तुत ग्रन्थकार मुनिदेवसूरि मदनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने प्रस्तुत कृति की रचना सं० १३२२ में की[1]। इस काव्य के संशोधक श्री प्रद्युम्नसूरि थे[2]। प्रस्तुत शान्तिनाथचरित का आधार हेमचन्द्राचार्य के गुरुदेवचन्द्रसूरि कृत प्राकृत में निबद्ध बृहद् शान्तिनाथचरित है। सम्भवतः इसीलिए मुनिदेवसूरि ने प्रत्येक सर्ग के अन्त में देवचन्द्रसूरि की स्तुति की है[3]।

मुनिदेवसूरि के उक्त चरित्र को आधार बनाकर शास्त्रीय महाकाव्य की शैली पर १९ सर्गात्मक शान्तिनाथचरित की रचना बृहद्गच्छीय मुनिभद्रसूरि ने सं० १९१० में की थी जिसका विवरण शास्त्रीय महाकाव्यों के प्रसंग में प्रस्तुत किया जायेगा।

४. शान्तिनाथचरित :

इसमें १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का चरित्र वर्णित है[4]। वे तीर्थंकर के साथ चक्रवर्ती और कामदेव भी थे। उनकी इन सभी विशेषताओं का इस काव्य में वर्णन है। काव्य में १६ अधिकार हैं तथा ग्रन्थाग्र ४३७५ श्लोक-प्रमाण है। इसकी भाषा आलंकारिक तथा वर्णन रोचक एवं प्रभावक है। प्रारम्भ में शृंगार रस के स्थान में शान्त रस की ओर प्रवृत्ति पर कवि ने अच्छा प्रकाश डाला है।

५. शान्तिनाथचरित :

इसे सरल संस्कृत गद्य में सं० १५३५ में भावचन्द्रसूरि ने रचा है।[5] ये पूर्णिमागच्छ के पार्श्वचन्द्र के प्रशिष्य एवं जयचन्द्र के शिष्य थे। ग्रन्थ का

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक ११.

२. वही, सर्ग १, श्लोक १७ :

श्रीप्रद्युम्नश्चिरं नन्द्यात् ग्रन्थस्यास्य विशुद्धिकृत्।

३. वही, सर्ग १, श्लो० ३५७.

४. दुलीचन्द्र पन्नालाल देवरी, १९२३; हिन्दी अनुवाद सहित—जिनवाणी प्र० का०, कलकत्ता, १९३९. इसका अनुवाद सूरत से पं० लालाराम शास्त्री-कृत भी उपलब्ध है।

५. जिनरत्नकोश, पृ० ३७९; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५१६; जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९११; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४; क्षांतिसूरि जैन० ग्र०, अहमदाबाद, सं० १९९५; गुजराती अनुवाद, भावनगर, सं० १९७८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाण ६५०० श्लोक है। इस ग्रन्थ की ग्रन्थकार द्वारा लिखी गई सं० १५३५ की एक प्रति लालबाग, बम्बई के एक भण्डार से मिली है। इसके ६ प्रस्तावों में शान्तिनाथ तीर्थंकर के १२ भवों का वर्णन है। वर्णन क्रम में अनेक उपदेशात्मक कहानियाँ भी आ गई हैं जिससे ग्रन्थ का आकार बहुत बढ़ गया है। बीच बीच में प्रसंगवश ग्रन्थान्तरों से लेकर प्राकृत और संस्कृत पद्यों का उपयोग किया गया है। ग्रन्थ के समाप्त होते-होते रत्नचूड़ की संक्षिप्त कथा भी दी गई है।

शान्तिनाथ विषयक अन्य रचनाएँ ज्ञानसागर (सं० १५१७), अंचलगच्छ के उदयसागर (ग्रन्थाग्र २७००), वत्सराज (हीरा० हंस० जामनगर १९१४ प्रकाशित), हर्षभूषणगणि, कनकप्रभ (ग्रन्थाग्र ४८५), रत्नशेखरसूरि (ग्रन्थाग्र ७०००), भट्टा० शान्तिकीर्ति, गुणसेन, ब्रह्मदेव, ब्रह्मजयसागर और श्रीभूषण (सं० १६५९) आदि की मिलती हैं[1]। धर्मचन्द्रगणि ने शान्तिनाथराज्याभिषेक और हर्षप्रमोद के शिष्य आनन्दप्रमोद ने शान्तिनाथविवाह नामक रचनाएँ भी लिखी हैं। कुछ अज्ञात नामा व्यक्तियों की भी रचनाएँ मिलती हैं। मेघविजयगणि (१८ वीं शती) का शान्तिनाथचरित काव्य उपलब्ध है जो नैषधीयचरित के पादों के आधार से शान्तिनाथ का जीवनचरित प्रस्तुत करता है। उसका विवेचन हम पादपूर्ति-साहित्य के प्रसंग में करेंगे।

सत्तरहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथ पर पद्मप्रभ शिष्य विबुधप्रभसूरि (१३ वीं शती) की कृति (ग्रन्थाग्र ५५५५) का उल्लेख मिलता है[2]। अठारहवें अरनाथ पर अभीतक कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई है।

मल्लिनाथचरित :

उन्नीसवें तीर्थंकर पर अनेक संस्कृत रचनाएँ उपलब्ध हैं। उनमें प्रथम है आठ सर्गों का 'विनयांकित' महाकाव्य[3]। सर्गों का नाम वर्ण्यविषय के आधार पर किया गया है। इस काव्य में मिथिला राजकुमारी मल्लि के अतिरिक्त साकेत नृप प्रतिबुद्ध, चम्पानृप चन्द्रच्छाय, श्रावस्ति नरेश रुक्मी, वाराणसी भूप शंख, हस्तिनापुरेश अदीनशत्रु तथा कांपिल्यराज जितशत्रु के भवान्तरों का वर्णन किया गया है। प्रत्येकबुद्ध रत्नचन्द्रकथा, सत्य हरिचन्द्र-कथा आदि अनेक अवान्तर

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८०-३८१.

२. वही, पृ० ९१.

३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० २९, वी० सं० २४३८.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कथाओं की योजना भी इसमें की गई है। इन अवान्तर कथाओं के कारण कथा-वस्तु में शिथिलता आ गई है। प्रथम तीन सर्गों में कथा द्रुतगति से आगे बढ़ती गई है परन्तु चतुर्थ सर्ग से कथा की गति मन्थर हो जाती है। छठे सर्ग से तो कथा की गति बहुत ही शिथिल-सी दीख पड़ती है। इस काव्य में श्वेताम्बर जैन मान्यता के अनुसार मल्लिनाथ को स्त्री माना गया है।

इसमें यद्यपि अनेक पात्र हैं पर मल्लि के चरित्र के अतिरिक्त अन्य किन्हीं चरित्रों का विकास नहीं हुआ है। प्रकृति-चित्रण भी खूब किया गया है। जिसमें पर्वत, समुद्र, षट्ऋतु, सूर्योदय, सूर्यास्त, उद्यान-क्रीड़ा आदि का वर्णन स्वाभाविक एवं भव्य है[1]। पौराणिक महाकाव्य होने से इस चरित्र में अलौकिक एवं चमत्कारिक तत्त्वों का समावेश भी किया गया है। यत्रतत्र धार्मिक तत्त्व तथा विविध ज्ञान भी कवि ने इस काव्य में प्रदर्शित किये हैं।

इस चरित की भाषा प्रसादगुणमयी, सरल और भावपूर्ण है। भाषा पर कवि का अच्छा अधिकार दिखाई पड़ता है। प्रसंगों के अनुसार वह कहीं मधुर और स्निग्ध है तो कहीं ओजपूर्ण, तो कहीं गम्भीर है। यहाँ भाषा का व्यावहारिक रूप दिखाई पड़ता है। उसमें देशी भाषा से प्रभावित शब्दों का प्रयोग हुआ है[2]। इस काव्य में जनप्रचलित लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है[3]। इस चरित की रचना अनुष्टुभ् छन्द में की गई है पर सर्गान्त में छन्द परिवर्तन कर दिया गया है। इस समस्त काव्य में अनुष्टुभ्, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, इन्द्रवज्रा और शिखरिणी—इन पाँच छन्दों का प्रयोग हुआ है। अलंकार योजना में कवि ने कोई विशेष प्रयास नहीं किया है फिर भी कहीं-कहीं उपमा और रूपक अलंकारों के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं[4]। कवि का शब्दालंकारों की ओर झुकाव अधिक है।

मल्लिनाथचरित का रचना-परिमाण प्रकाशित प्रति के अनुसार ४३५५ श्लोक सिद्ध होता है। जिनरत्नकोश में इसका परिमाण ४२५० श्लोक दिया गया है।

---

१. वही, सर्ग १. ११६-१८; ७. २४०-२४३; ८. १२७ आदि।
२. वही, १. ५१; २. ६१; २. ३९०; २. ४९८; ७. ५६३; ८. ३०६.
३. वही, ७. १६४; २. ४०३; २. ४१२; ७. २३३; ८. ३३६; ९. २८७.
४. वही, सर्ग ८. ५३७; ७. 1०२५; ३. ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्ता तथा रचनाकाल—इसके रचयिता विनयचन्द्रसूरि हैं जिनके विषय में उनकी अन्य कृति पार्श्वनाथचरित के वर्णन में कहा गया है। मल्लिनाथचरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना रविप्रभसूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभ तथा नरसिंहसूरि के अनुरोध पर हुई है। मल्लिनाथचरित्र का संशोधन कनकप्रभसूरि के शिष्य प्रद्युम्नसूरि ने किया था[१]।

अन्य ग्रन्थकारों में शुभवर्धनगणि,[२] विजयसूरि (रचना ४६२० ग्रन्थाग्र प्रमाण), भट्टा० सकलकीर्ति[३] और भट्टा० प्रभाचन्द्रकृत[४] मल्लिनाथचरित उपलब्ध होते हैं। भट्टारक सकलकीर्ति-कृत मल्लिनाथचरित में ७ सर्ग हैं जिनमें ८७४ श्लोक हैं।

बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ पर भी आठ के लगभग संस्कृत काव्यों का निर्माण हुआ है। उनमें से एक अममस्वामिचरित आदि ग्रन्थों के रचयिता पौर्णमिकगच्छीय मुनिरत्नसूरिकृत (लग० सं० १२५२) ६८०६ श्लोक-प्रमाण है[५]। यह काव्य २३ सर्गों में विभक्त है। अबतक यह अप्रकाशित है। सूरि का परिचय इनकी प्रकाशित कृति अममस्वामि-चरित के साथ दिया जा रहा है। द्वितीय मुनिसुव्रतचरित विबुधप्रभ के शिष्य पद्मप्रभसूरिप्रणीत है[६] जो सं० १२९४ में रचा गया था। इसका परिमाण ५५५५ श्लोक है। कर्ता की अन्य रचना कुन्थुचरित सं० १३०४ की मिलती है। यही ग्रन्थकार पार्श्वस्तव, भुवनदीपक आदि के भी कर्ता हैं या कोई दूसरे पद्मप्रभ इस बात का अबतक निश्चय नहीं हो सका है[७]।

तृतीय रचना विशेष उल्लेखनीय है अतः उसका परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक ९.

२. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०.

३. जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, सं० १९७९; हिन्दी—गजाधरलाल शास्त्री। इसकी प्राचीन ह० लि० प्रति सं० १५१५ की मिलती है।

. जिनरत्नकोश, पृ० ३०३.

५. वही, पृ० ३०१.

६. वही.

७. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिसुव्रतचरित :

'विनय' शब्दाङ्कित इस काव्य में आठ सर्ग हैं।[१] इसके रचयिता विनयचन्द्र-सूरि हैं। समस्त काव्य में धार्मिक रूढ़ियों और गतानुगतिकता का पूर्णरूप से पालन किया गया है। मुनिसुव्रतस्वामी के भवान्तरों का वर्णन है साथ ही अवान्तर और प्रासंगिक कथाओं के कारण कथानक में शिथिलता-सी आ गई है। प्रथम सर्ग में ही तीन अवान्तर कथाओं—मेघवाहन, संकाशश्रविक और अभ्यंकर चक्रवर्ती कथा की योजना की गई है। अन्य सर्गों में विविध कथाओं की योजना की गई है। काव्य में अनेक अलौकिक और अप्राकृत तत्त्वों का समावेश दीख पड़ता है।

वैसे मुनिसुव्रतचरित का कथानक लघु है पर अवान्तर कथाओं के समावेश के कारण इसका महाकाव्योचित विस्तार हो गया है। पर कथाओं के आधिक्य से कथानक में शैथिल्य आ गया है और उसके प्रवाह में अनेक स्थलों में बाधा-सी पड़ी है। यद्यपि इसमें अनेक पात्र हैं पर केवल मुनिसुव्रत के चरित्र का ही विकास हो सका है। शेष उसी की छाया में आते-जाते दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य में कवि प्रकृति-चित्रण के प्रति उदास से दिखते हैं। उन्होंने कुछ ही स्थलों पर प्रकृति-चित्रण किया है। प्रकृति-चित्रण की भाँति सौन्दर्य-चित्रण भी बहुत कम किया गया है। पर इसमें जैनधर्म के नियमों और सिद्धान्तों का प्रतिपादन प्रमुखता से हुआ है।[२]

इस चरित में सरल भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं समास-प्रधान भाषा का उपयोग हुआ है। लेखक ने अपनी भाषा को विविध सूक्तियों और मुहावरों से सजाया है[३] जिससे भाषा में सजीवता और भावमयता आ गई है। तत्कालीन प्रचलित देशी भाषा के शब्दों को भी इस काव्य में ग्रहण कर लिया गया है जैसे कन्दुक के स्थान में गेन्दुक और शुण्डा के स्थान पर शूण्ढ, अज के

---

१. लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी (बड़ौदा), वि० सं० २०१३; जिन-रत्नकोश, पृ० ३११.

२. सर्ग १. २२३; १. २६४-२६५; ५. ५; ६. ७५; ६. १४३, १४७; ७. ४४१-४४३ प्रभृति।

३. सर्ग २. ५३४; ६. २५०; ७. ४००; ८. २८४; ८. ३३१; ९. ४१३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थान में बक्कर आदि। मुनिसुव्रतचरित की रचना यद्यपि संस्कृत में हुई तथापि इसमें कहीं-कहीं पर प्राकृत का प्रयोग भी मिलता है।[१] अलंकारों के प्रयोग में कवि की अधिक रुचि प्रतीत नहीं होती फिर भी कुछ तो स्वतः ही भाषा-प्रवाह में आ गये हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग पद्यों में दृष्टिगोचर होता है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह का प्रयोग अधिक हुआ है।

मुनिसुव्रतचरित के प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप् का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त में छन्द परिवर्तित कर दिया गया है। कुल मिलाकर ग्यारह छन्दों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है: अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, आर्या, मालिनी, उपजाति, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा और वंशस्थ। ग्रन्थ ४५५२ श्लोक-प्रमाण है जो कि अष्टम सर्ग की पुष्पिका में दिया गया है।

कवि-परिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता वे ही विनयचन्द्रसूरि हैं जिन्होंने मल्लिनाथचरित एवं पार्श्वनाथचरित लिखा है। इसकी रचना कब की गई यह कवि ने उल्लेख नहीं किया है परन्तु यह मल्लिनाथचरित के बाद रचा गया है ऐसी सूचना एक पद्य से दी गई है।[२] इस काव्य की रचना कवि ने पुण्यार्जन की कामना से ही की है।[३] इनका विशेष परिचय पार्श्वनाथचरित के प्रसंग में दिया जा रहा है।

अन्य कृतियों में अर्हद्दास[४] कविकृत मुनिसुव्रतकाव्य का वर्णन विशिष्ट महाकाव्यों के प्रसंग में किया जायगा। इसके अतिरिक्त कृष्णदासकृत मुनिसुव्रतकाव्य २३ सर्गों में है जिसका निर्माण कल्पवल्ली में सं० १६८१ में हुआ था।[५] केशवसेन, भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति (वि० सं० १७२२–१७३३) तथा हरिषेणकृत मुनिसुव्रत-काव्यों के उल्लेख मिलते हैं।[६]

---

१. सर्ग ४. ३५८-३५९.

२. सर्ग १. ७.

३. सर्ग ८. ३१४.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३१२.

५. वही, पृ० ३१२.

६. वही, पृ० ३१२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इक्कीसवें तीर्थंकर नमिनाथ पर एक चरित-काव्य का उल्लेख मात्र मिलता है।[1]

बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ पर अनेकों काव्यात्मक रचनाएँ पाई जाती हैं। इनमें प्रथम रचना सूराचार्यकृत नेमिनाथचरित है। यह द्विसंधानात्मक है और प्रथम तीर्थंकर ऋषभ पर भी इसका अर्थ घटित होता है। इसका वर्णन बहुर्थक काव्यों में किया जायगा। ऐसी ही द्वितीय रचना अजितदेव के शिष्य हेमचन्द्रसूरि की है जिसका नाम नेमिद्विसंधान है। इसका भी वर्णन बहुर्थक काव्यों में किया जायगा। सोम के पुत्र वाग्भट (१२ वीं शती) का नेमिनिर्वाणकाव्य १५ सर्गों में विभक्त है जो शास्त्रीय महाकाव्य की शैली का है। उसका उक्त प्रसंग में वर्णन किया जायगा। सामान्यकोटि की कुछ काव्यात्मक रचनाओं का संक्षिप्त वर्णन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

तिलकमंजरीसारोद्धार के रचयिता (लघु) धनपाल (सं० १२६१) के पिता कवि रामन ने नेमिचरित्र महाकाव्य लिखा था। तिलकमंजरीसारोद्धार में उस काव्य को सुश्लिष्ट शब्दों से पूर्ण, अद्भुत अर्थ और रसों से तरंगित महाकाव्य कहा है।[2] कवि रामन अणहिल्लपुर निवासी पल्लीवालकुलीन तथा अशेष शास्त्रों के ज्ञाता थे। वि० सं० १२८७ में कवि दामोदर ने सल्लखणपुर (मालवा) में परमारवंशी राजा देवपाल के राज्यकाल में एक नेमिनाथचरित्र की रचना की। कवि के पिता का नाम कवि माल्हण और ज्येष्ठ भ्राता का नाम जिनदेव था।[3] इन्हीं दामोदर कवि का एक काव्य चन्द्रप्रभचरित्र भी मिलता है। सन् १२९९ के लगभग नागेन्द्रगच्छ के विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभ ने भी २१०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण नेमिनाथचरित की रचना की। इन्हीं उदयप्रभ ने सं० १२९९ में उपदेश-माला पर भी टीका लिखी थी।[4]

वि० चौदहवीं शताब्दी के लगभग सांगण के पुत्र विक्रम ने नेमिचरितकाव्य[5] रचा जो कि मेघदूत के पादों को लेकर लिखा गया था। इसका वर्णन समस्या-पूर्तिकाव्य के प्रसंग में करेंगे।

---

१. वही, पृ० ३०२.
२. तिलकमंजरीसारोद्धार, प्रशस्ति, पद्य १-२.
३. धारा और उसके जैन सारस्वत, गुरु गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रंथ, पृ० ५४३.
४. जिनरत्नकोश, पृ० २१७.
५. वही, पृ० २१७; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३५९–३६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिनाथ-महाकाव्य :

काव्यात्मक दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण कृति है।[1] इसमें १२ सर्ग हैं, जिनमें ७०३ पद्य हैं। सर्गों के निर्माण में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। १, ४, ७ और ९ में अनुष्टुप् छन्द, ५-६ में उपेन्द्रवज्रा, ३ में इन्द्रवज्रा, ८ में द्रुतविलंबित, ११ में वियोगिनी तथा २, १० और १२ में और प्रत्येक सर्ग के अन्त में विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा माधुर्य एवं प्रसादगुण युक्त है। १२वें सर्ग के अन्त में शब्दालंकार की छटा द्रष्टव्य है। इसमें पूर्वभवों का वर्णन एकदम छोड़ दिया गया है। प्रथम सर्ग में च्यवनकल्याणक, दूसरे में प्रभात, तीसरे में जन्मकल्याणक, चौथे में दिक्कुमारियों का आगमन, पाँचवें में मेरुवर्णन, छठे में जन्माभिषेक, सातवें में जन्मोत्सव, आठवें में षड्ऋतुओं, नववें में कन्यालाभ, दशवें में दीक्षावर्णन, ग्यारहवें में मोहसंयमयुद्धवर्णन तथा बारहवें में जनार्दन का आगमन और उनके द्वारा स्तुति तथा नेमिनाथ का मोक्षवर्णन दिया गया है। इस लघु काव्य को प्रभातवर्णन, मेरुवर्णन, षड्ऋतुवर्णन आदि द्वारा महाकाव्योचित लक्षणों से भूषित करने के कारण महाकाव्य की संज्ञा भी दी गई है।

कर्ता और रचनाकाल—काव्यकर्ता का नाम कीर्तिराज उपाध्याय है जैसा कि १२वें सर्ग के अन्तिम पद्य से सूचित होता है। यद्यपि उक्त पद्य में कवि ने इस काव्य को **'काव्याभ्यासनिमित्तम्'** लिखा है पर उनके इस प्रौढ़काव्य से ऐसा नहीं लगता है। इस काव्य के पढ़ने से लगता है कि कवि व्याकरण, छन्द, अलंकार एवं शब्द-प्रयोग में विशारद था। कवि कहाँ और किस काल में हुए हैं और किस आचार्य-परम्परा के थे यह उक्त ग्रन्थ से पता नहीं लगता। काव्य की एक हस्तलिखित प्रति में एक ओर लिखा है कि **"सं० १४९५ वर्षे श्री योगिनीपुरे (दिल्ली) लिखितमिदम्"**। सम्भवतः यही या इससे पूर्व कवि का समय हो। एक अनुमान है कि कवि खरतरगच्छ के थे।

नेमिनाथचरित :

यह चरित्र संस्कृत गद्य के १३ विभागों में निर्मित है।[2] ग्रन्थ ५२८५ श्लोक-प्रमाण है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१७; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला (सं० ३८), भावनगर, वी० सं० २४४०.

२. देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फंड, सूरत, १९२०; गुजराती अनुवाद—जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९८०; जिनरत्नकोश, पृ० २१७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें नेमिनाथ के पूर्व नव भवों का, नेमिनाथ और राजीमती का नव भवों से उत्तरोत्तर आदर्श प्रेम, पति-पत्नी का अलौकिक स्नेह, राजीमती का वैराग्य, साध्वी-जीवन, नेमिनाथ के बालक्रीड़ा, दीक्षा, केवलज्ञान, मोक्षगमन का सुन्दर वर्णन है। साथ ही इसी में वसुदेव राजा का चरित्र और उच्च श्रेणी का पुण्य फल और उसके मीठे फल का वर्णन, श्रीकृष्ण का चरित्र, वैभव, पराक्रम, राज्यवर्णन, प्रतिनारायण जरासंध का वध, श्रीकृष्ण की नेमिनाथ के प्रति अपूर्व भक्ति, तद्भव मोक्षगामी और श्रीकृष्ण के शाम्ब और प्रद्युम्न का जीवनवृत्तान्त, नल-दमयन्ती का जीवनचरित्र, नल राजा का अपने बन्धु कुबेर से जुए में हारना, राजत्याग, दमयन्ती का पति से वियोग, नाना कष्ट, अद्‌भुत धैर्य, शीलरक्षा, पाण्डवों का चरित्र, द्रौपदी का स्वयंवर, पति-सेवा, द्वारिकादहन आदि वर्णन विस्तार से किये गये हैं।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छ के हीरविजयसूरीश्वर के पट्टधर कनकविजय पण्डित के प्रशिष्य और वाचक विवेकहर्ष के शिष्य गुणविजयगणि हैं। इन्होंने सौराष्ट्र के सुरपत्तन शहर के पास द्रंगबन्दर में सं० १६६८ की आषाढ़ पंचमी को यह ग्रन्थ प्रारम्भ किया और श्रावण षष्ठी को समाप्त किया था। इसकी रचना उन्होंने जीतविजयगणि के अनुरोध से की थी। ग्रंथ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ये बातें विदित होती हैं।

अन्य अप्रकाशित नेमिचरितों के लेखक तिलकाचार्य (ग्रन्थाग्र ३५०० श्लोक-प्रमाण), नरसिंह, भोजसागर, हरिषेण, मंगरस तथा मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्म-नेमिदत्त का उल्लेख मिलता है।[1] ब्रह्मनेमिदत्त की कृति का नाम नेमिनिर्वाण-काव्य तथा नेमिपुराण[2] भी है। इसकी रचना सं० १६३६ में हुई थी। इसमें १६ सर्ग हैं। रचयिता ने अपने को मूलसंघ सरस्वतीगच्छ का माना है।

तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के चरित के एक विशेष घटनाप्रधान और चमत्कारी होने के कारण जैन लेखकों ने प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत में २५ से भी अधिक पार्श्वनाथचरित तथा अन्य काव्य विधाओं पर रचनाएँ की हैं। उनमें संस्कृत में जिनसेन प्रथम (९ वीं शती) कृत पार्श्वाभ्युदय उत्तम कोटि का समस्यापूर्ति काव्य है। इसमें मेघदूत के सभी पद्यों का समावेश किया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१७-१८.

२. इसका हिन्दी अनुवाद पं० उदयलाल कासलीवाल ने किया है—दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत, सं० २०११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका वर्णन अन्यत्र किया जा रहा है। इसके बाद कई उल्लेखनीय कृतियाँ उपलब्ध हैं जिनमें से कुछ का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

१. पार्श्वनाथचरित :

इस काव्य में २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन काव्यात्मक शैली में वर्णन किया गया है।[1] काव्य १२ सर्गों में विभक्त है। प्रत्येक सर्ग का नाम वर्ण्यवस्तु के आधार पर किया गया है। पहले सर्ग का नाम अरविन्दमहाराजसंग्रामविजय, दूसरे का नाम स्वयंप्रभागमन, तीसरे का नाम वज्रघोषस्वर्गगमन, चतुर्थ का नाम वज्रनाभचक्रवर्तिप्रादुर्भाव, पाँचवें का नाम वज्रनाभचक्रवर्तिचक्रप्रादुर्भाव, छठें का वज्रनाभचक्रवर्तिप्रबोध, सातवें का वज्रनाभचक्रवर्तिदिग्विजय, आठवें का आनन्दराज्याभिनन्दन, नवम का दिग्देविपरिचरण, दशम का कुमारचरित, ग्यारहवें का केवलज्ञानप्रादुर्भाव और बारहवें का भगवन्निर्वाणगमन है।

कवि ने इसे पार्श्वनाथजिनेश्वरचरित महाकाव्य कहा है। महाकाव्य की शैली के अनुरूप प्रत्येक सर्ग की रचना अलग-अलग छन्द में की है और सर्गान्त में विविध छन्दों की योजना की है। पहले, सातवें और ग्यारहवें सर्गों में अनुष्टुप् छन्द, शेष में दूसरे छन्दों का प्रयोग किया गया है। सप्तमसर्ग में व्यूहरचना के प्रसंग में मात्राच्युतक, विन्दुच्युतक, गूढ़चतुर्थक, अक्षरच्युतक, अक्षरव्यत्यय, निरोष्ठ्य आदि का अनुष्टुप् छन्दों में ही प्रदर्शन किया गया है। छठे सर्ग में विविध शब्दों की छटा द्रष्टव्य है।

इस काव्य की भाषा माधुर्यगुणपूर्ण है। कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह मनोरम कल्पनाओं को साकार करने में पूर्णतया समर्थ है। कवि ने भाव और भाषा को सजाने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यासादि का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है।

ग्रन्थकर्ता और समय—इस काव्य के रचयिता वादिराजसूरि द्रविड़संघ के अन्तर्गत नन्दिसंघ (गच्छ) और अरुंगल अन्वय (शाखा) के आचार्य थे। इनकी उपाधियाँ षट्तर्कषण्मुख, स्याद्वादविद्यापति और जगदेकमल्लवादी थीं।

---

१. माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, सं० १९७३; जिनरत्नकोश, पृ० २४६; हिन्दी अनुवाद (पं० श्रीलालकृत)—जयचन्द्र जैन, कलकत्ता, १९२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये श्रीपालदेव के प्रशिष्य, मतिसागर के शिष्य और रूपसिद्धि (शाकटायन व्याकरण की टीका) के कर्ता दयापाल मुनि के सतीर्थ या गुरुभाई थे। लगता है वादिराज इनकी एक तरह की पदवी या उपाधि थी, वास्तविक नाम कुछ और रहा होगा पर उपाधि के विशेष प्रचलन से वह नाम ही बन गया। श्रवणवेलगोला से प्राप्त मल्लिषेणप्रशस्ति में वादिराज की बड़ी ही प्रशंसा की गई है।

वादिराज ने पार्श्वनाथचरित की रचना सिंहचक्रेश्वर या चौलुक्य चक्रवर्ती जयसिंहदेव की राजधानी कट्टगेरी में निवास करते हुए[1] शक सं० ९४७ की कार्तिक शुक्ल तृतीया को की थी। पार्श्वनाथचरित की प्रशस्ति के छठे पद्य से ऐसा मालूम होता है कि वह राजधानी लक्ष्मी का निवास थी और सरस्वती देवी (वाग्वधू) की जन्मभूमि थी। अपनी दूसरी कृति यशोधरचरित के तीसरे सर्ग के अन्तिम (८५ वें) पद्य में और चौथे सर्ग के उपान्त्य पद्य में कवि ने चतुराई से जयसिंह का उल्लेख किया है।[2] इससे प्रकट होता है कि यशोधर-चरित्र की रचना भी जयसिंह के ही राज्य में हुई थी। दक्षिण के चालुक्य नरेश जयसिंहदेव की राजसभा में इनका बड़ा सम्मान था और ये प्रख्यातवादी गिने जाते थे। मल्लिषेणप्रशस्ति के अनुसार चालुक्यचक्रवर्ती के जयकटक में वादिराज ने जयलाभ की थी। जगदेकमल्लवादी उपाधि भी जयसिंह ने इन्हें प्रदान की थी और इनकी पूजा भी की थी—**सिंहसमर्च्य पीठविभवः**।

वादिराज का युग जैन साहित्य के वैभव का युग था। उनके समय में सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र, इन्द्रनन्दि, कनकनन्दि, अभयनन्दि तथा चन्द्रप्रभ-चरित काव्य के रचयिता वीरनन्दि, कर्नाटकदेशीय कवि रन्न, अभिनवपम्प एवं नयसेन आदि हुए थे। गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि के रचयिता ओडय-देव वादीभसिंह और उनके गुरु पुष्पसेन, गंगराज राचमल्ल के गुरु विजयभट्टारक तथा मल्लिषेणप्रशस्ति के रचयिता महाकवि मल्लिषेण और रूपसिद्धि के कर्ता दयापाल मुनि इनके समकालीन थे।

इस काव्य पर भट्टा० विजयकीर्ति के शिष्य शुभचन्द्र ने पंजिका लिखी है। इसका उल्लेख पाण्डवपुराण की प्रशस्ति में भट्टा० शुभचन्द्र ने स्वयं किया है।

---

१. 'सिंहे पाति जयादिके वसुमतीं'।

२. 'व्यातन्वज्जयसिंहतां रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम्' तथा 'रणमुख जयसिंहो राज्यलक्ष्मीं बभार'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी रचना उन्होंने भट्टा० श्रीभूषण के अनुरोध पर की थी और उसकी प्रथम प्रति श्रीपालवर्णी ने तैयार की थी।[१]

१३ वीं शताब्दी के प्रारंभ में एक सर्वानन्दसूरि (जालिहरगच्छ) ने पार्श्वनाथचरित की रचना की थी। यह उल्लेख उनके प्रशिष्य देवसूरि ने अपनी रचना पउमपभचरियं में किया है।[२]

२. पार्श्वनाथचरित :

यह मम्मटाचार्य के काव्यप्रकाश की प्रथम टीका संकेत के लेखक माणिक्यचन्द्रसूरि की कृति है जो अबतक अप्रकाशित है।[३] इसमें दस सर्ग हैं। रचना-परिमाण ६७७० श्लोक है। प्रत्येक सर्ग के अन्त की पुष्पिका में इसे महाकाव्य कहा गया है। महाकाव्योचित अधिकांश लक्षणों का समन्वय इसमें हुआ है। इसमें शांतरस की प्रधानता है पर अन्य रस भी गौण रूप से विद्यमान हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द तथा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन किया गया है। इसमें सूर्योदय, सूर्यास्त, चद्रोदय, ऋतु, वन-वर्णन भी पाये जाते हैं। सर्गों के नाम वर्णित घटनाओं के आधार पर रखे गये हैं। महाकाव्य होते हुए भी इसमें प्रमुख महाकाव्यों के अनुरूप भाषा-शैली एवं प्रौढ़ कवित्वकला का अभाव है, इससे इसकी गणना सामान्य महाकाव्यों में मानना चाहिये। पार्श्वनाथचरित एक पौराणिक महाकाव्य है। इसका प्रारंभ तीर्थंकरों की स्तुति से होता है, इसमें भवान्तरों और अनेक अवान्तर कथाओं की योजना की गई है तथा यह पार्श्वनाथ के जन्म, दीक्षा, केवल एवं निर्वाण-कल्याणकों का वर्णन अलौकिक घटनाओं से भरा है। इसका कथानक पूर्णतः परम्परासंमत है।

पौराणिक काव्य के अनुरूप इसकी रचना अनुष्टुप् छन्द में हुई है पर सर्गान्त में मालिनी, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं सर्ग के मध्य में भी चार-पांच पद्य अन्य छन्दों के दिये गये हैं। इस काव्य में कवि की अभिरुचि अलंकारों की ओर नहीं दीख पड़ती तथा भाषा के सहज प्रवाह और भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति में विविध अलंकार स्वतः

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४६.

२. वही, पृ० ४४५.

३. ताड़पत्रीय प्रति—शान्तिनाथ भण्डार, खम्भात, ग्रन्थ सं० २०७; जिनरत्नकोश, पृ० २४४,

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

ही आ गये हैं। भाषा सरल और प्रसादगुण से युक्त है। क्लिष्ट एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर है। इसमें सूक्तियों और लोकोक्तियों का विशेष प्रयोग कवि ने नहीं किया है।

कवि-परिचय और रचनाकाल—ग्रन्थान्त में कवि ने प्रशस्ति दी है जिसमें उसने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि इसके कर्ता माणिक्यचन्द्रसूरि राजगच्छीय थे। राजगच्छ में भरतेश्वरसूरि, उनके शिष्य वीरस्वामी, उनके शिष्य नेमिचन्द्रसूरि, उनके शिष्य सागरचन्द्र। सागरचन्द्र के शिष्य पार्श्वनाथचरित के रचयिता माणिक्यचन्द्रसूरि थे। ये महामात्य वस्तुपाल के समकालीन थे। उदयप्रभसूरि के शिष्य जिनभद्र ने अपनी प्रबंधावली (सं० १२९०) में माणिक्यचन्द्र और वस्तुपाल के सम्पर्क का विवरण दिया है।

पार्श्वनाथचरित का रचनाकाल कवि ने इस प्रकार दिया है :

रसर्षि रवि (१२७६) संख्यायां सभायां दीपपर्वणि।
समर्थितमिदं वेलाकूले श्रीदेवकूपके ॥[१]

अर्थात् सं० १२७६ में दीपावली के दिन वेलाकूल श्रीदेवकूपक में इस काव्य की रचना हुई। इसे भिल्लमालवंशीय श्रेष्ठी देहड़ की प्रार्थना पर रचा गया था। कवि की दूसरी कृतियों में शांन्तिनाथचरित तथा काव्यप्रकाश की संकेत टीका है।

३. पार्श्वनाथचरित :

यह छः सर्गों का 'विनय' शब्दांकित महाकाव्य है। यह अबतक अमुद्रित है।[२] इसका ग्रन्थ-परिमाण ४९८५ श्लोक-प्रमाण है। सर्गों के नाम वर्ण्यवस्तु के आधार पर रखे गये हैं। इसका कथानक परम्परासम्मत है जिसमें कवि ने कोई परिवर्तन-परिवर्धन नहीं किया है। भवान्तरों के वर्णन में अनेक अवान्तर कथाओं की योजना की गई है। ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य धार्मिक स्थानों और सभाओं में श्रद्धालु श्रावकों द्वारा इसका पारायण करना और दूसरों को सुनाना रहा है। फिर भी इस पार्श्वनाथचरित का कथानक परम्परासम्मत

---

१. वही, प्रशस्ति.

२. हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानमन्दिर, पाटन, हस्तलिखित प्रतियाँ, क्र० सं० १९१८ और १९६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हुए भी पूर्ववर्ती पार्श्वनाथचरितों से भिन्न है। इसके प्रथम तीन सर्गों में ही पार्श्वनाथ के सभी भवान्तरों का वर्णन समाप्त हो जाता है। आगे दान, शील, तप और भावना के माहात्म्यवर्णन में नये कथानकों की योजना है। अन्य बातों में भी कवि की नवीनता और मौलिकता स्पष्ट है।

इस काव्य की भाषा सरल और प्रसादगुण युक्त है। इसमें क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों का पूर्णतया अभाव है। समासयुक्त पदावली का प्रयोग बहुत कम किया गया है। भाषा के प्रवाह में अनुप्रासों की झंकृति प्रायः स्वतः एवं प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। यत्र-तत्र मधुर सूक्तियों का भी प्रयोग किया गया है।[1] अलंकारों का प्रयोग प्रचुर हुआ है पर उनके प्रयोग में स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है। कवि ने अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया है पर सर्गान्त में छन्दों में परिवर्तन कर इन्द्रवज्रा, शिखरिणी, मालिनी और उपजाति छन्दों का प्रयोग किया गया है।

कवि-परिचय और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में कवि ने जो प्रशस्ति दी है उससे ज्ञात होता है कि इसके कर्ता विनयचन्द्रसूरि चन्द्रगच्छीय थे। चन्द्रगच्छ में शीलगणसूरि नामक प्रसिद्ध विद्वान् हुए थे। उनके शिष्य मानतुंगसूरि और मानतुंग के शिष्य रविप्रभसूरि हुए जो बड़े विद्वान् थे। उनके शिष्यों में नरसिंहसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि और विनयचन्द्रसूरि हुए। विनयचन्द्रसूरि ने ही विनयांक पार्श्वनाथचरित की रचना की। इसके अतिरिक्त कवि ने मल्लिनाथचरित, मुनिसुव्रतस्वामिचरित, कल्पनिरुक्त, काव्यशिक्षा, कालिकाचार्यकथा (प्राकृत) तथा दीपावलीकल्प की रचना भी की है। उन्होंने गुर्जर भाषा में भी कई काव्यों की रचना की है जिनमें नेमिनाथचउपई और उपदेशमालाकथानकछप्पय प्राप्त हैं।

पार्श्वनाथचरित के रचनाकाल के सम्बंध में निश्चित रूप से कोई सूचना नहीं है। पर विनयचन्द्रसूरि के सत्ताकाल पर उनकी अन्य रचनाओं से प्रकाश पड़ता है। उन्होंने सं० १२८६ में उदयप्रभसूरि द्वारा रचित धर्मविधिवृत्ति का संशोधन किया था[2] तथा कल्पनिरुक्त सं० १३२५ में और दीपमालिकाकल्प सं० १३४५ में रचा था।[3] इससे विनयचन्द्रसूरि का साहित्यिक काल सं०

---

१. वही, सर्ग १.६५, ९१, १८६, ५२४; २.८२, १२६ आदि.

२. धर्मविधिप्रशस्ति, श्लो० ११-१२, १७.

३. मुनिसुव्रतस्वामिचरित, प्रास्ताविक, पृ० ४ (प्रकाशक—लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, छाणी).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२८६ से लेकर १३४५ तक प्रमाणित होता है। इसी बीच में उन्होंने पार्श्वनाथ-चरित्र एवं अन्य कृतियाँ रची होंगी।

४. पार्श्वनाथचरित :

यह पांच सर्गों का काव्य है। इसकी एक मात्र ताड़पत्रीय प्रति मिलती है[1] पर वह भी अति जीर्ण है। प्रारंभ के १५६ पृष्ठ लुप्त हैं। कुल पृ० संख्या ३४५ है। इसके रचयिता सुधर्मागच्छीय गुणरत्नसूरि के शिष्य सर्वानन्दसूरि हैं। इनकी दूसरी रचना चन्द्रप्रभचरित्र सं० १३०२ में रची गई थी। जिनरत्नकोश के अनुसार प्रस्तुत कृति का रचनाकाल सं० १२९१ है।[2] इस काव्य का परिमाण ८००० श्लोक-प्रमाण सिद्ध होता है।

५. पार्श्वनाथचरित :

इस काव्य में आठ सर्ग हैं।[3] यह भावाङ्कित महाकाव्य है। सर्गों के नाम भी वर्ण्य विषय के आधार पर रखे गये हैं। वैसे इस चरित में महाकाव्य के बाह्य सभी लक्षणों का समावेश है किन्तु इसमें उदात्त भाषा-शैली तथा उत्कृष्ट कवित्व कला के अभाव से इसे प्रमुख महाकाव्यों की पंक्ति में स्थान नहीं दिया जा सकता। यह एक पौराणिक महाकाव्य माना गया है। इसका प्रारम्भ रूढ़ि-परक मंगलाचरण से किया गया है। कथानक परम्परासम्मत है और कवि ने उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया है।[4] इसमें पार्श्वनाथ के भवान्तर और बीच-बीच में अनेक कथाओं तथा धर्मोपदेश और स्तोत्रों की योजना की गई है। पुराणों के अनुरूप कुछ अलौकिक एवं चमत्कारपूर्ण घटनाएँ प्रस्तुत काव्य में दी गई हैं। यह काव्य भी वैराग्य-भावना से ओत-प्रोत है। इसकी रचना अनुष्टुप् वृत्त में हुई है पर प्रत्येक सर्ग का अन्तिम पद्य इतर छन्द में है जैसे—प्रथम, षष्ठ और अष्टम सर्गों के अन्त का छन्द वसन्ततिलका; द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा सप्तम सर्गों का शार्दूलविक्रीडित है। सप्तम के मध्य में पद्य संख्या ३५९ से ३६६ तक वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रशस्ति में उपर्युक्त छन्दों

---

१. संघवीपाड़ा भण्डार, पाटन, सं० २७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २४५.

३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला; सन् १९१२; इसका सारानुवाद अंग्रेजी में ब्लूमफील्ड ने वाल्टीमोर से सन् १९१९ में प्रकाशित कराया।

४. समीक्ष्य बहुशास्त्राणि श्रुत्वा श्रुतधराननात्।
ग्रन्थोऽयं प्रथितः स्वल्पसूत्रेणापि मया रसात्॥ सर्ग १, श्लोक ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रयोग के साथ मालिनी, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा और शिखरिणी छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस काव्य की भाषा सरल और प्रसादगुण युक्त है। क्लिष्ट शब्दों और समासान्त पदावली का प्रयोग कम ही हुआ है। भाषा प्रसंगानुकूल एवं भावानुवर्तिनी है। लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग भी यत्र-तत्र पाया जाता है। इससे भाषा मधुर एवं सजीव हो गई है।

पार्श्वनाथचरित का रचना-परिमाण अनुष्टुप् मान से ६०७४ श्लोक-प्रमाण है।[१]

इस काव्य की कथा माणिक्यचन्द्रसूरि, सर्वानन्दसूरि आदि के पार्श्वनाथ-चरित से मिलती-जुलती है किन्तु अवान्तर कथाओं की योजना और कथा के सर्गों में विभाजन की दृष्टि से यह काव्य अन्य पार्श्वनाथचरितों से नितान्त भिन्न है। इसमें कथा का विभाजन आठ सर्गों में किया गया है। प्रथम सर्ग में पार्श्वनाथ के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भवों का, द्वितीय सर्ग में चतुर्थ, पंचम भव का, तृतीय सर्ग में षष्ठ, सप्तम भव का और चतुर्थ सर्ग में अष्टम, नवम भव का वर्णन किया गया है। पंचम सर्ग में पार्श्वनाथ के च्यवन, जन्म, जन्माभिषेक, कौमार तथा विजययात्रा का वर्णन दिया गया है। षष्ठ सर्ग में उनके विवाह, दीक्षा, केवलज्ञान, समवशरण तथा देशना का वर्णन किया गया है। सप्तम सर्ग में जिनगणधर-देशना का और अष्टम सर्ग में पार्श्वनाथ के विहार एवं निर्वाण का वर्णन हुआ है। इस तरह यह काव्य विभाजन में पूर्व चरितों से पूर्णतया भिन्न है। अनेक अवान्तर कथाओं के समावेश के कारण इस काव्य का कथानक भी शिथिल है।

कविपरिचय तथा रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में जो प्रशस्ति कवि ने दी है उससे ज्ञात होता है कि आचार्य कालिक के अन्वय में षण्डिल्ल नामक गच्छ के चन्द्रकुल में एक भावदेवसूरि नामक विद्वान् हुए थे। उनकी परम्परा में क्रमशः विजयसिंहसूरि, वीरसूरि और जिनदेवसूरि हुए। जिनदेवसूरि के पश्चात् पूर्वागत नाम-क्रम (भावदेव, विजयसिंह, वीर तथा जिनदेव) से शिष्य परम्परा चलती गई जिनमें से एक जिनदेवसूरि के शिष्य इस पार्श्वनाथचरित के रचयिता भावदेवसूरि हुए। उन्होंने इस चरित की रचना सं० १४१२ में पाटन नगर में की थी।[२]

१. ग्रन्थः सर्वाग्रमानेन प्रत्येकं वर्णसंख्यया।
चतुःसप्तत्युपेतानि षट्सहस्राण्यनुष्टुभाम् ॥ प्रशस्ति, पद्य ३०.

२. तेषां विनेय विनयी बहु भावदेवसूरिः प्रसन्नजिनदेवगुरुप्रसादाद्।
श्रीपत्तनाख्यनगरे रविविश्ववर्षे (१४१२) पार्श्वप्रभोश्चरितरत्नमिदं ततान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथचरित नाम से कई और ग्रन्थकारों की रचनाएँ मिलती हैं। उनमें भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं शती) कृत काव्य में २३ सर्ग हैं।[१] इसकी भाषा सीधी, सरल एवं अलंकारमयी है। इसमें कमठ का नाम वायुभूति दिया गया है। सं० १६१५, अगहन सुदी १४ को नागौरी तपागच्छ के विद्वान् उपाध्याय पद्मसुन्दर[२] ने भी सप्तसर्गात्मक पार्श्वनाथकाव्य की रचना की थी। ये आनन्दमेरु के प्रशिष्य और पद्ममेरु के शिष्य थे। आनन्दमेरु और पद्मसुन्दर अकबर बादशाह द्वारा सम्मानित थे। सं० १६३२ में तपागच्छीय कमलविजय के शिष्य हेमविजय ने ग्रन्थाग्र ३१६० प्रमाण पार्श्वनाथचरित्र[३] की रचना की। ग्रन्थ के अन्तरंग अवलोकन से पता चलता है कि वह हेमचन्द्र के त्रि० श० पु० च० में दिये गये पार्श्वचरित की प्रतिलिपि मात्र है। सं० १६४० कार्तिक सु० ५ को भट्टा० वादिचन्द्र ने १५०० श्लोक-प्रमाण पार्श्वपुराण की रचना वाल्मीकिनगर में की। इन्होंने पवनदूत, पार्श्वपुराण आदि कई रचनाएँ लिखी हैं। इनके गुरु का नाम भट्टा० प्रभाचन्द्र तथा दादागुरु का ज्ञानभूषण था।[४] सं० १६५४ में तपागच्छीय हेमसोम के प्रशिष्य और संघवीर के शिष्य उदयवीरगणि ने ५५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण पार्श्वनाथचरित लिखा जो संस्कृत गद्य में है और उसमें आठ विभाग हैं।[५] उसी संवत् १६५४ में वैशाख शुक्ल सप्तमी गुरुवार के दिन देवगिरि (दौलताबाद) के पार्श्वनाथ मन्दिर में भट्टा० श्रीभूषण के शिष्य चन्द्रकीर्ति ने भी पार्श्वपुराण की रचना की। इसमें १५ सर्ग हैं।[६] इसका प्रमाण २७१० ग्रन्थाग्र है।

अन्तिम तीर्थंकर महावीर पर प्राकृत-अपभ्रंश और देशी भाषाओं में जितनी कृतियाँ पाई जाती हैं उनकी अपेक्षा संस्कृत में स्वतंत्र रचनाएँ गिनी-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४६; राजस्थान के जैन सन्त, पृ० ११.
२. जिनरत्नकोश, पृ० २४४; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९५-३९८.
३. जिनरत्नकोश, पृ० २४५; प्रकाशित—चुन्नीलाल ग्रन्थमाला, बम्बई, सं० १९७२.
४. जिनरत्नकोश, पृ० २४६; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८५.
५. जिनरत्नकोश, पृ० २४५; प्रकाशित—जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, सं० १९७०.
६. जिनरत्नकोश, पृ० २४६-४७; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९०; इसकी हस्तलिखित प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन, बम्बई में है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुनी हैं। उनमें से केवल दो का ही कुछ परिचय प्राप्त हुआ है, शेष का उल्लेख मात्र।

महावीरचरित :

यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर पर संस्कृत में लिखे गये स्वतंत्र चरितों में प्राचीन है।[1] इसे अपर नाम से वर्धमानचरित्र या सन्मतिचरित्र भी कहते हैं। इसमें १८ सर्ग हैं। इस ग्रन्थ का उल्लेख धवल कवि के अपभ्रंश हरिवंशपुराण में किया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियों में से एक की प्रशस्ति में कहा गया है कि इसके रचयिता असग कवि हैं जिन्होंने शक सं० ९१० (वि० सं० १०४५ के लगभग) में आठ अन्य चरित्रों की रचना की थी। इनके लिखे चन्द्रप्रभचरित्र व शान्तिनाथचरित्र ही और उपलब्ध हैं।

वर्धमानचरित :

इसमें कुल मिलाकर २० अधिकार हैं जिनमें से प्रथम ६ सर्गों में महावीर के पूर्वभवों का और शेष १४ में गर्भकल्याण से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक विस्तार से जीवनचरित्र दिया गया है। इसकी भाषा सरल एवं काव्यमय है। वर्णन-शैली प्रवाहमय है। इसका परिमाण ३०३५ श्लोक है।[2] इसके अपर नाम महावीर-पुराण एवं वर्धमानपुराण भी हैं। रचयिता सकलकीर्ति का परिचय पहले दिया जा चुका है।

महावीर के अन्य चरितकारों में पद्मनन्दि, केशव और वाणीवल्लभ की कृतियों का उल्लेख मिलता है।[3]

जैन काव्यकारों ने न केवल अपने पुरातन तीर्थंकरों के स्वतंत्र चरित लिखे हैं बल्कि आगामी तीर्थंकरों में से एक पर काव्य भी लिखा है जिसका परिचय इस प्रकार है —

---

१. पं० खूबचन्द्रकृत हिन्दी अनुवाद सहित—मूलचन्द किसनदास कापड़िया, सूरत, १९१८; मराठी अनुवाद—सोलापुर, १९३१.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४३; राजस्थान के जैन सन्त, पृ० १३; नन्दलाल जैन कृत हिन्दी अनुवाद—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता।

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३४३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अममस्वामिचरित :

इस विशाल ग्रन्थ[1] में भावितीर्थंकर अममस्वामि का चरित २० सर्गों में वर्णित है। इसमें १० हजार से अधिक पद्य हैं। इसमें श्रीकृष्ण के जीव को आनेवाली उत्सर्पिणी के चतुर्थ काल में अमम नाम से १२वें तीर्थंकर होने की कथा वर्णित है। प्रसंगवश प्रथम छ सर्गों में जीवदया पर दामन्नककथा, उसकी शिथिलता पर शूद्रकमुनिकथा, उसके त्याग पर निम्बकमुनिकथा, रहस्यभेद पर काकजंघकथा, मित्रकार्य पर दृढमित्रकथा, पांडित्य पर सुन्दरी-वसन्तसेनाकथा तथा अवान्तर में लोभनन्दी, सर्वाङ्गिल, सुमति, दुर्मति द्यूतकारकुन्द, कमलश्रेष्ठी, सती सुलोचना, कामांकुर, ललिताङ्ग, अशोक, ब्रह्मचारिभर्तृ-भार्या, दुर्गविप्रकथा, तोसलि राजपुत्रकथाएँ कही गई हैं। इसके बाद हरिवंश की उत्पत्ति, उसमें मुनिसुव्रत जिनेश्वर का पूर्वभववर्णन, भृगुकच्छ में अश्वावबोधतीर्थ की उत्पत्ति, मुनिसुव्रत के वंश में इलापतिराज का वर्णन, क्षीरकदम्बक-नारद-वसुराज-पर्वतकथा, नन्दिषेणकथा, कंस तथा प्रतिवासुदेव जरासंध की उत्पत्ति, वसुदेवचरित्रकथा, चारुदत्त-रुद्रदत्तकथा, उसके अन्तर्गत मेषदेवकथित यज्ञपशुहिंसा का इतिहास, अथर्ववेदकर्ता पिप्पलाद की उत्पत्ति, नल-दमयन्तीकथा, कुबेरदेवपूर्वभवकथा—ये सब प्रथम ६ सर्गों के अन्तर्गत कही गई हैं। इसके बाद नेमिनाथ का जन्म, कृष्णवध, द्वारिकारचना, कृष्ण का राज्याभिषेक, रुक्मिणी का विवाह, पाण्डव-द्रौपदी-स्वयंवर, प्रद्युम्न-शाम्ब का चरित, जरासंधवधादि, राजीमतिवर्णन, नेमिनाथ की दीक्षा, द्वारिकादाह, कृष्ण की मृत्यु, पाण्डवशेषकथा, नेमिनाथ का मोक्षगमन आदि; अवसर्पिणी से उत्सर्पिणी आना, भाविजिन अमम का जन्म, बाल्यादि वयोवर्णन, विवाह-यौवराज्य, राज्याभिषेक, संमतिनृपदीक्षा, अमम-दीक्षा, केवलज्ञान, समवशरण, धर्मदेशना, सम्यक्त्व के ऊपर सूरराज की कथा, धर्म के ऊपर राजपुत्र पुष्पसार और मंत्रिपुत्र क्षेमंकर की कथा, अन्त में अममस्वामी के गणधरों का वर्णन, तत्कालीन सुन्दरबाहु वासुदेव और प्रतिवासुदेव वज्रजंघ के बाद अममस्वामी के निर्वाण का वर्णन है।

कर्ता—इस ग्रन्थ के कर्ता चन्द्रगच्छीय पूर्णिमामत प्रकट-कर्ता श्रीमान् चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धर्मघोषसूरि के शिष्य समुद्रघोषसूरि के शिष्य मुनिरत्नसूरि हैं। उन्होंने यह ग्रन्थ कोषाध्यक्षमंत्री यशोधवल के पुत्र बालकवि मंत्री जगद्देव की प्रार्थना से वि० सं० १२५२ वर्ष में पत्तननगर में लिखा था। इसका संशोधन

---

१. पंन्यास मणिविजय ग्रंथमाला, अहमदाबाद, वि० सं० १९९८; जिनरत्नकोश, पृ० १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारकवि ने किया। ग्रंथान्त में मुनिरत्न के शिष्य जयसिंहसूरि द्वारा लिखित ३३ पद्यों की प्रशस्ति दी गई है। प्रारंभ में ग्रन्थकर्ता ने पूर्ववर्ती अनेक ग्रन्थों और ग्रन्थकर्ताओं का उल्लेख किया है यथा—जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, उमास्वाति वाचक, सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्र (महत्तरापुत्र), भद्रकीर्ति, सिद्धर्षि—उपमितिभवप्रपंचा के कर्ता, तरंगवती के कर्ता पालित्तसूरि, सातवाहन के सभासद मानतुंगसूरि, भोज के सभासद देवभद्रसूरि, त्रिषष्टिशलाका के कर्ता हेमचन्द्र, दर्शनशुद्धि के कर्ता चन्द्रप्रभ और तिलकमंजरी के रचयिता धनपाल।

बारह चक्रवर्ती तथा अन्य शलाका पुरुषों पर स्वतंत्र रचनाएँ :

भरतेश्वराभ्युदयकाव्य—इसमें ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र एवं प्रथम चक्रवर्ती भरत का उदात्तचरित वर्णित है। यह काव्य 'सिद्ध्यङ्क-महाकाव्य' भी कहलाता था।[1] इसके रचयिता महाकवि आशाधर (वि० सं० १२३७–१२९६) हैं। इनका परिचय त्रिषष्टिस्मृति के प्रसंग में दिया गया है। यद्यपि यह महत्त्वपूर्ण कृति अनुपलब्ध है फिर भी इसकी सुषमा को बतलानेवाले कुछ पद्य स्वयं आशाधर ने अपने ग्रन्थों की टीकाओं में उद्धृत किये हैं—

१. परमसमयसाराभ्यासस‍ानन्दसर्पत्,
सहजमहसि सायं स्वे स्वयं स्वं विदित्वा।
पुनरुदयदविद्यावैभवाः प्राणचार—
स्फुरदरुणविजृम्भा योगिनो यं स्तुवन्ति ॥[2]

२. सुधागर्वं खर्वन्त्यभिमुखहृषीकप्रणयिनः,
क्षणं ये तेऽप्यूर्द्धवं विषमपवदन्त्यंग ! विषयाः।
त एवाविर्भूय प्रतिचितधनायाः खलु तिरो—
भवन्त्यन्धास्तेभ्योऽप्यहह किमु कर्षन्ति विपदः ॥[3]

इस काव्य पर कवि ने स्वोपज्ञवृत्ति भी लिखी थी।

भरत पर अन्य रचनाओं में जयशेखरसूरिकृत जैनकुमारसंभव महाकाव्य[4] (लगभग १४६४ वि०सं०) है जिसका वर्णन शास्त्रीय काव्यों के प्रसंग

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३४६.

२. अनगारधर्मामृत-टीका, पृ० ६३३.

३. मूलाराधना-टीका, पृ०. १०६५.

४. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत, १९४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में किया जायगा। मुनि पुण्यकुशल ने भरत के चरित्र को लेकर 'भरतेश्वरबाहुबलिमहाकाव्य'[1] लिखा है जो अप्रकाशित है। भरतचरित्र और भरतेश्वरचरित्र नामक दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता[2] है पर उनके लेखक अज्ञात हैं।

द्वितीय चक्रवर्ती सगर के जीवन पर प्राकृत 'सगरचक्रिचरित'[3] का उल्लेख मिलता है जिसका प्रारंभ 'सुरवरकयमाणं नट्ठनीसेसमाणं' से होता है। हस्तलिखित प्रति का समय सं० ११९१ दिया गया है पर लेखक का नाम अज्ञात है।

तृतीय चक्रवर्ती मघवा के जीवन पर कोई स्वतंत्र चरित उपलब्ध नहीं है।

सनत्कुमारचरित (सणंकुमारचरिय)—चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार के जीवन पर यह प्राकृत भाषा में बड़ी रचना है।[4] इसका परिमाण ८१२७ श्लोकप्रमाण है। इस चरित में उक्त नायक के अद्भुत कार्यों के वर्णन-प्रसंग में कहा गया है कि एक बार वह एक घोड़े पर बैठा तो वह भाग कर उसे घने जंगल में ले गया जहां उसे अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ा परन्तु उन सब पर वह विजय पा गया और उसी बीच उसने अनेक विद्याधर पुत्रियों से परिणय किया।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता श्रीचन्द्रसूरि हैं जो चन्द्रगच्छ में सर्वदेवसूरि के सन्तानीय जयसिंहसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य थे। प्रणेता ने अपने गुरुभाई के रूप में यशोभद्रसूरि, यशोदेवसूरि और जिनेश्वरसूरि का नाम दिया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में कवि ने हरिभद्रसूरि, सिद्धमहाकवि अभयदेवसूरि, धनपाल, देवचन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, देवभद्रसूरि और मलधारी हेमचन्द्रसूरि की कृतियों का स्मरण कर उनकी गुणस्तुति की है।

श्रीचन्द्रसूरि ने उक्त ग्रन्थ की रचना अणहिलपुर (पाटन) में कर्पूर पट्टाधिपपुत्र सोमेश्वर के घर के ऊपर भाग में स्थित वसति में रहकर वहाँ के कुटुम्ब

---

१. विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरा.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९२.

३. पाटन के ग्रन्थों की सूची (गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला), भाग १, पृ० १८२-१८३.

४. मोहनलाल द० देसाई—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २७७; जिनरत्नकोश, पृ० ४१२; प्रो० हीरालाल रसिकदास कापड़िया—पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृ० ११६.

९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वालों की प्रार्थना पर की थी। इसकी रचना सं० १२१४ आश्विनवदी ७ बुधवार को हुई थी। इसकी प्रथम प्रति हेमचन्द्रगणि ने लिखी थी।

सनत्कुमार चक्रवर्ती का चरित इतना रोचक था कि इस पर और भी रचनाएँ लिखी गई हैं। संस्कृत में २४ सर्गात्मक एक उच्चकोटि का महाकाव्य भी रचा गया है। उसके रचयिता कवि जिनपाल उपाध्याय (सं० १२६२-७८) हैं।[1] इसका विवेचन महाकाव्यों के प्रसंग में किया जायगा। अपभ्रंश भाषा में नेमिनाहचरिउ के अन्तर्गत हरिभद्रसूरि ने रड्डा छन्दों में सनत्कुमार का चरित्र बड़े विस्तार से दिया है, जिसका सम्पादन और अनुवाद (जर्मनभाषा में) प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबी ने किया है।[2] संस्कृत भाषा में सनत्कुमार-चरित्र[3] नामक एक अज्ञात कवि की रचना भी जेसलमेर के भण्डार में मिली है।

पाँचवें, छठे और सातवें चक्रवर्ती शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ हैं जो सोलहवें, सत्तरहवें और अठारहवें तीर्थंकर भी हैं। तीर्थंकर-चरित्रों में इनके सम्बंध की रचनाओं का परिचय दिया गया है।

सुभौमचरित—इसमें आठवें चक्रवर्ती सुभौम का चरित्र वर्णित है। यह साधारण कोटि की रचना है जो ७ सर्गों में विभक्त है।[4] सब मिलाकर ८९१ श्लोक हैं। प्रत्येक सर्ग में 'उक्तं च' कहकर अन्य ग्रन्थों से अनेक अंश उद्धृत किये गये हैं। इस चरित्र में कवि ने कथाप्रसंग से अभिमान करने का फल, निदान-फल, अति लोभ का फल और नमस्कार मंत्र का माहात्म्य दिखलाया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टारक रत्नचन्द्र प्रथम हैं। ग्रन्थ के अन्त में एक प्रशस्तिद्वारा इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा दी है। तदनुसार भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा में भुवनकीर्ति, उनके शिष्य रत्नकीर्ति, उनके शिष्य यशःकीर्ति, उनके गुणचन्द्र और उनके जिनचन्द्र तथा उनके सकलचन्द्र हुए। सकलचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र थे। ये मूलसंघ सरस्वतीगच्छ के भट्टारक थे। काव्य-रचना का काल सं० १६८३ भाद्र० शु० ५ दिया गया है। इनकी अन्य रचना 'चौवीसी' गुजराती में है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२.

२. वही.

३. वही.

४. दिग० जैन पुस्तकालय, सूरत, वि० सं० २०१०, मूल और पं० लालाराम शास्त्रीकृत हिन्दी अनुवाद; जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डित जगन्नाथकृत 'सुभौमचरित्र'[१] नामक एक अन्य रचना का उल्लेख मिलता है।

नवम चक्रवर्ती महापद्म के चरित्र का वर्णन करनेवाली किसी कृति का उल्लेख नहीं मिलता पर दशम हरिषेण पर प्राकृत में हरिषेणचरित्र[२] का उल्लेख मिलता है। इसी तरह एकादशम चक्रवर्ती पर प्राकृत में जयचक्रीचरित्र[३] का उल्लेख मिलता है। बारहवें चक्रवर्ती पर ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिकथानक या ब्रह्मदत्त-कथा[४] नामक रचना का भी उल्लेख आया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्र) के ९वें पर्व में भी विस्तार से बारहवें चक्रवर्ती का चरित वर्णित है जिसका नाम ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिकथानक है।[५]

नव अर्धचक्रवर्ती या ९ वासुदेवों पर केवल कृष्ण को छोड़ अन्य किसी पर कोई रचना स्वतंत्र रूप से नहीं मिलती।

कृष्णचरित (कण्हचरिय)—यह चरित श्राद्धदिनकृत्य नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत दृष्टान्तरूप में आया है। वहीं से उद्धृत कर स्वतंत्र रूप में प्रकाशित किया गया है।[६] इसमें ११६३ प्राकृत गाथाएँ हैं। इसमें वसुदेवचरित, कंस-चरित, चारुदत्तचरित, कृष्ण-बलरामचरित, राजीमतीचरित, नेमिनाथ-चरित, द्रौपदीहरण, द्वारिकादाह, बलदेव-दीक्षा, नेमि-निर्वाण और बाद में कृष्ण के भावितीर्थंकर—अमम नाम से होने का वर्णन किया गया है। समस्त कथा का आधार वसुदेवहिण्डी एवं जिनसेनकृत हरिवंशपुराण है। यह रचना आदि से अन्त तक कथाप्रधान है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि हैं। इनकी अन्य रचना सुदंसणाचरियं अर्थात् शकुनिकाविहार भी मिलती है जिसमें ग्रन्थ-कार ने अपना परिचय दिया है कि वे चित्रापालकगच्छ के भुवनचन्द्र गुरु, उनके शिष्य देवभद्र मुनि, उनके शिष्य जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य थे। उनके एक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

२. वही, पृ० ४६?.

३. वही, पृ० १३३.

४. वही, पृ० २८६.

५. वही.

६. ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, सन् १९३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुभ्राता विजयचन्द्रसूरि थे। तपागच्छ पट्टावली के अनुसार ग्रन्थकार के दादा-गुरु वस्तुपाल महामात्य के समकालीन थे। प्रस्तुत कृष्णचरित्र का रचनाकाल चौदहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध आता है।

नव प्रतिवासुदेवों के चरित पर कोई पृथक् काव्य नहीं लिखे गये। इसी तरह ९ बलदेवों में राम और बलभद्र को छोड़ अन्य पर कोई काव्य नहीं लिखे गये। राम से सम्बंधित रचनाओं का वर्णन हम पहले कर चुके हैं। बलभद्रचरित्र[1] पर काव्य शुभवर्धनगणि का है जो प्रकाशित हो चुका है।

जैनधर्म के २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ अर्धचक्रवर्ती (नारायण), ९ प्रति-अर्धचक्रवर्ती (प्रतिनारायण) और ९ बलदेव मिलाकर ६३ शलाका पुरुषों के अतिरिक्त २४ कामदेव (अतिशय रूपवान) हैं जिनमें से कुछ के चरित्र तो जैन कवियों को बड़े ही रोचक लगे हैं और जिन पर कई काव्य कृतियां लिखी गई हैं।[2]

२४ कामदेव इस प्रकार हैं—बाहुबलि, प्रजापति, श्रीभद्र, दर्शनभद्र, प्रसेन-चन्द्र, चन्द्रवर्ण, अग्निमुख, सनत्कुमार, वत्सराज, कनकप्रभ, मेघप्रभ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, विजयचन्द्र, श्रीचन्द्र, नलराजा, हनुमान, बलिराज, वसुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, जीवन्धर और जम्बू। इनमें सनत्कुमार का चरित्र चक्र-वर्तियों के प्रसंग में दिया गया है। शान्ति, कुन्थु और अर तीर्थंकरों के अन्तर्गत आते हैं। शेष में बाहुबलि, विजयचन्द्र, श्रीचन्द्र, नलराज, हनुमान, बलिराज, वसुदेव, प्रद्युम्न, नागकुमार, जीवन्धर और जम्बू के चरित्रों पर जैन कवियों ने अपनी बहुविध लेखनी चलाई है। यहाँ एतद्विषयक उपलब्ध काव्यों का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

बाहुबलि के जीवन-चरित्र को ऋषभदेव या भरतचक्रवर्ती के चरित्रों के साथ ही सम्बद्ध समझा जाता है और उनके साथ ही वर्णित किया जाता है पर 'बाहुबलिचरित्र' नाम से दो स्वतंत्र रचनाओं का उल्लेख मिलता है। प्रथम का

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२.

२. कामदेवों के जीवन की विशेषता यह है कि वह अनेकों आकर्षणों से भरा रहता है। इसमें मानव की दुर्बलताओं और उसके उत्थान-पतन का चित्रण दिखाया जाता है। सभी कामदेव चरमशरीरी (उसी जन्म से मोक्ष जानेवाले) होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थाग्र ५०० है,[1] वह संस्कृत में है पर उसके कर्ता का नाम अज्ञात है। दूसरी भी संस्कृत में है और इसके कर्ता का नाम चारुकीर्ति है।[2]

विजयचन्द्रचरित—इसमें १५ वें कामदेव विजयचन्द्र केवली का चरित्र वर्णित है।[3] इसे हरिचन्द्रकथा भी कहते हैं क्योंकि इसमें विजयचन्द्र केवली ने अपने पुत्र हरिचन्द्र के लिए अष्टविध पूजा जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, दीप, धूप, नैवेद्य और फल का माहात्म्य आठ कथाओं द्वारा बतलाया है। इस ग्रन्थ के दो रूपान्तर मिलते हैं। लघु का ग्रन्थाग्र १३०० है और बृहत् का ग्रन्थाग्र ४००० (*११६३ गाथाएँ*)। *ये दोनों प्राकृत में लिखे गये हैं।*

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता खरतरगच्छीय अभयदेवसूरि के शिष्य चन्द्रप्रभ महत्तर हैं। उन्होंने अपने शिष्य वीरदेव की प्रार्थना पर वि० सं० ११२७ में इसकी रचना की थी। ग्रन्थ के अन्त में दी गई निम्न प्रशस्ति से यह बात ज्ञात होती है: **मुणिकमरुद्दंक (११२७) जुए काले सिरि-विक्कमस्स वट्टन्ते रइयं फुडक्खरत्थं चंदप्पहमहयरेणेयं।**

स्व० दलाल ने चन्द्रप्रभ महत्तर को अमृतदेवसूरि (निवृत्तिवंश) का शिष्य माना है जो 'जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला' में प्रकाशित प्रति से खण्डित होता है।[4]

विजयचन्द्रकेवलिचरित्र पर जयसूरि और हेमरत्नसूरि एवं अज्ञात लेखक की रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है पर उनका ग्रन्थ-परिमाण और रचनाकाल ज्ञात नहीं है।[5]

श्रीचन्द्रकेवलिचरित—इसमें १६ वें कामदेव श्रीचन्द्र का चरित्र निबद्ध है।[6] यह कथा आचाम्लवर्धनतप के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए रची

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८३.
२. वही.
३. जैनधर्म प्रसारक सभा, ग्रन्थ सं० १६, भावनगर, १९०६; केशवलाल प्रेमचन्द्र कंसारा, खंभात, वि० सं० २००७; गुजराती अनुवाद—जै० प्र० स० भावनगर, वि० सं० १९६२; जिनरत्नकोश, पृ० ३५४.
४. हीरालाल र० कापडिया—पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृ० १११.
५. जिनरत्नकोश, पृ० ३५४.
६. कुंवरजी आणंदजी, भावनगर, वि० सं० १९९२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गई है। इसमें चार अध्याय हैं जिनमें कुल मिलाकर ३१०६ श्लोक हैं। यह प्रसादपूर्ण एक संस्कृत काव्य है। इसमें जन्मकाल से सौतेले भाइयों के डाह के कारण श्रीचन्द्र का माता-पिता से वियुक्त होकर एक वणिक् के घर में पालन, युवा होने पर देश-देशान्तरों में भ्रमण, अनेक रूपवती कन्याओं से विवाह, अनेकों अद्भुत कार्यों का प्रदर्शन तथा अन्त में अपने माता-पिता से भेंट, साम्राज्य-पालन आदि का वर्णन तथा उसकी तपस्या का निरूपण किया गया है। बीच-बीच में अनेक प्राकृत पद्य उद्धृत किये गए हैं। इस ग्रन्थ का आधार कोई प्राचीन प्राकृत कृति है।

रचयिता और रचनाकाल— ग्रन्थ के अन्त में दिये गये निम्न पद्य से ज्ञात होता है कि सं० ५९८ में सिद्धर्षि ने किसी प्राकृत चरित्र के आधार से इसे संस्कृत में बनाया है:

> **वस्वंकेषुमिते वर्षे (५९८), श्रीसिद्धर्षिरिदं महत्।**
> **प्राक् प्राकृतचरित्राद्धि, चरित्रं संस्कृतं व्यवधात्॥ ९५९ ॥**[1]

पर यह इतनी प्राचीन रचना नहीं मालूम होती। इस ग्रन्थ की एक अन्य प्रति में इसे गुणरत्नसूरि की कृति कहा गया है। हमें गुणरत्नसूरि का विशेष परिचय नहीं मिलता। यदि यह प्रसिद्ध कृति 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' के कर्ता सिद्धर्षि द्वारा रचित है तो इसका उपरिनिर्दिष्ट समय ठीक नहीं। सिद्धर्षि (९०६ ई०) दशवें शतक के विद्वान् थे।[2] इस रचना में 'उपमितिभवप्रपञ्चा' जैसी उदात्तता भी नहीं।

श्रीचन्द्रचरित्रनामक दो अन्य रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। एक के कर्ता अज्ञात हैं और दूसरे के कर्ता शीलसिंहगणि हैं जो आगमगच्छ के जया-

---

१. चतुर्थ अध्याय; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८६.

२. उक्त श्लोक में अंकित सं० ५९८ को, डा० मिरोनो (Mironow) ने अपने सन् १९११ में सिद्धर्षि पर लिखे गये निबन्ध में, गुप्त संवत् माना है। इससे वि० सं० ९७४ और ई० सन् ९१७ आता है और इस तरह इसकी उपमितिभवप्रपंचाकथा की रचना (सं० ९६२) से समकालिकता बैठती है। पर गुप्त संवत् का इतने परवर्ती काल तक प्रयोग अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इसलिए सिद्धर्षिकृत रचना मानना संदेहा-पन्न है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दसूरि के शिष्य थे। इसमें चार अध्याय हैं। ग्रन्थाग्र ३७०० श्लोक-प्रमाण है। रचनाकाल सं० १४९४ है।[1]

सत्तरहवें कामदेव नल पर जैन कवियों ने संस्कृत और प्राकृत में अनेक काव्य, कथाएँ और प्रबंध लिखे हैं। उनमें अनेक तो बड़े-बड़े ग्रन्थों के अन्तर्गत हैं और कुछ स्वतन्त्र रचनाएँ भी हैं, जिनमें प्रमुख और महत्त्वपूर्ण काव्य नलायनम् है।

नलायन—इस काव्य में १७ वें कामदेव नल और उनकी पतिव्रता पत्नी दमयन्ती का चरित जैन दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।[2] यह 'नव मंगल' शब्दाङ्कित महाकाव्य है। इसकी रचना दश स्कन्धों में की गई है जिनमें कुल मिलाकर १०० सर्ग और ४०५६ पद्य हैं। नलायन के दूसरे नाम 'कुबेरपुराण' और 'शुकपाठ' भी हैं। कवि ने नल के जन्म से लेकर मृत्यु तक पूरा विवरण दिया है, इससे काव्य बहुत विस्तृत हो गया है। इस काव्य की कथा को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम भाग में नल के जन्म से लेकर दमयन्ती से विवाह और उसे लेकर निषध देश में आने तक, द्वितीय भाग में नल की द्यूत-क्रीड़ा से लेकर दमयन्ती की पुनः प्राप्ति तक तथा तृतीय भाग में नल के श्राद्ध-धर्म स्वीकार करने से लेकर मृत्यु के पश्चात् कुबेर बनने तक कथा आती है। प्रथम स्कन्ध से लेकर तृतीय स्कन्ध तक प्रथम भाग की कथा वर्णित है। चतुर्थ से आठ तक के स्कन्धों में द्वितीय भाग की और नवम-दशम में तृतीय भाग की कथा वर्णित है।

नलायनम् का कथानक जैनचरित ग्रन्थों में उपलब्ध आख्यानों पर आधारित है अतः व्यासकृत 'महाभारत' में उपलब्ध नलोपाख्यान से तुलना करने पर उसमें अनेक स्थलों पर परिवर्तन किया गया दृष्टिगोचर होता है। पर यह कवि ने स्वयं नहीं किया। उसने जैन परम्परागत नल-चरित की मूल कथा को ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। फिर भी काव्य के अनेक अंशों में कवि की मौलिकता एवं काव्य-कुशलता झलकती है। हंस-भैमी संवाद, देवदूत-नल-भैमी संवाद, नल के विरह में दमयन्ती का विलाप आदि प्रसंगों में पर्याप्त मौलिकता है। देवदूत, नल और दमयन्ती के बीच हुए वार्तालाप एवं संवाद में श्रीहर्षकृत नैषधीयचरित का

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३९६.

२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वि० सं० १९९४; जिनरत्नकोश, पृ० २०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस प्रसंग में अनेक भावसाम्य और शब्दसाम्य दिखाई पड़ते हैं। इस नलायनकाव्य में १२ वर्ष पर्यन्त नल-दमयन्ती के वियोग का वर्णन अत्यद्भुत है। जुए में आसक्ति रखनेवाले लोगों की जो-जो दुर्दशा या परिवर्तन होते हैं वे बड़े रोमांचकारी हैं। प्रसंग-प्रसंग पर अनेक चमत्कारी घटनाओं का वर्णन है। इसी ग्रन्थ में शकुन्तला, कलावती और तिलकमंजरी की अवान्तर कथाएँ भी द्रष्टव्य हैं।

इस बृहत् कथा में अनेक पात्र हैं किन्तु नल और दमयन्ती को छोड़ अन्य किसी पात्र के चरित्र का विकाश नहीं हुआ है। इसमें नायक नल का चरित्र बड़ा ही भव्य चित्रित किया गया है।[१] नायिका दमयन्ती का भी पतिपरायणा भारतीय नारी के रूप में उत्कृष्ट चित्रण किया गया है।[२] इस काव्य में प्रकृति-चित्रण भी विभिन्न रूपों में हुआ है। नलायन की श्रेष्ठता का बहुत बड़ा श्रेय प्रकृति और जीवन के बीच तादात्म्य स्थापित करने में है। पात्रों के सौन्दर्य-चित्रण में कवि ने दमयन्ती के सौन्दर्य-वर्णन में नखशिखपद्धति का अवलम्बन लिया है तथा नल के समग्र सौन्दर्य का संश्लिष्ट चित्रण किया है। इस परम्परागत कथानक में कवि ने अपने समय की रूढ़ियों, परम्पराओं, मान्यताओं और रीति-रिवाजों का यत्र-तत्र उल्लेख कर सामाजिक अध्ययन की पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत की है।[३]

पौराणिक काव्य होने पर भी इसमें अन्य दूसरे पौराणिक काव्यों की तरह जैनधर्म के सिद्धान्तों और नियमों का बाहुल्य नहीं है। इसमें धार्मिक नियमों का विवेचन कहीं भी क्रमिक रूप में न देकर यत्र-तत्र इतने संक्षिप्त रूप में दिया है[४] कि उससे कथानक में कोई शिथिलता नहीं आने पाई है।

इस काव्य में शान्त रस की ही प्रधानता है, शेष सभी रसों की भी सुन्दर योजना यथास्थान हुई है। अलंकारों में शब्दालंकार के यमक, अनुप्रास और वीप्सा का प्रयोग बहुत अधिक हुआ है।[५] इसमें पाण्डित्यप्रदर्शन करने के लिए

---

१. स्कन्ध २, सर्ग ४. ४-५, सर्ग ८. ४४-४५; स्कन्ध १, सर्ग २. ३०-३१, ३७-३९, सर्ग १२. १४-१५ आदि।

२. स्कन्ध २, सर्ग १४. ३०-३१; स्कन्ध ५, सर्ग २१. ६८, सर्ग ७. २.

३. स्कन्ध २, सर्ग ९. ८; स्कन्ध ३, सर्ग ९. २२, २७, ३४-३६; स्कन्ध ४, सर्ग १. ७, ८, १०, सर्ग ६. ६५-६७, ७२-७३.

४. स्कन्ध ४, सर्ग ५. ५१-५२; स्कन्ध ५, सर्ग ५. १८.

५. स्कन्ध १, सर्ग १४. ४९, सर्ग ७. ३२, ३८; स्क० ३, सर्ग ११. १३; स्क० ४, सर्ग ४. ३०-३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्लिष्ट, कृत्रिम और श्लेषयुक्त पदावली का प्रयोग किया गया है। अर्थालंकारों के प्रयोग में कवि ने स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है।[१]

इसकी भाषा वैविध्यपूर्ण है। एक ओर इसमें सरल भाषा का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर प्रौढ़ एवं पाण्डित्यपूर्ण भाषा का। फिर भी कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार प्रतीत होता है। भाषा जैसे उसके संकेत पर नाचती है। इस काव्य की भाषा का एक अन्य प्रधान गुण उसकी अलंकृति है। इसमें अनुप्रास और यमक का प्रयोग पद-पद पर मिलता है। ये अलंकार भाषा के भाररूप बनकर नहीं आये बल्कि भाषा-सौन्दर्य के वृद्धिकारक हैं। अनुप्रास और यमक के प्रयोग ने इस काव्य की भाषा को प्रवाहयुक्त, गतिमय, चंचल और ललित बना दिया है। इस काव्य में यत्र-तत्र मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है[२] जिससे भाषा की व्यावहारिकता बढ़ी है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में अनुष्टुप् का प्रयोग अधिक हुआ है। कतिपय सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है, इसमें छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं। अन्य छन्दों में मालिनी, आर्या, शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, पृथ्वी, द्रुतविलम्बित, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, हरिणी, रथोद्धता, स्वागता, पुष्पिताग्रा, मंजुभाषिणी, स्रग्धरा, भृंग, तोटक, भुजंगप्रयात, वंशस्थ, स्रग्विणी, हरिणप्लुता तथा कई प्रकार के अर्धसम वर्णिक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। सवैया और षट्पदी जैसे संस्कृतेतर छन्दों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है। इससे कवि का कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। फिर भी प्रत्येक स्कन्ध के अन्त में जो प्रशस्ति दी गई है उसमें कवि ने अपना और अपने गच्छ का नाम दिया है।[३] इससे ज्ञात होता है कि वटगच्छीय सूरि माणिक्यदेव ने इसकी रचना की है।

---

१. स्क० १, सर्ग १. ३१, ३९, ४०, ४९; स्क० २, सर्ग ५. ३३; स्क० ३, सर्ग ९. १४, १६; स्क० ४, सर्ग ६. १६; स्क० ५, सर्ग ४. ३-४; स्क० ७, सर्ग ५. ४२ आदि.

२. स्क० ४, सर्ग ३. ४, सर्ग ६. ५१, सर्ग ९. ४४, सर्ग १२. ४०.

३. एतत् किमप्यनवमं नवमंगलाङ्कं माणिक्यदेवमुनिना कृतिनां कृतं यत्।
—प्रथम स्कन्ध.

एतत् किमप्यनवमं नवमंगलाङ्कं चक्रे यदत्र वटगच्छनभोमृगाङ्कः।
—द्वितीय स्कन्ध.

Jain Education International 	For Private & Personal Use Only 	www.jainelibrary.org

कवि ने इसकी रचना कब की यह जानने का विशेष साधन नहीं है फिर भी कवि के काल पर प्रकाश डालनेवाले कुछ सूत्र हमें मिलते हैं। नलायन के तृतीय स्कन्ध के अन्तिम पद्य से ज्ञात होता है कि कवि ने इस काव्य से पहले यशोधरचरित्र काव्य की रचना की थी।[1] दोनों काव्यों में कुछ पद्य समान रूप में मिलते हैं।[2] यशोधरचरित्र के प्रारम्भ में मंगलाचरण का निम्नांकित पद्य हेमचन्द्रकृत 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' से उद्धृत मालूम होता है। यथा—

करामलकवद्विश्वं कलयन् केवलश्रिया।
अचिन्त्यमाहात्म्यनिधिः सुविधिर्बोधयेऽस्तु वः ॥[3]

चूंकि हेमचन्द्र का समय ईसा की बारहवीं शताब्दी है अतः माणिक्यसूरि का समय इसके बाद होना चाहिए।

'जैन प्रतिमालेखसंग्रह' में शामिल दो लेखों[4] के आधार से यह कहा जा सकता है कि माणिक्यसूरि सं० १३२७ से सं० १३७५ के मध्य जीवित थे। सं० १३२७ में उन्होंने महावीर-प्रतिमा की और १३७५ में पार्श्वनाथ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा कराई थी। इस काल के बीच कभी भी उन्होंने अपने दोनों महाकाव्यों की रचना की होगी, ऐसा हम मान सकते हैं। नलायन-काव्य के अन्य स्कन्धों की प्रशस्तियों में माणिक्यसूरि की कुछ अन्य रचनाओं के नाम भी आये हैं। यथा—१. अनुभवसारविधि, २. मुनिचरित, ३. मनोहर-चरित, ४. पंचनाटक। पर इन ग्रन्थों की अबतक खोज नहीं हुई है।

नल के विषय में जैन विद्वानों की संस्कृत-प्राकृत में अन्य कृतियाँ इस प्रकार हैं—

१. नलविलास नाटक—रामचन्द्रसूरिकृत।
२. नलचरित—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरितान्तर्गत।

---

१. एतत् किमप्यनवमं नवमङ्गलाङ्कं श्रीमद्यशोधरचरित्रकृता कृतं यत्।—तृतीयस्कन्ध.
२. स्क० ९, सर्ग २, श्लोक ८ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग २, श्लोक ३१; स्कन्ध ९, सर्ग २, श्लोक २६ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग २, श्लोक ३४; स्क. ५, सर्ग १, श्लो० २९ तथा यशोधरचरित्र, सर्ग १३, श्लो० ७८.
३. त्रि० श० पु० च०, पर्व १.११.
४. बुद्धिसागरसूरि—जैन प्रतिमालेखसंग्रह, प्रथम भाग, लेख सं० १३७ और ९८१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. नलचरित—धर्मदासगणिविरचित वसुदेवहिण्डी-अन्तर्गत ।
४. नलोपाख्यान—देवप्रभसूरिविरचित पाण्डवचरितान्तर्गत ।
५. नलचरित—देवविजयगणिविरचित पाण्डवचरितान्तर्गत ।
६. नलचरित—गुणविजयगणिविरचित नेमिनाथचरितान्तर्गत ।
७. दवयंतीचरित—सोमप्रभाचार्यविरचित कुमारपालप्रतिबोधान्तर्गत ।
८. दवयन्तीकथा—सोमतिलकसूरिविरचित शीलोपदेशमालावृत्ति में ।
९. दवयन्तीकथा—जिनसागरसूरिविरचित कर्पूरप्रकरटीका में ।
१०. दवयन्तीकथा—शुभशीलगणिविरचित भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति में ।
११. दवयन्तीप्रबन्ध—(गद्यरूप) ।[१]
१२. „ „ —(पद्यरूप) जैन ग्रन्थावली ।
१३. दवयंतीचरिय[२]—पत्तनभाण्डार प्राकृत-सूचीपत्र ।

हनूमान्‌चरित—चौबीस कामदेवों में हनुमान १८ वें हैं। रामचरित्र-काव्यों में इनका चरित्र अच्छी तरह दिया गया है। फिर भी इनके चरित का अवलम्बन लेकर जैन कवियों ने स्वतंत्र काव्य ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से संस्कृत में १७वीं शताब्दी के विद्वान् ब्रह्मअजित ने १२ सर्ग में एक हनूमच्चरित्र की रचना की है।[३] इसे अंजनाचरित या समीरणवृत्त भी कहते हैं। यह अपने समय का लोकप्रिय काव्य रहा है।

रचयिता एवं रचनाकाल—ब्रह्मअजित संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। ये गोल-शृंगार जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम वीरसिंह एवं माता का नाम पीथा था। ये भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एवं भट्टारक विद्यानन्दि के शिष्य थे। इन्होंने भृगुकच्छपुर (भड़ौच) के नेमिनाथ चैत्यालय में हनूमच्चरित की समाप्ति की थी। रचना-संवत् नहीं दिया गया है।

अन्य हनूमच्चरित्रों में १५वीं शताब्दी के ब्रह्मजिनदास का गुजराती में है और रविषेण तथा ब्रह्मदयाल के हनूमच्चरित्र भी शायद देशी भाषाओं में हैं। हनूमान् की माता अंजना के नाम पर भी कई चरित लिखे गये हैं जिनका परिचय अलग दिया जायगा।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १६६.
२. वही.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९; डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल—राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १९५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलिराजचरित—इसमें १९वें कामदेव का चरित्र वर्णित है। इसे बलिनरेन्द्र-कथानक या बलिनरेंद्राख्यान भी कहते हैं। इसका अपर नाम भुवनभानुकेवलि-चरित्र भी है। इस पर अनेकों कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत में एतद्विषयक मलधारी हेमचन्द्र तथा हरिभद्रसूरिकृत काव्यों[1] का उल्लेख मिलता है। अन्य लेखकों में विजयसिंहसूरि के शिष्य उदयविजय तथा मलधारीगच्छ के विजयचन्द्रसूरि की रचनाओं का भी निर्देश मिलता है।[2] इन सबका रचनाकाल अज्ञात है। बलिनरेन्द्रकथानक नामक संस्कृत गद्य में उपलब्ध काव्य[3] के रचयिता तपागच्छीय धर्महंसगणि के शिष्य इन्द्रहंसगणि हैं जिसे उन्होंने संवत् १५५४ में रचा था। इन्हीं इन्द्रहंसगणि ने सं० १५५७ में इस चरित्र[4] को प्राकृत भाषा में निबद्ध किया था। यही चरित्र[5] हीरकलशगणि ने सं० १५७२ में रचा है। दो अन्य रचनाएँ अज्ञातकर्तृक भी मिलती हैं।

वसुदेवचरित—कृष्ण के पिता वसुदेव जैन मान्यतानुसार २० वें कामदेव थे। उनका चरित जैन साहित्य में बड़े रोचक और व्यापक रूप से वर्णित है। इस संबंध में सर्वप्रथम ज्ञात रचना भद्रबाहुकृत वसुदेवचरित्र[6] है जो अब तक अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख देवचन्द्रसूरि तथा माणिक्यचन्द्रसूरि के शान्तिनाथ-चरित्र में किया गया है।

वसुदेवहिण्डी—इसका अर्थ वसुदेव की यात्राएँ है। वसुदेवहिंडी[7] में वसुदेव के घर छोड़ कर बाहर घूमने की कथाएँ दी गई हैं। अपनी यात्राओं में वसुदेव

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २८२ और २९८.

२. वही, पृ० २९८.

३. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१९.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २९८.

५. वही.

६. पाटन ग्रन्थ सूचीपत्र, भाग १ (गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज सं० ७६), पृ० २०४; जिनरत्नकोश, पृ० ३४४.

७. सम्पादक—मुनि पुण्यविजय जी, आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, १९३१; गुजराती अनुवाद—डा० भोगीलाल ज० सांडेसरा, आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वि० सं० २००३; जिनरत्नकोश, पृ० ३४४; इस ग्रन्थ का अभी तक केवल प्रथम खण्ड ही प्रकाश में आया है। इसमें भी १९-२० वें लम्भक अनुपलब्ध हैं तथा २८वां अपूर्ण है।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

को कैसे-कैसे लोगों से मिलने का अवसर मिला, कैसे-कैसे अनुभव उसको हुए यह सब वसुदेवहिण्डी में है।

समस्त ग्रन्थ सौ लम्भकों में पूर्ण हुआ है जो विशाल दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में २९ लम्भक हैं और उसका परिमाण ११ हजार श्लोक-प्रमाण है। इस खण्ड के कर्ता संघदासगणि वाचक हैं। दूसरे खण्ड में ७१ लम्भक हैं जो १७ हजार श्लोक-प्रमाण हैं और इसके कर्ता धर्मदासगणि हैं। वास्तव में देखा जाय तो धर्मदासगणि ने अपने ७१ लम्भकों के सन्दर्भ को प्रथम खण्ड के १८ वें लम्भक की कथा प्रियङ्गुसुन्दरी के साथ जोड़ा है या एक तरह से वहाँ से कथा का विस्तार किया है और इस प्रकार से संघदास की वसुदेवहिण्डी (प्रथम खण्ड) के पेट में अपने अंश को भरने का यत्न किया है। भाव यह है कि संघदासगणि का २९ लम्भकोंवाला ग्रन्थ स्वतंत्र तथा अपने में परिपूर्ण था। पीछे धर्मदासगणि ने अपने ग्रन्थ को निर्मित कर उक्त ग्रन्थ के मध्यम अंश (१८ वें लम्भक) से जोड़ दिया है।

कथा का विभाजन छः प्रकरणों में किया गया है—कहुप्पत्ति (कथोत्पत्ति), पीढिया (पीठिका), मुह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसंहार (उपसंहार)। प्रथम कथोत्पत्ति में जम्बूस्वामिचरित, कुबेरदत्त-चरित, महेश्वरदत्त-आख्यान, वल्कलचीरि-प्रसन्नचन्द्रआख्यान, ब्राह्मणदारक-कथा, अणाढियदेवोत्पत्ति आदि का वर्णन कर अन्त में वसुदेवचरित्र की उत्पत्ति बताई गई है।

प्रथम प्रकरण के अनन्तर ५० पृष्ठों का एक महत्त्वपूर्ण प्रकरण धम्मिल्ल-हिण्डी नाम से आता है। इसमें धम्मिल्ल नामक किसी सार्थवाह पुत्र की कथा दी गई है जो देश-देशान्तरों में भ्रमण कर ३२ कन्याओं से विवाह करता है। इस प्रकरण का वातावरण सार्थवाहों की दुनियाँ से व्याप्त है। इसी प्रकरण में शीलवती, धनश्री, विमलसेना, ग्रामीण गाड़ीवान, वसुदत्ताख्यान, रिपुदमन नरपति-आख्यान तथा कृतघ्न वायस आदि सुन्दर लौकिक आख्यान और कथाएँ मिलती हैं। भारत की प्राचीन संस्कृति जानने के लिए धम्मिल्लहिंडी प्रकरण का बड़ा महत्त्व है।

उक्त प्रकरण के बाद द्वितीय प्रकरण पीठिका आती है, जिसमें प्रद्युम्न और शम्बुकुमार की कथा, बलराम-कृष्ण की पट्टरानियों का परिचय, प्रद्युम्नकुमार का जन्म और उसका अपहरण आदि प्रद्युम्नचरित दिया गया है।

तृतीय प्रकरण-मुख में कृष्ण के पुत्र शम्ब और भानु की क्रीडाओं का वर्णन है। यह अनेकविध सुभाषितों से भरा हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ प्रकरण प्रतिमुख में अन्धकवृष्णि का परिचय और उसके पूर्वभवों का वर्णन किया गया है। अन्धकवृष्णि के पुत्रों में ज्येष्ठ समुद्रविजय था और कनिष्ठ वसुदेव। वसुदेव की आत्मकथा प्रद्युम्न के व्यङ्ग करने पर प्रारम्भ होती है। प्रसंग यह है कि सत्यभामा के पुत्र सुभानु के विवाह के लिए १०८ कन्याएँ एकत्र की गई किन्तु उन्हें छीनकर रुक्मिणीपुत्र शाम्ब ने विवाह किया। इस पर प्रद्युम्न ने अपने बाबा वसुदेव से कहा—देखिये! शाम्ब ने बैठे-बैठाये १०८ बधुएँ प्राप्त करलीं और आप सौ वर्षों तक भ्रमण कर सौ मणियों को ही प्राप्त कर सके! वसुदेव ने उत्तर दिया कि शाम्ब तो कूपमण्डूक है जो सरलता से प्राप्त भोगों से सन्तुष्ट हो जाता है। मैंने तो पर्यटन करके अनेक सुख-दुःखों का अनुभव किया है। पर्यटन से नाना प्रकार के अनुभव तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। इसके बाद वसुदेव अपने १०० वर्षों के भ्रमण का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

पंचम प्रकरण शरीर प्रथम लम्भक से प्रारंभ होकर २९ वें लम्भक में समाप्त होता है। इसमें जिस कन्या से विवाह होता उसी के नाम से लम्भकों के नाम दिये गये हैं। इन लम्भकों के कथा-प्रसंगों में जैन पुराणों में समागत अनेक उपाख्यान, चरित, अर्ध ऐतिहासिक वृत्तों का संकलन किया गया है जो पश्चाद्वर्ती अनेकों काव्यों-कथाओं का उपजीव्य है। उदाहरण के लिए गन्धर्वदत्ता लम्भक में विष्णुकुमारचरित, चारुदत्तचरित तथा पुराने जमाने में हमारे देश में सार्थ (काफिले) कैसे चलते थे और व्यापारी माल लाद कर समुद्र मार्ग से देश-विदेश अर्थात् चीन, सुवर्ण भूमि, यवद्वीप, सिंहल, बर्बर और यवन देश के साथ कैसे व्यापार करते थे आदि का जीता-जागता चित्र उपस्थित किया गया है। इसी गन्धर्वदत्ता लम्भक में अथर्ववेद-प्रणेता पिप्पलाद की कथा दी गई है। नीलजलसा तथा सोमसिरि इन दो लम्भकों में पूरा ऋषभदेवपुराण दिया गया है। इसी में पर्वत-नारद-वसु उपाख्यान भी दिया गया है। यहीं कई तीर्थों की उत्पत्ति-कथा भी दी गई है।

सातवें लम्भक के पश्चात् प्रथम खण्ड का द्वितीय अंश प्रारंभ होता है। मदनवेगा लम्भक में सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा तथा रामायण की कथा दी गई है। यहाँ वर्णित रामकथा पउमचरिय की रामकथा से कई बातों में भिन्न है।[1]

---

१. जरनल ऑफ ओरियण्टल इंस्टिट्यूट, बड़ौदा, जिल्द २, भाग २, पृ० १२८ में प्रो० वी० एम० कुलकर्णी का लेख—'वसुदेवहिण्डी की रामकथा'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह वाल्मीकि-रामयण से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। सीता के सम्बंध में कहा गया है कि वह मन्दोदरी की पुत्री थी। उसे एक पेटिका में रख कर राजा जनक की उद्यानभूमि में गड़वा दिया था, जहाँ से हल चलाते समय उसकी प्राप्ति हुई थी। १८ वें प्रियंगुसुन्दरीलंभक में सगरपुत्रों के कैलाशपर्वत के चारों ओर खाई खोदने पर भस्म होने की कथा भी वर्णित है। १९-२० लंभक नष्ट हो गये हैं। इसके बाद केतुमतीलंभक में शान्ति, कुन्थु, अरह तीर्थंकरों के चरित तथा त्रिपृष्ट आदि नारायण-प्रतिनारायणों के चरित्र भी दिये गये हैं। पद्मावती-लम्भक में हरिवंश कुल की उत्पत्ति भी दिखलाई गई है। देवकीलंभक में कंस के पूर्व-भवों का भी वर्णन दिया गया है।

इस तरह वसुदेवहिण्डी में अनेक आख्यान, चरित, अर्ध ऐतिहासिक वृत्त आये हैं जिन्हें उत्तरकालीन प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश कवियों ने पल्लवित कर अनेक काव्यों की रचना की है। यह ग्रन्थ हरिभद्र के समराइच्चकहा का भी स्रोत है। यहीं से अगड़दत्त के चरित को विकसित किया गया है। जम्बू-चरितों के स्रोत यहीं प्राप्त होते हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के दोनों खण्डों के दो रचयिता हैं। पहले के संघदासगणि वाचक हैं और दूसरे के धर्मदासगणि। पर इनके जीवनवृत्त और अन्य कृतियों के सम्बन्ध में कुछ परिचय नहीं मिलता। यह कथा आगमेतर साहित्य में प्राचीनतम गिनी जाती है। आवश्यकचूर्णि के कर्ता जिनदासगणि ने इसका उपयोग किया है। इसका 'वसुदेवचरित' नाम से सेतु और चेटक कथा के साथ निशीथचूर्णि में उल्लेख किया गया है। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने अपनी कृति विशेषणवती में भी इसका निर्देश किया है। इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इसका रचनाकाल लगभग पाँचवीं शताब्दी होना चाहिए। इसकी भाषा भी प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है जिसकी तुलना चूर्णि ग्रन्थों से की जा सकती है। दिस्सहे, गच्छीय, वहाए, पिव, गेण्हेप्पि आदि रूप तथा देशी शब्दों के प्रयोग इसमें मिलते हैं।[1] यह कथा-ग्रन्थ गद्यात्मक समासान्त पदावली से विभूषित है। बीच-बीच में पद्य भी आ गये हैं। भाषा सरल, स्वाभाविक और प्रसादगुण-युक्त है।

---

१. वसुदेवहिण्डी की भाषा के सम्बन्ध में डाक्टर आल्सडोर्फ का लेख 'बुलेटिन आफ द स्कूल आफ ओरियण्टल स्टडीज', जिल्द ८, तथा वसुदेवहिण्डी के गुजराती अनुवाद की प्रस्तावना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जर्मन विद्वान् आल्सडोर्फ ने वसुदेवहिण्डी की तुलना गुणाढ्य की पैशाची भाषा में लिखी बृहत्कथा से की है। संघदासगणि की इस कृति को वे बृहत्कथा का रूपान्तर मानते हैं। बृहत्कथा[1] में नरवाहनदत्त की कथा दी गई है और इसमें वसुदेव का चरित। गुणाढ्य की उक्त रचना की भाँति इसमें भी शृंगारकथा की मुख्यता है पर अन्तर यह है कि जैनकथा होने से इसमें बीच-बीच में धर्मोपदेश बिखरे पड़े हैं। वसुदेवहिण्डी में एक ओर सदाचारी श्रमण, सार्थवाह एवं व्यवहारपटु व्यक्तियों के चरित अंकित हैं तो दूसरी ओर कपटी तपस्वी, ब्राह्मण, कुट्टनी, व्यभिचारिणी स्त्रियों और हृदयहीन वेश्याओं के। कथानकों की शैली सरस एवं सरल है।

वसुदेवहिण्डीसार—यह २८ हजार श्लोक-प्रमाण विशाल कथाग्रन्थ वसुदेवहिण्डी का संक्षिप्त सार है[2] जो २५० श्लोक-प्रमाण प्राकृत गद्य में लिखा गया है। इस वसुदेवहिण्डीसार के कर्ता कौन हैं, उन्होंने क्यों और किसलिए सारोद्धार किया है ? यह निश्चित नहीं हो सका। केवल ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि **'इह संखेपेण सिरिगुणनिहाणसूरीणं कए कहा कहिया'** अर्थात् श्रीगुणनिधानसूरि के लिए संक्षेप में कथा कही गई है। पर किसने कही है यह ज्ञात न हो सका। इस प्रति में इसका स्पष्ट या अस्पष्ट उल्लेख भी नहीं है। इसके सम्पादक पं० वीरचन्द्र के अनुसार यह ग्रन्थ तीन-चार सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है। इसे 'वसुदेवहिण्डीआलापक' भी कहा जाता है पर ग्रन्थान्त में **'वसुदेवहिण्डी कहा समत्ता'** लिखा है इससे इसका 'वसुदेवहिण्डीसार' नाम ठीक है।

प्रद्युम्नचरित्र—बीसवें कामदेव वसुदेव के पौत्र तथा नवम नारायण श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न जैनधर्मसम्मत इक्कीसवें कामदेव (अतिशय रूपवान्) थे। प्रद्युम्न का चरित जैन कवियों को इतना रुचिकर था कि उन्होंने उसे साधारण[3] पुराणों में पर्याप्त स्थान देने के अतिरिक्त स्वतन्त्र काव्यों के रूप में भी रचा है।

---

१. बृहत्कथा का संस्कृत रूपान्तर सोमदेवकृत कथासरित्सागर मिलता है जिसमें नरवाहनदत्त के साथ विवाहित होनेवाली कन्याओं के नाम से लम्भकों के नाम दिये गये हैं।

२. हेमचन्द्राचार्य ग्रंथावली (सं० ४), पाटन, सन् १९१७.

३. वसुदेवहिण्डी, जिनसेन के हरिवंशपुराण (४७-४८ सर्ग), हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, गुणभद्र के उत्तरपुराण में प्रद्युम्नचरित दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अबतक संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी में एतद्विषयक २५ से अधिक कृतियाँ मिली हैं। यहाँ संस्कृत में उपलब्ध रचनाओं[1] की सूची देकर कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय दिया जायेगा और कुछ प्रकाशित रचनाओं का परिचय भी।

१. प्रद्युम्नचरित	महासेनाचार्य	(११ वीं शती)	
२. ,,	भट्टारक सकलकीर्ति	(१५ ,, ,,)	
३. ,,	भट्टा० सोमकीर्ति या सोमसेन	(सं० १५३०)	
४. शाम्बप्रद्युम्नचरित	रविसागरगणि	(,, १६४५)	तपागच्छ
५. प्रद्युम्नचरित	शुभचन्द्र	(१७ वीं शती)	
६. ,,	रत्नचन्द्र	(सं० १६७१)	तपागच्छ
७. ,,	भट्टा० मल्लिभूषण	(१७ वीं शती)	
८. ,,	भट्टा० वादिचन्द्र	(,, ,,)	
९. ,,	भट्टा० भोगकीर्ति	समय अज्ञात	
१०. ,,	जिनेश्वरसूरि	,,	
११. ,,	यशोधर	,,	

प्रद्युम्न की संक्षिप्त कथा—श्रीकृष्ण की रानी रुक्मिणी से प्रद्युम्न हुए थे। जन्म की छठी रात्रि को उन्हें धूमकेतु राक्षस अपहरण कर ले गया और एक शिला के नीचे दबाकर भाग गया। उसी समय कालसंवर विद्याधर ने इन्हें उठा लिया और अपनी स्त्री को पुत्र-रूप में पालने के लिए दे दिया। प्रद्युम्न ने युवा होने पर कालसंवर के शत्रु सिंहरथ को पराजित किया। प्रद्युम्न का बल एवं प्रतिभाचातुरी देखकर कालसंवर के अन्य पुत्र जलने लगे। जिनदर्शन के बहाने वे उसे वन में ले गये और एक के बाद अनेक विपत्तियों में फँसाते गये परन्तु प्रद्युम्न निर्भयता से उन पर विजय पाकर अनेक विद्याओं का धनी हो गया। उसने अपने बुद्धि-कौशल से पालक माता कंचनमाला से भी तीन विद्याएँ ले लीं। पर कंचनमाला अपना स्वार्थ सिद्ध होते न देख क्रुद्ध हो गई। कालसंवर को उसने उभाड़ा। वह प्रद्युम्न को मारने को तैयार हुआ कि इसी बीच नारद ने आकर बचाव किया। पीछे वास्तविक स्थिति का पता चला। प्रद्युम्न द्वारिका की ओर लौटे। रास्ते में दुर्योधन के विवाह के लिए जाती हुई कन्या का अपहरणकर विमान द्वारा द्वारिका आये। द्वारिका लौटने पर उन्होंने अपने वैमातृक भाई भानुकुमार एवं सत्यभामा को अपनी विद्याओं से खूब छकाया। तत्पश्चात् ब्रह्म-

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६४ और ४३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारी वेश बनाकर अपनी माता रुक्मिणी के पास गए। वहाँ अपने चाचा बलराम और सत्यभामा की दासियों को तंग किया। पीछे प्रद्युम्न ने मायामयी रुक्मिणी को श्रीकृष्ण की सभा के आगे से हाथ पकड़ खींचते हुए ले जाकर श्रीकृष्ण को ललकारा। कृष्ण और प्रद्युम्न में खूब युद्ध हुआ। इसी बीच ना.... ने आकर प्रद्युम्न का परिचय दिया। इससे सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रद्युम्न का अच्छा स्वागत हुआ तथा नगर में उत्सव मनाया गया। प्रद्युम्न ने बहुकाल तक राजसुख भोगकर और अन्त में दीक्षा धारणकर निर्वाण पद प्राप्त किया।

प्रद्युम्नचरित्र पर लिखी रचनाओं की उपर्युक्त तालिका के अनुसार यह कहा जा सकता है कि इस चरित्र को सर्वप्रथम स्वतंत्र चरित्र[१] एवं काव्य के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय परमारवंशीय नरेश सिन्धुराज[२] (९९५-९९८ ई०) के समकालीन आचार्य महासेन को है। इस काव्य का वर्णन शास्त्रीय काव्यों के प्रसंग में किया जायगा।

काल-क्रम से संस्कृत में द्वितीय रचना भट्टा० सकलकीर्ति (१५ वीं शता०) रचित प्रद्युम्नचरित का उल्लेख मिलता है।[३]

प्रद्युम्नचरित—भट्टारक सोमकीर्तिकृत प्रद्युम्नचरित काल-क्रम से तीसरी रचना है। इसके दो संस्करण हैं : पहले में १६ सर्ग जिनका ग्रन्थपरिमाण ६००० श्लोक है, दूसरा १४ सर्गवाला ४८५० श्लोक-प्रमाण। मूल ग्रन्थ की संस्कृत बहुत ही सीधी-सादी है। इसके पढ़ने से यह मालूम होता है कि ग्रन्थकर्ता की यह पहली रचना होगी। इसमें अर्थगांभीर्य, सौन्दर्य तथा शब्दों का संगठन उदात्त नहीं है। फिर भी कथा-प्रबंध सुन्दर तथा चित्ताकर्षक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति में काव्यनिर्माता का परिचय दिया गया है। तदनुसार भट्टारक सोमकीर्ति काष्ठासंघीय नन्दीतट शाखा के सन्त थे तथा १०वीं शताब्दी के प्रसिद्ध भट्टारक रामसेन की परम्परा में होनेवाले भट्टारक थे। उनके दादागुरु लक्ष्मीसेन एवं गुरु भीमसेन थे। सं० १५१८ (सन् १४६१) में रचित एक ऐतिहासिक पद्यावली में इन्होंने अपने को काष्ठासंघ का ८७वाँ भट्टारक लिखा है। इनके गृहस्थ जीवन का कोई

---

१. माणिक्यचन्द्र दिग० जैन ग्रंथमाला, सं० ८; पं० नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४११; जिनरत्नकोश, पृ० २६४.

२. डा० गु० च० चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नोर्दर्न इण्डिया, पृ० ९५.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २६४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचय उपलब्ध नहीं हुआ है परन्तु सं० १५१८ में ये भट्टारक पद पर थे। उक्त ग्रन्थ की प्रशस्ति में रचनाकाल सं० १५३१ पौष सुदी १३ बुधवार दिया हुआ है।[1] इस काव्य के अतिरिक्त कवि ने संस्कृत में यशोधरचरित और सप्तव्यसनकथा लिखी थी तथा अनेक कृतियाँ राजस्थानी में भी।

साम्बप्रद्युम्नचरित—इसमें प्रद्युम्न और उसके अनुज साम्ब के लोकरंजक चरित्र का वर्णन १६ सर्गों में प्रांजल संस्कृत पद्यों में दिया गया है।[2] यह काव्य ७२०० श्लोक-प्रमाण है। कथा के उपोद्घात में बतलाया है कि यह कथा अन्तःकृद्दशांग के चतुर्थ वर्ग के ८वें सूत्र में आती है और इसे सुधर्मा गणधर ने जम्बू को कहा था।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में ५३ पद्यों की एक प्रशस्ति और एक पुष्पिका दी है जिससे ज्ञात होता है कि इसके कर्ता नूतनचरित्रकरण-परायण पण्डित चक्र-चक्रवर्ती पं० श्री रविसागर गणि[3] हैं जिन्होंने इस ग्रन्थ को सं० १६४५ में समाप्त किया था और उनके शिष्य जिनसागर ने लिपिबद्ध किया था। तपागच्छ के हीरविजय सन्तानीय राजसागर इनके दीक्षागुरु थे और सहजसागर तथा विनयसागर इनके अध्यापक थे।[4] इसकी रचना मांडलि नगर में खेंगार राजा के राज्यकाल में हुई थी।[5]

प्रद्युम्नचरित—इसे महाकाव्य[6] भी कहा गया है जो १६ सर्गों में विभक्त है। ग्रन्थप्रमाण ३५६९ श्लोक-प्रमाण है। इसमें प्रद्युम्न को निमित्त बनाकर सौराष्ट्र

---

१. सर्ग १८, पद्य सं० १६९.

२. डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल, राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, जयपुर, १९६१, पृ० ४३; जिनरत्नकोश, पृ० २६४; हिन्दी अनुवाद, बुद्धूलाल पाटनी, जैन ग्रन्थ कार्यालय, मदनगंज, राजस्थान.

३. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१७; पं० मफतलाल झवेरचन्द्र, अहमदाबाद, वि० सं० २००८; जिनरत्नकोश, पृ० २६४ और ४३३.

४. पद्य सं० ४८-५३.

५. तस्मिन् मांडलिनाम्नि चारुनगरे खेंगारराजोत्तमे,
सम्पूर्णसमजायतोरुचरितं प्रद्युम्ननामानघं।
संख्यातश्च सहस्रसप्तकमिदं द्वाभ्यां शताभ्यां (७२००) शुभं,
पंचांभोनिधिषड्निशापतिमिते १६४५ वर्षे चिरं नंदतात् ॥

६. बी० बी० एण्ड कम्पनी, खारगेट, भावनगर, वि० सं० १९७४; जिनरत्नकोश, पृ० २६४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि देशों, द्वारकादि नगरों, विविध वन, नग, सरोवर आदि के प्राकृतिक वर्णन सरस रूप से दिये गये हैं। एक ओर रुक्मिणी, सत्यभामा आदि कृष्ण-पत्नियों के जीवन के उल्लेख से स्त्री-स्वभाव, तो दूसरी ओर प्रवास, यात्रादि के संचित्रण द्वारा प्राचीन पुरुषों की परदेश-प्रवास-कुशलता और युद्धादि वर्णनों में नीति-रीति-परायणता के दर्शन होते हैं। इसी में कहीं-कहीं वसन्त, कामकेलि आदि के द्वारा युवकों का मनोरंजन किया गया है तो कहीं-कहीं आते-जाते पक्षियों एवं अंग-स्फुरण और उसके फलाफल की सूचना शकुनशास्त्र के अनुसार दी गई है। इस तरह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पुरुषार्थों की सफलता दिखलाने में कवि ने अपनी कुशलता प्रकट की है।

रचयिता एवं रचनाकाल—कवि ने अपना लघु परिचय प्रति सर्ग में दिया है तथा अन्त में विस्तारपूर्वक वंशावली दी है, जिससे ज्ञात होता है कि ये तपागच्छ में हीरविजय सन्तानीय शान्तिचन्द्र वाचक के शिष्य रत्नचन्द्रगणि थे। वह ग्रन्थ उन्होंने सूरत में सं० १६७४ के आश्विन मास की विजयदशमी के दिन समाप्त किया था।[१]

रत्नचन्द्र गणि की छोटी-मोटी अनेक रचनाएँ थीं, यह इस काव्य में प्रतिसर्ग के समाप्तिवाक्य से ज्ञात होता है। तदनुसार भक्तामरस्तव, धर्मस्तव, ऋषभ-वीरस्तव, कृपारसकोष, अध्यात्मकल्पद्रुम, नैषधमहाकाव्यवृत्ति, रघुवंशकाव्य-वृत्ति आदि अनेक कृतियां हैं।

नागकुमारचरित—बाईसवें कामदेव नागकुमार का चरित श्रुतपंचमी व्रत का माहात्म्य प्रकट करने के लिए जैन कवियों ने कथाबद्ध किया है।[२] इस चरित पर महाकवि पुष्पदन्त की अपूर्व कृति 'नायकुमारचरिउ' अपभ्रंश में है पर संस्कृत में भी कई रचनाएँ निर्मित हुई हैं जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. रत्नयोगीन्द्र या रत्नाकर	पाँचसर्ग	समय-अज्ञात
२. शिखामणि		समय-अज्ञात
३. जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण	५०० श्लोक-प्रमाण	११-१२वीं शताब्दी
४. धर्मधर या धर्मधीर	५३ पत्र, प्रत्येक में १० पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में ३२ अक्षर	समय-अज्ञात

१. युगमुनिरसशशिवर्षे (१६७४) मासीषे विजयदशमिकादिवसे।
सूरतबन्दरे महोपाध्यायश्रीरत्नचन्द्रगणिभिः विरचितम्॥
त्रिसहस्रा पंचशती पुनरेकोनसप्ततिः श्लोकानाम् (३५६९)।

२. जिनरत्नकोश, पृ० २०९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. दामनन्दि — समय-अज्ञात
६. वीरसेन के शिष्य श्रीधरसेन ८ सर्ग — समय-अज्ञात, स्थान गोनर्द
७. वादिराज — समय-अज्ञात
८. अज्ञातकर्तृक

कथा का सार—कनकपुर के राजा जयंधर और रानी पृथ्वी से नागकुमार का जन्म हुआ था। बाल्यकाल में नागों के द्वारा रक्षा किये जाने के कारण उसका नागकुमार नाम पड़ा था। नागदेश से ही वह अनेक विद्याएँ सीखकर युवा हुआ था और वहाँ की सुन्दर किन्नरियों से उसने विवाह किया था। नागकुमार का सौतेला भाई श्रीधर उससे ईर्ष्याद्वेष रखता था। नागकुमार जब नगर के एक मदोन्मत्त हाथी को वश करने में सफल हो गया तो श्रीधर और भी कुपित हो गया।

नागकुमार अपने पिता के आग्रहवश कुछ समय के लिए विदेश भ्रमण के लिए चला गया। सर्वप्रथम वह मथुरा पहुँचा और वहाँ के राजा की कन्या को बन्दीगृह से निकालकर कश्मीर पहुँचा जहाँ पर वीणा-वादन में त्रिभुवनरति को पराजित करके उसके साथ विवाह किया। रम्यक वन में कालगुफावासी भीमासुर से उसका साक्षात्कार हुआ। कांचनगुफा में पहुँचकर उसने अनेक विद्याएँ एवं अपार सम्पत्ति प्राप्त की। इसके बाद गिरिशिखरवासी राजा वनराज से उसकी भेंट हुई और उसकी पुत्री लक्ष्मी से उसका विवाह हुआ। नागकुमार वहाँ से गिरनार पर्वत की ओर गया। वहाँ उसने सिन्ध के राजा चण्डप्रद्योत से गिरिनगर के राजा—अपने मामा—की रक्षा की और उसके बदले उसकी पुत्री से विवाह किया। इसके पश्चात् उसने अबंध नगर के अत्याचारी राजा सुकंठ का वध किया और उसकी पुत्री रुक्मिणी से विवाह किया। अन्त में उसने पिहितास्रव मुनि से अपनी प्रिया लक्ष्मीमती के पूर्व भव की कथा एवं श्रुतपंचमी के उपवास का फल सुना। इधर उसके सौतेले भाई श्रीधर ने दीक्षा ले ली तब उसके पिता ने उसे बुलाकर राज्याभिषेक कर दीक्षा धारण कर ली। नागकुमार ने राज्यसुख भोगकर अन्त में साधु जीवन ग्रहण किया और मोक्ष पद पाया।

नागकुमारकाव्य—यह पाँच सर्गों का लघुकाव्य[1] है जिसमें ५०७ पद्य हैं। इसमें श्रुतपंचमी या श्रीपंचमी के माहात्म्य को सूचन करने के लिए २०वें कामदेव का चरित्र वर्णित है। इसे श्रुतपंचमीकथा भी कहते हैं। इसके

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०९; पं० नाथूराम प्रेमी—जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० सं०), पृ० ३१५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रारंभ में कहा गया है कि जयदेवादि कवियों ने जो गद्य-पद्यमय कथा लिखी है वह मन्दबुद्धियों के लिए विषम है। मैं मल्लिषेण विद्वज्जनों का मन हरण करनेवाली उसी कथा को प्रसिद्ध संस्कृत वाक्यों में पद्यबद्ध रचता हूँ।[1] यह काव्य बहुत सरल और सुन्दर है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता मल्लिषेण हैं। ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ग्रन्थकार और काव्य के विषय में पर्याप्त परिचय मिलता है। तदनुसार ये उन अजितसेन की शिष्य-परम्परा में हुए हैं जो गंगनरेश रायमल्ल और उनके मंत्री तथा सेनापति चामुण्डराय के गुरु थे और जिन्हें नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने 'भुवनगुरु' कहा है। अजितसेन के शिष्य कनकसेन, कनकसेन के जिनसेन और जिनसेन के शिष्य मल्लिषेण। मल्लिषेण ने जिनसेन के अनुज या सतीर्थ नरेन्द्रसेन को भी गुरुरूप से स्मरण किया है। ये न्यायविनिश्चय-विवरणकार वादिराज के समकालीन थे। इनका समय ग्यारहवीं सदी का अन्त और बारहवीं का प्रारंभ हो सकता है। इनकी कई रचनाएँ मिलती हैं—महापुराण, भैरवपद्मावतीकल्प, सरस्वतीमंत्रकल्प, ज्वालिनीकल्प, कामचाण्डालीकल्प। इनमें केवल महापुराण का रचनाकाल ज्येष्ठ सुदी ५, श० सं० ९६९ (वि० सं० ११०४) दिया गया है। अन्य ग्रन्थों का समय नहीं दिया गया है।

जीवन्धरचरित—जैन मान्य कामदेवों में जीवन्धर २३वें कामदेव थे। इनके चरित को लेकर संस्कृत और तमिल में कवियों ने गद्यकाव्य, चम्पूकाव्य तथा सामान्यकाव्यों की रचना की है। गुणभद्रकृत उत्तरपुराण के ७५वें अध्याय में जीवन्धर की कथा सर्वप्रथम देखने में आती है। अबतक उपलब्ध रचनाओं की सूची इस प्रकार है[2]—

१. क्षत्रचूडामणि या जीवन्धरचरित (लघुकाव्य) वादीभसिंह ओडयदेव
२. गद्यचिन्तामणि (गद्यकाव्य) ,, ,,

---

१. कविभिर्जयदेवाद्यैः गद्यैः पद्यैर्विनिर्मितम्
यत्तदेवास्ति चेदत्र विषमं मन्दमेधसाम्।
प्रसिद्धैः संस्कृतैर्वाक्यैर्विद्वज्जनमनोहरम्
यन्मया पद्यबन्धेन मल्लिषेणेन रच्यते॥
× × ×
तेनैषा कविचक्रिणा विरचिता श्रीपञ्चमी सत्कथा।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १४१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. जीवन्धरचम्पू	(चम्पूकाव्य)	महाकवि हरिचन्द्र
४. जीवन्धरचरित		भास्कर कवि
५. ,,		सुचन्द्राचार्य
६. ,,		ब्रह्मय्य
७. ,,		शुभचन्द्र (सं० १६०३)

जीवन्धर की कथा का सार—राजपुर का राजा सत्यंधर विषयासक्त होकर राज्य-संचालन से विमुख हो राज्यभार अपने मन्त्री काष्ठाङ्गार को दे देता है। अपनी रानी के प्रसवकाल में राजा विश्वासघाती मन्त्री द्वारा षड्यन्त्र-पूर्वक मारा जाता है। पट्टरानी विजया तथा अन्य दो रानियों ने तथा राजा के चार अन्य विश्वासी मित्रों की पत्नियों ने गुप्तरूप से जन्मे पुत्र को एक वणिक् के घर पाला। रानी विजया के पुत्र का नाम जीवन्धर पड़ा। वह बचपन से ही होनहार और चमत्कारी था। उसने आगे चलकर अपनी असाधारण बुद्धि और शौर्य का परिचय दिया। उसने एक साधु को अपने हाथ से भोजन जिमाकर उसका भस्मक रोग दूर किया। यौवन प्राप्त करते ही उसने एक के बाद एक ८ सुन्दरी कन्याओं को विवाहा। प्रत्येक के विवाह-प्रसंग में उसने अपनी विभिन्न कलाओं का प्रदर्शनकर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया था। वह जादू की अँगूठी के सहारे वेश भी बदल सकता था। अन्तिम विवाह के प्रसंग में उसने अपना वास्तविक परिचय अन्य राजाओं को दिया और उनकी मदद से विश्वासघाती मन्त्री का वधकर राज्य प्राप्त कर सका। एक समय बगीचे में उसने बन्दरों के झुंड को क्रोध में लड़ते देखा। इससे उसे संसार से घृणा हो गई और वह भग० महावीर के समोसरण में दीक्षित हो गया और तपस्याकर मोक्षपद पाया।[१]

क्षत्रचूडामणि—जीवन्धर को क्षत्र या क्षत्रियों में चूडामणि[२]-तुल्य मानकर इस काव्य का नाम क्षत्रचूडामणि[३] रखा गया है। इसका दूसरा नाम जीवन्धर-चरित भी है।

---

१. विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५००–५०३.

२. राजतां राजराजोऽयं राजराजो महोदयैः,
तेजसा वयसा शूरः क्षत्रचूडामणिर्गुणैः।

३. सम्पादक—टी० ए० कुप्पुस्वामी, तंजोर, १९०३; हिन्दी अनुवाद, दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरत; जिनरत्नकोश, पृ० ९७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी रचना प्रारम्भ से अन्त तक अनुष्टुप् छन्दों में हुई है। इसमें कुल मिलाकर ७४६ श्लोक हैं जो ११ लम्बों (लम्भ) में विभक्त हैं। यह अपनी पूर्ववर्ती रचना गद्यचिन्तामणि से इस अर्थ में भिन्न है कि वह तो संस्कृत गद्य में ओजपूर्ण भाषा में शृंगारादि रसों से परिप्लुत लिखी गई है और प्रौढ़मति लोगों के द्वारा ही पठनीय है जबकि यह बहुत ही सरल और प्रसादगुणयुक्त शैली में लिखी गई है, इसे सुकुमारमतिवाले बहुत अच्छी तरह पढ़ सकते हैं। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कथा के साथ-साथ नीति और उपदेश भी चलता है। कवि प्रायः श्लोक के पूर्वार्ध में अपनी कथा को कहता चलता है और साथ-साथ उत्तरार्ध में अर्थान्तरन्यास के द्वारा कोई न कोई नीति या शिक्षा की सुन्दर सूक्ति देता जाता है। यथा—

अबोधयच्च तां पत्नीं लब्धबोधो महीपतिः।
तत्त्वज्ञानं हि जागर्ति विदुषामार्तिसम्भवे ॥

१.५७

\+ \+ \+

पराजेष्ट पुनस्तेन गवार्थं प्रहितं बलं।
स्वदेशे हि शशप्रायो बलिष्ठः कुञ्जरादपि ॥

२.६४

\+ \+ \+

मत्सरी कौरवेणायं भर्त्सनादयुयुत्सत।
मत्सराणां हि नोदेति वस्तुयाथात्म्यचिन्तनम् ॥

१०.३५

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता ओडयदेव वादीभसिंह हैं। गद्यकाव्य गद्यचिन्तामणि के रचयिता और इस काव्य के रचयिता के एक ही होने का अनुमान है। कुछ विद्वान् रचना-शैली और शब्द-योजना की भिन्नता के कारण दोनों के एककर्तृत्व होने में सन्देह करते हैं।[1] कवि के क्षेत्र और समय के सम्बन्ध में भी विवाद है। वी० शेषगिरिराव के अभिमत से कवि कलिंग के गंजाम जिले का निवासी था। गंजाम जिला तमिलनाडु के उत्तर में है और उड़ीसा प्रान्त के अन्तर्गत है। वहाँ ओडेय और गोडेय दो जातियाँ रहती हैं।

---

१. डा० हीरालाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १७१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्भवतः कवि ओडेय जाति के सरदार कुमार थे क्योंकि इनका नाम ओडयदेव भी मिलता है। उड़ीसा और तमिलदेश की लोककथाओं में आज भी जीवन्धर की कथा पाई जाती है।

कवि के जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं। इन्होंने अपने गुरु का नाम पुष्पसेन बतलाया है। विद्वानों का अनुमान है कि वादीभसिंह इनकी उपाधि थी क्योंकि इन्होंने अनेक वादिरूपी सिंहों को जीता था।

कवि के समय के सम्बन्ध में विद्वानों में एकमत नहीं है। पर अधिकांश[1] मतों के अनुसार ये या तो ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ के कवि थे या उक्त शताब्दी के उत्तरार्ध के। कवि की अन्य रचनाओं में 'गद्यचिन्तामणि' और 'स्याद्वादसिद्धि' प्रकाशित हैं।

एक अन्य जीवन्धरचरित के रचयिता भट्टारक शुभचन्द्र हैं। इसमें १३ सर्ग हैं। कवि ने इसे धर्मकथा कहा है और इसकी रचना सं० १६०३ में नवीननगर के चन्द्रप्रभ जिनालय में की थी।[2] रचयिता का विशेष परिचय और उनकी रचनाओं का निर्देश हमने उनकी अन्य रचना 'पाण्डवपुराण' के प्रारम्भ में किया है।

जीवन्धर-सम्बन्धी गद्यात्मक कृति गद्यचिन्तामणि का गद्यकाव्यों में और जीवन्धरचम्पू का चम्पूकाव्यों में परिचय दिया जायगा। शेष रचनाओं का उल्लेखमात्र मिलता है।

जम्बूस्वामिचरित—जम्बू भग० महावीर के अन्तिम गणधर तथा जैनमान्य २४ अतिशय रूपवान (कामदेव) पुरुषों में अन्तिम थे। यह चरित भी जैन

---

१. समयनिर्णय के लिए देखें, न्यायकुमुदचन्द्र (मा० दि० ग्रन्थ०), प्रस्तावना, पृ० १११; स्याद्वादसिद्धि (मा० दि० ग्रन्थ०), प्रस्तावना, पृ० ११; जैन साहित्य और इतिहास, बम्बई, १९५६, पृ० ३२४–३२८; गद्यचिन्तामणि, श्रीरंगम्, १९१६, प्रस्तावना, पृ० ७-८; जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा, भाग ६, किरण २, पृ० ७८–८७ तथा भाग ७, किरण १, पृ० १–८; हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (एम० कृष्णमाचारी), मद्रास, १९३७, पृ० ४७७; गद्यचिन्तामणि (भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी), प्रस्तावना.

२. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १००; प्रशस्ति, पद्य ७ में रचनाकाल दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवियों को इतना रोचक लगा कि उस पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा देशीभाषाओं में १०० से अधिक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। यहाँ काल-क्रम से संस्कृत, प्राकृत में उपलब्ध सामग्री तथा स्वतन्त्र काव्यों की सूची प्रस्तुत करते हैं[१]—

१. संघदासगणि (५-६ वीं शता०)	वसुदेवहिंडी का कथोत्पत्ति प्रकरण	(प्राकृत)
२. गुणभद्राचार्य (सन् ८५० के लगभग)	उत्तरपुराण का ७६वाँ पर्व—२१३ श्लोक	(संस्कृत)
३. जयसिंहसूरि (सन् ८५८)	धर्मोपदेशमाला - विवरण में संक्षेपरूप से कुछ पंक्तियाँ और जम्बूचरित से सम्बद्ध चार कथाएँ प्रकीर्णकरूप में	(प्राकृत)
४. भद्रेश्वरसूरि (१०-११वीं शता०)	कहावली के अन्तर्गत	(प्राकृत)
५. गुणपालमुनि (वि. सं. १०७६ के पूर्व)	जम्बूचरिय १६ उद्देशक	(प्राकृत)
६. रत्नप्रभसूरि (वि. सं. १२३८)	उपदेशमाला पर विशेष—वृत्ति के अन्तर्गत	(संस्कृत)
७. जिनसागरसूरि-प्रतिष्ठासोम	कर्पूरप्रकरण-टीका के अन्तर्गत	(संस्कृत)
८. हेमचन्द्राचार्य (वि.सं.१२१७-१२२९)	परिशिष्टपर्व—४ पर्व (गुणपालकृत जम्बूचरियं के अनुसार)	(संस्कृत)
९. उदयप्रभसूरि (वि. सं. १२७९-९०)	धर्माभ्युदय महाकाव्य ८ सर्ग	(संस्कृत)
१०. जयशेखरसूरि (वि. सं. १४३६)	जम्बूस्वामिचरित्रकाव्य ६ प्रक०	(संस्कृत)
११. रत्नसिंह के शिष्य—नाम अज्ञात (वि. सं. १५१६)	जम्बूस्वामिचरित	(संस्कृत)
१२. ब्रह्मजिनदास (वि. सं. १५२०)	जम्बूस्वामिचरित्र, ११ संधियाँ	(संस्कृत)

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२९—१३२; डा० विमलप्रकाश जैन द्वारा सम्पादित जम्बूसामिचरिउ की प्रस्तावना, भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. सकलचन्द्र—भुवनकीर्ति के शिष्य
(वि. सं० १५२०) जम्बूचरिय (प्राकृत)
१४. उपा० पद्मसुन्दर नागौरी
(वि. सं. १६२६–३९) जम्बूचरिय (प्राकृत)
१५. पं० राजमल्ल (वि. सं. १६३२) जम्बूस्वामिचरित्र (संस्कृत)
१६. विद्याभूषण भट्टारक (वि. सं. १६५३) जम्बूस्वामिचरित्र (संस्कृत)
१७. जिनविजय (वि. सं. १७८५–१८०९) जम्बूस्वामिचरित्र (प्राकृत)
१८. अज्ञातकर्तृक जम्बूस्वामिचरित्र (संस्कृत गद्य)
१९. पद्मसुन्दर जम्बूसामिचरिय
७५० गाथाएँ (प्राकृत)
२०. सकलहर्ष जम्बूस्वामिचरित्र
(११ पत्र) (संस्कृत)
२१. मानसिंह जम्बूस्वामिचरित्र
ग्रन्थाग्र १३०० (संस्कृत)
२२. अज्ञात जम्बूस्वामिचरित्र १४ पत्र (संस्कृत)
२३. अज्ञात जम्बूस्वामिचरित्र
ग्रन्थाग्र ८९७ (संस्कृत गद्य)
२४. अज्ञात जम्बूस्वामिचरित्र
ग्रन्थाग्र १६४४ (संस्कृत)
२५. अज्ञात जम्बूसामिचरिय (प्राकृत)

जम्बूस्वामी का संक्षिप्त कथानक—भग० महावीर के काल में जम्बू राजगृह में एक श्रेष्ठिपुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। वे अतिशय रूपवान् और अनेक कलाओं के पण्डित थे। एकबार सुधर्मा स्वामी से धर्मोपदेश सुनने के बाद जम्बू ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया और वैराग्यवृत्ति की ओर अग्रसर होने लगे। इसे रोकने के लिए माता-पिता ने उनका आठ सुन्दर कन्याओं से विवाह कर दिया पर वे सब भी उनके मन को सांसारिक सुखों में प्रवृत्त न करा सकीं। दीक्षा की पूर्व रात्रि में उनके घर में एक बड़ा डाकू चोरी के लिए घुसा पर रात्रिभर वे अपनी पत्नियों को संसार के दुःखों का परिज्ञान कराने के लिए दृष्टान्त स्वरूप अनेक कथाएँ कहते रहे और उनके तर्कों और युक्तियों का खण्डन करते रहे। वह डाकू भी उनके उपदेशों को सुनकर संसार से विरक्त हो गया। अतः जम्बू, उनकी पत्नियाँ तथा वह चोर अपने साथियों के साथ दीक्षित हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूस्वामी तपस्या कर सुधर्मास्वामी के बाद श्रमणसंघ के नेता—गणधर बने। वे अन्तिम केवली थे और वीर नि० सं० ६४ में निर्वाणपद पाया।

जम्बूचरिय—महाराष्ट्री प्राकृत में रचित यह काव्य १६ उद्देशों में विभक्त है। प्रथम दो उद्देशों में 'समराइच्चकहा' के समान कथाओं के अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा एवं संकीर्णकथा—ये चार भेद बतलाकर धर्मकथा को ही रचना का प्रतिपाद्य विषय बतलाया है और तीसरे उद्देश से कथा प्रारम्भ की गई है। चौथे और पाँचवें में जम्बूस्वामी के पूर्वभवों का वर्णन दिया गया है। छठे में जम्बू का जन्म, शिक्षा, यौवन आदि का वर्णन है। सातवें में उनके वैराग्य की ओर प्रवृत्ति, माता-पिता द्वारा संसार-प्रवृत्ति के लिए विवाह। अगले उद्देशों में जम्बूस्वामी ने आठ पत्नियों तथा घर में घुसकर बैठे प्रभव नामक चोर तथा उसके साथियों को नाना आख्यानों, दृष्टान्तों, कथाओं आदि से वैराग्यवर्धक उपदेश सुनाये और अन्त में उन्होंने श्रमण-दीक्षा ग्रहण की और केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्धि पाई।[1]

इसमें काव्य-लेखक ने कथाक्रम को ऐसा व्यवस्थित किया है कि पाठक की जिज्ञासा और कुतूहल प्रारंभ से अन्त तक बने ही रहते हैं। इसमें वर्णनों की विविधता देखी जाती है। यह काव्य प्राकृत गद्य और पद्य के सुन्दर नमूने प्रस्तुत करता है। यहाँ धार्मिक कथा का आदर्श रूप दिया गया है। नायक को अपनी वीरता प्रकट करने का कहीं अवसर भी नहीं आया। यह कृति परवर्ती कवियों का आदर्श रही है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता नाइलगच्छीय गुणपाल मुनि हैं जो वीरभद्रसूरि के प्रशिष्य एवं प्रद्युम्नसूरि के शिष्य थे। संभवतः कुवलयमाला के रचयिता उद्योतनसूरि के सिद्धान्तगुरु वीरभद्राचार्य और गुणपाल मुनि के दादागुरु वीरभद्रसूरि दोनों एक ही हों। ग्रन्थ की शैली पर हरिभद्र की समराइच्चकहा और उद्योतनसूरि की कुवलयमाला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उक्त कथाग्रन्थों के समान ही यह भी गद्य-पद्य मिश्रित है।

ग्रन्थकार और उक्त रचना के काल के संबंध में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता है पर रचनाशैली आदि से अनुमान होता है कि इसे १०-११वीं शताब्दी

---

१. सिंघी जैनशास्त्र विद्यापीठ, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९; जिनरत्नकोश, पृ० १३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के आसपास की रचना होना चाहिए। इसकी एक ताड़पत्रीय प्रति जैसलमेर जैन भण्डार से १४ वीं शताब्दी के पूर्व की मिलती है।

जम्बूस्वामिचरित—सम्पूर्ण काव्य ११ सर्गों में विभक्त है।[१] यह काव्य सरल संस्कृत में लिखा गया है। काव्य में सुभाषितों का प्रयोग अधिकता से किया गया है। इस काव्य की सं० १५३६ की हस्तलिखित प्रति मिलती है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति के अनुज एवं शिष्य ब्रह्मचारी जिनदास हैं जिन्होंने सं० १५०८-१५२० में इसकी रचना की थी। इनका विशेष परिचय इनकी अन्य कृति हरिवंशपुराण के साथ दिया गया है (पृ० ५२)।

जम्बूस्वामिचरित—संस्कृत में रचे इस काव्य[२] में ६ सर्ग हैं जिनमें ७२६ श्लोक हैं। इसमें पूर्वोक्त गुणपाल आदि द्वारा विरचित कथाओं में कुछ परिवर्तन किया गया है। इसके रचयिता जयशेखरसूरि हैं जो अंचलगच्छ के थे। इसका रचनाकाल वि० सं० १४३६ है।

जंबूचरिय—इसमें २१ उद्देश हैं। इसे 'आलापकस्वरूपजम्बुदृष्टान्त'[३] या 'जम्बु-अध्ययन' भी कहते हैं। यह प्राकृत रचना है। प्रारंभ **'तेणं कालेणं'** से होता है। इसे 'प्रकीर्णक' भी माना जाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता नागौरीगच्छीय पद्मसुन्दर[४] उपाध्याय हैं जो तपागच्छ के बड़े विद्वान् थे। ये अकबर के हिन्दू सभासदों में से एक थे और उनके पाँच विभागों में से प्रथम विभाग में थे। इनका और इनकी रचनाओं का परिचय 'रायमल्लाभ्युदय' के प्रसंग में दिया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३२; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २६; इस काव्य पर कवि वीरकृत अपभ्रंश कृति 'जम्बुसामिचरिउ' का पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है।

२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९६८-७०; गुजराती अनुवाद वहीं से, १९७०; जिनरत्नकोश, पृ० १३२.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १२९.

४. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० सं०), पृ० ३९५-९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूस्वामिचरित—इस काव्य[1] में १३ सर्ग हैं और २४०० पद्य। कथावस्तु दो भागों में विभक्त है। पहली पूर्व भवों और दूसरी इस भव से सम्बद्ध है। प्रारंभ के चार सर्गों के सभी आख्यान पूर्वभवों से सम्बद्ध हैं और पंचम से जम्बू के इस भव की कथा प्रारंभ होती है। वे श्रेष्ठिपुत्र होते हुए भी पराक्रमशाली और वीरपुरुष दिखलाये गये हैं। उन्होंने एक मदोन्मत्त हाथी को वश में किया था इससे प्रभावित होकर ४ श्रीमन्त सेठों ने अपनी कन्याओं का विवाह इनसे कर दिया था। शेष कथा पूर्वोक्त प्रकार से है।[2]

इस काव्य की कथावस्तु को अनुष्टुप् छन्दों में ही रचकर कवि ने काव्य-चमत्कार उत्पन्न करने में कोई कमी नहीं की। कवि युद्धक्षेत्र का वर्णन करते हुए वीर और भयानक रसों को मूर्तिरूप में प्रस्तुत करता है (७वां सर्ग)। ग्यारहवें सर्ग में सूक्तियों का सुन्दर समावेश किया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता कवि पं० रायमल्ल हैं। इनके अन्य ग्रन्थ पंचाध्यायी, लाटीसंहिता और अध्यात्मकमलमार्तण्ड मिलते हैं। इस ग्रन्थ की रचना आगरा नगर में सं० १६३२ चैत्र कृष्ण अष्टमी पुनर्वसु नक्षत्र में की गई थी। काव्य के प्रारंभ में कवि ने आगरा (अर्गलपुर) का सुन्दर वर्णन दिया है। वहाँ उस समय अकबर बादशाह राज्य करता था जिसने कि जजियाकर और मद्यपान का निषेध कर दिया था। यह काव्य गर्गगोत्रीय साहु टोडर अग्रवाल के लिए रचा गया था। कवि ने साहु टोडर के परिवार का पूरा परिचय दिया है। साहु टोडर ने मथुरा की यात्रा की थी और वहाँ जम्बूस्वामी के निर्वाणस्थान पर अपार धन व्ययकर अनेक स्तूपों का जीर्णोद्धार किया था। इसी की प्रार्थना से कवि ने आगरा में रहते हुए इस काव्य की रचना की थी। पीछे कवि आगरा छोड़ वैराट नगर में रहने लगे और शेष साहित्य-निर्माण वहीं किया।

जंबूसामिचरिय—इसकी[3] रचना प्राकृत गद्य में हुई है पर यत्र-तत्र सुभाषितों के रूप में प्राकृत पद्य भी उद्धृत किये गये हैं। इसमें जम्बूस्वामी

---

१. मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला, सं० ३५, बम्बई १९३६; जिनरत्नकोश, पृ० १३२.

२. कवि वीरकृत अपभ्रंश जम्बुसामिचरिउ का इस काव्य पर प्रभाव दीखता है।

३. जैन साहित्य वर्धक सभा, भावनगर, वि० सं० २००४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का चरित्र संक्षिप्त रूप से वर्णित है। जम्बूस्वामी द्वारा अपनी पत्नियों के समक्ष प्रस्तुत दृष्टान्त-कहानियाँ प्रायः सभी दी गई हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—यह ग्रन्थ प्राकृत चरित्रों में अपनी विशेषता रखता है क्योंकि इसकी रचना ठीक उसी प्रकार की अर्ध-मागधी प्राकृत में उसी गद्य-शैली से हुई है जैसी आगमों की। वर्णनों को संक्षेप में बतलाने के लिए यहाँ भी 'जाव', 'जहा' आदि का उपयोग किया गया है। इस से यह रचना आगमों के संकलनकाल (५ वीं शता०) के आस-पास की प्रतीत होती है परन्तु ग्रन्थ के अन्त में एक प्राकृत पद्य से सूचित किया गया है कि इस ग्रन्थ को विजयदया सूरीश्वर के आदेश से जिनविजय ने लिखा, और इस ग्रन्थ की प्रति सं० १८१४ के फाल्गुन सुदि ९ शनिवार के दिन नवानगर में लिखी गई थी।[1] किन्तु वास्तविक रचनाकाल वि० सं० १७७५ से १८०९ के बीच आता है क्योंकि तपागच्छ-पट्टावली में ६४ वें पट्टधर विजयदयासूरि का यही समय दिया गया है। जिनविजय नाम के अनेक मुनि हुए हैं। उनमें एक क्षमाविजय के शिष्य थे और दूसरे माणविजय के शिष्य जो कि विजयदयासूरि के समकालीन बैठते हैं। अधिक संभावना है कि वे माणविजय के शिष्य हों क्योंकि उनकी श्रीपालचरित्ररास, धन्नाशालिभद्ररास आदि रचनाएँ मिलती हैं।[2] इस ग्रन्थ के लेखक ने १८ वीं शता० में भी आगमशैली में यह ग्रन्थ लिखकर एक असाधारण कार्य किया है।[3]

अबतक हमने प्राकृत-संस्कृत में निबद्ध उन पौराणिक काव्यों का परिचय दिया जो तिरसठ शलाका महापुरुषों तथा चौबीस कामदेवों के चरितों से सम्बद्ध थे। उक्त पुराण पुरुषों के अतिरिक्त जैनधर्म और सिद्धान्तों को महत्ता प्रदान करनेवाले एवं उक्त महापुरुषों में से अनेकों के समकालीन तथा महावीर के पश्चात् होनेवाले अनेकों अद्भुत सन्तों, महर्षियों, साध्वीसतियों, राजर्षियों, व्यापारवीर श्रावकों की जीवनियों पर भी पुराण-शैली में काव्य रचे गये हैं। अद्भुत सन्तों में प्रत्येकबुद्धों के चरित उल्लेखनीय हैं। भग० ऋषभ के समकालीन भरत चक्रवर्ती

---

१. विजयदयासूरीसर आएसं लहिअ बोहणट्ठाए जिणविजयेण य लिहिअं जम्बूचरित्तं परमरम्मं ॥ इति श्री जम्बूस्वामिचरित्रं सम्पूर्णं। सं० १८१४ वर्षे फाल्गुण सुदि ९ शनौ श्रीनवानगरे श्रीआदिजिनप्रसादात् शुभं भवतु लेखकपाठकयोः।

२. प्रवेशद्वार, पृष्ठ ४.

३. भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, पृ० १४८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सेनापति जयकुमार अपर नाम मेघेश्वर और उनकी सती रानी सुलोचना के चरित्र भी उपलब्ध हैं। इसी तरह ऋषभदेव के प्रथम गणधर पर पुण्डरीकचरित, महावीर के प्रथम गणधर पर गौतमचरित्र एवं गौतमीयकाव्य आदि तथा महावीर के समकालीन नरेश श्रेणिक और उनके पुत्र अभयकुमार आदि पर भी चरित्र-काव्य लिखे गये हैं। महावीर के पश्चात् होनेवाले युगप्रभावक आचार्य भद्रबाहु, स्थूलभद्र, पादलिप्त, कालिक, हरिभद्र, हेमचन्द्रादि पर भी चरित्र-ग्रन्थ लिखे गये हैं। इसी तरह साध्वी महिलाओं में अंजना, द्रौपदी, दमयन्ती, राजीमती, चन्दनबाला, मृगावती, जयन्ती आदि पर अनेकों चरित-काव्यों का निर्माण किया गया है।

यहाँ हम सुविधा की दृष्टि से पहले प्रत्येकबुद्धों पर लिखी कुछ रचनाओं का परिचय प्रस्तुत कर पीछे यथासम्भव अन्य रचनाओं का परिचय देंगे।

प्रत्येकबुद्धचरित :

जैनाचार्यों ने, विशेषकर श्वेताम्बराचार्यों ने बौद्धों की भाँति प्रत्येकबुद्धों की कल्पना की है। प्रत्येकबुद्ध उन्हें कहते हैं जो गृहस्थी में रहते हुए किसी एक निमित्त से बोधि प्राप्त कर लें और अपने आप दीक्षित हो बिना उपदेश किये ही शरीरान्त कर मोक्ष चले जायँ। प्रत्येकबुद्ध प्रायः एकाकी विहारी होता है। वह गच्छवास में नहीं रहता। उत्तराध्ययन[१] सूत्र में चार प्रत्येकबुद्धों का उल्लेख है : करकण्डु, नग्गई, नमि और दुर्मुख। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इनकी कथाओं पर बहुत-सा साहित्य-निर्माण हुआ है। बौद्धों के पालिसाहित्य[२] में भी इन चारों को प्रत्येकबुद्ध मानकर कथाएँ दी गई हैं। बौद्ध इन्हें महात्मा बुद्ध से पूर्व हुए स्वीकार करते हैं और जैन भग० पार्श्व के तीर्थकाल में। पर उनके जीवन-चरित्रों पर विचार करने पर प्रतीत होता है कि ये चारों प्रत्येकबुद्ध भगवान् महावीर की दीक्षा से पूर्व प्रव्रजित हुए हैं और उनके शासनकाल में भी जीवित रहे हैं। प्रत्येकबुद्धों की संख्या में विवाद है। ऋषिभाषितसूत्र[३] में ४५ प्रत्येकबुद्धों के उपदेश संगृहीत हैं उनमें से २० नेमिनाथ के, १५ पार्श्वनाथ के और १० महावीर के तीर्थकाल में हुए बतलाये जाते हैं। नन्दिसूत्र में औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी, पारिणामिकी बुद्धि से युक्त जो मुनि होते हैं वे सब प्रत्येकबुद्ध कहलाते हैं। यह मानकर प्रत्येकबुद्धों की संख्या की अवधि निश्चित नहीं की है।

---

१. १८. ४५.

२. कुम्भकार जातक (सं० ४०८).

३. ऋषिभाषितसूत्र, अनुवादक—मनोहर मुनि, बम्बई, १९६३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो हो पर श्वे० जैनाचार्यों ने उत्तराध्ययन में समागत उक्त चार प्रत्येकबुद्धों पर बहुत-सा साहित्य रचा है। इनके अतिरिक्त अम्बड, कुम्मापुत्त तथा शालिभद्र आदि प्रत्येकबुद्धों पर भी कई रचनाएँ मिलती हैं। पश्चात्काल में इनमें से अनेकों कथानकों में परिवर्तन होने से इनका प्रत्येकबुद्ध रूप से उल्लेख नहीं हुआ। दिगम्बरमान्यता में प्रत्येकबुद्ध माने गये हैं पर उनका उल्लेख केवल पूजाओं में हुआ है। उत्तराध्ययन के उक्त चार प्रत्येकबुद्धों में से केवल करकण्डु पर संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में उक्त सम्प्रदाय के विद्वानों ने काव्य-ग्रन्थ लिखे हैं पर करकण्डु को उन्होंने कहीं भी प्रत्येकबुद्ध संज्ञा से नहीं कहा है।

उत्तराध्ययन-समागत प्रत्येकबुद्धों पर समष्टिरूप में कई रचनाएँ लिखी गई हैं। उनमें श्रीतिलक (प्राकृत), जिनरत्न एवं लक्ष्मीतिलक (संस्कृत), जिनवर्धनसूरि (संस्कृत), समयसुन्दरगणि (संस्कृत), भावविजयगणि (संस्कृत) तथा तीन अज्ञात-कर्तृक (२ अपभ्रंश और १ प्राकृत) काव्य उपलब्ध हैं। यहाँ कुछ का परिचय दिया जाता है।

१. **प्रत्येकबुद्धचरित**—यह प्राकृत भाषा में निबद्ध रचना है जिसका ग्रन्थाग्र ६०५० श्लोक है। बृहट्टिप्पनिका के अनुसार इसकी रचना सं० १२६१ में श्रीतिलकसूरि ने की थी। श्रीतिलकसूरि चन्द्रगच्छीय शिवप्रभसूरि के शिष्य थे। ग्रन्थ अबतक अप्रकाशित है।[1]

२. **प्रत्येकबुद्धचरित**—यह संस्कृत में रचित काव्य है। इसका पूरा नाम प्रत्येकबुद्धमहाराजर्षिचतुष्कचरित्र है।[2] इसके प्रत्येक पर्व में चार सर्ग हैं और अन्त में एक चूलिका सर्ग है। इस तरह इसके १७ सर्गों का रचना-परिमाण १०१३० श्लोक है। प्रस्तुत काव्य जिनलक्ष्मी शब्दांकित है जो इसके दो ग्रंथकर्ताओं को द्योतित करता है।

यद्यपि इसमें वर्णित चारों चरित्र एक-दूसरे से पूर्णतया पृथक् हैं अतएव इसमें धारावाहिकता का अभाव है फिर भी इसे एक अच्छे पौराणिक महाकाव्य का रूप दिया गया है। कवि ने इसमें प्रकृति-चित्रण और सौन्दर्य-चित्रण में पर्याप्त रुचि ली है। पुरुष-पात्रों में सिंहरथ और स्त्री-पात्रों में मदनरेखा के रूप-वर्णन कल्पनात्मक दृष्टि से अच्छे बन पड़े हैं। जैनधर्म के साधारण सिद्धान्तों एवं नियमों का इस काव्य में अच्छा वर्णन हुआ है।

१. जैन साहित्य संशोधक, भाग १, अंक २, पूना १९२५; जिनरत्नकोश, पृ० २६३.

२. जैसलमेर बृहद्भण्डार, प्रति सं० २७२, २७३; जिनरत्नकोश, पृ० २६३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी भाषा सरल और स्वाभाविक है। घटना और परिस्थिति के अनुकूल शब्द-योजना में कवि सफल है। यद्यपि इसमें शान्तरस प्रमुख है फिर भी अन्य रसों की व्यञ्जना भी ठीक तरह से की गई है। इस काव्य को व्यर्थ के शब्दालंकारों से लादने का प्रयत्न नहीं किया गया है पर अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के अच्छे प्रयोग[1] दिखाई पड़ते हैं। छन्द की दृष्टि से इसकी रचना अनुष्टुप् छन्दों में हुई है। सर्गान्त में दूसरे छन्दों का प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं बीच में भी अन्य वृत्तों का प्रयोग हुआ है।

कथावस्तु—उपर्युक्त रचनाओं में प्रत्येकबुद्ध करकण्डु, द्विमुख, नमि और नग्गति का जीवन-चरित्र अंकित है। ये चारों समकालीन थे। इनकी कथावस्तु का संक्षेप इस प्रकार है—

१. चम्पानगरी में राजा दधिवाहन और रानी पद्मावती थे। एक समय दुष्ट हाथी द्वारा रानी के अपहरण के कारण उसके पुत्र का जन्म एक नगर के समीप श्मशान भूमि में हुआ। रानी साध्वी बन जाती है पर बालक का पालन और शिक्षण एक मातंग के द्वारा हुआ। उसका नाम अवकर्णक रखा गया। उसकी देह पर रूक्षकण्डू थी। वह खेलकूद में राजा बनकर तथा अपने साथियों को प्रजा बनाकर उनसे कर के रूप में अपने शरीर को खुजवाता था इसलिए उसे लोग करकण्डु कहने लगे। कांचनपुर के राजा के मरने पर दैवयोग से करकण्डु वहाँ का राजा बनाया गया। एक बार उसने चम्पापुर के राजा दधिवाहन को पत्र लिखा जिसमें एक ब्राह्मण को ग्राम देने की बात थी पर दधिवाहन ने उसे अस्वीकार कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर करकण्डु ने उस पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय साध्वी पद्मावती (माता) ने प्रकट होकर युद्ध का निवारण और पिता-पुत्र की पहिचान कराई। इस पर राजा दधिवाहन बहुत खुश हुआ और वृद्धावस्था के कारण करकण्डु को राज्यभार सौंपकर स्वयं उसने दीक्षा ग्रहण कर ली। एक बार अपनी आज्ञा से पुष्ट किये गये बैल को कालान्तर में वृद्ध देखकर राजा करकण्डु संसार से विरक्त हो एवं मुनिवेश धारणकर भ्रमण करने लगा।

२. पांचाल देश के कांपिल्यनगर में राजा यव को सभाभवन निर्माण करते समय एक चमकदार मुकुट मिला जिसके धारण करने से वह द्विमुख (दो मुखवाला) मालूम पड़ने लगा और इससे उसका नाम द्विमुख पड़ गया। इसके

---

१. सर्ग २. १२८; ११. १२७-१२८, ३६५; ९. ३५ आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद मुकुट के प्रभाव से वह उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत को हराकर बन्दी बनाता है पर अपनी पुत्री के उस राजा पर प्रेमासक्त होने से उससे विवाह कर उसे राज्य लौटा देता है। एकबार काष्ठ के खंभे को लोगों ने इन्द्रध्वज बनाकर बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से पूजा और पीछे उत्सव समाप्त होने पर पृथ्वी पर गिरा दिया जिसे बालकजन विट्मूत्र से लिप्त घसीटकर ले जाने लगे। यह देख द्विमुख को वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा धारण कर ली।

३. सुदर्शनपुर का नृप मणिरथ अपने अनुज युगबाहु की पत्नी मदनरेखा पर आसक्त हो जाता है और उसे पाने के लिए अपने अनुज को मार डालता है। गर्भावस्था में ही मदनरेखा भाग निकलती है और रंभागृह में एक बालक को जन्म देती है। सरोवर में वस्त्र-प्रक्षालन को जाते समय उसका अपहरण हो जाता है। रंभागृह से उसके बालक को मिथिलानरेश पद्मरथ ने लाकर पाला-पोसा और उसका नाम नमि रखा और युवक होने पर उसे राज्य देकर प्रव्रज्या धारण कर ली।

एक दिन नमि की देह में भयंकर दाह होने लगी। रानियाँ उसके लिए चन्दन घिसने लगीं पर उनकी चूड़ियों की ध्वनि से ही उसे बड़ी पीड़ा होती थी। इससे रानियों ने एक चूड़ी को छोड़ शेष को उतार दिया, इससे ध्वनि होनी बन्द हो गई। तब नमि ने यह सोचा कि संग ही सबसे बड़ा दुःख देनेवाला है, ये चूड़ियाँ अन्य चूड़ियों के साथ आवाज करती थीं पर अकेले रहने पर शान्त हो गई हैं अतः शान्ति के लिए एकाकी जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है। इस तरह वह विरक्त हो गया और दीक्षा ले ली।

४. गांधार देश का राजा सिंहरथ एक समय वन में जाने पर एक सुन्दरी कन्या से विवाह करता है और उससे अपनी जीवन-कथा सुनाने का आग्रह करता है। वह अपने पूर्व की कथा सुनाकर कहती है—मैं पूर्व में कनकमंजरी नाम के चित्रकार की पुत्री थी और आपके पूर्वभव के जीव राजा जितशत्रु से विवाह हुआ था। मृत्यु के बाद स्वर्ग से आकर राजा दृढ़रथ की पुत्री कनकमाला हुई हूँ और आप सिंहरथ हुए हैं। एक देवता के आदेश पर यहाँ बैठे आज आपको पति के रूप में प्राप्त किया है। नृप सिंहरथ पत्नी की आज्ञा लेकर घर आता है और प्रायः हर दूसरे-तीसरे दिन प्रिया कनकमाला की याद करके नग पर जाता रहता है अतः प्रजा उसका नाम नग्गति रखती है। एक दिन वह ससैन्य उपवन में जाता है। वहां वह आम्रवृक्ष की एक मंजरी तोड़ता है। सभी सैनिक भी एक-एक मंजरी तोड़ते हैं। जिससे वह पेड़ लकड़ी मात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रह गया। सुन्दर वृक्ष की थोड़ी देर में यह हालत देख नग्गति विरक्त हो जाता है और दीक्षा ग्रहण कर लेता है।

चारों प्रत्येकबुद्ध मुनिविहार करते हुए क्षितिप्रतिष्ठितपुर नगर में एक यक्षमन्दिर में परस्पर मिलते हैं। यहाँ करकण्डु अपना कान खुजलाते हैं जिसे देखकर द्विमुख उनसे कहते हैं—तुमने राज्य आदि सब त्याग दिया, इस कण्डू को साथ क्यों लिए फिरते हो। इस पर नमि द्विमुख से कहते हैं कि तुम भी जब राज्य त्यागकर मुनि बन गये तो तुम्हें दूसरों का दोष देखना उचित नहीं। इस पर नग्गति नमि से कहते हैं कि सब कुछ छोड़कर मोक्ष मार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति को परनिन्दा नहीं करना चाहिए। तब करकण्डु ने कहा कि दुष्टबुद्धि से किया गया परदोष-कथन ही निन्दा है, हितबुद्धि से किया गया परदोष-कथन अनुचित नहीं है अपितु उचित ही है। नमि, द्विमुख और नग्गति ने जो कुछ कहा वह अहित निवारण के लिए ही है अतः वह दोष नहीं है। करकण्डु आदि पीछे तपस्याकर मरके पुष्पोत्तर विमान में उत्पन्न हुए और वहाँ से च्युत होकर मनुष्यभव में तपस्याकर मोक्ष प्राप्त किया।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता, जिनरत्नसूरि और लक्ष्मीतिलकगणि, दो व्यक्ति हैं। वे सुधर्मागच्छ में हुए थे। उनसे पहले इस गच्छ में क्रमशः जिनचन्द्रसूरि, नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि हुए थे। प्रस्तुत ग्रन्थकर्तृद्वय जिनेश्वरसूरि के ही शिष्य थे। खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि के अनुसार जिनेश्वरसूरि ने पौष सुदी ११ सं० १२८८ के दिन जावालिपुर (जालौर—राजस्थान) में लक्ष्मीतिलक को दीक्षा दी थी। सं० १३१२ की वैशाख-पूर्णिमा के दिन लक्ष्मीतिलक को वाचनाचार्य का पद और सं० १३१७ की माघ शुक्ला १२ को उपाध्याय की उपाधि मिली थी। जिनरत्नसूरि का पहला नाम जिनवर्धनगणि था। उन्हें सं० १२८३ की माघ कृष्णा ६ को वाग्भटमेरु (बाडमेर) में जिनेश्वरसूरि से दीक्षा मिली थी। सं० १३०४, वैशाख शुक्ला चतुर्दशी के दिन आचार्य पद मिला था। इस अवसर पर ही जिनेश्वरसूरि ने उनका नाम जिनरत्नसूरि रख दिया था।[1]

इस ग्रन्थ की रचना में पालनपुर निवासी जगधर के पुत्र भुवनपाल और पद्माकपुत्र साढल ने प्रेरणा दी थी।[2] इस काव्य की रचना सं० १३११ में

---

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि, पृ० ४९-५१.

२. प्रत्येकबुद्धचरित्र, प्रशस्ति, श्लो० २८-३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुई थी तथा इसका संशोधन जिनेश्वरसूरि तथा अन्य साहित्यिक विद्वानों ने किया था।[1]

दिगम्बर साहित्य में उक्त चार प्रत्येकबुद्धों में से केवल करकण्डु के चरित्र को लेकर कई रचनाएँ लिखी गई हैं परन्तु उनमें करकण्डु को प्रत्येकबुद्ध नहीं कहा गया और उसके चरित्र को चमत्कारी एवं कौतूहलवर्धक घटनाओं से पूर्ण बनाया गया है। इस विषय में एक प्राचीन कृति अपभ्रंश में 'करकण्डुचरिउ' उपलब्ध है जिसे कनकामर मुनि ने ग्यारहवीं शती के मध्यभाग में रचा था। इसी का अनुसरणकर पश्चात्काल में इस कथा का संक्षेपरूप श्रीचन्द्रकृत कथाकोष, रामचन्द्रमुमुक्षुकृत पुण्याश्रव-कथाकोष और नेमिदत्तकृत आराधना-कथाकोष में दिया गया है। स्वतन्त्र काव्य के रूप में रइधू, जिनेन्द्रभूषण भट्टारक और श्रीदत्तपण्डितकृत करकण्डुचरितों का भी उल्लेख भण्डारों की सूचियों में पाया जाता है।[2] शुभचन्द्र भट्टारककृत संस्कृत में १५ सर्गात्मक काव्य भी उपलब्ध है। अपभ्रंश के मर्मज्ञ डा० हीरालाल जैन ने करकण्डुचरिउ[3] की भूमिका में उक्त कथानक की पूर्व-कथाओं से तुलना तथा उसके विविध तत्त्वों की खोज की है तथा अवान्तर कथाओं के अध्ययन के साथ परवर्ती साहित्य रयणसेहरी-कहा (जिनहर्षगणिकृत) तथा हिन्दी काव्य पद्मावत (मलिक मुहम्मद जायसी-कृत) पर उक्त कथानक का प्रभाव दिखाया है। यहाँ उक्तविषयक संस्कृत में उपलब्ध दो रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

१. करकण्डुचरित—इसमें १५ सर्ग हैं। इसमें करकण्डु की दक्षिण देश में विजययात्रा, तेरापुर में जैन गुफाओं का निर्माण, उसकी रानी का अपहरण, फिर सिंहलयात्रा, लौटते समय विद्याधरों द्वारा करकण्डु का अपहरण एवं विद्याधर कन्याओं के साथ विवाह आदि घटनाओं का रोमाञ्चक रीति से वर्णन है। यद्यपि इस काव्य के रचयिता ने इसे एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में रचने का दावा किया है पर ग्रन्थ के मिलान से यह सिद्ध हुआ है कि यह कनकामर मुनिरचित 'करकण्डु-चरिउ' का अनुवाद मात्र है।[4] मूल-कथा के साथ-साथ सभी अवान्तर कथाएँ भी इसमें ज्यों की त्यों हैं।

---

१. वही, प्रशस्ति, श्लोक० ३२.
२. जिनरत्नकोश, पृ० ६७.
३. भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, १९६४, भूमिका, पृ० १३-३०.
४. करकण्डुचरिउ, प्रस्तावना, पृ० २९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता (अनुवादक) भट्टारक शुभचन्द्र हैं। इनका परिचय पाण्डवपुराण के प्रसंग में दिया गया है। ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह काव्य जवाछपुर के आदिनाथ चैत्यालय में सं० १६११ में लिखा गया था। इस काव्य की समाप्ति में उनके शिष्य सकलभूषण सहायक थे।[1]

२. **करकण्डुचरित**—इस काव्य में ४ सर्ग हैं जिनमें ९०० श्लोक हैं। इसके रचयिता जिनेन्द्रभूषण भट्टारक हैं जो कि विश्वभूषण के प्रशिष्य तथा ब्रह्म हर्षसागर के शिष्य थे। इसमें अवान्तर कथाएँ बहुत संक्षेप में दी गई हैं। यह रचयिता के 'जिनेन्द्रपुराण' ग्रन्थ का एक भाग भी माना जाता है।[2]

कुम्मापुत्तचरिय—ऋषिभाषित सूत्र में सप्तम अध्ययन कुम्मापुत्त प्रत्येकबुद्ध से सम्बन्धित दिया गया है। इसके चरित्र पर भी दो काव्य उपलब्ध हुए हैं। पहला काव्य प्राकृत की २०७ गाथाओं में निर्मित है।[3] कथानक संक्षेप में इस प्रकार है—एक समय भगवान् महावीर ने अपने समवसरण में दान, तप, शील और भावना रूपी चार प्रकार के धर्म का उपदेश देकर कुम्मापुत्त (कूर्मापुत्र) का उदाहरण दिया कि भावशुद्धि के कारण वह गृहवास में भी केवलज्ञानी हो गया था। कुम्मापुत्त राजगृह के राजा महिन्दसीह और रानी कुम्मा का पुत्र था। उसका असली नाम धर्मदेव था पर उसे कुम्मापुत्त नाम से भी कहते थे। उसने बाल्यावस्था में ही वासनाओं को जीत लिया था और पीछे केवलज्ञान प्राप्त किया। यद्यपि उसे घर में रहते सर्वज्ञता प्राप्त हो गई थी पर माता-पिता को दुःख न हो, इसलिए उसने दीक्षा नहीं ली। उसे गृहस्थावस्था में केवलज्ञान इसलिए प्राप्त हुआ था कि उसने पूर्व[4] जन्मों में अपने समाधिमरण के क्षणों में भावशुद्धि रखने का अभ्यास किया था।

इस ग्रन्थ में ५२, ११२, १६० संस्कृत पद्य, १२०–१२१ अपभ्रंश में तथा दो गद्य भाग अर्धमागधी के आ गये हैं।

---

१. पद्य सं० ५४-५६; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ९८.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६७.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ९५; जैन विविधशास्त्र साहित्यमाला, सं० १३१, वाराणसी, १९१९; डा० प० ल० वैद्य, पूना और के० वी० अभ्यंकर, अहमदाबाद के संस्करण (१९३१) प्रस्तावना, टिप्पण आदि सहित; ए० टी० उपाध्ये, बेलगाँव, १९३६—भूमिका, अनुवाद, टिप्पण सहित.

४. इस ग्रन्थ में कुम्मापुत्त के पूर्व जन्मों की भी कथा दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय आचार्य हेमविमल के शिष्य जिनमाणिक्य या जिनमाणिक्य के शिष्य अनन्तहंस हैं। कुछ विद्वान् अनन्तहंस को ही वास्तविक कर्ता मानते हैं और कुछ उनके गुरु को। ग्रन्थ में रचनाकाल नहीं दिया गया पर तपागच्छपट्टावली में हेमविमल को ५५वाँ आचार्य माना गया और उनका समय १६वीं शताब्दी का प्रारम्भ बैठता है। इसलिए प्रस्तुत कथानक का काल १६वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

द्वितीय रचना पूर्णिमागच्छ के विद्यारत्न ने लिखी है जिसका समय सं० १५७७ है। ग्रन्थकार की गुरुपरम्परा इस प्रकार है—जयचन्द्र, भावचन्द्र, चारित्रचन्द्र, मुनिचन्द्र (गुरु)।

अम्बडचरित्र—अम्बड को ऋषिभाषित सूत्र में प्रत्येकबुद्ध कहकर उनके उपदेशों का संकलन किया है। प्रथम उपांग सूत्र औपपातिक[1] में अम्बड परिव्राजक की कथा दी गई है। संभवतः उसी के चरित्र को लेकर पश्चात्कालीन कवियों ने अपनी अद्भुत कल्पनाओं का संमिश्रणकर ४–५ रचनाएँ लिखी हैं। उनमें से मुनिरत्नसूरिकृत काव्य का ग्रन्थाग्र १२९० है।[2] रचनाकाल ज्ञात नहीं है। अन्य रचनाओं में अमरसुन्दर (१४५७), हर्षसमुद्रवाचक (सं० १५९९), जयमेरु (सं० १५७१) तथा एक अज्ञातकर्ता की कृतियाँ उपलब्ध हैं।[3] यहाँ केवल एक रचना का परिचय दिया जाता है।

अम्बडचरित—इसे अम्बडकथानक भी कहते हैं।[4] इसमें अम्बड का कथानक बड़ी विचित्रता से वर्णित है। पहले वह एक तांत्रिक था और उसने यंत्र-मंत्र के बल से गोरखादेवी द्वारा निर्दिष्ट सात दुष्कर कार्य सम्पन्न कर दिखाये। उसने ३२ सुन्दरियों से विवाह किया और अपार धन एवं राज्य प्राप्त किया। अन्त में उसने प्रव्रजित होकर सल्लेखना-मरण किया। यह कथा संस्कृत में है। इसमें कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा दिखलाई है और इसे 'सिंहासनद्वात्रिंशिका' में वर्णित विक्रमादित्य के घटनाचक्र के समान घटनाचक्र से सम्बन्धित किया है।

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग २, पृ० २५-३०, अम्मडचरित्र.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १५; अहमदाबाद से सन् १९२३ में प्रकाशित.

३. वही, पृ० १५.

४. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; इसका जर्मन अनुवाद चार्ल्स क्राउस ने किया है जो लीपजिग से १९२२ में प्रकाशित हुआ है; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ३४० में इसे कौतुकपूर्ण लोककथा कहा है।

Jain Education International 　For Private & Personal Use Only 　www.jainelibrary.org

कर्ता एवं कृतिकाल—इसके रचयिता अमरसुन्दरसूरि हैं। इनका नाम सोमसुन्दरगणि (वि० सं० १४५७) के शिष्यों में आता है। अमरसुन्दर को 'संस्कृत जल्पपटु' कहा गया है। रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

धन्यशालिचरित—अपने ही विवेक से पात्र-दान रूपी धार्मिक प्रवृत्ति द्वारा जीवन को उच्च साधना पथ पर ले जाने के लिए श्रेणिक और महावीर के समकालीन राजगृह के दो श्रेष्ठिपुत्र—धन्यकुमार और शालिभद्र के चरित्र जैन कवियों को बहुत प्रिय हुए हैं। धन्यकुमार की कथा अनुत्तरोववाइयदसाओं[1] में और प्रकीर्णकों के मरणसमाधि में धन्य और शालिभद्र के (प्रायोपगमन-समाधि के उदाहरणरूप) कथानक आये हैं। ये दोनों भी प्रत्येकबुद्ध[2] की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों को एक साथ कर धन्यकथा, धन्यचरित्र, धन्यकुमारचरित्र, धन्यनिदर्शन, धन्यरत्नकथा, धन्यविलास, धन्यशालिभद्रचरित्र, धन्यशालिचरित्र और शालिभद्रचरित्र[3] नाम से अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं जिनका विवरण इस प्रकार है :

१. धन्यकुमार या शालिभद्रयति	गुणभद्र	(१२वीं शताब्दी)
२. धन्यशालिचरित्र	पूर्णभद्र	(सं० १२८५)
३. शालिभद्रचरित्र	धर्मकुमार	(सं० १३३४)
४. धन्यशालिभद्रचरित्र	भद्रगुप्त	(सं० १४२८)
५. ,,	दयावर्धन	(सं० १४६३)
६. धन्यकुमारचरित्र	सकलकीर्ति	(सं० १४६४)
७. धन्यशालिचरित्र (दानकल्पद्रुम)	जिनकीर्ति	(सं० १४९७)
८. ,,	जयानन्द	(सं० १५१०)
९. धन्यकुमारचरित्र	यशःकीर्ति	
१०. धन्यकुमारचरित्र	मल्लिषेण	(१६वीं का प्रारम्भ)
११. ,,	ब्रह्म नेमिदत्त	(सं० १५१८-२८)

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ० २४३.

२. गा० १२२; भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान, पृ० १७२; विंटरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५१८; दोनों सगे संबंधी थे और दीक्षा में एक-दूसरे से प्रभावित थे।

३. जिनरत्नकोश, पृ० १८७ और ३८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२.	शालिभद्रचरित्र		विनयसागर	(सं० १६२३)
१३.	,,		प्रभाचन्द्र	
१४.	,,	(प्राकृत)	अज्ञात	
१५.	,,	,,	,,	
१६.	धन्यविलास		धर्मसिंहसूरि	(सं० १६८५)
१७.	धन्यचरित्र		उद्योतसागर	(लगभग सं० १७४२)
१८.	,,		विल्हण कवि ?	

कथा का सार—सुप्रतिष्ठितनगर में नैगम सेठ और लक्ष्मी सेठानी से धनचन्द्रादि पाँच पुत्र हुए। धन्यकुमार उनमें पाँचवाँ था। वह पूर्व जन्म में पिता के मर जाने से निर्धन होकर बाल्यावस्था में गाय के बछड़ों को चराता था। एक पर्व के दिन नगर के बालकों को खीर खाते देख उसने अपनी माँ से खीर की माँग की। माता ने पड़ोसियों से दूध, चीनी, चावल माँगकर खीर बनाई और गरम परोसकर किसी काम से बाहर चली गई। इस बीच एक मुनिराज आये और उस बालक ने प्रसन्न मन से आहारदान में वह खीर दे दी। माता के लौटने पर वह कुछ नहीं बोला। माता ने समझा कि इसने खीर खा ली है तथा और चाहता है इसलिए उसने और परोस दी जिसे खाकर वह सो गया। इससे उसके कई बछड़े नहीं लौटे। जागने पर वह उनकी तलाश में निकला और रास्ते में एक मुनि से श्रावकव्रत ले लिया तथा रात्रि में बछड़ों की तलाश करते समय वह एक सिंह द्वारा मारा गया। मुनिदान के प्रभाव से वह धन्यकुमार हुआ तथा स्वल्पकाल में सकल कलाओं का पारगामी हो गया। उसके ज्येष्ठ भ्राता उससे डाह करने लगे। उसने जीवन प्रारम्भ करते ही अनेक आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये। उसने भेड़ों के युद्ध में हजार दीनार पाये, मृतक-खाट को खरीदकर उसमें कीमती रत्न पाये आदि। भाइयों में बढ़ती ईर्ष्या के कारण वह घर से बाहर निकल गया और बुद्धिवैभव से अनेकों चमत्कार दिखाकर उसने राजगृह में अनेकों कन्याओं से तथा गोभद्र सेठ की पुत्री (शालिभद्र की बहिन) से विवाह किया और सुख से रहने लगा। इधर माता-पिता तथा भाइयों की हालत खराब हो चली। उन्हें आजीविका के लिए मजदूरी करनी पड़ी। उसने उन सबकी मदद की और बहुत ख्याति तथा राज-प्रतिष्ठा पाई।

शालिभद्र अपने पूर्व जन्म में एक गरीब विधवा का पुत्र था। उसका नाम संगमक गड़रिया था। वह भेड़ें चराते समय सामायिक में बड़ा आनन्द लेता था। एक उत्सव के दिन उसने सब घरों में अच्छे सुस्वादु भोजन तैयार होते देखे और अपनी मां से भी पकवान बनाने को कहा। वह गरीब स्त्री बड़ी

कठिनाई से पकवान बना सकी और बालक को परोसकर बाहर चली गई। उसी समय पारणा के लिए एक मुनि आ गये जिन्हें उसने अपना भोजन दे दिया। रात्रि में उसे भूख के कारण इतनी वेदना हुई कि वह मर गया पर आहारदानरूपी पुण्यफल से राजगृह में भद्रा और सेठ गोभद्र के यहाँ शालिभद्र नामक पुत्र हुआ। वह बड़ा सुन्दर और गुणवान् था। जब वह युवावस्था में पहुँचा तो उसके पिता ने ३२ कन्याओं से उसका विवाह कर दिया और इस तरह वह आनन्दपूर्वक रहने लगा। उसका पिता मुनि हो गया और समाधिमरणपूर्वक स्वर्ग गया। देवता पर्याय पाकर उसने अपने पुत्र शालिभद्र के लिए प्रचुर धनसंग्रह किया। उस समय 'इतना धनी जितना कि शालिभद्र' यह लोकोक्ति प्रचलित हो गई। एक दिन उसकी मां ने उसकी बहुओं के लिए बहुमूल्य ३२ रत्नकम्बल खरीदे जिनमें से एक को भी खरीदने का सामर्थ्य राजा श्रेणिक को न था। एक दिन अपने वैभव को देखने के लिए राजा श्रेणिक को साधारण मनुष्य के रूप में अपने घर आया देख और यह समझकर कि उसके ऊपर भी कोई है वह विरक्त हो गया और प्रत्येकबुद्ध बन गया और दीक्षा लेकर तपस्या करने लगा। अपने साले के इस चरित्र को देख धन्य-कुमार भी सब वैभव छोड़ दीक्षित हो गया। दोनों ने घोर तपस्याकर मोक्ष पद पाया।

धन्यकुमारचरित—यह एक लघु संस्कृत काव्य है जिसमें ७ सर्ग हैं।[१] काव्य की भाषा सरल और सरस है। इस कथा का आधार गुणभद्र का उत्तर-पुराण प्रतीत होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि धन्यकुमारविषयक स्वतंत्र चरित्रों में यह सर्वप्रथम है और इस ग्रन्थ में किसी भी पूर्ववर्ती धन्य-कुमारचरित्र या उसके लेखक का उल्लेख नहीं किया गया है।

कर्ता और कृतिकाल—इसके लेखक माथुरसंघ के आचार्य माणिक्यसेन के प्रशिष्य और नेमिसेन के शिष्य गुणभद्र मुनि[२] हैं जिन्होंने इसकी रचना महोबे के चन्देलनरेश परमर्दिदेव के शासनकाल में मध्य प्रदेश के विलासपुर नगर में लम्बकंचुक श्रावक बल्हण की प्रेरणा से सं० १२२७ और १२५७ के मध्य किसी समय की थी। ग्रन्थकर्ता की अन्य कृतियों में बिजोलिया पार्श्वनाथ का स्तंभलेख और गुणभद्र-प्रतिष्ठापाठ भी हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८७.

२. लेखक के विशेष विवरण के लिए देखें–जैन सन्देश, शोधांक ८, पृ० २७४-७६ और पृ० ३०१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्यशालिभद्रकाव्य—इस काव्य में ६ परिच्छेद हैं।[1] ग्रन्थाग्र १४६० तथा प्रशस्ति पद्य मिलाकर १४९० श्लोक-प्रमाण है। ग्रन्थान्त में विविध छन्दमय १५ पद्यों की प्रशस्ति दी गई है। ग्रन्थ को महाकाव्य कहा गया है क्योंकि इसमें अनेक रसों, अलंकारों एवं विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है तथा संक्षेप में नगरों, उपवनों आदि का वर्णन है। कथा का मूल उद्देश्य दानधर्म के माहात्म्य को सूचित करना है इसलिए यत्र-तत्र सुललित पदों में धार्मिक उपदेश भरे पड़े हैं। काव्य के बीच-बीच में पहेलियों और संवादों ने कथानक को बड़ा सजीव बना दिया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके प्रणेता जिनपतिसूरि के शिष्य पूर्णभद्रसूरि हैं जिन्होंने ज्येष्ठ शुक्ल १०, वि० सं० १२८५ में जैसलमेर में रहकर इसे पूर्ण किया था।[2] इसमें उन्हें सर्वदेवसूरि की सहायता मिली थी। प्रशस्ति में कर्ता ने अपनी गुरुपरम्परा जिनेश्वरसूरि से प्रारंभ की है। ग्रन्थकार की अन्य रचनाएँ अतिमुक्तकचरित्र (सं० १२८२) तथा कृतपुण्यचरित्र (सं० १३०५) हैं।

शालिभद्रचरित—यह सात प्रक्रमों का एक लघुकाव्य[3] है जो एक आलंकारिक काव्य की सभी विशेषताओं से युक्त है। इसका आधार हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के १०वें पर्व का ५७वाँ अध्याय है। इस काव्य का नाम 'दानधर्मकथा' भी है। इसे अनेकों सूक्तियों, नीति एवं व्यावहारिक कहावतों से सजाया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना धर्मकुमार ने सं० १३३४ में की है। धर्मकुमार नागेन्द्रकुल के आचार्य सोमप्रभ के शिष्य विबुधप्रभ के शिष्य थे। इसकी रचना में कनकप्रभ के शिष्य एवं अनेक ग्रन्थों के संशोधक आचार्य

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८८; जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार, सूरत, वि० सं० १९९१.

२. प्रशस्ति, पद्य सं० ११-१२.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३८२; इसकी कथा का संक्षेप अंग्रेजी में विण्टरनित्स की हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २ के पृ० ५१८ में दिया गया है। यह यशोविजय ग्रन्थमाला, वाराणसी (१९१०) से प्रकाशित है। ब्लूमफील्ड ने अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी की पत्रिका, भाग ४३, पृ० २५७ आदि पर विस्तृत परिचय दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रद्युम्न ने सहायता की थी। प्रद्युम्न के पूर्व प्रभाचन्द्र (प्रभावक चरित्रकार) ने इसका संशोधन किया था।

धन्यशालिभद्रचरित—इसके रचयिता रुद्रपल्लीयगच्छ के देवगुप्त के शिष्य भद्रगुप्त हैं।[1] रचनाकाल सं० १४२८ दिया गया है।

धन्यशालिचरित—इसका दूसरा नाम धन्यनिदर्शन भी है।[2] इसकी रचना दयावर्धनसूरि ने सं० १४६३ में की है। उनके गुरु का नाम जयपाण्डु या जयचन्द्र या जयतिलक है। ग्रन्थकार की अन्य महत्त्वपूर्ण कृति 'रत्नशेखररत्नवतीकथा' (सं० १४६३) है जो जायसी के हिन्दी महाकाव्य पद्मावत का स्रोत माना गया है। ग्रन्थकार के विषय में और कुछ नहीं मालूम है।

धन्यकुमारचरित—इसमें सात सर्ग हैं। भाषा सरल एवं सुन्दर है। ग्रन्थाग्र ८५० श्लोक-प्रमाण है।[3] इसके रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति हैं जिनका परिचय पहले दिया गया है।[4]

धन्यशालिचरित—इसका दूसरा नाम 'दानकल्पद्रुम' भी है।[5] यह एक संस्कृत-पद्यबद्ध रचना है। इसके कर्ता तपागच्छीय सोमसुन्दर के शिष्य जिनकीर्ति हैं जिन्होंने इसकी रचना सं० १४९७ में की थी। इनकी अन्य कृतियां नमस्कारस्तव स्वोपज्ञवृत्ति के साथ (वि० सं० १४९४), श्रीपालगोपालकथा, चम्पकश्रेष्ठिकथा, पंचजिनस्तव तथा श्राद्धगुणसंग्रह (वि० सं० १४९८) हैं।

१. **धन्यकुमारचरित**—इसमें पांच सर्ग हैं और ११४० श्लोक हैं। इसकी रचना खरतरगच्छीय जिनशेखर के प्रशिष्य और जिनधर्मसूरि के शिष्य जयानन्द ने सं० १५१० में की थी।[6]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८८.

२. वही, पृ० १८७-१८८; जैन आत्मानन्द सभा (ग्रं० ४३), भावनगर, १९७१.

३. वही, पृ० १८७; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ११; हिन्दी अनुवाद—जैन भारती, बनारस, १९११.

४. पृ० ५१.

५. जिनरत्नकोश, पृ० १७२, १८७; देवचन्द्र लालभाई ग्रन्थमाला, सं० ९, बम्बई, १९१९.

६. वही, पृ० १८७; जिनदत्तसूरि पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, १९३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशःकीर्ति और मल्लिभूषण के धन्यकुमारचरित्र का उल्लेख भर मिलता है। इसी तरह विल्हणकविकृत धन्यकुमारचरित्र का भी।[1]

२. धन्यकुमारचरित—इसमें पाँच सर्ग हैं। इसकी रचना भट्टा० विद्यानन्दि एवं मल्लिभूषण के शिष्य ब्रह्म नेमिदत्त ने की थी।[2] ब्र० नेमिदत्त का साहित्यकाल सं० १५१८–२८ माना जाता है।

शालिभद्रचरित—इसकी रचना विनयसागरगणि ने सं० १६२३ में की थी।[3] इस रचना एवं रचयिता के सम्बन्ध में और विशेष कुछ नहीं ज्ञात हो सका है। प्रभाचन्द्रकृत शालिभद्रचरित का भी उल्लेख मिलता है।

प्राकृत में भी कुछ शालिभद्रचरित्रों का पता लगा है। एक में १७७ गाथाएँ हैं। प्रारम्भ 'सुरवरकयमाणं नट्ठनीसेसमानं' से होता है। अन्यों का उल्लेख मात्र है।[4]

धन्यविलास—इसका ग्रंथाग्र ११०० श्लोक-प्रमाण है। यह संस्कृत-कृति है। इसकी रचना धर्मसिंहसूरि ने की थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति मिली है।[5]

धन्यचरित—यह 'संस्कृताभासजल्पमय' विशाल गद्यरचना है। इसका ग्रंथाग्र ९००० श्लोक-प्रमाण है। यह ९ पल्लवों में विभक्त है।[6] इसमें धन्यकुमार, शालिभद्र दोनों का चरित्र है।

इस ग्रंथ का आधार जिनकीर्ति की कृति उपर्युक्त 'दानकल्पद्रुम' अपरनाम धन्यशालिचरित्र है।[7] ग्रंथ के बीच में अनेक अवान्तर कथाएँ हैं। यह ग्रंथ अनेक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८७.

२. वही.

३. वही, पृ० ३८२.

४. वही.

५. वही, पृ० १८७.

६. वही; पोपटलाल प्रभुदास, सिहोर द्वारा वि० सं० १९९६ में प्रकाशित.

७. इति श्री जिनकीर्तिविरचितस्य पद्यबद्धश्रीधन्यचरित्रशालिनः.................. महोपाध्यायश्रीज्ञानसागरगणिशिष्याल्पमतिग्रथितगद्यरचना प्रबंधे इत्येवं मया धन्यमुनेः शालिभद्रमुनेः चरितं संस्कृताभासजल्पमयं गद्यबन्धेन लिखितं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार की लौकिक शिक्षाओं से भरा हुआ है। बीच-बीच में देशी भाषाओं के अनेक पद्य उद्धृत हैं।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रंथकार ने इतना बड़ा ग्रंथ लिखकर भी अपना नाम सूचित नहीं किया है। केवल ज्ञानसागरगणिशिष्य-अल्पमति दिया है। पर ज्ञानसागर के शिष्य ने प्राचीन गुजराती में २१ प्रकारी और अष्टप्रकारी पूजा की रचना की है। अष्टप्रकारी पूजा की रचना के अन्त में दी गई प्रशस्ति में सं० १७४३ दिया गया है तथा कर्ता के नाम पर 'ज्ञान-उद्योत' इस प्रकार का श्लिष्ट-पद दिया गया है। हो सकता है गुरु का नाम ज्ञानसागर और शिष्य का नाम उद्योतसागर रहा हो।[1]

पृथ्वीचन्द्रचरित्र—पृथ्वीचन्द्र नृप की कथा भी प्रत्येकबुद्धचरितों की श्रेणी में आती है क्योंकि उसने सम्यग्दर्शन के प्रभाव से अपना इतना आध्यात्मिक विकास किया था कि उसे गृहस्थावस्था में ही बिना किसी के उपदेश से केवलज्ञान हो गया और मुक्ति प्राप्त हुई थी।

उक्त कथा को लेकर जैन कवियों ने प्राकृत, संस्कृत तथा लोकभाषाओं में अनेकों रचनाएँ लिखी हैं। उनमें से ज्ञात का वर्णन इस प्रकार है:

१. पुहवीचन्दचरिय	सत्याचार्य	(सं० ११६१)	प्राकृत
२. पृथ्वीचन्द्रचरित्र	माणिक्यसुन्दर	(सं० १४७८)	पुरानी गुजराती
३. ,,	जयसागरगणि	(सं० १५०३)	
४. ,,	सत्यराजगणि	(सं० १५३४)	
५. ,,	लब्धिसागर	(सं० १५५८)	
६. ,,	रूपविजय	(सं० १८८२)	
७. ,,	अज्ञात		
८. पृथ्वीचन्द्रगुणसागरचरित्र	अज्ञात		
९. पृथ्वीचन्द्रचरित्र	अज्ञात		संस्कृत गद्य
१०. ,,	अज्ञात		

कथा का सार—पृथ्वीचन्द्र नृप और वणिक्-पुत्र गुणसागर ग्यारह भव पूर्व १. शंख नृप और कलावती रानी के रूप में जन्म ले सम्यक्त्व और शील के प्रभाव से उत्तरोत्तर विकास कर अगले भवों में २. राजा कमलसेन-रानी गुणसेना, ३. देवसिंह

१. विशेष के लिए उक्त ग्रन्थ की प्रस्तावना देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नृप-रानी कनकसुन्दरी, ४. देवरथ-रत्नावली, ५. पूर्णचन्द्र-पुष्पसुन्दरी, ६. शूरसेन-मुक्तावली, ७. पद्मोत्तर-हरिवेग (विद्याधर राजा), ८. गिरिसुन्दर-रत्नसार (वैमातृक भाई), ९. कनकध्वज-जयसुन्दर (सहोदर), १०. कुसुमायुध-कुसुमकेतु (पिता-पुत्र) और अन्त में पृथ्वीचन्द्र महाराज और गुणसागर श्रेष्ठिपुत्र हुए। दोनों के परिणाम इतने निर्मल थे कि वे दोनों गृहस्थावस्था में ही केवलज्ञानी हो गये और मुक्तिगामी हुए। पृथ्वीचन्द्र के प्रथम भव शंख-कलावती को लेकर कुछ स्वतन्त्र कथाग्रंथ भी बनाये गये हैं।

यहाँ पृथ्वीचन्द्र राजर्षि की कथा से सम्बद्ध कुछ रचनाओं का परिचय दिया जाता है।

पुहवीचंदचरिय—यह प्राकृत भाषा में ७५०० गाथाओं में निबद्ध विशाल ग्रंथ है[1] जो अनेक अवान्तर कथाओं से भरा हुआ है। इसकी रचना बृहद्गच्छीय सर्वदेवसूरि के प्रशिष्य एवं नेमिचन्द्र के शिष्य सत्याचार्य ने महावीर सं० १६३१ अर्थात् वि० सं० ११६१ में की थी। इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं।

इस पर ११०० श्लोक-प्रमाण कनकचन्द्रसूरिकृत टिप्पण तथा रत्नप्रभसूरिकृत चरित्र-संकेत टिप्पण (५०० श्लोक-प्रमाण) भी मिलते हैं।

१. पृथ्वीचन्द्रचरित—यह संस्कृत भाषा में ११ सर्गात्मक रचना है। इसका परिमाण २६५४ श्लोक-प्रमाण है। इसकी रचना खरतरगच्छ के जिनवर्धनसूरि के शिष्य जयसागरगणि ने पालनपुर में सं० १५०३ में की थी। इनकी अन्य कृति 'पर्वरत्नावली' है।[2]

२. पृथ्वीचन्द्रचरित—यह काव्य संस्कृत के अनुष्टुप् छन्दों में निर्मित है।[3] इसमें ११ सर्ग हैं और ग्रन्थाग्र १८४६ श्लोक-प्रमाण है।[4] इसमें सर्गों का नामांकन पृथ्वीचन्द्र और गुणसागर के ११ मनुष्यभवों के नाम से किया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २५५-२५६.

२. वही, पृ० २५६.

३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला (सं० ४४), भावनगर, वि० सं० १९७६; जैन-साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५१६ में इसे बिना देखे ही गद्य-पद्यमय श्लेष-ग्रन्थ कहा गया है।

४. प्रशस्ति, पद्य १०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह अनेक अद्भुत घटनाओं से भरा हुआ है। इसमें सरल एवं प्रसादपूर्ण ढंग से अनेक अवान्तर कथाएँ वर्णित हैं। इस ग्रन्थ का आधार पूर्वाचार्यों की प्राकृत-बन्ध कृति है।[१]

कर्ता एवं कृतिकाल—इसके रचयिता सत्यराजगणि हैं। कवि ने ग्रन्थान्त में १० पद्यों की प्रशस्ति द्वारा अपना परिचय दिया है जिससे ज्ञात होता है कि ये पूर्णिमागच्छ के पुण्यरत्नसूरि के शिष्य थे। यह ग्रन्थ अहमदाबाद में वि० सं० १५३५ में रचा गया था। ग्रन्थरचना के समय इनके गुरु की विद्यमानता मांडल पत्तन के ऋषभदेव मन्दिर से प्राप्त एक धातुप्रतिमा-लेख (वि० सं० १५३१) से ज्ञात होती है।

३. पृथ्वीचन्द्रचरित—वृद्ध तपागच्छ के उदयसागर के शिष्य लब्धिसागर ने इसे सं० १५५८ में संस्कृत भाषा में लिखा था।[२] इनकी दूसरी रचना श्रीपालकथा सं० १५५७ में बनी थी।

४. पृथ्वीचन्द्रचरित—यह संस्कृत गद्य में ११ सर्गात्मक बृहत्कृति है।[३] ग्रन्थाग्र ५९०१ श्लोक-प्रमाण है। गद्य सरल भाषा में है और बीच-बीच में संस्कृत और प्राकृत के पद्य भी यहाँ-वहाँ से उद्धृत हैं। इसमें कवि ने अपनी रचना का आधार किसी प्राकृत कृति को माना है: **कविना प्राक्कृतस्य प्राकृतपृथ्वीचन्द्रचरित्रस्य गद्यबन्धभाषया किंचित् लिख्यते।**

कर्ता एवं कृतिकाल—ग्रन्थान्त में ११ पद्यों की प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता तपागच्छ-संविग्नशाखा के पद्मविजयगणि के शिष्य रूपविजयगणि हैं जिन्होंने प्रस्तुत काव्य अहमदाबाद नगर में वि० सं० १८८२ श्रावण मास में नेमिनाथ के जन्म दिन पर बनाया था।[४]

एतद्विषयक अन्य कृतियों के लेखकों का नाम अज्ञात है। उनमें एक संस्कृत गद्य में भी मिलती है।[५]

---

१. प्रशस्ति, पद्य ४.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २५६; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१८.

३. वही, पृ० २५६.

४. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९१८; मेसर्स ए० एम० कम्पनी, भावनगर, १९३६, प्रशस्ति, पद्य ५–११.

५. जिनरत्नकोश, पृ० २५६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्द्रककुमारचरित—ऋषिभाषित सूत्र में आर्द्रक को २८वाँ प्रत्येकबुद्ध माना गया है। उन्होंने कामवासना की गर्हा की थी। सूत्रकृतांग के अनुसार आर्द्रक एक अनार्य देश का राजकुमार[1] था, श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार से उसकी मैत्री थी। आर्द्रककुमार ने अभयकुमार के लिए उपहार भेजे थे। अभयकुमार ने भी उसके पास धर्मोपकरण के रूप में उपहार भेजे थे जिसे पाकर आर्द्रककुमार प्रतिबुद्ध हुआ। जातिस्मरणज्ञान के आधार से उसने दीक्षा ग्रहण की और वहाँ से भगवान् महावीर की ओर विहार किया।

आर्द्रककुमारचरित्र[2] पर अज्ञातकर्तृक कई रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। उनमें एक १५९ और दूसरी १७० प्राकृत पद्यों में है।

उसकी पत्नी श्रीमती पर भी श्रीमतीकथा[3] नामक रचना अज्ञातकर्तृक उपलब्ध हुई है।

केवलिचरित :

प्रत्येकबुद्धों के चरित के समान ही विभिन्न समयों में हुए कतिपय केवलियों (केवलज्ञानसम्पन्न) के चरितों को भी रोचकता के कारण जैन कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है। उनमें से कामदेवों के चरितों के प्रसंग में हम विजयचन्द्रकेवलिचरित्र (प्राकृत), सिद्धर्षिकृत श्रीचन्द्रकेवलिचरित्र, भुवनभानुकेवलि (बलिनरेन्द्र) चरित्र, तथा जम्बुकेवलिचरित आदि कुछ रचनाओं का परिचय दे चुके हैं। इनके अतिरिक्त केवलिचरित्र पर और भी रचनाएँ मिलती हैं।

जयानन्दकेवलिचरित—यह ६७५ ग्रन्थाग्र-प्रमाण है। इसकी रचना तपागच्छ के प्रभावक आचार्य सोमसुन्दर के शिष्य मुनिसुन्दर (वि० सं० १४७८-१५०३) ने की है।[4]

---

१. डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने आर्द्रककुमार को ईरान के ऐतिहासिक सम्राट् कुरुष (ई० पू० ५५८-५३०) का पुत्र माना है।—भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ६७-६८.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४; पाटन सूची, भाग १, पृ० १५३ और ४०५.

३. वही, पृ० ३९८.

४. जिनरत्नकोश, पृ० १३४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरी कृति संस्कृत गद्य में है। इसकी रचना तपागच्छीय प्रभावक आचार्य यशोविजय के गुरुभाई पद्मविजय ने सं० १८५८ में की है। इस कृति का आधार मुनिसुन्दरकृत रचना है।[1]

प्रकीर्णक पात्रों के चरित्र :

उपर्युक्त श्रेणीबद्ध (तीर्थंकर-चक्रवर्ती से लेकर प्रत्येकबुद्ध तक) चरित्रों और पौराणिक काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत-प्राकृत में अनेकों प्रकीर्णक काव्य मिलते हैं जिनमें ऐसे पात्रों का चरित्र चित्रित है जो उपर्युक्त तीर्थंकर–चक्रवर्ती आदि के जीवन से सम्बद्ध थे या समकालिक थे और उनके भव्य जीवन के प्रति कवियों और श्रोताओं की विशेष अभिरुचि थी। यहाँ हम पहले तीर्थंकर से अन्तिम तीर्थंकर तक के कालों में समागत पात्रों पर आश्रित प्रमुख काव्यों का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

जयकुमार-सुलोचनाचरित—भरत चक्रवर्ती के सेनापति और हस्तिनापुर के नरेश जयकुमार (मेघेश्वर) तथा उनकी रानी सुलोचना के कौतुकपूर्ण चरित को लेकर जैन कवियों ने सुलोचनाकथा या चरित, जयकुमारचरित[2], सुलोचनाविवाह नाटक (विक्रान्तकौरव नाटक) आदि विविध रूप में काव्य लिखे। कथा प्रसंग में कवियों को उक्त चरित की कई बातें रोचक लगीं। जयकुमार सौन्दर्य और शील के भण्डार थे। एक समय वे काशिराज अकंपन की पुत्री सुलोचना के स्वयंवर में आये। अनेकों सुन्दर राजकुमारों, यहाँ तक कि चक्रवर्ती भरत के पुत्र अर्ककीर्ति के रहने पर भी, सुलोचना ने वरमाला जयकुमार के गले में डाल दी। स्वयंवर समाप्त होते ही भरत के पुत्र अर्ककीर्ति और जयकुमार के बीच युद्ध ठन गया पर विजय जयकुमार की हुई। इस अप्रिय घटना की सूचना भरत चक्रवर्ती के पास भेजी गई। इस पर चक्रवर्ती ने जयकुमार की ही बहुत प्रशंसा की। विवाह के अनन्तर विदा लेकर जयकुमार चक्रवर्ती से मिलने अयोध्या जाते हैं और वहाँ से लौटकर जब वे अपने पड़ाव की ओर आते हैं तो मार्ग में गंगा नदी पार करते समय उनके हाथी को एक देवी ने मगर का रूप धारणकर ग्रस लिया जिससे जयकुमार-सुलोचना हाथी-सहित गंगा में डूबने लगे। तब सुलोचना ने पंच-नमस्कार-मंत्र की आराधना से उस उपसर्ग को दूर किया। हस्तिनापुर पहुँचकर जयकुमार और सुलोचना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२४; यह पालीताना से सन् १९२१ में प्रकाशित हुई है।
२. वही, पृ० १३१ और ४४७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने अनेक सुख भोगे। एक समय महल की छत पर बैठे दोनों ने आकाशमार्ग से पार होते विद्याधरदम्पति को देखा और दोनों अपने पूर्व जन्म की घटना स्मरणकर मूर्च्छित हो गये। पीछे सचेत हो पूर्व भवावलियों का वर्णन करते हुए सुख से समय बिताने लगे। एक बार एक देव ने आकर जयकुमार के शील की परीक्षा की। पीछे जयकुमार ने संसार से विरक्त हो भगवान् ऋषभदेव के पास दीक्षा ले ली। इस कथानक पर निम्नलिखित रचनाएँ अब तक उपलब्ध हुई हैं:

महासेन (वि० सं० ८३५ से पूर्व)	सुलोचनाकथा
गुणभद्र (वि० सं० ९०५ के लगभग)	महापुराण के अन्तिम पांच पर्वों में
हस्तिमल्ल (१३वीं शती)	विक्रान्तकौरव या सुलोचनानाटक
वादिचन्द्र भट्टा० (वि० सं० १६६१)	सुलोचनाचरित
ब्र० कामराज (१७वीं शती का उत्तरार्ध)	जयकुमारचरित्र
ब्र० प्रभुराज	,,
पं० भूरामल	जयोदयमहाकाव्य

इन रचनाओं में विक्रान्तकौरव का परिचय नाटकों के प्रसंग में तथा जयोदयमहाकाव्य का शास्त्रीय महाकाव्यों के प्रसंग में करेंगे। शेष का परिचय इस प्रकार है।

सुलोचनाकथा—इसका[1] उल्लेख जिनसेन ने अपने हरिवंशपुराण में, उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला में और धवलकवि ने अपने अपभ्रंश हरिवंशचरिउ में बड़े प्रशंसा भरे शब्दों में किया है।

कुवलयमाला में इस कथा के विषय में कहा है—

सण्णिहियजिणवरिंदा धम्मकहाबंधदिक्खियणरिंदा।
कहिया जेण सुकहिया सुलोयणा समवसरणं च॥ ३९॥

अर्थात् जिसने समवसरण जैसी सुकथिता सुलोचनाकथा कही। जिस तरह समवसरण में जिनेन्द्र स्थित रहते हैं और धर्मकथा सुनकर राजा लोग दीक्षित होते हैं, उसी तरह सुलोचनाकथा में भी जिनेन्द्र सन्निहित हैं और उसमें राजा ने दीक्षा ले ली है। कुवलयमाला से पाँच वर्ष बाद लिखे गये हरिवंशपुराण में उक्त ग्रन्थ के विषय में कहा है—

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२०-४२१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासेनस्य मधुरा शीलालंकारधारिणी।
कथा न वर्णिता केन वनितेव सुलोचना ॥

अर्थात् शीलरूप अलंकार को धारण करनेवाली और मधुरा वनिता के समान महासेन की सुलोचनाकथा की प्रशंसा किसने नहीं की ? धवल महाकवि ने रविषेण के पद्मचरित के साथ महासेन की सुलोचनाकथा का उल्लेख किया है—

मुणि महसेणु सुलोयणु जेण, पउमचरिउ मुणि रविसेणेण।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता महासेन थे और वे वि० सं० ८३५ से पहले हुए हैं। उद्योतनसूरि और जिनसेन समकालीन तथा एक देशस्थ थे अतएव अधिक संभावना यही है कि दोनों द्वारा प्रशंसित यह कथाग्रन्थ एक ही था। संभवतः यह प्राकृत रचना थी।

सुलोचनाचरित—यह ९ परिच्छेदों में विभक्त है। इसका ग्रन्थाग्र ४५२५ श्लोक-प्रमाण है।[१] प्रशस्ति के अनुसार यह सुगम संस्कृत में लिखा गया है।[२] इसके रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र हैं। इनकी अन्य रचनाएँ हैं पार्श्वपुराण, ज्ञानसूर्योदय, पवनदूत, यशोधरचरित, पाण्डवपुराण आदि तथा कई गुजराती ग्रन्थ। इस काव्य की एक प्रति ईडर के ग्रन्थभण्डार में है जो रचयिता के शिष्य ब्र० सुमतिसागर ने व्यारानगर में वि० सं० १६६१ में लिखी थी। ग्रन्थ-रचना इससे अवश्य ही कुछ वर्ष पहले हुई होगी।

ब्र० कामराज की एतद्विषयक रचना का नाम जयपुराण या जयकुमारचरित्र है। यह संस्कृत काव्य है। इसमें १३ सर्ग हैं।[३] प्रभुराजकृत जयकुमारचरित्र का उल्लेख मात्र मिलता है। इस चरित पर अपभ्रंश में ब्र० देवसेन और रइधू की रचनाएँ भी मिलती हैं।[४]

भरत के उक्त सेनापति के चरित्र के अतिरिक्त भरत के एक पुत्र एवं

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८.
२. विहाय पदकाठिन्यं सुगमैर्वचनोत्करैः। चकार चरितं साध्व्या वादिचन्द्रोऽल्पमेधसाम् ॥
३. जिनरत्नकोश, पृ० १३२.
४. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेव के प्रथम गणधर[1] पुण्डरीक के चरित्र को लेकर भी एक जैन कवि ने पुण्डरीकचरित्र प्रस्तुत किया है जिसका परिचय इस प्रकार है—

पुण्डरीकचरित—यह महाकाव्य आठ सर्गों में विभक्त है जिसमें २८३० पद्य हैं। उनका परिमाण ३३०० श्लोक-प्रमाण है।[2] पौराणिक महाकाव्य होने से इसमें अनेक अलौकिक एवं अप्राकृत तत्त्वों का समावेश हुआ है। साथ ही स्तोत्रों और माहात्म्यों का भी वर्णन हुआ है। शत्रुंजयमाहात्म्य का वर्णन अनेक स्थलों पर किया गया है। इसमें अवान्तर कथाओं में अन्यभवों का वर्णन देकर कर्मफल और जैनधर्म के महत्त्व को दिखाया गया है।

इस काव्य के नायक का कथानक वास्तव में तृतीय सर्ग से प्रारंभ होता है। प्रथम दो सर्गों में ऋषभदेव एवं भरत-बाहुबलि का वर्णन है। पहले इसमें आठ सर्ग होने की बात कही गई है किन्तु आठ सर्गों के बाद भी १०० पद्यों से ग्रन्थ की समाप्ति की गई है। वस्तुतः यह काव्य का नौवां सर्ग माना जाना चाहिए पर कवि ने कहीं भी इसे नवाँ सर्ग नहीं कहा है। काव्य के नायक को मोक्षपद-प्राप्ति अष्टम सर्ग के मध्य में ही दिखाई गई है जहाँ कि कथा की समाप्ति समझी जानी चाहिए किन्तु कवि ने आगे कुछ बढ़ाकर ऋषभदेव और भरत चक्रवर्ती के निर्वाण को दिखाने के लिए कथा-क्रम जारी रखा है। इस काव्य के नाम से ज्ञात होता है कि पुण्डरीक ही इसका नायक है। इसलिए इसमें उसके व्यक्तित्व को सर्वाधिक प्रभावशील होना चाहिए पर उसका व्यक्तित्व इस काव्य में ऋषभदेव और भरत के आगे कुछ दबा हुआ दृष्टिगत होता है और वह केवल उपदेशक के रूप में ही दिखाई पड़ता है। इस तरह काव्य के नायकत्व रूप में ऋषभदेव, भरत और पुण्डरीक ये तीन पात्र सम्मुख आते हैं।

पुण्डरीकचरित की भाषा सरल और सरस है। इसमें अवसर के अनुकूल ओज, प्रसाद और माधुर्य गुणों से युक्त भाषा का प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से भाषा में प्रसादगुण की अधिकता है किन्तु युद्ध आदि के प्रसंगों में वह ओजप्रधान हो गई है। इस चरित की भाषा में यमक और अनुप्रास का आग्रह बहुत प्रबल है जिससे भाषा में गति, प्रवाह और झंकृति के गुण आ गये हैं।[3] पुण्डरीकचरित में यत्र-तत्र गद्य का प्रयोग भी किया गया है। प्राकृत के

१. श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार.
२. शारदा विजय जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित; जिनरत्नकोश, पृ० २५१.
३. पुण्डरीकचरित, सर्ग १, श्लोक ७५-७६; सर्ग ५, श्लो० १९५, ३३७ आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गद्य-पद्य की योजना भी इस चरित्र में की गई है। इनमें से कुछ प्राचीन अर्धमागधी आगमों से उद्धरण के रूप में उद्धृत किये गये है और कुछ की रचना स्वयं कवि ने की है।[१] यह चरित विविध अलंकारों की योजना से समृद्ध है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का प्रयोग तो प्रचुर हुआ है पर अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का ही अधिक प्रयोग हुआ है। इस चरित में विविध छन्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है। महाकाव्य के परम्परागत नियमों का पालन न कर प्रत्येक सर्ग में अनेक वृत्तों का प्रयोग भी किया गया है, छन्द बहुत जल्दी-जल्दी बदले गये हैं। वैसे काव्य में अनुष्टुप् का प्रयोग सबसे अधिक है। उसके बाद उपजाति, वसन्ततिलका, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीडित का प्रयोग क्रमशः कम होता गया है। अन्य छन्दों में स्वागता, हरिणी, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, आर्या आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस चरित के अन्त में कवि ने अपनी गुरु-परम्परा का वर्णन किया है जिससे ज्ञात होता है कि इसके रचयिता कमलप्रभसूरि हैं जो चन्द्रगच्छीय साधु थे। उनके पूर्ववर्ती आचार्यों में चन्द्रगच्छ में चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धर्मघोषसूरि हुए जिनके चरणों की वन्दना जयसिंह नृप भी करता था। धर्मघोषसूरि के पश्चात् उनके पट्ट पर क्रमशः कूर्चालसरस्वती की उपाधि से विभूषित चक्रेश्वरसूरि आदि कई आचार्य हुए उनमें से एक रत्नप्रभसूरि थे। पुण्डरीकचरित के रचयिता कमलप्रभसूरि इन्हीं रत्नप्रभसूरि के शिष्य थे। कमलप्रभसूरि ने इस काव्य की रचना गुजरात के एक नगर धवलक्क (धोलका) में वि० सं० १३७२ में की है।[२] प्रस्तुत काव्य के निर्माण की प्रेरणा कवि को मुनियों से मिली थी। इस काव्य का आधार भद्रबाहुकृत शत्रुंजयमाहात्म्य, वज्रस्वामीकृत शत्रुंजयमाहात्म्य और पादलिप्तसूरिकृत शत्रुंजयकल्प बतलाया गया है।

अन्य महापुरुषों में भगवान् मुनिसुव्रत के तीर्थकाल में रामचन्द्र के चरित से सम्बद्ध सीता, लक्ष्मण चरित्र के अतिरिक्त सुग्रीव पर सुग्रीवचरित्र[३] (प्राकृत) मिलता है।

---

१. पुण्डरीकचरित, सर्ग १, श्लो० १०-११.

२. श्रीविक्रमराज्येन्द्रात् त्रयोदशशतमिते।
द्वासप्तत्यधिके वर्षे विहितं धवलक्के॥

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४.

अंजनासुन्दरीचरित—हनुमान की माता अंजनासुन्दरी पर अंजनासुन्दरी-चरित नामक, खरतरगच्छीय जिनचन्द्रसूरि की शिष्या गुणसमृद्धिमहत्तराकृत, ५०३ प्राकृत गाथाओं का काव्य (सं० १४०६), जिनहंस के शिष्य पुण्यसागरगणिकृत (३०३ संस्कृत श्लोकों में) काव्य, खरतरगच्छीय रत्नमूर्ति के शिष्य मेरुसुन्दरोपाध्यायकृत (१६ वीं शता०) तथा ब्रह्म जिनदासकृत काव्य[1] मिलते हैं।

राजीमती-रुक्मिणी-सुभद्रा-द्रौपदीचरित—भगवान् नेमिनाथ और कृष्णकालीन अनेक धर्मपरायणा महिलाओं के चरित्र भी जैन कवियों ने निबद्ध किये हैं! यथा—नेमिनाथ की भावी पत्नी राजीमती पर आशाधरकृत राजीमती-विप्रलंभ (खण्डकाव्य) तथा यशश्चन्द्र का राजीमतीप्रबोधनाटक[2]; कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी पर रुक्मिणीचरित (जिनसमुद्र, १८वीं शती), रुक्मिणी-कथानक[3] (छत्रसेन आचार्य); कृष्ण की बहिन सुभद्रा पर सुभद्राचरित्र[4] (ग्रन्थाग्र १५००) तथा पाण्डवपत्नी द्रौपदी पर द्रौपदीसंहरण (समयसुन्दर, १७वीं शती), द्रौपदीहरणाख्यान[5] (पण्डित लालजी) तथा अज्ञातकर्तृक द्रौपदी-चरित नामक काव्य मिलते हैं।

वरांगचरित्र—बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और श्रीकृष्ण के समकालीन नृप एवं पुण्यपुरुष वरांग की कथावस्तु जैन कवियों को काव्य के माध्यम से गृही-धर्म—अणुव्रत तथा अध्यात्मधर्म को समझाने में बहुत प्रिय रही है। वरांग के चरित में धर्मार्थकाममोक्ष चतुर्वर्ग-समन्वित धर्मकथा के दर्शन काव्यरचयिताओं ने किये और पाठकों को कराये हैं। अबतक वरांगचरित नाम से संस्कृत में तीन, कन्नड में एक तथा हिन्दी में दो काव्य उपलब्ध हुए हैं। केवल संस्कृत रचनाओं का ही यहाँ परिचय प्रस्तुत किया जाता है—

१. वरांगचरित—जैन चरित काव्यों में संस्कृत का महत्त्वपूर्ण सर्वप्रथम चरित काव्य जटासिंहनन्दि का वरांगचरित है। यद्यपि इसके पूर्व रविषेण का 'पद्मचरित' उपलब्ध है पर वह अधिकांश में 'पउमचरिय' की छाया रूप सिद्ध

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४.
२. वही, पृ० ३३१.
३. वही, पृ० ३३२.
४. वही, पृ० ४४५.
५. वही, पृ० १८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ है तथा वह बहुनायकवाली रचना है। प्रस्तुत काव्य एक नायकवाली रचना है। इसमें ३१ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर २८१५ विविध वृत्त हैं।[1]

कथावस्तु—विनीत देश के उत्तमपुर नगर में राजा धर्मसेन और रानी गुणवती से वरांग नाम का राजकुमार हुआ। युवा होने पर उसका दश राजकुमारियों से विवाह किया गया। एक समय उस नगर में भगवान् नेमिनाथ के प्रधान शिष्य वरदत्त आये। उनसे राजा धर्मसेन और राजकुमार वरांग ने धर्म श्रवण किया और अन्त में सम्यक्त्व-मिथ्यात्व का स्वरूप समझ वरांग ने उनसे अणुव्रत ग्रहण किया तथा सभी प्राणियों के प्रति मैत्री और प्रेम का आचरण प्रारंभ किया। राजा ने तीन सौ पुत्रों के रहते हुए भी वरांग के गुणों से प्रभावित हो उसे युवराज पद दिया। इससे वराङ्ग की विमाता मृगसेना और उसका पुत्र सुषेण डाह करने लगे और वरांग को भगाने के लिए उन्होंने सुबुद्धि नामक मंत्री से सहायता प्राप्त की। एक समय मंत्री के द्वारा शिक्षित दुष्ट घोड़ा वरांग को चढ़ने के लिए दिया गया जिसने कुमार को एक घने जंगल में ले जाकर पटक दिया जहाँ वरांग को अनेक कष्ट झेलने पड़े। एक बार एक हाथी की सहायता से उसने एक व्याघ्र के मुख से अपनी जान बचाई। वहीं एक पक्षी ने एक सुन्दरी का रूप धारण करके वराङ्ग को लुभाना चाहा किन्तु स्वदारसन्तोषव्रत की परीक्षा में वह अडिग निकला। वहीं भ्रमण करते समय वह भीलों द्वारा पकड़ा गया पर उनके मुखिया के पुत्र को सर्पदंश से अच्छा करने के कारण उसे उनसे मुक्ति मिली। एक बार भीलों से लड़कर उसने वणिग्दल की रक्षा की और उनके मुखिया के साथ ललितपुर आकर 'कश्चिन्द्भट' नाम धारण कर वहाँ रहने लगा।

इधर वराङ्ग के अकस्मात् गायब हो जाने से उसके माता-पिता और पत्नियाँ बहुत शोकाकुल हो गये पर एक मुनि के उपदेश से सान्त्वना पाकर वे सब अपना समय धर्म-ध्यान में बिताने लगे। एक बार मथुरा के राजा द्वारा ललितपुर पर चढ़ाई करने पर कश्चिन्द्भट नामधारी वरांग ने वहाँ के राजा की सहायताकर उसे मार भगाया। तब ललितपुर नरेश ने उससे अपनी कन्याओं के विवाह के साथ आधा राज्य प्रदान किया। एक समय उसके पिता के राज्य पर बकुलनरेश ने आक्रमण किया क्योंकि उसके सौतेले भाई सुषेण के राज्य सम्हालने के कारण शासन कार्य बिगड़ गया था। उसके पिता ने ललितपुर के राजा से

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ३४२; डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये (सं०), वरांगचरित, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहायता की याचना की। इस मौके का वरांग ने लाभ उठाया और बकुलनृप को परास्तकर अपने पिता के नगर में प्रवेश किया। उत्तमपुर की जनता ने वरांग का स्वागत किया। इसके बाद अपने विरोधियों को क्षमाकर वह वहाँ का राज्यशासन सम्हालने लगा और पिता की आज्ञा से नये देशों को जीतने निकला। पीछे उसने नये राज्य की स्थापनाकर आनर्तपुर को अपनी राजधानी बनाई। एक दिन उसने अपनी प्रधान रानी के एक प्रश्न पर गृहस्थ का मर्म बतलाया तथा वहीं जिनगृह तथा जिनप्रतिमा की स्थापना की।

एक दिन आकाश में वराङ्ग ने टूटते हुए तारे को देखा। इससे उसे वैराग्य हो गया और उसने अपने पुत्र सुगात्र को राज्यभार सौंपकर वरदत्त केवलीसे जिनदीक्षा ले ली तथा तपस्या कर मुक्ति पद प्राप्त किया।

वराङ्गचरित के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में उसे धर्मकथा[१] कहा गया है। यद्यपि कवि ने इस रचना को महाकाव्य की उपाधि नहीं दी है फिर भी इसमें पौराणिक महाकाव्य की अनेक विशेषताएँ हैं, यथा—सर्गों में विभाजन तथा महाकाव्योचित नगर, ऋतु, केलि, विरह, विवाह, युद्ध, विजय आदि का वर्णन, विभिन्न छन्दों का उपयोग तथा सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन। इसका नायक वराङ्ग धर्मवीर और युद्धवीर है।

वराङ्गचरित में जैन सिद्धान्त और नियमों का वर्णन बहुत है। चौथे से लेकर दसवें तक तथा छब्बीसवाँ और सत्ताईसवाँ सर्ग इस निमित्त ही रचे गये हैं। यदि इन सर्गों को ग्रन्थ से निकाल भी दिया जाय तो घटनाओं के वर्णन में कोई अन्तर नहीं आता। इस काव्य के विविध स्थलों में जीव और कर्म-सम्बन्ध, सुख और दुःख का कारण, सम्यक्त्व और मिथ्यात्व, संसार का स्वरूप, गृहस्थधर्म, जिनपूजा और जिनमन्दिर-निर्माण का महत्त्व, महाव्रत, गुप्ति, समिति आदि का निरूपण किया गया है। कवि ने अनेक प्रसङ्गों में इतर मतों की आलोचना की है। उन्होंने संसार की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय के कारण स्वरूप पुरुष, ईश्वर, काल, कर्म, दैव, ग्रह आदि का खण्डन किया है। इसी तरह बौद्ध सिद्धान्तों—क्षणिकवाद, शून्यवाद, विज्ञप्तिमात्रतावाद और प्रतीत्यसमुत्पाद-वाद का खण्डन किया है। कवि ने रुद्र, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, कुमार और बुद्ध के देवत्व की भी समीक्षा की है। कवि ने जन्मना वर्ण-व्यवस्था का खण्डन

---

१. इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते। स्फुटशब्दार्थसन्दर्भे वराङ्गचरिताश्रिते॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है और पुरोहित वर्ग की तीव्र आलोचना करते हुए ब्राह्मणत्व का आधार विद्वत्ता, सत्यता और साधुशीलता बतलाया है।[1]

कवि ने अपने समय (बादामी के चालुक्य वंश के राज्यकाल) में दक्षिण भारत के जैनधर्म का एक सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। उन्होंने जैन मन्दिरों, जैन मूर्तियों और जैन महोत्सवों का सुन्दर वर्णन किया है, साथ में राज्यों की ओर से मन्दिरों को ग्राम वगैरह दिये जाने का भी उल्लेख किया है। इसका समर्थन कदम्ब, चौलुक्य और राष्ट्रकूटवंशीय शिलालेखों से भी होता है। इस काव्य से तत्कालीन अन्य सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति का भी दिग्दर्शन होता है।[2]

विविध वर्णन और धार्मिक चर्चाओं के रहने पर भी काव्य-शास्त्र की दृष्टि से इस काव्य में कुछ विशेषताएँ और त्रुटियाँ भी हैं। वैसे काव्य शान्तरस-प्रधान है फिर भी यत्र-तत्र अन्य रसों के दर्शन होते हैं। यथा वरांग और उसकी नवोढ़ा पत्नियों के केलि-वर्णन में संयोग-शृंगार, त्रयोदश सर्ग में पुलिन्द बस्ती के चित्रण में बीभत्स रस की तथा चतुर्दश सर्ग में युद्ध-वर्णन में वीर रस की अभिव्यक्ति सुन्दररूपेण हुई है। वरांगचरित की शैली अस्तव्यस्त है। इसमें संस्कृत भाषा का प्रवाह उतना सरस नहीं है। इसमें कई प्राकृत शब्दों का संस्कृत में प्रयोग हुआ है यथा गोण, तुम्ब, बर्कर, अद्धा आदि। कई का लिंग बदला गया है यथा गेह, जाल, भूषण, चक्र को पुंलिंग और अक्षत, वृत्तान्त को नपुंसकलिंग। अश्वघोष, वाल्मीकि आदि के समान इसमें कवि ने धातु के अनियमित रूपों का प्रयोग किया है यथा ससृजुः के लिए ससर्जुः, जुहुवुः के लिए जुह्वुः, सुसाध्य के लिए सुसाधयित्वा आदि।[3] अलंकारों के प्रयोग में कवि उलझा नहीं है फिर भी उसकी अनेक उपमाएँ प्रशंसा योग्य हैं।[4] यथा—

निदाघमासे व्यजनं यथैव करात्करं सर्वजनस्य याति।
तथैव गच्छन् प्रियतां कुमारो वृद्धिं च बालेन्दुरिव प्रयातः ॥२८.६०॥

वरांगचरित में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है उनमें उपजाति का सर्वाधिक (१८७९), इसके बाद अनुष्टुप् (४६९) का। अन्य छन्दों में द्रुत-

१. प्रस्तावना, पृ० ३२-३५, ६८-७०.
२. वही, पृ० ३५-३९ और ७०-७३.
३. वही, पृ० ४२-४८ और ७४-७६.
४, वही, पृ० ५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विलंबित, भुजंगप्रयात, वंशस्थ, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षिणी, मालभारिणी, मालिनी और वसन्ततिलका उल्लेखनीय है। काव्य में छन्द-सम्बन्धी अनियमितताएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं, जैसे अनुष्टुप् के कुछ छन्दों में नौ अक्षर हैं। एक उपजाति में एक चरण वंशस्थ वृत्त का है। एक में अक्षराधिक्य है।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य में ग्रन्थकार का कहीं नामोल्लेख नहीं हुआ, न कोई प्रशस्ति ही दी गई है इससे उसके सम्बन्ध में अन्तरङ्ग साक्ष्य एक प्रकार से मूक है पर बाह्य साक्ष्यों से हमें अवश्य सहायता मिलती है। यथा सर्वप्रथम उद्योतनसूरि ने अपने काव्य कुवलयमाला (ई० ७७८) में वरांगचरित और उसके रचयिता जटिल का उल्लेख किया है।[2] इसके पाँच वर्ष बाद जिनसेन ने अपने हरिवंशपुराण (ई० ७८३) में केवल वरांगचरित की प्रशंसा की है—'सुन्दरी नारी की तरह वराङ्गचरित की अर्थपूर्ण रचना अपने गुणों से किसके हृदय में अपने प्रति गाढ़ अनुराग उत्पन्न नहीं करती ?'[3] एक अन्य जिनसेन के आदिपुराण (लग० ई० ८३८) में केवल जटाचार्य की प्रशंसा की गई है[4], साथ ही उसमें वराङ्गचरित से बहुत-सी सामग्री भी ली गई है। धवल कवि ने अपने अपभ्रंश हरिवंश (११वीं शती) में तो रचयिता और काव्य दोनों का एक साथ उल्लेख किया है।[5] कन्नड 'त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित' (चामुण्डरायपुराण) के रचयिता मंत्री एवं सेनापति चामुण्डराय ने अपने पुराण के एक गद्यांश में वराङ्गचरित के प्रथम सर्ग के छठे और सातवें श्लोकों को व्याख्यान रूप में दिया है और प्रथम सर्ग के १५वें पद्य को 'जटासिंहनन्द्याचार्यवृत्तम्' कर के उद्धृत किया है।

उक्त उल्लेखों से निष्कर्ष निकलता है कि इस वरांगचरित के रचयिता जडिल, जटाचार्य या पूर्ण नाम जटासिंहनन्द्याचार्य हैं। कन्नड साहित्य के कवियों—

---

१. प्रस्तावना, पृ० ४८-४९.

२. जेहिं कए रमणिज्जे वरंगपउमाणचरियवित्थारे।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणो॥

३. वराङ्गनेव सर्वाङ्गैर्वराङ्गचरितार्थवाक्।
कस्य नोत्पादयेद्गाढमनुरागं स्वगोचरम्॥ १. ३५.

४. काव्यानुचिन्तने यस्य जटाः प्रचलवृत्तयः।
अर्थान्स्मानुवदन्तीव जटाचार्यः स नोऽवतात्॥ १. २०.

५. जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु जडिलमुणिणा वरंगचरित्तु।

Jain Education International 	For Private & Personal Use Only 	www.jainelibrary.org

पम्प, नयसेन, जन्न, गुणवर्म, कमलभव और महाबलि ने अपने पुराणों में जटासिंहनन्दि का उल्लेख किया है। प्रस्तुत कवि ने अपने ग्रन्थ में किसी भी पूर्ववर्ती कवि का उल्लेख नहीं किया है। चूँकि इनका सर्वप्रथम उल्लेख उद्योतन-सूरि की कुवलयमाला (शक सं० ७०० = ७७८ ई०) में हुआ है अतः जटासिंह-नन्दि इनसे अवश्य पूर्ववर्ती हैं। कन्नड साहित्य में इनके विविध उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि ये कर्णाटकवासी थे। कर्णाटक प्रदेश के पल्लक्कीगुण्डु नाम की पहाड़ी पर अशोक के शिलालेख के समीप दो पदचिह्न अंकित हैं। उनके ठीक नीचे पुरानी कनड़ी में दो पंक्ति का एक शिलालेख है जिसमें लिखा है कि चावय्य ने जटासिंहनन्द्याचार्य के पदचिह्नों को तैयार कराया। संभवतः इसी कवि का वह समाधिस्थल हो।[1] इस काव्य के सम्पादक डा० आ० ने० उपाध्ये ने जटासिंहनन्दि का समय सातवीं शती ईस्वी का अन्त बतलाया है।[2] कवि के इस काव्य की तुलना अनेक दृष्टियों से अश्वघोष के बुद्धचरित से की जा सकती है। कालिदास और भारवि की रचनाओं और वरांगचरित में कोई साम्य नहीं है।[3]

वरांगचरित पर अन्य संस्कृत रचनाएँ ६-७ शताब्दी बाद की हैं।

२. वरांगचरित—इस द्वितीय रचना में १३ सर्ग हैं और काव्य का परिमाण अनुष्टुप् छन्दों में १३८३ है।[4] इसका आधार पूर्वोक्त वरांगचरित है। पर इसके रचयिता ने उक्त कथानक में से वर्णन और धर्मोपदेशों को कम कर दिया है। धार्मिक और दार्शनिक चर्चाएँ भी नाममात्र के रूप में हुई हैं। कथानक में कवि ने मात्र इतना परिवर्तन किया है कि जहाँ जटासिंहनन्दि ने वरांग की विरक्ति का कारण आकाश में टूटते हुए तारे का दर्शन बतलाया, वहाँ प्रस्तुत काव्य में उसकी विरक्ति का कारण दीपक का तैल घट जाने से उसकी क्षीण होती हुई ज्योति का दर्शन है।

यद्यपि यह पूर्व वरांगचरित का संक्षिप्त रूप है फिर भी कवि ने अपने भावों को सुन्दर रसों, अलंकारों और छन्दों में व्यक्त करने में सफलता पाई है। इसमें

---

१. प्रस्तावना, पृ० १९.
२. वही, पृ० २२.
३. वही, पृ० ७३.
४. पं० जिनदास पार्श्वनाथ फड़कुले द्वारा सम्पादित और मराठी में अनूदित, सोलापुर, १९२७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनावश्यक बातों को हटा देने से कथानक में पूर्ण धारावाहिकता पाई जाती है। इस काव्य के द्वितीय सर्ग में श्रृंगार रस, छठे और आठवें सर्ग में वीर रस, सातवें में करुण रस तथा शान्त रस की योजना की गई है। इस काव्य में प्रचलित सभी अलंकारों का व्यवहार किया गया है। विविध छन्दों के प्रयोग में कवि निष्णात है। प्रथम सर्ग में वंशस्थ, २, ६, ९ और १३ सर्ग में उपजाति तथा ४, ५, ७, ८ और ११ सर्ग अनुष्टुप् में, ३ सर्ग स्वागता में, १० सर्ग वसन्ततिलका में, १२ सर्ग गीति तथा आर्या छन्दों में निर्मित किये गये हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में दो पद्यों के छन्द अवश्य देखे गये हैं और तेरहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। काव्य चमत्कार के हेतु बीच-बीच में नीतिवचनों का भी प्रयोग किया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—कवि ने काव्य के अन्त में एक पद्य द्वारा अपना नाम वर्धमान भट्टारक तथा मूलसंघ, बलात्कारगण और भारतीगच्छ सूचित किया है।[१] पर उसने अपनी गुरुपरम्परा आदि का उल्लेख नहीं किया है। जैन शिलालेखों से बलात्कारगण के दो वर्धमानों के नाम ज्ञात होते हैं। शक सं० १३०७ (ई० सन् १३८५) के विजयनगर से प्राप्त एक लेख में धर्मभूषण के गुरु के रूप में एक वर्धमान उल्लिखित हैं[२] और दूसरे हुम्मच शिलालेख (ई० सन् १५३०) के रचयिता के रूप में माने गये हैं।[३] विजयनगर के धर्मभूषण न्यायदीपिका ग्रन्थ के रचयिता ही हैं जिनके समय की पूर्वसीमा शक संवत् १२८० (ई० १३५८) मानी गयी है। इससे उनके गुरु का समय इसी के आस-पास रहा होगा। श्रवणबेलगोला से प्राप्त एक लेख में एक वर्धमानस्वामि का समय शक सं० १२८५ (ई० सन् १३६३) दिया गया है। यदि ये वे ही वर्धमान हैं जो कि इस काव्य के रचयिता हैं तो इन्हें ईस्वी सन् की १४वीं शताब्दी उत्तरार्ध

---

१. स्वस्ति श्रीमूलसंघे भुवि विदितगणे श्रीबलात्कारसंज्ञे,
श्रीभारत्याख्यगच्छे सकलगुणनिधिवर्धमानाभिधानः।
आसीद्भट्टारकोऽसौ सुचरितमकरोच्छ्रीवराङ्गस्य राज्ञो,
भव्यश्रेयांसि तन्वद्भुवि चरितमिदं वर्ततामार्कतारम्॥ १३.८७

२. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २ (मा० दि० जैन ग्रन्थमाला), लेख सं० ५८५.

३. वी, लेख सं० ६६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विद्वान् मान सकते हैं। हुम्मच के कन्नड-संस्कृत लेख के रचयिता वर्धमान ने भी धर्मभूषण के गुरु के रूप में उक्त वर्धमान की स्तुति की है।[1]

ज्ञानभूषण भट्टारककृत एक अन्य वरांगचरित का भी उल्लेख मिलता है।[2]

महावीरकालीन श्रेणिक-परिवार के चरित्र :

भग० महावीर का समकालीन राजगृहनरेश श्रेणिक जैन धर्मानुयायी था। जैनागमों में उसका कई स्थलों पर वर्णन है। यहाँ उसका विशेष परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। जैन चरित्र काव्यों में उस पर कई रचनाएँ मिलती हैं[3]—

१	श्रेणिकचरित्र (श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति)	देवेन्द्रसूरि (सं० १३२७ के पूर्व)
२	श्रेणिकद्व्याश्रयकाव्य	जिनप्रभ (वि० सं० १३५६)
३	श्रेणिकपुराण या चरित्र	भट्टारक शुभचन्द्र (वि० सं० १६१२)
४	श्रेणिकराजकथा (गद्य)	धर्मवर्धन या धर्मसिंह (वि० सं० १७३६ के लगभग)
५	श्रेणिकपुराण	बाहुबलि
६-७	श्रेणिकचरित्र	अज्ञात

श्रेणिकचरित—इसमें ७२९ अनुष्टुप् पद्य हैं।[4] बीच-बीच में प्राकृत पद्य भी हैं। यह श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति से अलगकर प्रकाशित किया गया है। वहाँ यह प्रभावना के महत्त्व को सूचित करने के लिए प्रस्तुत किया गया है। इसमें संक्षेप में श्रेणिक, उसकी रानियों, पुत्रों तथा जीवन की अनेक धार्मिक घटनाओं का वर्णन है। यह एक धार्मिक काव्य है। इसमें श्रेणिक नरेश के राजनैतिक जीवन का कोई चित्रण नहीं है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि हैं। इनका स्वर्गवास वि० सं० १३२७ में हुआ था। इनकी अन्य रचनाएँ—पाँच नव्यकर्मग्रन्थ सटीक, भाष्यत्रय, श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति, धर्मरत्नटीका, सिद्धपंचाशिका और सुदर्शनाचरित्र मिलती हैं।

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, पृ० ५२०.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४१.

३. वही, पृ० ३९९.

४. ऋषभदेव केशरीमल श्वे० जैन संस्था, रतलाम, सं० १९९४.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अन्य श्रेणिकचरितों में जिनप्रभ के श्रेणिकद्व्याश्रयकाव्य का शास्त्रीय काव्यों में वर्णन करेंगे। भट्टा० शुभचन्द्र का श्रेणिकपुराण एक साधारण रचना है जो हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित है।[1] शेष का उल्लेख मिलता है।[2]

जैनागमों में न केवल श्रेणिक का ही चरित वर्णित है बल्कि उसके राजकुमारों का भी। जैन कवियों ने जिस तरह श्रेणिक पर स्वतंत्र काव्य रचनाएँ की हैं उसी तरह उसके राजकुमारों पर भी चरित एवं कथा-ग्रन्थ लिखे हैं। राजा श्रेणिक की अनेक रानियाँ थीं और उनसे अनेक राजकुमार थे। उनमें से अशोकचन्द्र[3] अर्थात् कुणिक या अजातशत्रु पर, दूसरे पुत्र अभयकुमार[4] तथा अन्य राजकुमारों में मेघकुमार[5] और नन्दिषेण[6] पर चरित-काव्य एवं कथाएँ मिलती हैं। इनमें से अभयकुमार-चरित्र पर लिखा एक काव्य कुछ महत्त्वपूर्ण है, उसका परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

अभयकुमारचरित—यह अभयाङ्क चिह्नित काव्य १२ सर्गों का है।[7] इसका रचना-परिमाण ९०३६ श्लोक है। इसमें राजा श्रेणिक के पुत्र अभयकुमार का विस्मयकारी चरित्र वर्णित है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—राजगृह के राजा प्रसेनजित के कई पुत्रों में चातुर्यगुण-सम्पन्न एक पुत्र श्रेणिक था। पर पिता की उपेक्षा के कारण वह परदेश चला जाता है जहाँ वह श्रेष्ठीपुत्री नन्दा से विवाह कर लेता है। कुछ दिनों बाद पिता की रुग्णता का समाचार पाकर वह राजगृह लौटता है। वहाँ उसका राजतिलककर प्रसेनजित स्वर्गवासी हो जाता है। इधर पितृगृह में नन्दा के पुत्र उत्पन्न होता है जिसका नाम अभयकुमार रखा जाता है। वयस्क होने पर अभयकुमार अपनी माता को साथ लेकर राजगृह अपने पिता के पास आता है। पुत्र के चातुर्य से प्रसन्न होकर श्रेणिक उसे प्रधान मंत्री बना देता है। दूसरे-तीसरे सर्ग में अभयकुमार की चातुरी से श्रेणिक का विवाह वैशालीनरेश चेटक की पुत्री चेल्लना से होता है। गर्भवती

---

१. दिग० जैन पुस्तकालय, सूरत.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३९९.

३. वही, पृ० १७.

४. वही, पृ० १२-१३.

५. वही, पृ० ३१३.

६. वही, पृ० १९९.

७. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१७; जिनरत्नकोश, पृ० १२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने पर वह चेल्लना के विचित्र दोहद को अपनी चातुरी से शान्त करता है। इसी तरह श्रेणिक की दूसरी रानी धारिणी के अकालवर्ष दोहद को वह अपनी चातुरी से पूर्ण करता है। चतुर्थ सर्ग में उसके अनेक विस्मयकारी कार्यों का वर्णन है। पाँचवे से सातवें सर्ग में श्रेणिक और उसकी रानियों से संबंधित कथाएँ हैं। एक कथा में चेल्लना का हार खोने पर अभयकुमार अपनी चातुरी से उसे खोज निकालता है। इसी तरह आठवें से दसवें सर्गों में अनेक कथाओं का वर्णन है जो किसी न किसी प्रकार से अभयकुमार के चातुर्य प्रदर्शन से सम्बद्ध की गई हैं। ग्यारहवें सर्ग में महावीर स्वामी के राजगृह आगमन पर अभयकुमार दीक्षा-ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त करता है और बारहवें में दीक्षित हो तपस्याकर सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होता है।

इस काव्य की कथा बड़ी रोचक है। इस काव्य में प्रकृति के विविध रूपों के चित्रण में काव्यकार को पर्याप्त सफलता मिली है।[1] अनेक स्थलों पर उसने प्रकृति का स्वाभाविक रूप में चित्रण किया है। पात्रों के सौन्दर्य-चित्रण की ओर भी कवि ने पर्याप्त ध्यान दिया है।[2] पर वह परम्परागत उपमानों में वर्णित है, सहज सौन्दर्य के रूप में नहीं।

अभयकुमारचरित्र में अपने समय के समाज का, उसमें व्याप्त धारणाओं, रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और मान्यताओं का यथार्थ चित्रण हुआ है।[3] इस काव्य में सामाजिक अध्ययन की जितनी सामग्री मिलती है उतनी इस युग के अन्य काव्यों में नहीं मिलती।

भाषा की दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। अन्य काव्यों की अपेक्षा इसकी भाषा बहुत ही व्यावहारिक और मुहावरेदार है। इसमें सरलता और सरसता सर्वत्र व्याप्त है। समस्त पदावली का प्रयोग बहुत ही कम किया गया है। कहीं-कहीं अनुकूल शब्दों के चयन से सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गये हैं।[4] इस काव्य

---

१. वही, सर्ग, १.२७८-२८२; २.७८; ३.२०४-२०५, २४२-२४३; ६.५९-६२; ८.५.

२. वही, सर्ग, १.१६७, २०१; २.२.

३. वही, सर्ग, १.३०६-३३४, ३९२-४१०, ४९६-४७१; २.१०१-१५१; ३.१७४-१७७, १८३-१८५; ४.१०८, १६८, २५८; ५.२२९-२३०, ५६९-५७१; ९.४०-४७, ५०, ५१, ५६, ५८, ४३७, ६६०-६६८; ११. २६२, ९०३-९०४, ९२१-९२२.

४. वही, सर्ग, १०.५७-५९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में लोकोक्तियों एवं मुहावरों का अत्यधिक प्रयोग हुआ है।[1] उनका प्रयोग ऐसी कुशलता से किया गया है कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया है और वे वाक्य के अंग बन गये हैं। इस काव्य में देशी भाषा से प्रभावित शब्दों का भी बहुत प्रयोग हुआ है। कवि ने अनेक देशी शब्दों को ही संस्कृत रूप देकर उनका प्रयोग किया है, जैसे डोंगर (डूंगर—पर्वत), केदारक (क्यारि), ह्रदते (ह्रगता है), सिघन (सूघना), तालक (ताला), विभामण (विछावन), प्रोयितुं (पिरोना) आदि। इसकी भाषा के प्रवाह में अलंकारों का प्रयोग भी स्वभावतः हो गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन किया गया है। १,३,५,७,९,११,१२ सर्गों में अनुष्टुभ् छन्द का प्रयोग हुआ है। दूसरे में उपजाति, चौथे में माधव, छठे में रथोद्धता, आठवें में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग हुआ है। दसवें और प्रशस्ति में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। इस काव्य में कुल १५ छन्दों का प्रयोग हुआ है जैसे अनुष्टुप्, उपजाति, वसन्ततिलका, रथोद्धता, माधव, तोटक, स्रग्विणी, दोधक, द्रुतविलम्बित, स्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, आर्या, शिखरिणी तथा मन्दाक्रान्ता।

कविपरिचय और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ग्रन्थ-कर्ता का परिचय मिलता है। तदनुसार इसके रचयिता चन्द्रतिलक उपाध्याय चन्द्रगच्छीय थे। इसी चन्द्रगच्छ में प्रसिद्ध विद्वान् वर्धमानसूरि हुए थे। उनके बाद क्रमशः जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिन-चन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि और जिनेश्वरसूरि हुए। कवि चन्द्रतिलक उपाध्याय जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। प्रशस्ति में कवि ने विभिन्न मुनियों का साभार उल्लेख किया है जिनसे उसने विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया था। इस कृति की रचना कवि ने जिनपाल उपाध्याय की प्रेरणा से की थी। इसका संशोधन लक्ष्मीतिलकगणि और अभयतिलकगणि ने किया था। इसके लेखन का प्रारम्भ वाग्भटमेरु (बाड़मेर) नगर में हुआ था और समाप्ति गुजरात के खम्भात

---

१. वही, सर्ग १.१३०; ४.३९४; ५.४४२, ७०२; ७.६९०; ८.१२८, १५३; ९.८४, १७२, ४३०, ४८६, ६८५,९२२, ९२३; ११.७२१; १२. १७१ आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नगर में बघेला नरेश वीसलदेव के राज्य में वि० सं० १३१२ में दीपावली के दिन हुई थी।

अभयकुमारचरित नाम की रचनाओं में भट्टारक सकलकीर्तिकृत तथा एक अज्ञात लेखक की रचना का उल्लेख मिलता है।[१]

महावीरकालीन अन्य पात्रों के चरित :

भगवान् महावीर के समकालीन अनेक सन्तों, नरेशों, धार्मिक राजकुमारों, राजकुमारियों तथा सेठ, गृहस्थ एवं अन्य वर्ग के लोगों के चरित्र पर भी जैन कवियों ने काव्य लिखे हैं।

राजन्यवर्ग में राजगृह के नृप श्रेणिक और उसके राजकुमारों के अतिरिक्त कौशाम्बी नरेश पर उदयनचरित्र[२], उज्जैनी नृप पर प्रद्योतकथा[३], सिन्धु-सौवीर नृपति पर उदायनराजकथा,[४] दशार्णभद्र देश के राजा पर दशार्णभद्रचरित[५] (प्राकृत) तथा हस्तिनापुर के नरेश पर शिवराजर्षिचरित[६] लिखे गये हैं। इसी तरह राजकुमारों में पृष्ठचम्पा के राजकुमार महाशाल,[७] अतिमुक्तक[८] और मृगापुत्र[९] पर चरितग्रन्थ उपलब्ध हैं।

धार्मिक सेठों में धन्यकुमार-शालिभद्र के अतिरिक्त सुदर्शन सेठ[१०] पर भी कई काव्य लिखे गये हैं। धनी गृहस्थों में कामदेव[११] श्रावक का चरित्र उल्लेखनीय है। इसी तरह आनन्दादि[१२] दस श्रावकों पर भी चरितग्रन्थ उपलब्ध हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३.
२. वही, पृ० ४६.
३. वही, पृ० २६४.
४. वही, पृ० ४६
५. वही, पृ० १७१.
६. वही, पृ० ३८४.
७. वही, पृ० ३०७.
८. वही, पृ० ४.
९. वही, पृ० ३१३.
१०. वही, पृ० ४४४.
११. वही, पृ० ८४.
१२. वही, पृ० ३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य वर्ग में से अर्जुन मालाकार पर तथा चौरकर्मनिरत व्यक्तियों में विद्युच्चर[1], रौहिणेय[2] और दृढ़प्रहारि[3] पर चरितग्रन्थ मिलते हैं।

महासन्तों में गौतम गणधर और जम्बूस्वामी के अतिरिक्त अम्बड परिव्राजक एवं गांगेय मुनि पर चरित्र उपलब्ध हैं। भक्त महिलाओं में चन्दना, मृगावती, जयन्ती, प्रभावती, श्रीमती (आर्द्रकुमार की रानी), सुलसा एवं रेवती श्राविका आदि पर भी ग्रन्थ लिखे गये हैं।

यहाँ हम कुछ रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

गौतमचरित—भग० महावीर के प्रथम गणधर गौतम पर कई काव्य लिखे गये हैं उनमें से प्रस्तुत काव्य में ५ सर्ग हैं। इसकी रचना मंडलाचार्य धर्मचन्द्र (दिग०) ने की है। धर्मचन्द्र भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य, भानुकीर्ति के प्रशिष्य तथा श्रीभूषण भट्टारक के शिष्य थे। इस काव्य का काल सं० १७२६ है।[4]

दूसरी रचना[5] भट्टाकर यशःकीर्तिकृत का भी निर्देश मिलता है।

तीसरी रचना का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

गौतमीयकाव्य—यह काव्य ११ सर्गों में विभक्त है।[6] प्रारम्भ में श्रोताओं के मनोरंजन के लिए उपवनशोभा, षड्ऋतु-वर्णन, समवसरण की शोभा आदि का वर्णन है। इस काव्य-ग्रन्थ में गौतम इन्द्रभूति के संशय का निवारण करने के लिए और उन्हें चारित्र में प्रवेश करने के लिए भगवान् महावीर उपदेश देते हैं। उपदेश में जैनधर्म के गूढ़ से गूढ़ तथ्य आ गये हैं, जैसे तर्कों द्वारा आत्मसिद्धि आदि। इन्द्रभूति के बाद अग्निभूति, व्यक्ताचार्य, सुधर्मा, मण्डित, मेतार्य प्रभृति के सन्देहों का निराकरण तथा जैनधर्म में दीक्षा का वर्णन है। इस प्रकार इस काव्य में प्रारम्भिक जैनसंघ का एक छोटा-सा इतिहास उपस्थित किया गया है। कवि ने बड़े कौशल से क्लिष्ट एवं नीरस विषय का भी हृदयाकर्षक ढंग से काव्यशैली में वर्णन किया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३५६.
२. वही, पृ० ३३४.
३. वही, पृ० ११७.
४. वही, पृ० १११.
५. वही.
६. वही, पृ० ११२; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड सिरीज (सं० ९०), १९४०, व्याख्यासहित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्यकर्ता और रचना-समय—खरतरगच्छ के अन्तर्गत दत्तगच्छ के पाठक रूपचन्द्रगणि[1] ने सं० १८०७ में इस काव्य की रचना की। ग्रन्थ के अन्तिम चार श्लोकों में ग्रन्थकार की प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने जोधपुर नगर में श्री अभयसिंह नृप के राज्यकाल में इसकी रचना की थी।

इस काव्य पर वि० सं० १८५२ में अमृतधर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणगणि ने गौतमीयप्रकाश नामक व्याख्या लिखी है।

भग० महावीर के ११ गणधर थे पर गौतम को छोड़ अन्य पर स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं।

गांगेयभंगप्रकरण—भग० महावीर और पार्श्वनाथ सन्तानीय मुनि गांगेय के बीच नारक जीवों आदि के सम्बन्ध में हुई चर्चा का वर्णन भगवतीसूत्र के ९वें शतक के ३२वें उद्देश में दिया गया है। उसी की स्मृति जागरूक रखने के लिए गांगेय मुनि के जीवन पर पद्मविजय ने सं० १८७८ में ५४ प्राकृत गाथाओं में[2] तथा मेघमुनि के शिष्य श्रीविजय ने २३ गाथाओं में स्वोपज्ञ अवचूरि के साथ रचना[3] की है। उत्तमविजय के शिष्य धर्मविजय द्वारा रचित गांगेयभंगप्रकरण[4] का भी उल्लेख मिलता है।

उदायनराजकथा तथा प्रभावतीकथा—सिन्धु-सौवीर महावीर-बुद्ध के समय में एक विशाल राज्य माना जाता था। वहाँ के राजा का नाम उदायन था जो अपने समय का बड़ा पराक्रमी और प्रभावक राजा था। उसकी रानी का नाम प्रभावती था जो वैशाली के राजा चेटक की पुत्री थी। प्रभावती निर्ग्रन्थ श्राविका थी, पर उदायन तापस भक्त था। प्रभावती मृत्यु पाकर स्वर्ग में गई। उसने अपने पति को प्रतिबोधा और उसे दृढ़निष्ठ श्रावक बनाया। पीछे वह अपने भांजे केशी को राज्य सौंप दीक्षित हो गया। जैन कवियों को उदायन राजर्षि और प्रभावती के चरित बड़े रोचक लगे और उन्होंने उदायननृपप्रबन्ध,

---

१. इनका दूसरा नाम रामविजयोपाध्याय है और इन्हें दयासिंह का शिष्य कहा गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १०४; आत्मवीर ग्रन्थमाला में १९१७ में प्रकाशित.

३. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित; इसकी हस्त० प्रति सं० १६७२ की मिली है।

४. जिनरत्नकोश, पृ० १०४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदायनराजकथा और उदायनराजचरित्र नाम से तीन-चार काव्य[1] तथा रानी प्रभावती पर प्रभावतीकथा, प्रभावतीकल्प, प्रभावतीचरित्र (संस्कृत), प्रभावती-दृष्टान्त (प्राकृत) नामक कृतियों[2] की रचना की।

मृगापुत्रचरित—यह उत्तराध्ययन के १५वें अध्ययन पर आश्रित प्राकृत ग्रन्थ है।[3] इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। विपाकसूत्र में भी एक मृगापुत्र का वर्णन आता है जिसके द्वारा दुःखविपाक का एक रोमांचकारी चित्र उपस्थित किया गया है।

अतिमुक्तकचरित—अन्तगडदसाओ में दो अतिमुक्तकों का वर्णन आता है : एक तो नेमि और कृष्ण के समय के जो कंस और देवकी के अग्रज तथा कुमारकाल में दीक्षित हो गये थे और दूसरे महावीर के समय के राजकुमार जो आध्यात्मिक समस्याओं के समाधानार्थ कुमारकाल में ही भिक्षु-जीवन स्वीकारकर अन्त में मुक्त हुए थे। अतिमुक्तक के चरित्र को लेकर संस्कृत में तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं जिनमें से एक २११ संस्कृत पद्यों में जिनपति के शिष्य पूर्णभद्रगणि ने सं० १२८२ में पाल्नपुर में रहते हुए लिखी थी।[4] पूर्णभद्रगणि की अन्य कृतियाँ धन्यशालिभद्रचरित्र (सं० १२८५) तथा कृतपुण्यचरित्र (सं० १३०५) हैं।

दूसरा काव्य भी संस्कृत में है जिसे अंचलगच्छ के शालिभद्र के शिष्य धर्मघोष ने सं० १४२८ में रचा था।[5]

एक अज्ञात लेखककृत अतिमुक्तचरित्र[6] का भी उल्लेख मिलता है।

सुदर्शनचरित—इसमें सुदर्शन मुनि का चरित्र वर्णित है। जैन परम्परा में इन्हें महावीर के समकालीन अन्तःकृत केवली माना गया है। इनका संक्षिप्त वर्णन अन्तगडदसाओ तथा भत्तपइण्णा में दिया गया है। भत्तपइण्णा और मूला-राधना (भगवती आराधना) में इन्हें णमोकार मन्त्र के प्रभाव से मूर्ख गोपाल के जीवन से उत्कर्षकर सुदर्शन सेठ और उसी जन्म में मोक्षफल पानेवाला

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४६.
२. वही, पृ० २६६.
३. वही, पृ० ३१३.
४. वही, पृ० ४; जिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, १९४४.
५. वही, पृ० ४.
६. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाया गया है। इस कथा का विस्तार हरिषेणाचार्य के बृहत्कथाकोश में, श्रीचन्द्रकृत अपभ्रंश कहाकोसु, तथा रामचन्द्र मुमुक्षुकृत पुण्याश्रवकथाकोश में दिया गया है। एतद्विषयक सर्वप्रथम स्वतंत्र काव्य अपभ्रंश में नयनन्दि का सुदंसणचरिऊ (सं० ११००) है। इसके बाद हमें संस्कृत की तीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है। उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. भट्टारक सकलकीर्ति (१५वीं का उत्तरार्ध) कृत काव्य में आठ परिच्छेद हैं।[1] उसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १६५४ की मिली है। सकलकीर्ति और उनकी कृतियों का उल्लेख पहले कर चुके हैं।

२. भट्टारक मुमुक्षु विद्यानन्दिकृत काव्य १२ अधिकारों में विभक्त है। ग्रन्थ-परिमाण १३६२ श्लोक-प्रमाण है।[2] ग्रन्थ के प्रथम अधिकार में महावीर-समागम, दूसरे में श्रावकाचार एवं तत्त्वोपदेश, अष्टम में सुदर्शन के पूर्वभवों का तथा नवम में द्वादश अनुप्रेक्षाओं का वर्णन है और शेष अधिकारों में सुदर्शन के वर्तमान भवों का। समस्त ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्दों में निर्मित है पर अधिकारान्त में छन्द बदल दिये गये हैं। ग्रन्थ में 'उक्तं च' द्वारा अन्य ग्रन्थों से प्राकृत एवं संस्कृत पद्य उद्धृत किये गये हैं।

प्रस्तुत काव्य के प्रत्येक अधिकार की अन्तिम पुष्पिका तथा ग्रन्थान्त में दी गई प्रशस्ति में कर्ता ने अपना नामनिर्देश तथा गुरुपरम्परा का उल्लेख किया है जिससे मालूम होता है कि इसके लेखक मुमुक्ष विद्यानन्दि हैं। ये मूलसंघ-भारतीगच्छ, बलात्कारगण के भट्टारक प्रभाचन्द्र के प्रशिष्य तथा भट्टारक देवकीर्ति के शिष्य थे। विद्यानन्दि के शिष्य मल्लिभूषण, श्रुतसागर और ब्रह्म नेमिदत्त भी अच्छे कवि एवं ग्रन्थकार हुए हैं। विद्यानन्दि के कार्यकलाप का समय वि० सं० १४८९ से १५३८ माना जाता है। प्रस्तुत काव्य की रचना उन्होंने गन्धारपुरी (सूरत या उसके भाग या समीपवर्ती नगर) में सं० १५१३ के

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४; राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ११; मराठी अनुवाद सहित सोलापुर से सन् १९२७ में प्रकाशित; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४५४-५६ में विशेष परिचय दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४; भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी, वि० सं० २०२७, डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित, प्रस्तावना द्रष्टव्य.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगभग की थी।[1] इस काव्य की हस्तलिखित प्राचीन प्रति सं० १५९१ की मिलती है।

विद्यानन्दिकृत उक्त काव्य को ही भ्रान्ति से उनके शिष्य ब्रह्म नेमिदत्त या मल्लिभूषण या विश्वभूषणकृत मान लिया गया है।

कामदेवचरित—महावीर के जीवन-प्रसंग में धनी गृहस्थ कामदेव का वर्णन आता है। उसी को लेकर रोचक काव्य के रूप में अंचलगच्छ के मेरुतुंगसूरि ने वि० सं० १४०९ में चरित्र निर्मित किया।[2]

आनन्दसुन्दरकाव्य—महावीरकालीन दस श्रावकों[3] के समुदित चरित के रूप में संस्कृत भाषा में आनन्दसुन्दरकाव्य[4] अपर नाम दशश्रावकचरित की रचना सर्वविजयगणि ने की। उक्त गणि ने तपागच्छीय लक्ष्मीसागरसूरि के पट्टधर सुमतिसाधु के पट्टकाल में मालवा के गियासुद्दीन खिलजी के राजकर्मचारी जावड़ की प्रार्थना पर उक्त काव्य की रचना की थी। इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १५५१ की मिली है। सर्वविजयगणि की अन्य रचना सुमतिसम्भव भी मिलती है जिसमें सुमतिसाधु और जावड़ का चरित्र वर्णित है। दशश्रावकों के चरित को लेकर प्राकृत में जिनपति के शिष्य पूर्णभद्रगणि ने सं० १२७५ में उपासकदशाकथा[5] अपर नाम दशश्रावकचरित और साधुविजय के शिष्य शुभवर्धन ने सं० १५४२ में ग्रन्थाग्र ८०० श्लोक-प्रमाण दशश्रावकचरित्र[6] (प्राकृत) की रचना की। एक अज्ञात लेखककृत आनन्दादिश्रावकचरित[7] तथा दशश्राद्धचरित[8] नामक चरितग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं।

आर्जुनमालाकार—अर्जुनमाली घटनाविशेष के प्रभाव से समग्र मानवजाति के प्रति विद्रोही बन जाता है और प्रतिदिन सात व्यक्तियों को मार गिराने का

---

१. प्रस्तावना, पृ० १३–१७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ८४; हेमचन्द्र सभा, पाटन, १९२८.

३. दशश्रावक : आनन्द, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकोलिक, सद्दालपुत्र, महाशतक, नन्दिनीपिता, सालिहीपिता.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३०.

५. वही, पृ० ५६, १७१.

६. वही, पृ० १७१.

७. वही, पृ० ३०.

८. वही, पृ० १७१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महान् हिंसक संकल्प कर बैठता है। कालान्तर में दूसरी घटना के प्रभाव से वह प्रतिबुद्ध हो भगवान् महावीर का शिष्य बन आत्म-कल्याण करता है। इस चरित को लेकर खरतरगच्छ के गुणशेखर के शिष्य नयरंग ने सं० १६२४ के लगभग आर्जुनमालाकार काव्य लिखा।[१] इसी चरित को लेकर वर्तमान युग में तेरापन्थी आचार्य कालूगणि से दीक्षित एवं तुलसीगणि के शिष्य चन्दनमुनि ने सुललित संस्कृत गद्य में आर्जुनमालाकार ग्रन्थ लिखा है।[२] इसका रचनाकाल सं० २०२५ है। काव्य में सात समुच्छ्वास हैं। चन्दनमुनि की अनेक संस्कृत-प्राकृत रचनाएँ मिलती हैं: संस्कृत में प्रभवप्रबोधकाव्य, अभिनिष्क्रमण, ज्योतिस्फुलिंग, उपदेशामृत, वैराग्यैकसप्तति, प्रबोधपंचपञ्चाशिका, अनुभवशतक, पंचतीर्थी, आत्मभावद्वात्रिंशिका, पथिकपञ्चदशक; प्राकृत में रयणवालकहा, जयचरियं तथा णीईधम्मसुत्तीओ।

रोहिणेयकथा—महावीरकालीन प्रसिद्ध चोर, जिसका कि उनके उपदेश से उद्धार हुआ था, रोहिणेय पर रामभद्रसूरिकृत प्रबुद्धरौहिणेय नाटक के अतिरिक्त संस्कृत में कासद्रहगच्छ के देवचन्द्र के शिष्य उपाध्याय देवमूर्ति ने उक्त ग्रन्थ लिखा।[३] उपाध्याय देवमूर्ति की अन्य रचनाओं में विक्रमचरित उपलब्ध है।

विद्युच्चरचोर, जो पीछे मुनि हो गया था, पर भी भट्टारक सकलकीर्तिकृत ग्रन्थ मिलता है।[४]

चन्दनाचरित—महासती चन्दना भग० महावीर के साध्वीसंघ की प्रमुखा थी। उसके चरित्र को लेकर भट्टा० शुभचन्द्र ने यह काव्य लिखा। इस काव्य में पाँच सर्ग हैं। इसकी रचना बागड प्रदेश के डूंगरपुर नगर में हुई थी।[५] इस सम्बन्ध की अन्य स्वतन्त्र रचनाएँ प्राकृत-संस्कृत में नहीं हुई हैं।

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५८४.

२. रामलाल हंसराज गोलछा, विराटनगर (नेपाल) द्वारा प्रकाशित। इसका हिन्दी अनुवाद छोगमल चोपड़ा ने किया है।

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३३४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८ तथा जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१६; इसका अंग्रेजी अनुवाद न्यू हेवेन (अमेरिका) से सन् १९३० में एच० जोन्सन ने 'स्टडीज इन ऑनर ऑफ ब्लूमफील्ड' में प्रकाशित किया है।

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३५६.

५. सर्ग ५, पद्य सं० २०८; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृगावतीचरित—कौशाम्बी का महावीरकालीन राजवंश जैनेतर और जैन साहित्य में कवियों के लिए विविध प्रकार के कथानकचयन के लिए आकर्षक रहा है। महावीर के काल में कौशाम्बी नरेश शतानीक का परिवार प्रबुद्ध परिवार था। उसकी रानी मृगावती और बहिन जयन्ती तथा पुत्र उदयन को जैन कवियों ने अपने चरित्र एवं कथाकाव्यों का विषय बनाया है। मृगावती पर हीरविजयसूरिकृत मृगावतीआख्यान ग्रन्थाग्र ८०० श्लोक-प्रमाण मिलता है। अन्य कृतियों में मृगावतीकुलक (प्राकृत में) तथा अज्ञात लेखक की मृगावतीकथा का उल्लेख मिलता है।[1] मलधा।.२ देवप्रभसूरिकृत मृगावतीचरित्र पाँच सर्गों का एक लघु काव्य है जो अनुष्टुप् छन्दों में है।[2] सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन हुआ है। इसमें कुल मिलाकर १८४८ पद्य हैं। इस काव्य में दिखाया गया है कि उज्जयनी नरेश प्रद्योत मृगावती को उसके अतिशय सौन्दर्य के कारण प्राप्त करना चाहता था और इसके लिए उसने कौशाम्बी पर घेरा डाल दिया। मृगावती ने अपने बुद्धि-कौशल से उसे ऐसा न करने दिया और अन्त में भग० महावीर के समक्ष दीक्षित हो गई। प्रद्योत को महावीर ने परस्त्रीवर्जन का उपदेश दिया। देवप्रभसूरि की अन्य रचनाओं में पाण्डवपुराण, सुदर्शनाचरित तथा काकुस्थकेलिकाव्य मिलते हैं। मृगावतीचरित्र में मृगावती के सतीत्व एवं बुद्धि-कौशल तथा जिनदीक्षा का रोचक वर्णन दिया गया है।

जयन्तीचरित—इसे सिद्धजयन्तीचरित्र, जयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रह या केवल प्रश्नोत्तरसंग्रह नाम से कहते हैं। यह प्राकृत में निर्मित ग्रन्थ है जिसमें मूल २८ गाथाएँ हैं जिनका आधार भगवतीसूत्र के १२वें शतक का द्वितीय उद्देशक है।[3] इनकी रचना पूर्णिमागच्छ के मानतुंगसूरि ने की थी। इस पर उनके शिष्य मलयप्रभसूरि ने एक विशाल वृत्ति लिखी है जिसका ग्रन्थाग्र ६६०० श्लोक-प्रमाण है।[4] इस वृत्ति में प्राकृत भाषा में ही ५६ के लगभग कथाएँ दी गई हैं और इस प्रकार से यह एक अच्छा कथाकोश बन गया है। इसमें कौशाम्बी की राजकुमारी तथा मृगावती की ननद एवं उदयन की फूफी की भी कथा है जो भग० महावीर के शासनकाल में निर्ग्रन्थ साधुओं को वसति देने के कारण प्रथम शय्या-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३.

२. हीरालाल हंसराज, जामनगर, सं० १९६६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १३३, २७७.

४. पंन्यास मणिविजय ग्रन्थमाला, लींच (मेहसाना), वि० सं० २००६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरी के रूप में प्रसिद्ध हुई थी। जयन्ती ने महावीर से जीव और कर्म विषयक अनेक प्रश्न पूछे थे।

वृत्तिकार ने अभयदान में मेघकुमार-कथा, करुणा-दान में सम्प्रतिनृप-कथा, शील-पालन पर सुदर्शनसेठ-मनोरमा-कथा, मान में बाहुबलि की कथा तथा अन्य प्रसंगों में बप्पभट्टसूरि, आर्यरक्षित आदि की कथाएँ और अन्त में जयन्ती की कथा दी है। इस वृत्ति में संस्कृत गद्य-पद्य का मिश्रण हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थान्त में २० श्लोकों में ग्रन्थकार की तथा १८ श्लोकों में ग्रन्थ-लेखक की प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि वटगच्छ में क्रमशः सर्वदेवसूरि, जयसिंहसूरि, चन्द्रप्रभसूरि, धर्मघोषसूरि, शीलगणसूरि हुए। उसी गच्छ की पूर्णिमा शाखा के गच्छपति मानतुंगसूरि ने जयन्ती-प्रश्नोत्तरप्रकरण का निर्माण किया और उनके शिष्य मलयप्रभ ने वि० सं० १२६० (ज्येष्ठ कृष्ण ५) में इस पर वृत्ति लिखी। इस ग्रन्थ का लेखन सं० १२६१ में चौलुक्य नरेश भीमदेव द्वितीय के राज्य में प्राग्वाटवंशी सेठ धवल की पुत्री नाउ श्राविका ने पंडित मुंजाल से लिखाकर मंकुशिला स्थान में अजितदेवसूरि को समर्पण किया।

मानतुंग की अन्य रचना के विषय में मालूम नहीं पर मलयप्रभ ने स्वप्न-विचारभाष्य लिखा था।

सुलसाचरित—भग० महावीर के श्राविकासंघ की प्रमुखा सुलसा अपने दृढ़ सम्यक्त्व के लिए प्रसिद्ध थी। उसी के चरित्र को लेकर आगमगच्छीय जयतिलकसूरि ने ८ सर्गों में यह काव्य लिखा है जिसमें ५४० संस्कृत श्लोक हैं। इसकी अनेकों हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। प्राचीनतम सं० १४५३ की है।[१]

महावीरकालीन अन्य श्राविकाओं में रेवती के चरित पर रेवतीश्राविका-कथा[२] (संस्कृत) उपलब्ध है।

प्रभावक आचार्यविषयक कृतियाँ :

जैन कवियों ने तीर्थंकरादि महापुरुषों के समुदित चरितों—महापुराण या त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि के समान समुदित रूप से आचार्यों मुनियों के

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७.

२. वही, पृ० ३३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित पर भी ग्रन्थ लिखे हैं। अनेक मुनियों के नामों का संकलन 'निर्वाणकाण्ड' आदि नित्यपाठ किये जानेवाले स्तोत्रों के रूप में मिलता है पर उनके जीवन पर कुछ महत्त्वपूर्ण काव्य भी लिखे गये हैं।

एतद्विषयक भद्रेश्वरसूरिकृत कहावलि में 'थेरावलीचरिय' भाग उल्लेखनीय है। इसमें सर्वप्रथम युगप्रधान आचार्यों के सम्पूर्ण इतिहास की सामग्री का संग्रह किया गया है। इसमें कालकाचार्य से लेकर हरिभद्रसूरि तक के आचार्यों के चरित्र दिये गये हैं। यह एतद्विषयक अन्य रचनाओं—परिशिष्टपर्व आदि का आदर्श रही है।

स्थविरावलीचरित अथवा परिशिष्टपर्व—यह हेमचन्द्राचार्य के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के १० पर्वों के परिशिष्ट रूप में रचा गया होने से परिशिष्टपर्व कहलाता है।

त्रिषष्टिशलाकापुंसां दशपूर्वीविनिर्मिता।
इदानीं तु परिशिष्टपर्वास्माभिर्वितन्यते॥

इसमें जम्बूस्वामी से लेकर वज्रस्वामिपर्यन्त प्रभावक आचार्यों का विस्मयकारक चरित्र ग्रथित है।[1] जर्मन विद्वान् हर्मन याकोबी इसे स्थविरावलिचरित नाम से कहते हैं जो दो आधारों से है। पहला उक्त ग्रन्थ के पहले सर्ग का ६ठाँ श्लोक है: 'अत्र च जम्बूस्वाम्यादिस्थविराणां कथोच्यते'। दूसरा प्रत्येक पर्व के अन्त में आई पुष्पिकाओं में 'स्थविरावलीचरित महाकाव्य' नामोल्लेख मिलता है: **इत्याचार्यश्रीहेमचन्द्रविरचिते परिशिष्टपर्वणि स्थविरावलीचरिते महाकाव्ये**..........।

इस ग्रन्थ में १३ पर्व हैं जिनका परिमाण ३५०० श्लोक-प्रमाण है।

इस ग्रन्थ का उद्देश्य धर्मोपदेश है जिसे हेमचन्द्र ने प्राचीन दृष्टान्त, उपदेशपूर्ण कथाएँ और पूर्ववर्ती युगप्रधान पुरुषों के कथानक देकर रोचक एवं रम्य बना दिया है। इसमें संग्रह रूप में अनेक पौराणिक कथाएँ, नीतिकथाएँ तथा प्राचीन स्थविरों के जीवन-वृत्तान्त मिल जाते हैं। धर्म के परम्परागत विस्तार में

---

१. याकोबी, स्थविरावलीचरित अथवा परिशिष्टपर्व, बिब्लियोथेका इण्डिका (सं० ९६), कलकत्ता १८९१; द्वितीय परिवर्धित संस्करण जिसे ल्यूमान और टावने ने सम्पादित किया, १९३२; पं० हरगोविन्द दास द्वारा सम्पादित, जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, सं० १९६८; इसके अनेक उद्धरणों का अनुवाद जे० हर्टल ने जर्मन में किया था, लीपजिग, १९०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचीन पूर्वधरों ने जो भाग लिया उनके कथानक श्रमणवर्ग में गुरुशिष्य परम्परा से जीवित रहे। प्रथम, दस आगमों के ऊपर भद्रबाहु ने निर्युक्तियाँ लिखी थीं उनमें इन कथानकों का साधारण उल्लेख है। उनमें विस्तारपूर्वक उल्लेख नहीं हो सका कारण वे तो गाथाओं और सूत्रों का अर्थ ही बताती हैं। इसके बाद सूत्र और निर्युक्तियों को विस्तार से समझाने के लिए प्राकृत चूर्णियाँ लिखी गईं। इन चूर्णियों में ये कथानक विस्तार से उल्लिखित हैं। इन चूर्णियों को भी विस्तार से समझानेवाली टीकाएँ हरिभद्रसूरि आदि आचार्यों ने लिखी। इस विपुल कथानक समुदाय का उपयोग हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्टपर्व लिखने में किया है। प्रो० याकोबी ने परिशिष्टपर्व की सम्पूर्ण सामग्री का विश्लेषण कर बतलाया है कि हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ में प्रायः पूरी की पूरी सामग्री प्राचीन स्रोतों से ली है।

फिर भी यह बिखरी सामग्री को ऐतिहासिक क्रम से सम्बद्ध करने में और ओजस्वी काव्य-शैली में प्रस्तुत करने में श्लाघनीय ग्रन्थ है। काव्य की दृष्टि से उन कथानकों को कल्पना और काव्य-माधुर्य देकर हेमचन्द्र ने खूब सजाया है और आवश्यक विस्तार तथा भाषापरिवर्तन द्वारा प्राचीन परम्परा के इतिहास को सचाई से प्रस्तुत किया है।

प्रथम पर्व से पंचम पर्व तक जम्बूस्वामी से लेकर भद्रबाहु तक का वृत्तान्त है। इनमें दूसरे-तीसरे पर्व अनेक प्रकार की प्राणिकथा, लोककथा, तथा नीतिकथाओं से भरे हुए हैं, पाँचवे पर्व के अर्धभाग से लेकर आठवें पर्व तक भारत के प्राचीन राजनैतिक इतिहास के लिए अद्भुत सामग्री भरी पड़ी है यथा—पाटलिपुत्र की स्थापना, नन्द राजाओं का आख्यान, मौर्य चन्द्रगुप्त और उसके मंत्री चाणक्य, वररुचि, शकटाल, पीछे बिन्दुसार, अशोक, सम्प्रति आदि के विषय में महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। यह अंश भारतीय इतिहास के लिए अति महत्त्व का है। अन्तिम नवम से तेरह तक के पर्व स्थूलभद्र से लेकर वज्रस्वामी तक जैन परम्परा के इतिहास को प्रस्तुत करते हैं।

इस तरह प्रस्तुत ग्रन्थ में जम्बूस्वामी से लेकर वज्रस्वामी तक पट्टधरों की जीवनियाँ और उनके अनुषंग से ऐतिहासिक कथानकों का अच्छा संग्रह किया गया है। इसके पूर्व भद्रेश्वर की कहावली में ६३ शलाका पुरुषों के उपरान्त संक्षेप में पट्टधरों तथा कालक से हरिभद्रसूरि तक युगप्रधानों की कथाएँ केवल संग्रह रूप में दी हैं। उक्त ग्रन्थ से परिशिष्टपर्व में यह विशेषता है कि इसमें एकसूत्रता, प्रवाहिता, प्रसाद एवं सुश्लिष्टता आदि गुण अधिक पाये जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह ग्रन्थ अनुष्टुभ् छन्द में रचा गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य हैं जिनका परिचय पहले दिया जा चुका है। यह ग्रन्थ उनके जीवन के उत्तरकाल की रचना है इसलिए पद्य-रचना में उनका अद्‌भुत कौशल दिखाई पड़ता है।

प्रभावकचरित—इसे 'पूर्वर्षिचरित' भी कहते हैं। यह ग्रन्थ[1] एक प्रकार से परिशिष्टपर्व का पूरक है। परिशिष्टपर्व में जम्बू से लेकर वज्रस्वामी तक चरित दिये गये हैं तो प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक ने वज्रस्वामी से हेमचन्द्र तक आचार्यों की जीवनियाँ दी हैं। दूसरे शब्दों में इसमें विक्रम की पहली शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी तक आचार्यों के चरित वर्णित हैं। उनमें प्राचीन आचार्यों में पादलिप्त, सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्रसूरि तथा बप्पभट्टि के चरित उल्लेखनीय हैं। चौलुक्य नरेशों के समकालीन वीरसूरि, शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, सूराचार्य, अभयदेव, वीरदेव और हेमचन्द्रसूरि के चरित तो गुजरात के इतिहास के लिए बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इस चरित की ऐतिहासिक विशेषता को हम ऐतिहासिक काव्यों के प्रसंग में बतलावेंगे।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना चन्द्रकुल के राजगच्छ के चन्द्रप्रभ के शिष्य आचार्य प्रभाचन्द्र ने वि० सं० १३३४ में की थी। ग्रन्थ के अन्त में एक अच्छी प्रशस्ति दी गई है जिससे कवि का परिचय प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ का संशोधन प्रसिद्ध संशोधक आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने किया था। ग्रन्थकार ने अपने संक्षिप्त विषयप्रवेश में लिखा है कि उन्होंने इस कृति की सामग्री अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की कृतियों से तथा अपने समय में प्रचलित आख्यानों से ली है। इसमें हेमचन्द्राचार्य के विषय में दिया गया चरित उनके विषय में उपलब्ध सभी चरितों से प्राचीन कहा जा सकता है। यह ग्रन्थ हेमचन्द्र के स्वर्गवास के ८० वर्ष पश्चात् लिखा गया था।

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के अतिरिक्त ग्रन्थकार की अन्य कृति नहीं मिलती। प्रभाचन्द्र ने धर्मकुमाररचित धन्यशालिभद्रचरित (सं० १३३८) का संशोधन भी किया था।

---

१. पं० हरिनन्द शर्मा द्वारा सम्पादित, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९; मुनि जिनविजय द्वारा संपादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १९४०; जिनरत्नकोश, पृ० २६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावकचरित्र के अतिरिक्त जैन आचार्यों के सामूहिक रूप में चरित्रों का वर्णन करनेवाले प्रबंधावलि, प्रबंधचिन्तामणि और प्रबंधकोश मिलते हैं। जिनभद्र की प्रबंधावलि (सं० १२९०) में मानतुंग, पादलिप्त, हरिभद्र, अभयदेव, सिद्धर्षि और देवाचार्य के चरित संगृहीत हैं। प्रबंधावलि वर्तमान पुरातनप्रबंध-संग्रह[1] के अन्तर्गत प्रकाशित हुई है। मेरुतुंगकृत प्रबंधचिन्तामणि[2] (सं०१३६१) में संक्षेप और सामासिक शैली में भद्रबाहु, वृद्धवादी, मल्लवादी और हेमचन्द्र मात्र के चरित्र दिये गये हैं जब कि राजशेखरसूरिकृत प्रबंधकोश[3] (सं०१४०५) में भद्रबाहु, नन्दिल, जीवदेव, आर्यखपट, पादलिप्त, सिद्धसेन, मल्लवादी, हरिभद्र, बप्पभट्टि और हेमचन्द्रसूरि के चरित्र संगृहीत हैं। प्रभावकचरित में दिये गये इन आचार्योंके चरित्रों से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि राजशेखर के सम्मुख इन आचार्यों के चरित्र विषयक अन्य कोई संग्रह भी रहा होगा जिससे उन्होंने आचार्यविषयक प्रबंधों के लिए कितनीक सामग्री संगृहीत की है, कारण इन आचार्यों के चरित्रों में कई बातें ऐसी हैं जो प्रभावकचरित में नहीं मिलतीं और प्रभावकचरित की कई बातें इसमें नहीं मिलतीं। फिर भी प्रबंधकोश की प्रधान सामग्री प्रभावकचरित्र से ही एकत्रित की गई प्रतीत होती है।

पुरातनप्रबंधसंग्रह, प्रबंधचिन्तामणि और प्रबंधकोश का विशेष परिचय ऐतिहासिक रचनाओं में दिया जाएगा।[4]

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २, १९३६.
२. वही, ग्रन्थांक १, १९३३.
३. वही, ग्रन्थांक ६, १९३५.
४. प्रबंध उस अर्ध-ऐतिहासिक कथानक को कहा जाता है जो सरल संस्कृत गद्य और कभी-कभी पद्य में भी लिखा जाता है। प्रबंधकोश के रचयिता राजशेखरसूरि (१५वीं शताब्दी) ने उक्त कोश के प्रारंभ में चरित्र और प्रबंध का अन्तर समझाने का प्रयत्न किया है। उसके अनुसार तीर्थंकरों आदि जैनपुराण के महापुरुषों और प्राचीन नृपों तथा आर्यरक्षितसूरि (महावीर-निर्वाण ५५७) तक के जैनाचार्यों के जीवन-चरित्रों को चरित्र-ग्रन्थ कहा जाता है, इसके बाद होनेवाले आचार्यों और श्रावकों के जीवन चरितों को प्रबंध। राजशेखर की इस मान्यता का प्राचीन आधार नहीं मालूम होता।

जो कुछ भी हो, इस प्रकार की नाम-पद्धति का विवेक रचनाओं में सदा ही पालन नहीं हुआ है क्योंकि कुमारपाल, वस्तुपाल, जगडू आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावककथा—यह प्रभावकचरित के समान ही कुछ प्रभावशील आचार्यों के जीवन पर लिखा गया ग्रन्थ है। इसमें लेखक ने अपने छः गुरु-भ्राताओं—उदयनन्दि, चारित्ररत्न, रत्नशेखर, लक्ष्मीसागर, विशालराज और सोमदेव—का चरित दिया है।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के कर्ता प्रसिद्ध तपागच्छीय आचार्य मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि हैं। इसकी रचना वि० सं० १५०४ में हुई है।[1] इसके पूर्व ग्रन्थकार ने वि० सं० १४९०–९९ के बीच विक्रमचरित्र तथा बाद में वि० सं० १५०९ में विशाल कथाग्रन्थ पंचशतीप्रबोधप्रबंध अर्थात् भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति की रचना की है।

प्रभावक आचार्यों के स्वतंत्र चरित्र भी उपलब्ध होते हैं।

दिग०-श्वेता० संघ के इतिहास में भद्रबाहु का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे चन्द्रगुप्त मौर्य के समकालीन माने जाते हैं। दिग० परम्परा में उन्हें अन्तिम श्रुत-केवली कहा गया है। इनका चरित्र प्राचीन ग्रन्थों में दिया गया है। कई कथा-कोशों में भी इनके चरित्र का वर्णन है। स्वतंत्र चरित्र के रूप में भी एक-दो रचनाएँ मिलती हैं।

भद्रबाहुचरित—यह चार अधिकारों में विभक्त संस्कृत ग्रन्थ है।[2] अधि-कारों में क्रमशः १२९, ९३, ९९ और १७७ श्लोक हैं। इसमें दिग० मान्यता-नुसार भद्रबाहु का चरित्र दिया है। ग्रन्थकार ने अपने पूर्ववर्ती देवसेन और हरिषेण द्वारा प्रतिपादित कथाओं को सम्बद्धकर यह चरित्र लिखा है इससे

१२-१३वीं शताब्दी के पुरुषों की जीवनियों को भी चरित्र कहा गया है। प्रबंधों के विषय यद्यपि अर्ध ऐतिहासिक या ऐतिहासिक व्यक्ति ही हैं फिर भी उनके लिखे जाने का ध्येय था 'धर्मश्रवण के लिए एकत्र हुई समाज को धर्मोपदेश देना, जैन धर्म के माहात्म्य को बतलाना, साधुओं को समयानुकूल उपदेश की सामग्री देना और श्रोताओं का चित्त-विनोद करना'। इसलिए प्रबंधों को वास्तविक इतिहास या जीवन-चरित नहीं समझना चाहिये।

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९१; जैन भारती भवन, बनारस, वी० सं० २४३७, पं० उदयलाल कासलीवालकृत हिन्दी अनुवाद.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनों के चरित्रों से इसमें परिवर्तन देखा जाता है। ग्रन्थकार ने हरिषेण की परम्परा से प्राप्त अर्धफालक सम्प्रदाय और श्वेताम्बरमत की उत्पत्ति दी है। इसमें लुंकामत की उत्पत्ति[1] वि० सं० १५२७ में बतलायी गई है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता अनन्तकीर्ति के शिष्य ललितकीर्ति के शिष्य रत्ननन्दि हैं। ग्रन्थ के अन्त में एक पद्य से यह सूचित किया गया है तथा उसमें लिखा है कि हीरक आर्य के आग्रह से यह चरित लिखा गया है पर ग्रन्थकार ने कहीं भी अपने गणगच्छ का नाम या रचनाकाल नहीं दिया है। फिर भी इसकी रचना सं० १५२७ के बाद ही हुई है क्योंकि उक्त संवत् में इसमें लुंकामत की उत्पत्ति बतलाई गई है। ग्रन्थ के सम्पादक ने रत्ननन्दि का नाम उनके दादागुरु और गुरु के नाम पर रत्नकीर्ति होना माना है और सुदर्शनचरितकार विद्यानन्दि द्वारा स्तुत रत्नकीर्ति से साम्य स्थापित किया है पर यह ठीक नहीं है। विद्यानन्दि के सुदर्शनचरित्र का समय वि० सं० १५१३ है इसलिए उनके द्वारा स्तुत रत्नकीर्ति का समय और पहले होना चाहिये। पर प्रस्तुत रचना में लेखक ने लुंकामत की उत्पत्ति का संवत् १५२७ दिया है तो वह अवश्य पीछे हुआ है। ग्रन्थकार ने अनन्तकीर्ति को अपना दादागुरु बतलाया है पर अनन्तकीर्ति के शिष्य रूप में किसी ललितकीर्ति (ग्रन्थकार के गुरु) का पता अन्य साधनों से अब तक नहीं लगा है इससे ग्रन्थकार के समय का निर्धारण करना कठिन है।

एक भट्टारक रत्नचन्द्रकृत भद्रबाहुचरित्र[2] का भी उल्लेख मिलता है। इसी तरह एक भद्रबाहुकथा का भी निर्देश हुआ है।[3]

स्थूलभद्रचरित—श्वेताम्बर संघ के इतिहास में आचार्य स्थूलभद्र का बहुत बड़ा स्थान है। इनके चरित्र प्राचीन ग्रन्थों में तो दिये ही गये हैं पर इन पर स्वतंत्र रचनाएँ भी ४-५ मिलती हैं।

पहली रचना में ६८४ संस्कृत श्लोक हैं जिसे चौदहवीं शती के जयानन्दसूरि ने लिखा है।[4] जयानन्द तपागच्छीय सोमतिलकसूरि के शिष्य थे। इनकी

---

१. ४. १५७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९१.

३. वही.

४. वही, पृ० ४५५; प्रकाशित—हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक २५, बम्बई, १९२५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य कृति कालकाचार्यकथा प्राकृत में मिलती है। इस काव्य पर पद्मनन्दनसूरि ने टीका लिखी है।

दूसरी रचना पद्मसागरकृत है।[1] इसे शीलप्रकाश भी कहते हैं। इसमें सात सर्ग हैं और यह सं० १६३४ में रची गई है। कर्ता तपागच्छ के आचार्य विमलसागर और धर्मसागर के शिष्य थे।

तीसरी रचना शीलदेवकृत तथा एक अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख भी मिलता है। इसी तरह केशरियाजी मन्दिर, जोधपुर में वीरकलश के शिष्य सूरचन्द्रकृत स्थूलभद्रगुणमालामहाकाव्य[2] का उल्लेख मिलता है।

कालकाचार्यकथा—कालकाचार्य को कालिकाचार्य[3] भी कहा गया है। युग-प्रधान आचार्यों में इनकी जीवनी बड़ी ही चमत्कारपूर्ण मानी गई है। प्राचीन ग्रन्थों में, यथा उत्तराध्ययननिर्युक्ति और चूर्णि, बृहत्कल्पभाष्य और चूर्णि, पंचकल्पभाष्य और चूर्णि, दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि, निशीथचूर्णि, व्यवहारचूर्णि, आवश्यकचूर्णि तथा भद्रेश्वरकृत कहावली में इनके जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं का वर्णन मिलता है। उन घटनाओं में से उज्जैनी के गर्दभ राजा का उच्छेद, निगोद की सूक्ष्म व्याख्या, सुवर्णभूमिगमन, आजीविकों से निमित्त शास्त्र का अध्ययन, अनुयोगों की रचना तथा सातवाहन राजा को मथुरा का भविष्य-कथन ऐतिहासिक तत्त्ववाली घटनायें मानी जाती हैं। इनका समय ईसापूर्व द्वितीय और प्रथम शताब्दी के बीच माना जाता है। डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह ने इनका साम्य आर्य श्याम से स्थापित किया है।[4]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८४, ४५८; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९११.

२. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, खरतरगच्छ साहित्य सूची, पृ० २६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ८६-८८; एन० डब्ल्यू ब्राउन, स्टोरी ऑफ कालक, वाशिंगटन, १९३३; साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित कालकाचार्य कथा; पंजाब विश्वविद्यालय पत्रिका में ६ कथाओं का मूल और डा० बनारसीदास जैन कृत हिन्दी अनुवाद; कालकाचार्य-कथासंग्रह, १९४५.

४. डॉ० शाह ने अपने लघु ग्रंथ 'सुवर्णभूमि में कालकाचार्य' में प्राचीन और अर्वाचीन सामग्री का विश्लेषण कर यह मत प्रकट किया है कि अर्वाचीन सामग्री में अनेक नाम विकृत हैं तथा काल्पनिक बातें जोड़ी गई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालकाचार्य के कथानक को लेकर ११वीं शताब्दी के बाद संस्कृत-प्राकृत में अनेकों रचनाएँ या तो स्वतन्त्र या किसी न किसी कथासंग्रह या चरित के अन्तर्गत की गई हैं। उन सबका संग्रह अपने आप में एक बड़ा साहित्य बन जाता है इसलिए उसकी एक रूप-रेखा मात्र यहाँ प्रस्तुत की जाती है :

१.	कालकाचार्यकथा	देवचन्द्रसूरि[१]	(सं० ११४६)	प्राकृत
२.	,,	मलधारी हेमचन्द्र[२]	(१२वीं शती)	,,
३.	,,	अज्ञातकर्तृक बृहद्[३] रचना		प्राकृत
४.	,,	महेन्द्रसूरि[४]	(सं० १२७४ से पूर्व)	संस्कृत
५.	,,	विनयचन्द्रसूरि[५]	(सं० १२८६)	प्राकृत
६.	,,	देवेन्द्रसूरि[६]	(१३वीं शती)	संस्कृत
७.	,,	रामभद्रसूरि[७]	(१३वीं शती)	संस्कृत
८.	,,	भावदेवसूरि[८]	(सं० १३१२)	प्राकृत
९.	,,	प्रभाचन्द्रसूरि[९]	(सं० १३३४)	संस्कृत

उन बातों के आधार पर एकाधिक कालकार्य मानना सम्भवतः उचित नहीं। प्राचीन सामग्री के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि सभी घटनाओं से सम्बद्ध एक ही कालक थे (देखें—जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, वाराणसी से प्रकाशित उनका उक्त ग्रन्थ)।

१. मूलशुद्धिटीकान्तर्गता.

२. पुष्पमालान्तर्गता.

३. १५४ गाथाएँ, ग्रन्थाग्र २११.

४. ५२ श्लोक; लेखक पल्लिवालगच्छ के ४८वें पट्टधर.

५. ७४ गाथाएँ; लेखक रविप्रभसूरि के शिष्य एवं पार्श्वनाथचरित और मल्लिनाथचरित आदि के कर्ता.

६. ८४ श्लोक; लेखक जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य, अन्य श्राद्धदिनकृत्य सवृत्ति आदि अनेक रचनाएँ.

७. १२५ संस्कृत पद्य; लेखक की अन्य रचना प्रबुद्धरौहिणेय नाटक.

८. ९९ गाथाएँ; चन्द्रकुल खण्डिलगच्छ के यशोभद्र लेखक के गुरु थे, अन्य रचना पार्श्वनाथचरित.

९. १५६ संस्कृत पद्य; लेखक की प्रसिद्ध कृति प्रभावकचरित के अन्तर्गत.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०.	कालकाचार्यकथा	धर्मप्रभसूरि[1]	(सं० १३९८)	प्राकृत
११.	,,	जयानन्दसूरि[2]	(१४वीं शती)	प्राकृत
१२.	,,	विनयचन्द्र[3]	(,,)	संस्कृत
१३.	,,	जिनदेवसूरि[4]	(,,)	,,
१४.	,,	रामचन्द्रसूरि[5]	(सं० १४१२)	,,
१५.	,,	सोमसुन्दर[6]	(सं० १४५८-१४९३)	गुजराती
१६.	,,	धर्मघोषसूरि[7]	(सं० १४७३)	प्राकृत
१७.	,,	अज्ञातकर्तृक[8]	(सं० १४९०)	प्राकृत
१८.	,,	,,[9]		प्राकृत
१९.	,,	,,[10]		संस्कृत
२०.	,,	शुभशीलगणि[11]	(सं० १५०९)	संस्कृत
२१.	,,	देवकल्लोल[12]	(सं० १५६६)	,,

१. ५६ गाथाएँ; लेखक अंचलगच्छीय देवेन्द्रसूरि (स्वर्ग० १३२०) के शिष्य, त्रैलोक्यप्रकाश, चूड़ामणिसारोद्धार के रचयिता.

२. १२० गाथाएँ; लेखक तपागच्छ के धर्मसागर के शिष्य सोमतिलक के शिष्य, अन्य रचना स्थूलभद्रचरित्र.

३. ८९ श्लोक; लेखक रत्नसिंहसूरि के शिष्य एवं पर्यूषणाकल्प, दीपमालिका-कल्प के कर्ता.

४. ९७ पद्य; जिनप्रभसूरि के शिष्य.

५. १७ संस्कृत-प्राकृत पद्य; लेखक बृहद्गच्छीय देवेन्द्रसूरि के शिष्य जिनचन्द्र के शिष्य.

६. उपदेशमाला के अन्तर्गत, गुजराती गद्य, अपने युग के प्रभावक आचार्य, गुजराती में अनेक ग्रन्थ.

७. १०५ गाथाएँ; अपर नाम धर्मकीर्ति; देवेन्द्रसूरि (स्वर्ग० १३२०) के शिष्य, अनेक स्तोत्रों के कर्ता.

८. १४४ गाथाएँ. ९. १०७ गाथाएँ.

१०. ६५ श्लोक, गुजराती टीका सहित.

११. संक्षिप्त कथा १९ श्लोकों में; शुभशीलगणि की भरतेश्वर बाहुबलिवृत्ति से.

१२. १०४ श्लोक; लेखक उपकेशगच्छीय कर्मसागर पाठक के शिष्य थे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२.	कालकाचार्यकथा	अज्ञात[1]		संस्कृत
२३.	,,	माणिक्यसूरि[2]	(१६वीं शती)	,,
२४.	,,	कल्याणतिलक[3]	(१६वीं शती)	प्राकृत
२५.	,,	कमलसंयमोपाध्याय	(१६वीं शती)	संस्कृत
२६.	,,	गुणरत्नसूरि[4]	(१६वीं शती)	,,
२७.	,,	जिनचन्द्रसूरि[5]	(सं० १६१२)	,,
२८.	,,	समयसुन्दरोपाध्याय[6]	(सं० १६६६)	,,
२९.	,,	जयकीर्ति[7]	(१७वीं शती)	,,
३०.	,,	कनकसोम	(सं० १६३२)	,,
३१.	,,	ज्ञानमेरु[8]	(१७वीं शती)	,,
३२.	,,	शिवनिधानोपाध्याय	(१७वीं शती)	,,
३३.	,,	जिनलाभसूरि	(?)	,,
३४.	,,	कीर्तिचन्द्र	(?)	,,
३५.	,,	कुलमण्डन	(?)	,,
३६.	,,	कनकनिधान	(१८वीं शती)	संस्कृत
३७.	,,	लक्ष्मीवल्लभ[9]	(१८वीं शती)	,,
३८.	,,	सुमतिहंस[10]	(सं० १७१२)	,,

१. ६७ विविध छन्दों का अच्छा काव्य, लेखक का नाम विबुधतिलक अनुमान किया जाता है.

२. १०४ श्लोक; माणिक्यसूरि ६-७ हो गये हैं, लेखक का निर्णय करना कठिन है.

३. ५६ गाथाएँ, गुजराती टीका सहित; खरतरगच्छीय जिनसमुद्रसूरि के शिष्य.

४. पिप्पलगच्छीय, अन्य कुछ ज्ञात नहीं. देखें—पिप्पलगच्छ-गुर्वावलि, आ० विजयवल्लभ स्मा० ग्रन्थ.

५. बृहत्खरतरगच्छीय आचार्य.

६. ३७ संस्कृत-प्राकृत पद्य और संस्कृत गद्यमयी रचना; लेखक बृहत्खरतरगच्छ के सकलचन्द्र के शिष्य, भावशतक के रचयिता.

७. वादि हर्षवर्धन के शिष्य.

८. महिसुन्दर के शिष्य.

९. लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य.

१०. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय के शिष्य.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ सम्भव नहीं कि उपरि निर्दिष्ट सभी रचनाओं और लेखकों का परिचय दिया जाय। इनमें से कई एक का परिचय एन० डब्ल्यू० ब्राउन के स्टोरी आफ कालक में तथा पं० अम्बालाल प्रेमचन्द्र शाह ने कालकाचार्यकथा की गुजराती प्रस्तावना में दिया है। इनमें से कई अच्छे आलंकारिक लघुकाव्य हैं।

कथानक का सार—भारतवर्ष के धरावास नगर के राजा वैरिसिंह के पुत्र कालककुमार अनेक कलाओं के पारगामी थे। एक समय गुणाकरसूरि से धर्म-बोध पाकर उन्होंने जैनी-दीक्षा ग्रहण कर ली। पीछे अपने ही गुरु के पट्टधर होकर पाँच सौ शिष्यों के साथ विहार करने लगे। कालक की बहिन सरस्वती भी साध्वी हो गई। पर उसके सौन्दर्य पर रीझकर उज्जैन का राजा गर्दभिल्ल उसे अपने अन्तःपुर में ले गया। उसे बहुत समझाया गया पर सब व्यर्थ गया। तब कालकाचार्य अपवाद मार्ग ग्रहणकर साधुवेश छोड़ राजा का उच्छेद करने के लिए सिन्धुदेश के उस पार से शक राजा को ले आये। इससे गर्दभिल्ल मारा गया। शक राजा उज्जैन का राजा बना। कालान्तर में उसके वंश का उच्छेद कर विक्रमादित्य राजा बना।

इधर कालकाचार्य ने प्रायश्चित्तकर पुनः मुनिवेश धारणकर देश-देशान्तरों में भ्रमण किया। दक्षिण देश के सातवाहन राजा के अनुरोध पर उन्होंने पर्यूषणा की पंचमी तिथि को बदलकर चतुर्थी कर दिया। एक समय उन्होंने इन्द्र की निगोद विषयक शंकायें दूर कीं। वे अपने दुर्विनीत शिष्य सागरसूरि को उपदेश देने सुवर्णभूमि भी गये। पीछे उनका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हुआ।

परवर्ती रचनाओं में वर्णित अनेक घटनाओं को सत्य मान कुछ विद्वानों ने दो कालकाचार्यों की कल्पना की है।[1]

वज्रस्वामिचरित—वज्रस्वामी के चरित्र पर वज्रस्वामिकथा तथा वज्रस्वामि-चरित्र (प्राकृत) का उल्लेख मिलता है।[2] दो अपभ्रंश रचनाओं का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख किया गया है। उनमें से एक की रचना जिनहर्षसूरि ने सं० १३१९ में की थी।

---

१. द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ में मुनि कल्याणविजय जी का लेख। प्रथम कालकाचार्य, महावीर निर्वाण सं० ३००-३७६ में तथा दूसरे महा० नि० सं० ४२५ के लगभग और ४६५ के पहले।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पादलिप्तसूरिकथा—पादलिप्तसूरि तरंगवतीकथा के कर्ता माने जाते हैं। इनका एक चरित प्राकृत गाथाओं में निर्मित है।[१] प्रारम्भ **'अत्थि इह भरहवसि'** से होता है। इसकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १२९१ की है।

अन्य पादलिप्तसूरिकथा (संस्कृत) का भी उल्लेख मिलता है।[२]

सिद्धसेनचरित—सन्मतितर्क आदि ग्रन्थों के कर्ता सिद्धसेन पर एक हस्तलिखित प्रति सं० १२९१ की पाटन के भण्डार में मिलती है। यह प्राकृत में है।[३]

मल्लवादिकथा—द्वादशारनयचक्र के कर्ता मल्लवादी पर भी एक प्राकृत रचना है। इसकी हस्तलिखित प्रति सं० १२९१ की मिली है।[४]

मलयगिरिचरित—इस कृति का उल्लेख मिलता है।[५]

बप्पभट्टिचरित—गुर्जर प्रतिहार नरेश आमनागावलोक-गुरु पादलिप्त पर भी कई रचनाएँ मिलती हैं। उनमें से एक का दूसरा नाम बप्पभट्टसूरिप्रबन्ध पुण्यप्रदीप है।[६] इसमें ७०० पद्य (संस्कृत) हैं। कर्ता का नाम माणिक्यसूरि है। माणिक्यसूरि नाम से ६-७ आचार्य हुए हैं। ये कौन हैं, निर्णय करना कठिन है।

एक दूसरी रचना 'बप्पभट्टिकथा' ६८५ गाथाओं में प्राकृत में उपलब्ध है। इसकी प्राचीनतम प्रति सं० १२९१ की मिलती है।[७]

राजशेखरसूरि के प्रबन्धकोश से भी लेकर बप्पभट्टिचरित्र अलग प्रकाशित हुआ है।[८]

दो अज्ञातकर्तृक रचनाओं का भी पता लगा है।[९]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४३; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९४-५.
२. वही.
३. वही, पृ० ४३८; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९४-५.
४. वही, पृ० ३०२; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९४-५.
५. वही.
६. वही, पृ० २८२.
७. वही; पाटनसूची, भाग १, पृ० १९५.
८. आगमोदय समिति ग्रन्थमाला, ग्रं० ४६, बम्बई, १९२६.
९. जिनरत्नकोश, पृ० २८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिभद्रसूरिचरित—हरिभद्रसूरि के चरित पर स्वतंत्र रचनाओं में धनेश्वर-सूरि (१२वीं शती) कृत उल्लेखनीय है। इसका सम्पादन पं० हरगोविन्द दास ने वाराणसी में किया था।[1]

अन्य दो रचनाओं—हरिभद्रकथा एवं हरिभद्रप्रबन्ध—का भी उल्लेख मिलता है।

१६-१७वीं शताब्दी के तपागच्छीय विद्वान् मुनियों ने अपने गच्छ के अनेकों प्रभावक गुरुजनों के गुण-कीर्तन में काव्यात्मक शैली में महत्त्वपूर्ण चरित्र-ग्रन्थ लिखे हैं। वे उन महापुरुषों के आध्यात्मिक जीवन एवं धार्मिक कृत्यों का वर्णन करते हैं इसलिये पौराणिक काव्यों की श्रेणी में आते हैं फिर भी उनमें तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का अच्छा चित्रण होने से वे ऐतिहासिक महत्त्व के काव्य भी माने जाते हैं।

जैन साहित्य में सं० १४५६–१५०० तक सोमसुन्दर युग, सं० १६०१ से १७०० तक हैरक युग तथा सं० १७०१ से १७४३ तक यशोविजय युग में प्रभावक आचार्यों पर इस प्रकार की अनेक कृतियाँ रची गयीं। उनका यहाँ संक्षिप्त परिचय देते हैं। उनके शास्त्रीय महाकाव्यत्व और ऐतिहासिक महाकाव्यत्व का दिग्दर्शन उन प्रसंगों में आगे करेंगे।

सोमसौभाग्यकाव्य—तपागच्छ के युग-प्रधान सोमसुन्दरसूरि पर दो-तीन जीवनचरित्र मिलते हैं। पहला तो १० सर्गात्मक सोमसुन्दर के ही शिष्य प्रतिष्ठासोम ने सं० १५२४ में (ग्रन्थाग्र १३०० श्लोक-प्रमाण) रचा था।[2] दूसरा तपागच्छीय लक्ष्मीसागर के शिष्य सुमतिसाधु ने लिखा था।[3] इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं है। सुमतिसाधु का स्वर्गवास सं० १५५१ में हुआ था। इससे यह रचना इसके पूर्व अवश्य रचित हुई है। सुमतिसाधु के चरित्र पर भी एक सुमतिसम्भवकाव्य सं० १५४७–१५५१ के बीच लिखा गया था।

एक अज्ञातकर्तृक तीसरे सोमसौभाग्यकाव्य का भी उल्लेख मिलता है।[4]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९.

२. वही, पृ० ४५३; इसका सार 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास', पृ० ४५१–४६१ में दिया गया है।

३. वही.

४. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुगुणरत्नाकरकाव्य—इसमें तपागच्छ के पट्टधर लक्ष्मीसागरसूरि (सं० १५१७–१५४७ गच्छनायक) का जीवनवृत्त चार सर्गों में वर्णित है।[1] यह संस्कृत में है। इसका ऐतिहासिक विवेचन अन्यत्र दिया जायगा।

कर्ता एवं रचना-समय—इसकी रचना लक्ष्मीसागर के पट्टकाल में ही सं० १५४१ में सोमचरित्रगणि ने की है। प्रशस्ति में ग्रन्थकर्ता ने परिचय देते हुए अपनी गुरुपरम्परा में लिखा है कि वे तपागच्छ के सोमसुन्दरसूरि के शिष्य सोमदेवसूरि और उनके शिष्य चरित्रहंसगणि के शिष्य थे।

सुमतिसम्भव—इसमें तपागच्छीय विद्वान् कवि सुमतिसाधु का जीवनचरित निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है पर काव्य-नायक के विषय में इससे अधिक जानकारी नहीं होती। इससे कहीं अधिक उपयोगी सामग्री माण्डवगढ़ के धनाढ्य व्यापारी संघपति जावड़ की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा धर्मनिष्ठा के विषय में मिलती है। इसकी चर्चा ऐतिहासिक काव्यों के प्रसंग में की जायगी।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना सर्वविजयगणि ने की है जो शिव-हेम के शिष्य और जिनमाणिक्य के छात्र थे। इसका रचनाकाल अज्ञात है पर प्राचीन प्रतिलिपि सं० १५५४ की लिखी मिली है।[3] इसमें सं० १५४७ में जावड़ द्वारा प्रतिमा-प्रतिष्ठा का वर्णन है। पर सुमतिसाधु के स्वर्गारोहण (सं० १५५१) का उल्लेख नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि यह काव्य सं० १५४७ के बाद तथा सं० १५५१ के पूर्व रचा गया होगा। सर्वविजयगणि की अन्य रचना 'दश श्रावकचरित' मिलती है।

जगद्गुरुकाव्य—इसका ग्रंथाग्र २३३ श्लोक-प्रमाण है।[4] इसमें संस्कृत-छन्दों में तपागच्छ के हीरविजयसूरि की जीवनी वर्णित है। सं० १६४१ में बादशाह

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०६; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २४, वीर सं० २४३७. इसके चारों सर्गों का सार 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' पृ० ४९६–५०२ में मो० द० देसाई ने दिया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६; इसकी एक मात्र प्रति एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता में सुरक्षित है (प्रति-संख्या ७३०५)। इस काव्य के परिचय के लिए गंगानगर के प्रो० सत्यव्रत तृषित का आभारी हूँ।

३. इसे हर्षकुलगणि ने ईडर में लिखवाई थी : संवत् १५५४ वर्षे श्रीइलदुर्ग-महानगरे हर्षकुलगणयः सुमतिसम्भवमलीलिखल्लेखकेन।

४. जिनरत्नकोश, पृ० १२८; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० १४, भावनगर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकबर ने हीरविजय को जगद्गुरु की उपाधि दी थी। इसकी रचना विमलसागरगणि के शिष्य पद्मसागरगणि ने मांगरोल (सौराष्ट्र) में रहकर सं० १६४६ में की थी। पद्मसागर की अन्य कृतियों में तिलकमंजरीवृत्ति, यशोधरचरित्र, उत्तराध्ययनकथासंग्रह, प्रमाणप्रकाश सटीक, धर्मपरीक्षा आदि मिलते हैं।

कृपारसकोश—यह भी हीरविजयसूरि के जीवन से सम्बद्ध रचना है। इसमें हीरविजय के उपदेश से बादशाह ने जो दयामय कार्य किये थे उनका वर्णन है। काव्य में १२८ श्लोक हैं। इसकी रचना तपागच्छीय सकलचन्द्र उपाध्याय के शिष्य शान्तिचन्द्र उपाध्याय ने सं० १६४६–४८ के बीच की थी।[१]

इस पर उनके शिष्य रत्नचन्द्रगणि ने एक वृत्ति लिखी थी।[२] इसका उल्लेख वृत्तिकार ने अध्यात्मकल्पद्रुम और सम्यक्त्वसप्तति में किया है।

हीरसौभाग्यमहाकाव्य—इसमें हीरविजयसूरि का जीवन तथा उनके धार्मिक कार्य, प्रभावना, अकबर बादशाह से सम्पर्क आदि प्रसंग विस्तार से दिये गये हैं। यह काव्य सत्रह सर्गों का बृहत् काव्य है जिसके अधिकांश सर्गों में सौ से अधिक पद्य हैं। चौदहवें सर्ग में यह संख्या ३०० तक पहुँच जाती है। यह काव्य श्रीहर्ष के नैषधमहाकाव्य को आदर्श बनाकर लिखा गया है पर उस जैसा दुरूह और दुर्बोध नहीं है। इसके महाकाव्यत्व और ऐतिहासिकता पर पीछे उक्त प्रसंगों पर प्रकाश डालेंगे।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना तपागच्छीय सिंहविमलगणि के शिष्य देवविमल ने सुखबोधा नामक स्वोपज्ञवृत्ति के साथ की है।[३] इसकी रचना का आरंभ तो हीरविजयसूरि के समय में ही हो गया था ऐसा धर्मसागरगणि की पट्टावलि से मालूम होता है पर इसकी समाप्ति विजयदेवसूरि के शासनकाल में ही हो सकी इसलिए यह सं० १६७२ से सं० १६८५ के बीच में ही बन सका है। देवविमल के गुरु बड़े प्रभावक थे। उन्होंने स्थानसिंह नामक अजैन व्यक्ति को जैन धर्म में दीक्षित किया था जो पीछे आगरा के प्रमुख जैनों में एक था। देवविमलकृत हीरसौभाग्य के आधार से ऋषभदास कवि ने सं० १६८५ में गुजराती में हीरविजयसूरिरास की रचना की थी। हीरसौभाग्य-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९५; कान्तिविजय इतिहासमाला, भावनगर, सं० १९७३.

२. वही, पृ० ९५.

३. वही, पृ० ४६१; काव्यमाला, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य का संशोधन उपाध्याय कल्याणविजय के शिष्य धनविजय वाचक ने किया था।

विजयप्रशस्तिकाव्य—इस काव्य के १६ सर्गों की रचना करने के बाद कवि का स्वर्गवास हो गया इससे गुणविजय ने अन्तिम पाँच सर्ग जोड़कर इसे २१ सर्गात्मक कृति बनाया है।[1] इसमें कुल मिलाकर १७०९ पद्य हैं। ये विविध छन्दों में निर्मित हैं। इसमें तपागच्छ के हीरविजय, विजयसेन और विजयदेवसूरि के चरित का काव्यात्मक शैली में वर्णन है। इसके महाकाव्यत्व और ऐतिहासिक महत्त्व की चर्चा पीछे की जायगी।

काव्यकर्ता और रचनाकाल—इसकी रचना कमलविजयगणि के शिष्य हेमविजयगणि ने सं० १६८१ में की है। ये सत्रहवीं शती के महान् लेखक थे। इनकी अन्य रचनाओं में पार्श्वनाथमहाकाव्य, कथारत्नाकर, अन्योक्तिमुक्तामहोदधि, कीर्तिकल्लोलिनी, सूक्तिरत्नावली, विजयस्तुति आदि मिलते हैं। सभी ग्रन्थों के पीछे कवि ने अपना तथा ग्रन्थ का परिचय दिया है। विजयप्रशक्ति के पीछे तो सभी ग्रन्थों का उल्लेख पद्यों में किया गया है।

इस काव्य पर कनकविजय के शिष्य और अन्तिम पाँच सर्गों के कर्ता गुणविजय ने एक संस्कृत टीका लिखी है जिसका परिमाण १०००० श्लोक है। वह टीका वि० सं० १६८८ में लिखी गई थी।

विजयदेवमाहात्म्य—इसमें १९ सर्ग हैं जिनमें विविध छन्दों में निर्मित १७९५ पद्य हैं।[2] इसमें हीरविजयसूरि के प्रशिष्य और विजयसेनसूरि के शिष्य विजयदेव का जीवनवृत्त काव्यात्मक शैली में दिया गया है। इसके ऐतिहासिक महत्त्व की चर्चा उक्त प्रसंग में की जायगी।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस काव्य के प्रणेता बृहत्खरतरगच्छीय जिनराजसूरि-सन्तानीय पाठक ज्ञानविमल के शिष्य श्रीवल्लभ उपाध्याय हैं। इसका रचनासमय अज्ञात है किन्तु इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १७०९ की मिलती है।[3] इससे ज्ञात होता है कि मूल ग्रन्थ पहले बना होगा।

---

१. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, सं० २३, भावनगर, वीर सं० २४३७, टीका सहित; जिनरत्नकोश, पृ० ३५४-३५५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५४; जैन साहित्य संशोधक समिति, अहमदाबाद, १९२८.

३. लिखितोऽयं ग्रन्थः पण्डितश्री५श्रीरङ्गसोमगणिशिष्यमुनिसोमगणिना सं० १७०९ वर्षे…. ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पर तपागच्छ के कृपाविजयगणि के शिष्य मेघविजयगणि ने विवरण लिखा है जिसमें कठिन शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया गया है। मेघविजयगणि का परिचय पहले दे चुके हैं।

भानुचन्द्रगणिचरित—वाचक सकलचन्द्र के दो शिष्य सूरचन्द्र और शान्तिचन्द्र थे। सूरचन्द्र के भानुचन्द्र नामक प्रभावक शिष्य थे। भानुचन्द्र के चरित्र पर इस काव्य का निर्माण चार प्रकाशों में किया गया है। इन प्रकाशों में क्रमशः १२८, १८७, ७६ और ३५८ संस्कृत पद्य हैं।[1] यह चरितकाव्य अनुष्टुप् छन्दों में रचा गया है पर यत्र-तत्र अन्य छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। यह काव्य मुगल सम्राट् अकबर के अन्तिम वर्षों और जहाँगीर के समय (सन् १६०५—१६२७) में भानुचन्द्र द्वारा किये गये प्रभावना कार्यों तथा अन्य बातों पर प्रकाश डालता है जिनपर ऐतिहासिक काव्यों के प्रसंग में चर्चा करेंगे।

काव्यकर्ता और रचना-समय—इसकी रचना भानुचन्द्र के ही शिष्य तथा उनके अनेक साहित्यिक अनुष्ठानों के सहयोगी सिद्धिचन्द्रगणि ने की थी। इसका रचना-संवत् ज्ञात नहीं होता फिर भी यह समकालिक रचना मालूम होती है। अपने गुरु की भाँति सिद्धिचन्द्र अपने युग के महान् साहित्यकार थे। उनकी अनेक रचनायें मिलती हैं: कादम्बरीउत्तरार्धटीका, शोभनस्तुतिटीका, काव्यप्रकाशखण्डन, वासवदत्ताटीका आदि १९ कृतियाँ। सम्राट् जहाँगीर ने सिद्धिचन्द्र को खुश-फहम (तीक्ष्णबुद्धि) की उपाधि दी थी।

देवानन्दमहाकाव्य—यह माघकृत शिशुपालवध पर आश्रित सात सर्गों का पादपूर्ति काव्य है जिसका वर्णन पादपूर्ति काव्यों में करेंगे। इसमें हीरविजय के प्रशिष्य विजयदेवसूरि का जीवन-चरित्र दिया गया है। इसकी रचना कृपाविजयगणि के शिष्य मेघविजयगणि ने सं० १७५५ में की है।[2] मेघविजय का परिचय अन्यत्र दिया गया है।

दिग्विजयकाव्य—इसमें १३ सर्ग हैं जिनमें विविध छन्दों में १२९४ पद्य हैं।[3] इसमें तपागच्छ के विजयप्रभसूरि का चरित-वर्णन है। इसके प्रारंभिक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २९४; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १७, सं० १९९७.

२. जिनरत्नकोश; पृ० १७९; यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर, सं० १९६९; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ७, १९३७.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १७४; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १४, १९४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँच सर्गों में उनके गुरु विजयदेव का चरित्र भी दिया गया है। यह भी एक ऐतिहासिक महत्त्व का काव्य है। इसका उक्त प्रसंग में वर्णन करेंगे।

इसके रचयिता उक्त मेघविजयगणि हैं। रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

विजयोल्लासमहाकाव्य—यह[1] एक अज्ञात कृति थी जिसकी अपूर्ण प्रति सौराष्ट्र के जूनागढ़ शहर के ज्ञानभण्डार से मिली है। इसके कर्ता महोपाध्याय यशोविजय (१७-१८वीं शता०) हैं जो अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं। इसमें श्री हीरविजयसूरि की परम्परा में विजयदेवसूरि के शिष्य विजयसिंहसूरि का जीवनवृत्त वर्णित है। ग्रन्थ का प्रारंभ **ऐं नमः** से होता है और तीन मंगलाचरण श्लोकों के प्रारंभ में **ऐंकार सारं, ऐन्दं प्रकाशं** और **ऐंकारमाराधयताम्** शब्दों का प्रयोग हुआ है। चौथे पद्य से यमकालंकार युक्त भाषा का प्रयोग हुआ है। इसके बाद विजयसिंहसूरि का नामोल्लेखपूर्वक चरित प्रारम्भ होता है और केवल पहले सर्ग में १०२ श्लोकों में पूर्ण होता है। सर्गान्त में कई श्लोक विविध छन्दों में लिखे गये हैं। सर्ग के अन्त में '**इति श्रीविजयोल्लासे विजयाङ्कमहाकाव्ये प्रथमसर्गः**' लिखा है।

खरतरगच्छीय आचार्यों के जीवनचरित्र :

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के कतिपय खरतरगच्छीय आचार्यों के समकालिक रचयिताओं द्वारा लिखे गये लघुचरित[2] उपलब्ध होते हैं जो प्राकृत भाषा में निबद्ध धार्मिक काव्यों के अच्छे नमूने हैं। साथ ही उनसे कतिपय ऐतिहासिक महत्त्व की बातें भी प्रकट होती हैं।

जिनपतिसूरि-पंचासिका—इसमें मणिधारी जिनचन्द्र (२) सूरि के शिष्य जिनपति का ५५ गाथाओं में माता-पिता, नगर आदि के नाम के साथ जन्म (सं० १२१०), दीक्षा एवं आचार्यपद (सं० १२२३) तक का चरित्र वर्णित है। इसके रचयिता ने अपना नाम प्रकट नहीं किया है पर 'जिणवइणो नियगुरुणो' वाक्य से जिनपति का शिष्य होना प्रकट किया है। जिनपति षट्त्रिंशत् वाद-

---

१. महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण-महोत्सव ग्रन्थ, खण्ड २, बम्बई, १९६८, पृ० २३३-२३५.

२. जिनभद्रसूरिस्वाध्यायपुस्तिका (अप्रकाशित), अजीमगंज की बड़ी पोसाल में सं० १४९० में लिखी प्रति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजेता माने जाते हैं। उन्होंने शाकंभरी नरेश (पृथ्वीराज) के दरबार में जयपत्र पाया था।

जिनेश्वरसूरि-चतुःसप्ततिका—इसमें ७४ गाथाएँ हैं जिनमें जिनपति के शिष्य जिनेश्वरसूरि के माता-पिता, नगर के नाम के साथ जन्म (सं० १२४५), दीक्षा एवं आचार्यपद (सं० १२७८) का वर्णन है। ये लक्षण, प्रमाण और शास्त्र-सिद्धान्त के पारगामी थे। इन्हें ३४ वर्ष की आयु में गच्छाधिपतिपद मिला था। इन्होंने शत्रुंजय आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। यह एक अज्ञात-कर्तृक रचना है।

जिनप्रबोधसूरि-चतुःसप्ततिका—इसमें ७४ गाथाओं में जिनेश्वरसूरि के शिष्य जिनप्रबोध के पूर्व क्रमानुसार जन्म (सं० १२८५), दीक्षा एवं आचार्यपद (सं० १३३१) का वर्णन है। ये बड़े विद्वान् एवं प्रभावक गच्छनायक थे। इन्होंने कातंत्रव्याकरण पर दुर्गपदप्रबोधटीका वि० सं० १३२८ में बनायी थी और विवेकसमुद्रगणिकृत पुण्यसारकथा का संशोधन किया था। इनका स्वर्गवास सं० १३४१ में हुआ था। इस चरित्र के रचयिता विवेकसमुद्रगणि हैं जो उन्हीं के संघ में वाचनाचार्य थे और पुण्यसारकथा के कर्ता थे।

जिनचन्द्रसूरि-चतुःसप्ततिका—इसमें ७४ गाथाओं में जिनप्रबोध के शिष्य जिनचन्द्र (३) का चरित वर्णित है।[१] ये बड़े प्रभावक आचार्य थे। इन्होंने अपने युग के चार राजाओं को प्रतिबोधित किया था। इन्हें सं० १३४१ में आचार्य पद मिला था तथा इनका सं० १३७६ में स्वर्गवास हुआ था। इसकी रचना उनके ही शिष्य जिनकुशलसूरि ने की थी।

जिनकुशलसूरि-चहुत्तरी—इसमें ७४ गाथाओं में जिनचन्द्र (३) के शिष्य एवं पट्टधर जिनकुशलसूरि के जन्म (वि० सं० १३३७), दीक्षा (सं० १३४६), वाचनाचार्यपद (सं० १३७५) एवं आचार्यपद (सं० १३७७) का वर्णन है। इनका स्वर्गवास सं० १३८९ में हुआ था। इन्होंने अपने पट्टकाल में नाना नगरों-देशों में विहार कर जैन धर्म को बड़ी ही प्रतिष्ठा प्रदान की थी।

इसकी रचना उन्हीं के शिष्य आचार्य तरुणप्रभ ने की है।

जिनलब्धिसूरि-चहुत्तरी—जिनलब्धिसूरि के सम्बन्ध में प्राप्त अद्यावधि सामग्री में यही प्रामाणिक और विस्तृत है। जिनलब्धि का जन्म सं० १३६० में

---

१. दादा जिनकुशलसूरि के परिशिष्ट में श्री अगरचन्द नाहटा ने प्रकाशित की है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुआ था और दीक्षा जिनचन्द्रसूरि (३) से सं० १३७० में मिली थी, इनका नाम लब्धिनिधान था। सं० १३८८ में जिनकुशलसूरि ने इन्हें उपाध्याय-पद दिया था। सं० १३८९ में जिनकुशलसूरि का स्वर्गवास हुआ और सं० १३९० में उनके स्वर्गवास के लगभग ३॥ माह बाद पद्ममूर्ति क्षुल्लक को जिन-पद्म नाम से पट्टपद मिला था। १० वर्ष बाद सं० १४०० में इन्हीं जिनपद्मसूरि के पद पर लब्धिनिधानोपाध्याय को जिनलब्धिसूरि नाम से पट्टपद मिला था। उनका स्वर्गवास सं० १४०४ में हुआ था। इस चरित की रचना उनके ही सतीर्थ्य तरुणप्रभसूरि ने ही की है।

जिनलब्धिसूरि पर चार गाथाओं में जिनलब्धिसूरि-स्तूपनमस्कार और आठ गाथाओं में जिनलब्धिसूरि-नागपुर-स्तूप-स्तवन नामक संक्षिप्त[1] कृतियाँ भी मिलती हैं जिनमें उनके माता-पिता के नाम, जन्म, दीक्षा, उपाध्याय, आचार्य-पद, स्वर्गवास आदि बातें उल्लिखित हैं। जिनलब्धिसूरि अनेक स्तोत्रों के लेखक थे।

जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरचरित—इसमें बीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय आचार्य कृपाचन्द्रसूरि का जीवनवृत्त दिया गया है जिसमें ५ सर्ग हैं और कुल मिलाकर विविध छन्दों में १५७० पद्य हैं।[2] कृपाचन्द्रसूरि का जन्म सं० १९१३ में हुआ था, १९३६ में दीक्षा, १९८२ में आचार्यपद और १९९४ में स्वर्गवास हुआ था। यह काव्य विविध छन्दों से विभूषित है। सर्गों में स्थल-स्थल पर छन्द-परिवर्तन किये गये हैं।

---

१. 'जिनभद्रसूरिस्वाध्यायपुस्तिका' जिससे कि उपर्युक्त रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, प्रभावक एवं सुप्रसिद्ध आचार्य जिनभद्रसूरि द्वारा ही संकलित पुस्तिका है। उक्त सूरि ने ही जैसलमेर, खंभात, पाटन, जालौर, नागौर आदि स्थानों में ज्ञानभण्डार स्थापित किये थे और अनेक तीर्थ-मन्दिरों की प्रतिष्ठाएँ कराई थीं। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है: सं० १४९० वर्षे मार्गशिर सुदि ७ गुरौदिने शतभिषा नक्षत्रे हरषणयोगे श्रीविधिमार्गीय सुगुरु श्रीजिनराजसूरि दीक्षितेन परम भट्टारक प्रभुश्रीमज्जिनभद्रसूरि आत्मनमवबोधार्थं श्रीसज्झायपुस्तिका संपूर्णा जाता।—महावीर विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ, खण्ड १, बंबई, १९६८, पृ० २५-३६ में श्री अगरचन्द एवं भँवरलाल नाहटा का लेख.

२. जिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभण्डार, पालीताना से सं० १९९५ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता कृपाचन्द्र के शिष्य जयसागरसूरि हैं। ग्रंथ के अन्त में दी गई प्रशस्ति में इन्होंने अपना जन्म सं० १९४३, दीक्षा सं० १९५६, उपाध्यायपद सं० १९७६ व आचार्यपद सं० १९९० में पालीताना में होना लिखा है।

प्रस्तुत काव्य की रचना सं० १९९४ में फाल्गुन सुदी १३ को पालीताना में की गई थी।

बीसवीं शताब्दी के उपाध्याय लब्धिमुनि ने अपने गच्छ के पूर्व आचार्यों के चरित पर आठ संस्कृत[1] काव्यों का निर्माण किया है। वे ये हैं:

१. युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि	(६ सर्ग, १२१२ श्लोक)	सं० १९९२
२. जिनकुशलसूरिचरित	(६३३ पद्य)	सं० १९९६
३. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि[1]	(२०१ श्लोक)	सं० १९९८
४. जिनदत्तसूरिचरित्र	(४६८ श्लोक)	सं० २००५
५. जिनरत्नसूरिचरित्र		सं० २०११
६. जिनयशःसूरिचरित्र		सं० २०१२
७. जिनऋद्धिसूरिचरित्र		सं० २०१४
८. मोहनलालजी महाराज		स० २०१५

प्रभावक आचार्यों के समान ही जैनधर्म के पोषक एवं संवर्धक नरेशों, मन्त्रियों, धनी सेठों-साहूकारों एवं श्रावकों के चरितों को भी जैन कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है। उनमें से कुछ रचनाओं का परिचय प्रस्तुत है।

कुमारपालचरित:

गुजरात का चौलुक्य नरेश कुमारपाल वैसे शैवधर्मी था पर आचार्य हेमचन्द्र और तत्कालीन अनेकों जैन धनिकों और विद्वानों के कारण उसने जैनधर्म और सिद्धान्तों को समझने, उनका अनुसरण करने एवं प्रचार करने में बड़ा ही योगदान दिया था। जैन विद्वानों ने इसके चरित को लेकर महाकाव्य, लघुकाव्य, नाटक, प्रबन्ध, कथाग्रंथ आदि लिखे हैं। उनमें से अनेक समकालिक होने से ऐतिहासिक महत्त्व के हैं और पश्चात्काल में श्रोताओं की रुचि बढ़ाने के लिए

---

१. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ में इन रचनाओं का उल्लेख है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा आदि के महत्त्व को बतलाने के लिए मात्र धार्मिक काव्य-रूप में लिखे गये हैं जिनमें चित्तविस्मयोत्पादक बातें भी समाविष्ट हैं।

समकालिक विशाल रचनाओं में सर्वप्रथम कुमारपाल और उसके वंश का वर्णन करनेवाला चरित्र हेमचन्द्राचार्यकृत द्वयाश्रयमहाकाव्य (१० सर्ग संस्कृत में, ८ सर्ग प्राकृत में) मिलता है। उसका विवेचन हम ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय महाकाव्यों में करेंगे। द्वितीय कुमारपालप्रतिबोध (सोमप्रभकृत) है जो प्रधानतः कथाकोश ही है। उसका परिचय कथाकोशों के प्रसंग में दिया गया है।

पश्चात्कालीन लघु रचनाओं का संग्रह मुनि जिनविजयजी ने 'कुमारपालचरित्रसंग्रह'[1] नाम से प्रकाशित करा दिया है। इनके अतिरिक्त पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में दो बड़े चरितग्रंथ भी लिखे गये हैं। उनमें कुमारपालभूपालचरित[2] की रचना महेन्द्रसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि ने १० सर्गों (६०५३ पद्यों) में की है। इस काव्य में ऐतिहासिक और पौराणिक दोनों शैलियों का सम्मिश्रण हुआ है। पौराणिक शैली के महाकाव्यों की तरह इसके प्रारम्भ में नायक की वंश-परम्परा का वर्णन है तथा अन्तिम सर्ग में कुमारपाल के पूर्वजन्मों का विवरण दिया गया है। स्थान-स्थान पर जैनधर्म के उपदेश विद्यमान हैं। इन उपदेशों में अनेक अवान्तर कथाएँ गर्भित हैं। मूल कथानक में हेमचन्द्र और कुमारपाल सम्बन्धी अनेक अलौकिक और अतिप्राकृतिक घटनाओं की योजना की गई है। सम्भवतः हेमचन्द्र की मृत्यु के बाद उनके सम्बन्ध में अनेक अलौकिक, चमत्कारपूर्ण घटनाएँ श्रद्धालु जनता में फैल गयी हों और उन्हीं किंवदन्तियों का उपयोग कवि ने अपने इस ग्रंथ-निर्माण में किया हो।

इस काव्य से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन ऐतिहासिक काव्यों के प्रसंग में करेंगे।

काव्यत्व की दृष्टि से कर्ता ने कुमारपालभूपालचरित को घटना-प्रधान काव्य बनाया है। इससे इसमें विविध रसों का अच्छा परिपाक मिलता है। काव्य की भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। इसमें देशी भाषा से प्रभावित शब्दों का प्रयोग अधिक हुआ है। इसमें अलंकारों का प्रयोग कम हुआ है फिर भी सादृश्यमूलक

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रंथांक ४१, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ९२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१५; गोडीजी जैन उपाश्रय, बम्बई, १९२६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास तो यत्र-तत्र देखे जाते हैं। इसमें अनुष्टुभ् छन्द का ही अधिक व्यवहार हुआ है। केवल ११६ पद्य विविध छन्दों में हैं।

कुमारपालभूपालचरित के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्ता जयसिंहसूरि हैं जो कृष्णर्षिगच्छ के थे। प्रशस्ति में गुरुपरम्परा भी दी गई है। तदनुसार कृष्णर्षिगच्छ में जयसिंहसूरि प्रथम हुए जिन्होंने सं० १३०१ में मरुभूमि में मन्त्र के प्रभाव से जलवर्षा करके संघ को नवजीवन प्रदान किया था। इनके शिष्य प्रसन्नचन्द्र हुए। उनके शिष्य महेन्द्रसूरि हुए जिनका सम्मान बादशाह मुहम्मदशाह ने किया। प्रस्तुत काव्य के कर्ता इन्हीं के शिष्य थे। जयसिंहसूरि के ही शिष्य *नयचन्द्रसूरि* थे जिन्होंने *हम्मीरमहाकाव्य* जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की। नयचन्द्रसूरि ने उक्त महाकाव्य की प्रशस्ति में जयसिंहसूरि को षट्भाषाचक्री सारंग (हम्मीर के राजपण्डित) को हरानेवाला तथा न्यायसार-टीका का कर्ता तथा नव्यव्याकरण का कर्ता माना है। ये जयसिंहसूरि हम्मीर-मदमर्दन के कर्ता से भिन्न हैं। प्रस्तुत चरित वि० सं० १४२२ में बनकर समाप्त हुआ था।[१]

पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्ध का काव्य है कुमारपालप्रबन्ध। यह एक गद्य-पद्य मिश्रित रचना है। इसे जिनमण्डनगणि ने वि० सं० १४९२ में पूर्ण किया है।[२] उन्होंने अपने इस ग्रन्थ की सामग्री मुख्यरूप से प्रबन्धचिन्तामणि और कुमारपाल-भूपालचरित से ली है और पिछले ग्रन्थ से तो बिना उल्लेख के अनेक पद्य खुले रूप में उद्धृत किये गये हैं, यद्यपि यह ग्रन्थ गद्य में लिखा गया है। उक्त दो ग्रन्थों के सिवाय जिनमण्डन ने प्रभावकचरित और एक प्राकृत-ग्रन्थ का भी उपयोग किया है जिसका मिलान नहीं हो सका है। उसने मोहराजपराजय का सार भी दिया है और ऐसा समझ लिया है कि उक्त नाटक से सम्बद्ध घटना मानों वास्तव में हुई हो। जयसिंहसूरि ने इसे पहले ही सार रूप में दिया है और संभवतः जयसिंह के ग्रन्थ से इसमें नकल की गई हो। वास्तव में जिन-मण्डन की यह रचना ऊपर निर्दिष्ट ग्रन्थों से चुने अंशों का शिथिल संग्रह है।

---

१. श्री विक्रमनृपाद् द्वि द्वि मन्वब्दे(१४२२)ऽयमजायत।
ग्रन्थः सप्तत्रिशती षट् सहस्राण्यनुष्टुभाम्॥

२. जिनरत्नकोश, पृ० ९३; आत्मानन्द जैन सभा, ग्रन्थांक ३४, भावनगर, सं० १९७१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैसे तो एक इतिहास-लेखक भी निःसन्देह अपनी सामग्री विभिन्न स्रोतों से एकत्र करता है, परन्तु जिनमण्डन में गुण-दोषविवेचक योग्यता का अभाव है और उनके श्रम का फल उन सब त्रुटियों से भरा है जो अविश्वसनीय स्रोतों से एकत्र तथ्योंवाले संग्रह में होती हैं।

इस काव्य में हेमचन्द्राचार्य के सम्बंध में कुछ कल्पित बातें कही गई हैं जैसे—पहली हेमचन्द्रसूरि के संगीत-ज्ञान की, दूसरी हेमचन्द्रसूरि के अजैन शास्त्रों के ठोस ज्ञान की, तीसरी हेमचन्द्रसूरि ने पशु-बलिदान के अनौचित्य को कैसे सिद्ध किया, चौथी हेमचन्द्र के प्रशंसकों को राजा की ओर से उपहार मिलता था।[1]

इसके कर्ता जिनमंडनगणि तपागच्छ के प्रभावक आचार्य सोमसुन्दरसूरि के शिष्य थे। उन्होंने प्रस्तुत कृति की रचना सं० १४९१-९२ में की थी। उनकी अन्य रचनाएँ हैं धर्मपरीक्षा एवं श्राद्धगुणसंग्रह-विवरण (सं० १४९८)।

वस्तुपाल-तेजपालचरित :

गुजरात के बघेलावंशीय नरेश वीरधवल के दो सहोदर मंत्रियों—वस्तुपाल एवं तेजपाल की कीर्ति-गाथाओं को लेकर उनके समकाल तथा पश्चात्काल में जितने काव्य, नाटक, प्रबंध और प्रशस्तियां लिखी गई हैं उतनी शायद ही भारत के किसी अन्य राजपुरुष के लिए लिखी गई हों। इनमें अनेक तो ऐतिहासिक महत्त्व की हैं और कुछ शास्त्रीय महाकाव्य के रूप में हैं। हम उनका विवेचन उन प्रसंगों में करेंगे। इनके धार्मिक कार्यों के वर्णन के लिए समकालिक आचार्य उदयप्रभ ने धर्माभ्युदयकाव्य अपरनाम संघपतिचरित निर्मित किया है। वह एक प्रकार से कथाकोश है अतः उसका परिचय कथाकोशों के प्रसंग में दे रहे हैं।

इन दोनों मंत्री-भ्राताओं के चरित्र पर पश्चात्काल (अर्थात् दो सौ वर्ष बाद) में एक स्वतंत्र रचना जिनहर्षगणिकृत वस्तुपालचरित (सं० १४४१) मिलता है। इसमें वस्तुपाल-तेजपाल के सम्बंध की उपलब्ध पूर्व सामग्री का उपयोग किया गया है। इसकी विशेष चर्चा ऐतिहासिक काव्यों में करेंगे।

विमलमंत्रिचरित :

इसमें गुजरात के चौलुक्य नरेश भीम (प्रथम) के नगरसेठ एवं प्रधान सेनापति विमलशाह पोरवाड (वि० सं० ११वीं का पूर्वार्ध) के धार्मिक कार्यों का वर्णन है।

---

१. कुमारपालप्रबंध, पृ० ३७, ४७, ४९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना पण्डित इन्द्रहंसगणि ने सं० १५७८ में की थी।[1] इनकी रचना का आधार आचार्य लावण्यविजय द्वारा सं० १५६८ में गुजराती में निर्मित विमलप्रबंध है। पर ग्रन्थकार ने अन्य दूसरी सामग्री का उपयोग भी इसमें किया है। विमलशाह के सम्बंध की जो पुरानी प्रशंसाएँ अज्ञातप्राय हैं और जो कुछ प्रशस्तियों में अवशिष्ट हैं उनमें से कुछ का उपयोग कवि ने प्रस्तुत कृति में किया है।

विमल मंत्री पर सं० १५७८ में सौभाग्यनन्दि द्वारा विरचित कृति[2] का भी उल्लेख मिलता है। इसका भी आधार लावण्यसमय का गुजराती ग्रन्थ है।

विमल मंत्री पर रचित ये कृतियां सामयिक नहीं हैं, इसलिए इनका ऐतिहासिक महत्त्व विचारणीय है।

जगडूचरित :

इसमें १३-१४वीं शताब्दी में हुए प्रसिद्ध जैनश्रावक जगडूशाह का चरित वर्णित है। इस लघु काव्य में ७ सर्ग हैं जिनमें ३८८ श्लोक हैं।[3] काव्य में जगडू के अनेक धार्मिक कार्यों तथा परोपकारिता का वर्णन है। इसमें अनेक ऐतिहासिक प्रसंग हैं जिनकी चर्चा अन्यत्र की जायगी।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में दी हुई पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता धनप्रभसूरि के शिष्य सर्वानन्द थे। काव्य के अन्त में ऐसी कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है जिससे कवि का विशेष परिचय और रचनाकाल जाना जा सके। फिर भी काव्य के प्रारंभ में कवि ने लिखा है कि 'गुरु के वचनों को स्मरण करके मैं जगडू के उत्तम चरित की रचना करता हूँ।' इससे यही ज्ञात होता है कि कवि जगडू के समय तो नहीं ही हुआ है। उसने जगडू के पावन कार्यों का विवरण गुरु के मुख से ही सुना था। संभवतः कवि के गुरु धनप्रभसूरि जगडू के समकालीन रहे हों और उन्होंने जगडू के

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ३५८; हीरालाल हंसराज, जामनगर। प्रस्तुत भाग के पृ० १०४ में इस रचना को १३वें तीर्थंकर विमलनाथ से सम्बद्ध मानना भूल है।
2. जिनरत्नकोश, पृ० ३५८; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३६० पर टिप्पण.
3. जिनरत्नकोश, पृ० १२८; म० द० खक्खर, बम्बई, १८९६ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्य-कार्यों का आँखों देखा विवरण अपने शिष्य को सुनाया हो जिससे प्रभावित हो कवि ने इस काव्य की रचना तत्काल अर्थात् सुनने के अनन्तर मूल घटना के ३०-४० वर्ष बाद सं० १३५० के लगभग की हो। श्री मोहनलाल दलीचन्द्र देसाई ने इस काव्य का रचनाकाल विक्रम की चौदहवीं शताब्दी माना है।[१]

जगडूशाह पर एक अन्य कृति जगडूशाहप्रबंध[२] का भी उल्लेख मिलता है।

सुकृतसागर :

यह ८ सर्गों का लघु संस्कृत काव्य है जिसमें कुल मिलाकर १३७२ श्लोक हैं। इसमें माण्डोंगढ़ (मालवा) के चौदहवीं सदी के पूर्वार्ध में हुए प्रसिद्ध जैन वणिक् पेथड़ (पृथ्वीधर) और उसके पुत्र झांझण के सुकृत कार्यों का विस्तृत परिचय दिया गया है।[३]

इन दोनों पिता-पुत्र का परिचय उपदेशतरंगिणी में तथा पृथ्वीधरप्रबंध में भी संक्षेप में दिया गया है। यह काव्य अपने युग की धार्मिक प्रभावना बतलाने के लिए बड़ा ही उपयोगी है। यह तत्कालीन जैन तीर्थों के महत्त्व का भी दिग्दर्शक है।[४]

पृथ्वीधरप्रबंध :

इसे झंझणप्रबंध या पेथडप्रबंध[५] भी कहते हैं। इसमें उक्त पृथ्वीधर और उसके पुत्र झांझण के धार्मिक कार्यों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यह एतद्विषयक काव्य सुकृतसागर का ही संक्षिप्त रूप है। प्रस्तुत प्रबंध गद्य-पद्य-मय है। उपर्युक्त सुकृतसागर और प्रस्तुत कृति की रचना तपागच्छीय नन्दिरत्न-गणि के शिष्य रत्नमण्डनगणि ने की है। रत्नमण्डनगणि की अन्य कृतियाँ उपदेश-तरंगिणी तथा भोजप्रबंध (सं० १५१७) उपलब्ध हैं।

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४३४.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १२८.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४३; जैन आत्मानन्द सभा, ग्रन्थांक ४०, भावनगर, सं० १९७१; इसके विशेष परिचय के लिए देखें—मो० द० देसाई, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४०४-४०६ तथा चिमनलाल भाईलाल शेठ, जैनिज्म इन गुजरात, पृ० १५८-१६२.

४. नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४७०-७१.

५. जिनरत्नकोश, पृ० २५६; यहाँ पेथड का पेवड नाम अशुद्ध छापा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पेथड़ अपरनाम पृथ्वीधर के चरित्र को लेकर १६वीं शती के कवि राजमल्ल ने भी पृथ्वीधरचरित लिखा है।

नाभिनन्दनोद्धारप्रबंध :

इसका दूसरा नाम शत्रुंजयमहातीर्थोद्धारप्रबंध भी है। इसमें गुजरात के पाटनगर के प्रसिद्ध जौहरी समरसिंह अपरनाम समराशाह के परिवार का तथा उसके धार्मिक कार्यों का अच्छा वर्णन किया गया है।[1] साथ में उसके द्वारा सं० १३७५ में शत्रुंजय तीर्थ पर उद्धार कार्यों का भी प्रचुर वर्णन है। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व का भी ग्रन्थ है जिसका कि विवेचन पीछे करेंगे।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि के पट्टधर शिष्य कक्कसूरि ने सं० १३९२ में की थी। इसी समय के लगभग समरसिंह का स्वर्गवास भी हुआ था।

जावडचरित्र और जावडप्रबंध :

जावड़ (१६वीं श० का मध्य) मालवा के माण्डवगढ़ का धनाढ्य व्यापारी था और साथ में मालवा के तत्कालीन राजा गयासुद्दीन खिलजी का राज्याधिकारी भी था। उक्त काव्यों में[2] जावड़ के संघपतित्व एवं सामाजिक प्रतिष्ठा और धर्मनिष्ठा का वर्णन है। जावड़ श्रीमालभूपाल एवं लघुशालिभद्र कहलाता था। इन काव्यों के लेखक एवं रचनाकाल ज्ञात नहीं हैं। जावड़ का चरित सर्वविजयगणि ने सुमतिसंभव नामक काव्य में विस्तृत रूप से दिया है। इस काव्य का रचनाकाल सं० १५४७ से १५५१ निर्धारित किया गया है। संभवतः उक्त दोनों काव्य भी उस समय के आस-पास की रचनाएँ हों।

कर्मवंशोत्कीर्तनकाव्य :

अकबर के समय में बीकानेर में कर्मचन्द्र मंत्री ओसवाल जाति का बड़ा ही शूरवीर, बुद्धिशाली तथा दानी पुरुष हो गया है। वह भक्त जैन तथा कुशल राजप्रिय पुरुष था। उसकी कीर्ति राजस्थान से लेकर दिल्ली के मुगल दरबार तक

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २१०, ३७२; प्रकाशित—हेमचन्द्र ग्रन्थमाला; मो० द० देसाई के जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४२४-४२७ और चि० भा० शेठ के जैनिज्म इन गुजरात, पृ० १७१-१८० में समरसिंह का चरित्र विस्तार से दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फैली थी। वह खरतरगच्छ के युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के प्रभावना-कार्यों में बड़ा सहयोगी था।

उसके जीवन को लेकर संस्कृत में लगभग ५५० पद्यों का उक्त काव्य खरतरगच्छ की क्षेमशाखा के प्रमोदमाणिक्य के शिष्य जयसोम उपाध्याय ने सं० १६५० में[१] विजयादशमी के दिन लाहौर में रचा है। यह एक समकालिक रचना है।

इस पर उन्हीं के शिष्य गुणविजय ने सं० १६५५ में संस्कृत व्याख्या लिखी और उसी वर्ष गुजराती में पद्यानुवाद किया।

क्षेमसौभाग्यकाव्य :

इसे पुण्यप्रकाश भी कहते हैं।[२] इसमें मंत्री क्षेमराज के पुण्य-कार्यों का वर्णन है। इसे तपागच्छ के आनन्दकुशल के शिष्य रत्नकुशल ने सं० १६५० में रचा था। इसे खीमसौभाग्याभ्युदय नाम से भी कहा जाता है।[३]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ७१; इसका सार श्री देसाई ने अपने जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास में पृ० ५७१-५७५ पर दिया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १००.

३. इसकी हस्तलिखित प्रति विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरा में उपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण ३

कथा-साहित्य

पुराण-चरित-साहित्य के समान ही जैनों का कथा-साहित्य भी खूब समृद्ध है। वेदों और पालि त्रिपिटक की भाँति जैनों के अर्धमागधी आगम ग्रन्थों में भी छोटी-बड़ी सभी प्रकार की अनेक कहानियां मिलती हैं। उनमें दृष्टान्त, उपमा, रूपक, संवाद एवं लोक-कथाओं द्वारा संयम, तप और त्याग का विवेचन किया गया है। जैनागमों के निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि एवं टीका-ग्रन्थों में तो अपेक्षाकृत विकसित कथा-साहित्य के दर्शन होते हैं। उनमें ऐतिहासिक, अर्धैतिहासिक, धार्मिक एवं लौकिक आदि कई प्रकार की कथाएँ संगृहीत हैं। फिर जैनों ने कथाओं के पृथक् ग्रन्थों का भी बड़ी संख्या में प्रणयन किया है।

कथा के भेदों का निरूपण करते हुए आगमों में अकथा, विकथा, कथा तीन भेद किये गये हैं। उनमें कथा तो उपादेय है, शेष त्याज्य। उपादेय कथा के विभिन्न रूपों का वर्गीकरण विषय, शैली, पात्र एवं भाषा के आधार पर किया गया है। विषय की दृष्टि से चार प्रकार की कथाएँ होती हैं—अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा और मिश्रकथा। धर्मकथा के चार भेद किये गये हैं—आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदनी और निर्वेदनी। जैनाचार्यों ने अधिकतर इसी को उपादेय माना है। मिश्रकथा में मनोरंजक और कौतुकवर्धक सभी प्रकार के कथानक रहते हैं। जैन कथाकारों में यह प्रकार भी प्रशंसनीय माना गया है। पात्रों के आधार से दिव्य, मानुष और मिश्र कथाएँ कही गई हैं। भाषा की दृष्टि से संस्कृत, प्राकृत और मिश्र रूप में कथाएँ लिखी गई और इन तीनों प्रकारों को खूब अपनाया गया है। इसी तरह शैली की दृष्टि से सकलकथा, खण्डकथा, उल्लावकथा, परिहासकथा और संकीर्णकथा के भेद से पंचविध कथाएँ मानी गई हैं। यहाँ इन सबका विस्तार से विवेचन करना संभव नहीं पर सभी प्रकारों में मिश्र या संकीर्ण भेद में अनेक तत्त्वों का मिश्रण होने से जन-मानस का अनुरंजन करने की अधिक क्षमता होती है। यह गद्य-पद्य मिश्रित तथा प्राकृत-संस्कृत मिश्र रूप में भी लिखी गई है।

जिस तरह आज के कथा-साहित्य के उद्देश्य, कथानक, पात्र और शैली ये ४ मूल तत्त्व हैं उसी तरह कथाओं के उपर्युक्त भेदों में इन तत्त्वों के दर्शन सुदूर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतीत के साहित्य में भी हो सकते हैं। आज के कथा-साहित्य का उद्देश्य केवल लोकरुचि का मनोरंजन मात्र नहीं है अपितु पाठकों के लिए किसी विचार दर्शन का प्रस्तुत करना भी है, उसी तरह जैन कथाओं का उद्देश्य भी जैन विचार-आचार अर्थात् कर्मवाद तथा संयम, व्रत, उपवास, दान, पर्व, तीर्थ आदि के माहात्म्य को प्रकट करना है। यद्यपि इस दृष्टि से वे आदर्शोन्मुखी हैं पर ऐसा होते हुए भी जीवन के यथार्थ धरातल पर टिकी हुई हैं इसलिए उनमें सामाजिक जीवन की विविध भंगिमाओं के दर्शन होते हैं। कथानक की दृष्टि से इन कथाओं का क्षेत्र भी बड़ा व्यापक है। इनमें नीतिकथा, लोककथा, पशुपक्षिकथा, भावात्मक ध्वनिकथा, धर्मकथा, पुरातन-कथा, दैवतकथा, दृष्टान्तकथा, परीकथा, कल्पितकथा आदि सभी प्रकार की कथाओं को स्थान मिला है। यद्यपि अधिकांश जैन कथानक घटनाबहुल हैं पर उन्हें घटनाप्रधान नहीं कह सकते। उनका उद्देश्य पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को उभारते हुए पाठक को एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचाना है। कथानक की भाँति जैन कथा-साहित्य के पात्रों का क्षेत्र भी बड़ा व्यापक है। उसमें राजा से लेकर दरिद्र, ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल, साहूकार से लेकर चोर, पतिव्रता से लेकर वेश्या तक, सभी वर्गों के पात्र समाविष्ट हैं। पुरुष, स्त्री, देव, यक्ष, किन्नर, विद्याधर, मुनि, बाल, वृद्ध, युवा और यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी पात्र के रूप में विद्यमान हैं। आज के कहानीकार का उद्देश्य अपने पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण करना है। वह उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व को दिखाता है, उनके चारित्रिक मनोविज्ञान का अध्ययन प्रस्तुत करता है और उनके अन्तर्तम के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करता है परन्तु प्राचीन कथाओं की भाँति जैन कथाओं में भी पात्र केवल निमित्त हैं। वहाँ पात्रों की अवतारणा वास्तव में बुराई का अन्त बुराई और भलाई का अन्त भलाई में दिखाने के लिए की गई है। शैली की दृष्टि से भी आधुनिक और प्राचीन कथाओं में बड़ा अन्तर है। आज की कहानियों में विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं। कहीं वे कलात्मक हैं तो कहीं आत्मचरित्र शैली में या किसी अन्य प्रकार में पर प्राचीन कथाओं की भाँति जैन कथाएँ इतिवृत्तात्मक शैली में अधिक हैं, जैसे अमुक नगर में अमुक राजा या व्यक्ति रहता था।

यहाँ हम जैन कथा-साहित्य के कतिपय अमूल्य रत्नों—कृतियों का परिचय प्रस्तुत करते हैं। वैसे तो जैन पुराणों में भारतीय कथा-साहित्य के ऐसे अनेक रत्न मिले हैं जो अन्यत्र दुर्लभ हैं फिर भी पृथक् रूप से अनेक प्रकार की बड़ी कृतियाँ और लघु कथाओं के संग्रह बहुसंख्या में मिले हैं।

यहाँ वर्णनक्रम में सर्वप्रथम हम उन कथा-कोशों का परिचय दे रहे हैं जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगमों, चूर्णियों, टीकाओं की परम्परा का अनुसरण करते हुए प्राचीन आदर्शों को बतलानेवाली कथाओं के संग्रह हैं। इनमें समागत अनेक कथाएँ परवर्ती अनेक स्वतंत्र रचनाओं की उपजीव्य हैं। इसके बाद हम उन प्रमुख कथाग्रन्थों का वर्णन करेंगे जो धर्म-अर्थ-काम पुरुषार्थों का एक साथ प्रतिपादन करने में सक्षम हैं और अपने में एक विशाल कथा-जाल को भरे हुए हैं। इसके बाद नीतिकथा अर्थात् दान, शील, अहिंसादि व्रतों, पर्वों, तीर्थों आदि से सम्बद्ध कथाओं को देकर कल्पितकथा, लोककथा और प्राणिकथा आदि पर उपलब्ध रचनाओं का विवेचन करेंगे।

औपदेशिक कथा-संग्रह :

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४ में हम देख चुके हैं कि आगमिक प्रकरणों का उद्भव और विकास कैसे हुआ है। हम प्रारंभ में कह आये हैं कि चरणकरणानुयोग विषयक साहित्य धर्मोपदेश या औपदेशिक प्रकरणों के रूप में उद्भूत एवं विकसित हुआ है।

धर्मोपदेश में संयम, शील, तप, त्याग और वैराग्य आदि भावनाओं को प्रमुख बताया गया है। इनका उपदेश कोमलमति श्रोताओं के उद्देश्य से करने के लिए कथाओं का अच्छा माध्यम चुना गया है। प्रवचन के प्रारम्भ में, प्रवचनकार जैन साधु, कुछ शब्दों या श्लोकों में अपनी धर्मदेशना का प्रसंग बता देता है और फिर एक लम्बी-सी मनोरंजक कहानी कहने लगता है जिसमें अनेक रोमांचक घटनायें होती हैं और अनेक बार एक कथा में से दूसरी कथाएँ निकलती जाती हैं। इस तरह ये औपदेशिक प्रकरण अत्यन्त मूल्यवान् कथा-साहित्य से भरे हुए हैं जिसमें हर प्रकार की कहानियाँ—रमन्यास, उपन्यास, दृष्टान्तकथा, प्राणिनीतिकथा, पुराणकथायें, परिकथायें और नानाविध कौतुक और अद्भुत कथाएँ मिलती हैं।

जैनों ने इस प्रकार के विशाल औपदेशिक कथा-साहित्य का निर्माण किया है। जैन साहित्य के बृहद् इतिहास के चतुर्थ भाग में धर्मोपदेश प्रकरण के अन्तर्गत जो उपदेशमाला, उपदेशप्रकरण, उपदेशरसायन, उपदेशचिन्तामणि, उपदेशकन्दली, उपदेशतरंगिणी, भावनासार आदि ५० ६० रचनायें संक्षिप्त विवरण के साथ दी गई हैं; वे अधिकांश में टीका और वृत्ति के रूप में जैन कथाओं के संग्रह ही हैं। उदाहरण के लिए धर्मदासगणिकृत उपदेशमालाप्रकरण को लें। इस पर १०वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक लगभग २० संस्कृत टीकाएँ लिखी गई हैं। इसकी ५४२ गाथाओं में दृष्टान्तस्वरूप ३१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथानकों का संग्रह हो गया है। इसी तरह हरिभद्रसूरि के उपदेशपद पर विवृतियों में कथाओं का एक विशाल जाल बुना गया है। ये कथाएँ यद्यपि प्राचीन जैन ग्रन्थों से ली गई हैं फिर भी इनके कथन का ढंग निराला है। इसी तरह जयसिंहसूरि (वि० सं० ९१५) कृत धर्मोपदेशमालाविवरण में १५६ कथाएँ समाविष्ट की गई हैं जो संयम, दान, शील आदि का माहात्म्य और रागद्वेषादि कुभावनाओं के दुष्परिणामों को व्यक्त करती हैं। विजयलक्ष्मी (सं० १८४३) कृत उपदेशप्रासाद[1] में सबसे अधिक ३५७ कथानक मिलते हैं। इस तरह औपदेशिक कथा-साहित्य के अच्छे संग्रह[2] रूप में जयकीर्ति की शीलोपदेशमाला, मलधारी हेमचन्द्र की भवभावना और उपदेशमालाप्रकरण, वर्धमानसूरि का धर्मोपदेशमालाप्रकरण, मुनिसुन्दर का उपदेशरत्नाकर, आसड की उपदेशकंदली और विवेकमंजरीप्रकरण, शुभवर्धनगणि की वर्धमानदेशना, जिनचन्द्रसूरि की संवेगरंगशाला तथा विजयलक्ष्मी का उपदेशप्रासाद है। दिगम्बर साहित्य में यद्यपि ऐसे औपदेशिक प्रकरणों की कमी है जिन पर कथा-साहित्य रचा गया हो फिर भी कुन्दकुन्द के षट्प्राभृत की टीका में, वट्टकेर के मूलाचार, शिवार्य की भगवतीआराधना तथा रत्नकरण्डश्रावकाचारादि की टीकाओं में औपदेशिक कथाओं के संग्रह उपलब्ध होते हैं।

औपदेशिक कथा-साहित्य के अनुकरण पर अनेक कथाकोश और संग्रहों का भी निर्माण हुआ है। उनमें हरिषेण का बृहत्कथाकोश प्राचीन है।

बृहत्कथाकोश—उपलब्ध कथाकोशों में यह सबसे प्राचीन है।[3] इसमें छोटी-बड़ी सब मिलाकर १५७ कथाएँ हैं। ग्रन्थ-परिमाण साढ़े बारह हजार श्लोक-प्रमाण है।[4] इन कथाओं में कुछ कथाएँ चाणक्य, शकटाल, भद्रबाहुस्वामी, कार्तिकेय आदि ऐतिहासिक-राजनीतिक पुरुषों और आचार्यों से सम्बंधित हैं

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४१०-५२४. इसमें उक्त साहित्य की अनेकों कथाओं की विशेषता प्रतिपादित है।

२. जैनधर्म प्रसारक सभा (ग्रं० सं० ३३-३६), भावनगर से १९१४-२३ में प्रकाशित; वहीं से ५ भागों में गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

३. जिनरत्नकोश, पृ० २८३; डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थाङ्क १७; इसकी १२२ पृष्ठ में अंग्रेजी में लिखी भूमिका महत्त्वपूर्ण है।

४. सहस्रैर्द्वादशैर्बद्धो नूनं पंचशतान्वितैः (१२५००), प्रशस्ति, पद्य १६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि इनका उद्देश्य इतिहास की अपेक्षा आराधना-समाधिमरण का महत्त्व बतलाना अधिक है। इसमें १३१वीं कथा—भद्रबाहु—में दो बातें ऐसी कही गई हैं जो अन्य कथाग्रन्थों एवं शिलालेखों से विरुद्ध पड़ती हैं। इस कथा के अनुसार भद्रबाहु का समाधिमरण उज्जयिनी के समीप भाद्रपद देश (स्थान) में हुआ था और १२ वर्षीय अकाल के समय जैनसंघ को दक्षिण देश में ले जानेवाले उनके शिष्य चन्द्रगुप्त अपरनाम विशाखाचार्य थे। अन्य कथाओं और लेखों के अनुसार भद्रबाहु स्वयं दक्षिण देश ससंघ गये थे और उनका समाधिमरण श्रवणबेल्गोल के चन्द्रगिरि पर्वत में हुआ था। चन्द्रगुप्त उनके साथ ही गये थे और उनका नाम प्रभाचन्द्र था। इसमें अन्य दिग० कथाकोशों की भाँति समन्तभद्र, अकलंक और पात्रकेसरी की कथायें नहीं दी गई हैं।

इस कथाकोश की प्रशस्ति के आठवें पद्य में इसे 'आराधनोद्धृत' कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि आराधना नामक किसी ग्रन्थ में जो उदाहरण रूप कथायें थीं उन्हें यहाँ उद्धृत किया गया है। इस तथ्य के संकेत रूप में यत्र-तत्र शिवार्य की भगवतीआराधना का नाम दिया गया है। इस ग्रन्थ के विद्वान् सम्पादक डा० आदिनाथ ने० उपाध्ये का मत है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के कितनेक अंश संभवतः किसी प्राकृत ग्रन्थ से संस्कृत में अनूदित हुए हैं क्योंकि इसमें बहुत से प्राकृत नाम ज्यों के त्यों रह गये हैं, यथा—मेदज्ज (मेतार्य), भारहेवासे (भारतवर्षे), वाणारसी (वाराणसी), विज्जुदाढ (विद्युद्दंष्ट्र) आदि। पंथा, विकुव्वणा आदि कितने ही शब्द संस्कृत रचनाओं में दुर्लभ हैं किन्तु प्राकृत ग्रन्थों में सुलभ हैं। यह सब देख 'आराधनोद्धृत' का अर्थ आराधना नामक प्राकृत ग्रन्थ से ही उद्धृत किया हुआ या लिया हुआ होना चाहिये।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्ता आचार्य हरिषेण हैं। प्रशस्ति में उनकी परम्परा दी गई है। तदनुसार पुन्नाट संघ में मौनिभट्टारक, उनके शिष्य हरिषेण (प्रथम), उनके शिष्य भरतसेन (जो अनेक शास्त्रों के ज्ञाता तथा किसी काव्य के कर्ता थे) और उनके शिष्य प्रस्तुत हरिषेण (ग्रन्थकर्ता) थे। इस ग्रन्थ की रचना काठियावाड़ के बढमान (वर्धमानपुर) नामक स्थान में वि० सं० ९५५ में हुई थी। इसी बढमान में शक सं० ७०५ (वि० सं० ८३०) में पुन्नाट संघ के एक आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण की रचना की थी। संभवतः हरिषेण भी उनकी परम्परा के हों, यदि हमें जिनसेन और हरिषेण के परदादागुरु मौनिभट्टारक के बीच की दो तीन पीढ़ियों का पता लग जाय। जिनसेन के हरिवंश की प्रशस्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के समान ही इस कथाकोश की प्रशस्ति भी बड़े ही ऐतिहासिक महत्त्व की है। उसमें लिखा है कि यह कथाकोश उस समय रचा गया था जब वर्धमानपुर विनायकपाल के राज्य में शामिल था और वह राज्य शक्र या इन्द्र के जैसा विशाल था।[१] यह विनायकपाल प्रतिहार वंश का राजा था जिसके साम्राज्य की राजधानी कन्नौज थी। यह महेन्द्रपाल का पुत्र था और अपने भाइयों—महीपाल और भोज (द्वितीय) के बाद गद्दी पर बैठा था। उक्त कथाकोश की रचना के लगभग एक ही वर्ष पहले का इस नृप का एक दानपत्र मिला है। यह कथाकोश तत्कालीन संस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से बड़ा उपयोगी है।

चार आराधनाओं के महत्त्व को बतलानेवाले कुछ और कथाकोश रचे गये हैं। उनमें प्रभाचन्द्र, सिंहनन्दि, नेमिचन्द्र, ब्रह्मदेव के संस्कृत में हैं और छत्रसेन का प्राकृत में। यहाँ दो का परिचय प्रस्तुत है :

१. कथाकोश—इसमें चार आराधनाओं का फल पानेवाले धर्मात्मा पुरुषों की कथाएँ दी गई हैं।[२] यह सरल संस्कृत गद्य में है। बीच-बीच में संस्कृत-प्राकृत के उद्धरण दिये गये हैं। इसकी सभी कथाएँ शिवार्य की भगवती-आराधना से सम्बद्ध हैं। यह कथाकोश 'आराधना-सत्कथा-प्रबंध' भी कहलाता है। ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है पर विषय और शैली से ज्ञात होता है कि वे भाग एक ही कर्ता ने अपने जीवन के पूर्व और पश्चाद् भाग में लिखे थे। पहले भाग में ९० कथायें हैं और दूसरे भाग में ३२।

कर्ता और कृतिकाल—इसकी रचना परमार नरेश भोज के उत्तराधिकारी जयसिंहदेव के राज्यकाल में प्रभाचन्द्र ने धारानगर में की है। पहले भाग के अन्त में उन्होंने अपने को पण्डित प्रभाचन्द्र और दूसरे के अन्त में भट्टारक प्रभाचन्द्र कहा है। इनका समय वि० सं० १०३७ से १११२ तक माना जाता

१. विनायकादिपालस्य राज्ये शक्रोपमानके ॥ १२ ॥
इस पद्य की विशेष व्याख्या के लिए देखें—डा० गु० च० चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री आफ नार्दर्न इण्डिया, पृ० ४४; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २२०—२३.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२; विशेष परिचय के लिए देखें—डा० उपाध्ये द्वारा लिखित बृहत्कथाकोश की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ६०-६१ (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १७).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इनके अन्य ग्रन्थ हैं: प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, तत्त्वार्थवृत्ति-पदविवरण, शाकटायनन्यास, शब्दाम्भोजभास्कर, प्रवचनसारसरोजभास्कर, महापुराणटिप्पण, रत्नकरण्डटीका, समाधितन्त्रटीका आदि।

२. कथाकोश—यह संस्कृत श्लोकों में रचित है।[1] एक तरह से प्रभाचन्द्र कृत गद्यात्मक कथाकोश का ही पद्यात्मक एवं विस्तृत रूपान्तर है। फिर भी इसमें प्रभाचन्द्र के कथाकोश की १७ कथायें नहीं हैं और ९ नई कथायें जोड़ी गई हैं। प्रभाचन्द्रकृत रत्नकरण्डटीका में दी गई कई कथाओं से इसकी कथाएँ मिलती हैं। इसमें १०० से अधिक कथाएँ हैं।

इसके रचयिता ब्रह्म नेमिदत्त हैं। इनका समय १६वीं शताब्दी का प्रारंभ है। इन्होंने अपने गुरुभ्राता मल्लिषेण भट्टारक के अनुरोध पर इसकी रचना की थी।

कुछ कथाकोश विभिन्न नामों से मिलते हैं।

कथाकोशप्रकरण—यह ग्रन्थ[2] मूल और वृत्ति रूप में है। मूल में केवल ३० गाथाएँ हैं और इन गाथाओं में जिन कथाओं का उल्लेख है वे ही प्राकृत वृत्ति के रूप में विस्तार के साथ गद्य में लिखी गई हैं। इसमें मुख्य कथाएं ३६ और ४-५ अवान्तर कथाएँ हैं। इनमें बहुत-सी कथाएं प्रायः प्राचीन जैन ग्रन्थों से ली गई हैं पर यहाँ कथाकार ने उन्हें नई शैली में, नये रूप में प्रस्तुत किया है। इनमें कुछ कथाएं नई कल्पित भी हैं जिनका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है।[3]

यह ग्रन्थ सामान्य श्रोताओं को लक्ष्य में रखकर बनाया गया है। इसके प्रारंभ की ७ कथाओं में जिन भगवान् की पूजा का फल, ८वीं में जिनस्तुति का फल, ९वीं में साधुसेवा का फल, १०-२५वीं तक १६ कथाओं में दानफल, इसके आगे ३ कथाओं में जैनशासन-प्रभावना का फल, २ कथाओं में मुनियों

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३२; बृहत्कथाकोश, प्रस्तावना, पृ० ६२-६३; इसका हिन्दी अनुवाद तीन भागों में जैनमित्र कार्यालय, हीराबाग, बम्बई से वीर सं० २४४० में प्रकाशित हुआ है।

२. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, सं० २५; जिनरत्नकोश पृ० ६४.

३. जिणसमयपसिद्धाइं पायं चरियाइं हंदि एयाइं।
भवियाण णुग्गहट्ठा काइंपि परिकप्पियाइं पि॥ गाथा २६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के दोष दिखाने का कुफल, १ कथा में मुनि-अपमान-निवारण का सुफल, १ कथा में जिनवचन पर अश्रद्धा का कुफल, १ कथा में धर्मोत्साह प्रदान करने का सुफल, १ कथा में गुरुविरोध का फल, १ में शासनोन्नति करने का फल तथा अन्तिम कथा में धर्मोत्साह प्रदान करने का फल वर्णित है।

यद्यपि इस कथाकोश की कथाएं प्राकृत गद्य में लिखी गई हैं फिर भी प्रसंगवश प्राकृत पद्यों के साथ संस्कृत और अपभ्रंश के पद्य भी मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से कथाएं सरल एवं सुगम हैं। इसमें व्यर्थ के शब्दाडम्बर एवं दीर्घ-समासों का अभाव है। कथाओं में यत्र-तत्र चमत्कार एवं कौतूहल तत्त्व बिखरा पड़ा है। धार्मिक कथाओं में शृंगार और नीति का संमिश्रण प्रचुर रूप में हुआ है जिससे मनोरंजकता विपुल मात्रा में आ गई है। इन कथाओं में तत्कालीन समाज, आचार-विचार, राजनीति आदि के सरस तत्त्व विद्यमान हैं।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के प्रारंभ और अन्त से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता जिनेश्वरसूरि हैं। इनका श्वेताम्बर सम्प्रदाय में एक विशिष्ट स्थान है। इन्होंने शिथिलाचारग्रस्त चैत्यवासी यतिवर्ग के विरुद्ध आन्दोलन कर सुविहित या शास्त्रविहित मार्ग की स्थापना की थी और श्वेताम्बर संघ में नई स्फूर्ति और नूतन चेतना उत्पन्न की थी। इनके गुरु का नाम वर्द्धमानसूरि था और भाई का नाम बुद्धिसागरसूरि था। ये ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे पर धारा नगरी के सेठ लक्ष्मीपति की प्रेरणा से वर्धमानसूरि के शिष्य हुए थे।

इनकी विशाल और गौरवशालिनी शिष्यपरम्परा थी जिससे श्वेता० समाज में नूतन युग का उदय हुआ। इनकी शिष्यपरम्परा में नवांगी वृत्तिकार अभयदेवसूरि, संवेगरंगशाला के लेखक जिनचन्द्रसूरि, सुरसुन्दरीकथा के कर्ता धनेश्वरसूरि, जयन्तविजयकाव्य के रचयिता अभयदेव (द्वितीय), पासनाहचरिय और महावीरचरिय के प्रणेता गुणचन्द्रगणि अपरनाम देवभद्रसूरि आदि अनेक विद्वान्, शास्त्रकार, साहित्य-उपासक हो गये हैं।

इनके शिष्य-प्रशिष्यों ने इन्हें युगप्रधान विरुद से संबोधित किया है।

प्रस्तुत कथाकोषप्रकरण के अतिरिक्त इनके रचित ग्रन्थ चार और हैं: प्रमालक्ष्म, निर्वाणलीलावतीकथा, षट्स्थानकप्रकरण, पञ्चलिङ्गीप्रकरण। उनमें निर्वाणलीलावतीकथा (प्राकृत) अबतक अनुपलब्ध है।

---

१. डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४३१-४३९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथाकोषप्रकरण की रचना वि० सं० ११०८ मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी रविवार को हुई थी।

१. **कथानककोश**—इसे कथाकोश या कथाकोशप्रकरण भी कहा गया है। बृहट्टिप्पणिका के अनुसार यह प्राकृत ग्रन्थ है जिसमें २३९ गाथाएँ हैं।[१] लेखक ने प्रारम्भ में एक गाथा में कहा है कि वह इस कोश में कुछ नयों और दृष्टान्त-कथाओं को कह रहा है जिनके श्रवण से मुक्ति सम्भव है। गाथाओं में कथाओं का आकर्षक नामों से उल्लेख किया गया है। कहीं-कहीं एक ही दृष्टान्त की एकाधिक कथायें दी गई हैं। उदाहरण के लिए पूजा की भावना मात्र से स्वर्गसुख की प्राप्ति होती है, इसके लिए चौथी गाथा में जिनदत्त, सूरसेना, श्रीमाली और रोरनारी के नाम दृष्टान्त रूप में दिये गये हैं। प्रथम १७ गाथाओं में सब कथाएँ जिनपूजा और साधुदान से सम्बन्धित हैं। गाथाओं पर गद्य-पद्य मिश्रित एक संस्कृत टीका है पर उसमें दृष्टान्त कहानियाँ प्राकृत में दी गई हैं। कथाकार ने इसमें आगमवाक्य तथा संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के कुछ पद्यों को उद्धृत किया है।

रचयिता और रचनाकाल—इस कथाकोश में रचयिता का नाम नहीं दिया गया है पर मुनि जिनविजय के मतानुसार वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि ने ही इन गाथाओं को रचकर उनसे सम्बद्ध कथाओं की रचना वर्तमान रूप में की है। हो सकता है उन्होंने इसमें प्राचीन सामग्री भी सम्मिलित कर दी हो। बृहट्टिप्पणिका के अनुसार इसका समय सं० ११०८ है। श्री देसाई के अनुसार यह ग्रन्थ सं० १०८२–१०९५ के बीच रचा गया है।[२] इसे मोटे रूप में ११वीं सदी के उत्तरार्ध की रचना मान सकते हैं।

२. **कथानककोश**—यह एक गद्य-पद्यमयी रचना[३] है जिसमें गद्य संस्कृत में है और पद्य कहीं संस्कृत में और कहीं प्राकृत में। इसमें श्रावकों के दान, पूजा,

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६५ (III); डा० आ० ने० उपाध्ये, हरिषेण के बृहत्कथाकोश की भूमिका, पृ० ३९.

२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २०८; विण्टरनित्स ने अपने ग्रन्थ हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४३ में इस कथाकोश का समय ई० सन् १०९२ दिया है जो भूल से संवत् के स्थान में सन् मानने से हुआ लगता है।

३. पं० जगदीशलाल शास्त्री द्वारा सम्पादित, मोतीलाल बनारसीदास द्वारा १९४२ में प्रकाशित; जिनरत्नकोश, पृ० ६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शील, कषायदूषण, द्यूत आदि पर २७ कथाओं का संग्रह है। प्रारंभ में धनद की कथा है और अन्त में नल की। ये कथाएँ किसी विषयक्रम के अनुसार नहीं रखी गई हैं। कई विषय आगे-पीछे दो बार आये हैं पर कथाओं की पुनरावृत्ति नहीं हुई है। प्रत्येक कथा के आदि में एक पद्य दिया गया है जो कथा के उद्देश्य को सूचित करता है। यह शैली पंचतंत्र, हितोपदेश के अनुकरण पर है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता का नाम कहीं नहीं दिया है। अन्य किसी कथाकोशकार ने भी इसके कर्ता का नाम निर्दिष्ट नहीं किया है। पर इसमें कर्क, अरिकेसरिन् और मम्मण का उल्लेख किया गया है और इन राजाओं का समय कर्णाटक राजवंशावली के अनुसार ई० १०वीं-११वीं शताब्दी है। इन उल्लेखों से डा० सलेतोरे ने कल्पना की है कि इस कथाकोश की रचना ११वीं सदी ईस्वी के अन्तिम चतुर्थ में हुई होगी।[1]

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ अम्बाला और जीरा नामक स्थानों पर मिली हैं। इसमें 'चीठी' आदि हिन्दी भाषा के शब्द मिलने से यह अनुमान होता है कि लिपिकारों ने इसमें आवश्यक परिवर्तन किया है। इसकी हस्तलिखित प्रतियां वि० सं० १८५९ से पूर्व की नहीं मिली हैं। इसका अंग्रेजी अनुवाद सी० एच० टानी ने किया है[2] और मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि ये कहानियाँ भारतीय लोकवार्ताओं के यथार्थ अंश हैं जिन्हें किसी जैनाचार्य ने अपने धर्म के अनुयायियों के गौरवगान का रूप देकर अपने ढंग से फिर से सम्पादन किया है।

कहारयणकोस (कथारत्नकोश)—इस कथाकोश में ५० कथाएं हैं जो दो बृहद् अधिकारों में विभक्त हैं।[3] पहले अधिकार का नाम धर्माधिकारी-सामान्य-गुण-वर्णन है। इसमें ९ सम्यक्त्व पटल की तथा २४ सामान्य गुणों की इस तरह ३३ कथायें हैं। द्वितीय धर्माधिकारी-विशेषगुण-वर्णनाधिकार में बारह व्रतों तथा वन्दन-प्रतिक्रमण आदि से संबंधित १७ कथायें हैं। इस कथाकोश का उद्देश्य यह है कि अच्छा साधु और अच्छा श्रावक वही है जो अपने-अपने

---

१. जैन एण्टीक्वेरी, भाग ४, सं० ३, पृ० ७७-८०.

२. ओरियण्टल ट्रान्सलेशन फण्ड, न्यू सिरीज, लन्दन, १८९५.

३. आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला में मुनि पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, सन् १९४४ में प्रकाशित; डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४४८-४५५; जिनरत्नकोश, पृ० ६६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतों में निष्णात है। बिना अच्छा श्रावक बने कोई भी अच्छा श्रमण नहीं बन सकता है। जो अणुव्रतों का पालन कर सकता है वही महाव्रतों का पालन कर सकता है। सुश्रावक होने के लिए व्यक्ति में सामान्य और विशेष दोनों ही गुण होने चाहिये। सुश्रावक के सामान्य गुण ३३ हैं जिनमें सम्यग्दृष्टि और उसके आठ अतिचार, धर्म में श्रद्धा, देवमन्दिर और मुनिसंघ की श्रद्धापूर्वक सहायता करना और करुणा, दया आदि मानवीय वृत्तियों का पोषण करना समाविष्ट हैं। विशेष गुण १७ हैं जिनमें पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत, संवरण, आवश्यक और दीक्षा समाविष्ट हैं। इन गुणों के महत्त्व को प्रकाशित करनेवाली कथाएँ ही इस कथाकोश में दी गई हैं।

यह कथाकोश अधिकांश में प्राकृत पद्यों में ही लिखित है, कहीं-कहीं कुछ अंश गद्य में भी दिये गये हैं। बीच-बीच में संस्कृत और अपभ्रंश के पद्य भी दिये गये हैं। कथाओं द्वारा धार्मिक और औपदेशिक शिक्षा देना ही इस कथा-कोश का प्रधान लक्ष्य है। ग्रन्थ का परिमाण १२३०० श्लोक-प्रमाण है।

इस कथाकोश की सभी कथाएँ रोचक हैं। उपवन, ऋतु, रात्रि, युद्ध, श्मशान, राजप्रासाद, नगर आदि के सरस वर्णनों के द्वारा कथाकार ने कथा-प्रवाह को गति-शील बनाया है। इन कथाओं में सांस्कृतिक महत्त्व की बहुत सामग्री है। नाग-दत्तकथानक में कुलदेवता की आराधना के लिए उठाये गये कष्टों से उस काल के रीति-रिवाजों तथा नायक के चरित्र और वृत्तियों पर प्रकाश पड़ता है। सुदत्त-कथा में गृहकलह का प्रतिपादन करते हुए सास, बहू, ननद और बच्चों के स्वाभाविक चित्रणों में कथाकार ने पूरी कुशलता प्रदर्शित की है। सुजसश्रेष्ठी और उसके पुत्रों की कथा में बाल-मनोविज्ञान के अनेक तत्त्व चित्रित हैं। धन-पाल और बालचन्द्र की कथा में वृद्धा वेश्या का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता देवभद्रसूरि (गुणचन्द्रगणि) हैं। इनका परिचय इनकी अन्य कृतियों—महावीरचरिय तथा पासनाहचरिय के प्रसंग में दिया गया है। इसकी रचना उन्होंने वि० सं० ११५८ में[1] भरुकच्छ (भड़ौच) नगर के मुनिसुव्रत चैत्यालय में समाप्त की थी। इस ग्रन्थ में प्रणेता ने अपनी अन्य कृतियों में पासनाहचरिय और संवेगरंगशाला[2] (कथाग्रन्थ) का उल्लेख किया है।

---

१. वसुबाण रुद्दसंखे ११५८ वच्चंते विक्कमाओ कालम्मि।
लिहिओ पढमम्मि य पोत्थयम्मि गणिअमलचन्देण ॥ प्रशस्ति, ९.

२. इसका परिचय जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४ में दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आख्यानकमणिकोश (अक्खाणयमणिकोस)—यह १२७ उपदेशप्रद कथाओं (आख्यानकों) का बृहद् संग्रह है।[1] मूल कृति में प्राकृत की ५२ गाथाएँ हैं। पहली में मंगलाचरण, दूसरी में प्रतिज्ञात वस्तु का निर्देश है और शेष पचास गाथाओं को ४१ अधिकारों में विभक्त किया गया है। इन गाथाओं में उन-उन अधिकारों में प्रतिपाद्य विषयसम्बंधी दृष्टान्तकथाओं के पात्रों का नाम-निर्देश मात्र किया गया है। ये कथाएँ पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों और श्रुति-परम्परा से प्रसिद्ध थीं। लेखक ने केवल उन सबको विविध विषयों के साथ सम्बद्ध करके उनका विषय-दृष्टि से वर्गीकरण किया है और स्मृतिपथ में लघु रीति से लाने के लिए एक लघु कृति के रूप में बनाया है। इन गाथाओं में वैसे १४६ आख्यानकों का निर्देश ग्रन्थकार ने किया है पर कई की पुनरावृत्ति भी की गई है इसलिए वास्तविक संख्या १२७ ही होती है।

रचयिता और रचनाकाल—इन कथात्मक गाथाओं के रचयिता बृहद्गच्छीय आचार्य देवेन्द्रगणि[2] (नेमिचन्द्रसूरि) हैं। इनका परिचय इनकी अन्यतम कृति महावीरचरिय के प्रसंग में दिया गया है। प्रस्तुत कथाकोश की रचना वि० सं० ११२९ में हुई थी।

आख्यानकमणिकोशवृत्ति—उक्त ग्रन्थकार की जीवन-समाप्ति के कुछ दशकों बाद इस पर एक बृहद्वृत्ति रची गई। मूल गाथाओं पर वृत्ति संस्कृत में है पर १२७ आख्यानकों में से १४, १७, २३, ३९, ४२, ६४, १०९, १२१, १२२ और १२४ ये तो संस्कृत में, २२वां और ४३वां अपभ्रंश में[3] और शेष आख्यानक प्राकृत में हैं। ७३वें भावभट्टिका[4] के अन्तर्गत अन्तिम चारुदत्तचरिउ अपभ्रंश में है। संस्कृत में लिखे गये आख्यानकों में १७ और १२४[5] गद्य में हैं और १४ वां[6] चम्पू-शैली में है तथा प्राकृत

---

१. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी, १९६२.

२. अक्खाणयमणिकोसं एवं जो पढइ कुणइ जहयोगं।
देविंदसाहुमहियं अइरा सो लहइ अपवग्गं ॥

३. भरताख्यानक और सोमप्रभाख्यानक.

४. यह परियों की कथा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व का है। इसके कुछ भाग की तुलना 'अरेबियन नाइट्स' से की जा सकती है।

५. चण्डचूडाख्यान.

६. सीता-आख्यानक.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में लिखे आख्यानकों में ४७वां प्राकृत गद्य में है, १२३वां प्राकृत उपेन्द्रवज्रा में और शेष ११५ प्राकृत आर्या छन्दों में। यत्र-तत्र अन्य छन्दों का प्रयोग किया गया है पर बहुत कम। इस ग्रन्थ से वृत्तिकार की संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में पटुता ज्ञात होती है।

वृत्तिकार ने इन कथाओं का कलेवर प्रायः पूर्ववर्ती कृतियों से लिया है और इस बात का यत्र-तत्र निर्देश भी कर दिया है। उदाहरणार्थ १०वां[1] और ६५वां आख्यानक देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि) कृत महावीरचरिय से अक्षरशः लिये गये हैं। ३२वें बकुलाख्यानक की विशेष घटना जानने के लिए वृत्तिकार ने देवेन्द्रगणि (नेमिचन्द्रसूरि) कृत रत्नचूड़कथा को देखने का निर्देश किया है। इसी तरह अन्य १९ आख्यानों में रामचरित, हरिवंश, आवश्यक, उत्तराध्ययन, निशीथ आदि ग्रन्थों को देखने का निर्देश किया है। इन आख्यानकों में कुछ तो प्रचलित जैन परम्परा के ढंग के हैं, कुछ कुक्कुटाख्यानक (१०९) अजैन परम्परा के पौराणिक ढंग के और कुछ लौकिक उदाहरणों का अनुसरण करते हुए लिखे गये हैं। इन आख्यानकों की कथावस्तु को अन्यान्य साहित्य के साथ तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो बड़ी रोचक बातें ज्ञात होंगी। इन कथानकों में नाना प्रकार के सुभाषित, सूक्त और लोकोक्तियां भरे पड़े हैं। अनेक प्रसिद्ध देश्य और प्राकृत शब्द भी इसमें मिलते हैं।[2]

रचयिता और रचनाकाल—इस कथात्मक वृत्ति के रचयिता आम्रदेवसूरि हैं जो जिनचन्द्र के शिष्य थे। उन्होंने इसका प्रणयन वि० सं० ११९० (सन् ११३३) अर्थात् मूल गाथाओं के रचने के ठीक ६० वर्ष बाद किया था।

कथामहोदधि—इसे कर्पूरकथामहोदधि[3] भी कहते हैं। इसमें छोटी-बड़ी सब मिलाकर १५० कथाएँ हैं।[4] यह वज्रसेन के शिष्य हरिषेण द्वारा रचित उपदेशात्मक काव्य 'कर्पूरप्रकर' या सूक्तावली के १७९ पद्यों में वर्णित ८७ जैन धार्मिक और नैतिक नियमों को संकेत रूप में दी गई दृष्टान्त-कथाओं का पूर्ण विवरण देने के लिए रचा गया है, इसलिए इसे कर्पूरकथामहोदधि[5] भी कहते हैं।

---

१. चन्दना का आख्यान.
२. प्रस्तावना, पृ० ८-९.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ६८.
४. इन कथाओं की सूची पिटरसन रिपोर्ट ३, पृ० ३१६-१९ में दी गई है।
५. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्पूरप्रकरकाव्य का प्रारंभ 'कर्पूरप्रकर' वाक्य से होता है अतः उसका नाम वही हो गया। इसका प्रत्येक पद बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है और प्रसंगानुकूल दृष्टान्तों द्वारा समझाया गया है। उदाहरण के लिए जीवदया पर नेमिनाथ का तथा परस्त्री-अनुराग के कुफल पर रावण का दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक पद्य में एक या अधिक दृष्टान्तरूप कहानियाँ दी गई हैं। इन्हीं दृष्टान्तों को आधार बनाकर कथाओं का विस्तार कर यह ग्रन्थ बनाया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय रत्नशेखरसूरि के शिष्य सोमचन्द्रगणि हैं जिन्होंने इसकी रचना वि० सं० १५०४ में की थी।

कर्पूरप्रकर के आधार पर दूसरा कथाकोश भी उपलब्ध है, यथा खरतरगच्छीय जिनवर्धनसूरि के शिष्य जिनसागर की कर्पूरप्रकर-टीका।[1] इसका समय सं० १४९२ से १५२० माना जाता है। इस प्रकार यह टीका सोमचन्द्रकृत कथामहोदधि के समकालीन है। इसमें उक्त काव्य के पद्यों की व्याख्या करने के बाद दृष्टान्त-कथा संस्कृत श्लोकों में दी गई है। कथा का प्रवेश आगमों या उपदेशमाला जैसे ग्रन्थों के गद्य-पद्यमय प्राकृत उद्धरणों को देते हुए किया गया है। इसमें कथाओं के शीर्षक और क्रम 'कथामहोदधि' के समान ही हैं। इसमें नेमिनाथ, सनत्कुमार प्रभृति पुराण पुरुषों, सत्यकी, चेल्लणा, कुमारपाल प्रभृति ऐतिहासिक-अर्धैतिहासिक पुरुषों और अतिमुक्तक, गजसुकुमाल प्रभृति तपस्वियों तथा जैन परम्परा के धर्मपरायण पुरुष-महिलाओं की कहानियां दी गई हैं।

कर्पूरप्रकर पर तपागच्छीय चरणप्रमोद की तथा अज्ञात लेखक की वृत्ति (ग्रन्थाग्र १७६८) मिलती है तथा हर्षकुशल और यशोविजयगणि की टीका तथा मेरुसुन्दर के बालावबोध (टीका) और धनविजयगणिकृत स्तबक का उल्लेख मिलता है।[2] संभवतः इनमें से कुछ उक्त कथाकोशों के समान ही हों।

कथाकोश (भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति)—मूल में यह १३ गाथाओं की प्राकृत रचना है[3] जो 'भरहेसरबाहुबलि' पद से प्रारंभ होती है। संभवतः यह

---

१. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १९१९.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६९.

३. देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, बम्बई से बड़े दो भागों में सन् १९३२ और १९३७ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नित्य स्मरण की एक स्तुति है। इसमें १०० धर्मात्मा गिनाये गये हैं। इनमें ५३ पुरुष (पहला भरत और अन्तिम मेघकुमार) और ४७ स्त्रियां (पहली सुलसा और अन्तिम रेणा) हैं जो धर्म और तप साधनाओं के लिए जैनों में सुख्यात हैं। अधिकांशतः ये प्राचीन जैन कथा-साहित्य में उपलब्ध कथाओं के ही पात्र हैं। इनका उल्लेख सूयगड, भगवई, नायाधम्मकहाओ, अन्तगड, उत्तराध्ययन, पइन्नय, आवस्सय, दसवेयालिय एवं विविध निर्युक्तियों तथा टीकाओं में हुआ है। मूल प्राकृत गाथाओं में तो इन नामों की शृंखला मात्र दी गई है। पहले पहल ये गाथाएँ जैन साहित्य के विविध क्षेत्रों के अभ्यासियों के लिए बोधगम्य रही होंगी। पर पीछे मूल पर विस्तृत टीका एवं कथाओं के पूर्ण विवरण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और इस तरह यह विशाल कथाकोश प्रकाश में आया। इस संस्कृत टीका में गद्य-पद्य मिश्रित कथाएँ भी दी गई हैं जिनमें यत्र-तत्र प्राकृत के उद्धरण विकीर्ण हैं। टीका में सब कथाएँ ही कथाएँ हैं, इसलिए इसे कथाकोश भी कहा जाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इस महत्त्वपूर्ण कथासंग्रह के रचयिता शुभशीलगणि हैं। इनके गुरु का नाम मुनिसुन्दरगणि था। विक्रम की १५वीं शती में हुए युगप्रभावक आचार्य सोमसुन्दर का विशाल शिष्य-परिवार था जो विद्वान् तथा साहित्यसर्जक था। सोमसुन्दर के पट्टशिष्य सहस्रावधानी मुनिसुन्दर थे। उनके अन्य गुरुभाइयों ने अनेक ग्रन्थ लिखे थे। शुभशीलगणि इसी परिवार के साहित्यसर्जक विद्वान् थे।

शुभशीलगणि ने इस कथाकोश की रचना वि० सं० १५०९ में की थी। ग्रन्थान्त में दी गई प्रशस्ति में रचना-संवत् दिया गया है।

इनकी अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं जिनमें कुछ में रचना-संवत् दिया गया है यथा—विक्रमादित्यचरित्र (वि० सं० १४९९), शत्रुंजयकल्प कथाकोश (वि० सं० १५१८), पंचशतीप्रबंध (वि० सं० १५२१), भोजप्रबंध, प्रभावककथा, शालिवाहनचरित्र, पुण्यधननृपकथा, पुण्यसारकथा, शुकराजकथा, जावडकथा, भक्तामरस्तोत्रमाहात्म्य, पंचवर्गसंग्रहनाममाला, उणादिनाममाला और अष्टकर्मविपाक।

शुभशीलगणि कथात्मक ग्रन्थ लिखने में विशेष प्रवण थे।

पंचशतीप्रबोधसंबंध—ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के प्रारंभ में इसका नाम इस प्रकार सूचित किया है—"**ग्रन्थोऽयं पञ्चशतीप्रबोधसंबंधनामा क्रियते मया तु**"।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनरत्नकोश में भी यही नाम दिया गया है।[1] पर अन्य कथाकोशों की भाँति इसके संक्षिप्त नाम कथाकोश और प्रबंधपंचशती मिलते हैं। इस कथाकोश में ४ अधिकार हैं जिनमें सब मिलाकर ६२५ कथाप्रबंधों का संग्रह है। प्रथम अधिकार में १–२०३ तक, द्वितीय में २०४–४२६ तक, तृतीय में ४२७–४७६ तक और चतुर्थ में ४७७–६२५ तक कथाएँ दी गई हैं।

कथाकार ने इन कथाओं के संकलन में अनेक स्रोतों का आश्रय लिया है। वे कहते हैं कि—**"किंचिद्गुरोराननतो निशम्य, किंचित् निजान्यादिकशास्त्रतश्च"** अर्थात् गुरु-परम्परा तथा जैन-जैनेतर ग्रन्थों का उपयोग करके यह रचना लिखी गई है। इसमें विशेषतः प्रभावकचरित, प्रबंधचिन्तामणि, पुरातनप्रबंधसंग्रह, प्रबंधकोश, उपदेशतरंगिणी, आवश्यकनिर्युक्ति आदि जैन ग्रन्थों तथा हितोपदेश, पंचतंत्र, रामायण, महाभारत आदि में प्राप्त सामग्री का उपयोग किया गया है। ग्रन्थ गुरुपरम्परा से उपलब्ध विशाल कथा-साहित्य का पश्चात्कालीन उत्तराधिकारी है इससे यह बड़े महत्त्व का है। प्रस्तुत कृति में कथाओं का विषय-क्रम नहीं दिखाई पड़ता है फिर भी इसके तीन विभाग कर सकते हैं :

१. ऐतिहासिक प्रबंध, २. धार्मिक कथाएं, ३. लौकिक कथाएं।

ऐतिहासिक प्रबंधों में नन्द, सातवाहन, भर्तृहरि, भोज, कुमारपाल, हेमसूरि आदि की कथाएँ द्रष्टव्य हैं।

यह ग्रन्थ गद्य-पद्यमिश्रित है जिसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के सुभाषित अवतरणरूप में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होते हैं। इसमें संस्कृत व्याकरण के कठिन प्रयोगों से मुक्त सरल भाषा का प्रयोग किया गया है तथा लोकभाषा में प्रचलित अनेक शब्दों का संस्कृतीकरण करके इसमें प्रचुर रूपेण प्रयोग हुआ है। इसमें अनेक फारसी शब्दों का भी प्रयोग द्रष्टव्य है यथा—

---

१. सुवासित साहित्य प्रकाशन, सूरत, १९६८, सम्पादक—मुनि श्री मृगेन्द्र; जिनरत्नकोश, पृ० २२४; विण्टरनित्स ने हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४४, टि० ३ में बतलाया है कि इटाली विद्वान् पेवोलिनी ने इस कथाग्रन्थ से लेकर द्रौपदी, कुन्ती, देवकी, रुक्मिणी कथाएं लिखी हैं। दूसरे इटाली विद्वान् बल्लिनी ने पहली ५० कथाओं का मूल और अनुवाद प्रकाशित किया है। इसी विद्वान् ने सुल्तान फिरोज द्वि० (सन् १२२०-१२९६) और जिनप्रभसूरि से सम्बन्धित १६ कथाओं का वर्णन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलन्दर, कागद, खरशान, मोहरि, बीबी, मसीत, मीर, मुलाण (मुल्ला), मुशलमान, हज, हरीमज आदि। इसकी भाषा और शब्दों का अध्ययन एक पृथक् विषय है। मूल शब्दों का संस्कृतीकरण करने से कई स्थानों पर अर्थ लगाने में बड़ी गड़बड़ी होती है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के उपर्युक्त शुभशीलगणि ही रचयिता हैं। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति में रचना-संवत् विक्रम सं० १५२१ दिया गया है।[1] उक्त प्रशस्ति में शुभशीलगणि ने अपने को रत्नमण्डनसूरि का शिष्य बताया है पर इस कथाकोश के एक अधिकार की प्रशस्ति में लक्ष्मीसागर के शिष्य के रूप में उल्लेख किया गया है :

लक्ष्मीसागरसूरीणां पादपद्मप्रसादतः।
शिष्येण शुभशीलेन ग्रन्थ एष विधीयते ॥ ३ ॥

ये लक्ष्मीसागर शुभशीलगणि के या तो प्रगुरु थे या उनके गुरु मुनिसुन्दर के गुरुभाई थे। अपने अन्य ग्रन्थों में शुभशील ने अपने को मुनिसुन्दरसूरि का शिष्य बताया है।[2] संभवतः कथाकार ने कृतज्ञतावश विद्या, आश्रय और दीक्षा देनेवाले तीन प्रकार के गुरुओं का स्मरण किया है।

१. **कथाकोश**—इसे 'कल्पमंजरी' भी कहते हैं। इसकी रचना आगमगच्छ के जयतिलकसूरि ने की है। इसका ग्रन्थाग्र २९० श्लोक-प्रमाण है।[3] इसका समय १५वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

२. **कथाकोश**—इसे 'व्रतकथाकोश' भी कहते हैं। इसकी एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के पाटोदी के मन्दिर के शास्त्रभण्डार में उपलब्ध है। इसमें विभिन्न व्रतों सम्बंधी कथाओं का संग्रह है। ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध न होने से यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका कि इसमें कितनी व्रतकथाएँ लिखी गई थीं।[4] इसके रचयिता प्रसिद्ध भट्टारक सकलकीर्ति हैं जिनका अन्यत्र परिचय दिया गया है।

---

१. विक्रमार्काद् विधु-द्वीषु-चन्द्र (१५२१) प्रमितवत्सरे।
अमुं व्यधात् प्रबंधं तु शुभशीलाभिधो बुधः ॥
२. मुनिसुन्दरसूरीशविनेयः शुभशीलभाक्—विक्रमचरित्र, प्रशस्ति, पद्य १२.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ६५.
४. वही, पृ० ६५, ३६८; राजस्थान के जैन सन्तः व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. कथाकोश—इसे व्रतकथाकोश और कथावली भी कहते हैं।[1] इसमें व्रतों, धार्मिक क्रियाओं, नियमों, अनुष्ठानों तथा तपों की कथाएं दी गई हैं यथा अष्टाह्निक व्रतकथा, आकाशपञ्चमी, मुक्तासप्तमी, चन्दनषष्ठी आदि।

कर्ता तथा रचनाकाल—इसे मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण के श्रुतसागर ने रचा है। उन्होंने अपने को ब्रह्म० या देशयती कहा है। इनके गुरु का नाम भट्टारक विद्यानन्दि था, जो पद्मनन्दि के प्रशिष्य और देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। विद्यानंदि का भट्टारक पद गुजरात के ईडर नामक स्थान में था और उनके पट्टधर मल्लिभूषण और उसके बाद लक्ष्मीचन्द्र भट्टारक हुए। मल्लिभूषण को श्रुतसागर ने गुरुभाई कहा है। श्रुतसागर बड़े विद्वान् थे।[2] इनकी अनेक उपाधियां थीं। इनकी अन्य कृतियां तत्त्वार्थवृत्ति,[3] यशस्तिलक-चन्द्रिका, औदार्यचिन्तामणि, तत्त्वत्रयप्रकाशिका, जिनसहस्रनामटीका, महाभिषेकटीका, षट्प्राभृतटीका, श्रीपालचरित, यशोधरचरित, सिद्धभक्तिटीका, सिद्धचक्राष्टकटीका आदि ग्रन्थ हैं। इन्होंने षट्प्राभृत की संस्कृत टीका में भी कई कथाएँ दी हैं।

श्रुतसागर विक्रम की १६वीं शताब्दी के विद्वान् थे। इनके किसी भी ग्रन्थ में रचना का समय नहीं दिया गया है पर अन्य उल्लेखों से इनके समय का अनुमान किया गया है।

कुछ अन्य कथाकोश हैं जिन्हें 'व्रतकथाकोश' भी कहते हैं। उनमें दयावर्धन, देवेन्द्रकीर्ति, धर्मचन्द्र एवं मल्लिषेण की रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[4]

अन्य कथाकोशों में वर्धमान, चन्द्रकीर्ति, सिंहसूरि तथा पद्मनन्दि के ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। वर्धमान अभयदेव के शिष्य थे और उनके कथाकोश को 'शकुनरत्नावलि' भी कहते हैं।[5]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६६ और ३६८.
२. पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० सं०), पृ० ३७१-३७७.
३. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से प्रकाशित.
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३६८.
५. वही, पृ० ६५, ३६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. कथाकोश—यहाँ कुछ अज्ञात लेखकों के संस्कृत-प्राकृत कथाकोशों का परिचय दिया जाता है। इनमें से अधिकांश की हस्तलिखित प्रतियां पूना के भाण्डारकर प्राच्य मन्दिर के सरकारी संग्रह विभाग में उपलब्ध हैं।[१]

१. सं० ४७८ (सन् १८८४–८६)—इसके पहले तीन पत्रों में हरिषेण का कथाकोश है। इसके बाद ५३ व्रत-कथाएँ हैं जिनमें सुगन्धदशमी, षोडश-कारण और रत्नावली संस्कृत में हैं। शेष अपभ्रंश में हैं।

२. सं० ५८२ (१८८४–८६)—इसमें संस्कृत श्लोकों के बाद ही दृष्टान्त कथाएँ दी गई हैं जिनमें कुछ जिनप्रभसूरि, जगसिंह, सातवाहन, जगडूशाह आदि के प्रबंध भी हैं।

३. सं० ५८३ (१८८४–८६)—यह दोनों ओर से टूटा-फूटा है। यह संस्कृत पद्य में है जिसमें संस्कृत-प्राकृत दोनों प्रकार के उद्धरण हैं। संभवतः इसमें सम्यक्त्वकौमुदी की ही कथाएँ हैं।

४. सं० १२६६ (१८८४–८७)—यह चन्द्रप्रभ की स्तुति से प्रारंभ होता है और इसमें संस्कृत में आरामतनय, हरिषेण, श्रीषेण, जीमूतवाहन आदि की कथाएँ दी गई हैं। यह अपूर्ण है। केवल ४७ पृष्ठ उपलब्ध हैं।

५. सं० १२६७ (१८८४–८७)—इसमें वे कहानियाँ हैं जो सामान्यतया सम्यक्त्वकौमुदीकथा नाम से कहलाती हैं। प्रारम्भ का गद्य कुछ दूसरी तरह का है और वह इस प्रकार का है—**गोडदेशे पाडलीपुरनगरे आर्यसुहस्ति-सूरीश्वराः। त्रिखण्डभरताधिपसंप्रतिराज्ञोऽग्रे धर्मदेशनां चक्रुरेवं भो भो भव्याः।** इसमें सबसे अन्त में पात्रदान के दृष्टान्तरूप में धनपति की कथा दी गई है। यद्यपि यह संस्कृत का ग्रन्थ है पर इसमें यत्र-तत्र प्राकृत गाथाएं दी गई हैं।

६. सं० १२६८ (१८८४–८७)—इसमें प्राकृत कथाएँ दी गई हैं यथा गंधपूजा पर शुभमति की, धूपपूजा पर विनयंधर की तथा अन्य दृष्टान्तकहानियाँ। इसकी प्रशस्ति और कुछ अंश संस्कृत में है। इसकी रचना हर्षसिंहगणि द्वारा सारंगपुर में की गई थी।

---

१. इन सबका परिचय बृहत्कथाकोश में डा० उपाध्ये द्वारा लिखी प्रस्तावना के आधार पर दिया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. सं० १२६९ (१८८४–८७)—यह प्रति टूटी-फूटी है तथा लिपि गड़-बड़ है। इसमें भावना विषयक अमरचन्द्र की कथा, पारमार्थिक मैत्री विषयक विक्रमादित्य आदि की कथाएँ हैं। पत्र १९ में वैतालपंचविंशतिका की कथा उद्धृत है और अपभ्रंश एवं प्राचीन गुजराती में भी छोटी-छोटी कुछ कथाएँ दी गई हैं। इसकी समाप्ति एक प्राणिकथा से होती है जो संभवतः पंचतंत्र की है।

८. सं० १३२२ (१८९१–९५)—इसमें मदनरेखा, सनत्कुमार आदि की कथाएँ संस्कृत में दी गई हैं और बीच-बीच में प्राकृत एवं अपभ्रंश के पद्य भी दिये गये हैं।

९. सं० १३२३ (१८९१–९५)—यह संस्कृत गद्य में है जिसमें संस्कृत-प्राकृत पद्य बीच-बीच में प्रस्तुत हुए हैं। इसमें देवपूजा विषयक देवपाल की, मान सम्बन्धी बाहुबलि की, माया विषयक अशोकदत्त, वन्दन-पूजा के सम्बन्ध में मदनावली आदि अनेक विषयक कथाएँ दी गई हैं। कोई-कोई कथा प्राकृत गाथा से ही प्रारंभ होती है।

१०. सं० १३२४ (१८९१–९५)—यह टूटा-फूटा अपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें प्रसन्नचन्द्र, सुलसा, चिलातिपुत्र आदि की कथाएँ संस्कृत गद्य में हैं। कहीं-कहीं श्लोक भी हैं।

कुछ अन्य कथाकोश इस प्रकार हैं :

कथासमास—औपदेशिक प्रकरणग्रन्थ 'उपदेशमाला' में उल्लिखित दृष्टान्तों पर स्वतन्त्र कथाग्रंथ लिखने की जैनाचार्यों में विशेष प्रवृत्ति देखी गई है। उपदेशमाला पर लगभग बीसेक टीकाएँ लिखी गई हैं उनमें अनेक कथात्मक हैं। प्रस्तुत रचना उपदेशमाला-कथासमास नाम से भी कही जाती है और संक्षेप में 'कथासमास' नाम से भी। इसमें सभी कथाएँ प्राकृत में दी गई हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता जिनभद्र मुनि हैं जो शालिभद्र के शिष्य थे। उन्होंने इसे संवत् १२०४ में रचा था।[1]

कथार्णव—यह संस्कृत अनुष्टुभ् छन्दों में निर्मित कथाओं का संग्रहरूप टीकाग्रन्थ है जिसमें ऋषिमंडलस्तोत्र की व्याख्या करते हुए उसमें नमस्कार के रूप में उल्लिखित एवं वर्णित शलाकापुरुषों, उनके समकालीन धर्मात्माओं, प्रत्येकबुद्धों, जिनपालित आदि काल्पनिक वीरों, मेतार्य जैसे तपस्वियों और महावीर के उत्तरकालीन आचार्यों की कथारूप विस्तृत जीवनियाँ दी गई हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ५१; पाटन हस्त० सूची, भाग १, पृ० ९०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें अधिकांश की कथा आगमों, निर्युक्तियों और प्रकीर्णकों में पाई जाती हैं। जो औपदेशिक प्रकरणों, माहात्म्यों और दृष्टान्त-कथाओं में अनैतिहासिक या पौराणिक पात्र से प्रतीत होते थे, वे सब यहाँ तपशूर तथा जैनसंघ के यथार्थ व्यक्ति माने गये हैं। कथार्णव का ग्रन्थाग्र ७५९० श्लोक-प्रमाण है।[१]

रचयिता एवं रचनाकाल—खरतरगच्छ के गुणरत्नसूरि के शिष्य पद्ममन्दिरगणि ने इसकी रचना वि० सं० १५५३ में की है।

१. कथारत्नाकर—यह १५ तरंगों में विभक्त है।[२] इसके अन्त में अगडदत्त की कथा है। इसकी रचना नरचन्द्रसूरि ने की है। जैनधर्म सम्बन्धी कथानक सुनने की वस्तुपाल महामात्य की उत्कण्ठा शान्त करने के लिए ही नरचन्द्र ने तप, दान, अहिंसा आदि संबंधी अनेक धर्मकथावाला यह कथाकोश रचा है। इसे 'कथारत्नसागर' भी कहते हैं।[३] इसकी एक ताड़पत्रीय प्रति सं० १३१९ की मिलती है। इसका ग्रन्थाग्र २०९१ श्लोक-प्रमाण है। यह सारा ग्रन्थ अनुष्टुभ् छन्द में रचा गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके प्रणेता नरचन्द्रसूरि बड़े विद्वान् थे। ये हर्षपुरीय या मलधारिगच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य थे। वे महामात्य वस्तुपाल के मातृपक्ष से गुरु थे और वस्तुपाल को न्याय, व्याकरण तथा साहित्य में पारंगत किया था। इनके रचे अनेक ग्रन्थ मिलते हैं यथा—न्यायकन्दलीपंजिका, अनर्घराघवटिप्पण, ज्योतिःसार, सर्वजिनसाधारणस्तवन आदि।[४] प्रबंधकोश के अनुसार नरचन्द्रसूरि का निधन भाद्रपद १० वि० सं० १२८७ में हुआ था इसलिए उक्त रचना का समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य मानना चाहिये।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६०; ऋषिमण्डलप्रकरण, आत्मवल्लभ ग्रन्थमाला, सं० १३, वलद, १९३९; प्रस्तावना विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६६; पाटन की हस्तप्रतियों का सूचीपत्र (गा० ओ० सि०), भाग १, पृ० १४.

३. इत्यभ्यर्थनया चक्रुर्वस्तुपालमंत्रिणः।
नरचन्द्रमुनीन्द्रास्ते श्रीकथारत्नसागरम् ॥

४. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० १००-१०४ तथा पृ० २०७-२०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. **कथारत्नाकर**—यह कथाकोश दस तरंगों में विभक्त है, जिनमें कुल मिलाकर २५८ कथाएँ हैं।[१] अनेकों तो सरल संस्कृत गद्य में लिखी गई हैं और बहुत थोड़ी गंभीर शैली में। कुछ संस्कृत पद्यों में भी लिखी गई हैं। इनमें कुछ कथाएँ परम्पराश्रुत हैं, कुछ कल्पनाप्रसूत हैं, कुछ अन्य आधारों से ली गई हैं और कुछ जैनागमों से ली गई हैं। प्रत्येक कथा का प्रारंभ एक या दो उपदेशात्मक गाथा या श्लोक से होता है। सारे ही ग्रन्थ में संस्कृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी और पुरानी गुजराती के उद्धरण प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। महाभारत, रामायण आदि विशाल ग्रन्थों एवं भर्तृहरिशतक, पंचतंत्र आदि अनेकों नीति-ग्रन्थों से सुपरिचित कुछ उद्धरण भी लिये गये हैं। ग्रन्थ का जैन दृष्टिकोण उसके प्रारंभ के श्लोक, भाव और कथाओं से ही स्पष्ट हो जाता है। इसमें शृंगार से लेकर वैराग्य तक विचारों और भावों का समावेश है। विण्टरनित्स का कहना है कि इसमें अनेक कहानियाँ पंचतंत्र या उस जैसे कथाग्रन्थों में पाई जानेवाली कथाओं जैसी हैं। यथा—स्त्री-चातुर्य की कहानियाँ, धूर्तों की कथाएँ, मूर्खकथाएँ, प्राणिकथाएँ, परीकथाएँ, अन्य सभी प्रकार के चुटकुले जिनमें ब्राह्मणों और दूसरे मतों का उपहास है। पंचतंत्र के समान ही इनमें कथाओं के बीच-बीच में अनेक सदूक्तियाँ फैली हुई हैं। इसमें कहानियाँ एक-दूसरे से यों ही जोड़ दी गई हैं। वे एक ढाँचे में सजायी नहीं गई हैं।[२] ग्रन्थ का अधिक भाग वास्तव में एक दृष्टिकोण से भारतीय ही है। जैन कथा-ग्रन्थों में सामान्य रूप से आनेवाले नामों के अतिरिक्त इसमें भोज, विक्रम, कालिदास, श्रेणिक आदि के उपाख्यान दिये गये हैं। कुछ भौगोलिक उल्लेख भी इसमें बिल्कुल आधुनिक हैं और दिल्ली, चम्पानेर तथा अहमदाबाद जैसे नगरों से सम्बन्धित कहानियाँ भी हैं। संक्षेप में इसका विषय शिक्षाप्रद और मनोरंजक दोनों ही है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता हेमविजयगणि हैं जो तपागच्छीय कल्याणविजयगणि के शिष्य थे। इनका विशेष परिचय अन्यत्र दिया गया है। इस ग्रन्थ की रचना सं० १६५७ में की गई है।[३] इनकी अन्य कृतियाँ पार्श्वनाथ-

---

१. हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९११; इसका जर्मन अनुवाद १९२० में हर्टल महोदय ने किया है।

२. विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४५.

३. अहिमनगरद्रंगे वर्षेऽव्यश्वेषु रसावनौ।
मूलमार्तण्डसंयोगे चतुर्दश्यां शुचौ शुचेः ॥ —प्रशस्ति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकाव्य, अन्योक्तिमुक्तामहोदधि, कीर्तिकल्लोलिनी, स्तुतित्रिदशतरंगिणी, सूक्तरत्नावली, कस्तूरीप्रकर, ऋषभशतक, विजयप्रशस्तिमहाकाव्य आदि अनेक हैं। इसकी सूचना विजयप्रशस्तिमहाकाव्य की प्रशस्ति में दी गई है।

३. **कथारत्नाकर**—यह 'धर्मकथारत्नाकरोद्धार'[1] या 'कथारत्नाकरोद्धार' नाम से भी कहा जाता है। इसमें दो अध्याय हैं। इसका ग्रंथाग्र ५५०० श्लोकप्रमाण है। इसमें साधु-निन्दा का परिणाम दिखाने के लिए रुक्मिणी की कथा सम्मिलित है। इसके रचयिता उत्तमर्षि हैं। उत्तमर्षि के विषय में कुछ नहीं मालूम है।

एक अज्ञात लेखककृत कथारत्नाकर का भी उल्लेख मिलता है।

कथानककोश—इसमें १४० प्राकृत गाथाएँ हैं जिनपर संस्कृत में विनयचन्द्र की टीका है। इस ग्रंथ का नाम धम्मक्खाणयकोस भी है।[2] पाटन भण्डार में इसकी हस्तलिखित प्रति है जिसमें वि० सं० ११६६ रचना या लिपि का समय दिया गया है।[3]

पाटन के भण्डार में 'कथाग्रंथ' नामक कथाकोश की ताड़पत्रीय प्रति है जिसे महत्त्वपूर्ण बतलाया जाता है।[4] दूसरे ताड़पत्रीय कथाकोश 'कथानुक्रमणिका' का भी उल्लेख मिलता है जिसका समय सं० ११६६ है।[5]

कथासंग्रह—इसे अन्तरकथासंग्रह या विनोदकथासंग्रह भी कहते हैं।[6] यह सरल संस्कृत-गद्य में लिखा गया कथाग्रंथ है। इसमें लगभग ८६ कथाएँ धार्मिक और नैतिक शिक्षा की हैं और शेष १४ वाक्चातुरी और परिहास द्वारा मनोरंजन की हैं। इनकी शैली बिल्कुल बातचीत की है। शब्दविन्यासप्रणाली देशज शब्दों से बहुत-कुछ रंगी हुई है। संस्कृत, महाराष्ट्री और अपभ्रंश पद्य इसमें प्रचुर रूप से उद्धृत हैं। अनेक कथाएँ तो सिद्धान्तों की गाथा कहकर ही कही गई हैं। ऐसी गाथाओं में किसी व्रत का माहात्म्य दिया गया है और उसे दृष्टान्तकथा

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६६.
२. पाटन की हस्तलिखित प्रतियों की सूची, भाग १ (गायकवाड़ ओ० सिरीज सं० ७६), पृ० ४२; जिनरत्नकोश, पृ० ६५.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ६५, ३६८.
४. वही, पृ० ६५.
५. वही.
६. वही, पृ० ११ और ३५७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देकर समझाया गया है। इसकी शैली, रचना-विन्यास और विषय पंचतंत्र जैसे हैं। इस ग्रंथ की रचना में लेखक के धार्मिक और लौकिक दोनों दृष्टिकोण रहे हैं। इन दृष्टान्त-कथाओं में सभी प्रकार की लौकिक चतुराई भरी हुई है और कुछ में जैनधर्म और आचार की छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है। यद्यपि इन विषयों पर दूसरों ने भी कथाएँ कही हैं फिर भी यह सम्भव है कि इसकी अधिकांश कथाएँ कल्पित हों और अनुरोधवश रची गयी हों। कुछ कथाएँ प्रचलित भारतीय कथाओं से ली गई हैं और कुछ जैनागमों की टीकाओं से।

अन्तरकथा शीर्षक का सम्भवतः यह अर्थ है कि जैसे बड़ी कथा की उपकथाएँ होती हैं उसी तरह यहाँ ये दृष्टान्त-कथाएँ हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता राजशेखरसूरि हैं जो कि प्रबन्ध-कोश (सं० १४०५) के रचयिता भी हैं। इनके गुरु सागरतिलकगणि हैं जो हर्षपुरीयगच्छ के थे। इनकी अन्य कृतियाँ षड्दर्शनसमुच्चय, स्याद्वादकलिका, रत्नाकरावतारिकापंजिका और न्यायकंदलीपंजिका हैं। राजशेखर का समय १४वीं शताब्दी का मध्य माना जाता है।

उक्त रचना के अतिरिक्त और भी कई कथा-संग्रहों का उल्लेख जिनरत्नकोश में है[१] जिनका विशेष परिचय मालूम नहीं है। उनकी सूची तथा संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है :

१. हेमाचार्य का कथासंग्रह।

२. आनन्दसुन्दर का कथासंग्रह।

३. मलधारीगच्छीय गुणसुन्दर के शिष्य सर्वसुन्दर (सं० १५१०) का कथासंग्रह।

४. संख्या ३३५ (सन् १८७१-७२ की रिपोर्ट) के कथासंग्रह में पहली कथा विक्रमादित्य की है। इसके अतिरिक्त श्रीपाल आदि की अन्य कहानियाँ हैं जिनमें जैनव्रतों और आचारों के फलों का प्रभाव दिखाया गया है। इसकी सब कथाएँ संस्कृत में हैं परन्तु उनमें मराठी और अपभ्रंश के उद्धरण भी हैं। सिर्फ एक कथा ही इस संग्रह में प्राकृत में है।

५. सं० १२७२ (सन् १८८४–८७ की रिपोर्ट) के कथासंग्रह (संवत् १५२४) में जीवकथा आदि कई विषयों पर संस्कृत में कई उपदेशात्मक छोटी-छोटी

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथाएँ हैं। कथासंग्रहों का यह एक अच्छा ग्रंथ है जिसका जैनमुनि अपने प्रवचनों में दृष्टान्त के रूप में उपयोग करते थे।

६. सं० १३२५ (सन् १८९१–९५ की रिपोर्ट) के कथासंग्रह में संस्कृत गद्य में आठ कथाएँ—कुरुचन्द्र, पद्माकर आदि की—साधुओं के वसति, शय्या, आसन, आहार-पान, औषधि, वस्त्र और पात्रदान के महत्त्व से सम्बन्धित हैं—दी गई हैं। इनका उल्लेख उपदेशमाला की २४०वीं गाथा **वसही-सयणासण** आदि में है।

७. सं० १३२६ (सन् १८९१–९५ की रिपोर्ट) के कथासंग्रह में धनदत्त, नागदत्त, मदनावली आदि की कथाएँ पूजा के भिन्न-भिन्न प्रकार के फल प्रदर्शित करने के लिए दी गई हैं।[1]

उपर्युक्त कथासंग्रह के अतिरिक्त जिनरत्नकोश[2] में कुछ कथाकोश विभिन्न नामों से उल्लिखित मिलते हैं, यथा—कथाकल्लोलिनी, कथाग्रंथ, कथाद्वात्रिंशिका (परमानन्द), कथाप्रबन्ध, कथाशतक, कथासमुच्चय, कथासंचय आदि। इन सबके परीक्षणों से जैनकथा साहित्य पर विशेष प्रकाश पड़ने की आशा है।

कुछ अन्य नामों से भी कथाकोश उपलब्ध हुए हैं।

पुण्याश्रव-कथाकोश—पुण्याश्रव-कथाकोश[3] नाम से कथाओं के कतिपय संग्रह हैं। विषय की दृष्टि से इनमें पुण्यार्जन की हेतुभूत कथाओं का संग्रह है। प्रस्तुत संग्रह का परिमाण ४५०० श्लोक-प्रमाण है।[4]

यह संस्कृत गद्य में है जो ६ अधिकारों में विभक्त है जिनमें कुल मिलाकर ५६ कथाएँ हैं। प्रथम पाँच खण्डों में आठ-आठ (अष्टक) कथाएँ हैं और छठे में १६। कथाओं के प्रारम्भिक पद्यों की संख्या ५७ है पर १२-१३वीं कथाओं को एक माना गया है इससे कथाएँ ५६ ही हैं। इन कथाओं में उन पुरुषों और

---

१. उपर्युक्त कुछ कथा-संग्रहों का परिचय बृहत्कथाकोश की प्रस्तावना में डा० उपाध्ये द्वारा प्रस्तुत विवरण से लिया गया है।

२. पृ० ६६-६७.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २५२, रामचन्द्र मुमुक्षुकृत, नेमिचन्द्रगणिकृत (ग्रन्थाग्र ४५००) तथा नागराजकृत रचनाएँ। कवि रइधू ने अपभ्रंश में 'पुण्णासव-कहाकोसो' लिखा है।

४. जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, १९६४, हिन्दी अनुवादसहित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारियों के चरित्र वर्णित हैं जिन्होंने देवपूजा आदि गृहस्थों के ६ धार्मिक कृत्यों में विशेष ख्याति प्राप्त की थी।

प्रथम अष्टक की कथाएँ देवपूजा-जन्य पुण्य के माहात्म्य का सूचन करती हैं। दूसरे अष्टक में णमोकार मन्त्र का माहात्म्य, तीसरे अष्टक में स्वाध्याय का फल, चौथे अष्टक में शील के प्रभाव का ज्ञापन, पाँचवें में पर्वों पर उपवास का महत्त्व तथा छठे में पात्र-दान से होनेवाले पुण्य की कथाएँ दी गई हैं।

प्रत्येक कथा के आरम्भ में एक श्लोक से पंचतंत्र-हितोपदेश के समान कथा के विषय का संकेत कर दिया गया है। ये श्लोक ग्रंथकार ने स्वयं बनाये या पीछे से जोड़े, इसका निर्णय करना कठिन है। कथाएँ गद्य में हैं जो कि ऊपर से तो सरल दिखाई देती हैं किन्तु प्रायः जटिल हैं। कथाओं के भीतर उपकथाएँ भी आ गई हैं। जन्मान्तरों की कथाओं के वर्णन के कारण कथावस्तु में जटिलता आ गई है। यत्र-तत्र संस्कृत-प्राकृत के कुछ पद्य अन्यत्र से उद्धृत पाये जाते हैं।

ग्रंथकार ने कथाओं को कई स्रोतों से लिया है और कहीं-कहीं कुछ का निर्देश भी कर दिया है। उनमें से कुछेक कथाओं का आधार कन्नड वड्डाराधना है तथा अधिकांश कथाएँ रविषेणकृत पद्मपुराण, जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, जिनसेन-गुणभद्रकृत महापुराण और सम्भवतः हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश से ली गई हैं।

यद्यपि यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया है पर लोक-प्रचलित शैली में लिखा होने से संस्कृत-व्याकरण के कठोर नियमों का पालन नहीं किया गया है। इसकी संस्कृत तत्कालीन बोलियों से प्रभावित है। इसमें यत्र-तत्र कन्नड़ शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है।

ग्रन्थकार और रचनाकाल—कर्ता ने प्रशस्ति के तीन पद्यों में अपना कुछ परिचय दिया है। तदनुसार इनका नाम रामचन्द्र मुमुक्षु था। ये दिव्यमुनि केशवनन्दि के शिष्य थे जो कुन्दकुन्दान्वयी थे तथा बड़े संयमी, अनेक मुनियों और नरेशों से वन्दनीय एवं बहुख्यातिप्राप्त थे। रामचन्द्र ने महायशस्वी वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दि से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था।

इस कथाकोश की रचना किस समय हुई, इसका कहीं उल्लेख नहीं है। न कर्ता के काल का पता है। तो भी इनका १२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होना सम्भव माना जा सकता है।[१]

---

१. देखें—पुण्याश्रवकथाकोश पर लिखी भूमिका, पृष्ठ ३०–३२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारपाल-प्रतिबोध (कुमारवाल-पडिबोह)—इसे जिनधर्मप्रतिबोध और हेमकुमारचरित भी कहते हैं।[1] इसमें पाँच प्रस्ताव हैं। पाँचवाँ प्रस्ताव अपभ्रंश तथा संस्कृत में है। यह प्रधानतः प्राकृत में लिखी गद्य-पद्यमयी रचना है। इसमें ५४ कहानियों का संग्रह है। ग्रंथकार ने दिखलाया है कि इन कहानियों के द्वारा हेमचन्द्रसूरि ने कुमारपाल को जैनधर्म के सिद्धान्त और नियम समझाये थे। इसकी अधिकांश कहानियाँ प्राचीन जैनशास्त्रों से ली गई हैं। इसमें श्रावक के १२ व्रतों के महत्त्व सूचन करने के लिए तथा पाँच-पाँच अतिचारों के दुष्परिणामों को सूचित करने के लिये कहानियाँ दी गई हैं। अहिंसाव्रत के महत्त्व के लिए अमरसिंह, दामन्नक आदि, देवपूजा का माहात्म्य बताने के लिए देवपाल-पद्मोत्तर आदि की कथा, सुपात्रदान के लिए चन्दनबाला, धन्य तथा कृतपुण्य-कथा, शीलव्रत के महत्त्व के लिए शीलवती, मृगावती आदि की कथा, द्यूतक्रीड़ा का दोष दिखलाने के लिए नलकथा, परस्त्री-सेवन का दोष बतलाने के लिए द्वारिकादहन तथा यादवकथा आदि आई हैं। अन्त में विक्रमादित्य, स्थूलभद्र, दशार्णभद्र कथाएँ भी दी गई हैं।

रचयिता और रचनाकाल—इसकी रचना सोमप्रभाचार्य ने की है। सोमप्रभ के पिता का नाम सर्वदेव और पितामह का नाम जिनदेव था। ये पोरवाड़ जाति के जैन थे। सोमप्रभ ने कुमार अवस्था में जैन-दीक्षा ले ली थी। वे बृहद्गच्छ के अजितदेव के प्रशिष्य और विजयसिंहसूरि के शिष्य थे। सोमप्रभ ने तीव्र बुद्धि के प्रभाव से समस्त शास्त्रों का तलस्पर्शी अभ्यास कर लिया था। वे महावीर से चलनेवाली अपने गच्छ की ४०वीं पट्टपरम्परा के आचार्य थे। इनकी अन्य रचनाएँ[2] शतार्थीकाव्य, शृंगारवैराग्यतरंगिणी, सुमतिनाथचरित्र, सूक्तमुक्तावली

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९१; गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, सं० १४, बड़ौदा, १९२०; इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से सं० १९८३ में प्रकाशित; विशेष के लिए देखें—विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५७०; आल्सडोर्फ ने आल्ट उण्ड न्यू इण्डिश स्टुडियन, १९२८, पृ० ८ पर इसके विवरणों की समीक्षा की है; प्रद्योतकथा के लिए 'अनल्स आफ दी भाण्डारकर ओ० रिसर्च इन्स्टी०', भाग २, पृ० १–२१ देखें; जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४६३–४७२.

२. वेलंकर कम्मेमोरेशन वोल्यूम, पृ० ४१–४४ में डा० घटगे का लेख देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि मिलती हैं। इनका शतार्थीकाव्य की रचना के कारण शतार्थिक उपनाम भी हो गया था।

कुमारपालप्रतिबोध की रचना सं० १२४१ में हुई थी जो कुमारपाल की मृत्यु के ११ वर्ष बाद आता है। यह इतिहास की दृष्टि से अधिक महत्त्व की रचना है।

धर्माभ्युदय—इसे संघपतिचरित्र भी कहा गया है। इसमें १५ सर्ग हैं और समग्र ग्रन्थ का परिमाण ५२०० श्लोक-प्रमाण है।[१] इस कथाकाव्य में महामात्य वस्तुपाल द्वारा की गई संघयात्रा को प्रसंग बनाकर धर्म के अभ्युदय का सूचन करनेवाली अनेक धार्मिक कथाओं का संग्रह है। इसके प्रथम सर्ग में वस्तुपाल की वंशपरम्परा तथा वस्तुपाल के मंत्री बनने का निर्देश है तथा पन्द्रहवें सर्ग में वस्तुपाल की संघयात्रा का ऐतिहासिक विवरण है। इससे इस काव्य को संघपति-चरित नाम भी दिया गया है।

अन्य सर्गों में अर्थात् २ से १४ तक परोपकार, शीलव्रत और प्राणियों के प्रति अनुकम्पा जन्य पुण्य से सम्बंधित अनेकों धर्मकथाएँ तथा शत्रुंजय तीर्थ के उद्धार तथा माहात्म्य सम्बंधी अनेकों कथाएँ दी गई हैं। द्वितीय सर्ग से सप्तम सर्ग तक परोपकार का माहात्म्य, नवम सर्ग में तप का माहात्म्य और दशम से चतुर्दश तक दीनानुकम्पन का माहात्म्य बतलाया गया है। इन सर्गों में गुरु विजयसेनसूरि ने अपने शिष्य वस्तुपाल को ऋषभदेव, भरत, बाहुबलि, जम्बू-स्वामी, युगबाहु और नेमिनाथ[२] की कथाएँ सुनाई और इन कथाओं के भीतर भी बीसियों अवान्तर कथाएँ दी गई हैं, यथा—अभयंकरनृपकथा, अंगारकदृष्टान्त, मधुविन्दाख्यानक, कुबेरदत्त-कुबेरदत्ताख्यानक और शंखधम्मिक आदि।

ये सब कथाएँ अनुष्टुभ् छन्द में ही वर्णित हैं पर कथात्मक इन सर्गों (२-१४) में प्रत्येक सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन के साथ कुछ पद्य जोड़े गये हैं जिनमें वस्तुपाल की प्रशंसा है और प्रस्तुत रचना को महाकाव्य कहा गया

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९५; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४, मुनि चतुर-विजयजी और पुण्यविजय जी द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९४९.

२. नेमिनाथचरित्र के प्रसंग में जो उदयप्रभ की स्वतंत्र रचना का उल्लेख किया है वह स्वतंत्र नहीं प्रत्युत यहीं से उद्धृत एवं अलग प्रकाशित रचना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, तथा काव्य को इतर महाकाव्यों की पद्धति से 'लक्ष्मी' शब्द से अंकित किया गया है।[1] यह अनुमान किया जाता है कि ये प्रशस्ति-पद्य मूल कर्ता के नहीं हैं और पीछे इसकी प्रतिलिपि करनेवाले वस्तुपाल ने स्वयं ही इस रचना को गरिमा प्रदान करने के लिए जोड़ दिये हैं। कथात्मक इन सर्गों की भाषा भी सहज, सरल एवं मृदु है। साधारण संस्कृत जाननेवाले के लिए भी इसकी भाषा बोधगम्य है। कवि की शैली वर्णनात्मक है जिसमें मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग बहुत कम हुआ है। फिर भी इस कथानक भाग में संस्कृतज्ञों में प्रचलित बोल-चाल की भाषा का प्रयोग ही किया गया है। भाषा को शब्दालंकारों से सजाने का प्रयास सफल रहा है। भाषा में अनुप्रास और यमकालंकारों की रणनात्मक झंकृति जो यहाँ है व अन्यत्र बहुत कम दिखाई पड़ती है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है।

इस काव्य के ऐतिहासिक भाग (१ और १५ सर्ग) में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है और भाषा भी उदात्त है।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके कर्ता उदयप्रभसूरि नागेन्द्रगच्छीय थे। उनसे पहले नागेन्द्रगच्छ में क्रमशः महेन्द्रसूरि, शान्तिसूरि, आनन्दसूरि, अमरचन्द्रसूरि, हरिभद्रसूरि, विजयसेनसूरि हुए। विजयसेनसूरि ही उदयप्रभसूरि और वस्तुपाल के गुरु थे। उक्त प्रशस्ति में धर्माभ्युदय के रचनाकाल का उल्लेख कहीं नहीं किया गया। पर इसकी जो सर्व प्राचीन प्रति मिली है उसे सं० १२९० में स्वयं वस्तुपाल ने अपने हाथों से लिखा है। इसके अन्त में यह उल्लेख है: **सं० १२९० वर्षे चैत्र शु० ११ रवौ स्तम्भतीर्थवेलाकूलमनुपालयता महं श्री वस्तुपालेन श्री धर्माभ्युदयमहाकाव्यपुस्तकमिदमलेखि।**

इससे निश्चय ही यह ग्रन्थ सं० १२९० से पूर्व लिखा गया होगा। प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार वस्तुपाल ने संघपति होकर प्रथम तीर्थयात्रा सं० १२७७ में की थी। इसकी पुष्टि गिरिनार के सं० १२९३ के एक शिलालेख से भी होती है। अतः धर्माभ्युदय महाकाव्य की रचना सं १२७७ के बाद और सं० १२९० के पूर्व कभी हुई है।[2]

---

१. इति श्रीविजयसेनसूरिशिष्यश्रीउदयप्रभसूरिविरचिते श्रीधर्माभ्युदयनाम्नि संघपतिचरिते 'लक्ष्म्यङ्के' महाकाव्ये तीर्थयात्राविधिवर्णनो नाम……सर्गः।

२. भूमिका, पृ० १४७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वकौमुदी—इस नाम की अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं। कुछ का नाम सम्यक्त्वकौमुदीकथानक, सम्यक्त्वकौमुदीकथा, सम्यक्त्वकौमुदीकथाकोष, सम्यक्त्वकौमुदीचरित्र और सम्यक्त्वकौमुदी[1] भी कहा गया है। इन नामों के अन्तर्गत सम्यक्दर्शन (जैनधर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा) के सम्बंध की अनेक लघु कथाओं का संग्रह किया गया है। विभिन्न कहानियाँ एक प्रधान कहानी के चौखटे के अन्तर्गत समाविष्ट की गई हैं, जो इस प्रकार है : रात्रि में अर्हद्दास सेठ अपनी आठ पत्नियों को कहानियां सुनाता है कि उसे किस प्रकार सम्यक्त्व प्राप्त हुआ और वे पत्नियां भी अपनी पारी में अपने-अपने सम्यक्त्व पाने की कहानियां कहती हैं। ये कहानियां उसी समय गुप्त वेश धारण कर अपने मंत्री के साथ घूमते हुए वहाँ आये राजा ने तथा छिपे हुए एक चोर ने सुनीं। इन कहानियों में एक राजा सुयोधन की कहानी है। वह राजा अपने सत्यनारायण कोतवाल को जाल में फंसाने के लिए अपने कोषागार में सेंध लगाता है। कोतवाल उसे सात दिन तक सात कहानियों द्वारा चेतावनी देकर छोड़ देता है पर अन्त में उसका चोर के रूप में भेद खुल जाता है और लोग उसे राज्यच्युत कर देते हैं।

यह लघु कथाकोश विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा प्रणीत उपलब्ध है।[2] अब तक ज्ञात प्राचीन कृतियों में सबसे प्राचीन वह सम्यक्त्वकौमुदी[3] है जिसकी रचना मदनपराजय के कर्ता नागदेव ने की है। ये लगभग १४वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के विद्वान् हैं। इसकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति सं० १४८९ की मिली है। इसमें ३००० श्लोक हैं जिनमें विभिन्न आठ कहानियाँ दी गई हैं।

धर्मकल्पद्रुम—यह नौ पल्लवों में विभक्त बृहत् कथाकोश[4] है जिसका ग्रन्थाग्र ४८१४ श्लोक-प्रमाण है। इसमें अनेकों रोचक कथाएँ दी गई हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४२४.
२. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, पृ० २१०-२११; उसमें नागदेव-कृत रचना का परिचय नहीं दिया गया है।
३. जैन ग्रन्थ कार्यालय, हीराबाग, बम्बई से प्रकाशित; विषय की तुलना और कर्ता के निर्णय के लिए देखें—वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ में श्री राजकुमार जैन का लेख 'सम्यक्त्वकौमुदी के कर्ता', पृ० ३७५-३७९.
४. जिनरत्नकोश, पृ० १८८; देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ४०, बम्बई, सं० १९७३; द्रष्टव्य—हर्टेल का लेख : जेड० डी० एम० जी०, भाग ६५, पृ० ४२९ प्रभृति.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना मुनिसागर उपाध्याय के शिष्य उदयधर्म ने आनन्दरत्नसूरि के पट्टकाल में की थी। आनन्दरत्न आगमगच्छीय आनन्दप्रभ के प्रशिष्य और मुनिरत्न के शिष्य थे। मुनिसागर के शिष्य उदय-धर्म का और पट्टधर आनन्दरत्न का पता साहित्यिक तथा पट्टावलियों के आधार से लगाने पर भी नहीं चल सका इसलिए रचनाकाल बतलाना कठिन है। जर्मन विद्वान् विण्टरनित्स[1] का अनुमान है कि ये १५वीं शती या उसके बाद के ग्रन्थकर्ता हैं।

धर्मकल्पद्रुम[2] नाम की अन्य रचनाएँ भी मिलती हैं उनमें दो अज्ञातकर्तृक हैं, एक का नाम वीरदेशना भी है। अन्य दो में से एक के रचयिता धर्मदेव हैं जो पूर्णिमागच्छ के थे और उन्होंने इसे सं० १६६७ में रचा था। दूसरे का नाम परिग्रहप्रमाण है और यह एक लघु प्राकृत कृति है। इसके रचयिता धवलसार्थ (श्राद्ध—श्रावक) हैं।

दानप्रकाश—यह कथाग्रन्थ ८ प्रकाशों में विभक्त है। ग्रन्थाग्र ३४० श्लोक-प्रमाण है। इसमें वसतिदान पर कुरुचन्द्र-ताराचन्द्रनृपकथा (१ प्र०), शय्यादान पर पद्माकर सेठ की (२ प्र०), आसनदान पर करिराजमहीपाल की (३ प्र०), भक्तदान पर कनकरथ की (४ प्र०), पानीदान पर भद्र-अतिभद्र नृप की (५ प्र०), औषधिदान पर रेवती की (६ प्र०), वस्त्रदान पर ध्वजभुजंग की (७ प्र०), पात्रदान पर धनपति की (८ प्र०) कथाएँ दी गई हैं।

कर्ता एवं कृतिकाल—ग्रन्थान्त में ४ श्लोक की प्रशस्ति दी गई है। इससे ज्ञात होता है कि इसे तपागच्छ के विजयसेनसूरि के प्रशिष्य सोमकुशलगणि के शिष्य कनककुशलगणि ने सं० १६५६ में रचा था। कनककुशल की अन्य कृतियाँ भी मिलती हैं: जिनस्तुति (सं० १६४१), कल्याणमन्दिरस्तोत्रटीका, भक्तामर-स्तोत्रटीका[3], चतुर्विंशतिस्तोत्रटीका[4], पंचमीस्तुति (चारों सं० १६५२), विशाल-लोचनस्तोत्रवृत्ति[5] (सं० १६५३), सकलार्हत्स्तोत्रटीका[6] (सं० १६५४), कार्तिक-

१. विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५४५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १८८-१८९.

३. दोनों प्रकाशित.

४. स्तुतिसंग्रह में मेहसाना से सन् १९१२ में प्रकाशित.

५. अप्रकाशित.

६. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के प्रथम २६ पद्यों पर टीका, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से १९४२ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्लपञ्चमीकथा[2] (अपरनाम ज्ञानपंचमीकथा, सौभाग्यपंचमीकथा, वरदत्त-गुणमंजरीकथा—सं० १६५५), सुरप्रियमुनिकथा[2] (सं० १६५६), रोहिण्यशोक-चन्द्रनृपकथा (सं० १६५७), अक्षयतृतीयाकथा (गद्य), दीपालिकाकल्प (प्राकृत), रत्नाकरपंचविंशतिकाटीका और मृगसुन्दरीकथा (सं० १६६७)।

उपदेशप्रासाद—यह एक विशाल कथाकोश है। इसमें २४ स्तंभ हैं।[3] प्रत्येक स्तम्भ में १५-१५ व्याख्यान हैं, इस तरह सब मिलाकर ३६० व्याख्यान होते हैं। इस ग्रन्थ की प्रासाद संज्ञा की सिद्धि के लिए ३६१वां व्याख्यान कहा गया है। इसमें कुल मिलाकर दृष्टान्त कथाएँ ३४८ हैं तथा ९ पर्व कथाएँ दी गई हैं।

विषय की दृष्टि से प्रथम चार स्तम्भों में सम्यक्त्व के प्रकारों का वर्णन है, पांच से बारह तक स्तंभों में श्रावक के १२ व्रतों का वर्णन, १३वें में जिनपूजा, तीर्थयात्रा तथा नवकार जाप का महत्त्व दिखाया गया है, १४वें में तीर्थंकरों के पाँच कल्याणक, दीपोत्सव आदि का वर्णन, १५ से १७ तक में ज्ञानपंचमी आदि पर्वों का वर्णन है, १८वें में ज्ञानाचार, १९वें में तपाचार, २०वें में वीर्याचार, २१ से २३ तक ज्ञानसारग्रन्थ के ३२ अष्टक तथा फुटकर विषय और २४वें में अनेक विषयों का समावेश है। इन विषयों के विवेचन में दृष्टान्त रूप में जो कहानियाँ दी गई हैं उनसे यह विशाल कथाकोश बन गया है। इसमें अनेक पौराणिक, ऐतिहासिक, आचार्यसम्बंधी तथा जनप्रिय कथाएँ देखने को मिलती हैं। यह जैन श्रावकों के लिए बड़े महत्त्व का ग्रन्थ है।

इन कथाओं में से पर्वों से सम्बंधित कथाओं को 'पर्वकथासंग्रह'[4] नाम से अलग प्रकाशित किया गया है जिसमें आषाढ़-चातुर्मासिक, दीपावली, कार्तिक-प्रतिपदा, ज्ञानपञ्चमी, कार्तिकी पूर्णिमा, मौनैकादशी, रोहिणी-हुताशनी आदि पर्वों की कथाएं दी गई हैं।

---

१. प्रकाशित.

२. दोनों प्रकाशित.

३. जैनधर्म प्रसारक सभा, ग्रन्थ सं० ३३-३६, भावनगर, १९१४-१९२३; वहीं से ५ भागों में गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

४. चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थाङ्क ३४, अहमदाबाद, वि० सं० २००१; 'सौभाग्यपञ्चम्यादिपर्वकथासंग्रह' नाम से हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्यालय, कोटा से वि० सं० २००६ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्ता एवं रचनासमय—२४वें स्तंभ के अन्त में ५१ पद्यों का गुरुपट्टानुक्रम दिया गया है और उसके बाद ३४ पद्यों की एक बड़ी प्रशस्ति दी गई है। गुरुपट्टानुक्रम में सुधर्मा स्वामी से लेकर अपने समय तक की गुरुपरम्परा दी है और तपागच्छ की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला है। इसके बाद तपागच्छ की पट्टावली दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि ये विजयसौभाग्यसूरि के शिष्य थे। विजयलक्ष्मी इनका नाम था और इन्होंने इस ग्रन्थ पर प्रेमविजय आदि मुनियों के अभ्यास के लिए उपदेशसंग्रह नाम से वृत्ति लिखी थी, वह ग्रन्थ सं० १८४३ में समाप्त हुआ था। पट्टावलीपराग[1] में पृष्ठ २०६ पर दी गई तपागच्छान्तर्गत विजयानन्दसूरि-गच्छपरम्परा में इनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। ये सिरोडी और हणादरा के बीच पाल्ड़ी ग्राम में सं० १७९७ में जन्मे थे। पिता का नाम हेमराज और माता का आनंदीबाई था। सं० १८१४ में नर्मदा तट पर सिनोर में दीक्षा, उसी वर्ष सूरिपद और सं० १८५८ में सूरत में स्वर्गवास हुआ था।

धर्मकथा—संस्कृत में यह बृहत् कथाग्रन्थ है।[2] इसमें छोटी-बड़ी १५ कथाएँ दी गई हैं। इसी में सीताचरित्रमहाकाव्य ४ सर्गों में वर्णित है जिनमें ५५६ श्लोक हैं। अन्य चरित्रों में असत्य भाषण पर ऋषिदत्ताकथा (४८५ श्लोक), सम्यक्त्व पर विक्रमसेनकथा (२३३ श्लोक) और वज्रकर्णकथा (९९ श्लोक), जीवदया पर दामन्नककथा (१०४ श्लोक), सत्यव्रत पर धनश्रीकथा, चोरी पर नागदत्तकथा, ब्रह्मचर्य पर गजसुकुमालकथा, परिग्रह-परिमाण पर चारुदत्तकथा, रात्रिभोजन पर वसुमित्रकथा, दान पर कृतपुण्यकथा, शील पर नर्मदासुन्दरीकथा (२०५ श्लोक) और विलासवतीकथा (५२२ श्लोक), तप पर दृढ़प्रहारिकथा और भावना पर इलातीपुत्रकथा दी गई है।

रचयिता या संग्रहकर्ता का नाम अज्ञात है पर प्रशस्ति में रचना सं० १३३९ (द्वितीय कार्तिक वदी) दिया हुआ है।

एकादश-गणधरचरित—इसका ग्रन्थाग्र ६५०० है। इसमें महावीर के ११ गणधरों की कथाएँ संकलित हैं। इसकी रचना खरतरगच्छ के देवमति उपाध्याय ने की है।[3]

---

१. पं० कल्याणविजयगणिकृत.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १८८; पाटन ग्रन्थभण्डार सूची, भाग १, १७५-१७६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युगप्रधानचरित—युगप्रधान आचार्यों के समुदित चरित्र को लेकर ६००० ग्रन्थाग्र-प्रमाण एक रचना का जैन ग्रन्थावलि में उल्लेख मिलता है।[1]

सप्तव्यसनकथा—सप्तव्यसन अर्थात् जुआ, चोरी, शिकार, वेश्यागमन, परस्त्रीसेवन, मद्य एवं मांसभक्षण के कुपरिणाम को बतलाने के लिए सात कथाओं के संग्रहरूप में कई कृतियां मिली हैं।

उनमें सोमकीर्ति भट्टारककृत सप्तव्यसनकथा[2] (सं० १५२६) में सात सर्ग हैं। यह कथा-साहित्य का अच्छा ग्रन्थ है। अन्य रचनाओं में सकलकीर्तिकृत[3] १८०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण तथा भुवनकीर्तिकृत[4] ३५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण एवं कुछ अन्यकर्तृक[5] सप्तव्यसनकथाएँ मिलती हैं।

समितिगुप्तिकषायकथा—इसमें उक्त विषयक कथाओं का संग्रह है। इसकी रचना तपागच्छीय कमलविजयगणि के शिष्य कनकविजय ने की है।[6] रचना-काल ज्ञात नहीं है।

कामकुम्भादिकथा-संग्रह—यह पाँच कथाओं का संग्रह है जो कि विजयनीति-सूरि के शिष्य पन्यास दानविजयजी के सदुपदेश से प्रकाशित हुआ है।[7] इसमें संस्कृत गद्य में कामकुम्भकथा अपरनाम पापबुद्धि-धर्मबुद्धिकथा, तथा पाँच पापों को सेवन करनेवाले सुभूम चक्रवर्ती की, अभयदान देनेवाले दामन्नक की, तथा चार नियमों का पालन करनेवाले वंकचूल की एवं शील पालनेवाली नर्मदासुन्दरी की कहानी है। सभी कहानियां रोचक एवं उपदेशप्रद हैं।

अन्य कथाकोशों या संग्रहों में निम्नलिखित कृतियां मिलती हैं :

अमरसेनवज्रसेनादिकथादशक[8], आवश्यककथासंग्रह[9], अष्टादशकथा[10] (सकलकीर्ति सं० १५२२), उपासकदशाकथा[11] (पूर्णभद्र सं० १२७५, प्राकृत), उत्तराध्ययनकथासंग्रह[12] (शुभशील सं० १५६०), उत्तराध्ययनकथाएँ[13] (पद्म-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३२१.

२-५. वही, पृ० ४१६.

६. वही, पृ० ४२१.

७. वही, पृ० ८४.

८. वही, पृ० १५. ९. वही, पृ० ३४. १०. वही, पृ० १९.

११. वही, पृ० ५६. १२-१३. वही, पृ० ४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सागरगणिकृत सं० १६५७, एवं पुण्यनन्दनगणि तथा दो अज्ञातकर्तृक), अनंगसिंहादिकथा[1], द्वादशकथा[2] (लक्ष्मीसूरि तथा अज्ञातकर्तृक), द्वादशभावनाकथा[3], द्वादशव्रतकथा[4] (चरित्रकीर्तिगणि), दशदृष्टान्तचरित्र[5] (अनन्तहंस सं० १५७१), दशदृष्टान्तकथा[6] (अभयधर्मवाचक), दशश्रावकचरित्र[7] (शुभवर्धन सं० १५४२), दानचतुष्टयकथा[8], धर्माख्यानकोश[9] (विनयचन्द्र), धर्मोपदेशकथा,[10] धनमित्रादिकथा,[11] कनकश्रेष्ठ्यादिकथा,[12] ढण्ढणकुमारादिकथा,[13] मोदकादिकथा,[14] वज्रायुधादिकथा,[15] वार्षिककथासंग्रह,[16] वेगवत्सराजादीनांकथा,[17] शिक्षाचतुष्टयकथा,[18] श्रावकदिनकृत्यदृष्टान्तकथा,[19] श्रावकव्रतकथासंग्रह,[20] सनत्कुमारादिकथासंग्रह[21] (४८ कथाएँ), श्रीषेणकुमारादिकथा,[22] स्मरनरेन्द्रादिकथा,[23] सोमभीमादिकथा,[24] सप्तनिह्नवकथा,[25] ह्रस्वकथासंग्रह[26] (सं० १४१३), पंचाणुव्रतकथा,[27] पार्श्वनाथचरित्रसम्बद्धदशदृष्टान्तकथा,[28] पुरुदेवपंचकल्याणकथा,[29] भरताष्टपट्टनृपचरित्र,[30] चतुरशीतिधर्मकथा,[31] द्वाविंशतिपरीषहकथा[32] आदि।

इन कथाकोशों में चार प्रकार की आराधना—तप, शील, ज्ञान, भावना तथा अहिंसादि १२ व्रत, दान, पूजा आदि के विविध प्रकारों के माहात्म्य तथा ज्ञानपंचमी आदि व्रतों एवं पर्वों तथा तीर्थों के माहात्म्य के अतिरिक्त नीतिकथा विषयक प्राणिकथाएँ एवं रोचक परीकथाओं, अद्भुत कथाओं और मुग्ध कथाओं का संग्रह किया गया है।

धर्मकथा-साहित्य की स्वतंत्र रचनाएँ :

पूर्वोक्त विशाल पौराणिक साहित्य तथा कथाकोशों में जो अनेक प्रकार के कथानक आये हैं उनमें से अनेकों को स्वतंत्र रचना के रूप में भी प्रस्तुत किया

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६. २-७. वही, पृ० १८४. ८. वही, पृ० १७२. ९. वही, पृ० १९४. १०. वही, पृ० १९५. ११. वही, पृ० १८७. १२. वही, पृ० ६४. १३. वही, पृ० १५१. १४. वही, पृ० ३१५. १५. वही, पृ० ३४०. १६. वही, पृ० ३४८. १७. वही, पृ० ३६५. १८. वही, पृ० ३८३. १९. वही, पृ० ३९२. २०. वही, पृ० ३९४. २१. वही, पृ० ४१२. २२. वही, पृ० ३९८. २३. वही, पृ० ४५६. २४. वही, पृ० ४५२. २५. वही, पृ० ४१५. २६ वही, पृ० ४६३. २७. वही, पृ० २३०. २८. वही, पृ० २४४. २९. वही, पृ० २५३. ३०. वही, पृ० २९२. ३१. वही, पृ० ११३. ३२. विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रन्थमाला, ५ वां पुष्प, वि० सं० १९९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है। इसके अतिरिक्त अनेक लौकिक कथाओं को धर्मकथा के रूप में परिणत करने के लिए उनमें यत्र-तत्र परिवर्तन कर कल्पित धर्मकथा-साहित्य की सृष्टि की गई है।

धर्मकथा-साहित्य की स्वतंत्र रचनाओं को हम विभिन्न शैलियों में देख सकते हैं। इन शैलियों का व्यक्तिगत रचनाओं के परिचय के साथ हमने संकेत कर दिया है। उनकी अन्य विशेषताओं को दिखाने से ग्रन्थ का कलेवर बढ़ने का भय है इसलिए जहाँ जैसी आवश्यकता हुई है उसकी ओर संकेत मात्र कर दिया है।

स्वतंत्र रचनाओं के वर्णन-क्रम में हमने एक सुविधाजनक वर्गीकरण का अवलम्बन लिया है जिसे वैज्ञानिक या आलोचनात्मक वर्गीकरण नहीं कहा जा सकता। कहीं हमने घटनाओं या कथासूत्र का एक-सा अनुकरण करनेवाली रचनाओं का परिचय दिया है तो कहीं एक से कल्पनाबन्ध (Motif) वाली कृतियों का, कहीं पुरुषपात्र-प्रधान कहानियों का तो कहीं स्त्रीपात्र-प्रधान कथाओं का एकत्र विवरण प्रस्तुत किया है। साथ ही तीर्थों, पर्वों एवं स्तोत्रों के माहात्म्य को प्रकट करनेवाली कथाओं का परिचय भी एक क्रम में देने का प्रयास किया है। अन्त में परीकथाओं, मुग्धकथाओं और प्राणिकथारूपी नीतिसंबंधी कथाओं पर जैन कथाकारों की सफल रचनाओं का परिचय दिया है।

पुरुषपात्र-प्रधान प्रमुख रचनाएँ :

समराइच्चकहा—यह धर्मकथा के साथ-साथ प्राकृत भाषा का विशाल ग्रन्थ है।[1] इसमें ९ प्रकरण हैं जो ९ भवनाम से कहे गये हैं। इसमें जैन महाराष्ट्री

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१९; बिब्लियोथेका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता, १९२६; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५२३-५२५; संस्कृत-छाया सहित दो भागों में क्रमशः १९३८ और १९४२ में अहमदाबाद से प्रकाशित; भव १, २, ६, मधुसूदन मोदी, अंग्रेजी अनुवाद एवं भूमिका, अहमदाबाद, सन् १९३३-३६; भव २, गोरेकृत अंग्रेजी भूमिका, अनुवादसहित, पूना, १९५५; इस पर कवि पद्मविजय ने नौ खण्डों एवं गेय ढालों में सं० १८३९-४२ में गुजराती रास लिखा है; इस पर शिवजी देवसी शाह ने उपन्यास लिखा है जिसे मेघजी हीरजी ने बम्बई से प्रकाशित किया; दूसरा उपन्यास 'वैरना विपाक' शीर्षक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत गद्य की प्रधानता है पर उसमें भी यत्र-तत्र शौरसेनी का प्रभाव देखा जाता है। बीच-बीच में पद्य भाग भी हैं जो आर्या छन्दों में हैं पर द्विपदी, विपुला आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। भाषा सरल और प्रवाहपूर्ण है। सुबंधु और बाण के ग्रन्थों जैसी जटिल भाषा का यद्यपि इसमें प्रयोग नहीं हुआ है फिर भी यत्र-तत्र वर्णन-प्रसंग में लम्बे समासों और उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है जिससे कर्ता का काव्य-कौशल ज्ञात होता है। इसके कितनेक वर्णन बाण की कादम्बरी और श्रीहर्ष की रत्नावलि से प्रभावित हैं। इस विशाल रचना का ग्रन्थाग्र १०००० श्लोक-प्रमाण है।

इस कथाग्रन्थ में दो ही आत्माओं के नौ मानवभवों का विस्तृत एवं सरल वर्णन है। वे हैं : उज्जैन के नरेश समरादित्य (पीछे समरादित्य केवली) और उन्हें अग्नि द्वारा भस्मसात् करने में तत्पर गिरिसेन चाण्डाल। एक अपने पूर्व भवों से पापों का पश्चात्ताप, क्षमा, मैत्री आदि भावनाओं द्वारा उत्तरोत्तर विकास करता है और अन्त में परमज्ञानी और मुक्त हो जाता है तो दूसरा प्रतिशोध की भावना लिए संसार में बुरी तरह फँसा रहता है।

कथावस्तु—समरादित्य और गिरिसेन अपने मानवभवों के नववें भवपूर्व में क्रमशः राजपुत्र गुणसेन और पुरोहितपुत्र अग्निशर्मा थे। अग्निशर्मा की कुरूपता की गुणसेन नाना प्रकार से हँसी उड़ाया करता था जिससे विरक्त होकर अग्निशर्मा ने दीक्षा ले ली और मासोपवास संयम का पालन किया। राज्यपद पाने पर गुणसेन ने अग्निशर्मा तपस्वी को क्रमशः तीन बार आहार के लिए आमंत्रित किया किन्तु तीनों बार राजकाज में व्यस्त होने से उसे भोजन न करा सका। इससे अग्निशर्मा ने यह समझ लिया कि राजा ने वैर लेने के लिए ही उसे इतनी बार निमंत्रित कर आहार से वंचित रखा है। इससे क्रुद्ध होकर उसने मारणान्तिक संलेखना द्वारा प्राण-त्याग करते समय इस बात का निदान (फलेच्छा) किया कि 'मेरे तप, संयम और त्याग का यदि कोई फल मिलना है तो मैं जन्म-जन्मान्तरों में इस प्रवंचना का गुणसेन के जीव से उसे मार-मारकर बदला लेता रहूँ।' इस

से भीमजी हरजीवन 'सुशील' ने भावनगर से संवत् २००२ में; इसका हिन्दी अनुवाद (श्री कस्तूरमल बांठिया) जिनदत्तसूरि सेवासंघ, मद्रास-बम्बई से सं० २०२१ में प्रकाशित; इस महाग्रंथ का गुजराती अनुवाद हेमसागरसूरि ने आनन्दहेम ग्रन्थमाला (३१-३२), खाराकुवा, बम्बई से सन् १९६६ ई० में प्रकाशित कराया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निदान के कारण अग्निशर्मा का उत्तरोत्तर अधःपतन होता रहा जब तक कि उसे अन्त में 'अहो इसकी महानुभावता' द्वारा स्व-संबोधन नहीं हुआ।

अग्निशर्मा की प्रतिशोध-भावना का क्रम भावी आठ मानव भवों तक चलता रहा। वे अगले भवों में क्रमशः (२) पिता-पुत्र के रूप में सिंह-आनन्द, (३) पुत्र और माता के रूप में शिखि-जालिनी, (४) पति और पत्नी के रूप में धन-धनश्री, (५) सहोदर के रूप में जय-विजय, (६) पति और भार्या के रूप में धरण-लक्ष्मी, (७) चचेरे भाई के रूप में सेन-विषेण, (८) राजकुमार गुणचन्द्र और वानमन्तर विद्याधर तथा अन्त में (९) समरादित्य और गिरिसेन हुए।

इन नौ भवों (प्रकरणों) में अनेकों अवान्तर कथाएँ दी गई हैं: प्रथम भव में विजयसेन आचार्य की; दूसरे में अमरगुप्त-धर्मघोष अवधिज्ञानी की; तीसरे में विजयसिंह आचार्य की; चौथे में यशोधर-नयनावली की; पंचम में सनत्कुमार की; छठे भव में अर्हद्दत्त की; सातवें में केवली साध्वी की; आठवें में विजयधर्म की तथा नववें भव में पांच अन्तर्कथाएँ दी गई हैं जिनका उद्देश्य जन्म-जन्मान्तर के कर्मफलों का विवेचन करना ही है।

इसकी अवान्तर कथाएँ परवर्ती अनेक रचनाओं की उपजीव्य रही हैं। चौथे भव की अन्तर्कथा यशोधर पर तो २४ से अधिक प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषाओं में काव्य लिखे गये हैं।

प्रारम्भ में ग्रन्थकार ने अपनी कथा के स्रोत रूप में प्राप्त आठ[1] संग्रहणी गाथाओं का उल्लेख किया है उनमें तीन इस प्रकार हैं:

गुणसेण-अग्गिसम्मा सीहा-णंदा य तह पिआ-पुत्ता।
सिहि-जालिणी माइ-सुओ, धण-धरणसिरिओ य पइ-भज्जा ॥१॥
जय-विजया य सहोअर, धरणो लच्छी य तह पई-भज्जा।
सेण-विसेण पित्तिअ, उत्ता जंमंमि सत्तमए ॥२॥
गुणचन्द-बाणमन्तर समराइच्च गिरिसेण पाणोय।
एगस्स तओ मुक्खो, णंतो अणणस्स संसारो ॥३॥

१. इन गाथाओं में नायक-प्रतिनायक के नौ मानव भवान्तरों के नाम, उनका सम्बन्ध, उनकी निवास नगरियाँ एवं मानवभवों में मरण के पश्चात् प्राप्त स्वर्ग-नरकों के नाम दिये गये हैं। ये गाथाएँ कथानक की रूपरेखा जैसी लगती हैं और स्वयं ग्रन्थकार ने लिखी हों यह सम्भावना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन गाथाओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये हरिभद्र (ग्रन्थकार) के गुरु ने हरिभद्र के पास एक प्रसंग में उत्पन्न क्रोध को शान्त करने के लिए भेजी थीं, जिनको आधार बनाकर समराइच्चकहा की रचना की गई थी। सत्य जो हो पर इन गाथाओं के प्राचीन स्रोत का पता नहीं लगता, फिर भी इनकी व्याख्या रूप में जिस भव्य कथा-प्रासाद को खड़ा किया गया वह भव्य एवं अद्‌भुत है। इसमें समाज के विभिन्न वर्गों—नाई, धोबी, चर्मकार, मछुए, चिड़ीमार, चाण्डाल से लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय (ठाकुर), वैश्यों (व्यापारी एवं सार्थवाहों) के चलते-फिरते चित्र देखने को मिलते हैं और उनमें भारत की मध्यकालीन संस्कृति का उदात्त एवं भव्य रूप भी।[१]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध हरिभद्रसूरि (वि० सं० ७५७-८२७) हैं जिनका परिचय और रचनाओं का विवरण इस इतिहासमाला के तृतीय भाग (पृ० ४० और ३५९-६३) में दिया गया है।

इस कथानक के संगठन में हरिभद्रसूरि ने अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं वसुदेव-हिण्डी, उवासगदसाओ, विपाकसूत्र, उत्तराध्ययन, नायाधम्मकहाओ प्रभृति जैन-ग्रन्थों से तथा महाभारत, अवदान साहित्य तथा गुणाढ्य की बृहत्कथा प्रभृति जैनेतर साहित्य से सहायता ली है और अपनी कल्पनाशक्ति तथा संवेदनशीलता से समराइच्चकहा को सरस एवं प्रभावोत्पादक बनाया है।

परवर्ती कथाकारों को इस कथाग्रन्थ ने बहुत ही प्रभावित किया है। कुवलय-मालाकार उद्योतनसूरि ने इसका 'समरमियंकाकहा'[२] नाम से उल्लेख किया है।

इस पर सं० १८७४ में क्षमाकल्याण और सुमतिवर्धन ने टिप्पणी लिखी है जो मूल का प्रायः संस्कृत छाया रूप है।[३]

---

१. इसके लिए देखें, डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, नवम प्रकरण; डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ३९४–४११.

२. जो इच्छइ भवविरहं, भवविरहं को न बंधए सुयणो।
समयसयसत्थकुसलो समरमियंका कहा जस्स॥
प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ में मुनि पुण्यविजयजी का लेख : आचार्य हरिभद्रसूरि और उनकी समरमियंकाकहा.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४१९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समरादित्यचरित्र नाम से मतिवर्धनकृत एक अन्य लघु रचना उपलब्ध है ।[1] इसी तरह माणिक्यसूरिकृत समरभानुचरित्र[2] का भी उल्लेख मिलता है ।

समरादित्यसंक्षेप—यह हरिभद्रसूरिकृत प्राकृत 'समराइच्चकहा' का संस्कृत भाषा में छन्दोबद्ध सार है ।[3] इस सार की भाषा अति संक्षिप्त होते हुए भी आलंकारिक काव्य के गुणों से पूर्ण है । यह कृति उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष आदि अर्थालंकार और अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों से भरपूर है । इसमें सार्वजनीन भावसूचक वाक्यांश या पद्य प्रचुर मात्रा में मिलते हैं जिनका विधिवत् संग्रह सुभाषित साहित्य के लिए एक बड़ी देन होगी । कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं :

१. स्वप्रतिज्ञां न मुञ्चन्ति महाराज तपस्विनः । १. १६५
२. नैवोचितं पुंसां मित्रदोषप्रकाशनम् । २. १९९
३. अब्जेषु श्रीनिवासेषु कृमयो न भवन्ति किम् । ४. १६३
४. भवन्त्यपरमार्थज्ञाः जना विषयलोलुपाः । ६. ३२९
५. महतामुपकारो हि सद्यः फलति निर्मितः । ८. २६७

भाषा की दृष्टि से यह नूतन सामग्री से समृद्ध है । इसमें कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो केवल वेद और महाभारत में ही मिलते हैं; कुछ ऐसे अप्रसिद्ध शब्द हैं जो व्याकरणों में ही उपलब्ध हैं; कुछ ऐसे अप्रयुक्त शब्द हैं जो कोषों में मिलते हैं पर साहित्य में प्रायः कम ही प्रयुक्त हुए हैं और कुछ ऐसे नये शब्द हैं जो प्रकाशित कोषों में नहीं दिखाई पड़ते ।[4]

रचयिता एवं रचनाकाल—इस कृति के कर्ता प्रद्युम्नसूरि[5] हैं जिन्होंने इसकी रचना वि० सं० १३२४ (१२६८ ई०) में की थी । ग्रंथ के अन्त में दी गयी

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१९; हीरालाल हंसराज, जामनगर, सन् १९१५.

२. वही, पृ० ४१६; ३२०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण .

३. नवं कर्तुमशक्तेन मया मन्दधियाधिकम् ।
प्राकृतं गद्यपद्यं तत् संस्कृतं पद्यमुच्यते ॥ १.३० .

४. इस विषय पर विशेष विवेचन के लिए देखें : डा० इ० डी० कुलकर्णी का लेख : लैंग्वेज आफ समरादित्यसंक्षेप आफ प्रद्युम्नसूरि, आल इण्डिया ओरि० का०, वर्ष २०, भाग २, पृ० २४१.

५. प्रद्युम्नस्य कवेः लक्ष्मीजानिः किमभिधः हिता ।
कुमारसिंह इत्युक्ते .... ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्ति से पता चलता है कि प्रद्युम्नसूरि चन्द्रगच्छ के थे। गृहस्थ अवस्था में उनके माता-पिता का नाम कुमारसिंह और लक्ष्मी था। ग्रन्थ के आदि में उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा दी है जिससे ज्ञात होता है कि उनका सामान्य शिक्षण कनकप्रभसूरि से हुआ था। इसके अतिरिक्त नरचन्द्र मलधारी ने उन्हें उत्तराध्ययन और विजयसेन ने न्याय तथा पद्मचन्द्र ने आवश्यक सूत्र पढ़ाया था।[१]

प्रद्युम्नसूरि एक बड़े भारी आलोचक विद्वान् प्रतीत होते हैं क्योंकि उन्होंने कई कृतियों का संशोधन एवं परिष्कार किया था। इनके द्वारा संशोधित कृतियों का यथा प्रसंग उल्लेख किया गया है।

धूर्ताख्यान—आचार्य हरिभद्र ने धर्मकथा का एक अद्भुत रूप आविष्कृत किया है जो धूर्ताख्यान[२] के रूप में भारतीय कथा-साहित्य में विचित्र कृति है। इसमें बड़े विनोदात्मक ढंग से रामायण, महाभारत और पुराणों के अतिरंजित चरित्रों और कथानकों पर व्यंग्य करते हुए उन्हें निरर्थक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। यह प्रचुर हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण रचना है। इसमें ४८० के लगभग प्राकृत गाथाएँ हैं जो पाँच आख्यानों में विभक्त हैं। यह सम्पूर्ण कृति सरल प्राकृत में लिखी गई है।

कथावस्तु—उज्जैनी के उद्यान में धूर्तविद्या में प्रवीण पाँच धूर्त अपने सैकड़ों अनुयायियों के साथ संयोगवश इकट्ठे हुए। पाँच धूर्तों में ४ पुरुष थे और एक स्त्री। वर्षा लगातार हो रही थी और खाने-पीने का प्रबन्ध करना कठिन प्रतीत हो रहा था। पाँचों दलों के मुखियों ने विचार-विमर्श किया। उनमें से प्रथम मूलदेव ने यह प्रस्ताव किया कि हम पाँचों अपने-अपने अनुभव की कथा कहकर सुनायें। उसे सुनकर दूसरे अपने कथानक द्वारा उसे सम्भव करें। जो ऐसा न कर सके और आख्यान को असम्भव बतलावे, वही उस दिन समस्त धूर्तों के भोजन का खर्च उठावे। मूलदेव, कंडरीक, एलाषाढ़, शश[३] नामक धूर्त-

१. १. २२–२५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १९८; सिंघी जैन ग्रन्थमाला (सं० १५), बम्बई, १९४४; इस पर डा० उपाध्ये की अंग्रेजी प्रस्तावना विशेषरूप से पठनीय है।

३. मूलदेव और शश एकदम काल्पनिक नाम नहीं हैं। मूलदेव को चौरशास्त्र प्रवर्तक माना जाता है और 'चतुर्भाणी' में शश का उल्लेख मूलदेव के मित्र के रूप में मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजों ने अपने-अपने असाधारण अनुभव सुनाये, उनका समर्थन भी पुराणों के अलौकिक वृत्तान्तों द्वारा किया। पाँचवाँ आख्यान खंडपाना नाम की धूर्तनी का था। उसने अपने वृत्तान्त में नाना असम्भव घटनाओं का उल्लेख किया, जिनका समाधान क्रमशः उन धूर्तों ने पौराणिक वृत्तान्तों द्वारा कर दिया, फिर उसने एक अद्भुत आख्यान कहकर उन सबको अपने भागे हुए नौकर सिद्ध किया तथा कहा कि यदि उस पर विश्वास है तो उसे सब स्वामिनी मानें और विश्वास नहीं तो सब उसे भोज (दावत) दें तभी वे सब उसकी पराजय से बच सकेंगे। उसकी इस चतुराई से चकित हो सब धूर्तों ने लाचारी में उसे स्वामिनी मान लिया। फिर उसने अपनी धूर्तता से एक सेठ द्वारा रत्नमुद्रिका पाई और उसे बेचकर एवं खाद्य-सामग्री खरीद कर धूर्तों को आहार कराया। सभी धूर्तों ने उसकी प्रत्युत्पन्नमति के लिए साधुवाद किया और स्वीकार किया कि पुरुषों से स्त्री अधिक बुद्धिमान होती है।

इस ध्वन्यात्मक शैली द्वारा लेखक ने असंभव, मिथ्या और कल्पनीय बातों का निराकरण कर स्वस्थ, सदाचारी और संभव आख्यानों की ओर संकेत किया है।

इसके रचयिता प्रसिद्ध हरिभद्रसूरि हैं जिनका परिचय इस इतिहास के तृतीय भाग में दिया गया है। इस कथा का आधार जिनदासगणि (७वीं शती का उत्तरार्ध) कृत निशीथचूर्णि मालूम होता है। वहाँ इन धूर्तों की कथा लौकिक मृषावाद के रूप में दी गई है[1] जिसे हरिभद्र ने एक विशिष्ट व्यङ्ग्य-ध्वन्यात्मक शैली द्वारा विकसित कर प्रस्तुत किया है। हरिभद्र के पुष्ट व्यङ्ग्य और उपहास हमें पाश्चात्य लेखक स्विफ्ट तथा वाल्टेयर की याद दिलाते हैं। भारतीय साहित्य में यद्यपि व्यङ्ग्य मिलते हैं पर अविकसित और मिश्र रूप में। हरिभद्र की यह कृति उनसे बहुत आगे है। इसके आदर्श पर परवर्ती अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं, यथा अपभ्रंश धर्मपरीक्षा (हरिषेण और श्रुतकीर्ति) और संस्कृत धर्मपरीक्षा (अमितगति)। एक अन्य संस्कृत धूर्ताख्यान[2] का उल्लेख मिलता है जो उक्त रचना का रूपान्तर है।

धर्मपरीक्षा-कथा—धूर्ताख्यान की व्यङ्ग्यात्मक शैलीरूप से प्राकृत और संस्कृत में धर्मपरीक्षा नाम के अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। उनमें कुछ को छोड़

---

१. डा० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, धूर्ताख्यान इन दि निशीथचूर्णि, आचार्य विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १९९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांश छोटी-बड़ी कथाओं के अच्छे संग्रह हैं। यहाँ हम कुछ का परिचय देते हैं।

१. धर्मपरीक्षा—यह प्राकृत गाथाओं में लिखा हुआ ग्रन्थ कवि जयराम ने विरचित किया था। इसका उल्लेख हरिषेण ने अपनी अपभ्रंश धर्मपरीक्षा में किया है और लिखा है कि उनकी यह अपभ्रंश रचना जयरामकृत धर्मपरीक्षा पर आधारित है।[1] जयराम के जीवनवृत्त और रचनाओं के सम्बंध में अधिक नहीं मालूम है।

२. धर्मपरीक्षा—यह एक संस्कृत ग्रन्थ है। इसमें इक्कीस परिच्छेद हैं। सारा ग्रन्थ एक सुन्दर कथा के रूप में श्लोकबद्ध है। इसमें श्लोकों की संख्या १९४५ है। इस ग्रन्थ का मूल उद्देश्य हरिभद्र के धूर्ताख्यान के समान ही अन्य धर्मों की पौराणिक कथाओं की असत्यता को, उनसे अधिक कृत्रिम, असंभव एवं समानान्तर उटपटांग आख्यान कह कर सिद्ध करना है और उनसे विमुख कर सच्ची धार्मिक श्रद्धा उत्पन्न करना है। यहाँ अनेक छोटे-बड़े कथानक दिये गये हैं जिनमें धूर्तता और मूर्खता की कथाओं का बाहुल्य है। कथा मनोवेग और पवनवेग दो मित्रों के संवादरूप में चलती है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता अमितगति हैं[2] जो काष्ठासंघ-माथुरसंघ के विद्वान् थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है—वीरसेन, उनके शिष्य देवसेन, देवसेन के शिष्य अमितगति (प्रथम), उनके नेमिषेण, नेमिषेण के माधवसेन और उनके शिष्य अमितगति। इनकी अन्य रचनाएँ हैं: सुभाषित-रत्नसन्दोह, पंचसंग्रह, उपासकाचार, आराधना, सामायिकपाठ, भावनाद्वात्रिंशिका, योगसारप्राभृत आदि।

अमितगति धारानरेश भोज के सभा के रत्न थे। प्रस्तुत कृति को कवि ने दो महीने में ही रच डाली थी।[3] इसका रचनाकाल विक्रम सं० १०७०

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८९; ग्यारहवीं आल इण्डिया ओरि० कान्फरेंस, १९४१ (हैदराबाद) में पठित डा० आ० ने० उपाध्ये का लेख.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १९०; हिन्दी अनुवाद, जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९०८; जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी, कलकत्ता, १९०८; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५६३ आदि में सार दिया गया है; एन० मिरोनोव, डि धर्मपरीक्षा डेस अमितगति, लाइप्जिग, १९०८.

३. अमितगतिरिवेदं स्वस्य मासद्वयेन।
प्रथित विशदकीर्तिः काव्यमुद्भूतदोषम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि अमितगति ने अपना यह ग्रन्थ जयरामकृत प्राकृत धर्मपरीक्षा या हरिषेणकृत अपभ्रंश धर्मपरीक्षा दोनों में से किसी एक के आधार से बनाया है। कथानक, पात्रों के नाम आदि धम्मपरिक्खा और धर्मपरीक्षा के बिल्कुल एक हैं। संभवतः इसीलिए उसके बनने में केवल दो ही महीने लगे हों।

३. **धर्मपरीक्षा**—यह धर्मपरीक्षा सं० १६४५ में तपागच्छीय धर्मसागर के शिष्य पद्मसागरगणि ने लिखी है।[१] इसमें कुल मिलाकर १४७४ श्लोक हैं जिनमें १२५० के लगभग तो अमितगति की धर्मपरीक्षा से हूबहू ले लिये गये हैं।[२] दोनों में मनोवेग-पवनवेग की प्रधान कथा है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय मान्य कुछ बातों में परिवर्तन किया गया है पर अनेक स्थलों में दिगम्बर मान्य बातें रह गई हैं।

४. **धर्मपरीक्षा**—इसकी रचना तपागच्छीय सोमसुन्दर के शिष्य जिनमण्डनगणि (१५वीं शताब्दी के अन्तिम दशक) ने १८०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण की है। जिनमण्डन की अन्य कृतियों में कुमारपालप्रबंध (सं० १४९२) तथा श्राद्धगुणसंग्रहविवरण (सं० १४९८) मिलते हैं।[३]

५. **धर्मपरीक्षा**—इसमें मनोवेग और पवनवेग नामक दो मित्रों का संवाद अत्यन्त रमणीय है। चूंकि पवनवेग दैववश से सद्धर्म की भावना से विमुख था और अन्य धर्मावलम्बी हो गया था, इसलिए मनोवेग ने रूप बदलकर विद्वानों की सभा में पवनवेग को नाना प्रकार के दृष्टान्तों द्वारा प्रतिबोध कराया और उसे विविध प्रकार की युक्तियों से समझाकर सद्धर्म में स्थिर किया। पवनवेग ने भी अपनी भूल सुधारकर मनोवेग के वचन को स्वीकारा। इस ग्रन्थ में सद्-असद्धर्म का अच्छा विवेचन है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९०; देवचन्द्र लालभाई पुस्तक० (सं० १५), बम्बई, १९११; हेमचन्द्र सभा, पाटन, सं० १९७८.

२. तुलना के लिए देखें—जैन हितैषी, भाग १३, पृ० ३१४ आदि में प्रकाशित पं० जुगलकिशोर मुख्त्यार का लेख—धर्मपरीक्षा की परीक्षा; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५८६, टिप्पण ५१२.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १९०; जैन आत्मानन्द सभा (सं० ९७), भावनगर, सं० १९७४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह अनुष्टुभ् छन्दों में निर्मित है और १६ परिच्छेदों में विभक्त है।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति में कर्ता की गुरुपरम्परा दी गई है। तदनुसार श्रीपालचरित्र के रचयिता लब्धिसागरसूरि (सं० १५५७) के शिष्य सौभाग्यसागर ने सं० १५७१ में इसकी रचना की और अनन्तहंस ने इसका संशोधन किया।[1]

धर्मपरीक्षा नाम की रचनाओं में १७वीं शताब्दी में श्रुतकीर्ति[2] एवं पार्श्वकीर्ति[3] कृत धर्मपरीक्षा-कथाओं का उल्लेख मिलता है। लगभग उसी शताब्दी में रामचन्द्र दिगम्बर ने पूज्यपादान्वयी पद्मनन्दि के शिष्य देवचन्द्र के अनुरोध पर संस्कृत में धर्मपरीक्षाकथा की रचना की। इसका ग्रन्थाग्र ९०० श्लोक-प्रमाण है। वरंग जैनमठ में किसी वादिसिंहरचित धर्मपरीक्षा होने का उल्लेख मिलता है।

१८वीं शताब्दी में तपागच्छीय विजयप्रभसूरि (सं० १७१०—१७४८) के शासनकाल में जयविजय के शिष्य मानविजय ने अपने शिष्य देवविजय के लिए एक धर्मपरीक्षा की रचना की है।[4]

यशोविजयकृत धर्मपरीक्षा तथा देवसेनकृत धर्मपरीक्षा भी मिलती हैं पर उनका विषय धार्मिक सिद्धान्तों का प्ररूपण करना है। कई अज्ञातकर्तृक धर्म-परीक्षायें मिलती हैं पर उनका प्रतिपाद्य विषय ज्ञात नहीं है।

मनोवेगकथा—यह अमितगति की धर्मपरीक्षा के समान ही परिहासपूर्ण कथासंग्रह है जो संस्कृत गद्य में लिखा गया है। रचयिता का नाम अज्ञात है।[5]

मनोवेग-पवनवेगकथानक—यह भी उक्त धर्मपरीक्षा के समान मनोवेग-पवनवेग की प्रधान कथा को लेकर उपहासपूर्ण कथाओं का संग्रह है।[6] कर्ता का नाम अज्ञात है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९०; मुक्तिविमल जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १३, अहमदाबाद.

२. भट्टारक सम्प्रदाय, लेखांक ५२४.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १९०.

४. वही.

५-६. वही, पृ० ३०१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन कवियों ने रूपकात्मक (Allegorical) शैली में भी धर्मकथा कहने का उपक्रम किया है।

उपमितिभवप्रपंचाकथा—इस कथा में[1] चतुर्गतिरूप संसार का विस्तार, उपमा द्वारा स्पष्ट किया गया है। इसकी संस्कृत में समास द्वारा इस प्रकार व्युत्पत्ति है : **उपमितिकृतो नरकतिर्यङ्नरामरगतिचतुष्करूपो भवः तस्य प्रपञ्चो यस्मिन् इति** अर्थात् नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप भव=संसार का विस्तार जिस कथा में उपमिति=उपमा का विषय बनाया गया हो, वह कथा उपमितिभवप्रपंचाकथा कहलाती है। सिद्धर्षिगणि ने अपने शब्दों में उसे इस प्रकार कहा है :

कथा शरीरमेतस्या नाम्नैव प्रतिपादितम्।
भवप्रपञ्चो व्याजेन यतोऽस्यामुपमीयते॥ ५५॥
यतोऽनुभूयमानोऽपि परोक्ष इव लक्ष्यते।
अयं संसारविस्तारस्ततो व्याख्यानमर्हति॥ ५६॥

यह ग्रन्थ आठ प्रस्तावों में विभक्त है जिनमें भवप्रपंच की कथा के साथ प्रसंगवश न्याय, दर्शन, आयुर्वेद, ज्योतिष, सामुद्रिक, निमित्तशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, धातुविद्या, विनोद, व्यापार, दुर्व्यसन, युद्धनीति, राजनीति, नदी, नगर आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में किया गया है।

कथावस्तु—अदृष्टमूलपर्यन्त नगर में एक कुरूप दरिद्र भिक्षु रहता था जो कि अनेक रोगों से पीड़ित था। उसका नाम 'निष्पुण्यक' था। भिक्षा में उसे जो कुछ सूखा भोजन मिलता था उससे उसकी बुभुक्षा शान्त न होती थी बल्कि बढ़ती ही गई। एक समय वह उस नगर के राजा सुस्थित के महल में भिक्षा हेतु गया। 'धर्मबोधकर' रसोइये और राजा की पुत्री 'तद्दया' ने उसे सुस्वादु और

१. जिनरत्नकोश, पृ० ५३; बिब्लियोथेका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता, १८९९-१९१४; देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड (सं० ४६), बम्बई, १९१८-२०; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५२६-५३२ में कथानक का विवरण विस्तार से प्रस्तुत है; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८२-१८६; इसका जर्मन अनुवाद डब्ल्यू० किर्फेल ने किया है, लाइप्जिग, १९२४; गुजराती अनुवाद—मोतीचन्द्र गिरधरलाल कापड़िया, तीन भागों में (पृ० २१००), श्री कापड़िया ने इस कथा पर विस्तृत समीक्षात्मक ग्रन्थ 'सिद्धर्षि' भी लिखा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वास्थ्यप्रद भोजन दिया, आखों में 'विमलालोक' अंजन लगाया और 'तत्त्व-प्रीतिकर' जल से मुखशुद्धि कराई। धीरे-धीरे वह स्वस्थ होने लगा पर बहुत समय तक अपने पुराने अस्वास्थ्यकर आहार को छोड़ न सका। तब उक्त रसोइये ने 'सद्बुद्धि' नामक धाय को उसकी सेवा के लिए रख दिया। इससे उसकी भोजन-अशुद्धि दूर हुई और इस तरह निष्पुण्यक सपुण्यक बन गया। अब वह अपनी इस औषधि का लाभ दूसरों को देने का प्रयत्न करने लगा। पर उसे पहले से जाननेवाले लोग उस पर विश्वास नहीं करते थे। तब 'सद्बुद्धि' धाय ने सलाह दी कि अपनी तीनों औषधियों को काष्ठपात्र में रखकर राजमहल के आंगण में रखें ताकि प्रत्येक व्यक्ति उनसे स्वयं लाभ उठा सके।

कवि ने प्रथम प्रस्ताव के अन्तिम पद्यों में इस रूपक का खुलासा किया है। 'अदृष्टमूलपर्यन्त' नगर तो यह संसार है और 'निष्पुण्यक' अन्य कोई नहीं स्वयं कवि है। राजा 'सुस्थित' जिनराज हैं और उनका 'महल' जैनधर्म है। 'धर्म-बोधकर' रसोइया गुरु है और उसकी पुत्री 'तद्दया' उनकी दयादृष्टि। ज्ञान ही 'अंजन' है, सच्ची श्रद्धा 'मुखशुद्धिकर जल' तथा सच्चरित्र ही 'स्वादिष्ट भोजन' है। 'सद्बुद्धि' ही पुण्य का मार्ग है और वह 'काष्ठपात्र एवं उसमें रखा भोजन, मल्हम (मंजन) और अंजन' आगे वर्णित कथानुसार हैं।

अनन्तकाल से विद्यमान मनुजगति नाम के नगर में 'कर्मपरिणाम' नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा शक्तिशाली, क्रूर तथा कठोर दण्ड देने वाला था। उसने अपने विनोद के लिए भवभ्रमण नाटक कराया, जिसमें नाना रूप धारणकर जगत् के प्राणी भाग ले रहे थे। इस नाटक से वह बड़ा खुश रहता था और उसकी रानी 'कालपरिणति' भी उसके साथ इस नाटक का रस लेती थी। उसे पुत्र की इच्छा हुई और पुत्र उत्पन्न होने पर पिता की ओर से उसका 'भव्य' तथा माता की ओर से 'सुमति' नाम रखा गया। उसी नगर में 'सदागम' नाम के आचार्य थे। राजा उनसे बहुत डरता था क्योंकि वे उसके उस नाटक का रंगभंग कर देते थे और कितने ही अभिनेताओं को उस नाटक से छुड़ाकर 'निर्वृति नगर' में जा बसाया था। वह नगर उसके राज्य के बाहर था और वहाँ सभी बड़े आनन्द से रहते थे। एक बार 'प्रज्ञाविशाला' नामक द्वार-पाली राजकुमार 'भव्य' की भेंट 'सदागम' आचार्य से कराने में सफल हुई, और भाग्य से राजकुमार को उनसे शिक्षा लेने की आज्ञा भी राजा-रानी से मिल गई। एक समय जब कि सदागम अपने उपदेशों को बाजार में दे रहा था, उस समय एक कोलाहल सुनाई दिया। उस समय 'संसारीजीव' नामक चोर पकड़ा गया और जब न्यायालय में कोलाहलपूर्वक भेजा जा रहा था तब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'प्रज्ञाविशाला' ने दयापूर्वक उसे सदागम आचार्य के आश्रय में ला दिया। वहाँ वह मुक्त होकर अपनी कथा निम्न प्रकार कहने लगा—

मैं सबसे पहले स्थावर लोक में वनस्पति रूप से पैदा हुआ और 'एकेन्द्रिय नगर' में रहने लगा और वहीं पृथ्वीकाय, जलकायादि गृहों में कभी यहाँ कभी वहाँ रहने लगा। इसके बाद छोटे कीड़े-मकोड़े तथा बड़े हाथी आदि तिर्यञ्चों (त्रसलोक) में जन्मा और भटका। बहुत काल तक दुःख भोगकर अन्त में मनुष्य पर्याय में राजपुत्र नन्दिवर्धन हुआ। यद्यपि मेरा एक अदृष्ट मित्र 'पुण्योदय' था, जिसका मैं इन सफलताओं के लिए कृतज्ञ हूँ किन्तु एक दूसरे मित्र वैश्वानर के कारण गुमराह रहने लगा। इसी कारण अच्छे-अच्छे गुरुओं और उपदेशकों की शिक्षायें मुझ पर विफल हुई। वैश्वानर का प्रभाव बढ़ता ही गया और अन्त में उसने राजा दुर्बुद्धि और रानी निष्करुणा की पुत्री 'हिंसा' से विवाह करा दिया। इस कुसंगति से मैंने खूब आखेट खेला और असंख्य जीवों का शिकार किया। चोरी, द्यूत आदि व्यसनों में भी कुख्याति प्राप्त की। यथा समय मैं अपने पिता का उत्तराधिकारी राजा बना। इस दर्प में मैंने अनेक घोर कर्म किये। यहां तक कि एक राजदूत को उसके माता-पिता, स्त्री, बन्धु एवं सहायकों सहित मरवा डाला। एक बार एक युवक से मेरी लड़ाई हो पड़ी और हम दोनों ने एक-दूसरे को वेधकर मारा डाला। फिर हम दोनों नाना पापयोनियों में उत्पन्न हुए और फिर सिंह-मृग, बाज-कबूतर, अहि-नकुल आदि रूप से एक दूसरे के भक्ष्य-भक्षक बनते रहे। अन्ततः मैं रिपुदारुण नाम का राजकुमार हुआ तथा शैलराज (दर्प) और मृषावाद मेरे मित्र बने। इनके प्रभाव के कारण मुझे पुण्योदय से मिलने का अवसर न मिला। पिता की मृत्यु के पश्चात् मैं राजा बना। मैंने पृथ्वी के सम्राट् की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। एक बार एक जादूगर ने मुझे नीचा दिखाया और मेरे ही सेवकों ने मेरा वध कर दिया। अपने दुष्कृत्यों के फलस्वरूप मैं अगले जन्मों में नरक-तिर्यञ्च योनियों में भटककर अन्त में मनुष्य गति में आकर सेठ सोमदेव का पुत्र वामदेव हुआ। 'मृषावाद, माया और स्तेय' मेरे मित्र बने। एक सेठ की चोरी करने के कारण मुझे फांसी मिली और मैंने फिर नरक और तिर्यञ्च लोकों का चक्कर काटा। मैं एक बार पुनः सेठ-पुत्र हुआ। इस बार 'पुण्योदय' और 'सागर' (लोभ) मेरे मित्र बने। सागर की सहायता से मैंने अतुल धनराशि कमाई। मैंने एक राजकुमार से दोस्ती कर उसके साथ समुद्र-यात्रा की और लोभवश उसे मारकर उसका धन हड़पने का प्रयत्न किया, पर समुद्र देवता ने उसकी रक्षा की और मुझे जल में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फेंक दिया। किसी प्रकार मैं तट पर पहुँचा और दुर्दशा में यत्र-तत्र भ्रमण करने लगा। एक समय जब मैं धन गाड़ना चाहता था तो मुझे एक वैताल ने खा लिया। पुनः नरक और तिर्यञ्च लोक के चक्कर लगाकर मैं घनवाहन नामक राजकुमार हुआ और अपने चचेरे भाई अकलंक के साथ बढ़ने लगा। अकलंक धर्मात्मा जैन बन गया और उसके द्वारा मैं सदागम आचार्य के सम्पर्क में आ गया। परन्तु महामोह और परिग्रह से भी मेरी मित्रता हो जाती है और मैं उनके पूर्णतः वशीभूत हो गया। इससे मैं निर्दय शासक बन गया किन्तु दुर्नीति के कारण हटा दिया गया और दुःखपूर्वक मरा। मैंने पुनः नरक और तिर्यग् लोक का भ्रमण किया। इसके बाद साकेत नगरी में अमृतोदर नाम से मनुष्य हुआ, और संसारी जीवन के उच्चस्तर पर चलने लगा। एक जन्म में राजा गुणधारण हुआ। यहाँ सदागम और सम्यग्दर्शन से मेरी मैत्री हुई जिससे मैं धर्मात्मा श्रावक और अच्छा शासक हुआ और मेरा क्षमा, मृदुता, ऋजुता, सत्य, शुचिता आदि कुमारियों से विवाह हुआ। फलतः मैंने न्यायनीति से राज्य किया और अन्त में मुनिव्रत धारण किये तथा मरकर देव हुआ और फिर मनुष्य। अब मैं वही संसारी जीव अनुसुन्दर सम्राट् हूँ। इस बार महामोह का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं। सदागम और सम्यग्दर्शन ही मेरे अन्तरंग मित्र हैं। इस समय मैं सबके कल्याणार्थ अपना यही अनुभव सुनाने के लिए चोर के रूप में उपस्थित हुआ हूँ और पुनर्जन्मों के चक्र को कहता हूँ।

इसके बाद वह संसारी जीव अपना वृत्तान्त सुनाकर ध्यानमग्न हो गया और शरीर छोड़ उत्तम स्वर्ग में देव हुआ।

महती कथा का यह उपर्युक्त अति संक्षिप्त सार है। मूल में समस्त वृत्तान्त विस्तार से सरल, सरस और सुन्दर संस्कृत गद्य में और कहीं-कहीं पद्य में वर्णित है। इसमें बीच में कुछ बड़े और कुछ छोटे पद्य आये हैं और प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर बड़े-बड़े छन्द भी देखने को मिलते हैं। इसमें अन्य भारतीय आख्यानों के समान ही कथानक के ढाँचे में अनेक उपकथाएँ भी समाविष्ट की गई हैं।

यह मूल कथा रूपक (Allegory) या रूपकों के रूप में है क्योंकि इसमें न केवल प्रधान कथानक, बल्कि अन्य कथानक भी रूपक के रूप में ही हैं। पर इसमें रूपक के लक्षण का ठीक-ठीक पालन नहीं किया गया है। कवि स्वयं दो प्रकार के व्यक्तियों में भेद कर देता है। एक तो नायक के बाह्य मित्र और दूसरे अन्तरंग मित्र। भीतरी मित्रों को ही व्यक्त्यात्मक एवं मूर्तात्मक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप दिया गया है और भवचक्र नाटक के वे ही यथार्थ पात्र हैं जिन्हें कवि श्रावकों के आगे खोलकर रखना चाहता है।

सिद्धर्षि का कहना है कि पाठकों को आकर्षित करने के लिए उसने रूपक चुना है तथा इसी कारण उसने प्राकृत में ग्रन्थ न रचकर संस्कृत में ग्रन्थ लिखा है। क्योंकि प्राकृत अशिक्षितों के लिए है जबकि शिक्षितों को उनकी मिथ्यामान्यताओं का खण्डन करने के लिए और अपने मत में लाने के लिए संस्कृत उचित है। उनका कहना है कि वह ऐसी संस्कृत लिखेगा जो सर्वत्र समझने में आवे। यथार्थ में भाषा बहुत मृदु और स्वच्छ है, कहीं न तो बड़े-बड़े शब्द हैं और न अस्पष्टता का दोष है। संस्कृत में ग्रन्थ रचनेवाले जैसे अन्य ग्रन्थकार करते हैं उसी तरह सिद्धर्षि ने भी प्राकृत शब्दों और प्रचलित भाव प्रकट करने वाले शब्दों को अपनाया है।

जैनों में इस काव्य की सर्वप्रियता इतने से ही जानी जाती है कि ग्रन्थ रचे जाने के १०० वर्ष बाद ही इससे उद्धरण लिए जाने लगे और इसके संक्षिप्त रूप बनाये जाने लगे।[१]

कहा नहीं जा सकता कि इसका पाश्चात्य देशों में प्रभाव पड़ा या नहीं किन्तु इसे पढ़कर अंग्रेज कवि जॉन बनयन के रूपक (Allegory) Pilgrims Progress का स्मरण हो आता है। इसका विषय भी संसारी जीव का धर्मयात्रा द्वारा उत्थान ही है और अनेक बातों में उपमितिभवप्र० से मेल है पर वह न तो आकार में और न भावों में इसकी तुलना में आ सकता है।

कथाकर्ता और रचनाकाल—इस कथा के अन्त में एक प्रशस्ति दी गई है जिससे ज्ञात होता है कि इसकी रचना आचार्य सिद्धर्षि ने वि० सं० ९६२,

---

१. जिनरत्नकोश पृ० ५४; सं० १०८८ में वर्तमान वर्धमानसूरि (जिनेश्वरसूरि के गुरु) ने १४६० ग्रन्थाग्र-प्रमाण 'उपमितिभवप्रपञ्चानामसमुच्चय'; सं० १२९८ में देवेन्द्रसूरि (चन्द्रगच्छ के चन्द्रसूरि के शिष्य) ने श्लोकों में उपमितिभवप्रपञ्चाकथासारोद्धार; देवसूरि ने २३२४ ग्रन्थाग्र-प्रमाण उपमितिभवप्रपञ्चोद्धार (गद्य) तथा हंसरत्न ने उपमितिभवप्रपञ्चाकथोद्धार की रचना की। इनमें देवेन्द्रसूरि की रचना अत्युत्तम है। इसमें सार मूलकथा के साथ-साथ चलता है। न इसमें कुछ छोड़ा गया है और न नवीन विषय लिया गया है। इसके संशोधक भी प्रद्युम्नसूरि हैं। केशरबाई ज्ञानमन्दिर, पाटन (गुजरात), वि० सं० २००६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्येष्ठ सुदी पंचमी, गुरुवार के दिन की थी।[1] प्रशस्ति के अनुसार इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है : निवृत्तिकुल में सूराचार्य हुए, उनके शिष्य ज्योतिष और निमित्तशास्त्र के ज्ञाता देल्लमहत्तर, उनके शिष्य दुर्गस्वामी हुए जो गृहस्थावस्था में धनी, कीर्तिशाली ब्राह्मण थे तथा जिनका भिल्लमाल में स्वर्गवास हुआ था। उनके शिष्य सिद्धर्षि हुए। दुर्गस्वामी और सिद्धर्षि दोनों गुरु-शिष्यों को दीक्षा गर्गर्षि ने दी थी। यद्यपि यह बात सिद्धर्षि ने नहीं लिखी[2] पर उन्होंने हरिभद्रसूरि की स्तुति अधिक की है और उन्हें अपना 'धर्मबोधकरो गुरुः' माना है। इससे कुछ विद्वानों का मत है कि हरिभद्रसूरि उनके गुरु थे। पर दोनों के काल का बड़ा अन्तर देखते हुए यह मानना सम्भव नहीं। संभवतः सिद्धर्षि ने हरिभद्र के प्रति सम्मान का इतना अधिक भाव इसलिए दिखाया है कि उनके ग्रन्थों से उन्हें बड़ी प्रेरणा मिली थी, विशेषकर उनकी ललितविस्तरा टीका से।

यह कथाग्रन्थ भिल्लमाल नगर के जैन मन्दिर में लिखा गया था और दुर्गस्वामी की 'गणा' नाम की शिष्या ने इसकी प्रथम प्रति तैयार की थी।

सिद्धर्षि का प्रभावकचरित (१४) में भी चरित दिया गया है जिसमें इन्हें माघकवि का चचेरा भाई कहा गया है पर इसमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।

रूपकात्मक धर्मकथा पर संस्कृत में दूसरा ग्रन्थ मदनपराजय है।

मदनपराजय—काम, मोह, जिन, मोक्ष आदि को मूर्तिमान पात्रों का रूप देकर एक लघुकाव्य का निर्माण किया है जिसमें जिनराज द्वारा कामदेव की पराजय का चित्रण हुआ है।

कथावस्तु—भवनगर का राजा मकरध्वज एक समय अपने प्रधान सेनापति मोह द्वारा यह जानकर कि जिनराज से मुक्तिकन्या का विवाह हो रहा है, उन्हें रोकने के लिए मुक्तिकन्या के पास रति और प्रीति नामक अपनी पत्नियों को भेजता है तथा राग और द्वेष को जिनराज के पास भेजता है। पर वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं होता है और जिनराज द्वारा उसके दूत निकाल दिये जाते हैं। उधर मकरध्वज का सेनापति मोह और इधर जिनराज का सेनापति संवेग सेनाओं की तैयारी कर चढ़ाई कर देते हैं। दोनों की सेनायें उलझ जाती हैं। स्वयं जिनराज से मकरध्वज

---

१. संवत्सरशतनवके द्विषष्टिसहितेऽतिलंघिते चास्याः।
ज्येष्ठे सितपञ्चम्यां पुनर्वसौ गुरुदिने समाप्तिरभूत्॥

२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सीधे टक्कर में परास्त होता है। मकरध्वज की पत्नियों द्वारा प्राणों की भीख मांगने पर मकरध्वज को शुक्लध्यानवीर ने अपने राज्य की सीमा से हटा दिया।

मकरध्वज आत्मघातकर देखते ही देखते अनंग होकर अदृश्य हो गया। इसके बाद जिनराज सिद्धसेन की पुत्री मुक्ति से विवाह करने के लिए कर्मधनुष को तोड़कर मोक्षपुर रवाना हो जाते हैं।

इस कथानक को लेकर मदनपराजय नाम की कई रचनायें लिखी गई हैं। उनमें से हरिदेवकविकृत अपभ्रंश रचना प्रसिद्ध है। उसी के आधार से संस्कृत में नागदेव ने मदनपराजय की रचना की है। जिनरत्नकोश में जिनदेव और ठाकुरदेवकृत अन्य मदनपराजयों का उल्लेख मिलता है।[1]

संस्कृत मदनपराजय के रचयिता कवि नागदेव ने ग्रन्थ के अन्त में एक प्रशस्ति दी है जिससे ज्ञात होता है कि वे दक्षिण भारत के थे। वे सोमकुल में उत्पन्न हुए थे। उस कुल में अनेक कवि और वैद्य हुए थे। उनके पिता श्रीमल्लुगि अपभ्रंश मयणपराजयचरिउ के कर्ता के प्रपौत्र थे। उक्त अपभ्रंश रचना में यत्र-तत्र भाषा, शैली, विषयवर्णन और प्रसंग-योजना द्वारा परिवर्तनकर नया रूप देकर संस्कृत मदनपराजय चरित की रचना की गई है।[2] इसे लेखक ने इस तरह प्रस्तुत किया है जैसे कोई नाटक हो। पर मदनपराजय न तो नाटक है और न नाटकीय शैली से लिखा गया है। इसमें कवि ने हृदयहारी रूपकों की इतनी योजना की है कि इसे हम रूपकभण्डार कहें तो अत्युक्ति न होगी। इसे कवि ने पंचतन्त्र और सम्यक्त्वकौमुदी की शैली पर लिखा है। इसी से इसमें अनेक सुभाषित और सूक्तियाँ भरी पड़ी हैं।

मदनपराजय का रचनाकाल नहीं दिया गया है पर उसकी एक हस्त० प्रति वि० सं० १५७३ की मिली है। अतः वह उसके पूर्व की रचना होना चाहिए।

यशोधरचरित्र—अहिंसा के माहात्म्य को तथा हिंसा और व्यभिचार के कुपरिणामों को बतलाने के लिए यशोधर नृप की कथा प्राचीन काल से जैन कवियों को बहुत प्रिय रही है। इस पर प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश में साधारण से लेकर

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

२. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से अपभ्रंश और संस्कृत दोनों मदनपराजय प्रकाशित हुए हैं। दोनों की भूमिकाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। डाक्टर हीरालाल जैन ने अपभ्रंश रचना की भूमिका में प्रतीक कथा-साहित्य का अच्छा परिचय दिया है। यह भूमिका कई बातों में बड़ी उपयोगी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चकोटि की अनेकों रचनायें मिलती हैं। यशोधरचरित पर ज्ञात संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों की तालिका इस प्रकार है :[1]

१. यशोधरचरित	प्रभंजनकृत (कुवलयमाला में उल्लेख)	
२. ,,	हरिभद्रसूरि की समराइच्चकहा— चतुर्थभव	(९वीं शताब्दी)
३. यशोधर-चन्द्रमति-कथानक	हरिषेण—बृहत्कथाकोश	(१०वीं शता०)
४. यशस्तिलकचम्पू	सोमदेव	(१०वीं शता०)
५. यशोधरचरित	वादिराज	(११वीं शता०)
६. ,,	मल्लिषेण	(,,)
७. ,,	माणिक्यसूरि	(सं० १३२७–१३७५)
८. ,,	वासवसेन	(सं० १३६५ से पहले)
९. ,,	पद्मनाभ कायस्थ	(सं० १४०२–१४२४)
१०. ,,	देवसूरि	(अज्ञात)
११. ,,	भट्टारक सकलकीर्ति	(पन्द्रहवीं का मध्य)
१२. ,,	भट्टारक कल्याणकीर्ति	(सं० १४८८)
१३. ,,	भट्टा० सोमकीर्ति	(सं० १५३६)
१४. ,,	भट्टा० पद्मनन्दि	(१६वीं शता०)
१५. ,,	भट्टा० श्रुतसागर	(,,)
१६. ,,	ब्रह्म० नेमिदत्त	(,,)
१७. ,,	हेमकुंजर उपाध्याय	(सं० १६०७ के पहले)
१८. ,,	ज्ञानदास (लुंकागच्छ)	(सं० १६२३)
१९. ,,	पद्मसागर (तपागच्छीय धर्मसागर के शिष्य)	(लग० सं० १६५०)
२०. ,,	भट्टा० वादिचन्द्र	(सं० १६५७)
२१. ,,	भट्टा० ज्ञानकीर्ति	(सं० १६५९)
२२. ,,	पूर्णदेव	(अज्ञात)
२३. ,, (गद्य)	क्षमाकल्याण	(सं० १८३९)
२४. ,, (प्राकृत)	मानदेवेन्द्र	

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१८-३२०, ४६६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोधरचरित्र की कथा का सार—एक समय राजपुर नरेश मारिदत्त चण्ड-मारी देवी के मन्दिर में सभी प्रकार के प्राणियों के जोड़े की बलि देने का अनुष्ठान करता है ताकि उसे लोकविजय करनेवाली तलवार प्राप्त हो सके। वहाँ नर-नारी रूप में बलि के लिए दो मुनिकुमार—अभयरुचि और अभयमती (दोनों सहोदर भाई-बहिन) पकड़ कर लाये गये। वे एक मुनिसंघ के सदस्य थे और भिक्षा के लिए नगर में आये थे। उन्हें देख राजा मारिदत्त का चित्त करुणा से द्रवित हुआ और उसने उनसे परिचय पूछा। उन दोनों ने अपना इस जन्म का सीधा परिचय न देकर अपने पूर्वभवों की कथा सुनाते हुए अन्त में बतलाया कि वे उस नरेश के भांजा-भांजी हैं। अभयरुचि ने बलि के लिए लाये गये अनेक जीवों को देखकर हिंसा की तीव्र निन्दा की और अपने पूर्वजों से सम्बद्ध, जीवित मुर्गे की नहीं अपितु आटे के मुर्गे का बलिदान करने और उसे खाने के कारण दारुण फलों को जन्मों-जन्मों में भोगने की अद्भुत कथा को इस प्रकार प्रस्तुत किया :

अभयरुचि ने कहा कि यह आठ पूर्वभवों की कथा है। प्रथम भव में वह उज्जयिनी का यशोधर नाम का राजा था। उसकी रानी एक रात्रि में कुबड़े, कुरूप महावत के गाने को सुनकर उसपर आसक्त हो गई और उससे प्रेम-सम्बंध स्थापित कर रात्रि के पिछले पहर में उससे रमण करने जाने लगी। एकबार रात्रि में राजा ने इस कृत्य को स्वयं आँखों से देखा पर कुल की निन्दा के कारण उन दोनों को नहीं मार सका और चुपचाप सो गया। सुबह बहुत भारी मन और उदासीनता से उसने अपनी माता से भेंट की और उदासीनता का कारण एक दुःस्वप्न बतलाया जिसमें उसने अपनी रानी के दुश्चरित्र का आभास-सा दिया पर वह समझ न सकी और दुःस्वप्न का वारण करने के लिए उसने देवी के लिए बकरी के बच्चे की बलि चढ़ाने को कहा। पर उसने ऐसा करने से इनकार तो किया किन्तु माता के तीव्र अनुरोध पर आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाई। फिर भी इस हिंसा और रानी के व्यभिचार के कारण उसका दिल इतना हिल गया कि उसने राज्य परित्यागकर तपस्या करना चाहा। किन्तु इसके पूर्व उससे आग्रह किया गया कि वह देवी का प्रसाद पा ले और उसे और उसकी माता को रानी ने विषमिश्रित लड्डू खिलाकर मार डाला। माता और पुत्र मरकर क्रमशः कुत्ता और मयूर हुए। दोनों संयोगवश उसी महल में इकठ्ठे हुए। मयूर ने रानी से संभोग करते हुए कुबड़े की आँख फोड़ देना चाही पर रानी ने उसे अधमरा कर दिया और कुत्ते ने उसे खा लिया। राजपुत्र ने क्रोध में आकर कुत्ते को मार दिया। इस तरह अगले जन्मों में दोनों माता-पुत्र क्रमशः सर्प-नेवला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(या सेही), मगर-मच्छ, बकरी-बकरी-पुत्र, भैंसा-बकरा तथा दो मुर्गे के रूप में हुए। एक समय मुनि का उपदेश सुनकर उन दोनों मुर्गों को जातिस्मरण हुआ और वे ऊँची बाँग देने लगे। राजा यशोधर के पुत्र (तत्कालीन नरेश) ने अपनी रानी को अपना शब्दवेधित्व दिखाने के लिए उन मुर्गों पर बाण छोड़ा जिससे उन दोनों की मृत्यु हो गई और उन्होंने उसी नरेश के पुत्र-पुत्री युगल—अभयरुचि और अभयमती के रूप में जन्म लिया।

एक समय नगर के एक जिनालय में सुदत्ताचार्य मुनि आये। राजा ने उन्हें अमंगल स्वरूप जान क्रोध करना चाहा पर एक व्यक्ति से उनका परिचय पाकर तथा उनसे उपदेश सुनकर तथा अपने पितामह, पितामही और पिता आदि का पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुनकर यशोधर विरक्त हो गया और साधु हो गया। अभयरुचि और अभयमती ने भी अपने पूर्वजन्मों के हालातों को सुनकर क्षुल्लकव्रत ग्रहण कर लिए।

यह सब वृत्तान्त सुनकर मारिदत्त उन क्षुल्लक युगल के गुरु के पास गया और संसार से विरक्त होकर दीक्षा ले ली। उसके पुत्र ने भी राज्य में हिंसा का निषेध कर दिया।

यह यशोधर-कथानक कुम्भकार-चक्र की भाँति प्रस्तुत किया गया है जो मारिदत्त एवं क्षुल्लक युगल के परस्पर वार्तालाप से प्रारंभ होता है और उन्हीं दोनों के वार्तालाप से समाप्त होता है।[१]

उपर्युक्त कई रचनाओं में मारिदत्त का आख्यान प्रारम्भ में न देकर ग्रंथान्त में दिया गया है।

उपलब्ध रचनाओं में हरिभद्रकृत 'समराइच्चकहा' में समागत यशोधर की कथा परवर्ती रचनाओं का उपजीव्य रही है। पर उसके पात्र परवर्ती कथाओं में परिवर्तित रूप में मिलते हैं तथा उनमें अनेक घटनाएँ जोड़ दी गई हैं। कथा के नायक-नायिका रूप में हरिभद्र ने यशोधर-नयनावलि नाम दिया है। वहाँ मारिदत्त का आख्यान नहीं है और न चण्डमारी देवी के सम्मुख पूर्व नियोजित नर-बलि की घटना। समराइच्चकहा में अभयमती और अभयरुचि दोनों अलग-अलग देशों के राजकुमार-राजकुमारी हैं, कारणवश वैराग्य धारण कर लेते हैं। वहाँ वे भाई-बहिन के रूप में नहीं माने गये। समराइच्चकहा में यशोधर-कथा आत्मकथा के रूप में मिलती है। वहाँ यशोधर अपनी कथा धन नामक

१. देखें, डा० राजाराम जैन का लेख, 'यशोधरकथा का विकास', जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २५, किरण २, पृ० ६२—६९, आरा, १९६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति के लिए सुनाता है न कि अभयमती, अभयरुचि और मारिदत्त के लिए।

परवर्ती रचनाओं में यशोधर-कथा का विकास अनेक आधारों से किया गया प्रतीत होता है।

यहाँ उक्त कथाविषयक चरितों का परिचय दिया जाता है—

१. **यशोधरचरित**—यशोधर के चरित्र पर सम्भवतः यह पहली स्वतंत्र रचना है।[१] इसका सर्वप्रथम उल्लेख उद्योतनसूरि (सं० ८३५) ने अपनी कुवलयमाला में[२] इस प्रकार किया है :

> **सत्तूण जो जसहरो जसहरचरिएण जणवए पयडो।**
> **कलिमलपभंजणो च्चिय पभंजणो आसि रायरिसी॥ ४०॥**

अर्थात् जो शत्रुओं के यश का हरण करनेवाला था और जो यशोधरचरित के कारण जनपद में प्रसिद्ध हुआ, वह कलि के पापों का प्रभंजन करनेवाला प्रभंजन नाम का राजर्षि था।

मुनि वासवसेन (वि० सं० १३६५ से पूर्व) ने भी अपने यशोधरचरित[३] में लिखा है :

> **प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेणसमन्वितैः।**
> **यदुक्तं तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुम्॥**

अर्थात् हरिषेण-प्रभंजनादि कवियों ने पहले जो कुछ कहा है, वह मुझ बालक से कैसे कहा जा सकता है।

भट्टारक ज्ञानकीर्ति (वि० सं० १६५९) ने अपने यशोधरचरित[४] में अपने पूर्ववर्ती जिन यशोधरचरित-कर्ताओं के नाम दिये हैं उनमें प्रभंजन का भी

---

१. डा० पी० एल० वैद्य ने प्रभञ्जन के यशोधरचरित को उक्त विषयक ग्रन्थों में सबसे प्राचीन माना है (जसहरचरिउ, कारंजा, १९३१, भूमिका, पृ० २४ प्रभृति); डा० आ० ने० उपाध्ये, कुवलयमाला, भाग २, टिप्पण ३१, पृ० १२६.

२. कुवलयमाला (सिं० जै० ग्रं० सं० ४५), पृ० ३.

३. पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२१.

४. डा० क० च० कासलीवाल, राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २११; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ११० और ४२१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम है—सोमदेव, हरिषेण (अपभ्रंश के कवि), वादिराज, प्रभंजन, धनंजय, पुष्पदंत (अपभ्रंश के कवि), वासवसेन ।

यदि उक्त भट्टारक ने इन सब ग्रन्थों को देखकर ही यह उल्लेख किया है तो समझना चाहिये कि वि० सं० १६५० तक प्रभंजन का यशोधरचरित था ।

२. **यशोधरचरित**—यह ४ सर्गों का एक लघु पर महत्त्वपूर्ण काव्य है । इसमें विविध छन्दों के कुल २९६ पद्य हैं ।[1] इस काव्य में लेखक ने किन्हीं पूर्वाचार्यों का उल्लेख नहीं किया है, केवल समन्तभद्रादि (१ · ३) मात्र कहकर रह गया है । इस काव्य को प्रभावक बनाने के लिए प्रौढ़ संस्कृत भाषा में कई रसों का वर्णन किया गया है, यथा—अभयरुचि और अभयमती को बलि के लिए ले जाते समय करुण रस, महावत के वर्णन में वीभत्स रस, चतुर्थ सर्ग में वसन्त-वर्णन आदि ।[2] कथा में सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू का अनुसरण किया गया है ।

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता वादिराज हैं जो द्रविडसंघ की शाखा नन्दिसंघ अरुंगलान्वय के आचार्य थे । इनकी अन्य कृतियों में पार्श्वनाथचरित, एकीभावस्तोत्र तथा न्यायग्रन्थ न्यायविनिश्चयविवरण, अध्यात्माष्टक, त्रैलोक्यदीपिका, प्रमाणनिर्णय प्राप्त हैं । इनका विशेष परिचय पार्श्वनाथचरित के साथ दिया गया है ।[3]

इस काव्य के रचनाकाल के संबंध में इसी काव्य से दो महत्त्व की सूचनाएं मिलती हैं । पहली तीसरे सर्ग के अन्तिम ८५वें पद्य में 'व्यातन्वञ्जयसिंहतां रणमुखे दीर्घं दधौ धारिणीम्' और दूसरी चौथे सर्ग के उपान्त्य पद्य में 'रणमुखजयसिंहो राज्यलक्ष्मीं बभार' । इन पद्यांशों में कवि ने चतुराई से अपने समकालीन नरेश दक्षिण के चौलुक्य वंशी जयसिंह का उल्लेख किया है । इससे ज्ञात होता है कि इस काव्य की रचना जयसिंह के समय (शक सं० ९३८-९६४) में हुई है । इसकी रचना वादिराज ने पार्श्वनाथचरित के बाद की थी क्योंकि इसमें उन्होंने अपने को पार्श्वनाथचरित का कर्ता बतलाया है ।[4] चूंकि

---

१. सं०—टी० ए० गोपीनाथ राव, सरस्वती विलास सिरीज सं० ५, तंजौर, १९१२; जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.

२. १. ४०; २. ३९-४०; ४ सर्ग का प्रारम्भ.

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९१–३०८.

४. श्रीपार्श्वनाथकाकुत्स्थचरितं येन कीर्तितम् ।
तेन श्रीवादिराजेन दृब्धा याशोधरी कथा ।। १.५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पार्श्वनाथचरित की रचना श० सं० ९४७ की कार्तिक सुदी ३ को की गई थी[1] इसलिये हम अनुमान कर सकते हैं कि यह उसके बाद और श० सं० ९६४ के बीच कभी रचित हुई होगी। श० सं० ९६४ जयसिंह के राज्य का अन्तिम वर्ष माना जाता है।

३. **यशोधरचरित**—माणिक्यसूरिकृत इस काव्य में १४ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर ४०५ श्लोक हैं।[2] कवि ने अपनी कथा का स्रोत संभवतः हरिभद्र-सूरि की समराइच्चकहा को माना है। इस चरित का कथानक संगठित एवं धारावाहिक है। इसमें अवान्तर कथाओं का अभाव होने से शिथिलता नहीं आ सकी है। इस चरित्र में प्रकृति-चित्रण भी विविध रूपों में हुआ है[3] पर अधिकतर घटनाओं के अनुकूल पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए ही प्रकृति का वर्णन हुआ है।

इस काव्य में रचयिता ने जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्त—केवल अहिंसा का—हिंसा के दोष और अहिंसा के गुणों का प्रारंभ से अन्त तक वर्णन किया है। उसी के प्रतिपादन तक ही अपने को सीमित रखा है और जैनधर्म के अन्य नियमों का निरूपण नहीं किया है। इस काव्य की भाषा यद्यपि प्रौढ़ और गरिमा-युक्त नहीं है फिर भी यह अत्यन्त सरल और प्रसादगुणयुक्त है। कवि को विविध स्थितियों और घटनाओं के सजीव चित्र उपस्थित करने में बड़ी सफलता मिली है। इस काव्य में मुहावरों, लोकोक्तियों और सूक्तियों का भी यथावसर प्रयोग हुआ है।[4] इस चरित्र की भाषा में बोलचाल के कई देशी शब्द संस्कृत के ढांचे में ढालकर प्रयुक्त हुए हैं जैसे—कुंचिका (कूंची), कटाही (कढ़ाई), भटित्र (भट्टी), मिंटा (मेढ़ा), वर्करः (बकरा), चारक (चारा), वटक (वाटी) आदि। कवि ने इस काव्य में अलंकारों की कृत्रिम और अस्वाभाविक योजना प्रायः कहीं नहीं की। भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में ही अनेक अलंकार स्वतः आ गये हैं।[5] इस चरित्र में विविध छन्दों का प्रयोग दर्शनीय है। ७, ९,

---

१. पार्श्वनाथचरित, प्रशस्ति, पद्य ५.

२. सम्पादक—हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.

३. १.४२-४३, ७१-७२; ३.५,६१; ५.४-७; ६.२-४; ८.४२-४३, ४५-४८ आदि.

४. २.६८, ६९; ३.४०; ४.४०; ६.७०, ७७, ११३; १२. ७५.

५. २.७; १२. २६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०, ११ और १४ सर्गों में किसी एक वृत्त का प्रयोगकर सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। शेष सर्गों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। समस्त काव्य में २५ वृत्तों का प्रयोग हुआ है। कुछ अप्रसिद्ध तथा अज्ञात छन्दों का प्रयोग भी इसमें हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी गई है अतः कवि का विशेष परिचय इस काव्य से नहीं मिलता है। परन्तु नलायनमहाकाव्य के तृतीय स्कन्ध के अन्त में कवि ने ये पंक्तियाँ लिखी हैं :

स्तत् किमप्यनवमं नवमंगलांकं श्रीमद्यशोधरचरित्रकृता कृतं यत्।
तस्यार्यकर्णनलिनस्य नलायनस्य स्कन्धो जगाम रसवीचिमयस्तृतीयः॥

इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि नलायनकाव्य और प्रस्तुत काव्य के रचयिता एक ही माणिक्यसूरि हैं। उन्होंने नलायन से पूर्व यशोधरचरित की रचना की थी। माणिक्यसूरि सं० १३२७ से १३७५ के बीच जीवित थे। वे बडगच्छ के थे और उनके गुरु का नाम पडोचन्द्र (पद्मचन्द्र) सूरि था।

४. यशोधरचरित—इसमें आठ सर्ग हैं।[1] इसकी अन्तिम पुष्पिका में '**इति यशोधरचरिते मुनिवासवसेनकृते काव्ये अष्टमः सर्गः समाप्तः**' वाक्य है। प्रारंभ में लिखा है : **प्रभंजनादिभिः पूर्वं हरिषेण समन्वितैः। यदुक्तं तत्कथं शक्यं मया बालेन भाषितुम्।** इससे ज्ञात होता है कि उनसे पूर्व प्रभंजन और हरिषेण[2] ने यशोधरचरित लिखे थे। वासवसेन ने अपने समय और कुलादि का कोई परिचय नहीं दिया है।

सं० १३६५ में हुए अपभ्रंश कवि गन्धर्व ने अपने 'जसहरचरिउ' में वासवसेन की रचना का उल्लेख किया है : '**जं वासवसेणिं पुव्व रइउ, तं पेक्खवि गंधव्वेण कहिउ**' अर्थात् वासवसेन ने पूर्व में जो ग्रन्थ रचा था, उसे देखकर ही यह गंधर्व ने कहा। इससे इतना निश्चित है कि वे गन्धर्व कवि से अर्थात् सं० १३६५ से पहले हुए हैं।

५. यशोधरचरित (अपर नाम दयासुन्दरकाव्य)—इस काव्य में ९ सर्ग हैं और कुल मिलाकर १४६१ पद्य हैं। यह अप्रकाशित रचना जैन सिद्धान्त भवन, आरा में सुरक्षित है। इसके प्रत्येक सर्ग की पद्य संख्या क्रमशः १४९, ७९,

---

१. हस्तलिखित प्रति, बम्बई के सरस्वती भवन सं० ६०४ क; जयपुर के बाबा दुलीचन्द्र के भण्डार में; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २५५.

२. हरिषेण शायद वे ही हों जिनकी धर्मपरीक्षा (अपभ्रंश) मिली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५३, २३४, १७९, १८०, १७४, १९१, १०९ है। अन्त में १३ पद्यों की एक प्रशस्ति है। इस काव्य का दूसरा नाम दयासुन्दरकाव्य भी दिया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता का नाम पद्मनाभ है जो कायस्थ जाति का था। उसके गुरु जैन भट्टारक गुणकीर्ति (वि० सं० १४६८-७३) थे। उन्हीं के उपदेश से उसने उक्त काव्य लिखा। तत्कालीन कई भक्तों ने उक्त काव्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। अन्त्य प्रशस्ति खण्ड के १० पद्यों में कवि ने अपने आश्रयदाता मंत्री कुशराज का विस्तृत परिचय दिया है। यह कुशराज ग्वालियर के तोमरवंशीय नरेश विक्रमदेव (वीरमदेव सं० १४५९-१४८३) के मंत्रिमण्डल का प्रमुख सदस्य था। इसने गोपाचल पर एक विशाल चन्द्रप्रभ जिनालय बनवाया था।

अन्य यशोधरचरितों में भट्टा० सकलकीर्ति के काव्य में ८ सर्ग हैं और परिमाण १००० श्लोक-प्रमाण है। कल्याणकीर्ति की रचना १८५० ग्रन्थाग्र-प्रमाण बतलाई गई है।[१] सोमकीर्ति (सं० १५३६) के काव्य में ८ सर्ग हैं। इसकी रचना उन्होंने गोढिली (मारवाड़) में सं० १५३६ में की थी।[२] उन्होंने प्राचीन हिन्दी में भी एक यशोधरचरित रचा है। सोमकीर्ति का परिचय प्रद्युम्नचरित के प्रसंग में दिया गया है। इनकी अन्य कृति सप्तव्यसनकथा भी मिलती है। श्रुतसागरकृत यशोधरचरित में ४ सर्ग हैं। श्रुतसागर विद्यानन्दि के शिष्य थे जो मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण के भट्टारक थे।[३] श्रुतसागर बहुत बड़े विद्वान् थे। इन्होंने यशस्तिलकचम्पू पर यशस्तिलकचन्द्रिका टीका लिखी है जो अधूरी है। इनके अन्य ग्रन्थों में तत्त्वार्थवृत्ति एवं श्रीपालचरित उल्लेखनीय हैं। इन्होंने अपने किसी ग्रन्थ में रचना का समय नहीं दिया है, फिर भी अन्य प्रमाणों से यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रम की १६वीं शताब्दी में हुए हैं। धर्मचन्द्रगणि के शिष्य हेमकुंजर उपाध्याय ने भी एक यशोधरचरित रचा है जिसकी हस्तलिखित प्रति सं० १६०७ की मिलती है।[४] लुंकागच्छीय नानजी के शिष्य ज्ञानदास ने भी सं० १६२३ में एक यशोधरचरित रचा था।[५] पार्श्वपुराण के रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र ने भी सं० १६५७ में एक यशोधर-

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.
२. राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ३९-४३.
३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३७१-३७७.
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.
५. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित को अंकलेश्वर (भड़ौच) के चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर में बैठकर रचा था। उक्त काव्य की प्रशस्ति में रचना-संवत् दिया हुआ है और कहा गया है कि यह काव्य दया के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए निर्मित हुआ है।[1] सं० १६५९ में वादिभूषण के शिष्य ज्ञानकीर्ति ने आमेर के महाराजा मानसिंह (प्रथम) के मंत्री नानूगोधा की प्रार्थना पर एक यशोधरचरित बनाया जिसमें ९ सर्ग हैं। इसकी एक प्रति आमेर शास्त्रभंडार में है।[2] सं० १८३९ में खरतर-गच्छीय अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याण ने संस्कृत गद्य में यशोधरचरित जैसलमेर में रहकर लिखा था।[3]

श्रीपालचरित्र—श्रीपाल का चरित्र सिद्धचक्र पूजा (अष्टाह्निका, नन्दीश्वर-द्वीप पूजा) अर्थात् नवपद मण्डल के माहात्म्य को प्रकट करनेवाला एक रूढ़ चरित है जिसे थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराएँ मानती हैं। जिस प्रकार दूसरे व्रतों या अनुष्ठानों के लिए एक से अधिक चरित्र मिलते हैं उसी प्रकार इसके लिए भी संस्कृत-प्राकृत में मिलाकर २६ से अधिक रचनाएँ मिलती हैं।

यद्यपि उक्त पूजा का उल्लेख पुराना है ओर उसके माहात्म्य के लिए अयोध्या के हरिषेण राजा की कथा जोड़ी गई है, पीछे पोदनपुर के एक विद्याधर नरेश की। पहले नंदीश्वर पूजा मूल रूप में विद्याधर लोक की वस्तु थी पर विद्याधर से अतिरिक्त मानव से भी सम्बन्ध जोड़ने के लिए लोककथासाहित्य से श्रीपाल के चरित्र को धर्मकथा के रूप में गढ़कर तैयार किया गया। श्रीपाल कोई पौराणिक पुरुष नहीं है। इसकी जो कथा मिलती है उसके विश्लेषण से इसकी मुख्य वस्तु ज्ञात होती है : पूर्वजन्म के संचित कर्मों का फल प्रकट करना है पर उनसे त्राण पाने में अलौकिक शक्तियों से भी सहायता मिल सकती है और वह अलौकिक शक्ति है सिद्धचक्र पूजा।

कथावस्तु—उज्जैन के राजा प्रजापाल की दो पत्नियाँ हैं, एक शैव और दूसरी जैन। एक की पुत्री सुरसुन्दरी और दूसरी की मयनासुन्दरी। शिक्षा-

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८८, कथामेनां दयासिद्ध्यै वादिचन्द्रो व्यरीरचत्।

२. राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० २११; जिनरत्नकोश, पृ० ३१९.

३. केटेलाग आफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेनु०, भाग ४ (लालभाई दलपतभाई ग्र० सं० २०), परिशिष्ट, पृ० ८५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीक्षा के बाद सभा में राजा उनसे पूछता है कि उनके सुख का श्रेय किसे है ? सुरसुन्दरी ने पिता को और मयना ने अपने कर्म को बतलाया। राजा पहली से प्रसन्न हो उसका विवाह शंखपुर नरेश अरिमर्दन से कर देता है और दूसरी से क्रुद्ध हो कोढ़ी राजपुत्र श्रीपाल से।

श्रीपाल चम्पापुर का राजपुत्र था। बाल्यकाल में ही उसके पिता के मर जाने के कारण मन्त्री ने और उससे छीनकर चाचा अजितसेन ने राज्य सम्हाला और माँ-बेटे को मारने का षड्यंत्र किया जिससे दोनों भागकर ७०० कोढ़ियों के गाँव में शरण लेते हैं। वहाँ श्रीपाल भी कोढ़ी हो जाता है। माता उपचार के लिए उसे उज्जयिनी ले गई। कोढ़ियों ने श्रीपाल को अपना मुखिया चुन लिया था और उसके विवाह के लिए वे लोग राजा से मयनासुन्दरी की माँग करते हैं। राजा उससे विवाह कर देता है। मयनासुन्दरी इसे अपना कर्मफल मानती है और उसके निवारणार्थ सिद्धचक्र की पूजा करती है और सब कोढ़ी ठीक हो जाते हैं।

कुछ समय वहाँ रहकर श्रीपाल पत्नी से अनुमति लेकर यश और सम्पत्ति अर्जन के लिए विदेश जाता है। वहाँ अनेकों राजकुमारियों से विवाह करता है, व्यापार में सहयोगी धवल सेठ द्वारा धोखे से समुद्र में गिराये जाने पर भी बच जाता है तथा सेठ के अनेक कपट-प्रपंचों से बचता हुआ सम्पत्ति-विपत्ति के बीच डावांडोल हालत से पार होता हुआ अपनी पत्नियों सहित उज्जैन लौट आता है। फिर अपनी माँ और पत्नी (मयना) से मिलकर अंगदेश पर आक्रमण करता है। चाचा अजितसेन को हराता है जो मुनि हो जाता है। श्रीपाल राजसुख भोगता है। एक दिन उन्हीं मुनि से अपने पूर्वजन्म की कथा सुनकर मालूम करता है कि वह कुछ काल कर्मफल भोग ९वें जन्म में मोक्ष प्राप्त करेगा।

दिगम्बर परम्परा के कथानक के अनुसार राजा पहुपाल की एक रानी की दो पुत्रियाँ सुरसुन्दरी और मयणा थीं। दोनों की शिक्षा अलग-अलग होती है। सुरसुन्दरी का विवाह कौशाम्बी के राजा शृंगारसिंह से होता है और मयणा का कोढ़ी श्रीपाल से (श्रीपाल को राजा बनने के बाद कोढ़ हुआ था) जो कि कोढ़ के कारण १२ वर्ष से प्रवास में था। मयणा सिद्धचक्रविधि से उसके कोढ़ का निवारण करती है। इसके बाद दो विद्याएँ प्राप्तकर श्रीपाल विदेशयात्रा करता है। वहाँ समुद्र में पतन आदि कपटप्रबन्धों से पार होकर क्रमशः ४००० राजकन्याओं से विवाह करता है। पीछे लौटकर अपने चाचा वीरदमन से राज्य छीन सुखभोग करता है। पश्चात् एक मुनि से पूर्वभव की बातें सुन मुनि होकर तपस्याकर मोक्ष जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त दोनों रूपान्तरों में जो समान तथ्य प्रतिफलित होते हैं वे हैं : श्रीपाल का चम्पापुर का राजपुत्र होना, उसे पूर्व कर्मों के फलस्वरूप कोढ़ होना और मयना का भी कर्मफलस्वरूप तथा पिता द्वारा बदले की भावना के कारण विवाह होना, श्रीपाल का घरजवांई न बनकर अपना साहस और पुरुषार्थ दिखाना, समुद्रयात्रा के अनुभव प्रकट करना और यह बताना कि इन कष्टों से मुक्ति का उपाय है सिद्धचक्र पूजा।

सिरिवालकहा—श्रीपाल के आख्यान पर सर्व प्रथम एक प्राकृत कृति 'सिरिवालकहा'[1] मिलती है जिसमें १३४२ गाथाएँ हैं। उनमें कुछ पद्य अपभ्रंश के भी हैं। प्रथम गाथा में कथा का हेतु दिया गया है :

अरिहाइ नवपयाइं झाइत्ता हियकमलमज्झंमि।
सिरिसिद्धचक्कमाहप्पमुत्तमं किं पि जंपेमि॥

तेईसवीं गाथा में नवपदों की गणना इस प्रकार दी है :

अरिहं सिद्धायरिया उज्झाया साहुणो अ सम्मत्तं।
नाणं चरणं च तवो इय पयनवगं मुणेयव्वं॥

इसके बाद उक्त पदों का ९ गाथाओं में अर्थ तथा माहात्म्य की चर्चा है। २८८वीं गाथा से श्रीपाल की कथा दी गई है। यह कथाग्रन्थ कल्पना, भाव एवं भाषा में उदात्त है। इसमें कई अलंकारों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। कथानक की रचना आर्या और पादाकुलक (चौपाई) छन्दों में की गई है, पर कहीं-कहीं पज्झडिआ छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में कहा गया है कि इसका संकलन वज्रसेन गणधर के पट्टशिष्य व प्रभु हेमतिलकसूरि के शिष्य रत्नशेखरसूरि ने किया। उनके शिष्य हेमचन्द्र साधु ने वि० सं० १४२८ में इसको लिपिबद्ध किया।[2] पट्टावलि से ज्ञात होता है कि रत्नशेखरसूरि तपागच्छ की नागपुरीय

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३९६; देवचन्द्र लालभाई पुस्तक० (६३), बम्बई, १९२३. श्री वाडीलाल जे० चोकसी के अनुसार इस कथा का आविष्कार सर्वप्रथम रत्नशेखरसूरि ने ही किया है। इस कथन का समर्थन उक्त ग्रन्थकार के सिद्धचक्रयन्त्रोद्धार के वर्णन से होता है।

२. सिरिवज्जसेण गणहर पट्टप्पहु हेमतिलयसूरीणं।
सीसेहिं रयणसेहरसूरीहिं इमा हु संकलिया॥ १३४०॥
तस्सीस हेमचंदेण साहुणा विक्कमस्स नरसंमि।
चउदस अट्ठावीसे लिहिया गुरुभत्तिकलिएणं॥ १३४१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाखा के हेमतिलक के शिष्य थे। वे सुल्तान फिरोजशाह तुगलक के समकालीन थे। रत्नशेखरसूरि का जन्म वि० सं० १३७२ में हुआ था और १३८४ में दीक्षा तथा १४०० में आचार्य पद। इनका विरुद 'मिथ्यान्धकारनभोमणि' था। वि० सं० १४०७ में इन्होंने फिरोजशाह तुगलक को धर्मोपदेश दिया था। इसकी अन्य रचनाएँ: गुणस्थानक्रमारोह, लघुक्षेत्रसमास, संबोहसत्तरी, गुरुगुण-षट्त्रिंशिका, छन्दःकोश आदि मिलती हैं।

सिरिवालकहा पर खरतरगच्छीय अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याण ने सं० १८६९ में टीका लिखी है।[1]

श्रीपालकथा—यह संस्कृत गद्य में लिखी गई अति संक्षिप्त कथा है।[2] इसके रचयिता उक्त रत्नशेखरसूरि के शिष्य हेमचन्द्रसूरि ही हैं। इसमें अपने गुरु की रचना की गाथाओं और भावों का संग्रह मात्र है।

श्रीपालचरित—इसमें ५०० संस्कृत पद्यों में कथा वर्णित है।[3] इसके रचयिता पूर्णिमागच्छ के गुणसमुद्रसूरि के शिष्य सत्यराजगणि हैं जिन्होंने सं० १५१४ या ५४ ने इसकी रचना की।

श्रीपालकथा या चरित—इसमें ५०७ संस्कृत श्लोक हैं। इसके रचयिता वृद्ध तपागच्छ के उदयसागरगणि के शिष्य लब्धिसागरगणि हैं। इसकी रचना सं० १५५७ में हुई थी।

अन्य श्रीपालचरितों में वृद्ध तपागच्छ के ही एक अन्य विद्वान् विजयरत्नसूरि के शिष्य धर्मधीर ने संस्कृत में श्रीपालचरित की रचना की, जिसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ सं० १५७३, १५७५ और १५९३ की मिलती हैं।[4]

एक श्रीपालचरित्र को संस्कृत गद्य में तपागच्छीय नयविमल के शिष्य ज्ञानविमलसूरि ने सं० १७४५ में लिखा है। यह चरित्र विजयप्रभसूरि के पट्टधर विजयरत्नसूरि के शासनकाल में समाप्त हुआ था।[5]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३६९.
२. नेमिविज्ञान ग्रन्थमाला (२२), केशवलाल प्रेमचन्द्र कंसारा, खंभात, वि० सं० २००८.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ३९७; विजयदानसूरीश्वर ग्रन्थमाला (सं० ४), सूरत, वि० सं० १९९५.
४. जिनरत्नकोश, पृ० ३९७.
५. वही; देवचन्द लालभाई पुस्तक० (सं० ५६), बम्बई, १९१७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त प्राकृत रचना के आधार से खरतरगच्छ के जयकीर्तिसूरि ने भी सं० १८६८ में ग्रन्थाग्र ११०० प्रमाण श्रीपालचरित्र[1] संस्कृत गद्य में रचा है। इस पर एक अज्ञातकर्तृक टीका भी है।

अन्य श्रीपालचरितों के रचयिताओं[2] के नाम हैं: जीवराजगणि, सोमचन्द्रगणि (संस्कृत गद्य), विजयसिंहसूरि, वीरभद्रसूरि (ग्रन्थाग्र १३३४), प्रद्युम्नसूरि (प्राकृत रचना), सौभाग्यसूरि, हर्षसूरि, क्षेमल्क, इन्द्रदेवरस, विनयविजय (प्राकृत) तथा लब्धिमुनि।

इनमें विनयविजय की प्राकृत रचना ४ खण्डों में विभक्त है। इसकी प्राचीन प्रति सं० १६८३ की मिलती है। लब्धिमुनि की १० सर्गों में १०४० श्लोक-प्रमाण रचना है जो सं० १९९० में रची गई है।[3] लब्धिमुनि खरतरगच्छ के राजमुनि के शिष्य हैं और इन्होंने खरतरगच्छ के आचार्यों के कई जीवन-चरित लिखे हैं।

उपर्युक्त रचनाओं में श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित श्रीपाल का चरित दिया गया है।

दिगम्बर सम्प्रदाय सम्मत चरित्र पर सर्वप्राचीन ग्रन्थ श्रीपालचरित भट्टारक सकलकीर्तिकृत मिलता है जो सात परिच्छेदों में विभक्त है। इसमें कोटिभट श्रीपाल को राज्यावस्था में कुष्ठ होना, उसका निवारण, समुद्र-यात्रा, शूली पर चढ़ना आदि घटनाएँ नाटकीय ढंग से वर्णित हैं। इसके रचयिता का परिचय पहले दे चुके हैं पर ग्रन्थ की रचना का ठीक काल मालूम नहीं हो सका है।

अन्य लेखकों में विद्यानन्दि, मल्लिभूषण, श्रुतसागर, ब्रह्म नेमिदत्त (नौ सर्गों में, सं० १५८५), शुभचन्द्र, पं० जगन्नाथ तथा सोमकीर्ति कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[4]

दो अज्ञातकर्तृक श्रीपालचरितों का भी उल्लेख मिलता है उनमें से एक की प्राचीन प्रति सं० १५७२ की है।[5]

---

१. वही, हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८.

२. वही, पृ० ३९७–९८.

३. वही, पृ० ३९८; जिनदत्तसूरि भण्डार, पायधुनी, बम्बई, सं० १९९१.

४. वही, पृ० ३९७-३९८; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३७४; राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० १३; इनमें से एक का हिन्दी अनुवाद जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

५. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीपालचरित पर एक नाटक[1] भी धर्मसुन्दर अपर नाम सिद्धसूरि ने सं० १५३१ में रचा है।

अपभ्रंश भाषा में कवि रइधू और पं० नरसेन के सिरिपालचरिउ में दिगम्बर सम्प्रदाय सम्मत कथानक दिया गया है।

गुजराती और हिन्दी भाषा के कवियों के लिए यह चरित बड़ा ही रोचक रहा है।

भविष्यदत्तकथा—श्रीपालकथा के समान भविष्यदत्त की लौकिक कथा को श्रुतपंचमी के माहात्म्य के लिए धर्मकथा में परिणत किया गया है।

कथावस्तु—भविष्यदत्त एक वणिक् पुत्र है। वह अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के साथ व्यापार हेतु परदेश जाता है, वहाँ धन कमाता है और विवाह भी कर लेता है परन्तु उसका सौतेला भाई उसे बार-बार धोखा देकर दुःख पहुँचाता है, यहाँ तक कि उसे एक द्वीप में अकेला छोड़कर उसकी पत्नी के साथ घर लौट आता है और उससे विवाह करना चाहता है। किन्तु इसी बीच भविष्यदत्त भी यक्ष की सहायता से घर लौट आता है, अपना अधिकार प्राप्त करता है और राजा को खुशकर राजकन्या से भी विवाह करता है। अन्त में एक मुनि से पूर्व-भव के वृत्तान्त सुन विरक्त होकर पुत्र को राज दे मुनि हो जाता है।

इस कथा पर अनेक रचनाएँ लिखी गई हैं जिनका परिचय ज्ञानपंचमी कथा पर लिखी रचनाओं के प्रसंग में दिया गया है।

मणिपतिचरित (मुनिपतिचरित)—इस चरित्रात्मक कथाग्रन्थ में[2] मणिपति (नृप) मुनि के चरित्र के साथ उनके तथा कुंचिक सेठ के बीच संवाद के द्वारा १६ कथाएँ दी गई हैं जिनका संकलन एक पद्य में इस प्रकार है :

हस्ती हारः सिंहो मेतार्यः सुकुमारिका,
भद्राक्षा गृहकोकिलः सचिवावटुकोऽपिच।
नागदत्तो वर्द्धकिश्च चारभट्यथ गोपकः,
सिंही शीतार्दितहरिः काष्ठर्षिः षोडशो मतः ॥

---

१. वही, पृ० ३९८.

२. वही, पृ० ३००, ३१०; इस काव्य का वास्तविक नाम मणिपतिचरित है। प्राकृत में मणिवई को पीछे लेखकों ने मुणिवई करके मुनिपति (संस्कृत) नाम दे दिया है। इस बात का स्पष्टीकरण हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, अहमदाबाद से प्रकाशित इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चरित्र का सार निम्न रीति से है: मणिपतिका नगरी का मणिपति नामक राजा था। उसने एक दिन अपने सिर का पका केश देख अपने पुत्र मुनिचन्द्र को राज्य दे दमघोषमुनि से दीक्षा ले ली और अकेला विहार करने लगा। एक बार वह उज्जयिनी के बाहर श्मशान में कायोत्सर्ग कररहा था। वहाँ भयानक ठंड के कारण गोपाल बालकों ने भक्ति से मुनि को वस्त्र ओढ़ा दिया पर चिता की लपट के कारण वस्त्र में आग लग जाने से मणिपतिमुनि झुलस गये। इसकी खबर उस नगर के सेठ कुंचिक को लगी और उसने मुनि को घर में लाकर चिकित्सा कराई तथा वर्षाकाल समीप आने पर उन्हें चातुर्मास बिताने का आग्रह किया, तथा अपने पुत्र के भय से संस्तारक के नीचे अपने धन को गाड़ दिया। पर पुत्र ने उस धन का अपहरण कर लिया। सेठ ने मुनि पर धनचोरी का आरोप किया और हाथी की कथा कही। तब मुनि ने अपनी निर्दोषता को बतलाने के लिए एक हारकथा (यह एक लम्बा कथानक है) कही। इसी तरह उन दोनों के बीच चर्चा में ८—८=१६ कथाएँ कहीं गईं। पर सेठ के मन का पाप दूर नहीं हुआ तो मुनि ने क्रोध में आकर श्राप दिया कि 'जिसने तेरा धन लिया हो उसका नाश हो जाय'। तप के प्रभाव से मुनि के शरीर से तेजोलेश्या निकलने लगी। तब कुंचिक सेठ के पुत्र ने भयभीत होकर धन की चोरी स्वीकार कर मुनि से क्षमा मांगी। मुनि ने क्षमा दी। कुंचिक सेठ भी विरक्त हो मुनि बन गया और दोनों ने निर्दोष तपस्याकर स्वर्ग-प्राप्ति की। इस कथा पर संस्कृत में तीन और प्राकृत में एक रचना मिलती है।

प्रथम गद्य-पद्यमय संस्कृत रचना[1] है जिसे चन्द्रगच्छ के जम्बूकवि ने सं० १००५ में रचा था। इनकी अन्य रचना जिनशतककाव्य पर सं० १०२५ में साम्बमुनि ने टीका लिखी थी। उसी की प्रशस्ति से इस कवि के गच्छ का पता लगा है। कर्त्ता के जीवन के विषय में और कोई सूचना कहीं से नहीं मिलती है। बृहट्टिप्पनिका में मणिपतिचरित को मुनिपतिचरित कहकर '१००५ वर्षे जम्बूनागकृतं ३२०० उद्धृ० २७००' लिखा है। इससे लगता है कि जम्बूनाग और जम्बूकवि एक ही थे। हो सकता है कि जम्बू का ही दूसरा नाम जम्बूनाग रहा हो। यह चरित्रग्रन्थ एतद्विषयक अन्य रचनाओं से प्राचीन, सुन्दर एवं आकर्षक है। इसकी भाषा सरल, स्पष्टार्थयुक्त एवं अलंकारविभूषित है। शुरू में सज्जनस्तुति, दुर्जननिन्दा, ग्रीष्मादि ऋतु, सायंकाल तथा नगरी आदि का आकर्षक वर्णन है। कवि अलंकारप्रिय है पर उसकी भाषा प्रसादगुणवाली है। इस

1. हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, सं० १९७८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरित्र का कथानक तो बहुत संक्षिप्त है पर वर्णन और प्रासंगिक कथाओं से यह बड़ा हो गया है।

द्वितीय प्राकृत गाथाओं में संक्षिप्त रचना है। इसमें ६४६ गाथाएँ हैं जिनका प्रमाण ८०५ श्लोक है।[1] इसकी रचना सं० ११७२ में बृहद्गच्छीय मानदेव के प्रशिष्य एवं उपाध्याय जिनपति के शिष्य हरिभद्रसूरि ने की है।[2] हरिभद्रसूरि की अन्य कृतियाँ: श्रेयांसचरित्र, प्रशमरतिवृत्ति, क्षेत्रसमासवृत्ति एव बंधस्वामित्व-षडशीतिकर्मग्रन्थवृत्ति मिलती हैं।

तृतीय रचना संस्कृत गद्य में है। यह हरिभद्रसूरि के प्राकृत चरित्र पर से ही संस्कृत गद्य में रचा गया है। वास्तव में यह उसका अनुवाद मात्र है और उससे लघु है। जिनरत्नकोश के अनुसार इसके रचयिता धर्मविजयगणि है।[3]

चतुर्थ रचना नयनन्दिसूरिकृत ग्रन्थाग्र ६२५ प्रमाण का उल्लेख मिलता है।[4]

पंचम रचना संस्कृत गद्य में है और इसमें प्रासंगिक कथाएँ इतनी अधिक हैं कि इसका प्रमाण दोनों चरित्रों से बड़ा हो गया है। इस ग्रन्थ की भाषा अस्त-व्यस्त है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है।[5]

एक मुनिपतिचरित्रसारोद्धार[6] नामक संस्कृत कृति का भी उल्लेख मिलता है।

गजसुकुमालकथा—गजसुकुमाल को गजकुमार भी कहा जाता है। इनकी कथा अन्तकृतदशांग में आई है। ये देवकी के अन्तिम पुत्र थे। इनका उदाहरण तप की चरम आराधना, मनुष्यकृत उपसर्ग को अचल भाव से सहने और क्षमा की उच्चकोटि की परिणति के लिए अनेक कथाग्रन्थों में आता है।

इस पर संस्कृत में एक अज्ञातकर्तृक रचना[7] का उल्लेख मिलता है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००, ३१०.

२. नयणमुणिरुद्दसंखे विक्कमसंवच्छरंमिवच्चन्ते (११७२)।
भद्दवय पंचमिए समत्थिअं चरित्तमिणमोत्ति ॥

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३११.

४. वही.

५. मणिपतिराजर्षिचरित की प्रस्तावना, हेमचन्द्र ग्रन्थमाला, सं० १९७८; हीरालाल हंसराज, जामनगर द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित.

६. जिनरत्नकोश, पृ० ३११.

७. वही, पृ० १०२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुकोशलचरित—तप की आराधना के महत्त्व को प्रकट करने और तिर्यञ्च (व्याघ्री) कृत उपसर्ग को क्षमा भाव से सहन करने के लिए सुकौशलमुनि का चरित्र अनेक कथाकोशों में आया है। हरिषेण के कथाकोश में यह चरित्र २८४ श्लोकों में वर्णित है।

प्राकृत (अपभ्रंश ?) में सोमकीर्ति[१] भट्टारक कृत तथा तीन अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[२] (जिनमें ९७ गा०, १०१ गा० और १०७ गा० हैं) उपलब्ध होती हैं। संस्कृत में ब्रह्म नेमिदत्त[३] और भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति[४] कृत रचनाएँ मिलती हैं। अपभ्रंश में १३०२ में रचित अज्ञातकर्तृक रचना[५] तथा कवि रइधूकृत सुकोसलचरिउ[६] का उल्लेख मिलता है।

अवन्ति-सुकुमाल अथवा सुकुमालचरित—तप की चरम आराधना और तिर्यञ्च (शृगाली) के उपसर्ग को अडिग भाव से सहन करने के दृष्टान्तरूप अवन्ति-सुकुमाल की कथा आराधना कथाकोशों तथा अन्य कथाकोशों में वर्णित है। हरिषेण के कथाकोश में यह कथा २६० श्लोकों में दी गई है। दानप्रदीप में इसे उपाश्रयदान के महत्त्व में कहा गया है। अवन्तिसुकुमाल आचार्य सुहस्ति के शिष्य माने गये हैं और कहा जाता है कि इन्हीं के समाधिस्थल पर उज्जैन का महाकालेश्वर मन्दिर बना है।

इस पर स्वतंत्र रचनाओं में भट्टारक सकलकीर्ति[७] (१५वीं शती) कृत ९ सर्गात्मक १०५० श्लोकों में एक काव्य उपलब्ध है। दूसरी रचना भट्टारक प्रभाचन्द्र के शिष्य वादिचन्द्र[८] (सं० १६४०–१६६०) कृत तथा अन्य अज्ञात[९] कर्तृक संस्कृत रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

पाटन (गुजरात) के तपागच्छ भण्डार के एक कथासंग्रह में अवन्ति-सुकुमालकथा[१०] प्राकृत ११९ गाथाओं में उपलब्ध है।

जिनदत्तचरित—साधुपरिचर्या या मुनि-आहारदान के प्रभाव से व्यक्ति जीवन-प्रसंग में खतरों से बचता हुआ, अपनी कितनी शुद्धि कर सकता है इस

१-६. वही, पृ० ४४३-४४४; हिन्दी में सुकोशलचरित्र प्रकाशित है। गुजराती में अनेक रास आदि उपलब्ध हैं।

७-९. वही, पृ० ४४३; सुकुमालचरित्र पर हिन्दी में गद्य-पद्य रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

१०. वही, पृ० १७; पाटन भण्डार सूची, भाग १, पृ० ४०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथ्य को बतलाने के लिए जिनदत्त के चरित्र को लेकर कई कथाग्रन्थ संस्कृत-प्राकृत में लिखे गये हैं।[1]

जिनदत्त ने अपने पूर्वभव में मात्र पूर्णिमा के दिन एक मुनिराज को परिचर्यापूर्वक आहारदान दिया। उसके प्रभाव से वह अपने इस भव में द्यूत-व्यसन से धन-सम्पत्ति खोकर भी नाना प्रकार के चमत्कारी एवं साहसिक कार्य कर सका। उसने वेष परिवर्तन किया, समुद्र-यात्रा की, हाथी को वश में किया, राजकन्याओं से विवाह किया और नाना सुख भोगकर अन्त में तपस्याकर स्वर्ग प्राप्त किया।

इस कथानक को लेकर सबसे प्राचीन प्राकृत गद्य में अज्ञातकर्तृक कृति[2] मिलती है जिसकी हस्तलिखित प्रति मणिभद्रयति ने वरनाग के लिए सं० ११८६ में तैयार की थी। इसमें जिनदत्त का पूर्वभव प्रारम्भ में न देकर अन्त में दिया गया है।

द्वितीय रचना प्राकृत गद्य-पद्य में ७५० ग्रन्थाग्र-प्रमाण है।[3] इसकी रचना पाडिच्छयगच्छ के नेमिचन्द्र के प्रशिष्य एवं सर्वदेवसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने की है। ग्रन्थ का रचनाकाल निश्चित नहीं है, तथापि एक प्राचीन प्रति में उसके अणहिलपाटन में सं० १२४६ में लिखाये जाने का उल्लेख है अतः ग्रन्थ की रचना इससे पूर्व होना निश्चित है।[4] इसमें वणिक् पुत्रों और सांयात्रिकों की यात्रा का रोचक वर्णन है।

इस कथानक सम्बन्धी तृतीय रचना संस्कृत में है।[5] इसमें ९ सर्ग हैं तथा ९३८ पद्य हैं। इसे जिनदत्तकथासमुच्चय भी कहते हैं। सर्गान्त के एक-एक दो-दो वृत्त छन्दों को छोड़कर शेष सारा ग्रन्थ अनुष्टुप् में है। इसकी रचना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३५.

२. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २७, बम्बई, सं० २००९.

३. वही, दोनों रचनाएँ एक ही ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।

४. विशेष परिचय के लिए, डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४७६; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५०५-५०८.

५. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, सं० १९७३; इसका हिन्दी अनुवाद पं० श्रीलाल काव्यतीर्थ, कलकत्ता से प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणभद्राचार्य ने की है। गुणभद्र नाम के ५ आचार्यों का पता लगता है। उनमें से एक उत्तरपुराण के रचयिता गुणभद्र हैं पर उनकी रचना से इसका कोई मेल नहीं है। द्वितीय गुणभद्र चन्देल नरेश परमर्दि के शासन (सन् ११७०-१२००) काल में हुए हैं। ये अच्छे कवि भी थे। इनके द्वारा रचित संस्कृत धन्यकुमार-चरित्र काव्य मिलता है। ये ही विजौलिया पार्श्वनाथ स्तंभलेख के लेखक तथा प्रतिष्ठापाठ[1] के लेखक माने जाते हैं। बहुत सम्भव है इन्हीं गुणभद्र ने जिनदत्त-चरित्र की रचना की हो।

चतुर्थ रचना संस्कृत गद्य (ग्रन्थाग्र १६३७) में है। इसे सं० १४७४ में पूर्णिमागच्छ के गुणसागरसूरि के शिष्य गुणसमुद्रसूरि ने बनाया था।

अन्य एक-दो जिनदत्तकथाओं का उल्लेख मिलता है। अपभ्रंश में रइधू कवि ने जिनदत्तचरिउ लिखा है।

नरवर्मकथा—सम्यक्त्व के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए नरवर्म नरेश को लेकर दो-तीन रचनाएँ मिलती हैं।

कथावस्तु—राजगृह के नरेश नरवर्म थे और उनका पुत्र हरिदत्त। एक समय विदेश यात्रा से लौटकर नरेश के मित्र मदनदत्त ने राजा को एक हार दिया और कहा कि उसे एक देवता ने दिया है जोकि पूर्वभव में उसका बड़ा भाई था और एक मुनि की सूचना के अनुसार वह देवता अब आपके पुत्र हरिदत्त के रूप में अवतरित हुआ है। हरिदत्त ने भी उक्त हार को देखते ही जातिस्मरण द्वारा पूर्वभव के समस्त वृत्तान्त सुनाये। उसी समय एक केवली मुनि से उपदेश सुनकर नरवर्म ने सम्यक्त्व व्रत ग्रहण किया। एक समय इन्द्र से उसकी प्रशंसा सुन एक देवता ने परीक्षा ली जिसमें उसने बुभुक्षापीड़ित जैन-साधुओं को लड़ते-झगड़ते दिखाया, इससे राजा अपने राज्य में यह देख आत्म-निन्दा और गर्हणा करने लगा। देवता ने इस तरह उसे सच्चा सम्यक्त्वी पाया। नरवर्म बहुत काल तक गृहस्थधर्म पाल पीछे दीक्षा ले सुगति को गया।

इस कथानक पर सर्वप्रथम कृति नरवर्ममहाराजचरित्र विवेकसमुद्रगणि द्वारा विरचित मिलती है जिसमें पांच सर्ग हैं। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने इसका परिमाण ५४२४ श्लोक-प्रमाण दिया है। इसका दूसरा नाम सम्यक्त्वालंकार-

---

१. प्रतिष्ठापाठ पश्चात्कालीन १६वीं सदी के गुणभद्र की रचना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य है।[1] यह अवान्तर कथाओं से भरा हुआ है। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। सभी सर्गों में अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है। सर्गान्त में शार्दूल-विक्रीडित, वसन्ततिलका आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसके रचयिता खरतरगच्छीय जिनरत्नसूरि के शिष्य वाचनाचार्य विवेकसमुद्रगणि हैं। इसकी रचना उन्होंने खंभात में सं० १३२५ में दीपावली के दिन की थी। रचना का अनुरोध वाहड़पुत्र बोहित्थ ने किया था। इस कृति का संशोधन प्रत्येकबुद्धचरित के रचयिता जिनरत्नसूरि और लक्ष्मीतिलक उपाध्याय ने किया था। विवेकसमुद्र-गणि की अन्य रचनाओं में जिनप्रबोधचतुःसप्ततिका तथा पुण्यसारकथानक (सं० १३३४) मिलते हैं। खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि[2] के अनुसार विवेकसमुद्र की दीक्षा वैशाख शुक्ल चतुर्दशी सं० १३०४ में, वाचनाचार्य की उपाधि सं० १३२३ में और स्वर्गवास ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीया सं० १३७८ में हुआ था।

नरवर्मचरित्र पर दूसरी रचना विनयप्रभ उपाध्याय कृत मिलती है जो सं० १४१२ में रची गई थी।[3] यह एक लघु कृति है। इसका ग्रन्थाग्र ८०० प्रमाण है। विनयप्रभ खरतरगच्छ के जिनकुशलसूरि के शिष्य थे।

तृतीय रचना ग्रन्थाग्र ५०० प्रमाण मुनिसुन्दरसूरिकृत का उल्लेख मिलता है।[4]

चतुर्थ रचना खरतरगच्छीय पुण्यतिलक के शिष्य विद्याकीर्ति ने सं० १६६९ में रची है।[5]

गुणवर्मचरित—अभिषेक आदि सत्रह प्रकार की अर्हन्तपूजा के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए गुणवर्मा और उसके १७ पुत्रों की कथा की रचना हुई है।[6]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४२७; जिनरत्नकोश में इसका अपर नाम नरवर्ममहाराजचरित न देने की भूल हुई है; इसकी प्रति बृहत् भण्डार, जैसलमेर (प्रति सं० २७४) में है।

२. पृ० ४९-६५.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २०४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९.

४. वही, पृ० २०५.

५. अप्रकाशित; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० ५८.

६. जिनरत्नकोश, पृ० १०५; प्रकाशित—अहमदाबाद, १९०१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथावस्तु—हस्तिनापुर में गुणवर्मा राजपुत्र ने राज्यपद पाने के बाद क्रमशः रत्नावली, कनकावली, रत्नमाला और कनकमाला राजकुमारियों से विवाह किया। द्वितीय राजकुमारी के विवाह प्रसंग में पार्श्वनाथ जिनमन्दिर में भक्तिभाव से पूजा करते समय उसे जाति-स्मरण हुआ कि पूर्वभव में वह हस्तिनापुर में धनदत्त नामक सेठ था। उसके ४ वधुओं से १७ प्रकार की पूजा से १७ पुत्र हुए थे। जिनपूजा के प्रभाव से वह देव हुआ और इस जन्म में गुणवर्मा नरेश। इस जन्म में भी उसके १७ पुत्र हुए। इसमें १७ प्रकार की पूजा के नाम दिये गये हैं।[1] प्रत्येक पूजा के माहात्म्य के लिए १७ कथाएँ दी गई हैं।

यह कथाग्रन्थ ५ सर्गों में विभक्त है। ग्रन्थाग्र १९४८ श्लोक-प्रमाण है। इसमें संस्कृत के विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—इस ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके प्रणेता अंचलगच्छेश माणिक्यसुन्दरसूरि हैं जिन्होंने इसे सं० १४८४ में सत्यपुर (साचौर) के वर्धमान जिनभवन में उपाध्याय धर्मनन्दन के विशिष्ट सान्निध्य से समाप्त किया था। इनकी अन्य कृतियों में श्रीधरचरितकाव्य, शुकराजकथा, धर्मदत्तकथानक, महाबलमलयसुन्दरीकथा, चतुःपूर्वीचम्पू, पृथ्वीचन्द्रचरित्र (गद्य) अदि उपलब्ध होते हैं।

णरविक्कमचरिय—इसमें नरसिंह नृप के पुत्र राजकुमार नरविक्रम, उसकी पत्नी शीलवती और उन दोनों के दो पुत्रों के विपत्तिमय जीवन का वर्णन है जो एक अप्रिय घटना के कारण राज्य छोड़कर चले गये थे और अनेक साहसिक घटनाओं के बाद पुनः मिल गये थे। यह कथा पूर्वकर्म-फल-परीक्षा के उद्देश्य से कही गई है।[2]

इस कथा को गुणचन्द्रसूरि ने महावीरचरियं में भी विस्तार से दिया है जिसे संस्कृत छाया के साथ पृथक् रूप में प्रकाशित किया गया है। इस कथा का महत्त्व इसमें है कि यह अनेक जैन और अजैन लेखकों द्वारा गुजराती में वर्णित लोककथा 'चन्दनमलयगिरि' का आधार सिद्ध हुई है।[3]

---

१. सर्ग २. ४२-४५.

२. नेमिविज्ञान ग्रन्थमाला (२०), सं० २००८.

३. महावीर विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में प्रकाशित अंग्रेजी लेख 'Jain and Non-Jain Versions of the Popular Tale of Chandana-Malayagiri from Prakrit and other Early Literary Sources' by Ramesh N. Jani.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रयणचूडरायचरिय—इसे रत्नचूडकथा या तिलकसुन्दरी-रत्नचूडकथानक भी कहते हैं।[१] यह एक लोककथा है जिसका सम्बन्ध देवपूजादिफल-प्रतिपादन के साथ जोड़ा गया है। कथा तीन भागों में विभक्त है: १. रत्नचूड का पूर्वभव, २. जन्म, हाथी को वश में करने के लिए जाना एवं तिलकसुन्दरी के साथ विवाह और ३. रत्नचूड का सपरिवार मेरुगमन और देशव्रत स्वीकार।

कथावस्तु—पूर्वजन्म में कंचनपुर के बकुल माली ने ऋषभदेव भगवान् को पुष्प चढ़ाने के फलस्वरूप गजपुर के कमलसेन नृप के पुत्र रत्नचूड के रूप में जन्म ग्रहण किया। युवा होने पर एक मदोन्मत्त हाथी का दमन किया किन्तु हाथी के रूपधारी विद्याधर ने उसका अपहरण कर जंगल में डाल दिया। इसके बाद वह नाना देशों में घूमता हुआ अनेक अनुभव प्राप्त करता है, अनेकों राजकन्याओं से विवाह करता है और अनेकों ऋद्धि-विद्याएँ भी सिद्ध करता है। तत्पश्चात् पत्नियों के साथ राजधानी लौटकर बहुत काल तक राज्यवैभव भोगता है। फिर धार्मिक जीवन बिताकर स्वर्ग-प्राप्ति करता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता नेमिचन्द्रसूरि (पूर्व नाम देवेन्द्रगणि) हैं जो बृहद्गच्छ के उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और आम्रदेव के शिष्य थे। इस रचना का समय तो मालूम नहीं पर इन्होंने अपनी दूसरी कृति महावीरचरिय को सं० ११३९ में बनाया था। इनकी अन्य कृतियों में उत्तराध्ययन-टीका (सं० ११२९) तथा आख्यानमणिकोश भी मिलते हैं। इन्होंने रत्नचूडकथा की रचना डंडिल पदनिवेश में प्रारम्भ की थी और चड्डावलिपुरी में समाप्त की थी। इसकी प्राचीन प्रति सं० १२०८ की मिली है। इसकी ताड़पत्रीय प्रति चक्रेश्वर और परमानन्दसूरि के अनुरोध से प्रद्युम्नसूरि के प्रशिष्य यशोदेव ने सं० १२२१ में तैयार की थी।

रत्नचूडकथा—यह संस्कृत पद्यों में वर्णित कथा है।

इसमें तामिलिनी नगरी के सेठ रत्नाकर के पुत्र रत्नचूड की विदेश में वाणिज्य यात्रा की कथा दी गई है।[२] कथा के बीच में अद्भुत ढंग से स्वप्न और उनका

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १६०, ३२६, ३२७; पं० मणिविजय ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, १९४९.

२. यशोविजय ग्रन्थमाला, सं० ४३, भावनगर; जिनरत्नकोश, पृ० ३२७; इसका जर्मन अनुवाद जे० हर्टल ने किया है जो १९२२ में लीपजिग से प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फल[1], यात्रार्थ जाते हुए पुत्र रत्नचूड को पिता द्वारा शिक्षा जिसमें व्यावहारिक बुद्धि और अन्धविश्वासों का विचित्र संमिश्रण है[2], यात्रार्थ जाते हुए शुभ-शकुनों का उल्लेख[3], भाग्यशाली पुरुष के शरीर में ३२ तिलादि चिह्नों की गणना[4] आदि का समावेश किया गया है। यात्रा प्रसंग में रत्नचूड धूर्तों की नगरी अनीतिपुर नगर में पहुँचता है जहाँ अन्यायी राजा राज्य करता है जिसका अविचार मंत्री तथा अशांति पुरोहित था। धूर्तों की दुनिया में रत्नचूड को अनेकों चमत्कारी घटनाओं का सामना करना पड़ा।

कहानी बड़ी ही चतुरतापूर्ण एवं मनोरंजक है। कहानी के बीच में रोहक नामक बालक एवं ब्राह्मण सोमशर्मा के पिता की कहानी आविष्कृत की गई है। रोहक पालि महाउम्मग्ग जातक में वर्णित महासेध नामक पुरुष के समान ही अनेकों असंभव कार्यों को अपने बुद्धिबल से कर लेता है।[5] सोमशर्मा ब्राह्मण का पिता हवाई किले बनाता था। कथानकों में मौके-मौके पर उपदेशात्मक पद रखे गये हैं जो बड़े रोचक हैं।

रत्नचूड अपने बुद्धिकौशल से धन कमाकर लौटता है। उसे मुनि धर्मघोष पूर्वजन्म में दिये गये दान का प्रभाव बताते हैं। फिर अनीतिपुर (धूर्तनगरी) की प्रत्येक घटना को रूपक के ढंग से इस संसार में घटाते हुए कथा की समाप्ति होती है।[6]

यह कथा देवेन्द्रसूरिकृत प्राकृत रत्नचूडकथा[7] से नामसाम्य होने पर भी सर्वथा भिन्न है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके कर्ता तपागच्छीय रत्नसिंह के शिष्य ज्ञान-सागर हैं। इनका परिचय इनकी अन्यतम कृति विमलनाथचरित के प्रसंग में

---

१. श्लोक सं० २२-५७.
२. श्लोक सं० ९५-१२६.
३. श्लोक सं० १११-११४.
४. श्लोक सं० ४८५-४९१.
५. श्लोक सं० २१८-३०९.
६. श्लोक सं० ५३०-५३८.
७. इसे तिलकसुन्दरी-रत्नचूडकथानक भी कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया है।[१] विमलनाथचरित के दानधर्माधिकार में यही कथा संस्कृत गद्य में दी गई है।

रत्नचूडकथा पर जिनवल्लभसूरि, नेमप्रभ और राजवर्धन ने भी ग्रन्थ रचे हैं।[२]

रत्नशेखरकथा—राजा रत्नशेखर और रानी रत्नवती की लौकिक कथा को जैन कथाकारों ने पर्वतिथि आराधन के कल्पनाबन्ध में परिवर्तित कर प्रकट किया है।

कथावस्तु—रत्नपुर का राजा रत्नशेखर किन्नर युगल से रत्नवती की प्रशंसा सुन मुग्ध होकर मरना चाहता है। पर उसका मन्त्री आश्वासन देकर रत्नवती का पता लगाने जंगलों में भटकता है। एक यक्षकन्या के निर्देश से वह अग्नि-कुण्ड में गिरकर पाताललोक में पहुँचता है और वहाँ एक यक्ष से उस कन्या (जो मानुषी थी) की उत्पत्ति जान उससे विवाह कर लेता है (कन्या की उत्पत्ति में उसके मनुष्यभव के पिता-माता की कथा दी गई है जो पर्वतिथि भंग करने से यक्ष योनि में उत्पन्न हुए थे)। उस यक्ष ने ही उसे रत्नवती का पता बतलाया जो कि सिंहलनरेश की पुत्री थी। उस यक्ष ने उसे विद्याबल से सिंहलद्वीप भी भेज दिया। वहाँ वह योगिनी के वेष में रत्नवती से मिला। रत्नवती ने बतलाया कि वह उस पुरुष से विवाह करेगी जो पूर्वजन्म में उसका मृगरूप में पति था। योगिनी ने भविष्य का विचारकर बतला दिया कि उसका वही पति उसे शीघ्र ही कामदेव के मन्दिर में द्यूतक्रीड़ा करता हुआ मिलेगा। इस प्रकार रत्नवती को समझाकर वह उसी यक्षविद्या के बल से अपने राजा के पास रत्नपुर पहुँचा जो सात माह की अवधि समाप्त होने पर चिता में जल मरने को तैयार था। उसे साथ लाकर कामदेव के मन्दिर में सिंहल राजकन्या से भेंट करा दी। दोनों में विवाह हो गया। दोनों अपने नगर लौट आये। एक बार एक शुक और शुकी आकर दोनों के हाथों में बैठ गये और पूछने पर विद्वत्तापूर्ण वार्तालाप करते हुए वे दोनों मूर्च्छित होकर मृत्यु को प्राप्त हुए। राजा ने एक मुनि से उक्त घटना पूछने पर जाना कि वे उसके पूर्वज थे और पर्वतिथि का भंग करने से पक्षियोनि में उत्पन्न हुए थे। अब वे पाप से मुक्त हो धरणेन्द्र-पद्मावती हुए हैं। यह जान राजा, रानी, मंत्री आदि ने पर्वतिथि पालन का नियम लिया और अन्त में व्रत के प्रभाव से स्वर्ग गये।

१. पृ० १०२-१०३.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२६-३२७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथा में यदि पर्वतिथि-पालन विधि को न जोड़ें तो यह बिल्कुल लौकिक कथा है और सुप्रसिद्ध हिन्दी काव्य जायसीकृत पद्मावत की कथा का मूलाधार सिद्ध होती है। डा० हीरालाल जैन ने इसका विश्लेषण कर इस बात को भली-भांति सिद्ध कर दिया है।[१]

उक्त कथानक को लेकर संस्कृत-प्राकृत में जैन कवियों ने ३-४ रचनाएँ लिखी हैं। सबसे प्राचीन तपागच्छीय जयतिलकसूरि के शिष्य दयावर्धनगणि की कृति है जिसे 'रत्नशेखररत्नवतीकथा'[२] या 'पर्वविचार' या 'पर्वतिथिविचार' कहा गया है। इसमें ३८० श्लोक हैं और रचना सं० १४६३ है। दयावर्धन की अन्यकृति हंसकथा भी है।

एतद्विषयक दूसरी रचना रत्नशेखरसूरि की है।[३] ये रत्नशेखर कौन हैं, कहना कठिन है। एक रत्नशेखर १५वीं शती के पूर्वार्ध में और दूसरे १६वीं शती के प्रारंभ में हुए हैं।

तीसरी रचना प्राकृत में 'रयणसेहरीकहा' है जिसका ग्रन्थाग्र ८००० श्लोक-प्रमाण है।[४] इसकी रचना तपागच्छीय जयचन्द्रसूरि के शिष्य जिनहर्षगणि ने की है। इन्होंने यह कथा चित्रकूट में रची थी। इस कथा का रचना संवत् ज्ञात नहीं पर जिनहर्षगणि की अन्य कृतियाँ उपलब्ध हैं उनमें वस्तुपालचरित्र की रचना सं० १४९७ में और विंशतिस्थानकसंग्रह सं० १५०२ में लिखी गई है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति वि० सं० १५१२ की है अतः इसकी रचना उससे पूर्व की होनी चाहिये।

कुछ अज्ञातकर्तृक रत्नशेखरकथाएँ भी हैं, उनमें से एक की प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १५५३ की मिली है।

---

१. मध्यभारती पत्रिका, संख्या २, डा० जैन का अंग्रेजी लेख, 'सोर्सेज आफ पद्मावत'.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२८; लब्धिविजयसूरीश्वर ग्रन्थमाला, भावनगर, सं० २०१४.

३. वही.

४. वही, पृ० ३२४; जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला (सं० १०), वाराणसी, १९१८; जैन आत्मानन्द सभा (सं० ६३), भावनगर, सं० १९७४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगडदत्तपुराण (चरित)—इसकी कथा अति प्राचीन होने से पुराण नाम से कही गई है।[1] इसमें अगडदत्त का कामाख्यान एवं चातुरी वर्णित है। इसके कर्ता अज्ञात हैं। अगडदत्त की कथा वसुदेवहिण्डी (५-६ठी शती), उत्तराध्ययन की वादिवेताल शान्तिसूरिकृत शिष्यहिता प्राकृत टीका (११वीं शती) तथा नेमिचन्द्रसूरि (पूर्वनाम देवेन्द्रगणि) कृत सुखबोधा टीका (सं० ११३०) में आती है। वसुदेवहिंडी के अनुसार अगडदत्त उज्जैनी का एक सारथीपुत्र था। पिता की मृत्यु हो जाने पर पिता के परम मित्र कौशाम्बी के एक आचार्य से वह शस्त्रविद्या सीखता है, वहाँ उसका सामदत्ता सुन्दरी से प्रेम हो जाता है। कुछ समय बाद वह परिव्राजक रूपधारी चोर का वध करता है। उसके भूमिगृह का पता लगा उसकी बहिन से मिलता है। वहाँ उसके बदला लेने के कपटप्रबंध से वह बच जाता है। सामदत्ता को लेकर उज्जैनी लौटते समय धनंजय नाम के चोर से उसका सामना होता है जिसका वह वध कर देता है। उज्जैनी पहुँचने पर सामदत्ता के साथ उद्यान यात्रा में सामदत्ता को सर्प डस लेता है। विद्याधर युगल के स्पर्श से वह चेतना प्राप्त करती है। देवकुल में पहुँचकर सामदत्ता अगडदत्त के वध का प्रयत्न करती है। स्त्री-निन्दा और संसार-वैराग्य के रूप में कहानी का अन्त होता है।[2]

नेमिचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययन-वृत्ति में इसे प्रतिबुद्धजीवी के दृष्टान्तरूप में कहा है। यह कथानक पूर्वोक्त कथानक से कई बातों में भिन्न है। कई घटनाओं और पात्रों के नामों में अन्तर है। नेमिचन्द्रसूरि का स्रोत सम्भवतः वसुदेवहिंडी के स्रोत से भिन्न रहा हो। जर्मन विद्वान् डाक्टर आल्सडोर्फ ने इस कथानक का विश्लेषण कर इसे हजारों वर्ष प्राचीन कथानकों की श्रेणी में रखा है।[3] संभवतः अति प्राचीनता के कारण ही उक्त रचना को अगडदत्तपुराण कहा गया है।

उत्तमकुमारचरित—दान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए उक्त लौकिक कथा का उपयोग किया गया है। उत्तमकुमार एक राजकुमार है जो कि नाना

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १; विनयभक्ति सुन्दरचरण ग्रन्थमाला (सं० ६), जामनगर, सं० १९९७; यह रचना संस्कृत के ३३४ श्लोकों में समाप्त है, इसे द्रव्यभाव-निद्रात्याग के दृष्टान्त-रूप में कहा गया है।

२. वसुदेवहिंडी, पृ० ३६-४२.

३. ए न्यू वर्सन आफ अगडदत्त स्टोरी, न्यू इण्डियन ऐंटीक्वेरी, भाग १, सन् १९३८-३९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार के साहस के कार्य करता है और दुःखों से पार होता हुआ पग-पग में ऋद्धि-सिद्धि पाता है। धर्मकथा की दृष्टि से बतलाया गया है कि जीवन में उसे जो बीच-बीच में दुःख आये वे पूर्वभव के दुष्कर्म के कारण आये और जो सफलताएँ मिलीं उसका कारण मुनियों को वस्त्रदान देना था।

इस कथा को लेकर कई लेखकों की रचनाएँ मिलती हैं। संस्कृत श्लोकों में प्रथम कृति तपागच्छीय सोमसुन्दर के शिष्य जिनकीर्तिकृत[1] है और दूसरी सोमसुन्दर के प्रशिष्य एवं रत्नशेखर के शिष्य सोममंडनगणिकृत है।[2] पट्टावली के अनुसार सोमसुन्दर को वि० सं० १४५७ में सूरिपद मिला था इससे ये रचनाएँ १५वीं सदी के अन्तिम दशकों की होनी चाहिए। इसी विषय की एक अन्य कृति शुभशीलगणिकृत[3] पाई जाती है। चतुर्थ रचना १६वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय भक्तिलाभ के शिष्य चारुचन्द्रकृत है जिसमें ६८६ श्लोक सरल भाषा में हैं। इसमें ग्रन्थान्तरों से उद्धृत बीच-बीच में प्राकृत पद्य भी आ गये हैं। अनेक अवान्तर कथाएँ भी संक्षेप में दी गई हैं।[4]

इसी कथा का अज्ञातकर्तृक संस्कृत गद्य में रूपान्तर भी मिलता है। जर्मन विद्वान् वेबर ने सन् १८८४ में इसका सम्पादन और जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया है।[5]

१९वीं शताब्दी के खरतरगच्छीय विनीतसुन्दर के शिष्य सुमतिवर्धन ने भी इस कथा पर एक पद्यात्मक रचना लिखी है।[6]

भीमसेननृपकथा—पंचपांडवों से अतिरिक्त जैन कथानकों में कई भीमसेन के चरित्र वर्णित हैं। धनेश्वरसूरिकृत शत्रुञ्जयमाहात्म्य में भी एक भीमसेनचरित्र आया है और यशोदेवकृत धर्मोपदेशप्रकरण (वि० सं० १३०५) में एक अन्य भीमसेन नृप का चरित्र आया है। संस्कृत में स्वतंत्र रचना के रूप में अज्ञातकर्तृक तीन कृतियों का उल्लेख मिलता है।[7] बीसवीं सदी में उक्त दोनों

१–३. वही, पृ० ४१.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ४१; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२; वर्धमान सत्यनीति हर्षसूरि जैन ग्रन्थमाला, पुष्प १५.

५. वही, पृ० ४२.

६. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २६.

७. जिनरत्नकोश, पृ० २९७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरितों को लेकर तपागच्छीय बुद्धिसागर के शिष्य अजितसागर ने दो रचनाएँ की हैं।

पहली रचना यशोदेव के उक्त कथाकोश रूपी ग्रन्थ से कथानक लेकर की गई १३ सर्गों की बृहती रचना है।[१] इसमें २४२५ पद्य हैं। इसमें सभी रसों का प्रतिपादन हुआ है पर करुण रस की प्रधानता है। भीमसेन अन्तरायकर्म की प्रबलता से अनेक कष्ट सहता है और मुनिदान के प्रभाव से तथा वर्धमानतप के प्रभाव से अपने राज्य को पा लेता है। फिर तपस्या कर मोक्षपद पाता है।

द्वितीय रचना में २६८ पद्य हैं जो शत्रुञ्जयमाहात्म्य के अनुसार हैं। इस कथा का निर्देश हमने उक्त माहात्म्य के प्रसंग में किया है।

१७वीं शती का यशोविजयकृत एक आर्षभीमचरित्र भी उपलब्ध हुआ है।

चम्पकश्रेष्ठिकथानक—यह एक संस्कृत गद्य में लिखी गई कथा[२] है जिसमें अन्य कथाकोषों तथा प्रबंधचिन्तामणि समागत चम्पश्रेष्ठि की कथा दी गई है। साथ में, उसके भीतर तीन और सुन्दर उपाख्यान दिये गये हैं जो भाग्य और पुरुषार्थ के महत्त्व को सूचित करते हैं।

संक्षेप में कथा इस प्रकार है: चम्पानगरी के एक सेठ को कोई सन्तान न थी। गोत्रदेवी ने बतलाया कि उसका उत्तराधिकारी दासी के गर्भ से उत्पन्न बालक होगा। इस पर उस भवितव्यता को बदलने का वह प्रयत्न करने लगा। उसने दासी को खोजकर उसे गर्भिणी हालत में मार डाला पर भाग्यवश उसका बच्चा जीवित निकला और दूसरों द्वारा पाला गया। बड़ा होने पर सेठ को पता लगता है और वह उसे मार डालने के लिए एक गुप्त पत्र लिखता है जो कि उसकी पुत्री तिलोत्तमा द्वारा विवाह-पत्र के रूप में परिणत हो जाता है। इस तरह चम्पक उस सेठ का जामाता बन जाता है। फिर भी सेठ उसे मार डालना चाहता है पर सेठ ही मारा जाता है और चम्पक उसका उत्तराधिकारी बन जाता है।

---

१. अजितसागरसूरि ग्रन्थमाला (सं० १४-१५), प्रान्तिज (गुजरात).

२. जिनरत्नकोश, पृ० १२१; इसका अंग्रेजी और जर्मन अनुवाद हर्टेल ने सन् १९२२ में लीपजिग से निकाला है। इसका एक संस्करण विद्याविजय यंत्रालय से सन् १९१५ में निकला है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इस कथा में तीन कहानियाँ शामिल की गई हैं। प्रथम कथा रावण की है जो व्यर्थ में भाग्यचक्र को चुनौती देता है। दूसरी कथा में पुरुषार्थ द्वारा विधि-लिखित बात भी बदली गई है और तीसरी कथा एक वणिक की है जो अब तक लोगों को ठगता रहा है पर अन्त में एक वेश्या द्वारा ठगा जाता है। यह अन्तिम कथा बड़ी हास्यपूर्ण है।

यह एक ऐसी कहानी है जो पूर्व एवं पश्चिम दोनों देशों में प्रसिद्ध है, जिसे ब्राह्मण एवं बौद्ध साहित्य में भी देखते हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके प्रणेता तपागच्छीय सोमसुन्दरसूरि के शिष्य जिनकीर्ति हैं। इनका समय १५वीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। ग्रन्थकार की अन्य कृतियाँ दानकल्पद्रुम अपरनाम धन्यशालिचरित्र (वि० सं० १४९७), श्रीपाल-गोपालकथा, पंचजिनस्तव, नमस्कारस्तव (वि० सं० १४९४), श्राद्धगुणसंग्रह (वि० सं० १४९८) हैं।

चम्पकश्रेष्ठी की कथा पर तपागच्छीय जयविमलगणि के शिष्य प्रीतिविमल की रचना[1] (सं० १६५६) तथा जयसोम की रचना[2] भी उपलब्ध होती है।

अघटकुमारकथा—यह चम्पकश्रेष्ठी के समान ही लौकिक कथा है जिसमें पत्रविनिमय द्वारा कथानायक अघटकुमार के मृत्यु से बचने की घटना आई है।

इस पर दो अज्ञातकर्तृक पद्यात्मक कृतियाँ मिलती हैं।[3] जिनकीर्तिकृत अघटनृपकुमारकथा संस्कृत गद्य में है।[4] इसका जर्मन अनुवाद डा० कुमारी चार्लोस क्राउस ने सन् १९२२ में किया है।[5] उपर्युक्त रचना का काल नहीं दिया गया है। यह अनुमानतः १५-१६वीं शती की रचना है।

मूलदेवनृपकथा—मूलदेव नृप की लोकसाहित्य जगत् की एक कथा को सुपात्रदान के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूलदेव पाटलिपुत्र का एक अति रूपवान् राजकुमार था। उसे जुआ खेलने का व्यसन था। उसके पिता ने उसे निकाल दिया। उज्जैनी पहुँचकर वह गुलिका विद्या से बौने का रूप धारण कर मनोहर गीत गाते हुए रहने लगा। उस पर देवदत्ता नामक वेश्या आसक्त हो गई। वेश्या की मां ने उसे कपट-प्रबंध से वहाँ से भागने को बाध्य किया। भूखे-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२१; जमनाभाई भगुभाई, अहमदाबाद, १९१६.

२. वही, पृ० १२१.

३–४. वही, पृ० १.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्यासे भटकते हुए उसे भिक्षा में कुछ कुल्माष मिले जिन्हें उसने मुनि को आहार में दिये। इससे प्रसन्न हो एक देवी ने वर मांगने को कहा। फलस्वरूप उसने राज्य और देवदत्ता वेश्या को वर में मांगा। सत्पात्र दान से उसे ऐश्वर्य एवं अनेक कौतुकपूर्ण कार्य करने को मिले।

प्रस्तुत कृति ३२२ संस्कृत श्लोकों में समाप्त हुई है। रचयिता का नाम अज्ञात है।[1]

नाभाकनृपकथा—देवद्रव्य के सदुपयोग पर नाभाक नृप की कथा कही गई है। इसमें बताया गया है कि नाभाक किस तरह देवद्रव्य के सदुपयोग से सद्गति पाता है और उसी का दुरुपयोग करने से उसका भाई सिंह और एक नाग सेठ भवान्तरों में कैसे दुःख पाते हैं। कथाप्रसंग में शत्रुंजयतीर्थ का माहात्म्य भी वर्णित है। यह ग्रन्थ संस्कृत श्लोकों में है तथा बीच-बीच में प्राकृत की गाथाएँ भी आ गई हैं जिनका 'उक्तं च' द्वारा निर्देश किया गया है। कथा बड़ी रोचक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना अंचलगच्छीय मेरुतुंगसूरि ने वि० सं० १४६४ में की है।[2] ये महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनकी अन्य रचनाएँ हैं—जैनमेघदूतसटीक, कातंत्रव्याकरणवृत्ति, षड्दर्शननिर्णय आदि।

नाभाकनृपकथा पर कमलराज के शिष्य रत्नलाभकृत रचना तथा एक अज्ञातकर्तृक नाभाकनृपकथा भी मिलती है।[3]

मृगांकचरित—इसे मृगांककुमारकथा भी कहते हैं। यह एक लोककथा है जिसे पात्रदान में सद्-असद्भाव के फल को द्योतन करने से सम्बद्ध किया गया है।

कथावस्तु—मृगांक और पद्मावती साथ-साथ पढ़ते हैं। पद्मावती के पिता ने मृगांक को अपनी पुत्री के लिए देने को ८० कौड़ियाँ दीं पर मृगांक ने उनसे कुम्हड़ापाक लेकर खा लिया। पद्मावती को जब यह मालूम हुआ तो वह बहुत क्रुद्ध हुई और मौका आने पर सीख देने की धमकी दी।

---

१. विनयभक्ति सुन्दरचरण ग्रन्थमाला (सं० ४), जामनगर, सं० १९९५.
२. जिनरत्नकोश, पृ० २१०; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८.
३. वही, पृ० २१०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युवावस्था में भाग्यवश दोनों का विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद मृगांक को पुरानी बात याद आई और उसने बदला लेना चाहा। पहले तो वह उसे छोड़ परदेश जाना चाहता था पर वह भी साथ हो ली। जलमार्ग से जाते हुए एक द्वीप में रात्रि को वह पद्मावती को सोता हुआ छोड़ देता है। कष्टों को पार करती हुई पद्मावती एक विद्याधर से अदृश्य होने, रूप बदलने और दूसरे की विद्या नष्ट करने की विद्या पा जाती है। इन्हीं विद्याओं के सहारे वह पुरुषवेश धारणकर सुसुमारपुर में रहने लगती है और वहाँ राजपुत्रों को पढ़ा, चुंगी वसूल करनेवाले आफीसर का काम तथा अनेक अद्भुत काम करती है। मृगांक भी भाग्य का मारा वहाँ आया। चुंगी (शुल्क) की चोरी के बहाने से पद्मावती ने उसे खूब तंग किया और बदला लिया पर सब प्रेमसिक्त भाव से। अन्त में मृगांक से दीनता प्रकट कराके उसने अपना असली रूप प्रकट किया।

वह पीछे राजा का दामाद हो राज्यपद भी पा सका। एक बार एक मुनि से विपत्ति और सम्पत्ति के इस परिवर्तन को उसने पूछा और उन्होंने पूर्वजन्म में पात्रदान देने पर भी पीछे कुभाव और फिर सुभाव लाना ही कारण बतलाया।

इस कथा पर मृगांककुमारकथा नामक अज्ञातकर्तृक रचना[१] तथा २८३ संस्कृत पद्यों में लिखा मृगांकचरित्र[२] मिलता है। इस द्वितीय कृति के लेखक पण्डित ऋद्धिचन्द्र हैं जो अकबर और जहाँगीर के दरबार में ख्यातिप्राप्त उपाध्याय भानुचन्द्र के सुयोग्य शिष्य थे। इसे विद्वान् उदयचन्द्र ने शुद्ध किया था।[३]

धर्मदत्तकथानक या चन्द्रधवल-धर्मदत्तकथा—यह एक लौकिक कथा है जिसे धर्मकथा के रूप में परिवर्तित कर अतिथिसंविभाग व्रत के माहात्म्य को दिखाने के लिए उपयोग किया गया है।

कथावस्तु—इस कथा में दो नायक हैं : चन्द्रधवल नृप और धर्मदत्त श्रेष्ठी। धर्मदत्त को एक योगी की कृपा से सुवर्णपुरुष प्राप्त होने वाला था कि बीच में चन्द्रधवल ने उसे छिपा दिया। पीछे उसे भी एक बड़ा हिस्सा दिया गया। दोनों ने एक मुनि से पूछा कि इसका कारण क्या है तो मुनि ने पूर्वजन्म की बात

१-२. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३; सूरत से १९१७ में प्रकाशित; जैन आत्मवीर सभा (सं० ५), भावनगर, सं० १९७३; हिन्दी अनुवाद-यशोधर्ममन्दिर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित.

३. प्रशस्ति, पद्य २८४–२८८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कही। उसमें धर्मदत्त के जीव ने पूर्वभव में साधुओं को १६ मोदक दिये थे इससे उसे १६ करोड़ का सुवर्ण मिला और चन्द्रधवल ने अगणित मोदक दिये थे इससे उसे अगणित सोना और धनराशि मिली।

उक्त कथानक को लेकर कई रचनाएँ मिलती हैं।[1] सर्वप्रथम अंचलगच्छीय मेरुतुंग के शिष्य माणिक्यसुन्दरकृत है जिसका समय वि० सं० १४८४ है। इनकी अन्य कृतियों में शुकराजकथा आदि हैं। प्रस्तुत कथा प्रचलित संस्कृत गद्य में लिखी गई है। बीच में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और देशी भाषा के सुभाषित हैं।

दूसरी रचना विनयकुशलगणिकृत है।[2] इसका रचना संवत् ज्ञात नहीं है। इस विषय की अन्य कृतियाँ अज्ञातकर्तृक हैं। उनमें एक प्राचीन कृति का संवत् १५२१ दिया गया है।[3]

रत्नसारमन्त्रिकथा—वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में परिग्रह-परिमाण के विषय में रत्नसार की कथा कही गई है। इसी कथा को लेकर अज्ञातकर्तृक रत्नसारमंत्रिदासीकथा[4] मिलती है। इसी कथा को लेकर संस्कृत गद्य में तपागच्छीय आचार्य यतीन्द्रसूरि (२०वीं शता०) ने रत्नसारचरित्र[5] की रचना की है।

रत्नपालकथा—रत्नपाल के जन्मकाल में ही उसके माता-पिता निर्धन एवं कर्जदार हो जाते हैं और साहूकार उसे २७ दिन की आयु में ऋण अदायगी तक के लिए ले जाता है। युवा होने पर किस तरह रत्नपाल विदेश यात्रा करता है और इधर उसके माता-पिता लकड़ी बेचकर दुःख उठाते हैं, रत्नपाल किस तरह उन सबको कर्ज से मुक्ति दिला सुख-सम्पत्ति पाता है आदि चरित्र दिया गया है।

इसमें जीव कैसे एक ही जन्म में कर्म की विचित्रता का अनुभव करता है यह दिखलाने की चेष्टा की गई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ११८, १८९; हंसविजय फ्री लायब्रेरी, अहमदाबाद, सं० १९८१.

२-३. वही, पृ० १८९.

४. वही, पृ० ३२८.

५. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथानक को लेकर अनेकों रचनाएँ बनाई गई हैं। सर्वप्रथम रत्नशेखर-सूरिकृत रचना[1] मिलती है। दूसरी तपागच्छ के भानुचन्द्रगणिकृत है। इसकी प्राचीन प्रति सं० १६६२ की मिली है।[2] तीसरी तपागच्छीय मुनिसुन्दर के शिष्य सोममण्डनगणिकृत है।[3] बीसवीं सदी में तेरापन्थी मुनि नथमल जी (टमकोर) ने संस्कृत में रत्नपालचरित्र की तथा चन्दनमुनि ने प्राकृत गद्य में संस्कृत छाया तथा हिन्दी अनुवाद के साथ 'रयणवालकहा' की रचना सं० २००२ में की है।[4]

चन्द्रराजचरित—इस कौतुक एवं चमत्कारपूर्ण चरित्र में चन्द्रराज की कथा दी गई है जो अपनी सौतेली माता के कपट-प्रबंध से नाना प्रकार के कष्ट उठाता है और यहां तक कि कुक्कट बना दिया जाता है। उन कष्टों से उसकी मुक्ति शत्रुंजय तीर्थ के सूर्यकुण्ड में स्नान करने से होती है। पीछे वह राज्य-सुख भोग मुनिसुव्रत स्वामी के समोसरण में दीक्षा ले लेता है। यह चरित अति-मानवीय तथा नट आदि के चमत्कारों से भरा हुआ है।

उक्त कथानक को लेकर संस्कृत पद्य-गद्यमय तथा हिन्दी और गुजराती में रचनाएँ मिलती हैं।

सर्वप्रथम गुणरत्नसूरिविरचित चन्द्रराजचरित का उल्लेख मिलता है।[5] उसका रचनासमय ज्ञात नहीं है।

बीसवीं सदी में तपागच्छ के विजयभूपेन्द्रसूरि ने संस्कृत गद्य में सं० १९९२ में एक विशाल रचना की है जिसमें २८ अध्याय हैं।[6] बीच-बीच में संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं। यह कृति पण्डित काशीनाथ जैन द्वारा संकलित हिन्दी चरित्र के आधार से लिखी गई है।

पाल-गोपालकथा—इस कथा में उक्त नाम के दो भ्राताओं के परिभ्रमण व नाना प्रकार के साहसों व प्रलोभनों को पारकर अन्त में धार्मिक जीवन व्यतीत करने का रोचक वृत्तान्त दिया गया है।

१-२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२७.

३. वही; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९६९.

४. भागवतप्रसाद रणछोड़दास, अहमदाबाद, १९७१; इसकी संस्कृत छाया मुनि गुलाबचन्द्र निर्मोही ने तथा हिन्दी अनुवाद मुनि दुलहराज ने किया है।

५. जिनरत्नकोश, पृ० १२१.

६. भूपेन्द्रसूरि जैन साहित्य प्रकाशक समिति, आहोर (मारवाड़), सं० १९९८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथा पर एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[1] एक ज्ञातकर्तृक रचना के रचयिता तपागच्छ के सोमसुन्दरसूरि के शिष्य जिनकीर्ति हैं।[2] इसका जर्मन भाषा में अनुवाद हुआ है। इस कथा को श्रीपाल-गोपालकथा[3] नाम से भी कहा गया है।

कृतपुण्यचरित—सुपात्र दान को लेकर कृतकर्मनृपतिकथा[4] तथा कृतपुण्य सेठ या कयवन्ना सेठ की कथा कही गई है। कृतपुण्य की कथा कथाकोषप्रकरण (जिनेश्वरसूरि) तथा धर्मोपदेशमालाविवरण (जयसिंहसूरि) में आई है। इस पर स्वतंत्र रचनाएँ भी मिलती हैं।

पहली रचना जिनपतिसूरि के शिष्य पूर्णभद्रगणि ने जिनपति के पट्टधर जिनेश्वर के शासनकाल में सं० १३०५ में की थी।[5]

द्वितीय रचना कृतपुण्यकथा अपरनाम कयवन्नाकथा अज्ञातकर्तृक का उल्लेख मिलता है।

तृतीय रचना बीसवीं सदी में विजयराजेन्द्रसूरि ने पंचतंत्र की शैली में गद्यात्मक रूप में लिखी है। बीच-बीच में कहानियों को जोड़ने के लिए श्लोक उद्धृत हैं। इसकी रचना सं० १९८५ में हुई है।[6]

पापबुद्धि-धर्मबुद्धिकथा—भावात्मक व कल्पित पापबुद्धि राजा और धर्मबुद्धि मंत्री के माध्यम से पाप और धर्म के महत्त्व को समझाने के लिए उक्त कथा की कल्पना की गई है। इस कथा को अन्य नामों से भी प्रकट किया गया है यथा कामघटकथा[7], कामकुम्भकथा और अमरतेजा-धर्मबुद्धिकथा[8]। इनमें से कुछ के कर्ता ज्ञात हैं और अधिकांश के कर्ता अज्ञात हैं।

ज्ञातकर्तृक रचनाओं में हीरविजयसन्तानीय मानविजय के शिष्य जयविजय ने पापबुद्धि-धर्मबुद्धिकथा[9] अपरनाम कामघटकथा की रचना की। जयविजय ने

१-३. जिनरत्नकोश, पृ० २४८, ३९६; आत्मानन्दजय ग्रन्थमाला, दभोई, सं० १९७६; जे० हर्टेलकृत जर्मन अनुवाद, लाइपजिग, १९१७.

४. वही, पृ० ९५.

५. वही.

६. राजेन्द्र प्रवचन कार्यालय, खुडाला (मारवाड़), सं० १९८८.

७-९. जिनरत्नकोश, पृ० १४, ८४, २४३; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९; मास्टर उमेदचन्द्र रायचन्द्र, पांजरापोल, अहमदाबाद; इसका परिवर्धित रूप भूपेन्द्रसूरि जैन साहित्य समिति, आहोर (मारवाड़) से प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बृहत् ग्रन्थ धर्मपरीक्षा की रचना की थी। उसी का यह कथा खण्डमात्र है। कर्ता का समय १६-१७वीं शताब्दी अनुमानित है। एतद्विषयक अज्ञातकर्तृक संस्कृत रचनाओं का निर्देश मिलता है। गुजराती में भी कई रचनाएँ हैं।[1]

पुरुषपात्र-प्रधान लघु कथाएँ :

कुछ ऐतिहासिक पुरुषों को लेकर भी कथा-ग्रन्थ लिखे गये हैं। इनमें ऐतिहासिकता का अंश कम है।

सम्प्रातिनृपचरित—सम्राट् अशोक के पौत्र सम्प्रति के कथात्मक चरित्र को लेकर एक-दो रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनके रचयिता और रचनाकाल की सूचना नहीं दी गई है।[2]

नवनन्दचरित—नन्दराज्यवंश के संस्थापक नवनन्दों के कथात्मक चरित से सम्बद्ध एक रचना अज्ञातकर्तृक मिलती है।[3] रचनाकाल ज्ञात नहीं है। इसकी ताडपत्रीय प्रति जेसलमेर में है।

शालिवाहनचरित—इस कृति में सातवाहन की कथा दी गई है। यह १८०० श्लोक-प्रमाण है। इसकी रचना वि० सं० १५४० में हुई थी। रचनाकार तपागच्छीय मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि हैं।[4]

देवर्धिगणिक्षमाश्रमणचरित—वलभी वाचना के प्रमुख देवर्धिगणि पर स्वतंत्र रचना के रूप में जैनग्रन्थावलि में देवर्धिकथा[5] का उल्लेख मिलता है तथा अहमदाबाद के डेला उपाश्रय भण्डार में देवर्धिगणिक्षमाश्रमणचरित उपलब्ध है।[6]

अकलंककथा—प्रसिद्ध जैन नैयायिक आचार्य अकलंक के जीवन पर चमत्कारपूर्ण कथा का निर्माण किया गया है। स्वतंत्र रचना के रूप में भट्टारक सिंहनन्दि और भट्टारक प्रभाचन्द्र की कृतियों का उल्लेख मिलता है।[7]

---

१. जैन गुर्जर कविओ, भाग १-३, कृतिसूची.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४२२; आत्मानन्दजय ग्रन्थमाला (दभोई), अहमदाबाद, सं० १९७६; दूसरी रचना—हीरालाल हंसराज, जामनगर.

३. वही, पृ० २०८.

४. वही, पृ० ३८२.

५-६. वही, पृ० १७८.

७. वही, पृ० १.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पात्रकेशरिकथा—दिग० मुनि पात्रकेशरी की कथा पर भट्टारक मल्लिषेण (१६वीं शताब्दी) की रचना उपलब्ध होती है।[1] पात्रकेशरी के विषय में पं० जुगलकिशोर मुख्तयार ने माना है कि ये बौद्ध तार्किक धर्मकीर्ति और मीमांसक कुमारिल के प्रायः समकालीन थे। पात्रकेशरी द्वारा रचित जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति, पात्रकेशरिस्तोत्र और न्यायग्रन्थ त्रिलक्षणकदर्थन का उल्लेख मिलता है।

मंग्वाचार्यकथा—आर्य मंगु को पार्श्वस्थ भिक्षु कहा गया है। मथुरा में सुभिक्षा प्राप्त होने पर भी आहार का कोई प्रतिबंध नहीं रखते थे। इनकी कथा उपदेशमाला और उपदेशप्रासाद में आई है। उन्हीं के विषय में उक्त कथाकृति उपलब्ध है।[2] रचयिता का नाम एवं रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

इलाचीपुत्रकथा—भावना या भावशुद्धि के महत्त्व को बतलाने के लिए इलाचीपुत्र की कथा दी गई है। यह कथा कथाकोशों में वर्णित है।

प्रस्तुत रचना प्राकृत में निबद्ध है।[3] रचयिता का नाम एवं रचनाकाल अज्ञात है।

अनाथमुनिकथा—अनाथ मुनि की कथा उत्तराध्ययन में आई है। इनके पिता धनाढ्य थे। पर ये बाल्यकाल में नाना रोगों से ग्रस्त थे। इनकी वेदना को कोई न बँटा सका। अत्यन्त निराश हो उन्होंने सोचा—'यदि मैं इस वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो प्रव्रज्या स्वीकार कर लूँगा'। वे रोगमुक्त होकर दीक्षित हो गये और राजगृह के मण्डिकुक्षि चैत्य में राजा श्रेणिक को सनाथ और अनाथ का अर्थ समझाया। उक्त कथानक पर अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है। गुजराती में एतद्विषयक अनेक काव्य मिलते हैं।[4]

प्रदेशी या परदेशीचरित—रायपसेणिय सूत्र में राजा प्रदेशी और कुमार-श्रमण केशी का रोचक कथानक दिया गया है। यह परवर्ती लेखकों को बड़ा रोचक लगा। इस पर प्राकृत, संस्कृत और गुजराती में अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४३.

२. वही, पृ० ३००.

३. वही, पृ०, ४०.

४. वही, पृ० ७.

५. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ४०८, ६०२, ६४६ आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत में उक्त कथा पर कुशलरुचिकृत एक कृति है जिसकी हस्तलिखित प्रति सं० १५६४ की मिलती है।[1] दूसरी चारित्रोपाध्यायकृत सं० १९१३ की उपलब्ध है।[2] प्राकृत में २०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण रचना है।[3] इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। एक और अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख मिलता है।[4]

नागदत्तकथा—नागदत्त की कथा कई प्रसंगों के उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत की गई है। आवश्यकनिर्युक्ति के प्रतिक्रमण अध्ययन में नागदत्त की कथा आई है। हरिषेण के बृहत्कथाकोश (१०वीं शताब्दी) में निर्मोहिता के उदाहरणरूप में नागदत्त की कथा दी गई है। कई कथाकोशों में अदत्त-अग्रहण के उदाहरणरूप में यह कथा वर्णित है। एक रचना[5] अष्टाह्निका पर्व के माहात्म्य को सूचित करने के लिए भी रची गई है। प्राकृत में १००० ग्रन्थाग्र का नागदत्तचरियं[6] (अज्ञात-कर्तृक) भी मिलता है।

विक्रमसेनचरित—इसमें विक्रमसेन नरेश का सम्यक्त्वलाभ से लेकर सर्वार्थ-सिद्धि विमान जाने तक का वृत्तान्त प्राकृत छन्दों में वर्णित है। साथ ही दान, तप, भावना के प्रसंग से २४ कथाएँ भी दी गई हैं। यह एक उपदेशकथा-ग्रन्थ है।

इसके रचयिता[7] ने अपना नाम पद्मचन्द्र शिष्य मात्र दिया है। रचना-समय अज्ञात है।

अन्निकाचार्य-पुष्पचूलाकथा—इसमें तपस्वी अन्निकाचार्य और साधुओं की सतत वैयावृत्त्य (सेवा) कर केवलज्ञान प्राप्त करनेवाली महिला पुष्पचूला की कथा दी गई है। शुभशीलगणिकृत भरतेश्वर-बाहुबलिवृत्ति में भी यह कथा आई है।[8] इसके पूर्व उपदेशमाला और उपदेशप्रासाद में भी यह कथा वर्णित है।

इसकी स्वतंत्र रचना[9] तपागच्छीय अमरविजय के शिष्य मुनिविजयकृत उपलब्ध होती है। रचनासमय अज्ञात है।

१-४. जिनरत्नकोश, पृ० २३६ और २६३-२६४.

५-६. वही, पृ० २१०.

७. वही, पृ० ३५०; पाटन ग्रन्थभण्डार सूची, भाग १, पृ० १७३.

८. ५वीं और ३२वीं कथा.

९. जिनरत्नकोश, पृ० ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृगध्वजचरित—हिंसा के दोष से बचने के लिए तीव्र तपस्या कर कैवल्य प्राप्त करनेवाले राजपुत्र मृगध्वज की कथा[१] बृहत्कथाकोश (हरिषेणकृत) में दी गई है।

स्वतंत्र रचना के रूप में खरतरगच्छीय पद्मकुमार ने ८३ गाथाओं में इसकी रचना की है।[२] रचनासमय अज्ञात है पर गुजराती में इन्हीं पद्मकुमारकृत मृगध्वजचौपाई[३] मिलती है जिसका रचनाकाल सं० १६६१ दिया गया है।

प्रीतिकरमहामुनिचरित—प्रीतिकर मुनि के चरित्र पर दो दिग० कवियों की संस्कृत रचनाएँ मिलती हैं।[४] ब्रह्म नेमिदत्त की कृति में पाँच सर्ग हैं। इसकी प्राचीन प्रति सं० १६४५ की मिली है। दूसरी रचना संस्कृत में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति की मिलती है। उसका रचनासमय ज्ञात नहीं है। नरेन्द्रकीर्ति सत्रहवीं शती के अन्तिम तथा अठारहवीं के प्रथम दशक के विद्वान् थे।

आरामनन्दनकथा—पंच णमोकार मन्त्र के प्रभाव से अनेक सुख मिलते हैं, भवपार हो जाता है, देवगति मिलती है। यह कथा णमोकार मन्त्र का माहात्म्य बतलाने के लिए संस्कृत ६०५ श्लोकों में रची गयी है।[५] रचना-समय ज्ञात नहीं पर इस रचना के आधार पर सं० १५८७ में सांडेरगच्छ के धर्मसागर के शिष्य चउहथ ने गुजराती में आरामनन्दनचौपई की रचना की है।[६]

अजापुत्रकथानक—पुण्य से साहस, सद्भाव, कीर्ति आदि सभी मिलते हैं। दृष्टान्तस्वरूप अजापुत्र की कथा पर दो रचनाएँ मिलती हैं।[७] एक अज्ञात-कर्तृक ५६१ श्लोकों में है और एक गद्य में। एक के कर्ता जिनमाणिक्य हैं और दूसरी के माणिक्यसुन्दरसूरि (१६वीं शती)। इस पर गुजराती में कई रास भी मिलते हैं।[८]

---

१. कथा सं० १२१.
२. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३.
३. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४६२.
४. जिनरत्नकोश, पृ० २८१.
५. वही, पृ० ३३.
६. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ५७८.
७. जिनरत्नकोश, पृ० २.
८. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ५३७, ५३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाणक्यर्षिकथा—चाणक्य का चरित्र हरिषेण ने बृहत्कथाकोश में और हेमचन्द्राचार्य ने परिशिष्टपर्व में दिया है। उस पर देवाचार्य की उक्त स्वतन्त्र रचना मिलती है।[1] रचनाकाल नहीं दिया गया है।

मित्रचतुष्ककथा—स्वदारसन्तोषव्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए सुमुखनृपादिमित्रचतुष्ककथा अपरनाम मित्रचतुष्ककथा की रचना ५१७ श्लोकों में तपागच्छीय सोमसुन्दरसूरि के शिष्य मुनिसुन्दरसूरि ने सं० १४८४ में की है। इसका संशोधन लक्ष्मीभद्रसूरि ने किया था।[2]

किन्हीं संयमरत्नसूरि ने भी मित्रचतुष्ककथा[3] (ग्रन्थाग्र १६३१) की रचना की है।

उक्त व्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए पं० रामचन्द्रगणि ने ११ सर्गों का एक सुमुखनृपतिकाव्य सं० १७७० में रचा है। इस काव्य की एक त्रुटित प्रति प्राप्त हुई है।

धनदेव-धनदत्तकथा—इसे धनदत्तकथा, धनधर्मकथा भी कहते हैं। सुपात्र में भुक्तिदान से पाप दूर होकर सम्पत्ति मिलती है। इस बात को बतलाने के लिए धनदेव और धनदत्त की कथा दी गई है।

इस पर सर्वप्रथम कृति तपागच्छ के मुनिसुन्दर की रचना ४४० संस्कृत श्लोकों में मिलती है। रचना में सं० १४८४ दिया गया है।[5] दूसरी रचना तपागच्छीय अमरचन्द्र की है।[6] अमरचन्द्र का समय १७वीं शती का उत्तरार्ध है। इनकी गुजराती रचनाएँ कुलध्वजकुमार (सं० १६७८) और सीताविरह (सं० १६७९) मिलती हैं।[7]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२२.

२. वही, पृ० ३०९, ४४७; जैन आत्मानन्द सभा, ग्रन्थांक ७५, भावनगर; गुजराती अनुवाद भी वहीं से सं० १९७९ में प्रकाशित.

३. वही.

४. श्रमण, वर्ष १९, अंक ८, पृ० ३०-३१ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'पं० रामचन्द्ररचित सुमुखनृपति-काव्य'.

५-६. जिनरत्नकोश, पृ० १८६, १८७.

७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ५०७, ५०८.

२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनदत्तकथा—श्रावकधर्म में व्यवहारशुद्धि के लिए अमरचन्द्र ने संस्कृत में धनदत्तकथा[1] लिखी है। धनदत्तकथा पर गुजराती में कई रास[2] लिखे गये हैं।

अमरसेन-वज्रसेनकथानक—दान एवं पूजा से अपार सुख मिलता है। इस बात का द्योतन करने के लिए अमरसेन-वज्रसेन राजर्षि की कथा इसमें वर्णित है। इस पर कई कृतियाँ मिलती हैं। पहली कृति १६वीं शती के मतिनन्दनगणि की है जो खरतरगच्छ में पिप्पलकगच्छ के धर्मचन्द्रगणि के शिष्य थे।[3] इनकी अन्य कृति धर्मविलास मिलती है। उक्त कथा पर अन्य दो अज्ञातकर्तृक रचनाएँ भी हैं जिनमें एक की रचना सं० १६५८ में हुई थी।[4] सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में गुजराती में इस कथानक पर कई ग्रन्थ लिखे गये हैं।[5]

अमरदत्त-मित्रानन्दकथानक—इसमें अमरदत्त-मित्रानन्द के सरस सम्बन्ध को दिखलाते हुए दान के प्रभाव से उन दोनों ने संसार में किस तरह सुख पाया यह दिखलाया गया है। इसके रचयिता भावचन्द्रगणि हैं जो भानुचन्द्रगणि के शिष्य थे।[6] उन्होंने यह कथा शान्तिनाथचरित्र में वर्णित की है। इस पर गुजराती में कई रास बने हैं।[7]

सुमित्रकथा—यह कथा वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में दसवें श्रावकव्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए दी है। स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में हर्षकुंजर उपाध्यायकृत सुमित्रचरित्र[8] और अज्ञातकर्तृक सुमित्रकथा[9] मिलती हैं।

रूपसेनकथा—इसमें दान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए रूपसेन और कनकावती की कथा दी गई है। इस कथानक पर अनेक कृतियाँ मिलती हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १८६.
२. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३६८.
३. जिनरत्नकोश, पृ० १४.
४. वही.
५. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४७५; भाग २, पृ० १६५.
६. जिनरत्नकोश, पृ० १४; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४.
७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० २००; भाग २, पृ० ९४, २२४.
८-९. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञातकर्तृक रचनाओं में रूपसेनकनकावतीचरित्र, रूपसेनकथा, रूपसेन-पुराण नामक ग्रन्थ मिलते हैं।[1]

ज्ञातकर्तृक रचनाओं में तपागच्छीय हर्षसागर के प्रशिष्य एवं राजसागर के शिष्य रविसागर ने सं० १६३६ में रूपसेनचरित्र[2] लिखा।

दूसरी कृति[3] सुधाभूषण और विशालराज के शिष्य जिनसूरि ने संस्कृत गद्य में निर्माण की है। इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

तीसरी रचना[4] किसी दिगम्बर धर्मदेव ने लिखी है।

करिराजकथा—आसनदान के माहात्म्य के लिए करिराजकथा का विधान हुआ है। इस कथा पर सं० १४८९ में किसी अज्ञात कर्ता ने ग्रन्थ लिखा।[5] दानप्रदीप (सं० १४९९) के छठे प्रकाश में भी यह कथा शामिल है।

वंकचूलकथा—औपदेशिक कथाओं में दान, शील, तप, भावना आदि को एकचित्त से पालने के लिए वंकचूल का उदाहरण आया है। उक्त कथा पर प्राकृत वक्कचूड़कहा[6] नामक कृति का उल्लेख मिलता है। उसके कर्ता और रचनाकाल ज्ञात नहीं हो सके। गुजराती में इस पर कई काव्य लिखे गये हैं।[7]

तेजसारनृपकथा—इसमें जिनप्रतिमा को जिन सदृश मानकर आराधना करने के माहात्म्य को प्रकट करने लिए तेजसारनृप की कथा दी गई है। इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है।[8] इस कथा में दीपपूजा का विशेष माहात्म्य दिया गया है। गुजराती में कुशललाभकृत तेजसाररास (सं० १६२४) भी मिलता है।[9]

गुणसागरचरित—पृथ्वीचन्द्र नृप के पूर्वभवों का सहयोगी गुणसागर था। उसका चरित्र भी पृथ्वीचन्द्र नृपर्षि के समान पावन है। देवेन्द्रसूरि के शिष्य धर्मकीर्ति ने 'संघाचारविधि' में गुणसागर की कथा दी है।

१–४. जिनरत्नकोश, पृ० ३३३.

५. वही, पृ० ६८.

६. वही, पृ० ३४०.

७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ४८३, ५८९.

८. जिनरत्नकोश, पृ० १६१.

९. गुर्जर जैन कविओ, भाग १, पृ० २१४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पर स्वतंत्र रचना भी मिलती है जिसके कर्ता खरतरगच्छीय क्षमाकल्याणोपाध्याय (१९वीं शती का उत्तरार्ध) हैं।[1]

सुरप्रियमुनिकथानक—अपने किये कर्मों का प्रायश्चित्त करनेवाले सुरप्रिय मुनि की कथा को सं० १६५६ में तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य कनककुशल ने संस्कृत छन्दों में रचा है।[2] इसका गुजराती अनुवाद उपलब्ध है तथा गुजराती में कई रास भी मिलते हैं।

सुव्रतऋषिकथानक—सुव्रत की कथा उपदेशप्रासाद में आई है। इस कथानक पर दो अज्ञातकर्तृक लघु रचनाएँ मिलती हैं।[3] दोनों प्राकृत में हैं। पहली प्रकाशित कृति में १५७ गाथाएँ हैं और दूसरी अप्रकाशित में केवल ५९ गाथाएँ।

कनकरथकथा—उत्तम पात्र के लिए भोजनदान के माहात्म्य पर कनकरथ सेठ की कथा कही गई है जो अज्ञातकर्तृक संस्कृत रचना के रूप में सं० १४८९ की मिलती है।[4] एक अन्य रचना कनकरथचरित्र[5] का भी उल्लेख मिलता है।

रणसिंहनृपकथा—धर्मदासगणि की उपदेशमाला पर रत्नप्रभसूरि द्वारा लिखी 'दोघट्टी' टीका (सं० १२३८) में एक रणसिंह की कथा आती है, जिसमें कहा गया है कि वह विजयसेन राजा और विजया रानी का पुत्र था। यह विजयसेन दीक्षा लेकर अवधिज्ञानी हुआ और उसने अपने सांसारिक पुत्र रणसिंह के लिए उवएसमाला की रचना की। माना जाता है कि यही विजयसेन धर्मदासगणि थे।

उक्त रणसिंह नृप की कथा पर एक प्राचीन कृति अज्ञातकर्तृक मिलती है[6] तथा दूसरी रचना खरतरगच्छीय सिद्धान्तरुचि के शिष्य मुनिसोम ने सं० १५४० में लिखी है।[7]

---

१. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २७.
२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१७; गुजराती अनुवाद—मुनि प्रतापविजयकृत, मुक्ति-कमल-जैन मोहनमाला (१२), बड़ौदा, सं० १९७६.
३. वही, पृ० ४४७; विजयदानसूरीश्वर ग्रन्थमाला, सूरत, सं० १९९५.
४-५. वही, पृ० ६७.
६. वही, पृ० ३२६.
७. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कूलवालककथा—कूलवाल की कथा आगमों में प्रसिद्ध है। उपदेशप्रासाद तथा शीलोपदेशमाला में इसकी कथाएँ आई हैं। इस पर अज्ञातकर्तृक एक रचना का उल्लेख मिलता है।[1]

प्रियंकरकथा—उपसर्गहरस्तोत्र के महत्त्व का वर्णन करने के लिए प्रियंकर नृप की कथा कही गई है। इसकी रचना तपागच्छ के विशालराज के शिष्य जिनसूरि ने संस्कृत गद्य में की है।[2]

गजसिंहपुराण—इसे गजसिंहराजचरित भी कहते हैं।[3] इसमें दशरथ नगरी के राजा गजसिंह के शीलादि गुणों से अनेक वैभव पाने का वर्णन है। निशीथवृत्ति में यह चरित्र विस्तार से दिया गया है। गुजराती में इस चरित्र को लेकर कई रास लिखे गये हैं।[4]

संस्कृत में अज्ञातकर्तृक दो रचनाएँ मिलती हैं।

संग्रामसूरकथा—सम्यक्त्व के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए राजा संग्रामसूर की कथा उपदेशप्रासाद में दी गई है।

इस पर स्वतंत्र रचना मेरुप्रभसूरिकृत मिलती है।[5] गुजराती में सं० १६७८ में तपागच्छीय शान्तिचन्द्र के शिष्य रत्नचन्द्र ने एक कृति लिखी है।[6]

संकाशश्रावककथा—प्रमादी मित्र के दोष को प्रकट करने के लिए संकाश श्रावक या संकाश श्रेष्ठी की कथा कही गई है। इस पर अज्ञातकर्तृक एक कृति संस्कृत में और एक प्राकृत[7] में मिलती है। संकाश की कथा हरिभद्रसूरि के उपदेशपद (गा० ४०३-४१२) में भी आई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९५-९६.

२. वही, पृ० २८०; देवचन्द्र लालभाई पु० ग्रन्थमाला (८०), बम्बई, १९३२; शारदाविजय जैन ग्रन्थमाला (१), भावनगर, १९२१.

३. वही, पृ० १०२.

४. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ६०, ६३, १९६, ५२४, ५२६.

५. जिनरत्नकोश, पृ० ४१०.

६. जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ९८९.

७. जिनरत्नकोश, पृ० ४०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण्यसारकथा या पुण्यधनचरित—जिनरत्नकोश के अनुसार ये दोनों शीर्षक एक ही कृति के हैं।[1] यह १३११ श्लोक-प्रमाण रचना है। इसमें जीवदया के माहात्म्य को बतलाया गया है। इसकी रचना शुभशीलगणि ने की है। इनकी भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति आदि अनेकों कृतियाँ मिलती हैं।

पुण्यसारकथा—साधर्मिक वात्सल्य के फल को प्रकट करने लिए श्रेष्ठिपुत्र पुण्यसार की कथा कही गई है।

इस कथा पर अनेक रचनाएँ मिलती हैं।

प्रथम रचना[2] जिनेश्वरसूरि के शिष्य वाचनाचार्य विवेकसमुद्रगणिविरचित है। इसकी रचना सं० १३३४ में जैसलमेर में हुई थी। इसमें ३४२ संस्कृत श्लोक हैं। इस कथा का संशोधन जिनप्रबोधसूरि ने किया है। विवेकसमुद्र की अन्य रचना नरवर्मचरित भी मिलती है।

इस कथा पर अजितप्रभसूरि और भावचन्द्रकृत[3] संस्कृत कृतियाँ भी मिलती हैं।

पुरन्दरनृपकथा—निरतिचार-संयम तथा उग्रशीलव्रत का पालन करने में पुरन्दर नृप का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इस कथा पर कई रचनाएँ हैं।

एक कृति देवेन्द्रसूरिकृत[4] है जिसका रचनाकाल ज्ञात नहीं है। दूसरी है भावदेवसूरि के शिष्य ब्र० मालदेवकृत।[5] मालदेव की गुजराती रचना भी सं० १६६९ की मिलती है। एक अज्ञातकर्तृक पुरन्दरनृपचरित्र[6] प्राकृत में मिलता है। ब्र० श्रुतसागर ने भी पुरन्दरविधिकथोपाख्यान लिखा है।[7] गुजराती में एतद्विषयक कई रचनाएँ मिलती हैं।[8]

सदयवत्सकुमारकथा—सत्पात्रदान और अभयदान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए संस्कृत और गुजराती में उक्त कुमार पर कई कथाएँ लिखी गई

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २५१; नानजीभाई पोपटचन्द्र द्वारा महावीर जैन सभा, खम्भात के लिए सन् १९१९ में प्रकाशित.

२-३. वही, पृ० २५१, २५२; इनमें से पहली जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार कार्यवाहक, सूरत से सं० २००१ में प्रकाशित तथा भावचन्द्रकृत हीरालाल हंसराज, जामनगर से सन् १९२५ में प्रकाशित.

४-७. वही, पृ० २५२-२५३.

८. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ३०८-३०९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। संस्कृत में हर्षवर्धनगणिकृत रचना उपलब्ध होती है।[1] इसका रचनासमय ज्ञात नहीं है।

देवदत्तकुमारकथा—संतोष और विरति तथा अनासक्ति-भावना के महत्त्व को बतलाने के लिए संस्कृत और गुजराती में देवदत्तकुमार के चरित्र का वर्णन हुआ है।[2] संस्कृत में उक्त कथा की अज्ञातकर्तृक कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं।

त्रिभुवनसिंहचरित—महीतल में करोड़ों उपाय हैं पर कर्मफल टाला नहीं जा सकता। कर्मफल की महत्ता को बतलाने के लिए इस चरित्र का चित्रण संस्कृत और गुजराती में किया गया है। संस्कृत गद्य में ६८४ ग्रन्थाग्र-प्रमाण एक अज्ञातकर्तृक रचना प्रकाशित हुई है।[3]

देवकुमारचरित—गुजराती जैन कवियों ने देवकुमार के कौतुक और आश्चर्य से पूर्ण चरित्र का सप्तव्यसन को त्यागकर गृहस्थ-धर्म में अदत्तादान आदि व्रतों को दृढ़ता से पालने के दृष्टान्तरूप में प्ररूपण किया है। संस्कृत में ५२७ ग्रन्थाग्र-प्रमाण एक रचना उपलब्ध होती है।[4] कर्ता और रचनाकाल ज्ञात नहीं है।

राजसिंहकथा—णमोकार मन्त्र के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए राजसिंह और रत्नवती की कथा पश्चिम भारत में प्रसिद्ध है। इस पर संस्कृत में एक अज्ञात-कर्तृक रचना मिलती है।[5] गुजराती में इस सम्बन्ध में कई रास मिलते हैं।[6] सं० १९०० में तपागच्छीय पद्मविजय के शिष्य रूपविजय ने ४१३ श्लोकों में राजसिंह-रत्नवतीकथा की रचना की है।[7]

मथनसिंहकथा—उपदेशप्रासाद एवं श्राद्धविधि में मायाकपट-विरमण के प्रसंग में तथा प्रतिक्रमण के महत्त्व को प्रकट करने के लिए महणसिंह का दृष्टान्त आया

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२.
२. वही, पृ० १७७; जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ८ २, ९३४.
३. जिनरत्नकोश, पृ० १६१; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२२-२३.
४. वही, पृ० १७७.
५. वही, पृ० ३३१.
६. जैन गुर्जर कविओ, भाग १-३ में कृतियों की अनुक्रमणी देखें.
७. जिनरत्नकोश, पृ० ३३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। उसी को संस्कृत छन्दों में मथनसिंहकथा[1] के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रचयिता एवं रचनाकाल अज्ञात है।

विद्याविलासनृपकथा—उत्तरवर्ती मध्ययुग में पुण्य के प्रभाव को बतलाने के लिए विद्याविलास नृप की कथा जैन कवियों को बड़ी रोचक लगी। इस पर संस्कृत और गुजराती में अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं। संस्कृत में गद्यात्मक एक रचना की हस्तलिखित प्रति सं० १४८८ की मिली है।[2] दूसरी गद्यात्मक रचना मलयहंस की मिली है।[3] परन्तु समय ज्ञात नहीं है। तीसरी[4] रचना पद्यात्मक देवदत्तगणिकृत है। अन्य रचनाएँ अज्ञातकर्तृक हैं।[5] इसी कथा से सम्बद्ध एक विद्याविलाससौभाग्यसुन्दरकथानक[6] भी मिलता है पर इसके कर्ता ज्ञात नहीं हैं।

मंगलकलशकथा—दान के महत्त्व को प्रकट करने के लिए मंगलकलश-कुमार की कथा पर अनेकों ग्रन्थ लिखे गये हैं। यह कथा उपदेशप्रासाद में भी आई है।

इस पर उदयधर्मगणिकृत सं० १५२५ की संस्कृत रचना मिलती है।[7] दूसरी रचना हंसचन्द्र के शिष्य (अज्ञातनामा) की है।[8] तीसरी भावचन्द्र की है।[9] गुजराती में तो एतद्विषयक बीसियों रचनाएँ मिलती हैं।[10]

विनयंधरचरित—जिनमत के दृढ़ श्रद्धान के महत्त्व के लिए विनयंधर नृप की कथा हरिषेण के बृहत्कथाकोश में आई है। उक्त कथा पर प्राकृत में एक अज्ञात-कर्तृक रचना[11] तथा संस्कृत गद्य[12] में शीलदेवसूरिकृत रचना मिलती है।

मत्स्योदरकथा—शान्तिनाथचरित में पुण्य (धर्म) की महिमा को प्रकट

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

२-६. वही, पृ० ३५६.

७. वही, पृ० २९९.

८. वही.

९. वही; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४.

१०. जैन गुर्जर कविओ, तीनों भागों की कृतियों की अनुक्रमणिका देखें.

११-१२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने के लिए मत्स्योदरनृप की कथा आई है। इसी कथा पर उक्त अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[1] गुजराती में इस कथा पर अनेक रास लिखे गये हैं।

वीरभद्रकथा—अकाल में श्रुतपाठ के दोष को बतलाने के लिए वीरभद्र मुनि की कथा हरिषेण के बृहत्कथाकोश में दी गई है। वीरभद्र की कथा को लेकर देवभद्राचार्य द्वारा रचित वीरभद्रचरित्र[2] एवं अज्ञातकर्तृक वीरभद्रकथा[3] तथा वीरभद्रचरित्र[4] मिलते हैं।

कुरुचन्द्रकथानक—कुरुचन्द्र नृपति की कथा हरिभद्र के उपदेशपद की टीका तथा अन्य औपदेशिक कथा-साहित्य में आती है। उसी चरित को लेकर संस्कृत गद्य में उक्त चरित की रचना की गई है।[5] इसकी प्राचीन प्रति सं० १४८९ की मिली है पर इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इस कथा को दानप्रदीप (सं० १४९९) में वसतिदान के सम्बन्ध में दिया गया है।

प्रज्ञाकरकथा—शयनदान के लिए प्रज्ञाकर राजा की कथा दानप्रदीप (चारित्ररत्नगणि) में दी गई है। उसी पर एक स्वतंत्र रचना अज्ञातकर्तृक मिलती है।[6]

सुबाहुकथा—विधिवत् पात्रदान के महत्त्व को प्रकट करने के लिए सुबाहु मुनि या नृप के चरित पर अज्ञातकर्तृक तीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[7] पाटन सूत्रीपत्र के अनुसार दो प्राकृत रचनाएँ हैं।[8] एक में २२८ गाथाएँ और दूसरी में २१५ गाथाएँ हैं। एक रचता अज्ञातकर्तृक भी है।[9] किसी का रचनाकाल नहीं दिया गया है।

गुजराती में जिनहंससूरि के शिष्य पुण्यसागर ने सं० १६०४ में एक सुबाहुसंधि का[10] निर्माण किया था।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०.

२-४. वही, पृ० ३६३.

५. वही, पृ० ९४.

६. वही, पृ० २५७.

७-९. वही, पृ० ४४५; पाटन ग्रन्थ-भण्डारसूची, भाग १, पृ० ६१, ९१, १९३. १६१.

१०. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १८८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिबलधीवरचरित—वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में जीवदया के महत्त्व को समझाने के लिए हरिबल धीवर की कथा आती है। उसी कथानक को लेकर संस्कृत में हरिबलकथा एवं हरिबलचरित नामक अज्ञातकर्तृक रचनाएँ तथा हरिबलसम्बन्ध नामक प्राकृत रचना का उल्लेख मिलता है।[१] २०वीं शती के तपागच्छीय आचार्य यतीन्द्रसूरि ने सं० १९८४ में हरिबलधीवरचरित की रचना संस्कृत गद्य में की है।[२]

सुन्दरनृपकथा—इसमें १६४ श्लोक हैं।[३] इसमें सुन्दरनृप द्वारा स्वदार-सन्तोषव्रत पालन करने की कथा वर्णित है। इस पर गुजराती में सुन्दरराजारास (सं० १५५१) आगमगच्छ के क्षमाकलशकृत मिलता है।

कुलध्वजकथानक—इसमें परस्त्रीत्यागव्रत के माहात्म्य को बतलाने के लिए कुलध्वज कुमार[४] की कथा वर्णित है। इस संस्कृत रचना के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है। गुजराती में कक्कसूरि के शिष्य कीर्तिहर्ष द्वारा सं० १६७८ में रचित कुलध्वजकुमाररास भी मिलता है।[५]

सुसढचरित—राजा की आज्ञा भंग करने से इस भव और परभव में अनेक दुःख मिलते हैं। सुसढ ने चतुर्थ, षष्ठ-व्रत कर उन दुःखों को पार कर लिया। महानिशीथ की अन्तिम चूला में सुसढ का चरित वर्णित है। उसको लेकर देवेन्द्र-सूरि ने प्राकृत गाथाओं में इसकी रचना की है।[६] इसकी हस्तलिखित प्रतियों में ४८७ से लेकर ५२० प्राकृत-गाथाएँ मिलती हैं।[७] इसी चरित्र पर लब्धिमुनि (२०वीं शती) ने संस्कृत में एक कृति रची है।[८] गुजराती में इस कथा पर कई रचनाएँ हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९; हरिषेण के बृहत्कथाकोश में ऐसी ही मृगसेन धीवर की कथा (संख्या ७२) दी गई है।

२. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४१.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५.

४. वही, पृ० ९५.

५. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० ९२.

६-७. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७-४४८; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित.

८. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० ३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरसुन्दरनृपकथा—रत्नशेखरसूरिकृत श्राद्धविधि की स्वोपज्ञवृत्ति में श्रावक के गुणों को बतलाने के लिए सुरसुन्दर नृप और उसकी पाँच पत्नियों की कथा दी गई है। उस पर सुरसुन्दरनृपकथा (प्राकृत) नामक अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख मिलता है।[1]

नरसुन्दरनृपकथा—हरिभद्रकृत उपदेशपद की टीका में तीव्र भक्ति के उदाहरणरूप नरसुन्दरनृपकथा कही गई है। इस पर स्वतन्त्र अज्ञातकर्तृक नरसुन्दरनृपकथा का उल्लेख मिलता है।[2] इस पर दूसरी रचना नरसंवादसुन्दर[3] मिलती है जिसके लेखक राजशेखर के शिष्य रत्नमण्डनगणि माने गये हैं। रत्नमण्डन सम्भवतः वे ही हैं जिनकी भोजप्रबन्ध, उपदेशतरंगिणी, पृथ्वीधरप्रबन्ध एवं सुकृतसागर रचनाएँ मिलती हैं।

मेघकुमारकथा—मानवृत्ति के कुपरिणाम-सूचन के लिए उपदेशवृत्ति में मेघकुमार की कथा आई है। उसे ही स्वतंत्र रचना के रूप में प्रस्तुत कृति[4] में प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थकर्ता का नाम अज्ञात है।

सहस्रमल्लचौरकथा—जैनधर्म की आराधना का महत्त्व बतलाने के लिए शुभवर्धनगणिकृत वर्धमानदेशना (प्राकृत) में उक्त कथा दी गई है। उस पर अज्ञातकर्तृक सहस्रमल्लचौरकथा[5] का उल्लेख मिलता है।

सागरचन्द्रकथा—सम्यग्ज्ञान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए वर्धमानदेशना में सागरचन्द्र सेठ की कथा दी गई है। उसी को लक्ष्यकर अज्ञातकर्तृक एक रचना प्राकृत में मिलती है।[6] इसका रचनासमय ज्ञात नहीं है।

सागरश्रेष्ठिकथा—देवद्रव्यग्रहण और लोभ के कुफल को बताने के लिए सागरसेठ की कथा उपदेशप्रासाद में दी गई है। उसी पर अज्ञातकर्तृक एक संस्कृत कथा उपलब्ध होती है।[7]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४६.
२. वही, पृ० २०५.
३. वही, पृ० २०५, ४०६; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१९.
४. वही, पृ० ३१३.
५ वही, पृ० ४२९.
६. वही; उपदेशमाला १८१, उपदेशप्रासाद १३-१६० में भी अन्य प्रसंगों में सागरचन्द्र-कथा दी गई है।
७. जिनरत्नकोश, पृ० ४२९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दयतिकथा—यह ६०० ग्रन्थाग्र परिमाणवाली अज्ञातकर्तृक रचना है।[1] इसमें बताया है कि नन्द राजकुमार साधु हो जाने पर भी अपनी सुन्दरी का ही ध्यान किया करता था; नन्द का भाई अपने कई चमत्कारपूर्ण कार्यों द्वारा नन्द को सुन्दरी से विरक्त करता है। एतद्विषयक एक नन्दोपाख्यान भी मिलता है।[2]

यह कथा हरिभद्रकृत उपदेशपद की टीका (मुनिचन्द्रकृत) में आई है। यह महाकवि अश्वघोषकृत सौन्दरनन्द की कथावस्तु का ही अनुकरण लगता है।

हंसराज-वत्सराजकथा—पुण्य के फल से रूप, आयु, कुल, बुद्धि आदि मिलते हैं। पुण्य के ही फल को बतलाने के लिए हंसराज-वत्सराज नरेशों के चरित वर्णित किये गये हैं।

इस कथा पर मलधारीगच्छ के गुणसुन्दरसूरि के शिष्य सर्वसुन्दरसूरि ने एक कृति सं० १५१० में लिखी। इसे कथासंग्रह भी कहते हैं।[3]

दूसरी कृति वाचक राजकीर्तिकृत है जो १०५० ग्रन्थाग्ररूप में है।[4] एक अज्ञातकर्तृक रचना में २४६ श्लोक हैं।[5] गुजराती में जिनोदयसूरि (सं० १६८०) कृत हंसराजवच्छराजरास मिलता है।[6]

धनदचरित—जैन कथा और इतिहास में धनद नामक कई व्यक्ति हो गये हैं। धन्यशालिभद्र के धन्यकुमार को भी धनद कहा गया है और गुजराती में इसके चरित पर धनदरास बने हैं। हरिषेण के कथाकोश में भी असत्यपरिहार के लिए एक धनद की कथा दी गई है। मध्यकाल में शतकत्रय के रचयिता धनदराज श्रावक को भी धनद कहा गया है।

धनदचरित्र नाम की तीन रचनाएँ अब तक मिली हैं। एक अज्ञातकर्तृक धनदकथानक ४०० श्लोक-प्रमाण है जो **'अत्रैव सुविस्तीर्णे'** पद[7] से प्रारम्भ होती है। दूसरी कृति सं० १५९० में हुमायूँ बादशाह के राज्य में काष्ठसंघीय श्री गुण-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९९.

२. वही, पृ० २०१.

३-६. वही, पृ० ४५८.

७. वही, पृ० १८६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भद्रसूरिदेव के शिष्य ने लिखी थी।[1] तीसरी[2] रचना भानुचन्द्रगणि के शिष्य भावचन्द्र की है जो प्रकाशित है।

निमिराजकाव्य—इसमें निमिराज का चरित्र है। यह काव्य ५००० श्लोक-प्रमाण है।[3] नवरसात्मक होते हुए भी यह शान्तरस-प्रधान है। इसकी रचना प्रसिद्ध अध्यात्मी एवं महात्मा गांधी के मान्य गुरु कवि रायचन्द्र ने की है। कवि का देहोत्सर्ग मात्र ३३ वर्ष की उम्र में सं० १९५७ में राजकोट में हुआ था। इनकी अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

परमहंससंबोधचरित—हरिभद्र की कथा से सम्बद्ध हंस-परमहंस के चरित्र को लेकर उक्त संस्कृत रचना का निर्माण खरतरगच्छ के गुणशेखरगणि के शिष्य नयरंग ने सं० १६२४ में किया। इसमें ८ सर्ग हैं।[4]

अन्य लघु कथाग्रन्थों में निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख मिलता है। विस्तार-भय से सबका परिचय देना सम्भव नहीं है :

अभयसिंहकथा[5] (संस्कृत, १३८ ग्रन्थाग्र), आर्यआषाढकथा[6], इन्द्र-जालिककथा[7] (रत्नशेखर), गंगदत्तकथानक[8] (सं० १६८२), गण्डूरायकथा[9], चण्डपिंगलचोरकथा[10], कर्मसारकथा[11], काकजंघकोकासककथा[12] या कोकासक-कथानक, कुसुमसार[13] (१७०० गाथाएँ, नेमचन्द्र, सं० १०९९), कृतकर्म-राजर्षि[14], खर्परचौरकथा[15] (गद्य), गोधनकथा[16] (संस्कृत), चन्द्रोदयकथा[17], चामरहारिकथा[18], जिनदासकथा[19], दृढप्रहारिकथा[20], दृष्टान्तरहस्यकथा[21], देव-कुमार-प्रेतकुमारकथा[22] (प्रोषधव्रत पर), धनपतिकथा[23] (गद्य, सं० १४८९), धन्नाकाकदीकथा[24], धर्मपालकथा[25] (संस्कृत), धर्ममित्रकथा[26], धर्मराजकथा[27]

---

१. *भट्टारक सम्प्रदाय*, पृ० २२२. २. *जिनरत्नकोश*, पृ० १८६. ३. वही, पृ० २१२; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ७१२. ४. जिन-रत्नकोश, पृ० २३६; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २८. ५. जिनरत्नकोश, पृ० १३. ६. वही, पृ० ३४. ७. वही, पृ० ३९. ८. वही, १०१. ९. वही, पृ० १०३. १०. वही, पृ० ११३. ११ वही, पृ० ७३. १२. वही, पृ० ८३. १३. वही, पृ० ९४. १४. वही, पृ० ९५. १५. वही, पृ० १०१. १६. वही, पृ० ११०. १७. वही, पृ० १२१. १८. वही, पृ० १२२. १९. वही, पृ० १३५. २०-२१. वही, पृ० १७७. २३-२४. वही, पृ० १८७. २५. वही, पृ० १९०. २६. वही, पृ० १९१. २७. वही, पृ० १९२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(सातवें व्रत पर), धव्यसुन्दरीकथा[१] (प्राकृत), धूर्तचरित्रकथा[२], धृष्टकथा[३] (पुण्यफल पर), ध्वजभुजंगमकथा[४], नन्दिषेणकथा[५], नन्ददत्तकथा[६], नरदेवकथा[७], नरब्रह्मचरित्र[८], नागकेतुकथा[९], नागश्रीकथा[१०], निधिदेव-भोगदेवकथानक[११] (प्राकृत), पद्मलोचनकथा[१२], पद्माकरकथा[१३], पुण्याढ्यनृपकथा[१४], पुन्नडकथा[१५], फलधर्मकुटुम्बकथा[१६], भद्रनन्दिकुमारकथा[१७], भद्रश्रेष्ठिकथा[१८], मालाकार-कथा[१९], यवराजर्षिकथा[२०], राजहंसकथा[२१], लोकापवादकथा[२२], वज्रस्वामिकथा[२३], वत्सराजकथा[२४] (सर्वसुन्दरसूरि, अजितप्रभसूरि), वज्रसेनचरित्र[२५], वसुभूति-कथा[२६], वसुभूतिवसुमित्रकथा[२७], वसुराजकथा[२८], वस्त्रदानकथा[२९], विजयकुमार-चरित्र[३०] (प्राकृत), विद्यापतिश्रेष्ठिकथा[३१], विद्यासागरश्रेष्ठिकथा[३२] (गुणाकरकवि), विद्युच्चरमुनिचरित्र[३३], विद्रुमचरित्र[३४] (रामचन्द्रसूरि), विश्वसेनकुमारकथा[३५] (प्राकृत), वीराङ्गदकथा[३६] (हरिभद्र), वैश्रवणकथा[३७], शामदेववामदेवकथा[३८], शालक्षमीयकथा[३९], शिवकुमारकथा[४०], साहसमल्लकथा[४१], सावद्याचार्यकथा[४२], सुगुणकुमारकथा[४३], सुनक्षत्रचरित्र[४४], सुमनगोपालचरित्र[४५], सुवर्णभद्राचार्यचरित्र[४६] (पद्मनाभकवि), सोममुनिकथा[४७], हंसपालकथा[४८], हरिश्चन्द्रनृपतिकथानक[४९], हुण्डिकचोरकथा[५०], संविभागव्रतकथा[५१] आदि ।

स्त्रीपात्र-प्रधान रचनाएँ :

तरंगवईकहा (तरंगवतीकथा)—यह प्राकृत कथा-साहित्य की सबसे प्राचीन कथा है ।[५२] इसका उल्लेख अनुयोगद्वारसूत्र (१३०), दशवैकालिकचूर्णि

१. जिनरत्नकोश, पृ० १९७. २. वही, पृ० १९८. ३-६. वही, पृ० ९९. ७-८. वही, पृ० २०४. ९. वही, पृ० २०९. १०. वही, पृ० २१०. ११. वही, पृ० २१२. १२-१३. वही, पृ० २३४. १४-१५. वही, पृ० २५२. १६. वही, पृ० २८०. १७-१८. वही, पृ० २९१. १९. वही, पृ० ३०९. २०. वही, पृ० ३१८. २१. वही, पृ० ३३१. २२-२३. वही, पृ० ३४०. २४. वही. २५. वही, पृ० ३४२. २६-२८. वही, पृ० ३४५. २९. वही, पृ० ३४६. ३०. वही, पृ० ३५३. ३१. वही, पृ० ३५५. ३२-३४. वही, पृ० ३५६. ३५. वही, पृ० ३६१. ३६. वही, पृ० ३६३. ३७. वही, पृ० ३६६. ३८. वही, पृ० ३८१. ३९. वही, पृ० ३८२. ४०. वही, पृ० ३८३. ४१-४२. वही, पृ० ४३५. ४३. वही, पृ० ४४४. ४४. वही, पृ० ४४५. ४५. वही, पृ० ४४६. ४६. वही, पृ० ४४७. ४७. वही, पृ० ४५२. ४८. वही, पृ० ४५९. ४९. वही, पृ० ४६०. ५०. वही, पृ० ४६२. ५१. वही, पृ० ४०५. ५२. वही, पृ० १५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३, पृ० १०९) तथा विशेषावश्यकभाष्य (गाथा १५०८) में मिलता है। निशीथचूर्णि में मलयवती और मगधसेना के समान तरंगवती को लोकोत्तर धर्मकथा कहा गया है।[1] उद्योतनसूरि ने चक्रवाल युगल से युक्त सुन्दर राजहंसों को आनन्दित करनेवाली तरंगवती की प्रशंसा की है। इसे वहाँ संकीर्णकथा कहा गया है। इसी तरह धनपाल कवि ने तिलकमंजरी में, लक्ष्मणगणि ने सुपासनाहचरिय में तथा प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभावकचरित में तरंगवती का उदात्त शब्दों में स्मरण किया है।[2]

तरंगवती तो अपने मूल रूप में हमें उपलब्ध नहीं है पर उसका संक्षित रूप १६४२ प्राकृत गाथाओं में 'तरंगलोला' नाम से मिलता है।

रचयिता और रचनाकाल—तरंगवतीकथा के रचयिता एक प्राचीन आचार्य पादलिप्तसूरि हैं। कुवलयमाला की प्रस्तावना-गाथाओं में इन्हें राजा सातवाहन की गोष्ठी की शोभा कहा है। इनका विशेष परिचय प्रभावकचरित में दिया गया है। प्रोफेसर लायमन ने इसका रचनाकाल ईस्वी सन् की दूसरी-तीसरी शताब्दी स्वीकार किया है।

तरंगलोला—इसे संक्षिप्ततरंगवती[3] भी कहते हैं। इसमें कथावस्तु को चार खण्डों में विभक्त किया गया है। यह एक अद्भुत शृंगारकथा है जिसका अन्त धर्मोपदेश में होता है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है: चन्दनबाला के नेतृत्व में साध्वीसंघ में सुव्रता आर्या थी जिसे अपने रूप-सौन्दर्य का गर्व था। वह एक श्राविका को अपनी जीवनकथा कहती है—वह एक धनी वणिक् की

---

१. तरंगलोला की भूमिका में उद्धृत, पृ० ७.

२. कुवलयमाला, पृ० ३, गाथा २०; तिलकमंजरी, श्लोक २३; सुपासनाहचरिय, पुव्वभव, गा० ९; प्रभावकचरित, पृ० २९.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १५८; नेमिविज्ञान ग्रन्थमाला, सं० २०००; जर्मन विद्वान् अर्नेस्ट लायमन ने इसका जर्मन भाषान्तर प्रकाशित किया है। इस भाषान्तर का गुजराती अनुवाद नरसिंह भाई पटेल ने जैन साहित्य संशोधक (द्वितीय खण्ड, पूना, १९२४) में प्रकाशित किया; पृथक् पुस्तक के रूप में यह अनुवाद बबलचन्द्र केशवलाल मोदी, अहमदाबाद से सन् १९२४ में प्रकाशित; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दरी पुत्री थी। एक दिन वह उपवन में क्रीड़ा करने गई तो सरोवर में उसने हंसयुगल को देखा। इससे वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ी क्योंकि उसे जातिस्मरण से मालूम पड़ा कि वह पूर्वभव में इसी प्रकार हंसयुगल थी। उसके पति को एक शिकारी ने मार डाला था। तब उसके प्रेम के कारण वह भी उसके साथ जल मरी थी।

अब वह अपने पूर्वजन्म के पति को ढूँढ़ने लगी। उसने एक सुन्दर चित्रपट बनाया जिसमें हंसयुगल का जीवन चित्रित था। इसकी सहायता से उसने अनेकों वियोगों, विरहों के बाद अपने पूर्वजन्म के पति को ढूँढ़ लिया। वे दोनों अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध नाव में बैठकर भाग निकले और गन्धर्व विधि से विवाह कर लिया। परदेश में भटकते समय उन्हें चोरों ने पकड़ लिया और काली देवी के सामने बलि चढ़ाने ले गये पर किसी तरह उनका बचाव हुआ। माता-पिता ने उन्हें खोजकर उनका विधिवत् विवाह कर दिया।

एक समय वे दोनों पति-पत्नी वसन्त ऋतु में वनविहार कर रहे थे। वहाँ उन्हें उस मुनि से उपदेश सुनने को मिला जो कि उनके पूर्वजन्म में नर हंस को मारनेवाला शिकारी था। इससे वे इतने प्रभावित हुए कि उन्हें संसार से विरक्ति हो गई और दोनों मुनि एवं साध्वी बन गये। वही तरंगवती मैं सुव्रता आर्या हूँ।

यह आत्मकथा उत्तमपुरुष में वर्णित है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस तरंगलोला के रचयिता वीरभद्र आचार्य के शिष्य नेमिचन्द्रगणि हैं जिन्होंने मूल तरंगवतीकथा के लगभग १००० वर्ष पश्चात् यश नामक अपने शिष्य के स्वाध्याय के लिए इसे लिखा था। नेमिचन्द्र के अनुसार[१] पादलिप्त ने तरंगवती की रचना देशी भाषा में की थी जो अद्‌भुत रससम्पन्न एवं विस्तृत थी और केवल विद्वद्‌भोग्य थी। लेखक के सम्बन्ध में अन्य बातें ज्ञात नहीं हैं।

---

१. नेमिचन्द्रगणि ने पादलिप्त की तरंगवई के सम्बन्ध में निम्न गाथाएँ लिखी हैं :

पालित्तएण रइया वित्थरओ तह य देसिवयणेहिं।
नामेण तरंगवई कहा विचित्ता य विउला य॥
न य सा कोई सुणेइ नो पुण पुच्छइ नेव य कहेइ।
विउसाण नवर जोगा इयरजणो तीए किं कुणउ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुवलयमाला—यद्यपि यह स्त्री-प्रधान कथा नहीं है फिर भी कथा[1] को आकर्षक बनाने के लिए यह नाम दिया गया है। १३००० श्लोक-प्रमाण यह बृहत् कृति महाराष्ट्री प्राकृत में गद्य-पद्य मिश्रित चम्पू शैली में लिखित प्रसादपूर्ण रचना है। इसमें महाराष्ट्री के साथ साथ कहीं-कहीं कुतूहलवश, तो कहीं वचन-वशीभूत होकर संस्कृत, अपभ्रंश, द्राविड़ी और पैशाची एवं देशी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। यह बात रचयिता ने इन शब्दों में कही है :

पाइय भासा रइया मरहट्ठय देसिवण्णय णिबद्धा।
सुद्धा सयल-कहच्चिय तावस-जिण-सत्थ वाहिल्ला॥
कोऊहलेण कत्थइ पर-वयण-वसेण सक्कय णिबद्धा।
किंचि अपब्भंसकया दाविय पेसाय आसिल्ला॥

रचयिता ने इसे सर्गों, प्रकरणों अथवा अध्यायों में विभक्त नहीं किया है और न कण्डिकाओं का ही क्रमांक दिया है। इसकी अब तक केवल दो ही हस्त-प्रतियाँ—एक ताड़पत्र पर और दूसरी कागज पर मिली हैं। इससे लगता है कि इसका प्रचार बहुत कम हुआ। इसका एक कारण इसकी पाण्डित्यपूर्ण भाषा और शैली भी है। इसमें कहीं रूपकों की बहुलता, तो कहीं दीर्घ ललितपद; कहीं उल्लापक कथा, तो कहीं कुलक; कहीं गाथाएँ एवं द्विपदी गीतक, तो कहीं द्विवलय, त्रिवलय एवं चतुर्वलय; कहीं दण्डक रचना, तो कहीं नाराच रचना; कहीं वृत्त, तो कहीं तरङ्ग रचना, और कहीं मालावचन, विन्यास आदि दिखाई पड़ते हैं।

कथा में एकरसता या नीरसता को हटाने के लिए कुवलयमालाकार ने नगर-वर्णन[2], युद्ध-वर्णन[3], प्रकृति-चित्रण[4], विवाह-वर्णन[5] आदि प्रचुररूपेण

---

१. डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित और दो भागों में प्रकाशित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला (क्रमांक ४५-४६), भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९५९ और १९७०. दूसरे भाग में अंग्रेजी में लिखी विस्तृत प्रस्तावना है तथा रत्नप्रभसूरिविरचित संस्कृत कुवलयमालाकथा दी गई है।

२. पृ० ७.

३. पृ० १०.

४. पृ० १६.

५. पृ० १७०, १७१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिये हैं और यथाशक्ति महाकाव्य-लक्षण से विभूषित किया है। इसमें वसुदेवहिण्डी और समराइच्चकहा के समान केले के स्तम्भ की परत की तरह एक कथा से दूसरी कथा और दूसरी कथा से तीसरी कथा निकलती गई है तथा वटप्ररोह के समान एक शाखा से दूसरी शाखा फूटती गई है। इस तरह की कुल २६ कथाएँ कुवलयमाला में वर्णित हैं और इनका सिलसिला तब तक समाप्त नहीं हुआ है जब तक मुख्य कथा समाप्त नहीं हुई है।

रूपरेखा—इसमें कथाकार ने बतलाया है कि इस दुःखपूर्ण संसार में भ्रमण का कारण क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह है और इनके प्रभावों का दिग्दर्शन पाँच रूपकों द्वारा कथात्मक ढङ्ग से करने के लिए चण्डसोम, मानभट्ट, मायादित्य, लोभदेव और मोहदत्त के पाँच भवों की रोचक कथा गढ़ी गई है। इन पाँच भवों में तीन मनुष्यभव हैं और अन्तराल के दो देवभव हैं। प्रथम मानवभव के चण्डसोमादि दीक्षा ले समाधिमरण कर देवगति में जाते हैं और परस्पर वचनबद्ध होते हैं कि जहाँ भी उनका आगे पुनर्जन्म हो, एक दूसरे को प्रतिबुद्ध करें। वे सब अन्तराल देवगति से आकर द्वितीय मानवभव में क्रमशः सिंह (पशु), कुवलयचन्द्र, कुवलयमाला, सागरदत्त और पृथ्वीसार नाम से हुए। इस जन्म में उन्होंने एक-दूसरे को प्रतिबुद्ध करने का काम किया जिससे अन्तराल देवभव में जाकर वहाँ से भग० महावीर के समय में तृतीय मानवभव में क्रमशः मणिरथकुमार, स्वयम्भूदेव, महारथकुमार, वज्रगुप्त और कामगजेन्द्र के रूप में जन्म लिया। पीछे भगवान् महावीर से दीक्षा ले अन्तकृत केवली होकर मुक्त हो सके।

लेखक द्वारा कथा का नाम द्वितीय मानवभव के एक पात्र कुवलयमाला के नाम से रखकर कथा के प्रति पाठकों का कुतूहल-उत्पादन करना ही लक्ष्य है।

कथावस्तु—अयोध्या नगरी के दृढवर्मा राजा और प्रियंगुश्यामा रानी को देवी के प्रसाद से एक पुत्र हुआ जिसका नाम कुवलयचन्द्र रखा गया। बड़े होने पर उसने सभी क्रियाओं और कलाओं में प्रवीणता प्राप्त कर ली। इस कुमार के साथ राजा एक दिन अश्वक्रीड़ा के लिए जा रहा था। कि कुमार का अश्वसहित हरण हो गया। आकाशमार्ग से जाते हुए बचने का कोई उपाय न देख कुमार ने अश्व के पेट में छुरा भोंक दिया और तब वह अश्वसहित भूमि पर नीचे आ गया। उसी समय कोई ध्वनि उसे यह कहती सुन पड़ी कि 'कुमार कुवलयचन्द्र, दक्षिण दिशा में एक कोस दूर जाओ, वहाँ तुम्हें कोई अपूर्व वस्तु दिखाई देगी।' कुमार ने वहाँ एक अटवी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में सागरदत्त मुनि को देखा। वे एक सिंह को संलेखना करा रहे थे। कुमार ने उनसे अश्व द्वारा अपने हरण का कारण पूछा। मुनिराज ने कहा—एक समय कौशांबी का राजा पुरन्दरदत्त अपने मंत्री वासव के साथ उद्यान में गया। वहाँ आचार्य धर्मनन्दन चारगतिस्वरूप संसार के विषय में अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे थे। राजा ने वहाँ बैठे अनेक दीक्षितों याने चण्डसोम, मानभट्ट, मायादित्य, लोभदेव और मोहदत्त के सम्बन्ध में प्रश्न किये और उत्तर में आचार्य ने उन पात्रों के वृत्तान्त कहे। उन्होंने कहा कि ये सब पूर्व जन्मों में क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह के वशीभूत हो संसार में घूमते फिरे और फिर दीक्षा लेकर संयम का पालन करते रहे। फिर धर्मनन्दन आचार्य वहाँ से अन्यत्र विहार कर जाते हैं। चण्डसोम आदि दीक्षित मरकर देवलोक में उत्पन्न हुए। उन्होंने वहाँ एक-दूसरे को सम्बोधित करने की प्रतिज्ञा की थी और एक समय धर्मनाथ तीर्थंकर के समवसरण में पहुँच कर इन पाँचों देवों ने अपने भविष्य के सम्बन्ध में प्रश्न किये थे। कुछ समय बाद लोभदेव का जीव देवलोक से च्युत होकर मनुष्यलोक में सागरदत्त व्यापारी के रूप में जन्म लेता है और कालान्तर में दीक्षा लेकर सागरदत्त मुनि हो जाता है जो कि मैं (सागरदत्त मुनि) तुम्हारे सामने हूँ। पूर्वभव के मानभट्ट का जीव तुम (पूछनेवाले) कुवलयचन्द्र हो और मायादत्त का जीव दक्षिण देश के राजा की पुत्री 'कुवलयमाला' हुआ है और चण्डसोम का जीव यह सिंह है जिसे मैं प्रतिबोध दे रहा हूँ, तथा तुम और कुवलयमाला से पृथ्वीसार नामक कुमार होगा।

सागरदत्त मुनि की सूचनानुसार कुवलयमाला को प्रतिबोध कराने के लिए कुवलयचन्द्र दक्षिण देश की ओर तत्काल रवाना हुआ।[1] वहाँ विजयानगरी के राजा विजयसेन और रानी भानुमती से कुवलयमाला उत्पन्न हुई थी।

---

१. कुवलयमाला, पृ० १११, कण्डिका १९६. मार्ग में शान्त बैठे हुए सिंह को देखकर कुवलयचन्द्र को पूर्वजन्म का सम्बन्ध स्मरण हो आता है और उस सिंह की ऐसी स्थिति देख वह भगवान् जिनेन्द्र के वचन स्मरण करता है : 'यो मे परियाणइ सो गिलाणं पडिवरइ। यो गिलाणं पडिवरइ सो ममं परियाणइ'। यह वाक्य हमें पालि महावग्ग (पृ० ३१७) में आये उस बुद्ध-वचन की याद दिलाता है जिसमें कहा गया है : 'यो भिक्खवे मं उपट्ठहेय्य सो गिलानं उपट्ठहेय्य।'। यह अद्भुत साम्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह कन्या समस्त पुरुषों से विद्वेष करती थी, किसी पुरुष का मुँह भी नहीं देखना चाहती थी। इसके सम्बन्ध में एक मुनिराज ने बतलाया था कि अयोध्या के राजा का पुत्र कुवलयचंद्र समस्यापूर्ति द्वारा इसे वश में कर विवाह करेगा।

मार्ग में यक्ष जिनेश्वर, वनसुन्दरी एणिका, राजपुत्र दर्पफलिह आदि का वृत्तान्त वह जानता है, फिर विजयानगरी में जाकर कुवलयमाला की पादपूर्त्ति कर उससे विवाह कर लेता है और उसके साथ स्वदेश लौट आता है। मार्ग में भानुकुमार मुनि के दर्शनकर वह उनसे संसारचक्र के चित्रपट का वृत्तान्त जानता है।

कुवलयचन्द्र के लौट आने पर राजा दृढवर्मा (उसका पिता) दीक्षा ले लेता है। कुवलयमाला को कुछ काल पश्चात् एक पुत्र होता है। उसका नाम पृथ्वीसार रखा गया। समय आने पर कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला दोनों पृथ्वीसार कुमार को राज्यभार सौंप दीक्षा ले लेते हैं। बहुत काल तक राज्य-सुख भोगकर पृथ्वीसार भी दीक्षा ले लेता है। उधर सागरदत्त मुनि और सिंह भी मरणोपरान्त देवरूप में जन्म लेते हैं। देवायु पूर्ण होने पर वहाँ से च्युत होकर कुवलयचन्द्र का जीव भगवान् महावीर के समय में काकन्दीनगरी में कंचनरथ राजा के शिकार-व्यसनी पुत्र मणिरथकुमार के रूप में जन्मा। कंचनरथ राजा की प्रार्थना पर भग० महावीर इस पुत्र के एक भव की कथा कहते हैं जिसे सुनकर वैराग्य प्राप्तकर मणिरथकुमार उनके पास दीक्षित हो जाता है। इधर मोहदत्त का जीव देवलोक से च्युत होकर रणगजेन्द्र के पुत्र कामगजेन्द्र के रूप में जन्म लेता है। वह अपने भोगे अनुभवों की सत्यता भगवान् महावीर के मुख से सुनकर दीक्षा ले लेता है। लोभदेव का जीव देवलोक से च्युत होकर ऋषभपुर नगर के राजा चन्द्रगुप्त का पुत्र वज्रगुप्त होता है। प्राभातिक के शब्दों से प्रतिबोध पाकर वह भी भग० महावीर के पास दीक्षा ले लेता है। चण्डसोम का जीव भी देवलोक से च्युत होकर ब्राह्मण यज्ञदेव के पुत्र स्वयम्भूदेव के रूप में जन्म लेता है और गरुड के वृत्तान्त से प्रतिबुद्ध होकर भ० महावीर के पास दीक्षित हो जाता है। मायादित्य का जीव देवलोक से च्युत होकर राजगृह नगरी में राजा श्रेणिक का पुत्र महारथ होता है और अपने स्वप्न का भग० महावीर के मुख से स्पष्टीकरण सुन वैराग्य प्राप्तकर दीक्षा ले लेता है। आयु का अन्त होने पर ये पाँचों अन्तिम सल्लेखना स्वीकारकर अन्तकृत् केवली हो सिद्धलोक जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचों पात्रों में से केवल दो पात्र कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला ही इस कथा के मुख्य पात्र बताये गये हैं। उन्हें ही कथा के नायक-नायिका बनाकर शेष पात्रों की कथाएँ उनकी कथा से बाँधकर सारी कथा को अत्यन्त रोचक बनाने का प्रयत्न किया गया है।

यह कथा-ग्रन्थ घटना-वैचित्र्य और उपाख्यानों की प्रचुरता में वसुदेवहिंडी के समान है। अपनी प्रौढ़ शैली और अलंकार-समृद्धि में सुबंधु की वासवदत्ता और बाणभट्ट की कादम्बरी की तुलना करती है। इस पर हरिभद्र की समराइच्चकहा और त्रिविक्रम के नलचम्पू का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस कथा-ग्रन्थ में बहुविध सांस्कृतिक सामग्री बिखरी पड़ी है। मठों में रहनेवाले विद्यार्थियों और वाणिज्य-व्यापार के लिए दूर-दूर भ्रमण करनेवाले वणिकों की बोलियों का इसमें संग्रह है। इसमें समुद्र-यात्रा का वर्णन है, मठों में दी जानेवाली शिक्षा तथा शास्त्रों का वर्णन है, १८ देशी बोलियों का देशों के साथ समुल्लेख है, उत्सव, विवाह-वर्णन तथा प्रहेलिकाओं आदि का वर्णन दिया गया है।

ग्रन्थ के आदि में रचयिता ने अपने पूर्ववर्ती अनेकों कवियों और आचार्यों का उनकी कृतियों के साथ उल्लेख किया है।

ग्रन्थकार एवं रचनाकाल—इसके रचयिता का नाम दाक्षिण्यचिह्न उद्योतनसूरि है। कथा के अन्त में लेखक ने एक २७ पद्यों की प्रशस्ति दी है[1] जिसमें गुरुपरम्परा, रचनासमय और स्थान का निर्देश किया गया है। इससे अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का पता चलता है। तदनुसार उत्तरापथ में चन्द्रभागा नदी के तट पर पव्वइया नामक नगरी में तोरमाण या तोरराय नामक राजा राज्य करता था। इसके गुरु गुप्तवंशीय आचार्य हरिगुप्त के शिष्य महाकवि देवगुप्त थे। उनके शिष्य शिवचन्द्रगणि महत्तर भिल्लमाल के निवासी थे, उनके शिष्य यक्षदत्त थे। इनके णाग, बिंद (वृन्द), मम्मड, दुग्ग, अग्निशर्मा, बडेसर (बटेश्वर) आदि अनेक शिष्य थे, जिन्होंने देवमन्दिर का निर्माण कराकर गुर्जर देश को रमणीय बनाया था। इन शिष्यों में से एक का नाम तत्त्वाचार्य था। ये ही तत्त्वाचार्य कुवलयमाला के कर्ता उद्योतनसूरि के गुरु थे। उद्योतनसूरि को वीरभद्रसूरि ने सिद्धान्त और हरिभद्रसूरि ने युक्तिशास्त्र की शिक्षा दी थी।

---

१. कण्डिका ४३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थ को उन्होंने जावालिपुर (जालोर) के भग० ऋषभदेव के मंदिर में रहकर चैत्र कृष्णा चतुर्दशी के अपराह्न में, जब कि शक सं० ७०० के समाप्त होने में एक ही दिन शेष था, पूर्ण किया था। उस समय नरहस्ति श्रीवत्सराज यहाँ राज्य करता था। यह समय विक्रम सं० ८३५ आता है और ईस्वी सन् ७७९ की मार्च २१ को समाप्त हुआ समझना चाहिए।[1]

कुवलयमालाकथा—परमार नरेशों—मुंज, भोज आदि तथा चौलुक्य नृपों सिद्धराज और कुमारपाल आदि के समय अपभ्रंश और प्राकृत की रचनाओं को संस्कृत में या विशाल संस्कृत की रचनाओं का साररूप देने के प्रयत्न किये गये हैं।[2] कुवलयमालाकथा भी उन्हीं प्रयत्नों में से एक है।[3] इसे कुवलय-

---

१. तस्सुज्जोयणणामो तणओ अह विरइया तेण।
तुङ्गमलंघं जिणभवणमणहरं सावयाउलं विसमं॥
जावालिउरं अट्ठावयं व अह अत्थि पुहईए॥
तुंगं धवलं मणहारिरयणपसरंत - धयवडाडोयं।
उसभ जिणिंदायवणं करावियं वीरभद्देण॥
तत्थ ठिएणं अह चोद्दसीए चेत्तस्स कण्हपक्खम्मि।
णिम्मविया बोहिकरी भव्वाणं होउ सव्वाणं॥
परभड-भिउडी-भंगो पणईयणरोहिणीकलाचन्दो।
सिरिवच्छरायणामो रणहत्थी पत्थिवो जइया॥
को किर वच्चइ तीरं जिणवयण-महोयहिस्स दुत्तारं।
थोयमइणा वि बद्धा एसा हिरिदेविवयणेण॥
सगकाले वोलीणे वरिसाण सएहिं सत्तहिं गएहिं।
एगदिणेणूणेहिं रइया अवरण्हवेलाए॥
ण कइत्तणाहिमाणो ण कव्वबुद्धीए विरइया एसा।
धम्मकह त्ति णिबद्धा मा दोसे काहिह इमीए॥

२. अमितगति ने अपनी पूर्ववर्ती धर्मपरीक्षा (अपभ्रंश) का तथा पंचसंग्रह और आराधना (प्राकृत) का संक्षिप्त रूपान्तर संस्कृत में दिया है, समराइच्चकहा का संक्षेप प्रद्युम्नसूरि ने समरादित्यसंक्षेप (सं० १३२५) तथा देवचन्द्र के प्राकृत शान्तिनाथचरित्र का मुनिदेव ने संस्कृत (सं० १३२२) रूपान्तर किया है और देवेन्द्रसूरि ने सिद्धर्षि की उपमितिभवप्रपंचाकथा का सारोद्धार (सं० १२९८) प्रस्तुत किया है।

३. सिंघी जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित, सन् १९७०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मालाकथासंक्षेप भी कहा गया है। यह उद्योतनसूरि की विशाल प्राकृत रचना कुवलयमाला का शैलीपूर्ण संस्कृत में संक्षिप्त रूपान्तर है। कुवलयमाला को जबकि १३००० या १०००० ग्रन्थाग्र-प्रमाण बतलाया है तो यह उस परिमाण में ३८०४, ३८९४ या ३९९५ ग्रन्थाग्र मानी गई है। कुवलयमाला में जब कि कोई विभाग नहीं है तो यह चार प्रस्तावों में विभाजित है। दूसरे और चौथे प्रायः समान विस्तार के हैं जबकि प्रथम उनसे आधा जैसा है और तृतीय उनसे दुगुने से थोड़ा कम है। कुवलयमाला के मूल और संस्कृत दोनों रूपों में गद्य और पद्य स्पष्टतः मिले हुए हैं। यह प्रांजल तथा विद्वत्तापूर्ण शैली में लिखा हुआ एक संस्कृत चम्पू ही है। इसमें प्राकृत रचना के नगर, प्राकृतिक दृश्य, उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं आदि के लम्बे विवरणों को कम कर दिया गया है और कथा की बात एक भी नहीं छोड़ी गई है। पद्यों का सुन्दर संस्कृत रूपान्तर मनोहर है। यह रचना भाव, भाषा-प्रवाह आदि की दृष्टि से प्रसादपूर्ण रचना है। यद्यपि इसमें गौण पात्रों के नामों और पदों में थोड़ा-बहुत अन्तर है पर प्रस्तुत संक्षेप के लेखक ने मूल कुवलयमाला में भ्रम पैदा करनेवाले कई स्थलों को स्पष्ट किया है। शत्रुंजय तीर्थ के विषय में कुछ पद्य जोड़े हैं, आदि।[1]

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता परमानन्दसूरि के शिष्य रत्नप्रभाचार्य हैं। इसका संशोधन उस काल के प्रसिद्ध संशोधक प्रद्युम्नसूरि ने किया था।[2] इसलिए रत्नप्रभ प्रद्युम्नसूरि के समकालीन (१३वीं सदी का मध्य) हैं।

निर्वाणलीलावतीकथा—यह कथा भी स्त्रीपात्र-प्रधान नहीं है फिर भी आकर्षण के लिए यह नाम चुना गया है। कुवलयमाला के समान ही इसमें भी संसार-परिभ्रमण के कारणों को प्रदर्शित करनेवाली कथाएँ दी गई हैं। कुवलयमाला में जिस तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से प्रभावित व्यक्ति कथा के पात्र बनाये गये हैं उसी तरह निर्वाणलीलावती में पाँच दोष-युगलों अर्थात् (१) हिंसा-क्रोध, (२) मृषा-मान, (३) स्तेय-माया, (४) मैथुन-मोह और (५) परिग्रह-लोभ को तथा स्पर्शन आदि पंच-इन्द्रियों के वशीभूत होने को संसार का कारण बताते हुए उनका फल भोगनेवाले व्यक्तियों की कथाएँ

---

१. कुवलयमाला, अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ९४.

२. वही, पृ० ९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दी गई हैं। कुवलयमाला के समान ही इसका नाम इन कथाओं के एक नायिका-पात्र के नाम से रखा गया है और कथाओं को एक साथ पूर्वभवों के दृष्टान्त द्वारा जोड़ा गया है।

कथानक संक्षेप में इस प्रकार है : राजगृह में सिंह नाम का राजपुत्र था, उसका विवाह एक सामन्त की पुत्री लीलावती से हुआ। राजा-रानी की मृत्यु के बाद सिंह ने राज्यपद पाया और अपने एक मित्र जिनदत्त के सम्पर्क से जिनधर्मी हो गया। एक समय जिनदत्त के धर्मगुरु समरसेन राजगृह में आते हैं और वे सब उनका उपदेश सुनने के लिए जाते हैं। राजा सिंह ने मुनि के अनुपम व्यक्तित्व से प्रभावित हो उनका परिचय पूछा। मुनि ने अपने तथा अपने पूर्वजन्म के साथियों की कथाएँ बतलाते हुए कहा कि कौशाम्बी में विजयसेन नरेश, जयसेन मन्त्री, शूर पुरोहित पुरन्दर कोषाध्यक्ष तथा सार्थपति धन अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए रहते थे। उस नगर में सुधर्म मुनि के आने पर विजयसेन आदि पाँचों उनसे सांसारिक दुःखों का कारण पूछने गये। मुनि उक्त पञ्चदोष युगलों को संसार का कारण बतलाते हैं और उनका फल भोगनेवाले क्रमशः राजपुत्र रामदेव, राजपुत्र सुलक्षण, वणिक्पुत्र वसुदेव, राजकुमार वज्रसिंह तथा राजपुत्र कनकरथ की दृष्टान्त-कथाएँ कहते हैं। इसके बाद स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियों के वश में होने से उनके कुफल की सूचक पाँच कथाओं के प्रसंग में श्रोतारूप से उपस्थित विजयसेन नरेश आदि पाँचों व्यक्तियों के पूर्वभव की कथाएँ कहते हैं, जिन्हें सुन वे सब विरक्त हो गये और तपस्याकर स्वर्ग गये। वहाँ उन लोगों ने अगले भवसुधार के लिए परस्पर प्रतिबोध करने की प्रतिज्ञा की। स्वर्ग से च्युत होकर वे सब विभिन्न स्थानों में मनुष्यभव में जन्मे। जयसेन मन्त्री का जीव समरसेन नामक राजपुत्र हुआ पर वह कुसंस्कारों के कारण शिकारी बन गया। पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार उसे पुरोहित शूर के जीव एक देव ने हिंसा त्यागने के लिए सम्बोधित किया इससे वह राजपुत्र मुनि हो गया। तपस्या के प्रभाव से मुनि समरसेन अपने पूर्वभव के मित्रों को जान लेता है और उन्हें धर्ममार्ग में लाने के लिए प्रतिबोध हेतु भ्रमण करता है।

मुनि बतलाता है कि जयसेन का जीव समरसेन मैं ही हूँ और विजयसेन नृप के जीव राजा सिंह और सार्थवाह धन के जीव लीलावती को, जो तुम दोनों मेरे सम्मुख बैठे हो, प्रतिबुद्ध करने आया हूँ। यह सुन लीलावती और सिंह को जातिस्मरण हो गया और उसने जिनदीक्षा लेकर तपश्चरण द्वारा मोक्ष- पद पाया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथानक को लेकर प्राकृत भाषा में निव्वाणलीलावई नामक कथा-ग्रन्थ सं० १०८२ और १०९५ के मध्य आशापल्ली में जिनेश्वरसूरि ने रचा।[1] समस्त ग्रन्थ प्राकृत पद्यों में है पर मूल रचना अभी तक अनुपलब्ध है। इसका उल्लेख अनेक ग्रन्थों में किया गया है और उसके पदलालित्य आदि गुणों की प्रशंसा की गई है। जिनेश्वरसूरि का परिचय उनकी अन्य रचना कथाकोषप्रकरण के साथ दिया गया है।

उक्त प्राकृत रचना के कथानक को आधार बना संस्कृत में निर्वाणलीलावती-काव्य की रचना इक्कीस उत्साहों में की गई है।[2] इसकी रचना ५३५० श्लोक-प्रमाण है।[3] प्रत्येक उत्साह के अन्त में एक पुष्पिका दी गई है जिसमें कवि ने जिनेश्वरसूरि का आभार स्वीकार किया है। यह जिनांक महाकाव्य है और इसे महाकाव्योचितलक्षणों से भूषित करने के प्रयत्न भी दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य की शैली को अलंकारों से भी सुसज्जित किया गया है। वैसे इसमें अधिकता से अनुष्टुभ् छन्दों में ही कथा वर्णित है पर पाँचवें और बारहवें में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

काव्य के अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति दी गई है जिससे इसके रचयिता जिनरत्नसूरि की गुरुपरम्परा पर प्रकाश पड़ता है। वे सुधर्मागच्छ के थे। इसी गच्छ में निव्वाणलीलावई प्राकृत महाकाव्य के रचयिता जिनेश्वरसूरि हुए। उनकी शिष्यपरम्परा में क्रमशः जिनचन्द्रसूरि—नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि—जिनवल्लभसूरि—जिनदत्तसूरि— जिनचन्द्रसूरि—जिनपतिसूरि—जिनेश्वरसूरि हुए। इन जिनेश्वरसूरि के शिष्य जिनरत्नसूरि हुए।

खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि में बताया गया है कि जिनरत्नसूरि का पूर्वनाम विजयवर्द्धनगणि था। जिनेश्वरसूरि ने उन्हें वाग्भटमेरु (बाड़मेर) में सं० १२८३ की माघ कृष्ण ६ को दीक्षा दी थी। सं० १३०४ में वैशाख सुदी १४ के दिन जिनेश्वरसूरि ने विजयवर्धनगणि को आचार्यपद पर स्थापित किया और उन्हें जिनरत्नसूरि नाम प्रदान किया। सं० १३२६ में जिनेश्वरसूरि के नेतृत्व में तथा सं० १३३९ में जिनप्रबोधसूरि के नायकत्व में निकाली संघयात्राओं में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ११८.

२. वही, पृ० ३३८.

३. निर्वाणलीलावती, प्रशस्ति, श्लोक १३-१६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनरत्नसूरि साथ थे।[1] जिनरत्नसूरि ने सं० १३४१ में लीलावतीकथासार की रचना की। इसकी रचना जावालिपत्तन (जालौर) नगर में हुई थी। इसकी रचना में भी कवि ने अपने सहयोगी लक्ष्मीतिलकगणि की सहायता ली है। इसमें प्रत्येकबुद्धचरित से भी बहुत सामग्री ली गई है।[2] इसका संशोधन सौम्यमूर्तिगणि तथा जिनप्रबोधयति ने किया था।[3]

उक्त रचनाओं के अतिरिक्त कवि कुञ्जरकृत लीलावतीकाव्य और एक अज्ञातकर्तृक लीलावतीकथा का उल्लेख हुआ है।[4]

ऋषिदत्ताचरित—इसमें ऋषि-अवस्था में हरिषेण-प्रीतिमती से उत्पन्न पुत्री ऋषिदत्ता और राजकुमार कनकरथ का कौतुकतापूर्ण चरित्र वर्णित है। कनकरथ एक अन्य राजकुमारी रुक्मिणी से विवाह करने जाता है पर मार्ग में एक वन मे ऋषिदत्ता से विवाहकर लौट आता है। रुक्मिणी ऋषिदत्ता को एक योगिनी के द्वारा राक्षसी के रूप में कलंकित करती है। उसे फाँसी की भी सजा होती है। पर ऋषिदत्ता अपने शील के प्रभाव से सब विपत्तियों को पार कर जाती है और अपने प्रिय से समागम करती है।

इस आकर्षक कथानक को लेकर संस्कृत-प्राकृत में कई कथाकाव्य उपलब्ध होते हैं।

इस कथा पर सबसे प्राचीन रचना प्राकृत में है जो परिमाण में १५५० ग्रन्थाग्र है।[5] इसकी रचना नाइलकुल के गुणपाल मुनि ने की है। लेखक की अन्य रचना 'जम्बूचरिय' भी मिलती है। इसिदत्ताचरिय (ऋषिदत्ता-चरित्र) की प्राचीन प्रति सं० १२६४ या १२८८ की मिलती है। इससे यह उक्त काल के पूर्व की रचना है। गुणपाल मुनि का समय भी ९–१०वीं शताब्दी के बीच अनुमान किया गया है।

दूसरी रचना[6] ११९४ संस्कृत श्लोकों में है जो चार सर्गों में क्रमशः इस

१. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि, पृ० ४९, ५२, ५६.

२. प्रत्येकबुद्धचरित, सर्ग ३, श्लो० १८२-१९६; लीलावतीकथासार, १. ७२–८७.

३. लीलावतीकथासार, प्रशस्ति.

४. जिनरत्नकोश, पृ. ३३८.

५-६. वही, पृ० ५९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार विभक्त हैं: प्रथम में २५८, दूसरे में २७८, तीसरे में ५४० और चतुर्थ में ११८ श्लोक। कर्ता का नाम नहीं दिया गया है।

अन्य अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[1] विभिन्न परिमाण की मिलती हैं यथा २८२७ ग्रन्थाग्र, ४४२ ग्रन्थाग्र (संस्कृत) और ४५१ संस्कृत श्लोकों में।

इस चरित्र पर अज्ञातकर्तृक एक ऋषिदत्तापुराण और ऋषिदत्तासती-आख्यान के उल्लेख मिलते हैं।[2]

भुवनसुन्दरीकथा—महासती भुवनसुन्दरी की चमत्कारपूर्ण कथा को लेकर प्राकृत में एक विशाल रचना की गई जिसमें ८९११ गाथाएँ हैं। इन गाथाओं का परिमाण बृहट्टिप्पनिका में १०३५० ग्रन्थाग्र बतलाया गया है। इसकी रचना सं० ९७५ में नाइलकुल के समुद्रसूरि के शिष्य विजयसिंह ने की है। इसकी प्राचीनतम प्रति सं० १३६५ की मिली है।[3]

सुरसुन्दरीचरिय—प्राकृत भाषा में निबद्ध यह राजकुमार मकरकेतु और सुरसुन्दरी का एक प्रेमाख्यान है। इसमें १६ परिच्छेद हैं, प्रत्येक में २५० गाथाएँ हैं और कुल मिलाकर ४००१ गाथाओं में समाप्त हुआ है।[4]

कथावस्तु—सुरसुन्दरी कुशाग्रपुर के राजा नरवाहनदत्त की पुत्री थी। वह नाना विद्याओं में निष्णात थी। चित्र देखने से उसे हस्तिनापुर के मकरकेतु नामक राजकुमार से आसक्ति हो गई थी। उसकी सखी प्रियंवदा मकरकेतु की तलाश में निकलती है। उसे बुद्धिला नामक एक परिव्राजिका ने कपट से नास्तिकता का पाठ पढ़ाना चाहा किन्तु सुरसुन्दरी ने उसे तर्कों से पराजित कर दिया। उसने रुष्ट होकर उसका चित्रपट उज्जैननरेश शत्रुंजय को दिखाकर विवाह के लिए उभाड़ा। शत्रुंजय ने उसके पिता से सुरसुन्दरी की माँग की पर वह ठुकरा दी गई जिससे दोनों राजाओं में युद्ध छिड़ गया। इसी बीच वैताढ्य पर्वत के एक विद्याधर ने सुरसुन्दरी का अपहरण

१–२. जिनरत्नकोश, पृ० ५९.

३. वही, पृ० २९९; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १८७.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ६७, ४४७; मुनि राजविजय द्वारा संपादित एवं जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला द्वारा प्रकाशित, बनारस, सं० १९७२; अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला, बीकानेर से भी प्रकाशित; इसका गुजराती अनुवाद जैनधर्म प्र० सभा, भावनगर से १९१५ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर लिया और उसे ले जाकर रत्नद्वीप में बाँसों के जाल में छिपाकर रखा। वहाँ वह आत्मघात की इच्छा से विषफल खा लेती है। दैवयोग से इसी बीच उसके सच्चे प्रेमी मकरकेतु ने वहाँ पहुँचकर उसकी रक्षा की, तथा वहाँ से जाकर उसने शत्रुंजय नृप का विनाश किया। पर यहाँ सुरसुन्दरी को किसी पूर्व वैरी वेताल ने हरणकर आकाशमार्ग से हस्तिनापुर के उद्यान में गिरा दिया। वहाँ के राजा ने उसे सुरक्षा दे दासी से सब वृत्तान्त जान लिया। उधर शत्रुंजय के वध के अनन्तर मकरकेतु का भी अपहरण कर लिया गया।

बड़ी कठिनाइयों और नाना घटनाओं के पश्चात् सुरसुन्दरी और मकरकेतु का पुनर्मिलन और विवाह हुआ। पश्चात् संसारसुख भोग दोनों ने दीक्षा ले तपस्याकर मोक्षपद पाया।

इस कथा की नायिका सुरसुन्दरी का नाम व वृत्तान्त वास्तव में ११वें परिच्छेद से प्रारम्भ होता है। इससे पूर्व मकरकेतु के माता पिता अमरकेतु और कमलावती का तथा उस नगर के सेठ धनदत्त का घटनापूर्ण वृत्तान्त और कुशाग्रपुर के सेठ की पुत्री श्रीदत्ता से विवाह, उसी घटनाचक्र के बीच विद्याधर चित्रवेग और कनकमाला तथा चित्रगति और प्रियंसुन्दरी के प्रेमाख्यान वर्णित हैं।

इस कथा में प्रारम्भ में सज्जन-दुर्जन-वर्णन तथा प्रसंग-प्रसंग पर मंत्र, दूत, रणप्रयाण, पर्वत, नगर, आश्रम, संध्या, रात्रि, सूर्योदय, विवाह, वनविहार आदि के वर्णन दिये गये हैं। अनेक अलंकारों का प्रयोग भी हुआ है। समस्त ग्रन्थ में आर्याछन्द का व्यवहार हुआ है पर कहीं-कहीं वर्णन-विशेष में भिन्न-भिन्न छन्दों का भी व्यवहार हुआ है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके प्रणेता धनेश्वरसूरि हैं जो जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। ग्रन्थान्त में १३ गाथाओं की एक प्रशस्ति में ग्रन्थकार का परिचय, रचना का स्थान तथा काल का निर्देश किया गया है। तदनुसार यह कथाकाव्य चड्डावल्लिपुरी (चन्द्रावती) में सं० १०९५ की भाद्रपद कृष्ण द्वितीया गुरुवार धनिष्ठा नक्षत्र में बनाया गया।[1] संभवतः इनके ही गुरु जिनेश्वरसूरि खरतरगच्छ

---

1. **तेसिं सीसवरो धणेसर मुनी एयं कहं पायउं।**
चड्डावल्लि पुरी ठिओ स गुरुणो आणाए पाढंतरा॥
कासी विक्कम वच्छरम्मि य गए बाणंक सुन्नोडुपे।
मासे भद्दवए गुरुम्मि कसिणे बीया धणिट्ठा दिने॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के संस्थापक थे। इसी कथा पर नयसुन्दरकृत संस्कृत सुरसुन्दरीचरित्र का उल्लेख मिलता है।[1]

नर्मदासुन्दरीकथा—इस कथा में नर्मदासुन्दरी द्वारा अनेक विचित्र परिस्थितियों में पड़कर अपने सतीत्व की रक्षा करने की अद्भुत कथा का वर्णन है।[2]

कथावस्तु—नर्मदासुन्दरी का विवाह एक अजैन पर विवाह के पूर्व जैनधर्म स्वीकार करनेवाले महेश्वरदत्त वणिक् से होता है। वह उसे ले धन कमाने के लिए यवनद्वीप जाता है पर उसे नर्मदासुन्दरी के चरित्र पर शंका होने से धोखे से मार्ग में सोयी छोड़ देता है। बाद में वह कई कष्ट झेलने के बाद अपने चाचा वीरदास को मिल जाती है और उसके साथ बब्बर देश जाती है। यहीं से उसका जीवन-संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता है। वहाँ हरिणी नामक वेश्या की दासियाँ उसे फुसलाकर ले भागती हैं। वेश्या उसे अपने जैसा जीवन जीने को बाध्य करती है पर वह अपने शीलव्रत में दृढ़ रहती है। फिर वह दूसरी वेश्या करिणी के चक्कर में फँसती है और वहाँ से राजा द्वारा पकड़कर बुलाई जाती है पर रास्ते में उसने पगली बनने का अभिनय किया इससे वह बच सकी। फिर जिनदास श्रावक की सहायता से अपने चाचा वीरदास के पास पहुँच सकी। अन्त में संसार से विरक्त होकर उसने सुहस्तसूरि से दीक्षा ले ली।

नर्मदासुन्दरी के कथानक को लेकर कई कवियों ने प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती में काव्य लिखे। उनमें देवचन्द्रसूरि और महेन्द्रसूरि कृत प्राकृत रचना प्रकाशित हुई है। अपभ्रंश में जिनप्रभसूरि की और गुजराती में मेरुसुन्दर की रचना भी प्रकाश में आई है।

पहली देवचन्द्रसूरिकृत रचना २५० गाथा-प्रमाण है। उन्होंने अपने पूर्वगुरु आचार्य प्रद्युम्नसूरिरचित 'मूलशुद्धिप्रकरण' नामक प्राकृत ग्रन्थ के ऊपर विस्तृत टीका की रचना की थी। उसी टीका में उदाहरणरूप अनेक प्राचीन कथाओं का संकलन किया था। उसमें प्रस्तुत नर्मदासुन्दरी की कथा, प्रसंगवश संक्षेप में लिखी है। यह रचना कथागत मूलवस्तु के परिज्ञान में बहुत उपयोगी है। देवचन्द्रसूरि ने अन्त में उल्लेख किया है कि यह कथा मूलरूप में वसुदेवहिण्डी नामक प्राचीन कथाग्रन्थ में ग्रथित है। उसी के आधार से उन्होंने अपनी

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४७.

२. वही, पृ० २०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना बनाई थी। ये देवचन्द्रसूरि सुप्रसिद्ध कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र के गुरु थे।

दूसरी रचना के रचयिता महेन्द्रसूरि हैं।[1] इसमें ११११७ गाथाएँ हैं। बीच-बीच में कितना ही गद्यभाग है इससे इसका ग्रन्थाग्र १७५० श्लोक-प्रमाण है। महेन्द्रसूरि ने लिखा है कि उन्होंने यह मूलकथा शान्तिसूरि नामक आचार्य के मुख से सुनी थी। साहित्यिक कृति के रूप में महेन्द्रसूरिवाली कथा का मूलाधार देवचन्द्रसूरिकृत उपर्युक्त रचना होना सम्भव है। इसकी रचना सं० ११८७ में हुई थी। महेन्द्रसूरि की गुरुपरम्परा एवं अन्य रचनाओं के सम्बन्ध में विशेष मालूम नहीं है।

महेन्द्रसूरि की रचना बहुत सरल, प्रासादिक और सुबोधात्मक है। कथा की घटना बच्चे से बूढ़े तक हृदयंगम कर सकते हैं, ऐसी सरसरीति से वह कही गई है। बीच-बीच में लोकोक्ति और सुभाषितों की छटा भी देखते बनती है। प्राकृत भाषा के अभ्यासियों के लिए यह सुन्दर रचना है। महेन्द्रसूरि ने यह रचना अपने शिष्य की अभ्यर्थना से ही बनाई थी। इसकी प्रथम प्रति उनके शिष्य शीलचन्द्रगणि ने तैयार की थी।

कुछ अज्ञातकर्तृक नर्मदासुन्दरीकथाएँ भी मिली हैं। एक में २४९ गाथाएँ हैं। एक अज्ञातकर्तृक रचना प्रकाशित भी हुई है।[2]

मनोरमाचरित—मनोरमा की कथा जिनेश्वरसूरिकृत कहाणयकोस (सं० ११०८) में दी गई है। इसमें बतलाया गया है कि श्रावस्ती का राजा किसी नगर के व्यापारी की पत्नी को अपनी रानी बनाना चाहता है। वह सफल भी हो जाता है किन्तु अन्त में देवताओं द्वारा मनोरमा के शील की रक्षा की जाती है।

इस कथा को स्वतंत्र विशाल प्राकृत रचना के रूप में बनाया गया है जिसका परिमाण १५००० गाथाएँ हैं। इसकी रचना नवांगी टीकाकार अभयदेव के शिष्य वर्धमानाचार्य ने सं० ११४० में की है।[3] वर्धमानाचार्य की अन्य रचनाओं में आदिनाहचरिय (सं० ११६०) और धर्मरत्नकरण्डकवृत्ति (सं० ११७२) मिलती हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०५; सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई, सं० २०१६.

२. वही; हंसविजय फ्री लाइब्रेरी, अहमदाबाद, १९१९.

३. वही, पृ० ३०१; जैन ग्रन्थावलि (श्वेताम्बर जैन कान्फरेन्स, बम्बई), पृ० २२९.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मलयसुन्दरीकथा—इसमें महाबल और मलयसुन्दरी की प्रणयकथा का वर्णन है। इस नाम की अनेक रचनाएँ विविधकर्तृक मिलती हैं।[1]

प्रथम प्राकृत १२५६ गाथाओं में अज्ञातकर्तृक है। इसमें एक पौराणिक कथा का परीकथा से संमिश्रण किया गया है। इसमें प्रचुर कल्पनापूर्ण अनोखे और जादूभरे चमत्कारी कार्यों की बाढ़ में पाठक बहता है। इस उपन्यास में परीकथा साहित्य में सुज्ञात कल्पनाबन्धों (motifs) का ताना-बाना फैला हुआ है जिसमें राजकुमार महाबल और राजकुमारी मलयसुन्दरी का आकस्मिक मिलन, फिर एक दूसरे से वियोग और फिर सदा के लिए मिलन चित्रित है। यह सब उनके पूर्वोपार्जित कर्मों के फल का ही आश्चर्यकारी रूप था। पीछे महाबल जैन मुनि हो जाता है और मलयसुन्दरी साध्वी। इस तरह जैन पौराणिक कथा को परीकथा से संमिश्रितकर प्रस्तुत किया गया है।

यह कथानक जैन समाज में बहुत प्रचलित रहा है।

इस पर १५वीं शताब्दी में संस्कृत गद्य में अंचलगच्छ के माणिक्यसूरि ने 'महाबलमलयसुन्दरी' नामक कथा लिखी है।[2] प्राकृत चरित्र को आधार बना कर संस्कृत पद्यों में आगमगच्छ के जयतिलकसूरि ने भी मलयसुन्दरीचरित्र[3] की रचना की है। यह चार प्रस्तावों में विभक्त है जिनमें २३९० श्लोक हैं। जयतिलकसूरि ने इसे ज्ञान का माहात्म्य प्रकट करनेवाला ज्ञानरत्न-उपाख्यान कहा है।[4] इसमें मलयसुन्दरी को भग० पार्श्वनाथ के निर्वाण से १०० वर्ष बाद उत्पन्न होना बतलाया गया है।[5] इसी शताब्दी में पल्लीगच्छ के शान्तिसूरि ने ५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण मलयसुन्दरीचरित्र को सं० १४५६ में बनाया है[6] और पिप्पलगच्छ

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५३३.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३०२; बम्बई से १९१८ में प्रकाशित.

३. वही; देवचन्द्र लालभाई पु० ग्रन्थमाला, बम्बई; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१०; विजयदानसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, वरतेज, सं० २००९.

४. ज्ञानादुद्ध्रियते जन्तुः पतितोऽपि महापदि।
एकश्लोकार्थबोधेन यथा मलयसुन्दरी ॥ १.१९ ॥

५. मलयसुन्दरीचरित्र, प्रस्ताव ४.८२४.

६. वही; इसका जर्मन अनुवाद हर्टल ने 'इण्डिश मार्सेन' (१९१९) में किया है; विण्टरनित्स, हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५३३ पर टिप्पण.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के धर्मदेवगणि के शिष्य धर्मचन्द्र ने मलयसुन्दरीकथोद्धार की रचना की है। एक अज्ञातकर्तृक संस्कृत मलयसुन्दरीचरित्र भी उपलब्ध है।

मदनरेखाचरित—इसमें मिथिला के नृप नमि (प्रत्येकबुद्ध) की माता मदनरेखा का चरित्र दिया गया है। मदनरेखा सुदर्शनपुर के नृप मणिरथ के अनुज युगबाहु की पत्नी है। मणिरथ उस पर आसक्त हो जाता है और उसे पाने के लिए अपने अनुज को मार डालता है पर मणिरथ भी सर्पदंश से मारा जाता है। मदनरेखा अपने शील की रक्षा के लिए तथा गर्भस्थ बालक की रक्षा के लिए भाग निकलती है। रम्भागृह में नमि का जन्म होता है परन्तु सरोवर में वस्त्र-प्रक्षालन के लिए जाते समय बालक का अपहरण हो जाता है। उस दुःख की हालत मे एक विद्याधर उसके शील का अपहरण करने का प्रयास करता है पर चतुराई से वह बच निकलती है और सुव्रता नामक साध्वी हो जाती है। बालक मिथिलानरेश पद्मरथ द्वारा पाला-पोसा जाता है और शिक्षा पाकर राज्यपद पाता है। मदनरेखा के ज्येष्ठ पुत्र एवं सुदर्शनपुर के अधीश चन्द्रयश और मिथिलानरेश नमि के बीच एक बार होनेवाले युद्ध का सुव्रता ने उनके सहोदर होने की याद दिलाकर निवारण किया था।

यह चरित्र प्रत्येकबुद्धकथाओं में नमिचरित्र के साथ भी वर्णित है पर पीछे इसकी रोचकता के कारण इस पर अनेक स्वतंत्र रचनाएँ लिखी गई हैं। संस्कृत गद्य में एक अज्ञातकर्तृक रचना का उल्लेख मिलता है।[1] इस पर जिनभद्रसूरि (१२वीं शताब्दी) ने मदनरेखाआख्यायिकाचम्पू नामक उच्चकोटि का काव्य लिखा है।[2] उसका वर्णन हम चम्पू-काव्यों में दे रहे हैं। शुभशीलगणि के भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति में यह चरित्र विस्तार से दिया गया है। गुजराती में सं० १५३७ में मतिशेखर (उकेशगच्छीय) ने इस चरित्र की रचना की है।[3]

मदिरावतीकथानक—वर्धमानदेशना (शुभवर्धनगणि) में शील के माहात्म्य पर मदिरावती की रोचक कथा दी गई है। उसी पर अज्ञातकर्तृक एक रचना मिलती है।[4]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

२. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३००; जैन गुर्जर कविओ, भाग ३, पृ० ४६९.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ३००.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणावलीकथा—इसमें गुणावली के शीलरक्षा के प्रयत्नों का वर्णन है।[१] इसकी रचना जिनचन्द्रसूरि ने की है जो नागपुरीय तपागच्छ के सागरचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनका अन्य ग्रन्थ सिद्धान्तरत्निकाव्याकरण (सं० १८५०) भी मिलता है।

शीलवतीकथा—कुमारपालप्रतिबोध-समागत अजितसेन-शीलवती के रोचक चरित को लेकर शीलवतीकथा और शीलवतीचरित्र नामक कई रचनाएँ मिलती हैं।

कथावस्तु—शीलवती का पति श्रेष्ठिपुत्र अजितसेन राजा के साथ परदेश जाने लगा तो उसे अपनी पत्नी के प्रति बड़ी चिन्ता हुई। शीलवती ने प्रतिज्ञा कर विश्वास दिलाया कि उसका शील त्रिकाल में भी भंग न होगा। पर घर में उसके श्वसुर को उस पर शङ्का हुई और वह उसे रथ पर बैठाकर पीहर के लिए रवाना हो गया। रास्ते में शीलवती ने अपनी चातुरी से कई अद्भुत कार्य किये। इससे उसका श्वसुर प्रसन्न हो गया और उसने उसे सारे घर की मालकिन बना दिया।

एक बार राजा ने भी क्रमशः अशोक, रतिकेलि, ललितांग, कामांकुर आदि को भेज शीलवती की परीक्षा की पर शीलवती ने चतुराई से उन्हें एक गड्ढे में कैद कर दिया। एक बार राजा उसके पति अजितसेन के साथ उसके यहां भोजन करने आया। शीलवती ने उन कैद किये गये व्यक्तियों द्वारा शीघ्र ही भोजन तैयार करा दिया। पीछे सारा रहस्य खुला कि राजा के भेजे लोगों की क्या दुर्दशा हुई थी आदि।

इस कथानक को लेकर सोमतिलकसूरि ने शीलवतीकथा लिखी।[२] चन्द्रगच्छ के उदयप्रभसूरि ने ९८८ ग्रन्थाग्र परिमाण एक संस्कृत रचना[३] बनाई जिसकी प्राचीन प्रति सं० १४०० की मिलती है। इसी तरह रुद्रपल्लीय गच्छ के आनन्दसुन्दर के शिष्य आज्ञासुन्दर ने सं० १५६२ में शीलवतीकथा की संस्कृत में रचना की।

विनयमण्डनगणि और नेमिविजय ने उक्त कथानक पर शीलवतीचरित्र[४] नामक ग्रन्थ लिखे।

शीलवतीकथा पर अज्ञातकर्तृक दो प्राकृत रचनाएँ भी उपलब्ध हुई हैं।[६]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०६.

२–६. जिनरत्नकोश, पृ० ३८४-८५ में उपर्युक्त सभी ग्रन्थ अंकित हैं। उनमें से एक प्रकाशित हो गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रसेन-पद्मावतीचरित—इसे पद्मावतीचरित्र तथा शीलालंकारकथा भी कहते हैं। इसमें स्वदार-सन्तोषव्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए चित्रसेन और पद्मावती की कथा कही गई है।

कथावस्तु—राजपुत्र चित्रसेन और मंत्रीपुत्र रत्नसार मित्र थे। दोनों की सुन्दरता से नगर की युवतियाँ आकर्षित होने लगीं। लोगों ने शिकायत की। राजा ने क्रक में आकर सात रत्न देकर राजकुमार से राज्य छोड़ देने को कहा। राजकुमार मित्र के साथ चल देता है। भटकते हुए जङ्गल में वह एक युवती का चित्र देख मूर्च्छित हो जाता है। होश आने पर वह और उसका मित्र एक केवली से पूछते हैं और मालूम करते हैं कि यह चित्र पद्मावती का है। पूर्व जन्म में चित्रसेन और पद्मावती हंसयुगल थे और दोनों इस भव में जन्मे हैं। चित्रसेन और उसका मित्र पद्मावती की खोज में रत्नपुर जाते हैं। वहाँ चित्रसेन ने पूर्वजन्म का चित्र बनाकर प्रदर्शित किया। पद्मावती उस चित्र को देख मूर्च्छित हो गई। स्वयंवर द्वारा उनका विवाह हुआ। लौटते समय एक वटवृक्ष पर बैठे यक्ष-यक्षी की बात सुनकर रत्नसार ने चित्रसेन-पद्मावती को अनेक दुर्घटनाओं से बचाया और अन्तिम घटना में रत्नसार को पाषाण के रूप में परिवर्तित हो जाना पड़ा। चित्रसेन बड़ा दुःखी हुआ और यक्ष से उसके त्राण का उपाय पूछा। पद्मावती ने अपने पुत्र होने पर उसे गोद में लेकर अपने हाथ से रत्नसार की पाषाण प्रतिमा को ज्यों स्पर्श किया कि वह सजीव हो गया। इसके बाद चित्रसेन के साहसिक कार्यों का वर्णन है। पीछे चित्रसेन और पद्मावती ने श्रावक के १२ व्रत ले लिये और यात्राएँ कीं।

इस कथा को लेकर अनेकों रचनाएँ लिखी गई हैं। सर्वप्रथम धर्मघोष-गच्छ के महीचन्द्रसूरि के शिष्य पाठक राजवल्लभ ने ५११ संस्कृत श्लोकों में इसकी रचना सं० १५२४ में की है।[1] यह कथा उन्होंने अपनी षडावश्यक-वृत्ति में भी संक्षेप में २०० श्लोकों में दी है और लिखा है कि यह कथा शीलतरङ्गिणी से ली गई है।

दूसरी रचना सं० १६४९ में देवचन्द्र के शिष्य कल्याणचन्द्र ने की थी।[2]

तीसरी रचना सं० १६६० में बुद्धिविजय ने देशी भाषा से मिश्रित

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२३ और २३५; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९२४.
२. वही, पृ० १२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृत में की है।[१] बुद्धिविजय हीरविजयसूरि-सन्तानीय विजयदानसूरि के प्रशिष्य एवं पं० जगन्मल्ल के शिष्य थे। इसकी रचना तब की गई थी जब विजयसेनसूरि पट्टधर थे।

अन्य रचनाओं में हेमचन्द्र, पद्मसेन, शीलविजय, रत्नशेखर और पूर्णमल्ल कृत संस्कृत में निबद्ध कृतियाँ मिलती हैं।[२]

गुजराती में नयविजय और भक्तिविजय की रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[३]

मानतुङ्ग-मानवतीचरित—इस लोककथा को मृषावाद-परिहार के साथ जोड़ा गया है। यह मूल में पंडित मोहनविजय द्वारा सं० १७६० में विरचित मानतुङ्ग-मानवतीराग के आधार पर विरचित संस्कृत रचना है। यह कथानक छोटे-छोटे आठ सर्गों में विभक्त है।[४] कथावस्तु इतनी मनोहर है कि इसका आधुनिक चित्रपट पर भी अच्छी तरह अभिनय किया जा सकता है।

कथावस्तु—अवन्ती के एक सेठ की पुत्री मानवती अपनी सखियों के आगे विनोदवश अपने अभिमानी स्वभाव का वर्णन करती है और कहती है कि वह अपने पति को हर तरह से अपने अधीन रखेगी। यह बात अवन्ती का राजा मानतुङ्ग सुन लेता है। उसके गर्व को खर्व करने के लिए वह उससे विवाह करता है और प्रथम मिलन के समय से ही उसे दण्ड देने के हेतु एक अलग प्रासाद में बन्द करके रखता है और अपनी गर्वोक्ति सिद्ध करने को कहता है। वह गुपचुप अपने पिता से कह एक सुरङ्ग बनवाकर योगिनी का वेश बनाकर बाहर निकल जाती है। उसने उस वेश में राजा पर एक जादू-सा किया। उसने एक प्रसंग में राजा से अपने चरण धुलवाये और उसे चरणोदक पिलाया। उस योगिनी ने अप्सरा का रूप धारणकर राजा से अपने अभिमान की अन्य शर्तें पूरी कराईं। एक समय राजा के एक अन्य विवाह के प्रसंग में उसने उसे छलकर गर्भधारण किया और चिह्नस्वरूप अंगूठी, मोती का हार आदि ले लिये और अपने एकान्त महल में आकर रहने लगी। जब राजा को

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १२१; जैन विद्याभवन, कृष्णनगर, लाहौर, १९४२, अंग्रेजी अनुवादसहित, सम्पादक—मूलराज जैन.

२. वही, पृ० १२३ और २३५.

३. वही, पृ० १२३.

४. गुर्जर जैन कविओ, भाग २, पृ० ४३६; ग्रन्थ मेसर्स ए० ए० एण्ड कम्पनी, पालीताना से प्रकाशित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भ रहने का पता चलता है तो वह और उसकी दूसरी रानियाँ बड़ी खेदखिन्न होती हैं। पीछे राजा को उसके पुत्र होने का समाचार मिलता है। राजा उसे दण्ड देने के लिए जाता है पर पीछे उसे सारा भेद मालूम होने से वह बड़ा लज्जित होता है और अपनी पत्नी-पुत्र को बड़े उत्सव के साथ घर ले आता है।

इस लोककथा को धार्मिक कथा के रूप में इस प्रकार परिवर्तित किया गया है कि मानवती ने पूर्व जन्म में झूठ बोलने का त्याग किया था इसलिए इस जन्म में उसे वह शक्ति मिली कि उसने विनोदवश बोले गये अपने गर्विष्ट वचनों को भी पूरा किया।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना पंन्यास तिलकविजयगणि ने सं० १९३९ में की है।[१] इनकी अन्य रचनाएँ और विशेष परिचय ज्ञात नहीं हो सका है।

आरामशोभाकथा—आरामशोभाकथा लौकिक कथा-साहित्य की रोचक कथा है पर यह सम्यक्त्व की महिमा प्रकट करने के लिए एक धर्मकथा के रूप में दी गई है।

जैन कथाओं में इसे हरिभद्रसूरिकृत सम्यक्त्वसप्ततिका पर संघतिलकसूरि-विरचित तत्त्वकौमुदी नामक विवरण (वि० सं० १४२२) में पाते हैं।

स्वतंत्र रचनाओं के रूप में सं० १५३७ में जिनहर्षसूरि ने संस्कृत छन्दों में ५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण आरामशोभाकथा[२] की रचना की। जिनहर्षसूरि खरतर-गच्छीय पिप्पलकशाखा के जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे।

दूसरी रचना[३] ४२० ग्रन्थाग्र-प्रमाण उन्हीं जिनचन्द्रसूरि के शिष्य मलय-हंसगणि (१६वीं शती) ने लिखी। इस पर कुछ अज्ञातकर्तृक रचनाएँ[४] भी मिलती हैं।

अनंगसुन्दरीकथा—इसमें उज्जैननरेश जयसेन की रानी अनंगसुन्दरी जो कि कुमार श्रमणकेशी की माता थी, की कथा ३०० श्लोकों में वर्णित है।[५] रचयिता का नाम अज्ञात है।

---

१. त्रिनन्दग्रहभूसंख्ये वैक्रमीये सुवत्सरे (१९३९)।
रचयामास पंन्यासो गणीन्द्रस्तिलकाभिधः ॥

२-४. जिनरत्नकोश, पृ० ३३.

५. वही, पृ० ७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणसुन्दरीचरित—इसमें पुण्यपाल राजा की रानी गुणसुन्दरी के शील का अद्भुत वर्णन है। इसे पुण्यपालराजकथा भी कहते हैं।[1] इसकी प्राचीन प्रतियाँ सं० १६५८ और १६७६ की मिलती हैं। कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इस पर गुजराती में जिनकुशलसूरि ने सं० १६६५ में गुणसुन्दरीचतुष्पदी की रचना की है।[2] गुजराती में अन्य रचनाएँ भी हैं।

पद्मश्रीकथा—यह प्राकृत में ३१८ ग्रन्थाग्र-प्रमाण[3] लघु कथा है। इसमें नायिका पद्मश्री अपने पूर्वजन्म में एक सेठ की पुत्री थी, जो बालविधवा होकर अपना जीवन अपने दो भाइयों और उनकी पत्नियों के बीच एक ओर ईर्ष्या और सन्ताप तथा दूसरी ओर धर्म-साधना में बिताती रही। दूसरे जन्म में पूर्व पुण्य के फल से राजकुमारी हुई। किन्तु जो पापकर्म शेष रहा था उसके फलस्वरूप उसे पति-परित्याग का दुःख भोगना पड़ा तथापि संयम और तपस्या के बल से अन्त में उसने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षपद पाया।

इसके कर्ता एवं रचना का समय अज्ञात है। इस कथा पर अपभ्रंश में कवि धाहिलकृत पउमसिरिचरिउ मिलता है।[4]

रोहिणीकथा—नारी पात्रों में रोहिणी की कथा विभिन्न रूपों में प्रस्तुत की गई है। उपदेशप्रासाद में तीन विभिन्न रोहिणी नारियों की कथा दी गई है। एक विकथा पर, दूसरी रोहिणी व्रत का प्रवर्तन करनेवाली तथा तीसरी सती की कथा। शुभशीलगणिकृत भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति में रोहिणी सती की कथा दी गई है।

स्वतंत्र रचनाओं के रूप में प्राकृत में एक[5] कृति १३४ गाथाओं में रूपविजयगणिकृत, दूसरी[6] अज्ञातकर्तृक चार प्रस्तावों में तथा तीसरी[7] का उल्लेख नन्दिताढ्य के गाहालक्खण में रोहिणीचरित्र के रूप में मिलता है। संस्कृत में भानुकीर्ति[8] और नरेन्द्रदेव[9] की रचनाओं का उल्लेख किया गया है। अज्ञातकर्तृक[10] कुछ रोहिणीकथाएँ और रोहिणीचरित्र भी उपलब्ध हुए हैं। कनक-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०५, २५१.

२. वही, पृ० १०५.

३. वही, पृ० २३४.

४. सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित.

५-१०. जिनरत्नकोश, पृ० ३३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुशलरचित रोहिण्यशोकचन्द्रनृपकथा[1] तथा रोहिणेयकथा का परिचय व्रत-कथाओं के प्रसङ्ग में दिया गया है।

चम्पकमालाकथा—सुपासनाहचरिय में सम्यक्त्व-प्रशंसा में चम्पकमाला का उदाहरण आया है। उक्त कथानक को लेकर स्वतंत्र कथाग्रन्थ की रचना की गई है। चम्पकमाला चूडामणिशास्त्र की पण्डिता थी और इस शास्त्र की सहायता से जानती थी कि उसका कौन पति होगा तथा उसके कितनी सन्तान होंगी।

इसकी रचना तपागच्छीय मुनिविमल के शिष्य भावविजयगणि ने सं० १७०८ में की थी।[2] भावविजय की अन्य रचनाओं में उत्तराध्ययनटीका (सं० १६८१) तथा षट्त्रिंशत्जल्पविचार मिलते हैं।

दूसरी रचना २०वीं शती के तपागच्छाचार्य यतीन्द्रसूरि ने संस्कृत गद्य में चम्पकमालाचरित्र लिखा है। इसका रचनाकाल सं० १९९० है।[3]

कलावतीचरित—शील के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए कलावती के चरित्र संस्कृत-प्राकृत दोनों प्रकार की रचनाओं में मिलते हैं। अज्ञात-कर्तृक प्राकृत कलावतीचरित्र[4] की एक हस्तलिखित प्रति में सं० १२९१ दिया गया है। संस्कृत श्लोकों में निबद्ध अज्ञातकर्तृक कलावतीकथा[5] भी मिलती है।

कमलावतीचरित—इसमें मेघरथ नृप और रानी कमलावती का चरित्र दिया गया है। राजा-रानी संसार से विरक्त हो जाते हैं पर रानी कमलावती अपने दुधमुँहे बच्चे के कारण २० वर्ष घर में शील पालनकर पुत्र को गद्दी पर बैठा दीक्षा ले लेती है। इस पर संस्कृत में एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[6] गुजराती में विजयभद्र (१५वीं शती) कृत कमलावतीरास मिलता है।[7]

कनकावतीचरित—इसे रूपसेनचरित्र भी कहते हैं। इसमें रूपसेन नृप और रानी कनकावती का आख्यान वर्णित है। संस्कृत में जिनसूरिरचित

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३३४.

२. वही, पृ० १२१; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९७०.

३. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४२.

४–५. जिनरत्नकोश, पृ० ७४.

६. वही, पृ० ६७.

७. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ० १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अज्ञातकाल) तथा अज्ञातकर्तृक (सं० १६०४) रचनाएँ मिलती हैं।[1] गुजराती में साध्वी हेमश्री द्वारा रचित कनकावतीआख्यान (सं० १६४४) मिलता है।[2]

शीलचम्पकमाला—इसमें धनहीन को दान देने के माहात्म्य पर चम्पकमाला की कथा दी गई है।[3] कर्ता का नाम अज्ञात है।

कुन्तलदेवीकथा—गर्वरहित दान देने के प्रसंग में कुन्त देवी का कथानक दानप्रदीप (सं० १४९९) में आया है। इसी को किसी लेखक ने स्वतंत्र रचना के रूप में संस्कृत श्लोकों में लिखा है पर रचनासंवत् ज्ञात नहीं है।[4]

अच्चंकारिभट्टिकाकथा—उपदेशप्रासाद में उक्त कौतुकपूर्ण कथा आई है। उसी पर एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती है।[5]

मृगसुन्दरीकथा—श्रावकधर्म की दशविध क्रियाओं को यत्नपूर्वक पालने के लिए मृगसुन्दरी की कथा दृष्टान्तरूप में कही गई है। इस पर अनेक ग्रन्थों के लेखक कनककुशलगणि ने सं० १६६७ में एक कृति लिखी है।[6] एक दूसरी अज्ञातकर्तृक रचना का भी उल्लेख मिलता है। गुजराती में भी इस कथा पर रचनाएँ हैं।

शीलसुन्दरीशीलपताका—इसमें शीलतरंगिणी ग्रन्थ में वर्णित शीलसुन्दरी की कथा दी गई है जिसमें चतुर्विध आहार का त्यागकर संयमपालन से अपने जन्म का उद्धार करनेवाली शीलसुन्दरी नायिका है।[7] गुजराती में शीलसुन्दरी-रास भी मिलता है।

सुभद्राचरित—इसमें सागरदत्त द्वारा जैनधर्म स्वीकार कर लेने पर सुभद्रा के माता-पिता ने उसका विवाह उससे कर दिया। यहाँ सास-बहू तथा जैन बौद्ध

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ६७.
२. जैन गुर्जर कविओ, भाग १, पृ. २८६.
३. जिनरत्नकोश, पृ० ३८९.
४. वही, पृ० ९१.
५. वही, पृ० २.
६. वही, पृ० ३१३.
७. वही, पृ० ३८५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षुओं के पारस्परिक कलह का आभास मिलता है। इसमें सुभद्रा के शीलधर्म का अच्छा निरूपण है। यह कथानक कथाकोषप्रकरण (जिनेश्वरसूरि) में भी आया है। अज्ञातकर्तृक प्रस्तुत रचना १५०० ग्रन्थाग्र-प्रमाण है।[१] अभयदेव की सं० ११६१ में रची अपभ्रंश रचना का भी उल्लेख मिलता है।[२]

अन्य नारी पात्रों पर जो कथाएँ मिलती हैं वे इस प्रकार हैं—अभयश्री-कथा[३], जयसुन्दरीकथा[४], जिनसुन्दरीकथा[५] (शील पर), धव्यसुन्दरीकथा[६] (प्राकृत), नागश्रीकथा[७], पुण्यवतीकथा[८], पुष्पवतीकथा[९], मंगलमालाकथा[१०], मधुमालती-कथा[११], रतिसुन्दरीकथा[१२], रत्नमंजरीकथा[१३], रसमंजरीचरित्र[१४], शान्तिमतीकथा[१५], सूर्ययशाकथा[१६], सोमश्रीकथा[१७], सौभाग्यसुन्दरीकथा[१८], हंसावलीकथा[१९], हरिश्चन्द्र-तारालोचनीचरित[२०], पद्मिनीचरित्र[२१], मगधसेनाकथा[२२], मदनावलिकथा[२३], मदन-धनदेवीचरित[२४]।

तीर्थमाहात्म्य-विषयक कथाएँ :

तीर्थों के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए अनेक कथाकोश और स्वतंत्र काव्यों का भी निर्माण किया गया है। इनमें सबसे प्राचीन धनेश्वरसूरि का शत्रुंजयमाहात्म्य है। इसे रैवताचलमाहात्म्य[२५] भी कहते हैं।

शत्रुंजयमाहात्म्य—यह हिन्दू पुराणों में मिलनेवाले माहात्म्य-शैली पर लिखा गया है। यह एक महाकाव्य है जिसमें १४ सर्ग हैं जो प्रायः श्लोकों में हैं। इसका प्रारम्भ संसार के वर्णन से होता है, फिर राजा महीपाल के अद्भुत कार्य और फिर प्रथम जिन ऋषभ की कथा दी गई है। इसमें भरत-

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५.

२. वही.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १३. ४. वही, पृ० १३४. ५. वही, १३८. ६. वही, पृ० १९७. ७. वही, पृ० २१०. ८. वही, पृ० २५१. ९. वही, पृ० २५४. १०. वही, पृ० २९२. ११. वही, पृ० ३००. १२. वही, पृ० ३२६. १३. वही, पृ० ३२७. १४. वही, पृ० ३२९. १५. वही, पृ० ३८१. १६-१७. वही, पृ० ४५२. १८. वही, पृ० ४५३. १९. वही, पृ० ४५९. २०. वही, पृ० ४६०. २१. वही, पृ० ३३६. २२. वही, पृ० २९९. २३-२४. वही, पृ० ३००.

२५. वही, पृ० ३३३, ३७२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाहुबलि का युद्ध, यात्राएँ और भरत द्वारा धर्मक्षेत्रों की स्थापना, विशेषकर शत्रुंजय पर्वत पर बनाए मन्दिरों का वर्णन है। ९वें सर्ग में राम की कथा तथा १०-१२ तक कृष्ण और अरिष्टनेमि की कथा से सम्बद्ध पाण्डवों की कथा दी गई है। १०वें अध्याय में भीमसेन के सम्बन्ध में जो कथा कही गई है वह महाभारत के भीम से एकदम भिन्न है। यहाँ वह तस्कर एवं व्यर्थ पर बड़ा साहसी दिखाया गया है :

एक समय वह एक व्यापारी जहाज द्वारा समुद्र पार कर रहा था पर जहाज मध्य समुद्र में एक मूंगों की चट्टान के चारों ओर भटक गया। एक तोते ने बचाव का रास्ता दिखाया। उनमें से एक को मरने के लिए तैयार होना था, पर्वत की ओर तैर कर जाना था और वहाँ भारण्ड पक्षियों को विस्मित करना था। भीम ने यह काम अपने जिम्मे लिया, जहाज की रक्षा की पर पर्वत पर वह अकेला रह गया। सहायक तोते ने उसे भागने का रास्ता बताया। उसने स्वयं को समुद्र में डाल दिया, एक मछली ने उसे निगल लिया जिसे मारकर वह किनारे निकल आया। यह लंकाद्वीप था। अनेक साहसिक कार्यों के बाद उसने एक राज्य पाया पर कुछ समय बाद उसका परित्याग कर दिया ताकि शत्रुंजय के एक शिखर रैवत पर मुनि बन रह सके।

चौदहवें सर्ग में पार्श्वनाथ की कथा है और अन्त में महावीर की एक लम्बी भविष्यवाणी है जिसमें कई प्रकार के ऐतिहासिक अवतरण हैं जिनका अर्थ अबतक स्पष्ट नहीं हो पाया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता एक धनेश्वरसूरि हैं जिनके संबंध में कहा जाता है कि उन्होंने इसे सौराष्ट्रनरेश शीलादित्य (वलभी सं० ४७७= ७-८ वीं शती) के अनुरोध पर प्रस्तुत रचना लिखी थी। पर शत्रुंजयमाहात्म्य में सं० ११९९ से १२३० के बीच राज्य करनेवाले कुमारपाल का वृत्तान्त भी आया है। इससे यह उतनी प्राचीन रचना नहीं है। वास्तव में वलभी में शीलादित्य नाम के ६ राजा हो गये हैं पर जैन लेखक एक ही शीलादित्य का उल्लेख करते हैं। धनेश्वरसूरि भी कई हो गये हैं। सम्भवतः ये धनेश्वरसूरि १३वीं या उसके बाद की शताब्दी में हुए लेखक हैं।[1]

---

१. मोहनलाल दलीचन्द देसाई, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० १४५-१४६ पर टिप्पण १३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुञ्जयमाहात्म्य पर एक अज्ञातकर्तृक व्याख्या तथा रविकुशल के शिष्य देवकुशलकृत बालावबोध टीका सं० १६६७ में लिखी मिलती है।[१]

इसी माहात्म्य का संक्षिप्त रूप सं० १६६७ में खम्भात के महीराज के पुत्र ऋषभदास ने शत्रुञ्जयोद्धार[२] नाम से लिखा था और धनेश्वरसूरि की कृति को ही आधार बनाकर शत्रुञ्जयमाहात्म्योल्लेख[३] काव्य १५ अध्यायों में सरल संस्कृत गद्य में सं० १७८२ में हंसरत्न ने लिखा। हंसरत्न तपागच्छ की नागपुरीय शाखा के न्यायरत्न के शिष्य थे।

शत्रुञ्जयतीर्थ के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए उपकेशगच्छीय सिद्धसूरि के पट्टधर शिष्य कक्कसूरि ने सं० १३९२ में शत्रुञ्जयमहातीर्थोद्धारप्रबन्ध[४] की रचना की है। इसका अपरनाम नाभिनन्दनोद्धारप्रबन्ध भी है। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व की रचना है। इसका परिचय हम पहले दे चुके हैं।

एतद्विषयक अन्य रचनाओं में जिनहर्षसूरिकृत शत्रुञ्जयमाहात्म्य[५], नयसुन्दर का सं० १६३८ में निर्मित शत्रुञ्जयोद्धार[६] तथा तपागच्छ के विनयन्धर के शिष्य विवेकधीरगणि द्वारा सं० १५८७ में रचित शत्रुञ्जयोद्धार अपरनाम इष्टार्थ-साधक[७] उल्लेखनीय हैं।

शत्रुञ्जयतीर्थ सम्बन्धी अनेक कथाओं का संग्रह शत्रुञ्जयकथाकोश[८] है जो धर्मघोषसूरिकृत शत्रुञ्जयकल्प पर १२५०० श्लोक-प्रमाण वृत्तिरूप में शुभशीलगणि ने सं० १५१८ में बनाया है।

शुकराजकथा—शत्रुंजयतीर्थ के माहात्म्य को एक और रीति से प्रकट करने

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३७२.

२. वही, पृ० ३७३.

३. वही, पृ० ३७२.

४. वही.

५. वही.

६. वही, पृ० ३७३.

७. वही; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९७३.

८. वही, पृ० ३७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए शुकराजकथा[1] की रचना भी कुछ आचार्यों ने की है। इसमें क्षिति-प्रतिष्ठितपुर के राजकुमार शुकराज की कथा है जो विमलगिरि पर जाकर मंत्र-साधनकर शत्रु को जीतनेवाला—शत्रुञ्जय हो गया था तभी से उक्त तीर्थ का नाम शत्रुञ्जय पड़ गया : **शुकस्तत्र गत्वाऽत्र मंत्रसाधनेन शत्रुञ्जयोऽभूदिति महोत्सवं कृत्वा विमलगिरेः शत्रुञ्जय इति नाम प्रख्यापयामास।**

कर्ता एवं रचनाकाल—इसकी रचना अञ्चलगच्छीय मेरुतुंग के शिष्य माणिक्यसुन्दर ने ५०० श्लोकों में की है। माणिक्यसुन्दर बड़े अच्छे कवि थे। इनकी अन्य रचनाएँ चतुःपर्वीचम्पू, श्रीधरचरित्र (सं० १४६३), धर्मदत्त-कथानक, महाबलमलयसुन्दरीचरित्र, अजापुत्रकथा, आवश्यकटीका, पृथ्वीचन्द्र-चरित्र (प्राचीन गुजराती, सं० १४७८) और गुणवर्मचरित्र (सं० १४८४) हैं।

शुकराजकथा-विषयक अन्य कृतियाँ शुभशीलगणि (१६वीं शती का पूर्वार्ध) कृत तथा कुछ अज्ञातकर्तृक[2] भी मिलती हैं।

सुदर्शनाचरित—भड़ौच (भृगुकच्छ) के शकुनिकाविहार-जिनालय के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए सुदर्शना की कथा पर ज्ञातकर्तृक दो प्राकृत रचनाएँ, एक संस्कृत रचना तथा एक अज्ञातकर्तृक प्राकृत रचना मिली हैं।[3]

अज्ञातकर्तृक प्राकृत रचना की हस्तलिखित प्रति सं० १२४४ की मिली है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि यही पश्चाद्वर्ती कृतियों का आधार रही है।

द्वितीय रचना भी प्राकृत में है। इसके रचयिता मलधारी देवप्रभसूरि (तेरहवीं शती का उत्तरार्ध) हैं। यह १८८७ श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है। तृतीय रचना का परिचय कथा के साथ दे रहे हैं। चतुर्थ रचना संस्कृत में किन्हीं माणिक्य-सूरिकृत सुदर्शनाकथानक है।

सुदंसणाचरिय—इसका दूसरा नाम शकुनिकाविहार भी है। यह एक प्राकृत ग्रन्थ है जिसमें कुल मिलाकर ४००२ गाथाएँ हैं। बीच-बीच में शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें धनपाल, सुदर्शन, विजयकुमार,

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३८६; हंसविजय जैन फ्री लाइब्रेरी, ग्रन्थांक २०, सं० १९८०.

२. वही.

३. वही, पृ० ४३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलवती, अश्वावबोध, भ्राता, धात्रीसुत और धात्री ये आठ अधिकार हैं जो १६ उद्देशों में विभक्त हैं।[1]

सुदर्शना सिंहलद्वीप में श्रीपुरनगर के राजा चन्द्रगुप्त और रानी चन्द्रलेखा की पुत्री थी। पढ़-लिखकर वह बड़ी विदुषी और कलावती हो गई। एक बार उसने राजसभा में ज्ञाननिधि पुरोहित के मत का खण्डन किया। धर्म-भावना से प्रेरित हो वह भृगुकच्छ की यात्रा पर गई और वहाँ उसने मुनिसुव्रत तीर्थंकर का मन्दिर तथा शकुनिकाविहार नामक जिनालय का निर्माण कराया।

सुदर्शना का यह चरित्र हिरण्यपुर के सेठ धनपाल ने अपनी पत्नी धनश्री को सुनाया। कथा में प्रसंगवश अनेक स्त्री-पुरुषों के तथा नाना अन्य घटनाओं के रोचक वृत्तान्त शामिल हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल--इसके रचयिता तपागच्छीय जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य देवेन्द्रसूरि हैं। कर्ता ने अपने विषय में कहा है कि वे चित्रापालकगच्छीय भुवन ... गुरु, उनके शिष्य देवभद्र मुनि और उनके शिष्य जगच्चन्द्रसूरि के शिष्य थे। उनके एक गुरुभ्राता विजयचन्द्रसूरि ने इस ग्रन्थ के निर्माण में सहायता दी थी। कहा जाता है कि देवेन्द्रसूरि को गुर्जर राजा की अनुमति-पूर्वक वस्तुपाल मंत्री के समक्ष आबू पर सूरिपद प्रदान किया गया था। देवेन्द्र-सूरि ने वि० सं० १३२३ में विद्यानन्द को सूरिपद प्रदान किया था तथा सं० १३२७ में स्वर्गवासी हुए थे अतः इस कथाग्रन्थ की रचना इस समय से पूर्व हुई है। इनके अन्य ग्रन्थों में पञ्चनव्यकर्मग्रन्थ सटीक, तीन आगमों पर भाष्य, श्राद्धदिनकृत्य सवृत्ति तथा दानादिकुलक मिलते हैं।

अन्य तीर्थों में दक्षिण भारत के श्रवणबेलगोल के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए गोमटेश्वरचरित्र[2] नामक एक संस्कृत रचना का उल्लेख मिलता है। इसी तरह मध्य प्रदेश के एक अन्य तीर्थ सुवर्णाचल 'सोनागिर' के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए देवदत्त दीक्षित ने सं० १८४५ में स्वर्णाचलमाहात्म्य[3] की रचना

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४; आत्मवल्लभ ग्रन्थ सिरीज, बलाद (अहमदाबाद) से सन् १९३२ में प्रकाशित; कथाग्रन्थ की अन्य विशेषताओं के लिए देखें—प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५६१-५६६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ११२.

३. बाबू छोटेलाल जैन स्मृतिग्रन्थ, पृ० ११५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की है। इसके अन्तिम अध्याय में भट्टारक परम्परा का इतिहास दिया गया है। गिरिनारोद्धार[1] नामक एक अन्य रचना में गिरिनार का माहात्म्य वर्णित है।

बहुत से तीर्थों का संक्षिप्त परिचय देने के लिए जिनप्रभसूरिकृत विविध-तीर्थकल्प (सं० १३६४-८९) प्रकाशित है। इसका परिचय इस इतिहास के चतुर्थ भाग में दिया गया है।

तिथि-पर्व-पूजा-स्तोत्रविषयक कथाएँ :

जैन विद्वानों ने तप, शील, ज्ञान और भावना के समान तथा तीर्थों के माहात्म्यों के समान अपने धर्म या सम्प्रदाय के मान्य पर्वों तथा पुण्य-तिथियों के माहात्म्य को बतलानेवाले अनेक कथाग्रन्थ लिखे हैं। इस प्रवृत्ति का सूत्रपात १४-१५वीं शती से विशेष हुआ है पर १६–१७वीं शताब्दी में एतद्विषयक विशाल साहित्य की सृष्टि हुई है। यहाँ कुछ रचनाओं का परिचय तथा अन्य कृतियों का विस्तारभय से उल्लेख मात्र करेंगे। पाश्चात्य देशों में इन कथाओं पर भी अच्छा समीक्षात्मक अध्ययन प्रारम्भ हो गया है। अतः ये मननीय हैं, न कि उपेक्षणीय।

ज्ञानपंचमीकथा—कार्तिक शुक्ल पंचमी को ज्ञानपंचमी और सौभाग्य-पञ्चमी नाम से भी कहा जाता है। इस दिन ग्रन्थ को पट्टे पर रखकर पूजा, संमार्जन, लेखन आदि करना चाहिये और 'नमो नाणस्स' का १००० जाप करना चाहिये। इसके माहात्म्य को प्रकट करने के लिए ज्ञानपञ्चमीकथा,[2] श्रुतपञ्चमीकथा, कार्तिकशुक्लपञ्चमीकथा[3], सौभाग्यपञ्चमीकथा[4] या पञ्चमीकथा, वरदत्तगुणमञ्जरीकथा[5] तथा भविष्यदत्तचरित्र[6] नाम से अनेकों कथाग्रन्थ लिखे गये हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०५.

२. वही, पृ० १४८.

३. वही, पृ० ८५.

४. वही, पृ० २२६, ४५३.

५. वही, पृ० ३४१.

६. वही, पृ० २९३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनमें सबसे प्राचीन नाणपञ्चमीकहाओ[1] नामक ग्रन्थ है जिसमें दस कथाएँ संकलित की गई हैं, वे हैं : जयसेणकहा, नन्दकहा, भद्दाकहा, वीरकहा, कमलाकहा, गुणाणुरागकहा, विमलकहा, धरणकहा, देवीकहा और भविस्सयत्तकहा। समस्त रचना में २८०४ गाथाएँ हैं। इसकी भविस्सयत्तकहा के कथा-बीज को लेकर धनपाल ने अपभ्रंश में भविस्सयत्तकहा या सुयपञ्चमीकहा नामक महत्त्वपूर्ण काव्य लिखा है, और उसका संस्कृत रूपान्तर मेत्रविजयगणि ने भविष्यदत्तचरित्र नाम से प्रस्तुत किया है। इसके रचयिता सज्जन उपाध्याय के शिष्य महेश्वरसूरि हैं। इनके विषय में विशेष कुछ नहीं मालूम है। इस कृति की सबसे पुरानी ताडपत्रीय प्रति वि० सं० ११०९ की पाटन के संघवी भण्डार से मिली है। इससे अनुमान है कि यह इससे पूर्व की रचना है। महेश्वरसूरि को ही भूल से महेन्द्रसूरि लिखकर उक्तकर्तृक भविष्यदत्तकथा को भविष्यदत्ताख्यान नाम से कुछ प्रतियाँ भी मिलती हैं।

तेरहवीं-चौदहवीं सदी में इस कथा के विषय में संस्कृत-प्राकृत में सम्भवतः कोई रचना नहीं की गई।

पन्द्रहवीं सदी में श्रीधर नामक दिगम्बर विद्वान् ने संस्कृत में भविष्यदत्तचरित्र[2] की रचना की जिसकी हस्तलिखित प्रति सं० १४८६ की मिली है, इससे यह रचना अवश्य इस काल से पूर्व हुई है। सत्तरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उपाध्याय पद्मसुन्दर ने भी एक भविष्यदत्तचरित[3] की रचना कार्तिक सुदी ५ सं० १६१४ में की थी। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में तपागच्छीय कनककुशल ने कार्तिक शुक्ल पञ्चमी के दिन ज्ञानश्रुत का माहात्म्य सूचित करने के लिए एक कोढ़ी वरदत्त और गूंगी गुणमंजरी की कथा बड़े रोचक रूप में निबद्ध की है जिसे वरदत्तगुणमंजरीकथा, गुणमंजरीकथा, सौभाग्यपंचमीकथा, ज्ञानपंचमीकथा और कार्तिकशुक्लपंचमीमाहात्म्यकथा नाम से कहा गया है। कुछ विद्वान् इन विभिन्न नामों से विभिन्न कृतियाँ मान बैठे हैं पर यह भ्रम है। कनककुशल की यह कृति १५२ श्लोकों में है और सं० १६५५ में

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २५, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, सं० २००५.

२. अनेकान्त, जून १९४१, पृ० ३५०.

३. ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन में सं० १६१५ की हस्तलिखित प्रति; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रची गई थी। कनककुशल अनेक लघुकाय ग्रन्थों के लेखक थे जिनका उल्लेख कर चुके हैं।

इस कथा को लेकर माणिक्यचन्द्र के शिष्य दानचन्द्र ने भी सं० १७०० में ज्ञानपंचमीकथा[१] (वरदत्त-गुणमंजरीकथा) का निर्माण किया। अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध ग्रंथकार एवं कवि उपाध्याय मेघविजय (वि० सं० १७०९-१७६०) ने श्रुतपंचमी-माहात्म्य पर २०४२ पद्यों का भविष्यदत्तचरित[२] लिखा जो २१ अधिकारों में विभक्त है। इसमें पद्यों के बीच-बीच में हितोपदेश, पंचतंत्र आदि ग्रन्थों से सुभाषित उद्धृत किये गये हैं। इसे अनुप्रास, यमकादि शब्दालंकारों से विभूषित किया गया है। मेघविजय उपाध्याय का परिचय और उनकी कृतियों का उल्लेख कई प्रसङ्गों में किया जा चुका है। कुछ विद्वानों ने इसे धनपालकृत २००० गाथा-प्रमाण अपभ्रंश भविसत्तकहा (२२ संधियाँ) का संस्कृत रूपान्तर माना है।[३]

उन्नीसवीं सदी में खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण उपाध्याय (सं० १८२९-६५) ने ज्ञानपंचमी के माहात्म्य पर संस्कृत गद्यपद्यमय सौभाग्यपंचमी कथा रची। इसका पद्यभाग तो कनककुशलकृत एतद्विषयक रचना से लिया है और गद्य स्वयं रचा है। क्षमाकल्याण द्वारा रचित अन्य व्रतकथाएँ भी मिलती हैं: अक्षयतृतीयाकथा, मेरुत्रयोदशीकथा, मौनएकादशीकथा, रोहिणीकथा आदि।

एतद्विषयक अन्य रचनाओं[४] में जिनहर्षकृत (अज्ञातसमय), पार्श्वचन्द्रकृत, सुन्दरगणिकृत, मंजुसूरिकृत, मुक्तिविमलकृत[५] (वि० सं० १९६९ में १०२ संस्कृत पद्यों में) तथा कई अज्ञातकर्तृक कृतियाँ मिलती हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १४८.

२. हिम्मत ग्रन्थमाला, अंक १ में पं० मफतलाल झवेरचन्द्र गांधी द्वारा सम्पादित, गुजराती अनुवाद—अहमदाबाद से प्रकाशित.

३. प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ४४१ पर टिप्पण.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ८५, १४८, २२६, २४१.

५. दयाविमल ग्रन्थमाला, अहमदाबाद.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोहिण्यशोकचन्द्रनृपकथा—इसके अपर नाम हैं : रोहिणेयकथानक, रोहिणीव्रतकथा या रोहिणीतपमाहात्म्य।[१] इसमें रोहिणीव्रत के माहात्म्य के सम्बन्ध में कथा दी गई है। रोहिणी नक्षत्रों में चौथा है और प्रत्येक माह में जब यह चन्द्रमा से संपृक्त होता है उस दिन महिलाएँ उपवासकर सुबह-शाम प्रतिक्रमण करती हैं। यह व्रत १४ वर्ष और १४ माह चलता है। इस व्रत को गुजरात में स्त्रियाँ ही करती हैं पर इस कथा में स्त्री-पुरुष दोनों के पालने का विधान है तथा उसे ७ वर्ष ७ माह तक पालने को कहा है। इसकी रचना तपागच्छीय विजयसेनसूरि के शिष्य सोमकुशलगणि के शिष्य कनककुशलगणि ने सं० १६५६ में की थी। कनककुशल अन्य अनेक लघुकाय कृतियों के रचयिता हैं।

पौषदशमीकथा—पौष महीने की कृष्ण दशमी के दिन भ० पार्श्वनाथ का जन्मकल्याण है। उस दिन के व्रत का माहात्म्य सूचन करने के लिए सेठ सूरदत्त की कथा कही गई है। वह अन्य मतावलम्बी था और दुर्भाग्यवश उसकी सारी निधि खो जाने से वह दरिद्र हो गया था। उसने पौष कृष्ण दशमी के दिन पार्श्वनाथ का आराधन कर पुनः सारी निधि पा ली थी।

इस कथानक[२] पर किसी जिनेन्द्रसागरकृत[३], दयाविमल के शिष्य मुक्तिविमलकृत[४] (सं० १९७१) और एक अज्ञातकर्तृक रचना मिलती हैं। मुक्तिविमल की रचना संस्कृत गद्य में लिखी गई है। बीच-बीच में उसमें अनेक संस्कृत पद्य उद्धृत हैं।

मेरुत्रयोदशीकथा—माघकृष्ण त्रयोदशी को मेरुत्रयोदशी कहते हैं। इस दिन पंच मेरु पर्वतों की छोटी आकृति बनाकर पूजने में जो फल होता है उसका माहात्म्य राजा अनन्तवीर्य और रानी प्रीतिमती के पुत्र पांगुल की पंगुता हट जाने द्वारा बतलाया गया है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३३४; जैन आत्मानन्द सभा (ग्रन्थांक ३६), भावनगर, सं० १९७१; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१२; इस कथा का पूरा अनुवाद और विवरण हेलेन एम० जोनसन ने अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी की पत्रिका के भाग ६८, पृ० १६८-१७५ पर प्रकाशित किया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० २५७.

३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस से प्रकाशित—पर्वकथासंग्रह, भाग १, वीर सं० २४३६.

४. दयाविमल जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, १९१८–१९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कथानक को लेकर एक रचना खरतरगच्छीय अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याण ने सं० १८६० में[1], दूसरी लब्धिविजय[2] तथा तीसरी मुक्तिविमल[3] (वि० सं० १९७१ माघ शुक्ल पंचमी) ने बनाई है। दो अज्ञातकर्तृक रचनाएँ भी मिलती हैं। मुक्तिविमल की रचना में प्रशस्तिपद्यसहित ३२२ पद्य हैं।

सुगन्धदशमीकथा—भाद्रपद शुक्ल १०वीं को सुगन्धदशमी कहते हैं। उस दिन व्रत रखने, धूप आदि से पूजा करने से शारीरिक कुष्ठव्याधि, दुर्गन्धि आदि रोग दूर भाग जाते हैं। इस व्रत के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए संस्कृत, अपभ्रंश और देशी भाषाओं में अनेक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

उनमें से एक संस्कृत में १६१ श्लोकों में निबद्ध है।[4] इसमें तिलकमती नामक वणिक्पुत्री की कथा है जो अपने पूर्वजन्म में मुनि को कड़वी तुम्बी का आहार देकर अनेक दुर्गतियों में गई और इस व्रत के प्रभाव से सुगति पाई। तिलकमती की विमाता के कपटप्रबन्ध की योजना ने इस कहानी को बड़ा कौतुक-वर्धक बना दिया है।

इसके रचयिता अनेक व्रतकथाओं और तत्त्वार्थवृत्ति आदि ग्रन्थों के लेखक श्रुतसागर हैं जो विद्यानन्दि भट्टारक के शिष्य थे। इनका परिचय अन्यत्र दे चुके हैं। इनका समय सं० १५१३–३० के बीच अनुमान किया जाता है।

सुगन्धदशमीकथा पर एक अज्ञातकर्तृक रचना भी मिलती है।[5]

होलिकाव्याख्यान—यह गद्यात्मक संस्कृत में है।[6] इसके रचयिता अभिधान-राजेन्द्र के संकलयिता आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि हैं। इसमें फाल्गुन सुदी पक्ष में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१९.
२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१७.
३. दयाविमल ग्रन्थमाला, जमनाभाई भगुभाई, अहमदाबाद, १९१९.
४. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से वि० सं० २०२१ में प्रकाशित एवं डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित सुगन्धदशमी (अपभ्रंश) कथा के साथ पृ०३०–४८ में हिन्दी अनुवाद सहित.
५. जिनरत्नकोश, पृ० ४४४.
६. राजेन्द्रसूरि स्मृति-ग्रन्थ, पृ० ९२–९४, राजेन्द्रप्रवचन कार्यालय, खुडाला से प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अश्लीलतापूर्ण ढङ्ग से मनाये जानेवाले होली पर्व की उत्पत्ति जैनमान्यता के अनुसार किस प्रकार और कैसे हुई है, दी गई है। उक्त आचार्य की कथात्मक रचनाओं में दीपमालिकाकथा (संस्कृत गद्य) और पंचाख्यानकथासार भी मिलते हैं। इनकी अन्य ६० के लगभग रचनाएँ भी मिलती हैं।

होली के पर्व पर अन्य रचनाओं में रजःपर्वकथा[1] (होलिरजःपर्वकथा) तथा जिनसुन्दर, शुभकरण, क्षमाकल्याण, मालदेव, माणिक्यविजय, पुण्य-सागर एवं फत्तेन्द्रसागर आदि कृत हुताशिनीकथा[2] एवं होलिकापर्वकथाएँ[3] मिलती हैं।

स्तोत्रकथाएँ—व्रतों, तीर्थों, पर्वों एवं पूजा के माहात्म्य-वर्णन की भाँति ही अनेक प्रमुख स्तोत्रों के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए स्तोत्रकथाएँ भी लिखी गई हैं।

भक्तामरकथा—इस नाम की कृतियाँ कई लेखकों की मिली हैं। उनमें सर्वप्रथम रुद्रपल्लीयगच्छ के गुणाकर अपरनाम गुणसुन्दरसूरिकृत कथा[4] है जिसका रचनासमय सं० १४२६ है। इसमें ४४ पद्यों में से कुछ पद्यों के माहात्म्य पर २६ कथाएँ दी गई हैं।

दूसरी कथाकृति ब्रह्म रायमल्लकृत है जिसे उन्होंने सं० १६६७ में लिखा था।[5]

एक अन्य भक्तामरस्तोत्रचरित्र विश्वभूषणकृत उपलब्ध है। विश्वभूषण अनन्तभूषण के शिष्य थे।

एक अज्ञातकर्तृक भक्तामरस्तोत्रमंत्रकथा का उल्लेख भी मिलता है।[6]

उवसग्गहरप्रभावकथा—इसमें प्रसिद्ध स्तोत्र उवसग्गहर के माहात्म्य का वर्णन करने के लिए तपागच्छीय सुधाभूषण के शिष्य जिनहर्षसूरि ने कथाएँ लिखी

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३२१.

२. वही, पृ० ४६२.

३. वही, पृ० ४६३.

४. वही, पृ० २९०; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ७०, बम्बई, सं० १९८८.

५. वही, पृ० २८८-२८९.

६. वही, पृ. २८९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इसकी प्राचीनतम[1] प्रति का लेखनसं० १५३९ दिया गया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्रियंकर नृप की कथा का उल्लेख किया है।

ऋषिमण्डलस्तोत्रगतकथा—इसका उल्लेख मात्र मिलता है।[2]

नमस्कारकथा—पंच णमोकार मंत्र पर संस्कृत श्लोकों में नमस्कारकथा, नमस्कारफलदृष्टान्त[3] आदि रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

तिथिव्रत, पर्व एवं पूजाविषयक अन्य कथाएँ :

ग्रन्थनाम		लेखक का नाम
अक्षयतृतीयाकथा[4]		कनककुशल (१७वीं का उत्तरार्ध), क्षमाकल्याण (१९वीं शती) एवं अज्ञातकर्तृक
अक्षयविधानकथा[5]		श्रुतसागर (१६वीं का पूर्वार्ध)
अनन्तव्रतकथा[6]		,, ,,
अनन्तचतुर्दशीपूजाकथा[7]		अज्ञात
अनन्तव्रतविधानकथा[8]		अज्ञात
अष्टप्रकारपूजाकथा[9]	(पूजाष्टक)	चन्द्रप्रभ महत्तर (सं० १४८१)
,, [10]	(पूजाष्टक)	अज्ञात
,, [11]	(पूजाष्टक)	अज्ञात (प्राकृत, १००० ग्रन्थाग्र)
अष्टाह्निकाकथा[12]		अनन्तहंस (१६वीं का उत्तरार्ध), सुरेन्द्रकीर्ति, हरिषेण, क्षमाकल्याण (१९वीं शती)
आकाशपञ्चमीकथा[13]		श्रुतसागर (१६वीं का पूर्वार्ध), अज्ञात

१. जिनरत्नकोश, पृ० ५४-५५.
२. वही, पृ० ६१.
३. वही, पृ० २०१-२०२.
४. वही, पृ० १; क्षमाकल्याणकृत—हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१७ में प्रकाशित.
५. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ४६२.
६-८. जिनरत्नकोश, पृ० ७.
९-११. वही, पृ० १८.
१२-१३. वही, पृ० १०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थनाम	लेखक का नाम
आदित्यव्रतकथा[१] (रविव्रतकथा)	श्रुतसागर (१६वीं का पूर्वार्ध), भानुकीर्ति, अज्ञात
उद्योतपंचमीकथा[२]	अज्ञात, टीकाकार कनककुशल (१७वीं का उत्तरार्ध)
एकादशीव्रतकथा[३]	अज्ञात (१३७ प्राकृत गाथाएँ)
चतुःपर्वकथा[४]	माणिक्यसुन्दर एवं अज्ञातकर्तृक
चतुर्मासपर्वकथा[५]	अज्ञातकर्तृक
चातुर्मासिकपर्वकथा[६]	भावप्रभसूरि (सं० १७८२)
चातुर्मासिकपर्वव्याख्यान[७]	क्षमाकल्याण (१९वीं शती), समयसुंदर (सं० १६६५)
चातुर्मासिकव्याख्यान[८]	धर्ममन्दिरगणि (सं० १७४९), ५०० ग्रन्थाग्र
चन्दनषष्ठी[९]	ब्र० श्रुतसागर
जिनपूजाष्टकविषयकथा[१०]	अज्ञात (प्राकृत)
जिनमुखावलोकनव्रतकथा[११]	(अज्ञात)
चैत्रपूर्णिमाकथा[१२]	अमरचन्द्र, टीका जीवराज, सं० १८६९
दशपर्वकथा[१३] (दशपर्वकथासंग्रह)	क्षमाकल्याण
दीपमालिकाकथा[१४]	,,
दीपोत्सवकथा[१५]	त्रिभुवनकीर्ति
द्वादशपर्वकथा[१६]	अज्ञात
नन्दीश्वरकथा[१७] (अष्टाह्निका या सिद्धचक्रकथा)	ब्र० नेमिचन्द्र, शुभचन्द्र
निःदुःखसप्तमी[१८] (निर्दोषसप्तमी)	श्रुतसागर

१. वही, पृ० २८; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १६३, २९०, ४४३.
२. जिनरत्नकोश, पृ० ४६. ३. वही, पृ० ६१.
४-५. वही, पृ० ११३. ६-८. वही, पृ० १२२.
९. वही, पृ० ११८. १०. वही, पृ० १३५.
११. वही, पृ० १३५. १२. वही, पृ० १६८. १३-१५. वही, पृ० १७५.
१६. वही, पृ० १८४. १७. वही, पृ० २००, २१०; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ०. २७४. १८. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थनाम	लेखक का नाम
पर्वकथा[1]	अज्ञात (प्राकृत)
पर्वकथा[2] (चैत्रीव्याख्यान)	अज्ञात (संस्कृत)
पर्वकथासंग्रह	विजयलक्ष्मीकृत उपदेशप्रासाद का एक अंश, ८ पर्वों की कथा
पल्यविधानव्रतोपाख्यानकथा[3]	श्रुतसागर (१६वीं शती)
पुष्पांजलीकथा[4]	श्रुतसागर (१६वीं शती)
भानुसप्तमीकथा[5]	अज्ञात
मुक्तावलिकथा[6]	मतिसागर
मेघमाला[7]	अज्ञात, श्रुतसागर
मेघमालाव्रताख्यान[8]	अज्ञात
मेरुपंक्तिकथा[9]	श्रुतसागर
मेरुत्रयोदशीव्याख्यान[10]	क्षमाकल्याण (सं० १८६०)
मार्गशीर्षएकादशी[11]	
मौनएकादशीकथा[12]	रविसागर, सौभाग्यनन्दि, धीरविजयगणि, धनचन्द्र, क्षमाकल्याण
मौनव्रतकथा[13]	गुणचन्द्राचार्य
रत्नत्रयविधानकथा[14]	
रत्नत्रयव्रतकथा[15]	
रक्षाबन्धनकथा[16] (विष्णुकुमार-कथा)	सकलकीर्ति
रात्रिभोजनत्यागकथा[17]	ब्र० नेमिदत्त, हेमसेन, ब्र० जिनदास
लक्षणपंक्तिकथा[18]	
व्रतकथाकोश[19]	देवेन्द्रकीर्ति, धर्मचन्द्र, मल्लिषेण, श्रुतसागर

१-३. जिनरत्नकोश, पृ० २४०. ४. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७४. ५. जिनरत्नकोश, पृ० २९४. ६. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ४५१. ७-८. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५. ९. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७५. १०. जिनरत्नकोश, पृ० ३१५. ११. वही, पृ० ३०७. १२-१३. वही, पृ० ३१६. १४-१५. वही, पृ० ३२७. १६. वही, पृ० ३२९. १७. वही, पृ० ३३१. १८. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७५. १९. जिनरत्नकोश, पृ. ३६८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थनाम	लेखक का नाम
शरदुत्सवकथा[1]	भट्टारक सिंहनन्दि
श्रवणद्वादशीकथा[2]	श्रुतसागर
षोडशकारणकथा[3]	श्रुतसागर
सप्तदशप्रकारकथा[4]	माणिक्यसुन्दर
सिद्धचक्रकथा[5]	शुभचन्द्र, अज्ञात

परीकथाएँ :

विक्रमादित्यविषयक कथानक—वि० सं० १२०० से १५०० के बीच तीन सौ वर्षों में विक्रमादित्य की परम्परा को लेकर जैन कवियों ने बहुविध साहित्य का सृजन किया है। वि० सं० १२०० से पूर्व जैन साहित्य में विक्रम के उल्लेख बहुत ही थोड़े मिले हैं। यद्यपि उसके नगर उज्जयिनी का प्राचीन जैन साहित्य में प्रचुर प्रमाण में वर्णन किया गया है। विक्रम सम्बन्धी जैन परम्परा का उद्गमसूत्र सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित मानी गई एक गाथा है जिसमें सिद्धसेन विक्रमादित्य से कह रहे हैं कि '११९९ वर्ष बीतने पर तुम्हारे जैसा ही एक राजा (कुमारपाल) होगा'।[6] यह गाथा अवश्य ही किसी ने कुमारपाल की दानशीलता और असीम दया विषयक कीर्ति फैलने के बाद ही रची होगी। प्रतीत होता है कि इससे पूर्ववर्ती काल में अतीत जैन राजाओं में विक्रम को नहीं सम्मिलित किया गया क्योंकि वह एक अविवेकी नृप था, ऐसे साहसिक कार्य करता था जिसमें उसके शत्रुओं का निर्मम वध चित्रित है। इसलिए वह उदार एवं धार्मिक राजाओं की पंक्ति में न आ सका। परन्तु विक्रम के स्वभाव का एक पक्ष और था और वह था अपने साहसिक कार्यों द्वारा निःस्पृह भाव से जनसेवा करना। यह उद्देश्य सच्चे जैन नरेश के आदर्शों से पूर्ण संगति खाता है। विक्रम साधारण व्यक्ति के लिए भी, चाहे वह उसका घोर शत्रु ही क्यों न हो, अपना सर्वस्व यहाँ तक कि जीवन बलिदान देने के लिए तैयार रहता था। इसके अतिरिक्त वह उदात्तचित्तवाला नरेश था जिसमें असीम करुणा भरी थी।

१. वही, पृ० ३७८. २. भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १७४. ३. जिनरत्नकोश, पृ० ४०५. ४. वही, पृ० ४१५. ५. वही, पृ० ४३६.

६. पुन्ने वाससहस्से सयम्मि वरिसाण नवनवइ अहिए।
होहि कुमरनरिन्दो तुह विक्कमराय सारिच्छो ॥—प्रबन्धचिन्तामणि, पृष्ठ ८, पद्य ८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारपाल के उदय के बाद उसके जैसे नरेश विक्रमादित्य के उक्त पक्ष ने जैन कवियों को आकर्षित किया और उसे परम दानी तथा अनेकविध अलौकिक शक्तियों का पुञ्ज मान लिया। दान के लिए उसे सुवर्णपुरुष की प्राप्ति तथा अलौकिक कार्यों के लिए अग्निवेताल की सिद्धि की कल्पना की गई है। कुमारपाल की मृत्यु के सौ वर्ष बाद तो उसे एक आदर्श जैन नरेश ही मान लिया गया।

सं० १२०० के बाद विक्रम को दृष्टान्तरूप उपस्थित करनेवाला ग्रन्थ है सोमप्रभाचार्य का कुमारपालप्रतिबोध (सं० १२४१) जिसमें विक्रम के परपुरप्रवेश की निन्दा तथा उसके परोपकार-दयाभावों की प्रशंसा की गई है और कहा गया है कि उसने सुवर्णपुरुष के कारण याचकों को सुखी तथा भिन्न ऋद्धियों द्वारा प्रजा की उन्नति की थी।

इसके बाद प्रभाचन्द्र के 'प्रभावकचरित' (सं० १३३४) में अनेक बातें कही गई हैं जैसे भृगुपुर (भड़ौच) तीर्थ का उद्धार, वायट में महावीर जिनालय का निर्माण, सिद्धसेन को धर्मलाभ कहने पर एक करोड़ रुपये देना आदि। मेरुतुंग ने 'प्रबन्धचिन्तामणि' (सं० १३६१) में विक्रम के लिए सर्वप्रथम एक स्वतंत्र प्रबन्ध लिखा है। जिसमें उसे जन्म से दरिद्र तथा बाल्यकाल में राज्य से निष्कासित तथा पीछे उसकी राज्यप्राप्ति, चमत्कार आदि की बातें दी गई हैं। जिनप्रभसूरि के विविधतीर्थकल्प (सं० १३६५-१३९०) में यद्यपि विक्रम का जीवनवृत्त नहीं दिया गया पर विविध प्रसङ्गों में उसे जैनधर्म प्रसारक बतलाया गया है। इसी तरह राजशेखर के 'प्रबन्धकोश' (सं० १४०५) में विक्रमादित्य का स्वतंत्ररूप से जीवनवृत्त तो नहीं दिया गया पर उसके अनेक जीवन प्रसङ्गों को संकलित किया गया है। इसमें विक्रमादित्य के पुत्र विक्रमसेन की कथा के प्रसंग में चार पुत्तलिकाओं की कथा दी गई है जिनमें तीन तो कथासरित्सागर में वर्णित 'वेतालपञ्चविंशति' की कथा से मेल खाती हैं। प्रबन्धसाहित्य में विक्रमादित्य के लघुचरित्र के साथ विशेषरूप से अनेक लोककथाएँ गूँथी गई हैं।[१]

---

१. विशेष विवरण के लिए देखें—विक्रम वोल्यूम, सिंधिया प्राच्य परिषद्, उज्जैन से सन् १९४८ में प्रकाशित, पृ० ६३७-६७० में हरि दामोदर वेलंकर का लेख 'विक्रमादित्य इन जैन ट्रेडिशन'। उक्त ग्रन्थ में विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता पर अनेक महत्त्वपूर्ण लेख हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. विक्रमचरित—विक्रमादित्य के चरित्र का स्वतंत्र एवं सर्वांगीण जैन रूपान्तर सर्वप्रथम देवमूर्ति उपाध्यायकृत विक्रमचरित्र (संस्कृत) में दिखाई पड़ता है।[१] इसमें १४ सर्ग हैं जिनमें विभिन्न छन्दों में ४८२० पद्य हैं। इन सर्गों में क्रमशः ९४, १३२, २००, ६८५, २४४, २९०, २२३, २४९, १५९, ३३९, ६८२, १४०, २४२ और ११४० पद्य हैं। प्रथम सर्ग में विक्रम का जन्म और बाल्यकाल; दूसरे में विक्रम की रोहणगिरि की यात्रा और अग्नि-वेताल की प्राप्ति तथा अवन्ति का राज्य पाना; तीसरे में स्वर्णपुरुष की प्राप्ति; चतुर्थ में पञ्चदण्ड छत्र की प्राप्ति; पाँचवें में द्वादशावर्त वन्दन की जैन कथाएँ; छठे में विक्रम का उस राजकुमारी के पास जाना जो उस पुरुष से विवाह करना चाहती है जो रात्रि में उसे चार कहानियाँ सुनाकर जायगा; सातवें में विक्रम और सिद्धसेन की कथा, आठवें में राजकुमारी हंसावली से विवाह; नवम में विक्रम द्वारा परपुरप्रवेश विद्या; दशम में रत्नचूड की कथा; ग्यारहवें में विक्रम की विभिन्न शक्तियों सम्बन्धी कथाएँ; बारहवें में कीर्तिस्तम्भ बनाने सम्बन्धी विभिन्न कहानियाँ; तेरहवें में विक्रम और शालिवाहन तथा चौदहवें में विक्रमसेन और सिंहासन सम्बन्धी बत्तीस कथाएँ वर्णित हैं।

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि देवमूर्ति ने विक्रम सम्बन्धी उन सभी लोककथाओं का संग्रह किया है जो उसके पहले जैन परम्परा को ज्ञात थीं। साथ ही उसने विक्रम के जीवन वृत्तचित्र को पूर्ण करने के लिए पाँच के लगभग अध्याय और भी जोड़ दिये हैं। इस काव्य में विक्रम को पक्के भक्त जैन नरेश के रूप में चित्रित किया गया है और श्रावक के लिए बतलाये गये सभी व्रतों का पालन करनेवाला तथा अपने प्रत्येक साहसिक कार्य पर जैन तीर्थंकर या देवी-देवताओं की पूजा करनेवाला दिखलाया गया है। इस तरह धार्मिक जैन नरेशों के बीच विक्रम का स्थान देवमूर्ति ने अन्तिम रूप से सुरक्षित कर दिया है और प्रायः जैन पाठान्तरवाली सिंहासन सम्बन्धी ३२ कथाओं को भी उसके जीवन के साथ जोड़ दिया है पर उन्हें सिंहासनद्वात्रिंशिका के रूप में नहीं कहा है। इन कथाओं में उसने यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन भी किया है।

विक्रमादित्यसम्बन्धी जैन कथाओं में एक अद्भुत कथा पंचदण्डच्छत्र की कथा है। यद्यपि जैन प्रबन्धों (प्रबन्धचिन्तामणि आदि) में इसका उल्लेख नहीं

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४९; इसकी हस्तलिखित प्रति हेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटन में उपलब्ध है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया परन्तु कई जैन लेखकों ने इस पर स्वतंत्र रचनाएँ लिखी हैं।[1] देवमूर्ति ने इस कथा को अपने काव्य के चौथे सर्ग में दिया है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता देवमूर्ति हैं जो कासद्रहगच्छ के देवचन्द्रसूरि के शिष्य हैं। इसकी रचना सं० १४७१ या १४७५ के लगभग की गई है। इनकी अन्य रचना रोहिणेयकथा भी मिलती है।

२. **विक्रमचरित**—विक्रमादित्य के सम्बन्ध में प्रचलित लोककथाओं के संग्रहरूप में शुभशीलगणिकृत द्वितीय रचना मिलती है।[2] यह १२ अध्यायों में विभक्त रचना है जिसमें कुल मिलाकर ५८९७ श्लोक हैं। यह सरल वर्णनात्मक शैली में लिखी गई है। इसमें देवमूर्ति की पूर्व रचना के अनुसार ही विक्रम का पूर्ण जीवनवृत्त देने का प्रयत्न किया गया है। दोनों कृतियों में अनेक प्राकृत और अपभ्रंश पद्य प्रक्षिप्त हैं।

इस काव्य की विशेषता यह है कि इसमें देवमूर्ति की रचना के समान सिंहासन सम्बन्धी बत्तीस कथाएँ नहीं दी गई हैं परन्तु प्रबन्धकोश के समान केवल चार कथाएँ दी गई हैं। इसमें विक्रमादित्य के पुत्र का नाम देवकुमार अपर नाम विक्रमसेन दिया गया है। इसके नवम सर्ग में पंचदण्डच्छत्र की कथा दी गई है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छीय मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि हैं। ये अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं। इनका परिचय हम पहले दे चुके हैं। प्रस्तुत विक्रमचरित्र की रचना सं० १४९९ में की गई थी।[3]

---

१. इस पर किसी जैनेतर लेखक की रचना प्राप्त नहीं है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५०; हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थमाला, अहमदाबाद, सं० १९८१, दो भागों में प्रकाशित.

३. इन ग्रन्थों की तीन हस्तलिखित प्रतियों में रचनासंवत् १४९९ दिया गया है :

निधाननिधिसिन्ध्विन्दुवत्सरात् विक्रमार्कतः।
शुभशीलयतिश्चक्रे चरित्रं विक्रमोष्णगोः॥

पर वीर उपाश्रय के ज्ञानभण्डारवाली प्रति में सं० १४९० दिया गया है :

श्रीमद्विक्रमकालाच्च खंनिधि रत्नसंज्ञके (१४९०)।
वर्षे माघे सिते पक्षे शुक्लचातुर्दशीदिने॥
पुष्ये रवौ स्तम्भतीर्थे शुभशीलेन पण्डिता।
विदधे रचितं ह्येतत् विक्रमार्कस्य भूपतेः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य विक्रमचरित्रों में पं० सोमसूरिकृत (ग्रन्थाग्र ६०००) तथा संस्कृत गद्य में साधुरत्न के शिष्य राजमेरुकृत का और श्रुतसागरकृत विक्रमप्रबन्धकथा का उल्लेख मिलता है।[1]

विक्रमादित्य की पञ्चदण्डच्छत्र की कथा पश्चिम भारत के जैन लेखकों को अति रोचक लगी है और इस प्रसंग को लेकर उन्होंने कई कृतियाँ लिखी हैं। इस प्रसंग पर जैनेतर लेखकों की कोई भी कृति नहीं मिली है।[2] इसी तरह विक्रम सम्बन्धी सिंहासन की बत्तीस कथाओं और वेतालपंचविंशतिकथा पर भी जैनों ने स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे हैं।

पंचदण्डच्छत्रकथा—कथा इस प्रकार है : एक समय राजा विक्रम उज्जैनी के बाजार से जा रहा था कि उसके नौकरों ने दामिनी जादूगरनी की दासी को पीटा, इससे नाराज होकर दामिनी ने अपनी जादू की छड़ी (अभेद्य दण्ड) से भूमि पर तीन रेखाएँ खीच दीं जो रास्ते को रोककर तीन दीवालों के रूप में परिणत हो गईं। राजा की सेना भी उन्हें गिरा न सकती। तब राजा दूसरे मार्ग से महल में गया। राजा ने दामिनी को बुलाया तो उसने बतलाया कि इन दीवालों को राजा तभी हटा सकता है जब वह उसके पाँच आदेशों को पूरा कर पाँच जादू की छड़ियाँ (दण्ड) पा ले। राजा ने स्वीकार कर लिया। इस तरह उसके अलग-अलग पाँच आदेशों से उसे पाँच जादू के दण्ड मिल गये जिनसे वह उन दीवालों को तोड़ सका। यह जान इन्द्र ने एक सिंहासन भेजा जिसमें पंचदण्डों पर एक छत्र लगा था। राजा उस पर एक शुभ दिन में बैठा।

इस कथा पर स्वतंत्र प्रथम रचना पञ्चदण्डात्मकविक्रमचरित्र है जिसकी रचना सं० १२९० या १२९४ बतलायी[3] जाती है पर इसके कर्ता का नाम अज्ञात है।

दूसरी रचना पूर्णचन्द्रसूरि की है जो संस्कृत गद्य में है।[4] इसका रचना-

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३५०.

२. ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फरेंस के सन् १९५९ के विवरण पृ० १३१ प्रभृति में प्रकाशित सोमाभाई पारेख का लेख Some Works on the Folk-tale of पंचदण्डच्छत्र by Jain Authors.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २२४; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६११ पर टिप्पण.

४ जिनरत्नकोश, पृ० २२४, ३५०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काल १५वीं शती का प्रारम्भ माना जाता है। इसका विक्रमपञ्चदण्डप्रबंध या विक्रमादित्यपञ्चदण्डच्छत्रप्रबंध नाम से भी उल्लेख किया गया है। इसका ग्रन्थाग्र ४०० है।

तीसरी रचना साधुपूर्णिमागच्छ के अभयचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने ५५० श्लोकों में सं० १४९० में लिखी है।[1] यह अनुष्टुप् छन्द में बनायी गई है और पाँच सर्गों में विभक्त है। इसे यद्यपि विक्रमचरित्र नाम से भी कहा गया है पर इसमें विक्रम द्वारा प्राप्त केवल पञ्चदण्डच्छत्र (सिंहासन पर पाँच दण्डों पर लगे) की घटना का वर्णन है। इसमें नगरों, आभूषणों, खाद्य सामग्री आदि के लम्बे वर्णन हैं। यह परवर्ती अनेक प्राचीन गुजराती और राजस्थानी में रचित कृतियों का आदर्श रही है।

पञ्चदण्डच्छत्रकथा देवमूर्तिकृत विक्रमचरित्र के चतुर्थ सर्ग में तथा शुभशीलकृत विक्रमचरित्र के नवम सर्ग में भी वर्णित है।

पञ्चदण्डच्छत्रप्रबंध नाम की दो अज्ञातकर्तृक रचनाएँ भी लगभग १५वीं शती की मिली हैं। दोनों संस्कृत गद्य में हैं। एक रचना दामिनी जादूगरनी के आदेश के स्थान में पाँच कार्यों में विभक्त है।[2] दूसरी में प्रारम्भ में ही विक्रमादित्य-उत्पत्तिप्रबन्ध नाम से एक छोटा प्रबन्ध दिया गया है जो सम्भवतः कालकाचार्यकथा से लिया गया है।[3]

प्राकृत में एक पञ्चदण्डपुराण का उल्लेख मिलता है।[4] एक अज्ञातकर्तृक पञ्चदण्डकथा की भी सूचना दी गई है।[5]

विक्रमादित्य के चरित्र से सम्बद्ध वेताल के कथारूप पच्चीस प्रश्नों की घटना तथा विक्रमादित्य के सिंहासन पर उसके पुत्र के बैठने के पूर्व ३२ पुत्तलिकाओं द्वारा प्रश्नात्मकरूप से कही गई कहानियों के प्रसंग को लेकर भी

---

१. वही; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१२, शीर्षक 'पंचदण्डात्मकं विक्रमचरित्रम्'; प्रो० ए० वेबर ने इसे जर्मन भाषा में प्रस्तावना के साथ रोमनलिपि में बर्लिन से १८७७ में प्रकाशित किया है।

२. हस्तलिखित प्रति—हेमचन्द्राचार्य ज्ञानमन्दिर, पाटन, संख्या १७८२.

३. वही, संख्या १७८०.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २२४.

५. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन कवियों की रचनाएँ मिलती हैं। ये दोनों प्रसंग एक प्रकार की परी-कथाएँ हैं।

वेतालपञ्चविंशिका—विक्रमादित्य के चमत्कारी जीवनवृत्त के साथ वेताल की पच्चीस कथाएँ बहुत प्राचीन काल से जुड़ी आ रही हैं। उक्त कथाओं पर एक जैन रचना भी मिली है जिसके रचयिता तपागच्छीय कुशलप्रमोद के प्रशिष्य एवं विवेकप्रमोद के शिष्य सिंहप्रमोद हैं।[1] इसकी रचना सं० १६०२ में हुई थी। इसकी प्राचीनतम प्रति सं० १६२० की मिली है।

सिंहासनद्वात्रिंशिका—ग्रन्थाग्र ११०० प्रमाण इस संस्कृत काव्य की रचना तपागच्छीय देवसुन्दरसूरि के शिष्य क्षेमंकरगणि ने की थी।[2] इसका रचनासंवत् तो ज्ञात नहीं पर कोई प्राचीनतम प्रति सं० १४७८ की तथा दूसरी सं० १५१४ की मिली है।

दूसरी रचना संस्कृत गद्य में है। इसके रचयिता समयसुन्दर हैं। इसकी प्राचीन प्रति सं० १७२४ की मिली है।[3]

सिद्धसेन दिवाकर नाम से कल्पित एक उक्त नाम की कृति का उल्लेख मिलता है और इसी तरह एक अज्ञातकर्तृक का भी।[4]

देवमूर्तिकृत विक्रमचरित्र के चौदहवें सर्ग में ११४० पद्यों में सिंहासन-द्वात्रिंशिका की कथा दी गई है।[5] इसका ग्रन्थाग्र जिनरत्नकोश में ६२६६ दिया गया है जो ठीक नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण विक्रमचरित का ही ग्रन्थाग्र ५३०० बतलाया गया है।

विक्रमादित्य के समान ही प्रत्येकबुद्ध अम्बड के साथ भी अनेक चमत्कारी कथाओं के जाल जैन कवियों ने बनाकर कई अम्बडचरितों की रचना की है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३६५.

२. वही, पृ० ४३६.

३. वही.

४. वही.

५. सिंहासनद्वात्रिंशिका के जैन रूपान्तरों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए और जैनेतर रूपों से अन्तर बतलाते हुए अमेरिकन विद्वान् फ्रैंकलिन एडगरटन ने 'विक्रमस एडवेंचर्स' नामक बृहद् ग्रन्थ का प्रणयन किया है—हारवर्ड ओ० सिरीज, २६.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अम्बडकथा—तेरहवीं शताब्दी में मुनिरत्नसूरिकृत संस्कृत गद्य-पद्यमय रचना[1] में अम्बड के साथ दी गई कथाओं में हम विक्रम की पञ्चदण्डच्छत्र, सिंहासनबत्तीसी तथा वेतालपंचविंशिका की कथाएँ जुड़ी पाते हैं। सम्भवतः १४-१५वीं शताब्दी में रचित विक्रमादित्य सम्बन्धी उक्त कथा-रचनाओं में मुनिरत्नसूरिकृत अम्बडचरित का बड़ा प्रभाव हो।[2]

इस कथाग्रन्थ में अम्बड को गोरखयोगिनी के सात आदेश पाल कर धन, विद्या, ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करते देखते हैं, जैसे विक्रमादित्य दामिनी जादूगरिन के पाँच आदेशों के पालन से चमत्कारी पञ्चदण्डच्छत्र पाता है। मुनिरत्नसूरि ने दो पद्यों में इस बात को व्यक्त भी किया है।[3]

भोज-मुंजकथा—विक्रमादित्य के जनाख्यान के समान ही जैन कवियों ने राजा मुंज और भोज को भी अपनी जनाख्यानप्रियता का विषय बनाया है। विक्रमादित्य सम्बन्धी सिंहासनद्वात्रिंशिका कथाओं को भोज की कथा से ही

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १५; सत्यविजय ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ११, सन् १९२८; इसका गुजराती अनुवाद 'अम्बड विद्याधर रास' नाम से वाचक मंगलमाणिक्य ने सं० १६३९ में तथा इसका सम्पादन प्रो० बलवन्तराव ठाकोर ने सन् १९५३ में किया।

२. महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ (१९६८ ई०) में पृ० ११७-१२३ में प्रकाशित सोमाभाई पारेख का गुजराती लेख 'आम्बडकथाना आन्तर प्रवाहो'। इस लेख में कथा का तुलनात्मक विवरण है।

३. यत्पुर्यामुज्जयिन्यां सुचरितविजयी विक्रमादित्यराजा
वैतालो यस्य तुष्टः कनकनरमदाद्विष्टरं पुत्रिकाभिः।
अस्मिन्नारूढ एवं निजशिरसि दधौ पञ्चदण्डातपत्रम्
चक्रे वीराधिवीरः क्षितितलमनृणां सोऽस्मि संवत्सराङ्कः ॥ ३६ ॥

इत्थं गोरखयोगिनीवचनवः सिद्धोऽम्बडः क्षत्रियः
सप्तादेशवरा सकौतुकभरा भूता न वा भाविनः।
द्वात्रिंशन्मितपुत्रिकादिचरितं यद् गद्यपद्येन तत्
चक्रे श्रीमुनिरत्नसूरिविजयस्तद्वाच्यमानं बुधैः ॥ ३७ ॥

इत्याचार्यश्रीमुनिरत्नसूरिविरचिते अम्बडचरिते गोरखयोगिनीदत्तसप्तादेशकर-अम्बडकथानकं सम्पूर्णम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बद्ध किया गया है और बतलाया गया है कि विक्रम की मृत्यु के बाद उसका सिंहासन एक खेत में छिपा दिया गया था। उस खेत का मालिक एक ब्राह्मण था जो छिपे सिंहासन के चबूतरे पर बैठकर अपने खेत की देख-भाल करता था। वह खेत बड़ा ही उपजाऊ था। राजा भोज को यह पता चला तो उसने उस खेत को खरीद लिया और उस चबूतरे को तुड़वाकर राजा विक्रम के चमत्कारी सिंहासन को पाया। भोज को उस सिंहासन पर बैठने के पहले उसकी रक्षा करनेवाली बत्तीस देवियों की प्रश्नात्मक कथाओं द्वारा अपनी परीक्षा देनी पड़ी तब कहीं वह उस पर बैठ सका। इस कथा द्वारा विक्रमादित्य के माहात्म्य के समान भोज का माहात्म्य प्रकट किया गया है।[१]

भोज के चरित्र को दूसरे प्रकार के जनाख्यानों से ग्रथितकर कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी रचे गये हैं। उनमें जैनेतर रचनाओं में बल्लालकृत 'भोजप्रबन्ध' प्रसिद्ध है।

भोजचरित—राजवल्लभरचित एतद्विषयक जैन कृतियों में यह सबसे प्राचीन है।[२] यह पाँच प्रस्तावों में विभक्त है जिनमें कुछ मिलाकर १५७५ पद्य हैं। उनमें ३५ अपभ्रंश में और शेष संस्कृत में हैं। संस्कृत पद्यों में भी प्राकृत शब्द यत्र-तत्र पाये जाते हैं। पद्य अधिकांश में अनुष्टुप् छन्द में हैं पर यत्र-तत्र इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, शालिनी, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित आदि पद्य दूसरी कृतियों से उद्धरणरूप में पाये जाते हैं।

इसमें वर्णित लोककथाओं का आधार प्रबन्धचिन्तामणि और कथासरित्सागर है। साहित्यिक दृष्टि से यह साधारण कोटि की रचना है। इसमें अनेक भाषाविषयक तथा भौगोलिक त्रुटियाँ भरी हुई हैं। फिर भी भोज के सम्बन्ध में तीन शीर्षों (कपालों) तथा दो राक्षसों द्वारा चमत्कारिकता दिखाई गई है। उसके परकायप्रवेश की कथा चौथे प्रस्ताव में दी गई है। पाँचवें प्रस्ताव में भोज के पुत्रों देवराज और वत्सराज के साहसिक कार्यों का वर्णन दिया गया है।

---

१. एडगरटन, विक्रमूस एडवेंचर्स, हारवर्ड ओ० सिरीज, २६, सन् १९२६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २९२; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से डा० बहादुरचन्द्र छाबड़ा और शंकरनारायणन् द्वारा सम्पादित, अंग्रेजी में विवरणात्मक टिप्पण, प्रस्तावना, सं० २०२०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसे जैन कथाओं में अन्नदान के माहात्म्य को प्रकट करने के लिए जोड़ा गया है (चरित्रमन्नदानस्य कुर्वे कौतूहलप्रियम्)। इस दृष्टि से कवि की यह कृति शताब्दियों तक लगातार जैन सम्प्रदाय में प्रिय रही है।

फिर भी कवि ने भोज सम्बन्धी अनेक ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण में मौलिकता प्रदर्शित की है।[1]

रचयिता और रचनाकाल—भोजचरित्र के प्रत्येक प्रस्ताव के अन्त में रचयिता का नाम राजवल्लभ पाठक दिया गया है जो धर्मघोषगच्छ के महीतिलकसूरि के शिष्य थे। रचना के कालनिर्णय के सम्बन्ध में दो बातों से सहायता मिलती है : एक तो महीतिलकसूरि का उल्लेख करनेवाले सं० १४८६ से १५१३ तक के शिलालेख मिले हैं;[2] दूसरी इसकी प्राचीनतम हस्त० प्रति सं० १४९८ की मिली है। इससे यह स्पष्ट है कि राजवल्लभ ने सं० १४९८ के पहले इसे अवश्य लिख डाला होगा।

राजवल्लभ की अन्य रचनाओं में चित्रसेन-पद्मावती (सं० १५२४) और षडावश्यकवृत्ति (सं० १५३०) मिलती हैं।

भोजप्रबंध—उक्त राजवल्लभ के समकालीन शुभशीलगणि ने एक अन्य भोजप्रबंध[3] की रचना की है जिसका ग्रन्थाग्र ३७०० बतलाया गया है। शुभशीलगणि तपागच्छीय सोमसुन्दर के प्रशिष्य और मुनिसुन्दर के शिष्य थे। इनको विक्रमचरित्र, भरतेश्वर-बाहुबलिवृत्ति आदि अनेकों कथात्मक रचनाएँ मिलती हैं।

एक दूसरे भोजप्रबंध[4] की रचना सं० १५१७ में रत्नमण्डनगणि ने की है। इस प्रबंध में भोज के माने गये दो पुत्रों की कथाएँ प्रमुख होने से इसे देवराजप्रबंध या देवराज-वत्सराजप्रबंध भी कहते हैं।[5] इनकी अन्य रचनाओं में उपदेशतरंगिणी, सुकृतसागर तथा पृथ्वीधरप्रबंध मिलते हैं। इनका परिचय पृथ्वीधरप्रबंध के प्रसंग में दिया गया है।

---

१. भोजचरित की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ११-२३.

२. वही प्रस्तावना, पृ० ५; जैन लेखसंग्रह, संख्या ११८०, २३११, ११४४, १४९२ और १५३४; बीकानेर जैन लेखसंग्रह, संख्या ९०१, १९३५.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २९९,

४. वही.

५. वही, पृ० १७८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतद्विषयक अन्य रचना—भोजप्रबंध—सत्यराजगणिकृत भी मिलती है।[1] सत्यराज की अन्य रचना पृथ्वीचन्द्रचरित्र (सं० १५३५) भी मिलती है।

मेरुतुंगकृत प्रबंधचिन्तामणि[2] (सं० १३६१) में वर्णित भोज-भीमप्रबंध से उक्त रचनाओं में बड़ी सहायता ली गई है। यह प्रबंध भी भोज के सम्बन्ध की अनेक लोककथाओं से भरा हुआ है पर इसमें ऐतिहासिकता की अधिक रक्षा की गई है।

भोज के चाचा मुंज पर परीकथा लिखी गई है। प्रबंधचिन्तामणि में मुंज-राजप्रबंध में मुंजराज से सम्बन्धित अनेक उक्तियाँ दी गई हैं। स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में कृष्णर्षिगच्छीय महेन्द्रसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि (सं० १४२२ के लगभग) द्वारा रचित मुंजनरेन्द्रकथा[3] तथा सं० १४७५ में एक अज्ञातकर्तृक मुंजभोजनृपकथा[4] मिलती है।

महीपालकथा या महीपालचरित—इस कथा का नायक वास्तव में परीकथा का एक राजपुत्र है। इस कथा में परीकथा और पौराणिककथा का अच्छा सम्मिश्रण किया गया है। इस पर प्राकृत-संस्कृत में कई रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।[5]

कथावस्तु—महीपाल किसी देश का राजा न था पर उज्जयिनी के राजा नरसिंह के पास रहनेवाला कलाविचक्षण राजपुत्र था। राजा ने उसे अपने मनो-विनोद के लिए रख छोड़ा था पर वह कलाओं को सीखने के लिए यहाँ-वहाँ घूमता-फिरता था। इससे राजा ने नाराज होकर उसे निकाल दिया। महीपाल अपनी पत्नी के साथ घूमता-फिरता भड़ौच में आया और वहाँ से जहाज द्वारा कटाहद्वीप पहुँचने के लिए चल पड़ा पर दुर्भाग्य से समुद्र में ही जहाज फट जाने से किसी तरह किनारे लगा और उस कटाहद्वीप के रत्नपुर नगर में रहने लगा। वहाँ रत्नपरीक्षा में अपनी कला दिखाकर उसने राजपुत्री से विवाह किया और उसके साथ जहाज में बैठ अपनी पूर्वपत्नी सोमश्री की खोज में निकला। राजा ने अपनी पुत्री और जामाता की देखरेख के लिए अथर्वण नामक मंत्री को साथ

१. वही, पृ० २९९.
२. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १, पृ० २५-५२.
३-४. जिनरत्नकोश, पृ० ३१०.
५. वही, पृ० ३०८; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग २, पृ० ५३६-३७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेजा पर उसने राजपुत्री और धन के लोभ से उसे कपट से समुद्र में गिरा दिया। इसके बाद राजपुत्री से प्रेम करना चाहा पर वह भी उसे झूठा आश्वासन दे अपनी शील की रक्षा करने के लिए चक्रेश्वरी देवी की उपासना में लग गई। उधर महीपाल समुद्र में गिरकर एक बड़ी मछली के सहारे किनारे आ लगा और वहाँ उसने रत्नसंचयपुर के नरेश की पुत्री शशिप्रभा के साथ विवाह किया और उससे उसे तीन चमत्कारी वस्तुएँ मिलीं : पहली जादू की शय्या जिस पर बैठकर वह कहीं भी जा सकता था, दूसरी जादू की लकड़ी जिससे वह अजेय बन सका और तीसरी एक सर्वकामित मन्त्र जिससे वह मन चाहे रूप धारण कर सकता था। महीपाल को उसी नगर में अपनी दोनों पूर्व पत्नियाँ भी मिल गईं। उन विद्याओं के सहारे उसने कई चमत्कार दिखाये। इससे प्रसन्न होकर वहाँ के राजा ने उसे अपना मन्त्री बना लिया तथा अपनी पुत्री चन्द्रश्री से विवाह कर दिया। इसके बाद वह चारों पत्नियों को लेकर अपनी पूर्व नगरी उज्जयिनी के राजा के पास लौट आया और राजा ने उसके चमत्कारों से उसका सम्मान किया। पीछे महीपाल ने जैनी दीक्षा ले मोक्षपद प्राप्त किया।

महिवालकहा—उक्त कथानक पर यह सर्वप्रथम रचना है[1] जो प्राकृत की १८२६ गाथाओं में है। इसमें अध्याय आदि का विभाजन नहीं है। इसकी भाषा सरस एवं सरल है। बीच-बीच में अनेक उपदेश और अवान्तर कथाएँ दी गई हैं। वर्णन-प्रसंग में नवकार-मन्त्र का प्रभाव, चण्डीपूजा, शासनदेवता, यक्ष-कुलदेवतादि की पूजा, बलि आदि प्रथाओं का दिग्दर्शन कराया गया है। इसके रचयिता वीरदेवगणि हैं। ग्रन्थ के अन्त में चार गाथाओं द्वारा उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा मात्र दी है। तदनुसार चन्द्रगच्छ में क्रमशः देवभद्र–सिद्धसेन–मुनिचन्द्रसूरि हुए। उन्हीं के शिष्य प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक हैं। इस रचना का कालसवत् कहीं नहीं दिया गया पर रचयिता के दादा गुरु और परदादा गुरु की कई रचनाएँ मिलती हैं। चन्द्रगच्छ से सम्बन्धित देवभद्र ने प्राकृत श्रेयांसचरित्र की रचना (वि० सं० १२४८ से पहले) की थी और सिद्धसेन ने सं० १२४८ से पहले पद्मप्रभचरित्र की तथा उक्त संवत् में प्रवचनोद्धार पर तत्त्वविकाशिनी टीका और स्तुतियाँ लिखी थीं।[2] संभवतः इन्हीं सिद्धसेन

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३०८; हीरालाल देवचन्द शाह, शारदा मुद्रणालय, पानकोर नाका, अहमदाबाद, सं० १९९८.

२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(सिंहसेन) ने सं० १२१३ में प्रतिष्ठा कराई थी।[१] इस आधार पर सिद्धसेन के प्रशिष्य वीरदेवगणि का समय तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध आता है।

दूसरी दो रचनाएँ संस्कृत के काव्यरूप में मिली हैं। एक के रचयिता चारित्रसुन्दरगणि हैं[२] जो बृहत्तपागच्छ में रत्नाकरसूरि की परम्परा में अभयसिंह-सूरि–जयतिलक–रत्नसिंह के शिष्य थे। विण्टरनित्स ने इसमें १४ सर्ग होने लिखे हैं। जिनरत्नकोश में इसका ग्रन्थाग्र ८९५ श्लोक-प्रमाण बतलाया गया है। चारित्रसुन्दर ने इस काव्य की रचना कब की यह निश्चित नहीं मालूम होता परन्तु वे १५वीं के अन्त तथा १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमान थे। उन्होंने शुभचन्द्रगणि के अनुरोध पर दशसर्गात्मक कुमारपालचरित काव्य की रचना २०३२ श्लोकों में सं० १४८७ में की थी और सं० १४८४ या ८७ में शीलदूत-काव्य और पीछे आचारोपदेश की रचना की थी। उन्होंने कुछ प्रतिष्ठाएँ सं० १५२३ तक कराई थीं।

दूसरी संस्कृत कृति में पाँच सर्ग हैं और उसे तपागच्छ के रत्ननन्दि के शिष्य चारित्रभूषण ने रचा है।[३] अपनी गुरुपरम्परा को विजयचन्द्र से प्रारम्भ कर रत्नाकरसूरि की परम्परा में अभयनन्दि—जयकीर्ति—रत्ननन्दि के नाम दिये हैं। पर अभयनन्दि आदि नाम उक्त गच्छ की परम्परा में नहीं मिलते हैं। उनके स्थान में अभयसिंह, जयतिलक और रत्नसिंह मिलते हैं। चारित्रभूषण की जगह चारित्रसुन्दर की कुछ कृतियाँ मिलती हैं। संभवतः चारित्रभूषण और उनकी गुरुपरम्परा नाम भिन्न होने से पृथक् रही हो। यह भी संभावना है कि चारित्र-भूषण और चारित्रसुन्दर एक ही हों।

मुग्धकथाएँ :

भरटकद्वात्रिंशिका—इसमें ३२ कथाओं का संग्रह है।[४] यह मुग्ध (मूर्ख,

---

१. पट्टावलीसमुच्चय, पृ० २०५.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३०८; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९०९ और १९१७.

३. वही; इस काव्य की पाण्डुलिपि जैन सिद्धान्त भवन आरा में (झ । १३२) २४ पत्रों में है; विशेष परिचय के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४६७-४७१.

४. जिनरत्नकोश, पृ० २९२; जे० हर्टल द्वारा सम्पादित, लाइप्जिग, १९२१; हर्टल का मत है कि इस द्वात्रिंशिका का लेखक गुजरातनिवासी कोई जैन विद्वान् होना चाहिए। ऐसी कथाएँ ४९२ ई० पूर्व में भी मौजूद थीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विट) कथाओं का सुन्दर उदाहरण है। इसका उद्देश्य यह बतलाना है कि जिस तरह धूर्तों और ठगों का रहस्य जान उनसे रक्षा करना चाहिए उसी तरह मूर्खों की मूर्खता से भी रक्षा करना आवश्यक है। इसमें मुग्धकथाओं के बहाने जीवन में सफलता के आकांक्षी पुरुष को अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा दी गई है। कथाकार ने ग्रन्थरचना का उद्देश्य स्वयं प्रकट किया है : संसार में निःश्रेयस् की प्राप्ति के इच्छुक लोगों को सदैव अपने सदाचरण के ज्ञान में वृद्धि करते रहना चाहिए। यह सदाचरण का परिज्ञान मूर्खजनों के चरित पढ़कर हो सकता है। इन चरित्रों को लेखक अपनी बुद्धि से कल्पित घटना-प्रसंगों के अनर्थ-दर्शन द्वारा अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार की अभिव्यक्ति तथा मूर्खजनों द्वारा व्यवहृत आचरण के परिहार के लिए लेखक ने भरटद्वात्रिंशिका की रचना की है।

इस संग्रह में अनेकों लंपटों, वंचकों, धूर्तों के सरस चित्रण देखने में आते हैं। इसमें अधिकांश कहानियाँ शैवपन्थी साधुओं की उपहासात्मक हैं। पाँचवीं कथा में ग्राम कवि की शैव उपासक से तुलना की गई है।[1] सातवीं में एक मूर्ख शिष्य की कथा है जिसने धीरे-धीरे ३२ बाटियाँ खा लीं और शैव गुरु को एक भी न दी।[2] तेरहवीं में स्वर्ग की गाय की कहानी है और सोलहवीं में एक जटाधारी शैव चेले की।

इस प्रकार की प्रकीर्ण कहानियाँ आगमों की निर्युक्तियों, चूर्णियों एवं भाष्यों में बिखरी पड़ी हैं। राजशेखरसूरि के कथाकोश अपरनाम विनोदकथा-संग्रह में कई कहानियाँ इस श्रेणी की हैं।

नीतिकथा-साहित्य :

नीतिकथा का अर्थ है नीतिविषयक पाठ सिखानेवाली कहानी जिसमें अधिकतर पात्र मानवेतर क्षुद्रप्राणी होते हैं। नीतिकथा एक कल्पित कथा है, उसके वाच्य-कथानक में किसी प्रकार की यथार्थता नहीं रहती।

---

१. भरटक तव चट्टा लंब पुट्ठा समुद्धा।
न पठति न गुणंते नेव कव्वं कुणंते॥
वयमपि न पठामो किन्तु कव्वं कुणामो।
तदपि भुख मरामो कर्मणा कोऽत्रदोषः॥

२. मूर्खशिष्यो न कर्तव्यो गुरुणा सुखमिच्छता।
विडम्बयति सोत्यन्तं यथा बटकभक्षकः॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रारम्भ में लोकव्यवहार में प्राणियों के भी दृष्टान्त दिये जाते थे। प्राणियों के दृष्टान्त सुनने में हर एक के लिए सुगम एवं ग्राह्य होते हैं। प्राणी भी मानववत् व्यवहार कर सकते हैं, कभी किसी समय में प्राणियों एवं मानव में इस दृष्टि से कोई अन्तर न था आदि विश्वास अशिक्षित जनसाधारण में रहा था।

पंचतंत्र, हितोपदेश की कहानियों को 'नीतिकथा' कहा गया है। पर दुर्भाग्य से मूल पंचतंत्र अप्राप्य है। इसके केवल उत्तरकालीन संस्करण ही मिलते हैं।

जैन कथाकारों ने पंचतंत्र की शैली और विषय से प्रभावित होकर कई कथाकोश लिखे हैं। मलधारी राजशेखरकृत 'कथासंग्रह' में पंचतंत्र के समान ही कहानियों के दर्शन होते हैं। हेमविजयकृत 'कथारत्नाकर' में भर्तृहरि के शतकों और पंचतंत्र आदि से अनेक सूक्तियाँ ली गई हैं।

इतना ही नहीं, पंचतंत्र के जैन संस्करण भी प्राप्त होते हैं। पंचतंत्र के विशिष्ट अध्येता जर्मन विद्वान् हर्टल के अनुसार पंचतंत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय संस्करण जैन विद्वानों द्वारा ही तैयार किये गये हैं। एक ऐसा संस्करण है जिसे उसके सम्पादक श्री कोसे गार्टन ने Textus Simplicior नाम से कहा है। हर्टल और अमेरिकन विद्वान् एजर्टन के अनुसार इसके लेखक कोई अज्ञातनामा जैन विद्वान् थे। उनका समय ९०० से ११९९ तक माना गया है। इसमें पंचतंत्र की अनेक कथाओं का रूपान्तर हो गया है।

पंचाख्यान या पंचाख्यानक—श्री एजर्टन के अनुसार इसकी रचना तंत्राख्यायिक एवं Textus Simplicior के आधार से की गई है। इसके रचयिता जैन मुनि पूर्णभद्र हैं। इस संस्करण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें पंचतंत्र की कथाओं के लौकिक पक्ष को कोई हानि नहीं पहुँचाई गई। इसमें पंचतंत्र का नीतिकथात्मक रूप सुरक्षित रखा गया है।[१]

इस ग्रन्थ के अन्त में ८ पद्यों की एक प्रशस्ति दी गई है जिसमें लिखा है कि विष्णुशर्मा ने सूक्तियों से भरे कथाओं से युक्त नृपनीतिशास्त्र पंचतंत्र की रचना की थी जो कालान्तर में विशीर्णवर्ण हो गया था। इसे मंत्री सोमशर्मा के अनुरोध से नृपतिनीति-विवेचन के लिए श्री पूर्णभद्रसूरि ने संशोधित किया।

१. डा० हर्टल, दि पंचतंत्र, भाग २, १९०८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कार्य में प्रत्येक अक्षर, पद, वाक्य, कथा और श्लोक का संशोधन किया गया है।[1]

अन्त में इस ग्रन्थ का परिमाण ४६०० श्लोक बतलाया गया है और रचना-संवत् १२५५, फाल्गुन वदि तृतीया रविवार बतलाते हुए कहा गया है कि मानो यह जीर्णोद्धार-सा हो।[2]

पुरानी रचना का जीर्णोद्धार अर्थात् नया रूप देने के महनीय कार्य को प्रकट करते हुए कवि ने अपनी नम्रता ही प्रकट की है। इसमें जो स्मृतिशास्त्रों से उद्धरण दिये गये हैं वे लौकिक नीतिवाक्यों से भिन्न नहीं हैं। आवश्यकतावश जहाँ जिसका उपयोग हो सका उस कार्य में पूर्णभद्र ने अपना कौशल दिखाया है।

हर्टल महोदय ने पंचाख्यानक के महत्त्व को इन शब्दों में प्रकट किया है: अपने सिद्धान्तों का उपदेश करने के लिए बौद्धों ने नीतिकथाओं को भी तोड़-मरोड़कर अपनाया है। पंचतंत्र का बौद्ध संस्करण नहीं मिलता, यह कोई संयोग की बात नहीं है। जैन संस्करण पंचाख्यानक में जैनियों ने पुरानी नीतिकथाओं को ही सारे भारतवर्ष में, यहाँ तक कि इण्डोचीन और इण्डोनेशिया तक में, लोकप्रिय बनाया है। संस्कृत तथा अन्य विविध देशी भाषाओं में लिखा हुआ

---

१. कथान्वितं सूक्तविसूक्तं श्रीविष्णुशर्मा नृपनीतिशास्त्रम् ॥ १ ॥
श्रीसोममंत्रिवचनेन विशीर्णवर्णम्,
आलोक्य शास्त्रमखिलं खलु पंचतंत्रम्।
श्रीपूर्णभद्रगुरुणा गुरुणादरेण,
संशोधितं नृपतिनीतिविवेचनाय ॥ २ ॥
प्रत्यक्षरं प्रतिपदं प्रतिवाक्यं प्रतिकथं प्रतिश्लोकम्।
श्रीपूर्णभद्रसूरिर्विशोधयामास शास्त्रमिदम् ॥ ३ ॥
विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, जिल्द ३, भाग १, पृ० ३२१-२४.

२. चत्वारीह सहस्राणि तत्परं षट्शतानि च।
ग्रन्थस्यास्य मया मानं गणितं श्लोकसंख्यया ॥ ७ ॥
शरबाणतरणिवर्षे रविकरवदिफाल्गुने तृतीयायाम्।
जीर्णोद्धारश्चासौ प्रतिष्ठितोऽधिष्ठितो विबुधैः ॥ ८ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह पंचतंत्र इन सब देशों में इतना अधिक लोकप्रिय हो गया कि जैनों तक ने इस बात को भुला दिया कि मूल में यह जैन विद्वान् का लिखा हुआ था।[1]

प्राचीन जैन कथाग्रन्थ वसुदेवहिण्डी, बृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, आवश्यकचूर्णि, दशवैकालिकचूर्णि आदि में पंचतंत्र की शैली में लिखे हुए नीति और लोकाचार सम्बन्धी अनेक आख्यान उपलब्ध होते हैं। इनमें से कितने ही आख्यानों का विकसित रूप पंचाख्यानक में विद्यमान प्रतीत होता है। हर्टेल महोदय ने समीक्षा करते हुए यह भी कहा है कि पूर्णभद्रसूरि ने अपने पंचतंत्र में कतिपय अज्ञात स्रोतों से कितनी ही नई कहानियों एवं सूक्तियों का समावेश किया है। इस ग्रन्थ की भाषाशास्त्रीय विशेषताओं पर से हर्टेल की मान्यता है कि अन्य बातों के साथ-साथ ग्रन्थकर्ता ने अपनी रचना में प्राकृत रचनाओं अथवा कथाओं का लौकिक भाषा में उपयोग किया है।[2]

पंचाख्यानसारोद्धार—अन्य जैन पंचतंत्रों में धनरत्नगणिकृत पंचाख्यान या पंचाख्यानसारोद्धार मिलता है जिसका रचनाकाल सं० १५४५ से पहले का है क्योंकि उक्त संवत् की इसकी एक हस्तलिखित प्रति मिली है।[3]

---

१. हर्टेल, आन दि लिटरेचर आफ दि श्वेताम्बर्स आफ गुजरात, लाइप्जिग, १९२२, पृ० ७-८.

२. डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत जैन कथासाहित्य, पृ० ७८-९२ में नीति-कथा की अनेक कहानियाँ देकर उनके स्रोतों को दिखाया गया है। कोटा (आदिवासी जाति) लोककथा के कल्पनाबन्ध (Motif) की तुलना कुछ जैन कथाओं से की गई है। देखिये—M. B. Emenean का जरनल आफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी (६७) में लेख 'स्टडीज इन दि फोकटेल्स आफ इण्डिया'; स्त्री-शुद्धिपरीक्षा के कल्पनाबन्ध के लिए देखें—(१) स्टेण्डर्ड डिक्शनरी आफ फोकलोर, माइथोलाजी एण्ड लीजेण्ड, भाग १, मारिया लीच, न्यूयार्क, १९४९ में 'चेस्टिटी टेस्ट' और 'एक्ट आफ ट्रुथ' नामक लेख.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २३०.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

पंचाख्यानोद्धार—दूसरी रचना तपागच्छीय कृपाविजय के शिष्य मेघविजय-कृत 'पंचाख्यानोद्धार'[1] है जो सं० १७१६ में रचा गया था। यह बालकों को नीतिशास्त्र की शिक्षा देने के लिए लिखा गया था। अनेक नूतन कहानियों का इसमें समावेश है। अन्तिम रत्नपाल की कथा पंचतंत्र के अन्य किसी संस्करण में उपलब्ध नहीं है। यह संस्करण वडगच्छ के रत्नचन्द्रगणि के शिष्य वत्सराज-गणिकृत गुजराती पंचाख्यानचौपई पर आधारित है।

पंचाख्यानवार्तिक—इसकी रचना कीर्तिविजयगणि के चरण-सेवक जिन-विजयगणि ने की है।[2] वि० सं० १७३० में फलौधी नगरी में इसकी रचना की गई थी। यह पुरानी गुजराती में है, श्लोक संस्कृत में हैं। १९वीं कथा में बया और बन्दर की और २०वीं में खरगोश और मदोन्मत्त सिंह की कहानी है। इसमें सोमदेव के नीतिवाक्यामृत और हेमचन्द्राचार्य के लध्वर्हन्नीति-शास्त्र नामक ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है।

शुकद्वासप्ततिका—नीतिकथा पर पंचतंत्र के समान दूसरे ग्रन्थ शुकसप्ततिका का जैन पाठान्तर भी मिलता है। सं० १६३८ में गुणमेरुसूरि के शिष्य रत्न-सुन्दरसूरि ने शुकद्वासप्ततिका[3] की रचना की है। इसे रसमञ्जरी तथा शुक-सप्ततिका[4] भी कहते हैं। एक अज्ञातकर्तृक शुकद्वासप्ततिका[5] कथा का भी उल्लेख मिलता है।

इस कथा-संग्रह में शुक द्वारा ७० या ७२ कहानियाँ शीलरक्षा के लिए कही गई हैं।

---

१. वही; सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित देवानन्दकाव्य की भूमिका; कीथ, हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० २६०; विण्टरनित्स, हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर, भाग ३, पृ० ३२५.

२. इसका प्रकाशन जे० हर्टल ने लाइप्जिग से १९२२ में किया है।

३-५. जिनरत्नकोश, पृ० ३८६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण ४

ऐतिहासिक साहित्य

किसी भी वस्तु का मूल्य उस वस्तु के इतिहास-ज्ञान के अभाव में आँका नहीं जा सकता। इसलिए प्रत्येक वस्तु या विषय के मूल्यांकन के लिए इतिहास-ज्ञान आवश्यक हो गया है। इतिहास-ज्ञान से हमें अनेक समस्याओं को सुलझाने में बड़ी सहायता मिलती है। प्रत्येक देश, धर्म, संस्कृति, जाति आदि के इतिहास ने मानव-मस्तिष्क की अनेक समस्याओं को सुलझाया है। इतिहास जानने की अनेकविध सामग्री होती है। वह कथा-कहानी जैसा कहीं लिखा नहीं मिलता। किसी भी देश या धर्म का इतिहास उस देश के राजा-रानियों या धर्माधिकारियों की वंशावलियों का ज्ञान कर लेना मात्र नहीं है बल्कि उन सभी परिस्थितियों का अध्ययन करना है जिन्होंने उस देश को गौरव प्रदान किया है। इस दृष्टिकोण से भारतवर्ष के इतिहास को देखें तो वह एक प्रकार से नाना जातियों के संमिश्रण और अनेकों संस्कृतियों के आदान-प्रदान का इतिहास ही है। सर्वाङ्गीण भारतीय इतिहास जानने के लिए अन्य सामग्रियों के साथ ब्राह्मण, जैन, बौद्ध साहित्य का तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन आवश्यक है। इसके अध्ययन के बिना जो भी इतिहास लिखा गया है वह एकांगी तथा अपरिपूर्ण है। इस साहित्यत्रयी के अध्ययन के अभाव में इतिहास प्रस्तुत करने वाली अन्य सामग्रियों—अभिलेखों, प्राचीन मुद्राओं, चित्रों तथा स्थापत्यों—की बड़ी भ्रामक व्याख्याएँ हुई हैं तथा जिस वर्ग की जब प्रभुता हुई उसने तब अपने वर्ग की छाप लगा दी है। भावी इतिहासज्ञों का काम उन भूलों को सुधारना है तथा उक्त अध्ययन से भारतीय इतिहास के लिए निष्पक्ष एवं स्वस्थ सामग्री प्रस्तुत करना है।

जैन ऐतिहासिक सामग्री के विविध अंग हैं। विशाल आगम साहित्य और जैन पुराणों एवं कथाओं में अनेक प्रकार की अनुश्रुतियाँ[1] पड़ी हैं जिनका

---

१. डा० मोतीचन्द्र, कुछ जैन अनुश्रुतियाँ और पुरातत्त्व, पं० नाथूराम प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० २२९ प्रभृति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनेतर अनुश्रुतियों एवं पुरातत्त्व-सामग्री के साथ समन्वयात्मक अध्ययनकर भारतीय इतिहास के प्रागैतिहासिक, सिन्धुघाटी सभ्यता, वैदिक एवं औपनिषदिक युगों की प्रवृत्तियाँ जानी जा सकती हैं। जैन अनुश्रुतियों के चौबीस तीर्थंकरों में से अन्तिम तीन तीर्थंकर—अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और वर्धमान महावीर—ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध हुए हैं। महावीरोत्तर काल में जैनसंघ के संगठन, व्यवस्था, मतभेद, सम्प्रदायों, उपसम्प्रदायों एवं पन्थों आदि के उदय से वर्तमान काल तक क्रमिक प्रामाणिक इतिहास, जैनधर्मपरायण नरेशों, सामन्तों, राजनीतिज्ञों, शासकों-प्रशासकों, सेनानायकों और योद्धाओं का इतिहास, देश की राजनीति और स्वातन्त्र्य संग्राम में तथा नवराष्ट्र निर्माण में जैनों के योगदान की कहानी, जैन तीर्थों, सांस्कृतिक एवं कलाकेन्द्रों का इतिहास, जैन पर्वों और त्यौहारों का इतिहास जानने के बहुविध ऐतिहासिक उपादान—ऐतिहासिक काव्य, प्रबन्ध साहित्य, प्रशस्तियाँ, पट्टावलियाँ, गुर्वावलियाँ, शिलालेख, मूर्तिलेख, विज्ञप्ति-पत्र, तीर्थमालाएँ आदि उक्त सामग्री के विविध अंग हैं।

स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने जैनों की ऐतिहासिक चेतना की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जैनों ने कोई २५०० वर्ष की संवत्गणना का हिसाब भारतीयों में सबसे अच्छा रखा है। इससे विदित होता है कि पुराने समय में ऐतिहासिक परिपाटी की वर्षगणना हमारे देश में थी। जब वह और जगह लुप्त और नष्ट हो गई तब केवल जैनों में बच रही। जैनों की गणना के आधार पर हमने पौराणिक और ऐतिहासिक बहुत सी घटनाओं को, जो बुद्ध और महावीर के समय से इधर की हैं, समयबद्ध किया और देखा कि उनका ठीक मिलान सुज्ञात गणना से हो जाता है। कई एक ऐतिहासिक बातों का पता जैनों के ऐतिहासिक अभिलेखों, प्रशस्तियों एवं पट्टावलियों में ही मिलता है।

ऐतिहासिक महाकाव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ:

संस्कृत के अन्य ऐतिहासिक महाकाव्यों की भाँति जैन महाकाव्यों में भी निम्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं:

१. इनमें चरित्र-नायक राजा-महाराजा ही नहीं होते बल्कि सन्त, महन्त एवं महामंत्री और धनी मानी सेठ भी होते हैं।

२. इनके रचयिता राज्याश्रित या अन्य धनी-मानी लोगों के आश्रित होते हैं और आश्रयदाता की प्रशंसा करने की उनमें प्रवृत्ति होती है। इसलिए उनके रचे काव्यों में नायक की पराजय या अप्रिय बातें नहीं होतीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. इनमें नायक की वीरता या माहात्म्य-प्रदर्शन करने के लिए दिग्विजय, ससंघ यात्राओं आदि के काल्पनिक विवरण प्रदर्शित किये गये हैं। कहीं-कहीं नायक का उत्कर्ष प्रकट करने के लिए प्रतिनायक की कल्पना भी की गई है।

४. अधिकांश काव्यों में घटनाओं की तिथियों के विवरण इतिहाससम्मत ही हैं, कुछ में नहीं।

५. इनमें नायक की वंशपरंपरा और कुलोत्पत्ति के विवरण पौराणिक ढंग पर दिये गये हैं।

जैनों के ऐतिहासिक काव्य हरिषेण की समुद्रगुप्त-सम्बंधी इलाहाबाद-प्रशस्ति, बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षवर्धन-प्रशस्ति के रूप में हर्षचरित, बिल्हणकृत विक्रमांकदेवचरित व कल्हण की राजतरंगिणी के समान ही बड़े उपयोगी हैं। यहाँ उनका परिचय प्रस्तुत किया जाता है।

गुणवचनद्वात्रिंशिका :

सिद्धसेन दिवाकर के विषय में माना जाता है कि उन्होंने बत्तीस द्वात्रिंशिकाओं (३२ पद्यों का काव्य) की रचना की थी। इनमें से २१ प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें से पाँच में कर्ता का नाम अंश या पूर्ण रूप में मिलता है। १, २ और १६वीं द्वात्रिं० के अन्तिम पद्य में 'सिद्ध' शब्द मिलता है जब कि ५वीं और २१वीं में पूरा नाम सिद्धसेन। शेष में नाम का संकेत या चिह्न भी नहीं दिया गया है परन्तु परम्परा और शैली को देखते हुए उनके कर्ता सिद्धसेन के होने में गम्भीर आपत्ति नहीं हो सकती।

इनमें से ११वीं द्वात्रिंशिका प्रशस्ति के अनुसार 'गुणवचन-द्वात्रिंशिका' है।[१] यह एक राजा की प्रशस्ति है जो उसे त्वया, भवान्, त्वत्, तव, भवता और त्वा सर्वनामों द्वारा एवं मध्यम पुरुष में क्रियाओं—सन्तुष्यसे, वहसि, सुरायसे, हरसि, करोसि और असि—द्वारा तथा नृपते, नरपते, नरेन्द्र, नृप, राजन् और क्षितिपते सम्बोधनों द्वारा लक्षित किया गया है। इस विरुद में केवल २८ पद्य हैं। यह सम्भव है कि हमारे लिए महत्त्व के चार पद्य खो गये हों या कुछ

१. मध्यभारती पत्रिका, १, जुलाई १९६२, में मूल संस्कृत पाठ तथा अंग्रेजी अनुवाद डा० हीरालाल जैन द्वारा दिया गया है। इसके तुलनात्मक टिप्पण महत्त्वपूर्ण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैयक्तिक कारणों से अलग कर दिये गये हों। यह भी सम्भव है कि मूलतः यह इतना ही हो क्योंकि दूसरी द्वात्रिंशिकाओं में भी पद्यों की संख्या अनियमित है। उदाहरणतः जबकि २१वीं में ३३, १०वीं में ३४ पद्य हैं तो ८वीं में २६ और १५वीं और १९वीं में ३१ पद्य हैं।

जबकि अन्य द्वात्रिंशिकाओं का विषय या तो तीर्थंकरों की स्तुति या जैन-सिद्धान्त के विवेचन के रूप में है, तो इसका विषय निम्नप्रकार है :

उस राजा के सम्बन्ध में कवि उच्चकोटि की विरुदावली के रूप में कहता है कि तुम कीर्ति में अपने पूर्वजों से बहुत आगे हो (१)। तुम जगत् भर में महिमाशाली हो (२)। तुम्हारी कीर्ति दसों दिशाओं में फैल रही है (३)। तुम्हारे गुणों ने तुम्हारी कीर्ति को वनप्रदेशों में भी फैला दिया है (४)। तुमने दूसरों के प्रताप को ढंक दिया है (५)। तुम्हारे अनुग्रह-स्वभाव ने तुम्हारी कीर्ति बढ़ा दी है (६)। तुम्हारे गुण दिव्य हैं (७)। संसार में ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ तुम्हारी कीर्ति न पहुँची हो (८)। राज्यश्री तुम्हारे वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करती है (९)। तुम बुद्ध्यादि गुणों से दिव्य हो (१०)। तुम अपने दान (अनुग्रह) प्रकृति से प्रवीर शत्रुओं को वश में कर लेते हो (११)। वसुधा बहुत काल बाद तुम्हारे एकच्छत्र राज्य में आई है, शेष नृप तुम्हारे आज्ञापालक हैं (१२)। तुम क्रोध से शत्रुओं को उखाड़ फेंकते हो और पराजित शत्रुओं पर कृपाकर शतगुणी राज्यलक्ष्मी देते हो (१३-१४)। तुम मान के सिवाय दूसरे गुण को पसन्द नहीं करते अर्थात् मान पर तुम्हारा एकाधिकार है और यदि वह गुण दूसरों में चला गया तो वे निर्मूल कर दिये जाते हैं (१५)। तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन कर ही शत्रु यश पा सकते हैं पर उनमें हिम्मत कहाँ (१६)। शरद् ऋतु तुम्हारे शत्रुओं को अरोचक है क्योंकि वह तुम्हारी दिग्विजय का समय है (१७)। एक समय संयोग से तुम्हारी तलवार ने तुम्हारे वक्षःस्थल पर क्षतकर राज्यलक्ष्मी को स्थिर कर दिया था (१८)। तुम्हारे अधीन चंचला लक्ष्मी और पृथ्वी परस्पर स्पर्धा से बढ़ रही हैं (१९)। तुम्हारे साथ वृद्धा (बहुत काल से रहनेवाली) लक्ष्मी का यौवनगुण बदला नहीं (२०)। तुम्हारे मनुष्यरूप में हरि (देवराज) होने का विषय तब तक रहस्य बना रहा जब तक प्रान्तपतिरूपी मेघों ने जनकल्याणकारिणी योजनाओं द्वारा उसे प्रकट नहीं किया (२१)। तुम यथार्थ में महीपाल हो जो खिन्न पृथ्वी को वक्षःस्थल से धारण करते हो। जब तुम गर्भ में थे तभी पृथ्वी ने नूतन युग आने के संकेत कर दिये थे (२२)। विरुद्ध गुण भी तुममें ही निर्विरोध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहते हैं (२३)। सूर्य की दीप्ति से भी तुम्हारी दीप्ति उत्तम है (२४)। तुम विद्वानों की सभा में वक्तृत्व के लिए प्रसिद्ध हो (२५)। तुम्हारी विवादशक्ति, साहस, पत्ररचना, मंत्रिपरिषद् तुम्हारे विरोधियों के लिए ईर्ष्या के विषय हैं (२६)। तुम्हारा जन्म कलि के क्रम को व्यतिक्रम (विक्रम) कर हुआ है (२७)। तुम्हारी सर्वव्यापी प्रभुता अवर्णनीय है (२८)।

इन पद्यों के संकेतों को डा० हीरालाल जैन ने गुप्तवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के शिलालेखों, मुद्राओं और कालिदास के रघुवंशमहाकाव्य के पदों से मिलाकर इस बात को सन्देहरहित सिद्ध किया है कि यह उक्त नाम वाले गुप्तवंशी नरेश की ही प्रशस्ति है।[1] इसके रचयिता कवि सिद्धसेन हैं जो जैन और जैनेतर उल्लेखों से विक्रमादित्य के समकालीन सिद्ध होते हैं। इस तरह यह समकालीन कवि द्वारा प्रस्तुत प्रशस्ति उसी तरह महत्त्व की है जिस तरह इलाहाबाद में उत्कीर्ण कवि हरिषेणकृत समुद्रगुप्त-प्रशस्ति।

गुजरात के कवियों ने चौलुक्य वंश और उसके प्रसिद्ध नृप जयसिंह सिद्धराज एवं कुमारपाल के राज्यकाल का विवरण देने के लिए अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे। उनमें प्रथम है द्वयाश्रयमहाकाव्य।

द्वयाश्रयमहाकाव्य :

इस काव्य[2] की रचना हेमचन्द्रसूरि ने अपने व्याकरण-ग्रन्थ 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' या 'हैमव्याकरण' के नियमों को भाषागत प्रयोग में समझाने एवं उदाहृत करने के लिए की है। जिस तरह हैमव्याकरण संस्कृत और प्राकृत

---

१. A Contemporary Ode to Chandra Gupta Vikramaditya, मध्यभारती पत्रिका, १, जबलपुर विश्वविद्यालय, जुलाई १९६२.

२. संपा०—ए० वी० कथवटे, सर्ग १–२० (संस्कृत), २ भाग, बम्बई संस्कृत सिरीज, १८८५, १९१५ और स० पा० पण्डित, सर्ग २१-२८ (प्राकृत), उसी सिरीज में, १९००; द्वितीय संस्करण : संपा०—प० ल० वैद्य, परिशिष्ट के साथ में हेमचन्द्र का प्राकृत व्याकरण, उसी ग्रन्थमाला से १९३६ में प्रकाशित; प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदीकृत संस्कृत द्वयाश्रय का भाषान्तर (गुजराती) १८९३ में प्रकाशित; प्रो० केशवलाल हिम्मतलाल कामदारकृत हेमचन्द्रनु द्वयाश्रयकाव्य १९३६ में प्रकाशित आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषाओं में विभक्त है उसी तरह यह काव्य भी। इस काव्य के २८ सर्गों में से प्रथम २० सर्ग संस्कृत में हैं जो संस्कृत व्याकरण के नियमों को उदाहृत करते हैं और अन्तिम ८ सर्ग प्राकृत भाषा में प्राकृत व्याकरण के नियमों को उदाहृत करने के लिए रचे गये हैं। इन आठ सर्गों के अन्तिम भाग को कुमारपालचरित (कुमरवालचरिय) नाम से भी कहते हैं। संस्कृत द्वयाश्रय का परिमाण २८२८ श्लोक-प्रमाण और प्राकृत द्वयाश्रय का १५०० श्लोक-प्रमाण है।[1]

संस्कृत-प्राकृतमय इस काव्य का वही महत्त्व एवं स्थान है जो संस्कृत में भट्टिकाव्य का है।

यद्यपि यह ग्रन्थ संस्कृत-प्राकृत व्याकरण के नियमों के साहित्यिक उदाहरणों को प्रस्तुत करने के लिए निर्मित हुआ था फिर भी इसमें इन मर्यादाओं के भीतर कुछ अपवादों को छोड़ कामचलाऊ ढंग से गुजरात के चौलुक्य वंश का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। आचार्य हेमचन्द्र का अभिप्राय इस दो आश्रयवाले काव्य से एक ओर व्याकरण के नियमों को समझाने का तो दूसरी ओर ऐतिहासिक काव्य लिखने अर्थात् चौलुक्य वंश का गुणवर्णन करने का था और विशेषकर उस वंश के नृप सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल का।

विषयवस्तु—संस्कृत भाग के प्रथम सर्ग में अणहिलपुर में चौलुक्य वंश की उत्पत्ति और उसके प्रथम नरेश मूलराज के गुणों का वर्णन दिया गया है। द्वितीय से पंचम सर्ग तक मूलराज के राज्यकाल का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। छठे सर्ग में मूलराज के उत्तराधिकारी चामुण्डराज तथा सातवें में दुर्लभराज और उसके बड़े भाई वल्लभराज का वर्णन है। अष्टम सर्ग में दुर्लभराज के उत्तराधिकारी भतीजे भीम के राज्यकाल का वर्णन है। नवम में भीम, भोज तथा चेदिराज के बीच युद्ध का वर्णन है। इसी सर्ग में भीम के पुत्र क्षेमराज और कर्ण का वर्णन और कर्ण की राज्यप्राप्ति तथा मयणल्ल देवी से विवाह का वर्णन है। दसवें सर्ग में कर्ण द्वारा पुत्रप्राप्ति के लिए लक्ष्मी की उपासना और पुत्रोत्पत्ति का वरदान पाना वर्णित है। ग्यारहवें में जयसिंह की उत्पत्ति, राज्यारोहण, कर्ण का स्वर्गवास तथा जयसिंह की विजय का वर्णन है।

१. संस्कृत द्व्याश्रय पर अभयतिलकगणि ने वि० सं० १३१२ में टीका लिखी है जिसका संशोधन लक्ष्मीतिलकगणि ने किया है। प्राकृत द्व्याश्रय पर पूर्णकलशगणि ने वि० सं० १३०७ में टीका लिखी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारहवें से पन्द्रहवें सर्ग तक जयसिंह की दैवी चमत्कारों से पूर्ण विविध विजयों, धार्मिक कार्यों तथा स्वर्गप्राप्ति का वर्णन है। सोलहवें सर्ग में कुमारपाल की राज्य-प्राप्ति तथा अनेक नरेशों के विद्रोह-शमन का वर्णन है। विजयप्रसंग में उसके आबू पर्वत पर आने तथा आबू के माहात्म्य का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में रात्रि, चन्द्रोदय, सुरत आदि का वर्णन है। अठारहवें में कुमारपाल का प्रस्थान, उन्नीसवें में अर्णोराज से युद्ध का वर्णन है। बीसवें सर्ग में कुमारपाल द्वारा अमारि-घोषणा, मृतक-धन अग्रहण, मन्दिरनिर्माण आदि लोकोपकारी कार्यों का वर्णन दिया है। इसी सर्ग में कुमारपाल संवत् चलने का उल्लेख है।

प्राकृत द्वयाश्रय के प्रथम सर्ग में अणहिलपुर में बन्दीजनों द्वारा कुमारपाल की कीर्ति का वर्णन तथा शयनोत्थान से लेकर श्रम-गृहगमन तक दिनचर्या का वर्णन दिया गया है। द्वितीय में मल्लश्रम, कुंजरयात्रा, जिनमन्दिरयात्रा, जिन-पूजा आदि का वर्णन दिया गया है। तृतीय में उपवन, वसन्तशोभा आदि का वर्णन है। चौथे में ग्रीष्म और पाँचवें में अन्य ऋतुओं के विहार आदि का सालंकार वर्णन है। छठे में चन्द्रोदय का वर्णन तथा राज्यदरबार में सान्धि-विग्रहिक की विज्ञप्ति द्वारा कोंकणाधीश मल्लिकार्जुन पर विजय होने से कुमार-पाल के दक्षिणाधीश बनने की तथा पश्चिम दिशा के अनेक नृपों द्वारा अधीनता स्वीकार करने की एवं काशी, मगध, गौड, कान्यकुब्ज, दशार्ण, चेदि, जंगलदेश आदि देशों के राजाओं द्वारा अधीनता ग्रहण करने की सूचना दी गई है। इसके बाद कुमारपाल का शयन वर्णित है। सातवें सर्ग में आरम्भ में राजा द्वारा परमार्थचिन्ता वर्णित है। पहले आचार्यों की स्तुति और पीछे श्रुतदेवता की स्तुति दी गई है। आठवें सर्ग में श्रुतदेवी का उपदेश दिया गया है।

इस वर्णन में कवि ने विषय के चुनाव और त्याग में विचारपूर्वक काम लिया है। यहाँ द्वयाश्रयकाव्य की ऐतिहासिकता विचारने के प्रसंग में यह आवश्यक है कि हेमचन्द्र ने अपने द्वयाश्रयकाव्य के कुछ खास पद्यों द्वारा व्याकरण के उदाहरणों में इतिहास गर्भित करने के प्रयत्न में कहाँ तक सफलता या असफलता प्राप्त की है।

यहाँ हम तद्धित प्रत्ययों के उदाहरणों के लिए प्रस्तुत एक पद्य को लेते हैं :

तत्तद्वितं कर्तृभिरात्मभर्तुः, समेत्य वृद्धैर्युवभिः क्षणाद्वा।
दुष्टैरथावन्तिभटैः स वप्रोऽध्यारोह्य भीतैः रणतूर्यवाद्यात्॥

१४. ३७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पद्य में इतिहास के रूप में अवन्तिभटों की हालत का वर्णन है। वे वृद्ध-युवा सभी अपने दुर्ग के परकोटे की रक्षा में लग गये और चौलुक्य सेना के सामरिक नगाड़ों की आवाज से नहीं डरे। इसमें हेमचन्द्र दीर्घकाल तक चलने वाले युद्ध के एक दृश्य का वर्णन करते दिखाई पड़ते हैं जिसके विवरणों को उन्होंने निःसन्देह रूप में सुना है। परन्तु इस पद्य में हेमव्याकरण के चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद के १–६ तथा ११ सूत्र के उदाहरण दिये गये हैं। सम्भव है यह पद्य इतिहास-व्याकरण दोनों उद्देश्यों की पूर्ति कर रहा है। इस प्रकार के अनेकों पद्य हैं।

यहाँ दूसरा नमूना प्रस्तुत है :

सुप्रेयसी करुणया बहु विष्णुमित्र-
ग्रामेऽप्यभूत् ससुत एव जनो नृपेऽस्मिन्।
सुभ्रातृपुत्रसहिते क्षतनाडिकृत्त,
तंत्री - गला - जबलिमाय न देवतापि ॥

इस पद्य में कुमारपाल की अमारि-घोषणा के प्रभाव का वर्णन है, साथ में हेमव्याकरण के पाँच सूत्रों ७. ३. १७६-१८० के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। 'सुभ्रातृपुत्रसहिते' पद की टीकाकार अभयतिलकगणि[1] ने व्याख्या कर अर्थ निकाला है कि अजयपाल कुमारपाल का भतीजा था परन्तु एक समकालीन स्रोत से ज्ञात होता है कि अजयपाल कुमारपाल का बेटा था।[2] इससे यह मालूम होता है कि हेमचन्द्र द्वारा शब्दों के विचित्र प्रयोग से टीकाकार ने पुत्र को भतीजे के रूप में समझ लिया है परन्तु इसके द्वारा कुमारपाल के अमारि-घोषणा के प्रभाव के वर्णन में हेमचन्द्र सफल रहे हैं।

यहाँ अब ऐसे एक पद्य को बतलाते हैं जिसमें हेमचन्द्र ने इतिहास और व्याकरण दोनों के उद्देश्य पूर्ण किये हैं पर उसके अगले पद्य में वे असफल रहे हैं। उन्होंने १४वें सर्ग के ७२वें पद्य में वर्णन किया है कि सिद्धराज ने राजा यशोवर्मा को, जो एक गौरेया चिड़िया के समान था, पराजित कर दिया; परन्तु

---

१. शोभनो भ्राता कुमारपालो यस्य स सुभ्राता महीपालदेवस्तस्य पुत्रोऽजयपालदेवस्तेन सहिते।

२. सुरथोत्सव, १५. ३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे एक पद्य में हेमचन्द्र ने कहा है कि यशोवर्मा को हरा देने के बाद सिद्धराज जयसिंह ने अनेक सीमावर्ती राजाओं को हरा दिया। उनमें से एक-एक की तुलना भिन्न-भिन्न प्राणियों से की गई है और कहा गया है कि सिद्धराज ने उन्हें वैसे ही बाँधा जैसे उन पशु-पक्षियों को बाँधा जाता था। यद्यपि इस पद्य में, जैसा कि हम दूसरे उपादानों से जानते हैं, संस्कृत काव्य के अनुकूल वेश में ठीक सूचना दी गई है परन्तु अगला पद्य तो ६. १. ८१–९६ के केवल उदाहरणों के रूप में है। उससे कुछ ऐतिहासिक तथ्य निकालना सचमुच में भ्रान्ति है। इस प्रकार के अनेक पद्य हैं। उदाहरण के लिए हेमचन्द्र कहते हैं कि ग्राहरिपु की पत्नी का नाम नीली था (४. ४८)। यहाँ सहसा सन्देह होता है, क्योंकि हेमचन्द्र से यह आशा करना कठिन है कि वे उस रानी का नाम जानें जिसका पति मूलराज के द्वारा १०वीं शती ई० में पराजित किया गया हो। उनकी सूचना के स्रोतों की हम सुगमता से तलाश कर सकते हैं। हेमचन्द्र ने अपने एक सूत्र २. ४. २४ के उदाहरण में अपनी लघुवृत्ति में भी नीली शब्द दिया है। लघुवृत्ति द्वयाश्रयकाव्य से पहले रची गई थी। यह स्पष्ट है कि नीली की कोई यथार्थ सत्ता नहीं, वह केवल व्याकरण के सूत्र का उदाहरण प्रस्तुत करने की सुविधा एवं आवश्यकता के लिए निष्पन्न किया गया है।

पुनः एक दूसरे प्रसंग में हेमचन्द्र ने निर्देश किया है कि मूलराज के तीन मित्र नृप थे—रेवतीमित्र, गंगमह और गंगामह (४. १-२), पर लघुवृत्ति को देखने पर हम पाते हैं कि वे एक सूत्र २. ४. ९९ के उदाहरणरूप हैं। चूँकि ऐसे संयोग और नाम दुर्लभ हैं इसलिए बहुत सम्भव है कि ऐसे नामधारी मूलराज के मित्र नृप नहीं थे। यह संभावना और भी दृढ़ हो जाती है जब हम देखते हैं कि लक्ष्मीकर्ण के दरबार में भीम का दूत डींग मारता है कि भीम के मित्र नृप बहुत थे जिनके विचित्र नाम यन्ति, रन्ति, नन्ति, गन्ति, हन्ति आदि थे (९.३६)। यथार्थतः ये शब्द अपनी लघुवृत्ति में हेमचन्द्र ने 'न ति कि दीर्घश्च' सूत्र के उदाहरणरूप में प्रस्तुत किये हैं जिनमें 'इ' को दीर्घ न करने का निर्देश है। स्पष्ट है कि इस पद्य का कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं है।

हेमचन्द्र के समकाल में आने पर हम देखते हैं कि कुमारपाल के विरुद्ध लड़नेवाले अर्णोराज के मित्र नृपों के नाम लघुवृत्ति में अनेकों सूत्रों (६. ३. ६-२५) के उदाहरणरूप में दिये गये हैं परन्तु चाहड का नाम, जिसने हेमचन्द्र के अनुसार भी कुमारपाल के विरुद्ध अर्णोराज का पक्ष लिया था, व्याकरण के किसी सूत्र के उदाहरण के रूप में नहीं दिया गया। अनेक इतिहास-ग्रन्थों का

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

कथन है कि इस अवसर पर चाहड कुमारपाल के विरुद्ध लड़ा था। इससे यह मालूम होता है कि चाहड वास्तविक व्यक्ति था। यह कहना जरूरी है कि मूलराज, भीम और अर्णोराज के मित्र राजाओं के नाम जो द्व्याश्रयकाव्य में मिलते हैं वे अन्य स्रोत से बिल्कुल नहीं मालूम होते हैं।

द्व्याश्रयकाव्य का दूसरा रूप उसका महाकाव्यत्व है जिसे हेमचन्द्र ने महाकाव्योचित सारभूत तत्त्वों से सजाया भी है। इनसे इतिहास का कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु उस काल के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजों को जानने की प्रचुर सामग्री मिलती है।[1]

यहाँ हम हेमचन्द्र द्वारा उपेक्षित ऐतिहासिक बातों पर संक्षेप में विचार करते हैं। हम यहाँ उन राजाओं के राज्यकाल पर विचार न करेंगे जिनका हेमचन्द्र को साक्षात् ज्ञान न था। हेमचन्द्र सिद्धराज और कुमारपाल के राज्य में रहते थे इसलिए हम आशा करते हैं कि उन्हें इन दोनों नृपों की गतिविधियों का साक्षात् ज्ञान था। अगर हम उनके द्वारा दिये विवरणों का विचार न करें तो कुछ कमोबेश रूप में कुमारपाल के राज्य का वर्णन ठीक ही किया गया है परन्तु कुमारपाल के प्रारंभिक जीवन का वर्णन नहीं दिया गया। संभवतः हेमचन्द्र उसके प्रारंभिक जीवन के विषय में इसलिए मौन रहे कि सिद्धराज जयसिंह द्वारा वह बहुत समय तक आतंकित रहा। पर किसी इतिहासलेखक के लिए सारभूत बातों की उपेक्षा करना उचित बहाना नहीं हो सकता। सम्भवतः ऐसा लगता है कि हेमचन्द्र ने जानकर उन बातों को छोड़ा है जो कि उन चौलुक्य राजाओं की कीर्ति के लिए अपमानजनक हैं। उसने जयसिंह सिद्धराज के पूर्वज नृप भीम और धारानरेश भोज के बीच के सम्बन्ध को भी मौन रखकर टाल दिया है जिसे मेरुतुंग, सोमेश्वर आदि इतिहासलेखकों ने विस्तार से लिखा है। भोज के ऊपर भीम की विजय चौलुक्य इतिहास के लिए विशेष घटना थी। हेमचन्द्र सर्वप्रथम विद्वान् है जिसने भोज का उल्लेख किया है और वह परमारनरेश के दुःखान्त से निश्चित रूप से परिचित था। इस तथ्य का उसने एक आवृत संकेत मात्र कर दिया जब वह कहता है कि लक्ष्मीकर्ण ने भीम को भोज की स्वर्णमण्डपिका दी थी। इस आवृत संकेत के पीछे हेमचन्द्र का भाव

---

१. विशेष के लिए देखें—र० चु० मोदी, संस्कृत द्व्याश्रयकाव्यमां मध्यकालीन गुजरातनी सामाजिक स्थिति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भोज में अपनी जैसी पाण्डित्यपूर्ण आत्मा देखना था और उनके मन में परमार मनीषी के प्रति इतना बड़ा सम्मान था कि उसका पतन-वर्णन करने में वे अपने को असमर्थ पाते थे।

विस्मय है कि द्वयाश्रय का सबसे अधिक अनैतिहासिक भाग सिद्धराज के राज्यकाल का वर्णन है। उसकी मालवा-विजय और धार्मिक कार्यों के अतिरिक्त ऐसी कोई ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं जिसमें दैवी चमत्कारों की बातें न हों। १०वें सर्ग में हेमचन्द्र ने कर्ण द्वारा देवी पूजा, देवी का प्रकट होकर पुत्र-प्राप्ति का वरदान, फलस्वरूप जयसिंह का पुत्ररूप में उत्पन्न होना आदि चामत्कारिक बातों का अगले चार सर्गों तक वर्णन किया है। १३वें सर्ग में बर्बरक की पराजय और १४वें में परमार यशोवर्मा के साथ युद्ध और १५वें में जयसिंह को पुत्र-प्राप्ति न होने और कुमारपाल के उत्तराधिकारी होने आदि की घटनाएँ वास्तविक होते हुए भी अतिमानवीय तत्त्वों के विशेष पुट के कारण अयथार्थ जैसी लगती हैं। आश्चर्य है कि हेमचन्द्र ने यह सब उस जयसिंह सिद्धराज के विषय में लिखा है जिसके दरबार में उन्होंने अपने जीवन के उत्तम वर्ष बिताये थे और कीर्ति प्राप्त की था। यह मानना ठीक नहीं कि उन्होंने इतिहास लिखना चाहा था। यह बहुत सम्भव है कि व्याकरण के नियमों के उदाहरणों ने इसके बदले उन्हें दैवतकथा (Myth) लिखने के लिए बाध्य किया था। फिर भी इन मर्यादाओं के भीतर द्वयाश्रय में हेमचन्द्र ने कामचलाऊ ढंग से एक अच्छा इतिहास प्रस्तुत किया है और यह स्पष्ट है कि हेमचन्द्र ने विषय का चुनाव और त्याग विचारपूर्वक किया है।

द्वयाश्रय को हलायुध के कविरहस्य जैसी अन्य कृतियों से भिन्न ही मानना चाहिए। कविरहस्य में धातुरूपों का छन्दात्मक निदर्शन और साथ ही राष्ट्रकूट नृप कृष्ण तृतीय का गुणवर्णन प्रस्तुत है पर उसमें शासक नृप की किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन नहीं है। इसके विपरीत द्वयाश्रय में निश्चित रूप से अनेक ऐतिहासिक विवरण मिल जाते हैं।

द्वयाश्रय की हम बिना पक्षपात के इतिहास के रूप में कल्हण की राजतरंगिणी से तुलना कर सकते हैं। इतिहास के रूप में यह बिल्हण के विक्रमांकदेवचरित के समकक्ष भी बैठता है।

द्वयाश्रयकाव्य वर्तमान अर्थ में समझा जानेवाला इतिहास भले न हो पर अपनी मर्यादा के भीतर अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देकर वह आधुनिक वैज्ञानिक इतिहासलेखक का श्रद्धापात्र बन सका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुपाल-तेजपाल का कीर्तिकथा-साहित्य :

चौलुक्य वंश के परवर्ती नरेश द्वितीय भीम के समय का गुजरात का इतिहास प्रमाण में सबसे अधिक विगतवाला और अधिक विश्वसनीय सामग्री (साहित्यिक, पुरातत्त्वीय) वाला है। इसका कारण उस समय में हुए चाणक्य के अवतार के समान गुजरात के दो महान् और अद्वितीय बन्धुमन्त्री वस्तुपाल-तेजपाल थे। इन दोनों भाइयों के शौर्य, चातुर्य और औदार्य आदि अनेक अद्भुत गुणों को लेकर इनके समकालीन गुजरात के प्रतिभावान् पण्डितों और कवियों ने इनकी कीर्ति को अमर करने के लिए जितने काव्य, प्रबंध और प्रशस्तियों आदि की रचना की है उतने भारत में दूसरे किसी राजपुरुष के लिए नहीं लिखे गये हैं।

समकालिक काव्यों में जैन रचनाएँ सुकृतसंकीर्तन और वसन्तनिवास हैं।

सुकृतसंकीर्तन :

इस काव्य[1] में ११ सर्ग और ५५३ पद्य हैं। इसमें महामात्य वस्तुपाल के जीवन और कार्यकलापों का, विशेषकर उसके धार्मिक और लोकप्रिय कार्यों का अधिक वर्णन है।

इसके प्रथम सर्ग में अणहिलवाड़ में राज्य करनेवाले प्रथम राजवंश चापोत्कट या चावड़ा राजाओं की वंशावली और उक्त नगर का वर्णन दिया गया है। यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि यह पहला ऐतिहासिक काव्य है जिसमें चावड़ा-वंश[2] का वर्णन है। इसके बाद उदयप्रभकृत सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी में ही उक्त

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, ग्रन्थाङ्क ५१, सं० १९७४; इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३१, पृ० ४७७ प्रभृति; जिनरत्नकोश, पृ० ४४३; इस काव्य का मूल, जर्मन अनुवाद एवं भूमिका जी० बुहलर ने जर्मन पत्रिका सित्सुंगस्वेरिख्ते (भाग ११९, सन् १८९९) में निकाले थे। जर्मन अनुवाद और भूमिका का अंग्रेजी अनुवाद इ० एच० बर्जेस ने १९०३ में इण्डियन एण्टीक्वेरी पत्रिका में प्रकाशित किये, पीछे अलग पुस्तिका के रूप में जर्मन और अंग्रेजी पाठ प्रकाशित हुए; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ३२.

२. चावड़ावंश का प्राचीनतम शिलालेखीय उल्लेख वि० सं० १२०८ (११५२ ई०) की वडनगर की कुमारपालप्रशस्ति में मिलता है। चावड़ों की वंशावली के लिए देखें—इण्डियन एण्टीक्वेरी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंश का वर्णन मिलता है। हेमचन्द्र इस वंश के विषय में मौन हैं, हालांकि इस वंश के वनराज ने ही अणहिलवाड़ की स्थापना की थी। चावड़ा शाखा के आठ राजाओं के नाम अरिसिंह ने गिनाये हैं : वनराज, योगराज, रत्नादित्य, वैरसिंह, क्षेमराज, चामुण्ड, राहड और भूभट। इनमें से केवल वनराज के विषय में सूचना है कि उसने अणहिलवाड़ में पंचासरा पार्श्वनाथ का मन्दिर निर्माण कराया था जिसका आगे चलकर वस्तुपाल ने जीर्णोद्धार कराया। दूसरे सर्ग में चौलुक्य वंश का वर्णन है जिसमें मूलराज से भीमदेव द्वितीय के राज्यकाल तक का संक्षिप्त विवरण है। भीमदेव द्वितीय के विषय में कहा गया है कि वह चिन्ताओं से बहुत घिरा हुआ था क्योंकि उसके राज्य को सामन्तों और माण्डलिकों ने हड़प लिया था। तीसरे सर्ग में भीम द्वारा बघेला लवणप्रसाद को सर्वेश्वर पद और वीरधवल को युवराज पद तथा मंत्री पद पर वस्तुपाल और तेजपाल की नियुक्ति की सूचना दी गई है। चौथे से ग्यारहवें तक के सर्ग वस्तुपाल के सुकृत्यों, सत्कार्यों से भरे पड़े हैं जिनसे तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक रीतिरिवाजों का दिग्दर्शन मिलता है और काव्य का शीर्षक सुकृत्यों के संकीर्तन द्वारा चरितार्थ किया गया है।

रचयिता और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता ठक्कुर अरिसिंह हैं। प्रबंधकोश के अनुसार यह कवि वायड़गच्छ के जिनदत्तसूरि का अनुयायी था। अरिसिंह जैन श्रावक होते हुए भी सुप्रसिद्ध गद्यकार और कवि मुनि अमरचन्द्र का गुरु था। ये दोनों साहित्यिक एक गृहस्थ और दूसरा साधु परस्पर मिलकर काम करते थे। अरिसिंह वस्तुपाल का प्रिय कवि था तथा वघेलानरेश के राजदरबारियों में एक था।

काव्य के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसकी रचना तब की गई थी जब वस्तुपाल अपनी सत्ता के शिखर पर था।[१] फिर भी वस्तुपाल के जीवनकाल के वि० सं० १२७८ (सन् १२२२ ई०) के बाद ही इसकी रचना होना चाहिए क्योंकि इसमें आबू पर मल्लिनाथ की बनी कुलिका का वर्णन है जो उस वर्ष बनी थी। साथ ही इसे वि० सं० १२८८-८९ पूर्व बनी होना चाहिए क्योंकि इसमें वस्तुपाल द्वारा किये सभी कार्यों का वर्णन नहीं है।

इस काव्य के अतिरिक्त अरिसिंह की अन्य कृतियों का पता नहीं।

---

१. बुहलर, इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३१, पृ० ४८०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसन्तविलास :

इस काव्य[1] में प्रसिद्ध अमात्य वस्तुपाल के जीवन-चरित्र का वर्णन है। वस्तुपाल का कविमित्रों द्वारा प्रदत्त द्वितीय नाम वसन्तपाल था। यह एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें १४ सर्ग हैं। इसमें कुल मिलाकर १०२१ पद्य हैं जो अनुष्टुभ्मान से १५१६ हैं। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि ने वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह की प्रशंसा में एक वृत्त रचा है, जिसके अनुरोध पर उसने यह काव्य बनाया था।[2]

वस्तुपाल के समकालिक कवि द्वारा रचित होने से इसमें वर्णित घटनाओं की सचाई में सन्देह के लिए बहुत कम अवकाश है। गुजरात के इतिहास पर इस काव्य से निम्नलिखित तथ्यों की जानकारी होती है :

१. चौलुक्य वंश की ब्रह्मा के चुलुक जल से उत्पत्ति तथा मूलराज से लेकर भीम द्वितीय तक नरेशों का वर्णन। इसमें जयसिंह, कुमारपाल और भीम द्वितीय के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत विस्तार से वर्णन है।[3]

२. बघेलाशाखा के अर्णोराज, उसके पुत्र लवणप्रसाद तथा उसके पुत्र वीरधवल का वर्णन कर किन परिस्थितियों में वस्तुपाल-तेजपाल की मंत्रिपद पर नियुक्ति हुई, इसका वर्णन है।[4]

३. वस्तुपाल के प्राग्वाट वंश का वर्णन तथा पूर्वज चण्डप, चण्डप्रसाद, सोम के वर्णन के बाद सोम के पुत्र अश्वराज (वस्तुपाल के पिता) और उसकी पत्नी कुमारदेवी का वर्णन। उनसे मल्लदेव, वस्तुपाल और तेजपाल ये तीन पुत्र हुए।

४. वस्तुपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति से वीरधवल के राज्य को दिन-प्रतिदिन उन्नति होना। वीरधवल द्वारा लाट देश पर आक्रमणकर और खम्भात को छीनकर वहाँ वस्तुपाल को गवर्नर बनाना। वस्तुपाल द्वारा शासन-व्यवस्था में सुधार तथा सम्पूर्ण धर्मों में समभाव। वस्तुपाल का काव्यप्रेम तथा कवियों के प्रति सम्मान।

---

१. गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, बड़ौदा, १९१७; जिनरत्नकोश, पृ० ३४४.

२. सर्ग १. ७५.

३. इस वर्णन का मिलान कीर्तिकौमुदी और सुकृतसंकीर्तन से कर सकते हैं।

४. यह वर्णन कीर्तिकौमुदी में वर्णित कथा का अनुकरण प्रतीत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. मारवाड़ देश के राजाओं और लूणसाक नरेश के बीच युद्ध, वीरधवल का मारवाड़ के राजाओं की सहायता के लिए जाना। भृगुकच्छ के शासक शंख के आक्रमण का वस्तुपाल द्वारा सामना करना और उसे परास्त करना।

६. वस्तुपाल का संघसहित शत्रुंजय और गिरिनार-यात्रा में जाना। वस्तुपाल की मृत्यु माघ कृष्णा पञ्चमी सं० १२९६ सोमवार को शत्रुंजय में होना।

वैसे वसन्तविलास की कथावस्तु छोटी है पर उसका महाकाव्योचित विधि से विस्तार किया गया है। प्रारंभिक चार सर्ग कथानक की भूमिकामात्र प्रस्तुत करते हैं। पहले में कवि ने काव्य की महत्ता पर प्रकाश डालकर अपना परिचय दिया है। दूसरे सर्ग में अणहिल्लपत्तन नगर का वर्णन तथा तृतीय में मूलराज से लेकर भीम द्वितीय तक चौलुक्यवंशी राजाओं का परिचय तथा बघेला वीरधवल और उसके पूर्वजों का परिचय देकर वीरधवल द्वारा वस्तुपाल-तेजपाल की मन्त्रिपद पर नियुक्ति का वर्णन किया गया है। चौथे में वस्तुपाल के गुणों का वर्णन करके वीरधवल द्वारा उसको खम्भात का शासक नियुक्त किये जाने का विवरण प्रस्तुत किया गया है। पाँचवें सर्ग से कथा को गति मिलती है। इसमें लूणसाक नृपति के साथ मारवाड़नरेश का युद्ध छिड़ने और वीरधवल का ससैन्य जाने का वर्णन है। इसी सर्ग में लाटनरेश शंख के धवलक्कक पर आक्रमण करने और वस्तुपाल द्वारा उसे पराजित करके भगाने का वर्णन है। छठे सर्ग में कवि परम्परानुसार ऋतुवर्णन, वैसे ही सातवें में पुष्पावचय, दोलाक्रीड़ा एवं जलक्रीड़ा का वर्णन तथा आठवें में चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है। नवें सूर्योदय नामक सर्ग में रात्रि में निद्रामग्न वस्तुपाल स्वप्न देखता है जिसमें एक पैर का धर्म लंगड़ाता हुआ वस्तुपाल के पास आकर प्रार्थना करता है कि कलियुग के प्रभाव से मैं एक पाद का रह गया हूँ[1] अतः आप तीर्थयात्राएँ करके मेरी व्याकुलता को दूर करें। वस्तुपाल उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। इसी समय प्रातःकाल हो जाता है और वस्तुपाल जाग जाते हैं। इसमें कथानक का टूटा हुआ सूत्र कवि ने फिर पकड़ा है।

दसवें सर्ग से लेकर तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की तीर्थयात्राओं का विस्तृत वर्णन है। दसवें में शत्रुंजययात्रा, ग्यारहवें में प्रभासतीर्थयात्रा, बारहवें में रैवतकगिरि वर्णन और तेरहवें में रैवतकयात्रा का वर्णन है। इसी सर्ग में वस्तुपाल

---

१. यह वर्णन भागवतपुराण (१. १६-१७) के अनुकरण पर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का लौटकर धवलक्कक वापिस आने का वर्णन किया गया है। अन्तिम चौदहवें सर्ग में वस्तुपाल द्वारा किये गये अनेक धर्मकार्यों का विवरण दिया गया है तथा माघ कृष्णा पञ्चमी सोमवार सं० १२९६ प्रातः सद्गति जाने का वर्णन किया गया है। इसमें रूपकतत्त्व का आश्रय लिया गया है।

इस काव्य में कवि ने चरित्रचित्रण की ओर विशेष ध्यान दिया है। इसमें वस्तुपाल, तेजपाल, वीरधवल, शंख आदि अनेक पात्र हैं पर वस्तुपाल के उदात्त चरित्र का चित्रण ही इस काव्य का उद्देश्य है। प्राकृतिक चित्रण भी इस काव्य में अच्छी तरह किया गया है। हाँ, इसमें कवि-परम्परा-सम्मत सौन्दर्य-चित्रण नहीं जैसा है। इसी तरह सामाजिक चित्रण करनेवाली विशेष सामग्री इसमें नहीं है। पर तत्कालीन राजनीतिक इतिहास जानने की इसमें प्रचुर सामग्री है। कवि ने धार्मिक सिद्धान्तों का भी कहीं वर्णन नहीं किया परन्तु उसने धर्म की आराधना में तीर्थयात्रा को विशेष महत्त्व दिया है।

रसों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से यह वीर-रस-प्रधान काव्य है। पाँचवें सर्ग में वीर-रस की अभिव्यक्ति सुन्दर ढंग से हुई है। युद्ध-प्रसंग में रौद्ररस और वीभत्स-रस की झाँकी भी दृष्टिगत होती है। दसवें से तेरहवें सर्ग तक वस्तुपाल की धर्मवीरता एवं दानवीरता का चित्रण किया गया है। छठे, सातवें एवं आठवें सर्गों में संयोग-शृंगार का परिपाक हुआ है। इस काव्य की भाषा सरल, कोमल एवं स्वाभाविक तथा प्रौढ़ एवं परिमार्जित है। सामान्यतया भाषा भावानुकूल है। यत्र-तत्र सूक्तियों का प्रयोग भी भाषा में हुआ है।[1] बारहवें सर्ग में कवि ने शब्दक्रीड़ा एवं पाण्डित्य प्रदर्शन करते हुए दुरूह पद्यों का प्रयोग किया है। भाषा को सजाने के लिए विविध अलंकारों की योजना भी कवि ने प्रचुर मात्रा में की है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक एवं वीप्सा का तथा अर्थालंकारों में उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अन्य अलंकारों में अपह्नुति, असंगति, विरोध, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति का प्रयोग द्रष्टव्य है। छन्दों के प्रयोग में कवि ने महाकाव्य परम्परा को अपनाया है। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन किये गये हैं। कुछ सर्गों में विविध छन्दों की योजना भी हुई है। इस तरह इस काव्य में २९ छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें उपजाति का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है।

---

१. सर्ग १०. ७, १७, २३; ११. ८२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता बालचन्द्रसूरि हैं। इस काव्य के प्रथम सर्ग में कवि ने अपना जैन मुनि होने से पहले के जीवन का परिचय दिया है। तदनुसार कवि मोढेरक ग्रामवासी धरादेव ब्राह्मण और उसकी पत्नी विद्युत के मुंजाल नाम के पुत्र थे। बाल्यावस्था में ही विरक्त होकर मुंजाल ने जैनी दीक्षा ग्रहण कर ली। उसके गुरु चन्द्रगच्छीय हरिभद्रसूरि ने दीक्षा का नाम बालचन्द्र रखा। बालचन्द्र ने अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् पद्मादित्य से शिक्षा ग्रहण की थी तथा वादिदेवगच्छ के उदयप्रभसूरि से सारस्वत मंत्र प्राप्त किया था जिसके फलस्वरूप वह महाकवि बन प्रस्तुत काव्य रच सका।

दीक्षागुरु हरिभद्र ने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में बालचन्द्र को अपने पद पर—आचार्य पद पर—प्रतिष्ठित किया। प्रबंधचिन्तामणि में बतलाया गया है कि वस्तुपाल ने बालचन्द्र की कवित्वशक्ति से प्रसन्न होकर उनके आचार्यपद महोत्सव में एक सहस्र द्रम्म खर्च किये थे। बालचन्द्रसूरि ने 'करुणावज्रायुध' नामक पाँच अंकों का एक नाटक भी लिखा है जो वस्तुपाल की एक संघयात्रा के समय शत्रुंजय में यात्रियों के विनोदार्थ आदिनाथ के मन्दिर में दिखाया गया था। इसके अतिरिक्त बालचन्द्रसूरि ने आसड कविकृत 'विवेकमंजरी' तथा 'उपदेश-कंदली' नामक ग्रन्थों पर टीकाएँ भी लिखीं। वसन्तविलास कवि की अन्तिम कृति है और वह वस्तुपाल की मृत्यु के पश्चात् लिखी गई थी क्योंकि इसमें वस्तुपाल के स्वर्गगमन का वर्णन है। वस्तुपाल की मृत्यु सं० १२९६ में हुई थी। इस काव्य की रचना वस्तुपाल के पुत्र जैत्रसिंह के मनोविनोद के लिए की थी। जैत्रसिंह अपने पिता के जीवनकाल में ही सं० १२७९ में खम्भात का गवर्नर बनाया गया था। तब उसकी आयु २५ वर्ष के लगभग रही होगी और वस्तुपाल की मृत्यु के समय उसकी अवस्था ४२-४३ वर्ष की रही होगी। यदि वह ८० वर्ष की पूर्णायु पाकर मरा था तो उसकी मृत्यु सं० १३३३-३४ के लगभग हुई होगी। चूँकि इस काव्य की रचना जैत्रसिंह के जीवनकाल में ही हो गई थी अतः इसकी रचना का समय सं० १२९६ से सं० १३३४ का मध्यवर्ती-काल मानना चाहिए।

वस्तुपाल के जीवन पर आश्रित दूसरा ऐतिहासिक काव्य है संघपतिचरित्र अपरनाम धर्माभ्युदयकाव्य। इसके प्रथम सर्ग में वस्तुपाल की वंशपरम्परा तथा वस्तुपाल के मन्त्री बनने का निर्देश है तथा अन्तिम सर्ग में वस्तुपाल की संघयात्रा का ऐतिहासिक विवरण दिया गया है। यह काव्य अधिकांश धर्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथाओं से भरा हुआ है। इसका विवेचन हम कथा-साहित्य प्रकरण[1] में कर आये हैं।

वस्तुपाल-तेजपाल मन्त्रिद्वय को निमित्त बनाकर नाटक, प्रशस्तियाँ एवं शिलालेख आदि भी रचे गये हैं जिनमें तत्कालीन गुजरात के इतिहास को जानने के लिए बहुत-सी सामग्री उपलब्ध है।

समकालिक साहित्य में जयसिंहसूरि का लिखा हुआ हम्मीरमदमर्दन नाटक वस्तुपाल के राजनैतिक और फौजी जीवन के निरूपण में उपयोगी है क्योंकि उसमें मुस्लिम आक्रमण को विफल करनेवाली युद्धनीति का वर्णन नाटकीय शैली में किया गया है। इस नाटक का विशेष परिचय हम पीछे दे रहे हैं। जिनभद्र (१२३४ ई०) की प्रबंधावली में वस्तुपाल के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं की ओर इशारा किया गया है जो मुख्य कालक्रम की समस्याओं को सुलझाने में परम सहायक हुई हैं। इसी तरह नरेन्द्रप्रभसूरि की वस्तुपालप्रशस्ति, उदयप्रभसूरि की सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी एवं वस्तुपालस्तुति तथा जयसिंहसूरिकृत वस्तुपाल-तेजपालप्रशस्ति भी ऐतिहासिक महत्त्व की हैं। इनका परिचय प्रशस्तिकाव्यों में दे रहे हैं।

पश्चात्कालिक साहित्यिक सामग्री में मेरुतुंग का प्रबंधचिन्तामणि (१३०५ ई०), राजशेखर का प्रबंधकोश (१३४९ ई०) और पुरातनप्रबंधसंग्रह (जिसमें १३वीं, १४वीं, १५वीं शती के अनेक प्रबंध संकलित हैं), जिनप्रभसूरि का विविधतीर्थकल्प तथा जिनहर्षगणि का वस्तुपालचरित हैं। इनका परिचय यथास्थान दे रहे हैं। इसी तरह वस्तुपाल-तेजपाल के जीवन पर अनेक शिलालेखीय एवं ग्रन्थप्रशस्तियाँ भी प्राप्त हैं। उनका भी यथासंभव परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती के अनेक जैन विद्वानों ने ऐतिहासिक महाकाव्यों को प्रस्तुत किया है। चौलुक्य नृप कुमारपाल पर रचे गये कुछ काव्यों का उल्लेख हमने पौराणिक महाकाव्यों के परिचय में किया है। वहाँ उनका ऐतिहासिक महत्त्व नहीं बतलाया। यहाँ हम उनमें से कुछ का परिचय देते हैं।

---

१. देखें पृ० २५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुमारपालभूपालचरित :

इस काव्य[1] से निम्नलिखित ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी मिलती है : इसमें मूलराज से लेकर अजयपाल तक गुजरात के नरेशों का क्रमिक विवरण दिया गया है। इसके लिए इस काव्य का प्रथम सर्ग बड़े महत्त्व का है। इसमें मूलराज की उत्पत्ति का एक ऐसा वर्णन मिलता है जो दूसरी जगह नहीं मिलता। यह वर्णन बहुत हद तक एक शिलालेख से भी समर्थित है। जयसिंह सिद्धराज को इस काव्य में शैवधर्मानुयायी तथा सन्तानरहित नरेश कहा गया है। उसने कुमारपाल को उत्तराधिकार न मिलने के लिए तंग किया था।

कुमारपाल के विषय में लिखा है कि प्रारंभ में वह शैवधर्मानुयायी था, पीछे हेमचन्द्राचार्य के प्रभाव से वह जैन हो गया था। उदयन उसका महामात्य था और वाग्भट उसका अमात्य। कुमारपाल ने अपने साले कृष्णदेव को अन्धा कर दिया था। उसने जाबालपुर, कुरु तथा मालव के राजाओं को अपने प्रभाव में कर लिया था तथा आभीर, सौराष्ट्र, कच्छ, पंचनद और मूलस्थान के नरेशों को पराजित किया था। कुमारपाल ने अजमेर के शासक अर्णोराज से काफी समय तक युद्ध किया था एवं उसे पराजित किया था। उसने मेड़ता और पल्लीकोट के नरेशों को जीता था तथा कोंकणनरेश मल्लिकार्जुन को हराया था एवं इस विजय के उपलक्ष्य में आम्रभट को 'राजपितामह' बिरुद दिया था। कुमारपाल ने सोमनाथ का जीर्णोद्धार किया था। सोमनाथ की यात्रा में हेमचन्द्र-सूरि उसके साथ थे। कुमारपाल ने सौराष्ट्र के राजा समरस से युद्ध किया था और उस युद्ध में उदयन की मृत्यु हुई थी।

वाग्भट ने शत्रुंजयतीर्थ का दो बार उद्धार किया था। हेमचन्द्रसूरि ने भृगुकच्छ में आम्रभट द्वारा निर्मित मुनिसुव्रतनाथ चैत्य में सं० १२११ में जिन-बिम्ब की प्रतिष्ठा की थी। कुमारपाल संघपति बनकर तीर्थयात्रा करने निकला था। सं० १२२९ में हेमचन्द्र की मृत्यु हुई थी तथा इसके एक वर्ष बाद सं० १२३० में कुमारपाल की मृत्यु हुई थी। कुमारपाल के बाद अजयपाल राजगद्दी पर बैठा था।

इस काव्य के अन्य गुणों तथा कविपरिचय पर हम लिख चुके हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९२; हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१५; गोड़ीजी जैन उपाश्रय, बम्बई, १९२६.

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

इस काव्य के रचयिता जयसिंहसूरि के प्रशिष्य ने एक दूसरा ऐतिहासिक काव्य लिखा था जो चौहानवंश से सम्बद्ध है। उसका परिचय इस प्रकार है :

हम्मीरमहाकाव्य :

इस काव्य[1] में रणथंभोर के चौहानवंशी अन्तिम नरेश हम्मीर और दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के बीच हुए ऐतिहासिक युद्ध का वर्णन है। इसमें १४ सर्ग हैं जिनमें सब मिलाकर १५६४ श्लोक हैं। यह ऐतिहासिक शैली के महाकाव्यों में महत्त्वपूर्ण कृति है।

इस काव्य का कथानक सर्गक्रम से इस प्रकार है : प्रथम सर्ग में चाहमान कुल की उत्पत्ति तथा वासुदेव से लेकर सिंहराज तक हम्मीर के पूर्वजों का वर्णन है। द्वितीय तथा तृतीय सर्ग में पृथ्वीराज चाहमान और सहाबदीन के बीच सात बार युद्ध और अन्त में पृथ्वीराज की पराजय और बन्दीगृह में मृत्यु होने का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में हम्मीर के जन्म का वर्णन है। हम्मीर पृथ्वीराज के पौत्र गोविन्दराज की शाखा में उसके पौत्र जैत्रसिंह और रानी हीरादेवी का पुत्र था। पंचम सर्ग में वसन्तऋतु आने पर युवक हम्मीर के उद्यान में जाने और वहाँ पौर-पौराङ्गनाओं की वनक्रीड़ा का वर्णन है। षष्ठ सर्ग में जैत्रसागर में उनकी जलक्रीड़ा का वर्णन है। सप्तम में संध्या, चन्द्रोदय तथा रात्रि-वर्णन है। अष्टम में जैत्रसिंह हम्मीर को राजा बनाता है और राजनीति पर बड़े महत्त्व के उपदेश देता है। कुछ समय बाद वह दिवंगत हो जाता है। नवम सर्ग में हम्मीर की दिग्विजय का वर्णन है। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन का एक मुगल सरदार उसका अपमान कर हम्मीर की शरण में भाग जाता है। हम्मीर के उसे वापस न करने पर अलाउद्दीन अपने भाई उल्लूखान को हम्मीर पर आक्रमण करने भेजता है। हम्मीर उस समय कोटियज्ञ कर रहा था अतः त्रिशुद्धिव्रत लेने के कारण स्वयं युद्धक्षेत्र में न जाकर अपने सेनापति भीमसिंह और धर्मसिंह को युद्ध करने भेजता है। धर्मसिंह की मूर्खता से चौहान सेना हार जाती

---

१. संपा०—नीलकण्ठ जनार्दन कीर्तने, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८७९; मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित, राजस्थान ग्रन्थमाला से प्रकाशित, इसमें डा० दशरथ शर्मा की भूमिका द्रष्टव्य है। विशेष के लिए देखें—डा० श्यामशंकर दीक्षितकृत 'तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य', पृ० १६१-१९२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है और भीमसिंह मारा जाता है। हम्मीर क्रुद्ध होकर धर्मसिंह की दोनों आँखें निकलवा देता है और उसे देशनिकाला देता है तथा अपने जातीय भोज को दण्डनायक बना देता है। पर धर्मसिंह अपनी कूटनीति से पुनः अपना पद प्राप्तकर लेता है और हम्मीर के कान भरकर भोज का सर्वस्व छीनकर उसे भगा देता है। भोज दिल्ली जाकर अलाउद्दीन से मिल जाता है। भोज के स्थान पर हम्मीर रतिपाल को नियुक्त करता है। दशम सर्ग में उल्लूखान का पराजित होना, भोज के परिवार की दुर्दशा का वर्णन सुनकर अलाउद्दीन का आगबबूला होना और हम्मीर को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करना वर्णित है। एकादश सर्ग में निसुरत्तखान और उल्लूखान का विशाल सेना के साथ आना तथा युद्ध में निसुरत्तखान का मारा जाना दिखाया गया है। द्वादश सर्ग में अलाउद्दीन का स्वयं रणस्तंभपुर आना, हम्मीर और उसकी सेना में दो दिन तक भयंकर संग्राम होना, युद्ध में अलाउद्दीन की बहुत सी सेना का मारा जाना वर्णित है। त्रयोदश सर्ग में अलाउद्दीन द्वारा घूस देकर रतिपाल को अपने पक्ष में मिला लेना, रतिपाल द्वारा अन्य कर्मचारियों को भी अलाउद्दीन के पक्ष में कर लेना, इस विश्वासघात से हम्मीर का जय से निराश होना, फलस्वरूप अन्तःपुर की स्त्रियों का जौहर की आग में जल मरना और युद्ध में अपनी हार देखकर हम्मीर द्वारा अपना वध कर लेना वर्णित है। चतुर्दश सर्ग में हम्मीर के गुणों की स्तुति, भोज, रतिपाल आदि की निन्दा दी गई है। अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति के साथ काव्य की समाप्ति होती है।

हम्मीरमहाकाव्य की कथावस्तु के उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इस काव्य के प्रथम चार सर्गों में इतिवृत्तात्मकता अधिक है। ये सर्ग चौहानवंश के इतिहास का काम करते हैं। बाद के चार सर्गों (५–८ तक) में कवि ने महाकाव्य की शैली का अनुसरण किया है। फिर इतिहास की बात नवम सर्ग से आगे बढ़कर तेरहवें सर्ग में समाप्त हो जाती है। चौदहवाँ सर्ग प्रशस्तिरूप ही है। वस्तुतः 'हम्मीरमहाकाव्य' एक दुःखान्त महाकाव्य है जिसका अन्त नायक की पराजय एवं मृत्यु से हुआ है। काव्य में इस ऐतिहासिक तथ्य की उपेक्षा नहीं की गई है। फिर भी इसके पढ़ने से पाठकों के मन में निराशा की भावना का संचार नहीं होता। उसका मस्तिष्क शरणागत के प्रतिपालन और जातिगौरव की रक्षा के लिए की गई कुर्बानी से ऊँचा हो उठता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सुस्पष्ट, सुगठित कृति है और अलौकिक तत्त्वों से रहित है। रणथंभौर शाखा के चौहानों के इतिहासवर्णन में साल, मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्रादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के वर्णन के साथ-साथ घटनाओं के कार्य-कारण सम्बन्ध को प्रदर्शित कर कवि ने ऐतिहासिकों के हृदय में बड़ा ही सम्मान का स्थान पा लिया है।

महाकाव्यीय तत्त्वों की दृष्टि से देखा जाय तो यह एक उदात्त काव्य है। इसमें नायक और प्रतिनायक अर्थात् हम्मीर और अलाउद्दीन तथा अन्य सहायक और प्रतिपक्षी पात्रों का अच्छा चरित्र-चित्रण किया गया है। इसी तरह प्रकृति का व्यापक चित्रण भी हुआ है। पंचम से लेकर नवम सर्ग तक तथा त्रयोदश सर्ग में प्रकृति का चित्रण ही कवि का लक्ष्य रहा है। सौन्दर्य-चित्रण में कवि ने पुरुषपात्रों में हम्मीर तथा स्त्रीपात्रों में हम्मीर की माता हीरादेवी तथा नर्तकी धारादेवी का सौन्दर्य-वर्णन किया है। समाज-चित्रण की भी यत्र-तत्र झलक दी गई है, जैसे सामान्य जनता तथा राजा-महाराजाओं में मुहूर्त और शुभलग्नों के प्रति अपूर्व विश्वास, हिन्दू राजाओं में यज्ञ की परम्परा, राजनीति में छल-कपट आदि।

कवि ने इस काव्य में धार्मिक भावना न के बराबर व्यक्त की है। केवल मंगलाचरण में जिनदेवता और ब्राह्मणदेवता दोनों को नमस्कार किया है तथा दूसरी जगह हम्मीर द्वारा मारिनिवारण और सप्तव्यसन-वर्जन की घोषणा।

रसयोजना की दृष्टि से यह अपने युग का श्रेष्ठ काव्य है। इसमें श्रृंगार और वीर-रस को प्रमुख स्थान मिला है। कवि ने स्वयं इसे श्रृंगारवीराद्भुत काव्य कहा है। इसी तरह रौद्र, करुण और वात्सल्य रसों की अभिव्यक्ति भी यथास्थान हुई है। इस काव्य की भाषा में गरिमा और प्रौढ़ता है। काव्यलेखक नयचन्द्रसूरि की भाषा अपने पदलालित्य के लिए पण्डितों में प्रसिद्ध रही है। उसकी भाषा में माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों को यथास्थान दिखलाया गया है। कवि ने भाषा में सूक्तियों और सुभाषितों का यथास्थान प्रयोग कर मोहकता भी ला दी है। विविधालंकारों की योजना कर कवि ने काव्यसौन्दर्य की बृद्धि की है। शब्दालंकारों में यमक और अनुप्रास का प्रयोग जहाँ-तहाँ किया गया है, वे स्वाभाविकता लिए हुए भी हैं। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों की योजना अधिक हुई है। नयचन्द्रसूरि की उपमाएँ तो अनूठी हैं। अन्य अलंकारों का भी उपयोग यथास्थान हुआ है। छन्दों के प्रयोग में कवि ने महाकाव्य के छन्दोविधान-सम्बन्धी नियमों का प्रायः पालन किया है। काव्य के सर्गान्त में नाना छन्दों का प्रयोग हुआ है। दसवें सर्ग में विविध छन्दों की योजना की गई है। इस काव्य में कुल मिलाकर २६ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में प्रशस्ति द्वारा कवि ने अपना जो परिचय दिया है उसके अनुसार इसके रचयिता महाकवि नयचन्द्रसूरि हैं[1] जो कुमारपालभूपालचरित्र के रचयिता कृष्णगच्छीय जयसिंहसूरि के शिष्य प्रसन्नचन्द्रसूरि के शिष्य थे। प्रशस्ति में कवि ने इस काव्य के रचने के दो प्रेरणा-सूत्रों का उल्लेख किया है। पहला यह कि हम्मीर की दिवंगत आत्मा ने उन्हें स्वप्न में हम्मीरचरित ग्रथित करने का आदेश दिया। दूसरा यह कि ग्वालियर के तत्कालीन शासक वीरमदेव तोमर (१४४०-१४७४ ई०) की यह उक्ति कि प्राचीन कवियों के सदृश मनोहर काव्य की रचना अब कौन कर सकता है ? इस चुनौती के फलस्वरूप उसे सरस काव्य रचने की प्रेरणा मिली।

इस महाकाव्य की रचना कब हुई इसका स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता। श्री अगरचन्द नाहटा को कोटा के जैन भण्डार से इस काव्य की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति वि० सं० १४८६ की मिली है अतः इसकी रचना इसके पूर्व तो अवश्य हो चुकी थी। जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास के लेखक श्री मो० द० देसाई ने इस काव्य का रचनाकाल सं० १४४० के लगभग माना है। इसकी पुष्टि इतिहासज्ञ विद्वान् डा० दशरथ शर्मा ने भी की है।[2] उनका कहना है—'हम्मीरमहाकाव्य' में समय नहीं दिया गया किन्तु अनुमान से कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। नयचन्द्रसूरि ने अपने दादागुरु जयसिंहसूरि के 'कुमारपालभूपालचरित' की टीका सं० १४२२ में लिखी थी। जयसिंहसूरि ने प्रसन्न होकर नयचन्द्रसूरि को '**अवधानसावधानः प्रमाणनिष्ठः कवित्वनिष्णातः**' के विशेषणों से अभिहित किया है। इन विशेषणों को ध्यान में रखते हुए उनकी आयु सम्भवतः ३० वर्ष की रही होगी। 'हम्मीरमहाकाव्य' की रचना के समय कवि लब्धप्रतिष्ठ हो चुके थे। इसलिए सं० १४२२ के कुछ समय बाद अर्थात् सं० १४४० के लगभग इस काव्य का रचनाकाल मानना उचित प्रतीत होता है। तोमरनरेश वीरमदेव, जिसके राज्यकाल में यह काव्य लिखा गया था, का समय जयपुर भण्डार के एक ग्रन्थ से ज्ञात होता है कि उसने सं० १४७९ तक राज्य किया था। यदि सं० १४४० को, जिस समय के लगभग उक्त काव्य की रचना की गई थी, उक्त नरेश का प्रथम राज्यवर्ष मानें तो उक्त नरेश का राज्यकाल ४० वर्ष के लगभग बैठता है जो कि सम्भव है। सम्भवतः नयचन्द्रसूरि वीरम के दरबार में उसके राज्य के प्रारम्भ में ही पहुँचे थे। नये राजा को उस समय

---

१. सर्ग १४, श्लो० २६ और ४३.

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६४, सं० २०१६, पृ० ६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काव्य का शौक था। नयचन्द्र तब ५० वर्ष के रहे होंगे। इस सबसे अनुमान होता है कि उक्त काव्य की रचना सं० के १४४० आस-पास, संभवतः सं० १४५० के पूर्व हुई है।

कुमारपालचरित :

यह १५वीं शती का कुमारपाल पर दूसरा काव्य है।[1]

इसमें १० सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर २०३२ श्लोक हैं। इसका ऐतिहासिक अंश अत्यल्प है फिर भी इससे कुमारपाल तथा उसके पूर्वजों के विषय में कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त हो जाती है इसलिए इसे ऐतिहासिक काव्य कहते हैं। इस काव्य से निम्नलिखित ऐतिहासिक बातें ज्ञात होती हैं :

१. भीमदेव मूलराज का प्रतापी वंशज था। उसकी दो पत्नियों से दो पुत्र कर्णराज और क्षेमराज हुए थे। (प्रथम सर्ग)

२. कर्णराज अपने पुत्र जयसिंहदेव को राज्य देकर आशापल्ली चला गया। वह तत्कालीन मालवनरेश को दण्डित करना चाहता था किन्तु उसका शीघ्र देहान्त हो गया। जयसिंह ने अपने पिता की प्रतिज्ञा पूरी की पर उसने मालवराज को पुनः प्रतिष्ठित कर दिया। उसने कर्णाट, लाट, मगध, कलिंग, वंग, कश्मीर, कीर, मरु, सिन्धु आदि देशों को जीतकर अपने राज्य का विस्तार किया। (द्वितीय सर्ग)

३. क्षेमराज के पुत्र त्रिभुवनपाल के तीन पुत्र थे—कुमारपाल, महीपाल, कीर्तिपाल। जयसिंह ने कुमारपाल के पिता का वध करा दिया जिससे उसे भी जन्मभूमि छोड़कर देशान्तरों में भटकना पड़ा। (द्वितीय सर्ग)

४. जयसिंह के पश्चात् कुमारपाल सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने शाकंभरीनरेश अर्णोराज को परास्त किया था। उसके मन्त्रीपुत्र अम्बड ने कोंकणराज मल्लिकार्जुन का प्राणान्त कर बहुत-सा धन प्राप्त किया। गजनी के बादशाह ने कुमारपाल पर आक्रमण किया किन्तु हेमचन्द्र ने मंत्रबल से उसे बाँध दिया। डाहलनरेश कर्ण ने भी उस पर चढ़ाई करने की योजना बनाई थी किन्तु ऐसा करने के पूर्व ही वह मर गया। (३, ६, १० सर्ग)

५. चालुक्यों की कुलदेवी कण्टेश्वरी थी।

६. कुमारपाल को हेमचन्द्र ने जैनधर्म में दीक्षित किया था। (पञ्चम सर्ग)

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सं० १९७३; जिनरत्नकोश, पृ० ९२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. हेमचन्द्र एवं कुमारपाल तथा जैन मन्त्री वाग्भट, आम्रभट आदि द्वारा जैनधर्म की प्रभावनाविषयक चर्चाएँ जयसिंहसूरि के कुमारपालभूपालचरित के समान ही हैं।

इस काव्य को अन्य महाकाव्योचित लक्षणों द्वारा भी कवि ने सजाया है। इस काव्य में वीररस की प्रधानता है फिर करुण, रौद्र, वीभत्स तथा अद्भुत रसों को भी यथोचित स्थान मिला है। अलंकारों में शब्दालंकार को अधिक अपनाया गया है। अर्थालंकारों का भी प्रयोग भावाभिव्यक्ति में सहायक के रूप में किया गया है, बलात् नहीं। काव्य के अधिकांश सर्गों और वर्गों में कवि ने नाना वृत्तों का प्रयोग किया है। यत्र-तत्र छन्दपरिवर्तन द्रुतगति से हुआ है पर ऐतिहासिक काव्य में यह कविकौशल का अपव्यय है। कुल मिलाकर २४ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता चारित्रसुन्दरगणि हैं। इनका अपरनाम चारित्रभूषण भी है। इनके गुरु का नाम भट्टारक रत्नसिंहसूरि है जो तपोगच्छ के आचार्य थे। इनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार है: विजयेन्दुसूरि, क्षेमकीर्ति, रत्नाकरसूरि, अभयनन्दि, जयकीर्ति, रत्ननन्दि या रत्नसिंह। प्रस्तुत काव्य की रचना सं० १४८७ में की गई है। इसकी रचना में प्रेरक शुभचन्द्रगणि थे। चारित्रसुन्दरगणि की अन्य रचनाओं में शीलदूत (वि० सं० १४८७), महीपालचरित तथा आचारोपदेश उपलब्ध हैं।

वस्तुपालचरित :

१५वीं शती में कुमारपालचरित्र की भांति वस्तुपाल के चरित्र पर प्रस्तुत काव्य एक बड़ी रचना है। इसमें आठ प्रस्ताव हैं और ग्रन्थाग्र ४८३९ श्लोकप्रमाण है।[1]

इस ग्रन्थ में वस्तुपाल का विस्तारपूर्वक जीवन दिया गया है। यह इसलिए सूक्ष्म अध्ययन योग्य है क्योंकि चरित्रनायक की मृत्यु के दो सौ वर्ष बाद रचित होने पर भी उसके जीवन के कितने ही तथ्य प्राप्त होते हैं जो किसी भी समकालिक लेखक ने नहीं दिये हैं। चरित्रकार ने वस्तुपाल के जीवन और कार्यों से

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४५; हीरालाल हंसराज, जामनगर; इसका गुजराती अनुवाद जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर से सं० १९७४ में प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध रखनेवाली अपने समय में उपलब्ध पूर्ववर्ती सभी ऐतिहासिक सामग्री का उपयोग किया है। मुनि जिनविजय के कथनानुसार कल्हण की राजतरंगिणी का जैसा ऐतिहासिक मूल्य है उसी प्रकार इस काव्य का भी है। इस प्रकार के दूसरे ग्रन्थों में जैसी अतिशयोक्तियाँ मिलती हैं उनसे अपेक्षाकृत यह मुक्त है। परन्तु ग्रन्थकार ने एक महत्त्वपूर्ण बात का जैसा उल्लेख होना चाहिए, नहीं किया। मेरुतुंगाचार्य ने प्रबन्धचिन्तामणि में तथा अन्य पुरातन प्रबन्धों में एवं गुजराती रासों में स्पष्ट लिखा है कि वस्तुपाल-तेजपाल की माता कुमारदेवी का आशराज के साथ पुनर्विवाह हुआ था परन्तु जिनहर्ष ने अपने ग्रन्थ में इसका आभास भी नहीं दिया। लगता है कवि के समय में पुनर्विवाह सामाजिक दृष्टि से हेय समझा जाने लगा था।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इसके रचयिता जिनहर्षगणि हैं। इनके गुरु जयचन्द्रसूरि थे। इस ग्रन्थ की रचना चित्तौड़ में सं० १४९७ में हुई थी। इनकी अन्य रचनाओं में रत्नशेखरकथा, आरामशोभाचरित्र, विंशतिस्थानकविचारामृतसंग्रह और प्रतिक्रमणविधि आदि मिलती हैं। इनके ग्रन्थ 'हर्षांक' से अंकित हैं।

राजाओं और मन्त्रियों के अतिरिक्त दानी सेठों, महाजनों के चरित पर लिखे गये जैन काव्यों से भी ऐतिहासिक महत्त्व की सूचनाएँ मिलती हैं।

जगडूचरित :

इसका परिचय पहले दे चुके हैं।[1] इससे निम्नलिखित जानकारी मिलती है :

१. सं० १३१२ से १३१५ तक गुजरात में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा था जिसमें वीसलदेव जैसे समृद्ध राजाओं के पास भी अन्न नहीं रहा था।

२. सं० १३१२ से १३१५ में गुजरात में वीसलदेव का, मालवा में मदनवर्मा का, दिल्ली में मोजदीन (नसीरुद्दीन) का तथा काशी में प्रतापसिंह का शासन था।

३. पार प्रदेश का शासक पीठदेव अणहिल्लपुर के शासक लवणप्रसाद का समकालीन था।

४. उस समय गुजरात का समुद्री व्यापार उन्नति पर था। भारतीय जहाज समुद्र पार के देशों में आते-जाते थे।

१. परिचय के लिए देखें पृ० २२७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. वीसलदेव के दरबार में सोमेश्वर आदि कवि थे।

सुकृतसागर या पेथडचरित :

इसका परिचय पहले दिया गया है।[1] पेथड सेठ मालवा के परमारनरेश जयसिंह द्वितीय द्वारा राजचिह्न से सम्मानित हुआ था। इसका सम्मान देवगिरि और गुजरात के तत्कालीन दरबारों में भी था। देवगिरि के राजा ने उसे मन्दिर-निर्माण के लिए बहुत भूमि दान में दी थी। उसके पुत्र झाझण ने गुजरातनरेश सारंगदेव (१२७४-९६ ई०) के साथ भोजन किया था। पेथड के पिता ने ४५ जैनागमों की अनेक हस्तप्रतियाँ भड़ौच, देवगिरि आदि के सरस्वती भण्डारों में भेंट की थीं।

प्रबन्ध-साहित्य :

चरित और कथा-साहित्य से सम्बद्ध गुजरात और मालवा के क्षेत्र में जैन प्रतिभा ने एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य का निर्माण किया जो 'प्रबंध' साहित्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह प्रबंध-काव्यों से भिन्न है। प्रबंध एक प्रकार का ऐतिहासिक या अर्धऐतिहासिक कथानक है जो सरल संस्कृत गद्य और कभी-कभी पद्य में भी लिखा गया है। प्रबन्धचिन्तामणि, प्रबन्धकोष, भोजप्रबन्ध, विविधतीर्थकल्प, प्रभावकचरित, पुरातनप्रबन्धसंग्रह आदि ग्रन्थ इस साहित्य के उदाहरण हैं। प्रबन्धकोश के रचयिता राजशेखरसूरि ने चरित और प्रबन्ध का अन्तर बतलाते हुए लिखा है कि **'श्रीवृषभवर्धमानपर्यन्तजिनानां, चक्र्यादीनां राज्ञां ऋषीणां चार्यरक्षितान्तानां वृत्तानि चरितानि उच्यन्ते। तत्पश्चात्काल-भाविनां तु नराणां वृत्तानि प्रबंधा इति'** पर उनके इस कथन का कोई प्राचीन आधार नहीं और यह विभेद साहित्यकारों ने पालन भी नहीं किया। उदाहरण के लिए कुमारपाल, वस्तुपाल, जगडू आदि के चरितों को चरित कहा गया है और प्रबन्ध भी, यथा जिनमण्डनगणि की रचना कुमारपालप्रबन्ध और जयसिंह-सूरि की रचना कुमारपालभूपालचरित या अन्य ग्रन्थ जावडचरित्र और जावड-प्रबन्ध आदि। प्रबन्धों के विषय को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वे इस प्रकार के निबन्ध हैं जो शासक, विद्वान्, साधु, गृहस्थ एवं तीर्थ तथा किसी घटना सम्बन्धी ऐतिहासिक जानकारी को लेकर लिखे गये हैं। जर्मन विद्वान् बुहलर के शब्दों में प्रबन्ध लिखे जाने का उद्देश था धर्मश्रवण के लिए

---

१. परिचय के लिए देखें पृ० २२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्र हुए समाज को धर्मोपदेश देना और जैनधर्म के सामर्थ्य और महत्त्व को प्रकट करने के लिए साधुओं द्वारा दृष्टान्तरूप उचित सामग्री प्रस्तुत करना और लौकिक विषय को लेकर श्रोताओं का रुचिर चित्तविनोद कराना। फिर भी कुछ प्रबन्ध बड़ी विचित्र कल्पनाओं, भद्दी बातों, तिथिविपर्यास और अनेक भूलों और त्रुटियों से भरे हैं। इसलिए प्रबन्धों को वास्तविक इतिहास या जीवन-चरित नहीं समझना चाहिए अपितु ऐसी सामग्री का इतिहास-रचना में विचार-पूर्वक उपयोग करना चाहिए। उनकी एकदम अवहेलना भी ठीक नहीं क्योंकि प्रबन्धों का अधिकांश भाग अभिलेखों एवं विश्वसनीय स्रोतों से समर्थित है।[1] भारत का मध्यकालीन इतिहास इनमें निहित सामग्री का उपयोग किये बिना पूर्ण भी नहीं समझा जा सकता।

इस प्रकार के साहित्य का सूत्रपात तो हेमचन्द्राचार्य ने कर दिया था और उनके अनुसरण पर प्रभाचन्द्र ने प्रभावकचरित लिखा और पीछे अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इन प्रबन्धों में हमें ऐतिहासिक महत्त्व के राजा, महाराजा, सेठ और मुनियों के सम्बन्ध में प्रचलित कथा-कहानियों का संग्रह मिलता है। इनके वर्णनों की अभिलेखों और अन्य साहित्यिक आधारों से जाँच-पड़ताल करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ये बहुधा ऐतिहासिक तथ्य के समीप हैं। इस विषयक कुछ कृतियों का परिचय यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

प्रबंधावलि :

उपलब्ध प्रबन्धों में सर्वप्रथम हमें जिनभद्रकृत प्रबन्धावलि मिलती है जिसमें ४० गद्य प्रबन्ध हैं जो अधिकांशतः गुजरात, राजस्थान, मालवा और वाराणसी से सम्बन्धित ऐतिहासिक व्यक्तियों और घटनाओं पर हैं और कुछ तो लोककथाओं को लेकर लिखे गये हैं। जिस रूप में यह प्राप्त हुई है वह पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह वस्तुपाल महामात्य के जीवनकाल में उसके पुत्र जैत्रसिंह के अनुरोध पर सं० १२९० में रची गई थी परन्तु इसमें कुछ प्रबन्ध ऐसी घटनाओं पर भी हैं जो वस्तुपाल की मृत्यूपरान्त घटी थीं। इसमें एक प्रबन्ध अर्थात् 'वलभीभंगप्रबन्ध' प्रबन्धचिन्तामणि से अक्षरशः नकल उतार लिया गया है। इसके दो प्रबन्धों पादलिप्ताचार्यप्रबन्ध एवं रत्नश्रावकप्रबन्ध को प्रबन्धकोश से लिया गया है। प्रबन्धावलि की रचना-शैली बड़ी सरल और सीधी है जब कि प्रबन्धकोश की शैली अलंकारिक और उन्नत है। इससे यह बात सिद्ध होती

1. Life of Hemachandra (Buhler), pp. 3-4.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि प्रबन्धकोश के रचयिता ने जिनभद्र की प्रबन्धावलि से ही ये दोनों प्रबंध अपने ग्रन्थ में लिये हैं। वैसे देखा जाय तो उत्तरकालीन प्रबन्धग्रन्थ अपने कुछ विषयों के लिए इस प्रबन्धावलि के ऋणी हैं।[1] इसे मुनि जिनविजयजी ने अपने ग्रन्थ 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' के अन्तर्गत प्रकाशित किया है। इसमें उपलब्ध पृथ्वीराजप्रबन्ध में चन्दवरदाई के तथाकथित पृथ्वीराजरासो काव्य के बीज वर्तमान हैं तथा आधुनिक लोकभाषाओं और साहित्य के भी बीज मिलते हैं।

इसकी भाषा[2] वह संस्कृत है जो एक लोकभाषा का रूप लिए हुए है। यह न केवल प्राकृत के प्रयोगों से ही ओत-प्रोत है अपितु तात्कालिक क्षेत्रीय भाषा के शब्दों से भी। जिसे प्राकृत और प्राचीन तथा अर्वाचीन गुजराती भाषा का ज्ञान नहीं वह इसके प्रबन्धों, कितने ही शब्दों, वाक्यों एवं भावों को नहीं जान सकता। गुजरात के जैन लेखकों ने इस भाषा को अपने कथा एवं प्रबन्ध ग्रन्थों में खूब व्यवहृत किया है। गुजरात और मध्य भारत के कुछ भागों को छोड़ ऐसी भाषा का प्रयोग अन्यत्र नहीं हुआ है। यह उक्त प्रदेशों के राजकार्यों और राजदरबारों की भाषा भी रही है। यह भाषा गुजरात में मुसलमानों के राजस्थापन के पश्चात् भी कानूनी लेखपत्रों की भाषा रही है जो न्यायालयों में रजिस्ट्री करने के लिए स्वीकृत किये जाते थे। यह उन पण्डितों की भाषा नहीं है जो पाणिनि या हेमचन्द्र प्रणीत व्याकरणों के नियमों से चिपके रहते थे। इस भाषा की तुलना ईसा की प्रथम शताब्दियों में लिखे गये बौद्ध ग्रन्थों महावस्तु और ललितविस्तर आदि की भाषा से की जा सकती है जिसे 'गाथा संस्कृत' कहते हैं। गुजरात के जैन लेखकों की इस भाषा का पृथक् नाम तो नहीं दिया गया पर इसे हम वर्नाक्यूलर संस्कृत या सर्वसाधारण में समझी जानेवाली संस्कृत कह सकते हैं।

रचयिता—इस प्रबन्धावलि के रचयिता जिनभद्र हैं जो उदयप्रभसूरि के शिष्य थे। इनके विषय में विशेष जानकारी नहीं मिलती। जिनभद्र ने ऐतिहासिक और पौराणिक कथानकों के संग्रह स्वरूप यह प्रबन्धावलि वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के पठन-पाठन के लिए तैयार की थी।

---

१. पुरातनप्रबन्धसंग्रह का प्रास्ताविक वक्तव्य, पृ० ८.

२. इसकी भाषा और शब्दों के लिए देखें : महामात्य वस्तुपाल का साहित्य-मण्डल, पृ० २०३-४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभावकचरित :

इस ग्रन्थ का परिचय हम पहले दे चुके हैं।[1] उसमें वर्णित २२ आचार्यों में से वीरसूरि, शान्तिसूरि, महेन्द्रसूरि, सूराचार्य, अभयदेवाचार्य, वीरदेवगणि, देवसूरि और हेमचन्द्रसूरि ये आठ गुजरात के चौलुक्यों के समय अणहिलपाटन में विद्यमान थे और कितने गुजरात के राजाओं के परिचय में आये थे और कितनों ने गुजरात के उत्कर्ष के लिए महत्त्वपूर्ण योग दिया था। इन आचार्यों के कतिपय कार्य-कलापों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि देने के लिए बहुत-से राजाओं की प्रसंग-कथाएँ दी गई हैं जिनमें प्रमुख हैं : भोज, भीम प्रथम, सिद्धराज और कुमारपाल। भोज और भीम की प्रसंग-कथाओं में तो कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है पर हेमचन्द्राचार्य का चरित सिद्धराज और कुमारपाल के राज्यों के विवरण के बिना सम्भव नहीं। इसलिए ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का 'हेमचन्द्रसूरि-चरित' बहुत महत्त्व का है।

वैसे इस कृति में गुजरात से लेकर बंगाल तक पूरे उत्तर भारत का पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया गया है इसलिए यह विविध सूचनाओं की खानि है फिर भी इन सूचनाओं का उपयोग इतिहास में बड़ी शोध और जाँच-पड़ताल के साथ करना चाहिए। यदि इसका लेखक मौलिक कृतियों पर ही निर्भर होता, जैसा कि उसने बहुत हद तक किया है, तो भारतीय इतिहास के उपादानों में इसकी कीमत राजतरंगिणी से कम न होती बल्कि अधिक ही क्योंकि कल्हण की कृति केवल कश्मीर से सम्बन्धित है जब कि यह कृति पूरे उत्तर भारत से। परन्तु दुर्भाग्य से ऐतिहासिक सामग्री में बहुत-सी किंवदन्तियाँ और कहानियाँ मिला दी गई हैं, इससे उन सूचनाओं का बड़ी सावधानी से उपयोग करना चाहिए।

उदाहरण के लिए 'बप्पभट्टिसूरिचरित' को ही लें। इसमें निम्नलिखित राजनीतिक इतिहास की सामग्री मिलती है :

१. आम नागावलोक कन्नौज का राजा था। वह गौडराजा धर्मपाल का प्रतिद्वन्द्वी तथा भोज (मिहिर) का पितामह था। उसकी मृत्यु वि० सं० ८९० में हुई थी। वह बप्पभट्टिसूरि का मित्र एवं शिष्य था। इसे हम गुर्जरप्रतिहारवंशी 'नागभट द्वितीय' मान सकते हैं।

---

1. देखें पृ० २०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. धर्म धर्मपाल नाम से गौड देश का पालनरेश था। धर्मपाल के दरबार में वर्धमानकुंजर नाम का एक बौद्ध पण्डित था। धर्मपाल एक बौद्ध नरेश था यह तो इतिहासप्रसिद्ध है। वर्धमानकुंजर नामक बौद्ध पण्डित का नाम तो ज्ञात नहीं पर कुंजरवर्धन नामक बौद्ध यक्ष का उल्लेख मिलता है।

३. कन्नौजनरेश यशोवर्मा को आम का पिता लिखा है जो इतिहासविरुद्ध लगता है। आम (नागभट्ट) के पिता का नाम वत्सराज था। यशोवर्मा वह हो सकता है जिसने किसी गौडराजा को मारा था तथा जो कश्मीर के मुक्तापीड ललितादित्य द्वारा वि० सं० ७९७ में मारा गया था। वह गौडवहो के रचयिता वाक्पतिराज का समकालीन या पूर्ववर्ती था पर बप्पभट्टि का समकालीन नहीं था क्योंकि बप्पभट्टि उसकी मृत्यु के तीन वर्ष बाद उत्पन्न हुए थे। ग्रन्थकार को किसी पूर्ववर्ती से यह गलत सूचना मिली और यशोवर्मा तथा मुक्तापीड को भ्रान्त रूप में चित्रित किया।

४. वाक्पतिराज—गौडवहो के लेखक—भी बप्पभट्टि के समकालीन किसी तरह हो सकते हैं यदि यह माना जाय कि यशोवर्मा के यश का वर्णन उसके मरने के बाद उक्त कवि ने अपने काव्य का विषय बनाया था।

५. गुजरात के नरेश जितशत्रु और राजगृह के नृप समुद्रसेन के विषय में इतिहास कुछ नहीं जानता है। हो सकता है कि वे कोई जागीरदार रहे हों।

६. दुण्डुक नागावलोक का पुत्र था और भोज का पिता। हो सकता है यह रामभद्र का ही भद्दा नाम हो।

७. दुण्डुक का पुत्र और नागावलोक का पौत्र भोज था जिसे मिहिरभोज माना जा सकता है।

इसी तरह अन्य चरितों का विश्लेषण प्रस्तुत करने से बहुमूल्य ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है। समग्र का विवेचन यहाँ सम्भव नहीं।

प्रबंधचिन्तामणि :

यह[1] प्रबन्ध साहित्य का तीसरा ग्रन्थ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ पाँच प्रकाशों में

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६५; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, १; उसी ग्रन्थमाला से हजारीप्रसाद द्विवेदीकृत हिन्दी अनुवाद; ० रामचन्द्र दीनानाथ शास्त्रीकृत गुजराती अनुवाद बम्बई से सं० १९४५ में प्रकाशित; सी० आर० टावने कृत अंग्रेजी अनुवाद बिब्लिओथेका इण्डिका सिरीज, कलकत्ता से १८९९-१९०१ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभक्त है। सभी प्रकाशों में कुल मिलाकर ११ प्रबन्ध हैं जिनमें ६ तो प्रथम प्रकाश में और २ चतुर्थ प्रकाश में तथा शेष में एक-एक प्रबन्ध है। ये प्रबन्ध भी सामान्यतः लघुप्रबन्धों के संग्रहरूप में हैं।

प्रथम प्रकाश के प्रथम तीन प्रबन्धों में विक्रमादित्य, सातवाहन और भूय-राज (प्रतिहार भोज ?) की प्रसंगकथाएँ दी गई हैं। चतुर्थ प्रबन्ध वनराजादि-प्रबन्ध कहलाता है जिसमें चापोत्कट (चावड़ा) वंश का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया गया है। मूलराजादिप्रबन्ध नामक पाँचवें में चौलुक्यों का इतिहास प्रारम्भ होता है और दुर्लभराज के राज्य तक जाता है। यथार्थतः इसमें मूलराज के तत्काल तीन उत्तराधिकारियों के नाम और तिथियों के अतिरिक्त उनके विषय में अल्प ही कहा गया है। छठे मुंजराजप्रबन्ध में परमारनृप वाक्पति मुंज विषयक प्रसंगकथाएँ दी गई हैं।

द्वितीय प्रकाश भोज-भीमप्रबन्ध कहलाता है। यह भीम और भोज के आपसी सम्बन्धों का प्रबन्ध है जिसमें सेनाध्यक्ष कुलचन्द्र दिगम्बर, माघ पण्डित, धनपाल, शीता पण्डित, मयूर-बाण-मानतुंगप्रबन्ध तथा अन्य प्रबन्ध भी हैं। तीसरा प्रकाश सिद्धराजादिप्रबन्ध कहलाता है। इसमें भीम के अन्तिम दिनों तथा कर्ण के राज्य का कुछ पृष्ठों में वर्णन कर अधिकांश में सिद्धराज के राज्य की घटनाओं का वर्णन है। इसमें सम्मिलित कुछ लघुप्रबंधों के नाम इस प्रकार हैं: लीलावैद्य, सान्तूमंत्री, मयणल्लदेवी, मालवविजय, सिद्धहेम, रुद्रमाल, सहस्रलिंगताल, नवघणयुद्ध, रैवतकोद्धार, शत्रुञ्जययात्रा, देवसूरि तथा पापघट आदि। चतुर्थ प्रकाश में दो विशाल प्रबन्ध हैं। पहले में कुमारपाल के राज्य का वर्णन है। इसमें उसके जन्म, माता-पिता, पूर्वजीवन, राज्यप्राप्ति और जैनधर्म-स्वीकरण आदि का विस्तार से वर्णन है। इसी में हेमचन्द्र और कुमारपाल सम्बन्धी कई कथाएँ भी हैं। अन्त में अजयदेव (अजयपाल) के कुकृत्यों का तथा मूलराज द्वितीय एवं भीम द्वि० के राज्यों का थोड़ा वर्णन कर वीरधवल की राज्यपदप्राप्ति वर्णित है। इसी प्रकाश के दूसरे प्रबन्ध वस्तुपाल-तेजःपाल-प्रबन्ध में दोनों भ्राताओं के कार्यकलापों का वर्णन है। इसमें उन दोनों भाइयों के जन्मादिवृत्त, शत्रुञ्जयादि-तीर्थयात्रा, शंखसुभट के साथ युद्ध आदि का वर्णन है। पञ्चम प्रकाश प्रकीर्णकप्रबन्ध कहलाता है जिसमें ऐतिहासिक व्यक्तियों की प्रसंगकथाएँ दी गई हैं। उनमें नन्दराज, शिलादित्य, वलभीभंग, पुंजराज, गोवर्धन, लक्ष्मणसेन, जयचन्द्र, जगद्देव-परमर्द्दि, पृथ्वीचन्द्र-प्रबन्ध, वराहमिहिर, भर्तृहरि, वैद्य वाग्भट, क्षेत्राधिप (क्षेत्रपाल) आदि के संक्षिप्त वर्णन हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कृति के निर्माण में ग्रन्थकार का स्पष्ट उद्देश्य उन बहुधा श्रुत पुरानी कथाओं को, जो कि बुधजनों के चित्त को तब प्रसन्न न कर रही थीं, पुनः स्थापित करना है :

भृशं श्रुतत्वान्न कथाः पुराणाः प्रीणन्ति चेतांसि तथा बुधानाम् ।
वृत्तैस्तदासन्नसतां प्रबन्धचिन्तामणिग्रन्थमहं तनोमि ॥

इस ग्रन्थ में अधिकांश रोचक प्रसंग-कथाएँ हैं। इन प्रसंग-कथाओं का मूल संदिग्ध है और अनेक तो काल्पनिक हैं। इस ग्रन्थ में कुछ बड़े महत्त्व के ऐतिहासिक उपाख्यान भी हैं जिन्हें हम विक्रम सं० ९४०-१२५० तक का गुजरात का सामान्य इतिहास मान सकते हैं। कर्नल किन्लाक फार्वस ने अपने 'रासमाला' नामक गुजरात के इतिहास के प्रथम बड़े भाग का मुख्य आधार इसी ग्रन्थ को बनाया था। बाम्बे गजेटियर के प्रथम भाग में जो अणहिलपुर का इतिहास दिया गया है उसका मुख्य आधार यही प्रबन्धचिन्तामणि है। गुजरात के इतिहास के लिए प्रबन्धचिन्तामणि जिस सामग्री की पूर्ति करता है वैसी सामग्री दूसरे ग्रन्थ से नहीं मिलती। इस ग्रन्थ को और कश्मीर के इतिहास के लिए राजतरंगिणी को छोड़ भारतवर्ष के अन्य किसी प्रान्त के लिए इतिहास ग्रन्थ नहीं मिलते। अणहिलपुर के सम्बन्ध में जो बातें इसमें दी गई हैं प्रायः वे सभी विश्वसनीय हैं। इसमें अणहिलपुर के राजाओं का जो राज्यकाल बताया गया है वह अन्य ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्वीय सामग्री से समर्थित होता है। ग्रन्थकार ने गुजरात को इस काल में विशेष प्रसिद्धि करानेवाले और गुजरात के गौरव की वृद्धि में भाग लेनेवाले पुरुषों के प्रबन्धों को एकत्र करने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थकर्ता स्वयं एक जैन आचार्य थे और जैन श्रोताओं का मनोरंजन करने के लिए ग्रन्थ-रचना करना उनका मुख्य उद्देश्य था। इसलिए यह स्वाभाविक है कि जैन तथ्यों की ओर उनका पक्षपात हो। फिर भी गुजरात के समुचित प्रभाव पर उनका अनुराग था। इससे जैनों से थोड़ा भी सम्बन्ध न रखनेवाली अनेकों बातें इसमें संगृहीत हैं। वे केवल इतिहाससंग्रह की दृष्टि से अपने संग्रह में रखी गई हैं।

इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें अपने युग (१३०४ ई०) की, जिसका कि लेखक को प्रत्यक्ष ज्ञान था, उपेक्षा की गई है और इसके बदले उस काल पर लिखा गया है जिसके लिए वह मौखिक परम्परा और पूर्ववर्ती रचनाओं पर निर्भर रहा है। प्रबन्धचिन्तामणि में गुजरात का इतिहास वास्तव में कुमार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाल की मृत्यु वि० सं० १२२९ के साथ बन्द हो जाता है। बघेलों के विषय[1] में वह कुछ नहीं लिखता सिवाय इसके कि भीम द्वितीय के बाद वह आया। यही इसका दोष है। यदि उसने अपने समय का इतिहास लिखा होता तो उसका यह ग्रन्थ कल्हण के ग्रन्थ[2] की कोटि का माना जाता।

इस प्रबन्ध के लेखक ने इतिहास लिखने में यह अनुभव अवश्य किया कि राजाओं के वंश और उनकी तिथियाँ बड़े महत्त्व की हैं। यद्यपि प्रबन्धचिन्तामणि में दी गई अधिकांश तिथियाँ ठीक नहीं हैं फिर भी वे कुछ महीनों या वर्ष से अशुद्ध हैं, विशेष नहीं। सम्भवतः प्राचीन दस्तावेजों को देखकर उसने राजा के राजपद पाने का वर्ष तो जाना परन्तु ठीक तिथि नहीं। यदि उसे इस सूचना के कैसे भी स्रोत नहीं मिल सके तो तिथि के सम्बन्ध में अनुमान करता हुआ सा मालूम होता है और विश्वास करने लायक एक कथा रच देता है। फिर भी इतना तो मालूम होता है कि वह तिथियों के महत्त्व को समझता था। जबकि दूसरी ओर हम देखते हैं कि द्वयाश्रयकाव्य, कीर्तिकौमुदी (सोमेश्वरकृत) व अन्य कृतियों में तिथिसम्बन्धी एक भी निर्देश नहीं दिया गया।

इस प्रबन्ध के रचयिता ने एक प्रकार से इतिहास लिखने की आवश्यकता समझी थी। उसकी सभी प्रसंगकथाओं का ताना-बाना इतिहास को अन्तर्भाग बनाकर हुआ, उनके क्रम में कोई रुकावट नहीं और सभी तथ्य साधारणतः निश्चित कालक्रमरूप में रखे गये हैं। ग्रन्थकार की प्रस्तुत करने की पद्धति भी ठीक है और उसने चौलुक्यों के इतिहास के इस महत्त्वपूर्ण भाव को भी समझ लिया था कि उनके इतिहास का लेखन मालवा के परमारों के इतिहास को बिना बतलाये असम्भव है।

रचयिता—संस्कृत साहित्य में इस अपूर्व कृति के रचयिता मेरुतुंगसूरि हैं जो नागेन्द्रगच्छ के चन्द्रप्रभ के शिष्य थे। इस ग्रन्थ की रचना वढमाण (वर्धमान-

---

१. यह दूसरे रूप में बतलाता है कि बघेलवंश जैनधर्म का दृढ़ समर्थक नहीं था, जैसा कि कुछ काल के लिए वह माना जाता है।

२. यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि कल्हण की राजतरंगिणी के प्रारम्भिक सर्ग सदोष हैं जब कि पिछले सर्ग जिनमें कल्हण उन घटनाओं का वर्णन करता है जिनका उसे या उसके पिता को प्रत्यक्ष ज्ञान था, ठीक इतिहास बतलाते हैं। यह हमें प्रबन्धचिन्तामणि में नहीं मिलता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुर) में सं० १३६१ में की गई है। इनकी अन्य कृतियाँ विचारश्रेणी या स्थविरावली तथा महापुरुषचरित[1] हैं।

विविधतीर्थकल्प :

इसका परिचय[2] पहले दिया गया है। इसमें अनेक तीर्थों के प्रसंग में अनेक ऐतिहासिक बातें आ गई हैं जो पश्चात्वर्ती अनेकों प्रबन्धों की उपादानभूत हैं। प्रबन्धकोश में प्रभावकचरित और प्रबन्धचिन्तामणि से भी अधिक सामग्री विविधतीर्थकल्प से ली गई है, यहाँ तक कि कुछ पूरे प्रकरण या प्रबन्ध ज्यों के त्यों शब्दशः उद्धृत कर लिये गये हैं। सातवाहनप्रबन्ध, वंकचूलप्रबन्ध और नागार्जुनप्रबन्ध ये तीनों प्रकरण तीर्थकल्प की पूरी नकल हैं। सातवाहन नृप पर २३वाँ प्रतिष्ठानपत्तनकल्प, ३३वाँ प्रतिष्ठानपुरकल्प, ३४वाँ प्रतिष्ठानपुराधिपति-सातवाहनचरित ये तीन कल्प हैं। वंकचूल का वर्णन ढींपुरीतीर्थकल्प (४३वें) में तथा नागार्जुन का वृत्तान्त स्तंभनककल्प-शिलोञ्छ (५९वें) में है। यह पिछला प्रबन्ध तीर्थकल्प में प्राकृत भाषा में रचा गया है जिसे प्रबन्धकोशकार ने शब्दशः संस्कृत में अनूदित कर लिया है। विविधतीर्थकल्प के रचयिता ने सम्भवतः प्रबन्धचिन्तामणि से उक्त प्रकरण को संस्कृत से प्राकृत में अनुवाद करके लिख लिया हो ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि दोनों की शब्द-रचना प्रायः एक-सी है।

ग्रन्थकार जिनप्रभसूरि अपने समय के बहुश्रुत विद्वान् एवं प्रभावशाली पुरुष थे। भारत की संस्कृति के महान् संकटकाल में वे विद्यमान थे। उनके समय में भारतवर्ष के हिन्दू राज्यों का सामूहिक पतन हुआ था और इस्लामी सत्ता का स्थायी शासन जम गया था। गुजरात की प्राचीन सांस्कृतिक विभूति का आखिरी पर्दा उनकी नजरों से गुजर रहा था।

विविधतीर्थकल्प के उल्लेखानुसार मन्त्री माधव की प्रेरणा से ही अलाउद्दीन खिलजी ने अपने भाई उलुगखाँ को गुजरात विजय करने के लिए भेजा था। खिलजी वंश का शीघ्र विनाश होने के बाद गुजरात का शासन सुलतान मुहम्मद तुगलक ने सम्हाला। जिनप्रभसूरि का इस सुलतान से प्रत्यक्ष परिचय था और

१. पृष्ठ ७७ में परिचय दिया गया है।
२. परिचय के लिए देखें : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, पृ० ३२१-३२४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह इनका बड़ा सम्मान करता था। वह इनकी कितनी ही चमत्कारिक बातों से प्रभावित था। बादशाह ने उन्हें कई फरमान दिये जिससे उन्होंने हस्तिनापुर, मथुरा आदि तीर्थों की ससंघ यात्राएँ और अनेक धर्मोत्सव किये और राजसभा में उन्होंने वाद-विवाद भी किये। उनके शिष्य जिनदेवसूरि बहुत समय तक सुल्तान के साथ रहे और सम्मानित हुए। इनके कहने से सुल्तान ने कन्नान नगर की महावीर-प्रतिमा को दिल्ली में स्थापित करवाया।[1] यह प्रतिमा कुछ दिन तुगलकाबाद के शाही खजाने में भी रही। एक प्रोषधशाला भी उस समय सुल्तान की आज्ञा और सहायता से दिल्ली में बनी। सुल्तान की माता मखदूमे-जहाँ बेगम भी इन जैन गुरुओं का आदर करती थी।

इस तरह अपने इस ग्रन्थ में यहाँ-वहाँ जिनप्रभसूरि ने कितनी ही ऐतिहासिक घटनाओं की उपयोगी सूचना दी है। वि० सं० ८४५ में म्लेच्छ राजा (अरब शासक) द्वारा वलभी के नाश का उल्लेख इसी में दिया गया है। सं० १०८१[2] में महमूद गजनवी के गुजरात के ऊपर आक्रमण का उल्लेख समग्र साहित्य में एकमात्र इसी में मिलता है। इसी तरह अन्य अनेक विश्वसनीय ऐतिहासिक बातें इसमें मिलती हैं।

प्रबन्धकोश :

यह २४ प्रबन्धों का संग्रह-ग्रन्थ है इसलिए इसका दूसरा नाम चतुर्विंशति-प्रबन्ध[3] भी है। इसमें १० जैन आचार्यों, ४ कवियों और ७ राजाओं तथा ३ राजमान्य पुरुषों के चरित हैं।

१० आचार्यों में भद्रबाहु से लेकर हेमचन्द्र तक एवं ४ कवि पण्डितों में हर्ष, हरिहर, अमरचन्द्र और मदनकीर्ति सभी ऐतिहासिक पुरुष हैं। ७ राजाओं में सातवाहन, वंकचूल, विक्रमादित्य, नागार्जुन, वत्सराज उदयन, लक्ष्मणसेन और मदनवर्मा का चरित ग्रथित है। इनमें से अन्तिम दो—लक्ष्मणसेन और मदन-वर्मा का समय मध्यकाल का उत्तर भाग है और इतिहास ग्रन्थों में उनके विषय में बहुत लिखा मिलता है। वत्सराज उदयन जैन, बौद्ध और ब्राह्मण स्रोतों से

---

१. कन्यानयनीयमहावीरप्रतिमाकल्प.

२. सत्यपुरतीर्थकल्प.

३. जिनरत्नकोश, पृ० २६४; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमांक ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुज्ञात है। महाकवि भास आदि ने इस पर कई नाटक लिखे हैं। सातवाहन[1] और विक्रमादित्य भारतीय साहित्य और जनश्रुति में बहुत प्रसिद्ध हैं। विक्रमादित्यप्रबन्ध की सामग्री को 'गुणवचनद्वात्रिंशिका' में वर्णित बातों से मिलाकर सिद्ध किया गया है कि वह गुप्तवंशी चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य था।[2] वंकचूल (पुष्पचूल-पुष्पचूला[3]) जैन कथा-कहानियों का राजा ज्ञात होता है। उसकी ऐतिहासिकता ज्ञात नहीं होती। नागार्जुन की कथा ऐतिहासिक राजा के रूप में सन्दिग्ध है, वह योगी या सिद्ध पुरुष ज्ञात होता है। इस तरह ७ तथाकथित राजाओं में ५ के ही जीवन इतिहासोपयोगी हैं। ३ राजमान्य पुरुषों में से आभड और वस्तुपाल सुज्ञात हैं। संघपति रत्नश्रावक अज्ञात जैसा लगता है।

प्रबन्धकोश में अपने पूर्ववर्ती प्रबन्धों से बहुत सामग्री ली गई है, यह तथ्य मुनि जिनविजयजी ने उक्त ग्रन्थ के प्रास्ताविक वक्तव्य[4] में दिया है। ग्रन्थकार की मौलिक रचना के रूप में हर्ष, हरिहर, अमरचन्द्र और मदनकीर्ति प्रबन्ध हैं। इनका वर्णन अन्य प्रबन्ध ग्रन्थों में नहीं मिलता।

प्रबन्धकोश की रचना सरल और सुबोध गद्य में की गई है। इस प्रकार की गद्य-रचना बहुत कम मिलती है। उसके वाक्य बिल्कुल अलग-अलग और छोटे-छोटे हैं और बोल-चाल की भाषा जैसे लगते हैं। अप्रचलित और देश्य शब्दों का प्रयोग भी इसमें निःसंकोच हुआ है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि प्रश्नवाहन कुल, कोटिक गण, हर्षपुरीय गच्छ की मध्यम शाखा में हुए मलधारी अभयदेवसूरि सन्तानीय एवं तिलकसूरि के शिष्य राजशेखर ने इस ग्रन्थ की रचना सं० १४०५ में दिल्ली में महणसिंह की वसति में रहकर की।

---

१. प्रबन्धचिन्तामणि के सातवाहनप्रबन्ध और विविधतीर्थकल्प के प्रतिष्ठानपुरकल्प में इसका चरित वर्णित है।

२. मध्य भारती पत्रिका, अंक १, जुलाई १९६२ में डा० हीरालाल जैन का लेख: A Contemporary Ode to Chandra Gupta Vikramaditya.

३. वंकचूलचरित का परिचय पहले दिया गया है। इसके पूर्व विविधतीर्थकल्प में ढींपुरीकल्प के अन्तर्गत वंकचूल का चरित वर्णित है।

४. पृ० २-३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनकी अन्य रचनाओं में अन्तर्कथासंग्रह (कौतुककथा), स्याद्वादकलिका, स्याद्वाददीपिका, रत्नावतारिकापंजिका, न्यायकदंलीपंजिका और षड्दर्शन-समुच्चय मिलते हैं।

पुरातनप्रबन्धसंग्रह :

मुनि जिनविजयजी को पाटन के भण्डार में एक प्रबन्धसंग्रह की प्रति मिली थी जिसमें अनेक प्रबन्धों का संग्रह था। दुर्भाग्य से यह प्रति खण्डित थी इससे ग्रन्थकर्ता का नाम ज्ञात न हो सका। इसके अन्तिम पृष्ठ ७६ में प्रबन्ध का क्रमांक ६६ दिया गया है। लगता है इसमें और भी प्रबन्ध थे। उपदेशतरंगिणी में चतुर्विंशतिप्रबन्ध (प्रबन्धकोश) के अतिरिक्त द्विसप्ततिप्रबन्ध का भी उल्लेख मिलता है। संभवतः यह वही ग्रन्थ हो। इसमें प्रबन्धचिन्तामणि और प्रबन्धकोश के कई प्रबन्धों की पुनरावृत्ति हुई है। कई नये प्रबन्ध भी हैं, यथा भोजगांगेय-प्रबन्ध, धाराध्वंसप्रबन्ध, मदनवर्म-जयसिंहदेवप्रीतिप्रबन्ध, पृथ्वीराजप्रबन्ध, नाहड-रायप्रबन्ध, नाडोल लाखनप्रबन्ध। यह प्रति १५वीं शता० की लिखी प्रतीत होती है। मुनि जिनविजयजी ने इस प्रति की सामग्री और पूर्वोक्त जिनभद्रकृत प्रबन्धावलि की सामग्री को लेकर 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह'[1] ग्रन्थ प्रकाशित किया है।

विविध प्रकार के जैन ग्रन्थों में ऐतिहासिक सामग्री :

हमें ऐसे अनेक ग्रन्थ मिले हैं जिनमें यद्यपि नियमित ग्रन्थ-प्रशस्ति तो नहीं है पर वे अपने से पूर्ववर्ती आचार्यों, उनकी कृतियों विशेषकर अपने विषय, ग्रन्थकार और ग्रन्थ की सूचना के साथ आकस्मिक रूप से अपने समय की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करते हैं। पश्चात्कालीन आचार्यों और कृतियों द्वारा पूर्ववर्ती ग्रन्थकार और ग्रन्थों का उल्लेख, मान्य ग्रन्थकारों के पूर्व दृष्टिकोणों का खण्डन, भाषा और विषयों का स्वरूप, पूर्ववर्ती कृतियों से उद्धरण आदि अनेक बातें हैं जिनसे ग्रन्थकर्ताओं की सापेक्षिक सामयिकता निश्चित की जा सकती है। यह विशेषरूप से सत्य है हमारे तार्किक दार्शनिक साहित्य के विषय में, जिससे हमें न केवल जैन ग्रन्थकारों के कालक्रम का निश्चय करने में, बल्कि महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण और बौद्ध तार्किकों के विषय में भी अद्भुत रूप से सहायता मिलती है। जैन विद्वानों में यह एक रीति थी कि वे पूर्ववर्ती आचार्यों की कारिकाओं को अपने मत के समर्थन में या दूसरों के मत के खण्डन में उद्धृत

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमांक २.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते थे। अनेक बार ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम का भी उल्लेख करते थे। ये उद्धरण बहुधा हमें विभिन्न आचार्यों के सापेक्षिक युग का निश्चय करने में या विस्तृत पर निश्चित समयावधियों तक पहुँचने में समर्थ बनाते हैं।

इसके अतिरिक्त जैन विद्वानों ने लाक्षणिक साहित्य की विविध शाखाओं में कई ग्रन्थ लिखे हैं जो हमें भारतीय राजनीतिक इतिहास की कई महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ देते हैं। उदाहरण के लिए चौलुक्य सिद्धराज जयसिंह के समय में वर्धमानसूरिकृत 'गणरत्नमहोदधि' नामक व्याकरण ग्रन्थ में धारानरेश भोज की उपाधि और धर्म का उल्लेख है तथा सिद्धराज विषयक कई उल्लेख हैं। हेमचन्द्र-कृत शब्दानुशासन में सिद्धराज की मालवा के ऊपर वर्षों तक लड़ाई का उल्लेख है।

मलयसूरिकृत अन्य संस्कृत व्याकरण ग्रन्थ में अर्णोराज के ऊपर कुमारपाल की विजय का उल्लेख है।

इसी तरह नेमिकुमार के पुत्र वाग्भटकवि द्वारा रचित काव्यानुशासन में और सोम के पुत्र कवि बाहड (वाग्भट) के वाग्भटालंकार में और हेमचन्द्राचार्य के छन्दोनुशासन में सिद्धराज की प्रशंसा में कई पद्य आये हैं।

१६वीं शती के प्रारम्भ में रत्नमन्दिरगणिकृत उपदेशतरंगिणी में गुजरात के इतिहास से सम्बन्धित अनेक बातें आई हैं। इसी काल के उपदेशसप्तति ग्रन्थ में भीमदेव प्रथम के सांधिविग्रहिक डामरनागर की कथा तथा दूसरी ऐतिहासिक बातें दी गई हैं। आचारोपदेश और श्राद्धविधि में कुमारपाल, वस्तुपाल, तेजपाल आदि के सम्बन्ध की कई बातों का उल्लेख है। सत्तरहवीं शती के धर्मसागर उपाध्यायकृत 'प्रवचनपरीक्षा' में चावड़ा, चौलुक्य और बघेलों की वंशावलियाँ दी गई हैं।

पुराण-कथा-साहित्य के ग्रन्थों में बिखरी सामग्री की ओर हमने उन ग्रन्थों के परिचय में ही ध्यान आकर्षित किया है।

तुगलक वंश के जैन स्रोत :

इस वंश का राज्य सन् १३२१ से १४१४ ई० तक रहा। इस वंश में प्रसिद्ध तीन सुल्तान हुए : १. गयासुद्दीन तुगलक (१३२१-१३२५ ई०), २. मुहम्मद बिन तुगलक (१३२५-५१ ई०), ३. फिरोजशाह तुगलक (१३५१-१३८८ ई०)। इन सुल्तानों के राज्य और प्रान्तीय शासकों के राज्य में जैन-

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

धर्म, जैनाचार्यों के क्रियाकलाप, जैन साहित्य, मन्दिर, तीर्थ आदि की स्थिति पर प्रकाश डालने के लिए कतिपय ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। ऐतिहासिक प्रसंग में यहाँ उनका दिग्दर्शन मात्र करा रहे हैं।

नाभिनन्दनोद्धारप्रबन्ध अपरनाम शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारप्रबन्ध :

इसमें[1] प्राचीन स्वतन्त्र गुजरात के अन्तिम महाजन समराशाह के महत्त्वपूर्ण कार्यों का विवरण देते हुए तुगलकवंश के सुल्तानों और उनके प्रान्तीय शासकों की महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी गई हैं जो तत्कालीन भारत के धार्मिक इतिहास के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई हैं। समराशाह तीन भाई थे। बड़ा सहजपाल दक्षिण देश के देवगिरि (दौलताबाद) में बस गया था। मझला साहण खंभात में बसकर अपने पूर्वजों की कीर्ति फैला रहा था और समराशाह पाटन रहकर प्रभावशाली बना था। तत्कालीन दिल्ली का सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक उस पर बड़ा स्नेह करता था और उसने उसे तैलंगाने का सूबेदार बनाया था। गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी मुहम्मद तुगलक भी उसे भाई जैसा मानता था और अपने समय में भी उसने उसे उक्त पद पर रहने दिया। उसने अपने प्रभाव से पाण्डुदेश के स्वामी वीर वल्लाल सुल्तान के चंगुल से छुड़ाया और मुसलमानों के अत्याचार से अनेक हिन्दुओं की रक्षा की। उसने उन मुसलमान शासकों के काल में जैनधर्म-प्रभावना के अनेक कार्य किये।

जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प से भी तुगलकवंश के राज्यकाल[2] में जैनधर्म की स्थिति की अनेक सूचनाएँ मिलती हैं।

मालवा के प्रान्तीय मुस्लिम शासक :

इन शासकों के राज्यकाल में जैनों को अच्छा प्रश्रय मिलता रहा है। माण्डवगढ़ में अनेक धनाढ्य और प्रभावक जैन व्यापारी थे। उनमें से कुछ को समय-समय पर राजमन्त्री या प्रधानमन्त्री व अन्य अनेक विशिष्ट पदों को सम्हालने का अवसर मिला था। माण्डवगढ़ के सुलतान होशंगसाह गोरी (१४०५–१४३२ ई०) का महाप्रधान मण्डन नामक जैन था जो बड़ा शासन-कुशल और म न् साहित्यकार था। उसके द्वारा रचे ग्रन्थों की प्रशस्तियों में

---

१. ग्रन्थ का लघु परिचय पृ० २२९ में दिया गया है।

२. विशेष के लिए देखें : डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ४११-४१६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बतलाया गया है कि किस तरह उसके पूर्वज विभिन्न राजदरबारों में विशिष्ट पदों पर थे।[1] मण्डन के पश्चात् भी उसके वंशधर मालवा के शासकों के अच्छे सहायक एवं पदाधिकारी बने रहे।[2]

सुमतिसम्भवकाव्य[3], जावडचरित्र और जावडप्रबन्ध[4] से भी मालवा के सुलतान गयासुद्दीन खिलजी (१४८३–१५०१ ई०) के शासनकाल की अनेक सूचनाएँ मिलती हैं।

गुरुगुणरत्नाकर[5] (सं० १५४१) में अनेक प्रान्तीय शासकों के समय जैनधर्म और समाज की स्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। मालवा के प्रजाप्रिय, न्यायपालक सुल्तान महमूद खिलजी (१४३६-१४८२ ई०) का मन्त्री मांडवगढ़वासी चन्द्रसाधु (चांदासाह) था। गयासुद्दीन खिलजी के राज्यकाल में पोरवाड़ जाति के प्रमुख व्यक्ति सूरा और वीरा नामक जैन थे। उक्त मण्डन कवि का वंशज मेघ नामक व्यक्ति इस सुल्तान का मन्त्री था और उसे 'मफ्फरमलिक' उपाधि दी गई थी। इसी तरह और भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बातें दी गई हैं।

मुगलकाल के जैन स्रोत :

मुगलवंश के मुस्लिम शासकों में से अकबर, जहांगीर और शाहजहां के विषय में कुछ जैन ऐतिहासिक काव्यों से अनेक बहुमूल्य सूचनाएँ मिलती हैं। तपागच्छीय उपाध्याय पद्मसुन्दरकृत पार्श्वनाथकाव्य, रायमल्लाभ्युदय[6] एवं अकबरशाहिशृंगारदर्पण की प्रशस्तियों से मालूम होता है कि पद्मसुन्दर अकबर द्वारा सम्मानित थे, उनके दादागुरु आनन्दमेरु अकबर के पिता हुमायूँ और पितामह बाबर द्वारा सत्कृत थे। वि० सं० १६३२ में पं० राजमल्ल विरचित

१. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ में प्रकाशित दौलत सिंह लोढ़ा का लेख : मंत्री मण्डन और उसका गौरवशाली वंश; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४७७-४८०.

२. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ४२७.

३. परिचय के लिए देखें पृ० २१६.

४. ,, पृ० २२९.

५. ,, पृ० २१६.

६. इस ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय पहले दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूस्वामिचरित्र[1] में अकबर की प्रशंसा करते हुए कवि ने लिखा है कि सम्राट् ने धर्म के प्रभाव से जजिया नामक कर बन्द करके यश का उपार्जन किया, उसके मुख से हिंसक वचन नहीं निकलते थे, हिंसा से वह सदा दूर रहता था और उसने जुआ और मद्य-पान का निषेध कर दिया था। सं० १६५० में रचे गये कर्मवंशोत्कीर्तनकाव्य[2] में बतलाया गया है कि बीकानेरनरेश का प्रधान कर्मचन्द्र बच्छावत राजा से अनबन होने के कारण अकबर बादशाह की शरण में आ गया था और उसने उसे अपना एक प्रतिष्ठित मन्त्री बना लिया। कर्मचन्द्र ने पूर्ववर्ती सुलतानों द्वारा अपहृत अनेक धातुमयी जिनमूर्तियाँ भी मुसलमानों से प्राप्त कीं और उन्हें बीकानेर के मन्दिरों में भिजवा दिया। सम्राट अकबर ने अपने शाहजादे सलीम पर आये अनिष्ट ग्रहों की शान्ति जैनधर्मानुसार करने के लिए अबुलफजल आदि विद्वान् मन्त्रियों की सलाह से कर्मचन्द्र बच्छावत को आदेश दिया था। उक्त मन्त्री के आग्रह पर बादशाह ने अहमदाबाद के सूबेदार आजम खाँ को फरमान भेजा कि मेरे राज्य में जैनतीर्थों, जैनमन्दिरों और मूर्तियों को कोई भी व्यक्ति किसी प्रकार की क्षति न पहुँचा सके और इस आज्ञा का उल्लंघन करनेवाला भीषण दण्ड का भागी होगा।

उसी काल के मेड़ता दुर्ग से प्राप्त जैन शिलालेखों से ज्ञात होता है कि अकबर ने जैनमुनियों को युगप्रधान पद दिये थे, प्रति वर्ष आषाढ़ की अष्टाह्निका में अमारि (जीवहिंसा-निषेध) घोषणा की थी, प्रतिवर्ष सब मिलाकर ६ माह पर्यन्त समस्त राज्य में हिंसा बन्द कराई थी, खम्भात की खाड़ी में मछलियों का शिकार बन्द कराया था, शत्रुंजय आदि तीर्थों का करमोचन किया था और सर्वत्र गोरक्षा का प्रचार किया था आदि। १५९५ ई० में पुर्तगाली पादरी पिन्हेरो ने भी इनमें से अनेक बातों का समर्थन किया है। आइनेअकबरी भी इन बातों की पुष्टि करती है।[3]

तपागच्छीय आचार्य हीरविजय आदि के जीवनचरित्रों पर लिखे 'हीर-सौभाग्यमहाकाव्य' आदि ग्रन्थों से भी मुगल बादशाहों की धार्मिक भावनाओं का पता चलता है।

सन् १५८२ के लगभग काबुल से लौटने के बाद अकबर ने गुजरात के शासक शिहाबुद्दीन अहमदखान के पास फरमान भेजकर आचार्य हीरविजय को

१-२. इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय पहले दिया गया है।

३. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि, पृ० ४८८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगरा दरबार आने का निमन्त्रण दिया। आचार्य गुजरात से पैदल चलकर आगरा आये। सम्राट् ने उनका बहुत सम्मान किया और अनेक भेंटें कीं। उनके अनुरोध पर उसने पर्यूषणपर्व में १२ दिन तक जीव-हत्या रोक दी आदि। जून सन् १५८४ में उसने हीरविजयजी को 'जगद्गुरु' की उपाधि दी और उनके शिष्य शान्तिचन्द्र को उपाध्याय पद। हीरविजय सन् १५८२ से १५८६ तक आगरा रहे। अकबर और हीरविजयजी के सम्बन्धों का वर्णन पद्मसागरकृत 'जगद्गुरुकाव्य' और देवविमलकृत 'हीरसौभाग्यकाव्य' में मिलता है। वैराट (जयपुर—सन् १५८७) तथा शत्रुंजय (सन् १५९३) से प्राप्त शिलालेखों से भी इस बात की पुष्टि होती है।

उपाध्याय शान्तिचन्द्र ने बादशाह के दयामय कार्यों के वर्णन के लिए 'कृपारसकोश' बनाया। उसके अहिंसा कार्यों का वर्णन अलबदाउनी ने भी किया है। विन्सेण्ट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ 'अकबर' में भी इन बातों का प्रतिपादन किया है। उपाध्याय शान्तिचन्द्र का अकबर पर बड़ा प्रभाव था। एक वर्ष ईद के समय वे सम्राट् के पास ही थे। ईद से एक दिन पहले उन्होंने सम्राट् से कहा कि अब वे वहाँ नहीं ठहरेंगे क्योंकि अगले दिन ईद के उपलक्ष्य में अनेक पशु मारे जायेंगे। उन्होंने कुरान की आयतों से सिद्ध कर दिखाया कि कुर्बानी का मांस और खून खुदा को नहीं पहुँचता, वह इस हिंसा से खुश नहीं होता बल्कि परहेजगारी से खुश होता है। रोटी और शाक खाने से ही रोजे कबूल हो जाते हैं। अन्य अनेक मुसलमान ग्रन्थों से भी उन्होंने बादशाह और उसके दरबारियों के समक्ष यह सिद्ध किया और बादशाह से घोषणा करा दी कि इस ईद पर किसी प्रकार का वध न किया जाय।

शान्तिचन्द्र आवश्यक कार्य से गुजरात चले गये और अपने शिष्य भानुचन्द्र को अकबर के दरबार में छोड़ गये।

भानुचन्द्र का अकबर के शेष जीवन और जहाँगीर के प्रारम्भिक जीवन से बड़ा सम्पर्क था। अकबर ने अपने दो शाहजादे सलीम और दर्रेदानियाल की शिक्षा भानुचन्द्रगणि के अधीन की थी। अबुलफजल को भी भानुचन्द्र ने भारतीय दर्शन पढ़ाया था। भानुचन्द्र ने सम्राट के लिए 'सूर्यसहस्रनाम' की रचना की और इसी कारण वे 'पातशाह अकबर जलालुद्दीन सूर्यसहस्रनामाध्यापक' कहलाते थे। वे फारसी के भी बड़े विद्वान् थे। बादशाह ने खुश होकर उन्हें 'खुशफहम' उपाधि प्रदान की थी। अकबर भानुचन्द्रगणि के प्रति अत्यन्त आस्थावान् था। इसके समर्थन में बहुत सामग्री है। उनमें से दो मात्र का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख करते हैं। एक समय अकबर को भयानक सिरदर्द था। उसे दूर करने में किसी चिकित्सक को सफलता नहीं मिली। तब सम्राट ने भानुचन्द्र का स्मरण किया। उन्होंने सम्राट् के सिर पर हाथ रखकर चिन्तामणि पार्श्व की स्तुति की। इससे सिरदर्द सदा के लिए दूर हो गया। राज्य के उमरावों ने इस खुशी में कुर्बानी के लिए पशु एकत्र किये किन्तु खबर पाते ही बादशाह ने वह तुरन्त रुकवा दी। एक बार शिकार करते हुए बादशाह को मृग के सींग से चोट आ गई और दो माह तक पलंग पर पड़े रहे। उस समय सभी को न मिलने की आज्ञा थी पर भानुचन्द्र और अबुलफजल को कोई आज्ञा न थी। भानुचन्द्र के शिष्य सिद्धिचन्द्रकृत 'भानुचन्द्रगणिचरित'[१] में उक्त बातों के अतिरिक्त जहांगीर, नूरजहां तथा कई एक दरबारियों का चरित्र-चित्रण किया गया है।

आचार्य हीरविजय के प्रधान शिष्य विजयसेन पर हेमविजयगणिकृत 'विजयप्रशस्तिमहाकाव्य'[२] तथा उनके प्रशिष्य विजयदेव पर श्रीवल्लभ उपाध्यायकृत 'विजयदेवमाहात्म्य'[३] तथा मेघविजयगणिकृत 'विजयदेवमाहात्म्यविवरण' 'दिग्विजयकाव्य', 'देवानन्दमहाकाव्य'[४] आदि में अकबर और जहांगीर के विषय में अनेक ऐतिहासिक बातें दी गई हैं। विजयसेनसूरि को अकबर ने लाहौर बुलाया था। उनके शिष्य नन्दिविजय को अष्ट अवधान पर उसने खुशफहम (a man of sharp intellect) की उपाधि दी थी। विजयसेनगणि ने सम्राट् के दरबार में 'ईश्वर कर्ता हर्ता नहीं है' विषय पर अन्य धर्मों के विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ किये थे और उन्हें 'सवाई हीरविजयसूरि' की उपाधि मिली थी। उनके अनुरोध से उसने गाय, बैल आदि पशुओं की हिंसा रोक दी थी।[५] सन् १५८२ से लेकर बहुत समय तक अकबर और जहांगीर के दरबार में कोई न कोई विद्वान् आचार्य रहे थे।

प्रशस्तियाँ :

प्रशस्ति का अर्थ होता है गुणकीर्तन। संस्कृत साहित्य की यह एक अत्यन्त रोचक शैली है। आलंकारिक शैली के काव्यरूप में लिखे जाने पर भी प्रशस्तियों के विषय इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति ही होते हैं और इनसे अतीत के इतिहास के

१-४. इन ग्रन्थों का परिचय पहले दिया गया है।

५. विशेष के लिए 'अकबर आणि जैनधर्म सूरीश्वर आणि सम्राट्' ग्रन्थ देखें; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ५३५-५६० विशेषरूप से द्रष्टव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयोजन में बहुत-सी सामग्री मिल जाती है। वैदिक साहित्य से सम्बद्ध ब्राह्मणों और उपनिषदों में 'गाथा नाराशंसी' अर्थात् प्रसिद्ध वीर व्यक्तियों की प्रशंसा के गीत का बहुत बार उल्लेख मिलता है। ये गीत ऋग्वेद की दान स्तुतियों और अथर्ववेद के अनेक सूक्तों से सम्बद्ध हैं और पश्चात्कालीन वीर गाथाओं में वर्णित शौर्य घटनाओं के प्राग्रूप भी। इनका विषय योद्धाओं और नरेशों के गौरवमय कार्यों का ही वर्णन है। कालान्तर में ये ही गाथाएँ किसी एक व्यक्ति-विशेष अथवा घटनाविशेष को लेकर बहुत बड़े महाकाव्यों में विकसित हुई।

पश्चात्काल में गुप्तयुग के लगभग ये प्रशस्तियाँ हमें उत्कीर्ण लेखों के रूप में तथा स्वतन्त्र गुणवचन के रूप में भी प्राप्त होती हैं। समुद्रगुप्त के सम्बन्ध की हरिषेण-प्रशस्ति इलाहाबाद के एक स्तम्भ से प्राप्त हुई है। स्कन्दगुप्त का गिरनार-शिलालेख और मन्दसौर के सूर्यमन्दिर की वत्सभट्टि-प्रशस्ति भी इसी प्रकार की है। सिद्धसेन दिवाकरकृत गुणवचनद्वात्रिंशिका उत्कीर्ण लेख न होने पर भी इसी प्रकार की प्रशस्ति है जिसमें चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का गुण-कीर्तन किया गया है। पश्चात्काल में मन्दिरों, मूर्तियों आदि स्थापत्यों के स्मृतिरूप में अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ लिखने की परम्परा चलने लगी। जैन मनीषी इस विषय में पीछे न रहे। दक्षिण भारत, गुजरात, राजस्थान तथा मध्य भारत में जैन विद्वानों ने एक विशिष्ट प्रकार की भी प्रशस्तियाँ लिखीं जिन्हें ग्रन्थ-प्रशस्ति अर्थात् पुस्तक की स्तुतिगाथा कहते हैं। ये सामान्यतः ग्रन्थों के अन्त में और कभी-कभी ग्रन्थ के प्रारम्भ में भी या पुष्पिका के रूप में ग्रन्थ के किसी अध्याय या सब अध्यायों के अन्त में पाई जाती हैं। ई० छठी शती के पहले लिखे गये ग्रन्थों में हमें ये प्रशस्तियाँ प्रायः नहीं मिलतीं परन्तु ७वीं शती से आगे इनका अधिक और सामान्य प्रयोग होने लगा।

काव्यात्मक आदर्श प्रशस्तियाँ भी जैन विद्वानों ने लिखी हैं। इनका ऐतिहासिक एवं काव्यात्मक महत्त्व विभिन्न प्रकार का होता है। कोई-कोई प्रशस्तियाँ बहुत ही छोटी होती हैं अर्थात् कुछ पंक्तियों की ही, तो कितनी ही सौ-सौ पंक्तियों या श्लोकों जैसी लम्बी होती हैं। कुछ गद्य में होती हैं तो कुछ सारी की सारी पद्य में ही। कोई-कोई गद्य और पद्य मिश्रित भी। ऐतिहासिक दृष्टि से इन प्रशस्तियों में महत्त्व का अंश साधारणतया वंशपरिचय, शौर्य अथवा धर्म-कार्यवर्णन होता है। अनेक प्रशस्तियाँ स्थापत्य से सम्बद्ध हैं जिनमें स्थापत्य निर्माता या दाता का वृत्तान्त दिया जाता है। यदि निर्माता या दाता तत्कालीन राजा नहीं है तो उस प्रशस्ति में तत्कालिक राजा के सम्बन्ध में कुछ न कुछ उल्लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर दिया जाता है। तदनन्तर दान का वर्णन किया जाता है और पीछे किसके लिए और किन शर्तों में दान हुआ था इसका भी उल्लेख किया जाता है। स्थापत्य प्रशस्ति में निर्माता शिल्पी का, प्रतिष्ठाता गुरु का, प्रशस्ति-रचयिता कवि का, ताम्र या शिला पर लिखनेवाले लेखक और उसे उत्कीर्ण करनेवाले त्वष्टा का नाम दिया जाता है। स्थापत्य-प्रशस्तियों (शिलालेखों और ताम्रपत्रों) के समान ही ग्रन्थ-प्रशस्तियाँ या स्वतन्त्र काव्यात्मक प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण और विश्वसनीय हैं। अन्तर इतना है कि ये प्रशस्तियाँ अल्पस्थायी कागज या ताड़पत्रों में लिखी मिलती हैं जब कि स्थापत्य-प्रशस्तियाँ दीर्घस्थायी पाषाण और धातुओं पर। जहाँ तक ऐतिहासिक दृष्टि से रचना और विवरण का सम्बन्ध है दोनों एक सी हैं।

स्वतन्त्र काव्यात्मक प्रशस्तियों के परिचयक्रम में हमने पहले ही ऐतिहासिक काव्यों के पहले प्राचीनता की दृष्टि से गुणवचनद्वात्रिंशिका नामक एक प्रशस्ति का परिचय दे दिया है। कुछ अन्य उपलब्ध प्रशस्तियों का परिचय भी प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुपाल और तेजपाल के सुकृतों की स्मारक प्रशस्तियाँ :

वस्तुपाल-तेजपाल के सम्बन्ध में छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ मिलती हैं। प्रथम प्रशस्ति है :

सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी :

यह[1] १७९ श्लोकों की लम्बी प्रशस्ति है जो वस्तुपाल के सुकृतों की परिचायक स्तुति-कथा ही है। इसमें उन बातों का संक्षिप्त वर्णन है जिनका अरिसिंह के काव्य सुकृतसंकीर्तन में है।

परम्परानुसार मंगलाचरण के बाद पद्य ९-१८ में चावड़ा वंश के राजाओं के शौर्य का वर्णन है, तदनन्तर १९-६९ तक पद्यों में चौलुक्य नृपों का वर्णन, तत्पश्चात् ७०-९७ पद्यों में वीरधवल और उसके पूर्वजों की प्रशंसा की गई है। वस्तुपाल के वंशवृक्ष, मंत्रित्वकाल और उसके परिवार की प्रशंसा ९८-१३७ पद्यों में है। पद्य १३८-१४० में वस्तुपाल के शौर्य कार्यों का वर्णन है और १४१-१४९ में उसकी संघयात्राएँ वर्णित हैं। पद्य १५०-१५७ में नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों की पट्टावली तथा १५८-६१ में विजयसेनसूरि की प्रशंसा की गई है। तत्पश्चात्

1. जिनरत्नकोश, पृ० ४४३; गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, क्रमांक १० (बड़ौदा, १९२०) में हम्मीरमदमर्दन नाटक के परिशिष्टरूप में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्य १६२–७७ में रचयिता ने वस्तुपाल द्वारा निर्मित धार्मिक तथा लौकिक भवनों को गिनाया है और अन्त में पद्य १७८ में प्रशस्तिरचयिता का नाम और १७९ में आशीर्वचन दिया गया है।

इस प्रशस्ति के रचयिता उदयप्रभसूरि हैं जिनका परिचय धर्माभ्युदयकाव्य के प्रसंग में दिया गया है। कवि ने इस प्रशस्ति को शत्रुंजय पर्वत के ऊपर आदिनाथ के मन्दिर में किसी स्थान पर शिलापट्ट पर उत्कीर्ण कराने के लिए रचा था।

उदयप्रभसूरि ने वस्तुपाल द्वारा स्तम्भतीर्थ में निर्मित उपाश्रय की भी एक प्रशस्ति बनाई थी। इसमें १९ पद्य हैं और कुछ भाग गद्य का भी है। इसमें निर्माता और उसके गुरु के वंशवृक्ष एवं प्रशंसा के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं है। इन्हीं आचार्यकृत ३३ पद्यों की संग्रहरूप एक 'वस्तुपालप्रशस्ति' मिलती है। यह किसी घटना विशेष पर या किसी सुकृत की स्मृति में रची गई प्रतीत नहीं होती, बल्कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर वस्तुपाल की प्रशंसा पर लिखे गये पद्यों की संग्रहरूप है। ये पद्य बड़े ही सुन्दर हैं।[1] उदयप्रभसूरिकृत ५ पद्यों का एक अन्य प्रशस्तिलेख भी मिलता है जिसमें नेमिनाथ और आदिनाथ के प्रति भक्तिभाव व्यक्त करते हुए वस्तुपाल की दानशीलता एवं धार्मिकता को बतलाकर उसकी दीर्घायु की कामना की गई है।[2]

वस्तुपाल-तेजपालप्रशस्ति :

यह ७७ पद्यों का कीर्तिकाव्य है।[3] यह भृगुकच्छ के शकुनिविहार नामक मुनिसुव्रत स्वामी के मन्दिर में छोटी देवकुलिकाओं पर तेजपाल द्वारा स्वर्ण ध्वज-दण्ड चढ़ाए जाने की स्मृति में रचा गया है। इसमें अन्य प्रशस्तियों की भाँति ही चौलुक्यनरेशों का वर्णन पद्य ४–३१ में तथा बघेलों का पद्य ३२-३८ में तथा दाता वस्तुपाल-तेजपाल का पद्य ३९–५१ तक वंशवृक्ष दिया गया है और

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० १८२.

२. महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में पृ० ३०३-३३० में प्रकाशित मुनि पुण्यविजय जी के लेख 'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपालना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्तिलेखो' में प्रशस्तिलेखांक २.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३४५; गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, संख्या १० (बड़ौदा, १९२०) में हम्मीरमदमर्दन नाटक के परिशिष्टरूप में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद्य ५२–६२ में उसके सुकृत्यों की सूची दी गई है। पद्य ६३–७१ में मन्दिर के मुख्य अधिष्ठाता एवं प्रशस्ति के रचयिता जयसिंह के उपदेश से एवं अपने अग्रज वस्तुपाल की आज्ञा से तेजपाल द्वारा स्वर्ण ध्वजदण्डों के निर्माण का वर्णन है। अन्त में ध्वजदण्डों, मन्दिर और दोनों मन्त्रियों के लिए आशीर्वचन है।

इस प्रशस्ति के रचयिता वीरसिंहसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि हैं। इन्होंने हम्मीरमदमर्दन नाटक भी रचा है जो एक ऐतिहासिज नाटक ही है और वस्तुपाल की शौर्यकथा बतलाता है।

१. वस्तुपालप्रशस्ति :

यह २६ श्लोकों की प्रशस्ति है।[१] पहले पद्य में मंगलाचरण तथा दूसरे में वस्तुपाल और तेजपाल और उनके पूर्वजों का वर्णन है। शेष काव्य में अपने आश्रयदाता की स्तुति ही है।

इसके रचयिता नरचन्द्रसूरि हैं जो हर्षपुरीय या मलधारीगच्छ के देवप्रभसूरि के शिष्य थे। ये वस्तुपाल के मातृपक्ष से गुरु थे। इन्होंने वस्तुपाल को न्याय, व्याकरण और साहित्य आदि ग्रन्थ पढ़ाये थे। ये कई ग्रन्थों के रचयिता एवं टिप्पणकार थे। इनका फलित ज्योतिष पर ज्योतिःसार याने नारचन्द्र-ज्योतिःसार मिलता है। इन्होंने श्रीधर की न्यायकन्दली पर एवं मुरारि के अनर्घराघव नाटक पर टिप्पण लिखे तथा जैन कथानकों पर कथारत्नसागर तथा चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र रचा था।

२. वस्तुपालप्रशस्ति :

यह १०४ पद्यों की एक प्रशस्ति है।[२] इसे नरचन्द्रसूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने बनाया है। यह ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से कुछ महत्त्व की है। इसके प्रथम पद्य में जिन और महादेव की श्लेषमय स्तुति है, पद्य २-१२ में चौलुक्य वंश के राजाओं की कीर्तिगाथा तथा १३–१७ में बघेलावंश का वर्णन, पद्य १८–२४ में वस्तुपाल के पूर्वजों और उसके निजगुणों के विषय में पद्य २५–२८ में वर्णन किया गया है। इसके बाद ९८ पद्य तक वस्तुपाल की तीर्थयात्राओं, जीर्णोद्धार, धर्मशाला-निर्माण आदि कार्यों का वर्णन है। पद्य ९९–१०४ में

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० १०१.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागेन्द्रगच्छ के आचार्यों का वर्णन तथा प्रशस्तिरचयिता और उसके गुरु का भी वर्णन है।

नरेन्द्रप्रभसूरि की दूसरी वस्तुपालप्रशस्ति[१] ३७ पद्यों की मिलती है। इसमें राजा वीरधवल और दोनों भाइयों की कीर्ति वर्णित है। इसमें किसी भी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है।

उक्त दोनों प्रशस्तियों के रचयिता नरेन्द्रप्रभसूरि वस्तुपाल के समय के विद्वान् मुनियों में एक थे। इन्होंने अपने गुरु नरचन्द्रसूरि की आज्ञा से वस्तुपाल के प्रीत्यर्थ अलंकारमहोदधिकारिका और वृत्ति की रचना सं० १२८२ में की थी। उनकी अन्य कृतियों में 'काकुत्स्थकेलिनाटक' १५०० श्लोक-प्रमाण का उल्लेख मिलता है। इनकी धार्मिक विषयों पर विवेकपादप और विवेककलिका नामक दो रचनाएँ और मिलती हैं। नरेन्द्रप्रभसूरि वस्तुपाल के साथ शत्रुंजययात्रा में गये थे और उन्होंने ३७० पद्यों की प्रशस्ति यात्रा के प्रारम्भ होते ही और दूसरी यात्रा की समाप्ति होने पर शत्रुंजय पर लिखी थी।

३. वस्तुपालप्रशस्ति :

४ पद्यों की एक प्रशस्ति वस्तुपाल के परम मित्र यशोवीर द्वारा रचित भी उपलब्ध हुई है। इसमें वस्तुपाल के गुणों का कीर्तन मात्र है, ऐतिहासिक बात कुछ भी नहीं।

यशोवीर वस्तुपाल का अन्तरंग मित्र था।[२] समकालीन कवि सोमेश्वर ने दोनों मित्रों को सरस्वती के दो पुत्र कहकर प्रशंसा की है। जयसिंहसूरि के हम्मीरमदमर्दन नाटक (अंक ५, श्लोक ४८) में वस्तुपाल द्वारा यशोवीर का अपने ज्येष्ठ भ्राता के समान आदर करना बताया गया है। प्रबन्धों में यशोवीर-कृत कई पद्यों का उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि वह अच्छा संस्कृत कवि था, यद्यपि उसकी किसी रचना की उपलब्धि अब तक नहीं हुई

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० १८४.

१. महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ में पृ० ३०३-३३० में प्रकाशित मुनि पुण्यविजयजी का लेख 'पुण्यश्लोक महामात्य वस्तुपालना अप्रसिद्ध शिलालेखो तथा प्रशस्तिलेखो' में प्रशस्तिलेखाङ्क ५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। वह सण्डेरकगच्छ के आचार्य शान्तिसूरि का अनुयायी था और जालोर का रहनेवाला राज्यमान्य व्यक्ति था।[1]

४. वस्तुपालप्रशस्ति :

१२ पद्यों की यह प्रशस्ति[2] कुछ काल पूर्व प्रकाश में आई है। इसके रचयिता सुकृतसंकीर्तनकाव्यकर्ता अरिसिंह ठक्कुर हैं। इसमें वस्तुपाल का नाम वसन्तपाल और वस्तुपाल दोनों दिया गया है और उदात्त काव्यात्मक शैली में यशोगाथा वर्णित है। इसमें किसी ऐतिहासिक घटना का उल्लेख नहीं है।

ग्रन्थ, दाता तथा लिपिकार-प्रशस्तियाँ :

ग्रन्थ से सम्बद्ध प्रशस्तियाँ दो प्रकार की हैं : प्रथम ग्रन्थकारप्रशस्ति, दूसरी पुस्तकप्रशस्ति। ग्रन्थकारप्रशस्ति में ग्रन्थरचयिता का अपना परिचय, उसकी गुरुपरम्परा, रचनास्थान एवं समय आदि का उल्लेख होता है। पुस्तकप्रशस्ति दो प्रकार की है : एक द्रव्यदान देकर लिखानेवालों की प्रशस्ति और दूसरी लेखन कार्य करनेवाले लिपिकार की प्रशस्ति। ऐसी प्रशस्तियाँ पिटरसन, भाण्डारकर आदि विद्वानों की रिपोर्टों में तथा पाटन, खंभात, जैसलमेर, बड़ौदा, अहमदाबाद, लिम्बड़ी, जैसलमेर, जयपुर, आमेर आदि जैनभण्डारों की विवरणात्मक सूचियों तथा जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह[3] नामक ग्रन्थों में दी गई हैं। ऐसी प्रशस्तियाँ मध्ययुगीन भारत के सम्भ्रान्त जैन परिवारों के इतिहास की भी बहुत उपयोगी सूचनाएँ देती हैं। ये सूचनाएँ गुजरात और मध्य भारत से प्राप्त ग्रन्थों में कर्नाटक और तमिलदेश से प्राप्त ग्रन्थों की अपेक्षा अधिक हैं। १०वीं शताब्दी

---

१. यशोवीर के विशेष परिचय के लिए देखें : डा० भोगीलाल सांडेसराकृत महामात्य वस्तुपाल का साहित्य मण्डल, पृ० ८१-८५.

२. महावीर जैन विद्यालय सुवर्णमहोत्सव ग्रन्थ, पृ० ३०३-३३०, प्रशस्तिलेखाङ्क ६.

३. अब तक प्रकाशित इस प्रकार के ग्रन्थों में मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह, श्री अमृतलाल मगनलाल शाह द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसंग्रह (२ भाग), पं० के० भुजबली शास्त्री द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसंग्रह, पं० परमानन्द शास्त्रीकृत जैनग्रन्थप्रशस्तिसंग्रह, भाग १ (संस्कृत-प्राकृत) और भाग २ (अपभ्रंश) तथा डा० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल द्वारा सम्पादित प्रशस्तिसंग्रह विशेष उल्लेखनीय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पूर्व के कुछ ही हस्तलिखित ग्रन्थ मिले हैं जिनमें प्रथम प्रकार की प्रशस्तियाँ (ग्रन्थकारप्रशस्ति) मिलती हैं। भारतीय इतिहास के विषय में छुटपुट सूचनाओं को इकट्ठा करने में जैन ग्रन्थकारों की प्रशस्तियाँ महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में समझी गई हैं। यदि इनका उचित रूप से एकीकरण किया जाय और प्रतिमालेखों के साथ जो कि बड़ी संख्या में उत्कीर्ण पाये गये हैं और प्रकाशित भी हुए हैं तथा अन्य अभिलेखों के साथ अध्ययन किया जाय तो न केवल नूतन तथ्य ही प्रकाश में आएंगे बल्कि सुज्ञात तथ्यों के बीच परस्पर सम्बन्ध दिखाये जा सकेंगे और हमारे तिथिक्रम के अध्ययन में बहुत अच्छे फल प्राप्त होंगे। समकालीन रिकार्ड होने से ये प्रशस्तियाँ देश के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास के निर्माण के लिए भी महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनसे तत्कालीन धार्मिक और साहित्यिक गतिविधि का भी परिचय मिलता है। पुस्तकप्रशस्ति हमें दानदाता, उसके परिवार, वंशावलि, जाति और गोत्र आदि का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त इनसे भूगोल की भी सामग्री मिलती है। मध्यकालीन जैनाचार्यों के पारस्परिक विद्या-सम्बन्ध, गच्छ के साथ उनके सम्बन्ध, कार्यक्षेत्र का विस्तार, ज्ञानप्रसार के लिए प्रयत्न आदि की पर्याप्त सामग्री भी मिल जाती है। श्रावकों की जातियों के निकास और विकास पर भी रोचक प्रकाश इनसे मिलता है।

ग्रन्थकारप्रशस्ति के महत्त्व को हम पहले ही ग्रन्थों के परिचय के साथ सूचित करते गये हैं। हमने कुवलयमाला, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण, हरिषेण-कथाकोश आदि की प्रशस्तियों के महत्त्वों को यथास्थान अंकित किया है। उनका फिर से यहाँ विस्तारपूर्वक वर्णन करने का अवकाश नहीं। फिर भी यहाँ दो-चार अन्य प्रशस्तियों का विवरण उपस्थित करते हैं।

मुनिसुव्वयसामिचरिय की प्रशस्ति :

सं० ११९३ में रचित उक्त काव्य[1] में हर्षपुरीयगच्छ के श्रीचन्द्रसूरि ने लगभग १०० पद्यों की एक बड़ी प्रशस्ति दी है। इस प्रशस्ति में ग्रन्थकार ने अपने दादा गुरु और गुरु का गुणवर्णन बहुत विस्तार से किया है। इसमें शाकंभरीनरेश पृथ्वीराज, ग्वालियरनरेश भुवनपाल, सौराष्ट्र के राजा खेंगार और अणहिलपुर के राजा सिद्धराज जयसिंह आदि का उल्लेख है। उस समय पाटन का एक संघ गिरनारतीर्थ की यात्रा के लिए गया और वनथली में उसने पड़ाव डाला। उस संघ में आये लोगों के आभूषण आदि की समृद्धि को देखकर

१. इस ग्रन्थ का परिचय पृ० ८७ में दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठनरेश का मन ललचा गया। उसके लोभी सहचरों ने कहा कि पाटन की बड़ी लक्ष्मी घर बैठे तुम्हारे यहाँ आ गई है और बहुत लोगों ने संघ को लूटकर अपने खजाने भर लिये। राजा को एक तरफ लक्ष्मी का लोभ और दूसरी तरफ जगत् में फैलनेवाली अपकीर्ति के भय से वह सकपकाया। उसने संघ को बहुत दिन तक वहाँ से जाने ही न दिया। तब ग्रन्थकार के प्रभावक गुरु आचार्य हेमचन्द्र (दूसरे हेमचन्द्र) मौका देखकर खेंगार की सभा में गये और उसे धर्मोपदेश देकर उसके दुष्ट विचार को परिवर्तित किया और संघ को आपत्ति से छुड़ा दिया आदि। इस तरह की कितनी ही ऐतिहासिक बातें ग्रन्थकार ने इस प्रशस्ति में दी हैं। अणहिलवाड, भरुच, आशापल्ली, हर्षपुर, रणथंभोर, साचोर, वणथली, धोलका और धंधुका आदि स्थानों तथा मंत्री शान्तु, अणहिलपुर का सेठ सीया, भरुच का सेठ धवल और आशापल्ली का श्रीमाली सेठ नागिल आदि कितने ही प्रख्यात नागरिकों का उल्लेख इस प्रशस्ति में है।

सुपासनाहचरिय की प्रशस्ति :

उपर्युक्त श्रीचन्द्रसूरि के गुरुभाई लक्ष्मणगणि ने सं० ११९९ की माघ सुदी दशमी गुरुवार के दिन मांडल में रहकर सुपासनाहचरिय नामक बृहत् ग्रन्थ लिखा। उसके अन्त में १७ गाथाओं की एक अच्छी प्रशस्ति है। उस प्रशस्ति में महत्त्व की कई बातें हैं पर सबसे महत्त्व की बात यह है कि जिस समय यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ उस समय अणहिलपुर में राजा कुमारपाल राज्य करता था। कुमारपाल के राज्य का यह समकालीन प्रथम उल्लेख है। प्रबन्धचिन्तामणि आदि में इस राजा की राजगद्दी पर बैठने का समय सं० ११९९ दिया गया है। यह उल्लेख तत्कालीन और असंदिग्ध कथन से सत्य बैठता है। डा० देवदत्त भांडारकर ने एक समय गोधरा और मारवाड़ के एक लेख का भ्रान्त अर्थ कर कुमारपाल की सं० १२०० के बाद राजगद्दी पर बैठने की सम्भावना की थी और कहा था कि प्रबन्धचिन्तामणि में दिया गया वर्ष ठीक नहीं है पर उक्त समकालीन प्रशस्ति के उल्लेख से भांडारकर का मत निरस्त हो जाता है।

नेमिनाहचरिउ की प्रशस्ति :

सं० १२१६ में कुमारपाल के राज्यकाल में हरिभद्रसूरि नामक एक आचार्य ने नेमिनाहचरिउ नामक ग्रन्थ में ३२ पद्यों की एक प्रशस्ति अपभ्रंश में लिखी है। मन्त्री पृथ्वीपाल की प्रेरणा से आचार्य ने यह ग्रन्थ लिखा था। इसलिए ग्रन्थकार ने अपनी गुरुपरम्परा के परिचय के साथ इस मन्त्री के पूर्वजों का भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थोड़ा-बहुत परिचय दिया है। मन्त्री पृथ्वीपाल, सुप्रसिद्ध दण्डनायक मन्त्री विमलशाह पोरवाड का वंशज था। मूल में ये लोग श्रीमाल के निवासी थे, पीछे पाटन के पास गांभू नाम के स्थान में आकर बस गये थे और जब अणहिलपुर की स्थापना हुई उसी समय वे लोग वहाँ आकर बस गये। चावड़ावंश के नरेश वनराज के समय में इस वंश का प्रसिद्ध पुरुष निन्नय था। वह हाथी-घोड़े और धन-समृद्धि से युक्त था। वनराज उसे अपने पिता के समान मानता था और वनराज ने ही आग्रहपूर्वक उसे वहाँ बसाया था। निन्नय के लहर नामक एक बड़ा पराक्रमी पुत्र था जो विंध्याचल से अनेक हाथियों को पकड़कर लाता था। गुजरात के नवोदित साम्राज्य को बलवान् बनाने में उसका बड़ा भाग था। वनराज से लेकर दुर्लभराज चौलुक्य तक ११ राजाओं के किसी न किसी प्रधान पद पर इस वंश के पुरुष क्रम से चले आ रहे थे। दुर्लभराज के समय में वीर नामक प्रधान था। उसके दो पुत्र ज्येष्ठ नेढ और लघु विमल थे। ज्येष्ठ तो भीमदेव चौलुक्य का महामात्य और लघु दण्डनायक था। भीम के आदेश से आबू के परमार राजा को जीतने के लिए विमल बड़ी सेना लेकर चन्द्रावती गया और उसे जीतकर गुजरात का एक सामन्त बनाया। पीछे उसी ने अम्बादेवी की कृपा से आबू पर्वत पर सुप्रसिद्ध आदिनाथ के भव्य मन्दिर को बनवाया। नेढ का पुत्र धवल हुआ जो कर्णदेव चौलुक्य का एक अमात्य था। उसका पुत्र आनन्द हुआ जो सिद्धराज और कुमारपाल के समय में भी किसी एक प्रधान पद पर था। उसका पुत्र महामात्य पृथ्वीपाल हुआ। इसने आबू के ऊपर विमलशाह के मन्दिर में अपने पूर्वजों की हाथी के कन्धे पर बैठी ७ मूर्तियाँ बनवाई थीं तथा पाटन के पंचासर पार्श्वनाथ मन्दिर में एक भव्य मण्डप बनवाया था। उसने चन्द्रावती, रोहा, वराही, सावणवाडा आदि ग्रामों में देव-स्थानों का जीर्णोद्धार कराया, अनेक पुस्तकें लिखाकर भण्डारों को दीं आदि बातें इस प्रशस्ति में आई हैं। यह एक प्रबन्ध जैसा लगता है।

वनराज चावड़ा के विषय में सबसे पहला उल्लेख यही माना जाता है। विमल मन्त्री के विषय में सबसे पहली खोज यही है। गुजरात के राजवंश और प्रधानवंश की यह अविच्छिन्न परम्परा ऐतिहासिक दृष्टि से बहुमूल्यवान् है। इस तरह यह प्रशस्ति गुजरात के इतिहास के लिए महत्त्व की है।

अममस्वामिचरित की प्रशस्ति :

अममस्वामिचरित का परिचय पहले दिया है। उसके अन्त में ३४ पद्यों वाली प्रशस्ति में उस काल के गुजरात के अनेक प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेख मिलता है। जिस गृहस्थ की प्रेरणा से इस चरित्र की रचना की गई थी वह कुमारपाल के महामात्य यशोधवल का पुत्र जगदेव था। वह वराही का निवासी श्रीमाल वैश्य था। वह अच्छा विद्वान् था और बालपन से कविता करता था। हेमचन्द्राचार्य ने उसे बालकवि की पदवी दी थी। वह बालकवि के नाम से सर्वत्र ख्यात था। उसका एक घनिष्ठ मित्र निर्नय मन्त्री ब्राह्मण था। उसका पिता रुद्रशर्मा कुमारपाल का राजज्योतिषी था। मन्त्री निर्नय और एक अन्य भट्ट सूदन दोनों राजमान्य ब्राह्मण थे और जैनधर्म के प्रति खूब सहानुभूति रखते थे। मुनिरत्न की इस कृति का संशोधन राज्य के वरिष्ठ न्यायाधीश कवि कुमार (कवि सोमेश्वर के पिता) ने किया था और इसकी प्रथम हस्तलिपि गुर्जर मन्त्री उदयराज के विद्वान् पुत्र सागरचन्द्र ने लिखी थी और इस चरित्र का प्रथम श्रवण वैयाकरणाग्रणी पं० पूर्णपाल और यशःपाल तथा स्वयं बालकवि (जगदेव) तथा आमण और महानन्द नामक सभ्यों ने किया था। पश्चात् बालकवि ने इस ग्रन्थ की अपने खर्च से अनेक प्रतियाँ बनवाकर विद्वानों को भेंट की थीं।

इस प्रशस्ति में समागत महामात्य यशोधवल का उल्लेख सं० १२१८ के कुमारपालसम्बन्धी एक लेख में आता है। गुर्जर राज्यपुरोहित कवि सोमेश्वर का पिता कवि कुमार भीम द्वितीय के समय सं० १२५५ में गुजरात का वरिष्ठ न्यायाधीश था, यह प्रशस्ति से नई बात मालूम होती है। जैन विद्वान् और राजा के अग्रगण्य ब्राह्मण विद्वानों में परस्पर बहुत सहानुभूति और मित्रता थी, इस बात का सुन्दर उदाहरण इस प्रशस्ति से मिलता है।

यहाँ प्रशस्तियों का महत्त्व बतलाने के लिए हमने कुछ ही प्रशस्तियों का विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की अनेक प्रशस्तियों का हमने यत्र-तत्र संकेत भी किया है। इनकी संख्या बहुत बड़ी है।

ग्रन्थकारप्रशस्ति के अतिरिक्त पुस्तकप्रशस्ति भी बड़े महत्त्व की है। उस काल में ज्ञानप्रिय गृहस्थों ने ताड़पत्र, कागज आदि पर पुस्तकों को लिखाकर संग्रह करने में हजारों-लाखों रुपया खर्च किया था और बड़े-बड़े सरस्वती भण्डार स्थापित किये थे। उन गृहस्थों के सुकृत्यों की स्मारक प्रशस्तियाँ इन पुस्तकों के साथ दी गई हैं। ये पुस्तकप्रशस्तियाँ १२वीं शताब्दी के प्रारम्भ से गुजरात में लिखे गये ग्रन्थों में अधिकतर पाई जाती हैं। इनसे सिद्धराज, कुमारपाल, भीमदेव, वीसलदेव, अर्जुनदेव, सारंगदेव आदि के राज्य, उनके राज्याधिकारियों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं अनेक जैन श्रावकों के विषय में जानकारी मिलती है। सामाजिक और भौगोलिक परिस्थिति के ज्ञान के लिए ये प्रशस्तियाँ बड़ी उपयोगी हैं।

उदाहरण के लिए एक प्रशस्ति का परिचय यहाँ दिया जाता है।

सण्डेर ग्राम के रहनेवाले परबत और कान्ह नामक दो भाइयों ने सं० १५७१ में सैकड़ों ग्रन्थ अपने खर्च से लिखाकर एक बड़ा ज्ञानभण्डार स्थापित किया था। उनके इस कार्य को बतलानेवाली ३३ पद्यों की एक प्रशस्ति उनके द्वारा लिखाई गई प्रत्येक पुस्तक के अन्त में दी गई है। पूना, भावनगर, पाटन और पालीताणा के जैन भण्डारों की हस्तप्रतियों में यह मिलती है। इस प्रशस्ति का परिचय यहाँ दिया जाता है।

पूर्वकाल में संडेर ग्राम में पोरवाड जाति का आभू नामक सेठ था। उसकी चौथी पीढ़ी में चण्डसिंह नामक पुरुष हुआ जिसके ७ प्रतापी पुत्र थे। इन पुत्रों में सबसे बड़ा पेथड था। पेथड का उस स्थान के जागीरदार से किसी कारण झगड़ा हुआ और इस कारण उसने वह स्थान छोड़ दिया और बीजा नामक क्षत्रिय वीर की सहायता से उसने एक बीजापुर नामक नया नगर बसाया। उस ग्राम में रहने आनेवाले लोगों से उसने कुछ चन्दा इकट्ठा कर एक जैनमन्दिर बनवाया और वहाँ पीतल की महावीर जिन की बड़ी विशाल मूर्ति स्थापित की। पेथड ने आबू पर वस्तुपाल-तेजपाल के मन्दिरों का भी जीर्णोद्धार कराया। कर्णदेव बघेला के राज्य में सं० १३६० में अपने ६ भाइयों के साथ उसने शत्रुंजय, गिरनार आदि की यात्रा के लिए एक संघ निकाला। इसके बाद उसने दुबारा ६ बार इन तीर्थों की संघ के साथ यात्रा की। सं० १३७७ में गुजरात में बड़ा दुष्काल पड़ा। उस समय उसने लाखों दीनजनों को अन्नदान करके प्राण बचाये। हजारों स्वर्ण मुहर खर्चकर उसने चार ज्ञानभण्डार भी स्थापित किये। इस पेथड से ४थी पीढ़ी में मंडलिक नामक व्यक्ति ने अनेक मन्दिर, धर्मशाला आदि धर्मस्थान बनवाये। सं० १४६८ में दुष्काल पड़ा तो उसने लोगों को खूब अन्न देकर सुखी किया। सं० १४७७ में बड़ा संघ निकालकर शत्रुंजय आदि तीर्थों की स्थापना की। उसका पुत्र ठाइआ और उसका पुत्र विजिता हुआ। उसके तीन पुत्र परबत, डूंगर और नरबद। परबत और डूंगर दोनों भाइयों ने मिलकर सं० १५५९ में एक विद्वान् को उपाध्याय पदवी देने में बड़ा महोत्सव किया था। सं० १५६० में जीरावला और आबू आदि स्थानों की यात्रा की थी। गंधार बन्दरगाह में जाकर वहाँ के उपाश्रयों के लिए कल्पसूत्र की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखित प्रतियाँ भेंट की थीं। डूंगर ने अपने भाई परबत के साथ मिलकर १५९१ में संडेर में एक ज्ञानभण्डार बनाया। डूंगर का पुत्र कान्हा हुआ।

इस तरह इस प्रशस्ति में एक धनाढ्य कुटुम्ब के ३०० वर्ष तक का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। सं० १३७७ में और १४६८ में गुजरात में बड़ा दुष्काल पड़ा था। इस बात का पता इस प्रशस्ति से लगता है। सं० १३६० में कर्णदेव का राज्यशासन बहुत दूर तक था, इस बात का पता भी इस प्रशस्ति से लगता है। पेथड सेठ द्वारा निकाले गये संघ का वर्णन तत्कालीन रचना पेथड-रास से मालूम होता है और इससे दो वर्ष बाद लिखी प्रशस्ति के वर्णनों की पुष्टि होती है।

इस प्रकार की अन्य प्रशस्तियों से बहुत-सी ऐतिहासिक बातें जानी जा सकती हैं।

इन पुस्तकप्रशस्तियों से श्रीमाल, पोरवाड, ओसवाल, डीसावाल, पल्लीवाल, मोढ, वायडा, धाकड, हूंबड, नागर आदि गुजरात, मध्य भारत की प्रधान-प्रधान वैश्य जातियों एवं कुटुम्बों का प्रामाणिक परिचय भी मिल जाता है।

पुस्तकप्रशस्ति का एक प्रकार लिपिकारप्रशस्ति भी बड़े महत्त्व की है। पुराने समय में ग्रन्थ ताड़पत्र पर लिखा जाता था। ताड़पत्र को वृक्ष से लाकर बहुत श्रम और समय से तैयार किया जाता था। उसकी स्याही बनाने की प्रक्रिया भिन्न होती थी। लिखने और नकल करनेवालों का एक वर्ग होता था। इसमें अनेक विद्वान्, पण्डित और राज्याधिकारी भी होते थे। कायस्थ, नागर और कहीं जैन लेखक भी काम करते थे। पाटन आदि के भण्डारों में ताड़पत्र की पुस्तकें हैं। उनमें से कई मन्त्री या मन्त्री-पुत्र के हाथ की लिखी हैं तो कई दण्डनायक और आक्षपटलिक के हाथ की लिखी। अधिकांश जैन यति लेखन-कला में प्रवीण थे और अपने उपयोग के लिए बहुत पुस्तकें लिखते थे। बड़े-बड़े आचार्य नियमित लेखन कार्य चालू रखते थे। लिपिकार अपने हाथ से लिखे ग्रन्थों के अन्त में लिखने का समय, स्थान, अपना नाम आदि का उल्लेख पाँच-दस पंक्तियों में कर देते थे। इन लेखों को पुष्पिकालेख भी कहते हैं। इन पुष्पिकालेखों में अनेक राजा, राजस्थान, समय, पदवी, अमात्य आदि प्रधान राज्याधिकारियों के विषय में तथा दूसरी ऐतिहासिक बातों का उल्लेख मिलता है।

यहाँ इतिहास निर्माण में पुष्पिकालेखों के प्रयोग का एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के नाम के साथ प्रबन्धों तथा लेखों में सिद्ध-चक्रवर्ती, त्रिभुवनगंड, अवन्तीनाथ आदि विरुद लगे मिलते हैं। ये विशेषण क्यों लगे और इनका क्रम क्या है इसकी विगत ग्रन्थों में मिलती नहीं। शिला-लेख और ताम्रपत्र भी इसे बताने में असमर्थ हैं। परन्तु इनका प्रामाणिक आधार इन पुष्पिका-लेखों में मिलता है।

सं० ११५७ में लिखी निशीथचूर्णि पुस्तक[1] में लिपिकार ने लिपिबद्ध करने का समय निर्देश करते हुए 'श्रीजयसिंहदेवराज्ये' ऐसा सामान्य उल्लेख किया है। इतिहास से हम जानते हैं कि उस समय जयसिंह नाबालिग था और उसका राज्यकार्य उसकी माता मीनलदेवी चलाती थी। उस समय उसके पराक्रम का प्रारम्भ न हुआ था। सं० ११६४ में लिखी 'जीवसमासवृत्ति'[2] की पुष्पिका में उक्त नरेश को 'समस्तराजावली विराजित महाराजाधिराज परमेश्वर श्री जयसिंह देव' विरुदों से युक्त लिखा गया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय वह राजतंत्र को स्वतंत्रतापूर्वक चला रहा था। सं० ११६६ में लिखी 'आवश्यकसूत्र'[3] की पुष्पिका में उस नरेश के महाराजाधिराज के साथ 'त्रैलोक्यगण्ड' विशेषण प्रयुक्त हुआ है। यह उस राजा के 'बर्बर' नामक नृप को जीतने के पराक्रम का सूचक है। संवत् ११७९ में लिखी 'पंचवास्तुक'[4] ग्रन्थ की पुष्पिका से मालूम होता है कि उसका महामात्य शान्तुक था और उसके बाद की उसी वर्ष की 'उत्तराध्ययनसूत्र'[5] की पुष्पिका में जयसिंह का विरुद सिद्धचक्रवर्ती दिया है और महामात्य का नाम आशुक दिया गया है। लगता है उस समय शान्तुक ने अवकाश ग्रहण कर लिया था।

इसी तरह गुजरात के अन्य नृपों के इतिहास-निर्माण में पुष्पिकालेखों का प्रयोग उपयोगी सिद्ध हुआ है।

---

१. जैनपुस्तकप्रशस्तिसंग्रह (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, क्रमांक १८), पृ० ९९.
२. वही, पृ० १००.
३. वही.
४. वही, पृ० ९५.
५. वही, पृ० १०१; हमने अपने ग्रन्थ 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नोर्दन इण्डिया' में इस प्रकार की अन्य पुष्पिकाओं का उपयोग कर इतिहास निर्माण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पट्टावली और गुर्वावलि :

जिस प्रकार ब्राह्मणों और उपनिषदों के समय में अध्येता लोग ब्रह्मा से लेकर 'अस्माभिरधीतम्' तक के विद्यावंश का स्मरण किया करते थे उसी प्रकार जैन लोग भी श्रमण भग० महावीर से प्रारंभ करके उनके गण और गणधरों की परम्परा का स्मरण करते हुए कालान्तर के आचार्यों की गुरु-शिष्य-परम्परा के द्वारा अपने विद्यावंश का पूरा ब्यौरा रखते थे। इससे जैन संघ एक जीवित संस्था बना रहा। जिस तरह शासक राजाओं की वंशावली चलती थी उसी तरह धर्मशासक आचार्यों की थी।[1]

जैन संघ के संगठन की मूल रेखा कल्पसूत्र में मिलती है। इसमें प्राप्त होने वाली पट्टावली[2] व स्थविरावली का समर्थन मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त पहली-दूसरी शती के प्रतिमा-लेखों से होता है। वहाँ का शक्तिशाली संघ समस्त उत्तरापथ में प्रख्यात था। कालान्तर में संघ का एक प्रान्तीय संगठन धीरे-धीरे बढ़ता गया।

आगमों में दूसरी पट्टावली नन्दिसूत्रगत स्थविरावली है जिसकी रचना आचार्य देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने की थी। यह ४३ गाथाओं की है। इसमें अनुयोगधरों की अर्थात् सुधर्मा से देवर्धिगणि तक की पट्टावली दी गई है।

महावीर के बाद जैन संघ में सम्प्रदाय-भेद के सम्बन्ध में कारणों का संकलन तो विभिन्न ग्रन्थों में किया गया है पर इस सम्बन्ध में ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के दिग०-श्वेता० सम्प्रदायभेद के अर्धऐतिहासिक उपाख्यान हमें हरिभद्र और शान्तिसूरि की टीकाओं में मिलते हैं, इनमें बोटिक मत की उत्पत्ति दी गई है और इसी तरह हरिषेण के बृहत्कथाकोश, देवसेन के दर्शनसार (वि० सं० ९९९), द्वितीय देवसेन के भावसंग्रह तथा रत्ननन्दि के भद्रबाहुचरित में श्वेताम्बर संघ की उत्पत्ति की कथा दी गई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०८-१०९ में गुर्वावलियों की तथा पृ० २३२ में पट्टावलियों की सूची दी गई है।

२. पट्टावली पट्टधरावली का संक्षिप्त रूप है। पट्ट का अर्थ आसन या सम्मान का स्थान है। राजाओं के आसन को सिंहासन कहते हैं और गुरुओं के आसन को पट्ट। इस पट्ट पर आसीन गुरुओं को पट्टधर और उनकी परम्परा को पट्टावली कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिग० सम्प्रदाय की पट्टावलियों का प्राचीन रूप कुछ प्राचीन शिलालेखों में तथा तिलोयपण्णत्ति, षट्खण्डागम के वेदनाखण्ड की धवला टीका, कसायपाहुड की जयधवला टीका, जिनसेनकृत आदिपुराण, द्वि० जिनसेनकृत हरिवंशपुराण, गुणभद्रकृत उत्तरपुराण एवं इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार (लग० १६वीं शती) में मिलता है।[1] इन सभी में दी हुई आचार्यपरम्पराएँ केवली, चतुर्दशपूर्वधर, दशपूर्वधर, एकादशांगधर आदि आचार्यों तक की हैं।

मध्यकाल में पश्चिम और दक्षिण भारत में जैनाचार्यों के विविध संघ, गण, गच्छ उदय हुए और उनका प्राचीनकाल की पट्टधरपरम्परा से सम्बन्ध बतलाने के लिए अनेक प्रकार की श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदाय की पट्टावलियाँ और गुर्वावलियाँ रची गईं।[2] वर्तमान काल में इन पट्टावलियों के अच्छे खासे संग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमें श्वेताम्बर पट्टावलियों के उल्लेखनीय संग्रह हैं—मुनि दर्शनविजय द्वारा सम्पादित पट्टावलीसमुच्चय २ भाग; मुनि जिनविजय जी द्वारा संपादित विविधगच्छीय पट्टावलीसंग्रह एवं खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावलि; पं० कल्याणविजयगणिकृत पट्टावली पराग संग्रह और मुनि हस्तिमल्ल द्वारा संकलित पट्टावली प्रबंध संग्रह आदि।[3] दिगम्बर सम्प्रदाय की अनेक पट्टावलियाँ यथा सेनगण पट्टावली, नन्दिसंघ बलात्कारगण सरस्वतीगच्छ पट्टावली, मूल (नन्दि) संघ की दूसरी पट्टावली, शुभचन्द्राचार्य की पट्टावली एवं काष्ठासंघ गुर्वावलि आदि जैन

---

१. डा० विद्याधर जोहरापुरकर सम्पादित 'भट्टारक सम्प्रदाय' के प्रारम्भ में इनमें से कुछ का संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

२. पट्टावलियाँ संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी, गुजराती एवं कन्नड भाषाओं में लिखी हुई मिलती हैं।

३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ११, पृ० २४५-२५६ में Extracts from the Historical Records of the Jains के अन्तर्गत खरतरगच्छ पट्टावली (सं० १८७६) में ७० श्वेता० पट्टधरों का तथा तपागच्छ पट्टावली (सं० १७३२) में ६१ पट्टधरों का परिचय दिया गया है; इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग २३, पृ० १६९-१८२ में Pattavalis of the Anchala Gaccha and other Gacchas में ७ पट्टावलियाँ और इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग १९, पृ० २३३-२४२ में Pattavali of Upakesha Gaccha दी गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्त भास्कर के प्रथम भाग में तथा जैनहितैषी, वर्ष ६, इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग २०-२१[1] तथा भट्टारक सम्प्रदाय में मिलती हैं।

उक्त स्वतन्त्र रचनाओं के अतिरिक्त शिलालेखों और ताम्रपत्रों के प्रारम्भ या अन्त में बहुधा जैनाचार्यों तथा धर्मगुरुओं की विस्तीर्ण पट्टावलियाँ दी गई हैं : जैसे—जैनशिलालेखसंग्रह (डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित), भाग १ के श्रवणबेलगोला से उपलब्ध लेख संख्या १ और १०५ तथा ४२, ४३, ४७ और ५० में दिग० सम्प्रदाय के आचार्यों की, शत्रुंजयतीर्थ के आदिनाथ मन्दिर के शिलालेख (वि० सं० १६५०) में तपागच्छ की पट्टावली और अणहिलपाटन के एक लेख (एपि० इण्डिका, भा० १, पृ० ३१९-३२४) में खरतरगच्छ के उद्योतनसूरि से लेकर जिनसिंहसूरि तक के ४५ आचार्यों की पट्टावलियाँ दी गई हैं।

प्रत्येक संघ-गण और गच्छ की पट्टावली में भग० महावीर से लेकर आज तक जैन पट्टधर आचार्यों की श्रृंखलाबद्ध परम्परा सुरक्षित है और गुरु-शिष्य परम्परा के रूप में उल्लेख करते हुए जैन संघ के आचार्यों के यशस्वी कार्यों का विवरण गुम्फित किया गया है। यहाँ हम कुछ पट्टावलियों या गुर्वावलियों का परिचय देते हैं।

विचारश्रेणी या स्थविरावली :

इसमें[2] पट्टधर आचार्यों की परम्परा के साथ कुछ प्राचीन नरेशों की परम्परागत तिथियों सहित सूची दी गई है जो इतिहास की दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। यह 'जं रयणिं' से प्रारम्भ होनेवाली कुछ प्राकृत गाथाओं की वृत्ति के रूप में संस्कृत गद्य में लिखी गई रचना है। इसमें भग० महावीर और विक्रमादित्य के बीच ४७० वर्ष का अन्तर बतलाया गया है। इसमें प्रसिद्ध

---

१. भाग २०, पृ० ३४१ में Two Pattavalis of the Saraswati Gaccha of Digambara Jains और भाग २१, पृ० ५७ में Three further Pattavalis of Digambaras.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५२; जैन साहित्य संशोधक, खण्ड २, अंक ३-४, सन् १९२५; इसका संक्षिप्त विवरण जर्नल ऑफ दि बोम्बे ब्रांच ऑफ रोयल एशियाटिक सोसाइटी, भाग ९, पृ० १४७ में दिया गया है। लेखक ने अपने ग्रन्थ Political History of Northern India from Jain Sources में उसका अच्छा उपयोग किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य कालक तथा जिनभद्र एवं हरिभद्र का भी वर्णन किया गया है। इससे गुजरात के अनेक राजाओं के राज्यकाल की सूचना मिलती है।

इसकी रचना प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रबन्धचिन्तामणि के रचयिता मेरुतुंग ने की है।

गणधरसार्धशतक :

इसमें १५० गाथाएँ हैं जिनमें खरतरगच्छ के आचार्यों का जीवनवृत्त वर्णित है।[1] इसकी रचना जिनवल्लभसूरि के शिष्य जिनदत्तसूरि (वि० सं० १२११ से पूर्व) ने की थी। इसमें लिखा है कि वर्धमानसूरि के शिष्य और पट्टधर जिनेश्वरसूरि को खरतर की उपाधि दी गई थी इसलिए गच्छ का नाम खरतर हो गया।

इस पर जिनपतिसूरि के शिष्य सुमतिगणि ने सं० १२९५ में ६००० ग्रन्थाग्र-प्रमाण वृत्ति लिखी है। मूल और वृत्ति दोनों को पट्टावली भी कहा जाता है। इन दोनों पर सर्वराजगणि की टीका और पद्ममन्दिरगणिकृत (सं० १६४६) वृत्ति भी मिलती है।

खरतरगच्छ-बृहद्गुर्वावलि :

यह ४००० श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है।[2] इसमें वि० ११वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होनेवाले आचार्य वर्धमानसूरि से लेकर १४वीं शताब्दी के अन्त में होनेवाले जिनपद्मसूरि तक के खरतरगच्छ के मुख्य आचार्यों का विस्तृत चरित वर्णित है। गुर्वावलि अर्थात् गुरुपरम्परा का इतना विस्तृत और विश्वस्त चरित वर्णन करनेवाला ऐसा कोई और ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। इसमें प्रत्येक आचार्य का जीवनचरित्र बड़े विस्तार से दिया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा ली, कब आचार्य पदवी प्राप्त की, किस-किस प्रदेश में विहार किया, कहाँ-कहाँ चातुर्मास किये, किस-किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-शिष्याएँ दीक्षित किये, कहाँ पर किस विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ या वादविवाद किया, किस राजा की सभा में कैसा सम्मान आदि प्राप्त किया इत्यादि अनेक आवश्यक बातों का

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०३ और २३२ (v-vi); हीरालाल हंसराज, जामनगर, १९१६; गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, भाग २७ के परिशिष्ट में भी प्रकाशित.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १०१; सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४२, बम्बई, वि० सं० २०१३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थ में बड़ी विशद रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, सिंध, बागड, पंजाब और बिहार आदि अनेक देशों, अनेक गाँवों में रहनेवाले सैकड़ों धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओं के कुटुम्बों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख मिलता है, साथ ही उन्होंने कहाँ पर कैसे पूजा-प्रतिष्ठा एवं संघोत्सव आदि धर्मकार्य किये, इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढंग की एक अनोखी कृति है। इसमें राजस्थान के अनेक राजवंशों से सम्बद्ध इतिहास-सामग्री, राजकीय हलचलें एवं उपद्रव तथा भौगोलिक बातें दी गई हैं।[1]

रचयिता—प्रस्तुत गुर्वावलि में सं० १३०५ आषाढ़ शु० १० तक का वृत्तान्त तो श्री जिनपतिसूरि के विद्वान् शिष्य श्री जिनपालोपाध्याय ने दिल्ली निवासी सेठ साहुजी के पुत्र हेमचन्द्र की अभ्यर्थना पर संकलित किया था। इसके पश्चात् का वर्णन भी पट्टधर आचार्यों के साथ में रहनेवाले विद्वान् मुनियों द्वारा लिखा गया प्रतीत होता है। इसकी एक प्रति ८६ पत्रों की है और १५-१६वीं शती में लिखी हुई बीकानेर के क्षमाकल्याण ज्ञानभण्डार में विद्यमान है। इसमें सं० १३९३ तक का इतिहास वर्णित है।[2]

वृद्धाचार्य-प्रबंधावलि :

गुर्वावलि के रूप में यह कृति प्राकृत भाषा में ग्रथित है।[3] इसमें वर्धमानसूरि से लेकर जिनप्रभसूरि तक के १० आचार्यों का वर्णन दिया गया है। जिनप्रभसूरि विविधतीर्थकल्प आदि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता हैं। वे अपने समय में बहुत प्रभावशाली एवं प्रतिभासम्पन्न आचार्य हुए थे। इनका सम्मान दिल्ली का बादशाह मुहम्मद तुगलक करता था, यह कई पट्टावलियों एवं प्रबन्धात्मक कृतियों

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित उक्त ग्रन्थ की भूमिका के पृ० ६-१२ में इस गुर्वावलि के ऐतिहासिक महत्त्व को बतलानेवाला श्री अगरचन्द नाहटा का लेख प्रकाशित है।

२. इसके पश्चात् इतिहास जानने के लिए हमें कोई भी इस कोटि की गुर्वावलि उपलब्ध नहीं है परन्तु शृंखलाबद्ध इतिहास लिखने की प्रथा पीछे बराबर रही है। सं० १८६० की एक सूची के अनुसार जैसलमेर के सुप्रसिद्ध जैन ज्ञानभण्डार में उस समय ३१२ पत्रों की एक गुर्वावलि विद्यमान थी।

३. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४२, पृ० ८९-९६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से मालूम होता है। पर जिनप्रभसूरि का नाम मात्र भी उपरिनिर्दिष्ट खरतरगच्छ-गुर्वावलि में नहीं दिया गया। इससे ज्ञात होता है कि उक्त गुर्वावलि के संकलन-कर्ता का मुख्य उद्देश्य अपनी गुरुपरम्परा मात्र का महत्त्व अंकित करना था और अन्य गच्छीय या अन्य शाखीय आचार्यों के बारे में उपेक्षा भाव रखना।

इस प्रबन्धावलि का प्रणयन जिनप्रभसूरि की शिष्य-परम्परा के किसी शिष्य ने किया है।

खरतरगच्छ-पट्टावली-संग्रह :

यह चार पट्टावलियों का संग्रह[1] है जिसे मुनि जिनविजय जी ने संग्रह एवं सम्पादित कर प्रकाशित कराया था। इनमें प्रथम एक प्रशस्ति के रूप में है। इसमें कुल संस्कृत पद्य ११० हैं और यह आचार्य जिनहंससूरि के समय में रची गई है पर कर्ता का नाम नहीं दिया गया। जिनहंस का समय वि० १५८२ है और उसी वर्ष इसका निर्माण हुआ है। इसमें खरतरगच्छ के आचार्यों का समय व्यवस्थित दिया गया है।

दूसरी पट्टावली संस्कृत गद्य में है। इसकी रचना सं० १६७४ में की गई थी। इसका तिथिक्रम अव्यवस्थित है।

तीसरी पट्टावली भी अव्यवस्थित है। इसकी पट्टपरम्परा तथा तिथिक्रम सब अव्यवस्थित ही है।

चौथी पट्टावली सं० १८३० में अमृतधर्म के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याण ने रची थी।[2] यह प्रथम तीन पट्टावलियों से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

खरतरगच्छ की अनेक हस्तलिखित पट्टावलियों का परिचय पं० कल्याण-विजयगणि सम्पादित पट्टावलिपरागसंग्रह[3] में तथा मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ[4] में २३ पट्टावलियों और गुर्वावलियों की सूची दी गई है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०१; पूरणचन्द्रजी नाहर द्वारा कलकत्ता से सन् १९३२ में प्रकाशित.

२. जिनरत्नकोश, पृ० १०१.

३. क० वि० शास्त्रसंग्रह समिति, जालोर.

४. द्वितीय खण्ड, पृ० ३१-३२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुर्वावलि :

मुनिसुन्दरसूरि ने सं० १४६६ में एक विज्ञप्तिग्रन्थ अपने गुरु देवसुन्दरसूरि की सेवा में समर्पित किया था, उसका नाम त्रिदशतरंगिणी[1] था। इस विज्ञप्ति-पत्र का संस्कृत साहित्य और इतिहास में सबसे अधिक महत्त्व है। इस जैसा विशाल और प्रौढ़ पत्र किसी ने नहीं लिखा। यह १०८ हाथ लम्बा था और इसमें एक से एक विचित्र और अनुपम सैकड़ों चित्र थे तथा हजारों काव्य (पद्य) दिखाई पड़ते थे। इसमें ३ स्तोत्र और ६१ तरंग थे।[2] वर्तमान में यह समग्र नहीं मिलता। केवल तीसरे स्तोत्र का गुर्वावलि नाम का एक विभाग और प्रासादादि चित्रबंध अनेक स्तोत्र यहाँ-वहाँ फैले मिलते हैं।

इस गुर्वावलि में ४९६ विविध छन्दों के पद्य हैं। इसमें श्रमण भग० महावीर से लेकर लेखक पर्यन्त तपागच्छ के आचार्यों का संक्षिप्त एवं विश्वस्त इतिहास दिया गया है।

गुर्वावलि या तपागच्छ-पट्टावलीसूत्र :

इसे उक्त दो नामों के अतिरिक्त केवल पट्टावली नाम से भी कहते हैं।[3] यह २१ प्राकृत पद्यों की गुर्वावलि है जो प्राचीन पट्टावलियों के आधार पर बड़ी सावधानी से बनाई गई है। इसमें भग० महावीर से लेकर तपागच्छ के आचार्य हीरविजयजी और उनके शिष्य विजयसेनसूरि तक ५९ आचार्यों की पट्टधर परम्परा दी गई है। इसके रचयिता धर्मसागरगणि हैं। इस पर एक स्वोपज्ञ वृत्ति भी है जिसके अन्त में लिखा है कि यह पट्टावली श्री विजयहीरसूरीश्वर के आदेश से उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि, उपाध्याय कल्याणविजयगणि, सोमविजयगणि, पं० लब्धिसागरगणि प्रमुख गीतार्थों ने एकत्र होकर सं० १६४८ के चैत्र वदि ६ शुक्रवार को अहमदाबाद नगर में श्री मुनिसुन्दरकृत गुर्वावलि, जीर्ण पट्टावली, दुष्षमासंघ स्तोत्रयंत्रक आदि के आधार से संशोधित की है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १०९; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, सं० १९६१.

२. श्रीमहापर्वाधिराजश्रीपर्युषणापर्वविज्ञप्तित्रिदशतरङ्गिण्यां तृतीये श्रीगुरुवर्णन-स्रोतसि गुर्वावलिनाम्नि महाह्रदेऽनभिव्यक्तगणना एकषष्टिस्तरंगाः।

३. जिनरत्नकोश, पृ० १०८; पट्टावलीसमुच्चय (वीरमगाम, १९३३), भा० १, पृ० ४१-७७; पट्टावलीपरागसंग्रह (जालौर, १९६६), पृ० १३३-१५५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तपागच्छ की मुख्य शाखा और प्रशाखाओं की अनेक पट्टावलियाँ यथा—उपाध्याय गुणविजयगणिकृत तपागणयतिगुणपद्धति, उपाध्याय मेघविजयकृत तपागच्छपट्टावली, उपाध्याय रविवर्धनकृत पट्टावलीसारोद्धार, नयसुन्दरकृत बृहत्पौषधशालिक-पट्टावली (प्राकृत), लघु-पौषधशालिक-पट्टावली, तपागच्छ-सागरशाखा-पट्टावली १-२-३, विजयसंविग्नशाखा-पट्टावली, सागरसंविग्न-शाखा, विमलसंविग्नशाखा, पार्श्वचन्द्रगच्छ-पट्टावली १-२, बृहद्गच्छ-गुर्वावली, उकेशगच्छीय-पट्टावली, पौर्णमिकगच्छ-पट्टावली, अंचलगच्छ-पट्टावली, पल्लिवाल-गच्छीय-पट्टावली आदि पट्टावलीपरागसंग्रह में पं० कल्याणविजयगणि ने संकलित की हैं। उनका वैशिष्ट्य एवं महत्त्व उक्त ग्रन्थ में ही द्रष्टव्य है।

दिगम्बर सम्प्रदाय की कुछ पट्टावलियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

सेनपट्टावली :

सेनगण की दो पट्टावलियाँ मिलती हैं। पहली[1] संस्कृत के ४७ पद्यों में है जो भट्टारक लक्ष्मीसेन (सं० १५८० के लगभग) तक है।

दूसरी संस्कृत गद्य में लिखी गई लगभग ५० अनुच्छेदों की रचना है[2] जिसमें सेनगण के ४७वें पट्टधर दिल्ली सिंहासन के अधीश्वर छत्रसेन भट्टारक की गुरुपरम्परा का वर्णन है। गणना के अनुसार छत्रसेन सेनगण के ४७वें भट्टारक थे जिनका समय सं० १७५४ था। दोनों पट्टावलियों में उल्लिखित आचार्यों में सोमसेन से कुछ ऐतिहासिक स्वरूप दिखाई देता है। इसके पहले भी २६ भट्टारकों का वर्णन आया है। दूसरी पट्टावली में समागत अन्तिम भट्टारक छत्रसेन का प्रभाव कारंजा से दिल्ली तक था। इनकी कई कृतियाँ भी मिलती हैं।

बलात्कारगण की पट्टावलियाँ :

बलात्कारगण और उसकी विभिन्न शाखाओं का परिचय भट्टारक सम्प्रदाय में व्यवस्थित रूप से दिया गया है। इसकी ईडर शाखा की दो पट्टावलियाँ

---

१. जैन एण्टीक्वेरी, भाग १३, अंक २, पृ० १-७.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष १, पृ० ३८; इससे कुछ भिन्न और अधिक अच्छी प्रति श्री मा० स० महाजन, नागपुर के संग्रह में है। विशेष विवेचन के लिए देखें—डा० वि० जोहरापुरकर सम्पादित भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २६-३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाश में आई हैं। पहली संस्कृत गद्य में है।[1] इसमें भट्टारक पद्मनन्दि, सकलकीर्ति, भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण, विजयकीर्ति, शुभचन्द्र (पाण्डव पुराणादि अनेकों ग्रन्थों के रचयिता), सुमतिकीर्ति, गुणकीर्ति एवं वादिभूषण तक की परम्परा दी गई है तथा उन भट्टारकों की महिमा, ग्रन्थकर्तृत्व आदि पर प्रकाश डाला गया है। वादिभूषण का समय सं० १६५२ के आस-पास है। उक्त पट्टावली के अनेक भट्टारक अच्छे ग्रन्थकर्ता थे।

ईडर शाखा की दूसरी[2] पट्टावली (गुर्वावलि) संस्कृत छन्दों में है जिनकी संख्या ६३ है। इसमें भट्टारक सकलकीर्ति से लेकर चन्द्रकीर्ति (सं० १८३२) तक की परम्परा दी गई है। यह गुर्वावलि बड़े महत्त्व की है। इसमें गुप्तिगुप्त से लेकर अभयकीर्ति तक लगभग १०० आचार्यों का नाम दिया है जो वनवासी थे और जिन्हें बलात्कारगण की प्राचीन परम्परा से जोड़ा गया है (१-२१ पद्य तक)। तत्पश्चात् उत्तर भारत के भट्टारकपीठों की परम्परा वसन्तकीर्ति से प्रारम्भ की गई है (पद्य २१)। वसन्तकीर्ति के विषय में कहा जाता है कि ये ही दिग० मुनियों के वस्त्रधारण के प्रवर्तक थे।[3] इनकी जाति बघेरवाल और निवासस्थान अजमेर था। ये सं० १२६४ की माघ शु० ५ को पदारूढ़ हुए थे तथा १ वर्ष ४ मास पट्ट पर थे। इनका उल्लेख बिजौलिया के शिलालेख में भी हुआ है।

वसन्तकीर्ति के बाद क्रमशः विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मचन्द्र, रत्नकीर्ति, प्रभाचन्द्र (७४ वर्ष तक पट्टाधीश), पद्मनन्दि हुए।

भट्टा० पद्मनन्दि के तीन प्रमुख शिष्यों द्वारा तीन भट्टारकपरम्पराएँ प्रारम्भ हुई जिनका आगे अनेक प्रशाखाओं में विस्तार हुआ। इनमें से ईडरशाखा के सकलकीर्ति और उनकी भट्टपरम्परा का वर्णन प्रस्तुत गुर्वावलि के पद्य ३२ से ६२ तक में विस्तार से दिया गया है। शुभचन्द्र से चलनेवाली दिल्ली-जयपुर-शाखा का वर्णन दूसरी गुर्वावलि में दिया गया है तथा देवेन्द्रकीर्ति से चलनेवाली परम्परा सूरतशाखा की अन्य पट्टावली में द्रष्टव्य है।

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष १, किरण ४, पृ० ४६ प्रभृति; विशेष विवेचन के लिए देखें—भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५३-१५६.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, वर्ष १, किरण ४, पृ० ५१ प्रभृति; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १५३–१५८.

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४९०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलात्कारगण–दिल्ली-जयपुर-शाखा की एक पट्टावली[1] ४२ पद्यों की मिलती है। यह पट्टावली ईडरशाखा की उक्त ६३ पद्यों की गुर्वावलि में कुछ हेर-फेर कर बनाई गई है। इसके २६, २७ और २८वें पद्य उक्त गुर्वावलि के क्रमशः २७, २९ और ३०वें पद्य हैं। पद्य २९वें में उक्त शाखा के शुभचन्द्र (सं० १४५०–१५०७) भट्टारक का वर्णन है। इसके बाद उक्त शाखा के जिनचन्द्र, प्रभाचन्द्र, चन्द्रकीर्ति, देवेन्द्रकीर्ति एवं नरेन्द्रकीर्ति का वर्णन कर यह पट्टावली समाप्त होती है। इनमें भट्टा० जिनचन्द्र अति प्रसिद्ध हैं। उनके द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियाँ सबसे अधिक हैं। प्रतिष्ठाकर्ता सेठ जीवराज पापड़ीवाल के प्रयत्नों से ये हजारों मूर्तियाँ भारत के कोने-कोने में पहुँची हैं। इनकी प्रतिष्ठा सं० १५४८ अक्षयतृतीया को हुई थी।

बलात्कारगण–भानुपुर-शाखा तथा सूरत-शाखा की पट्टावलियाँ भी संस्कृत भाषा में रचित मिली हैं। पहली[2] संस्कृत के ५५-५६ पद्यों में है। इस शाखा का प्रारम्भ भट्टारक सकलकीर्ति के प्रशिष्य भट्टा० ज्ञानकीर्ति से होता है। प्रस्तुत पट्टावली के ३४ पद्यों तक प्राचीन परम्परा का वर्णन कर इस शाखा के पट्टधरों का वर्णन पद्य ३५ से किया है। इसमें ज्ञानकीर्ति (सं० १५३४) से लेकर भट्टारक रत्नचन्द्र (सं० १७७४–८६) तक की परम्परा दी गई है।

सूरतशाखा की पट्टावली[3] संस्कृत गद्य में है और इसमें भी पूर्वाचार्यों से सम्बन्ध जोड़ते हुए भट्टारक पद्मनन्दि के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति (सं० १४९३) से चलनेवाली उक्त शाखा का विस्तार से वर्णन है जिसे उक्त शाखा के भट्टा० विद्यानन्दि (सं० १८०५-१८२२) के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति (सं० १८४२) तक लाकर समाप्त किया गया है। इसे नन्दिसंघ-विरुदावली भी कहा गया है। इसकी रचना देवेन्द्रकीर्ति (द्वि०) के शिष्य सुमतिकीर्ति ने की है।

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, किरण ४, पृ० ८१; इस पट्टावली के प्रमाण में कतिपय शिलालेख दिये गये हैं। विशेष विवेचन के लिए देखें—भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ९७–११३.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ९, पृ० १०८-११९; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० ११९-१६८.

३. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ९, पृ० ४६–५३; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० १६९-२०१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलात्कारगण की एक प्राकृत भाषा में भी पट्टावली मिलती है जिसे नन्दि-संघ-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छ की पट्टावली कहा जाता है।

काष्ठासंघ-माथुरगच्छ-पट्टावली :

यह[1] ५३ संस्कृत पद्यों की पट्टावली है जिसके २१ पद्यों में काष्ठासंघ के प्राचीन पट्टधरों का नामांकन कर मध्यकालीन माथुरगच्छ की माधवसेन (१३वीं शती का पूर्वार्ध) से प्रारम्भ होनेवाली परम्परा का पद्य संख्या २२ से विस्तार-पूर्वक वर्णन किया गया है जो अन्तिम पट्टधर मुनीन्द्रकीर्ति (सं० १९५२) तक जाकर समाप्त हुआ है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। यह एक अच्छी काव्यात्मक कृति है।

काष्ठासंघ-लाडबागड-पुन्नाटगच्छ-पट्टावली :

यह संस्कृत गद्यात्मक कृति है।[2] इसमें उल्लिखित आचार्यों में महेन्द्रसेन (१२ शता० का उत्तरार्ध) पहले ऐतिहासिक व्यक्ति प्रतीत होते हैं। इन्होंने त्रिषष्टिपुरुषचरित्र लिखा था और मेवाड़ में क्षेत्रपाल को उपदेश देकर चमत्कार दर्शाया था। इनके पहले अंगज्ञानी आचार्यों के बाद क्रम से विनयधर से लेकर केशवसेन तक १६ आचार्यों का उल्लेख है तथा महेन्द्रसेन की परम्परा के त्रिभुवनकीर्ति (१६वीं शती) तक का वर्णन है।

तीर्थमालाएँ :

भारतीय अन्य धर्मों की भांति जैनों के भी अपने तीर्थ हैं जो उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक फैले हुए हैं। उनके दर्शन-वन्दन के लिए प्राचीन समय से ही जैन संघपति और मुनिगण समारोहपूर्वक लम्बी-लम्बी यात्राएँ करते थे और उनकी यात्राओं का विवरण तथा तीर्थों का परिचय लिख डालते थे।[3] इन यात्राओं और तीर्थों का परिचय बड़े-बड़े पुराण एवं चरितात्मक

---

१. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, पृ० १०३-१०७; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २१३-२४७.

२. श्री मा० स० महाजन, नागपुर के संग्रह में; भट्टारक सम्प्रदाय, पृ० २४८-२६१.

३. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ में 'जैन साहित्य का भौगोलिक महत्त्व' के लेखक श्री अगरचन्द नाहटा ने तीर्थमाला-विषयक प्रकाशित सामग्री का परिचय दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थों में भी विस्तार से दिया गया है। इस बात का उल्लेख हम विविध प्रसंगों में कर आये हैं। इन पर स्वतंत्र रचनाएँ भी लिखी गई हैं। इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रन्थ हमें धनेश्वरसूरि का 'शत्रुंजयमाहात्म्य' (१३वीं शती का पूर्वार्ध) मिला है। इसका परिचय तीर्थ-माहात्म्य-विषयक कथाओं में हम दे आये हैं।

दिगम्बर सम्प्रदाय के लेखकों ने भी १३वीं शती में कुछ तीर्थमालाओं का प्रणयन किया है। उनमें प्रथम उल्लेखनीय छोटी-छोटी दो भक्तियाँ हैं: पहली प्राकृत निर्वाणभक्ति या निर्वाणकाण्ड और दूसरी संस्कृत निर्वाणभक्ति।[1]

प्राकृत निर्वाणभक्ति या निर्वाणकाण्ड में चौबीस तीर्थंकर एवं अन्य ऋषि-मुनियों के निर्वाणस्थानों का निर्देश कर वहाँ से मुक्ति पानेवालों को नमस्कार किया गया है। निर्वाणकाण्ड में केवल १९ गाथाएँ मिलती हैं। इसकी अनेक प्रतियाँ मिलती हैं, उनमें गाथाओं की संख्या एक-सी नहीं है। कहीं-कहीं गड़बड़ भी है। निर्वाणकाण्ड के अन्त में कहीं-कहीं आठ गाथाएँ और भी लिखी मिलती हैं 'अइसयखेत्तकण्ड' (अतिशयक्षेत्रकाण्ड) नाम से। परन्तु लगता है कि वह जुदा ही है। भाषाकार पं० भगवतीदास ने इन आठ गाथाओं का अनुवाद ही नहीं किया है।

दूसरी संस्कृत निर्वाणभक्ति में ३२ पद्य हैं। इसके पहले २० पद्यों में केवल महावीर के पाँचों कल्याणों का वर्णन है और फिर आगे के १२ पद्यों में कैलास, चम्पापुर, गिरनार, पावापुर, सम्मेदशिखर, शत्रुंजय का उल्लेख मात्र करके अन्य निर्वाणस्थानों के नाम मात्र दे दिये हैं। पहले के २० पद्यों को पढ़कर तो मालूम होता है कि वे एक स्वतन्त्र स्तोत्र के पद्य हैं जिनके अन्त में उसके पढ़नेवालों को नरलोक-देवलोक के सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त होना बतलाया है।

दोनों भक्तियाँ स्वतन्त्र रचनाएँ हैं। प्राकृत निर्वाणकाण्ड में पश्चिम भारत के कुछ ऐसे तीर्थों के नाम हैं जो संस्कृत निर्वाणभक्ति में नहीं हैं और उसमें वर्णित कुछ तीर्थों के नाम प्राकृत निर्वाणकाण्ड में नहीं हैं। इससे ज्ञात होता है कि दोनों भक्तियाँ विभिन्न कालों की रचनाएँ हैं और सम्भव है कि इनके कर्ता एक-दूसरे की रचना से अपरिचित रहे हों।

प्राकृत निर्वाणकाण्ड में वर्णित कई तीर्थों से मोक्षगमन करनेवाले महापुरुषों का समर्थन या तो प्राचीन शास्त्रों से नहीं होता या विपरीत बैठता है। यथा—

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४२२-४२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तारउर (तारापुर) से वरांगादि का मोक्ष जाना लिखा है पर वरांगचरित के अनुसार वे मुक्त नहीं हुए, सर्वार्थसिद्धि को गये हैं। गाथा ८ में तुंगीगिरि से राम, हनुमान् आदि का मोक्ष जाना लिखा है पर उत्तरपुराण के अनुसार ये सब सम्मेदशिखर से मोक्ष गये हैं।

प्रभाचन्द्र (१२वीं शती) के क्रियाकलाप में संस्कृत निर्वाणभक्ति संगृहीत है, प्राकृत निर्वाणभक्ति या निर्वाणकाण्ड का संग्रह नहीं है। प्रभाचन्द्र के कथनानुसार संस्कृत भक्तियाँ पादपूज्य (?) स्वामीकृत हैं। पर ये पादपूज्य या पूज्यपाद कौन हैं? लिखा नहीं। अन्य स्रोतों से भी उक्त लेखक द्वारा रचित होने की पुष्टि नहीं होती। पं० आशाधर (१३वीं शती) के क्रियाकलाप में प्रभाचन्द्र के क्रियाकलाप की अधिकांश भक्तियाँ संगृहीत हैं पर उन्होंने उनके कर्ताओं के सम्बन्ध में कोई बात नहीं लिखी। आशाधर के क्रियाकलाप में प्राकृत निर्वाणभक्ति की केवल पाँच ही गाथाएँ दी गई हैं। शेष गाथाएँ उसमें छूटी हुई सी लगती हैं।

यद्यपि इन दोनों भक्तियों के रचे जाने का ठीक समय अब तक नहीं मालूम फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि ये दोनों कवि आशाधर से पहले के अर्थात् लगभग ६-६½ सौ वर्ष पहले के निश्चित हैं।

१३वीं शती में विविध तीर्थों की परिचायिका एक अन्य कृति 'शासनचतुस्त्रिंशिका'[1] मिलती है जिसमें २६ तीर्थस्थानों और उनकी प्रभावशाली जैन प्रतिमाओं का वर्णन मिलता है। इसमें कुल ३६ पद्य हैं जो अनुष्टुभ् मान से ८४ श्लोक जितने हैं। पहला पद्य अनुष्टुभ् है और अन्तिम प्रशस्तिपद्य मालिनी छन्द में है। शेष पद्य विषयवस्तु के प्रतिपादक शार्दूलविक्रीडित छन्द में हैं। सभी शार्दूलविक्रीडित छन्दों के अन्तिम चरण का द्वितीयार्ध 'दिग्वाससां शासनम्' से समाप्त होता है। इसके रचयिता अपने समय के प्रसिद्ध आचार्य मदनकीर्ति हैं जो दिग० विशालकीर्ति के शिष्य थे। राजशेखरसूरि ने अपने सं० १४०५ में रचित प्रबन्धकोश में इनके जीवन पर 'मदनकीर्तिप्रबन्ध' नामक एक प्रबन्ध लिखा है। मदनकीर्ति की उपाधि 'महाप्रामाणिक-चूड़ामणि' भी थी। इसकी रचना धारानगरी में की गई थी। लेखक कवि पं० आशाधर के समकालीन थे। यह कृति ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व की है। इसमें परमारनरेश

---

१. पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित एवं वीर सेवा मन्दिर, सरसावा से सन् १९४९ में प्रकाशित; चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४०३-४०५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैतुगिदेव के समय मालवा में हुए मुस्लिम आक्रमण का उल्लेख मिलता है (म्लेच्छैः प्रतापागतैः)।

तीर्थमाला-सम्बन्धी अन्य रचनाओं में जिनप्रभसूरिकृत विविधतीर्थकल्प, अंचलगच्छीय महेन्द्रसूरि (सं० १४४४) कृत तीर्थमालाप्रकरण, धर्मघोष के शिष्य महेन्द्रसूरिकृत तित्थमालाथवण (तीर्थमालास्तवन) एवं धर्मघोषकृत तीर्थमालास्तवन का संक्षिप्त परिचय इस बृहद् इतिहास के चतुर्थ भाग में दिया गया है।

गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं में तीर्थयात्राओं के विवरण प्रस्तुत करनेवाले कई ग्रन्थ लिखे गये हैं। विजयधर्मसूरि ने प्राचीनतीर्थमालासंग्रह प्रकाशित कराया है। वि० सं० १७४६ में शीलविजय द्वारा रचित तीर्थमाला और ब्र० ज्ञानसागरकृत तीर्थावली भी उल्लेखनीय है।

भारतीय भूगोल[1] के अनुसन्धान में इन तीर्थमालाओं से पुराणगत तीर्थ-माहात्म्यों की तरह बहुत सहायता मिल सकती है।

विज्ञप्तिपत्र :

वर्षाकाल में श्वेताम्बर जैन पर्यूषण पर्व के अन्तिम दिन सांवत्सरिक पर्व मनाते हैं, उस दिन परस्पर क्षमायाचना एवं क्षमादान किया जाता है। इस अवसर पर दूरवर्ती गुरुजनों को जो क्षमापत्र भेजे जाते थे, उन्हें खमापणा या विज्ञप्ति-पत्र कहते हैं। गुजरात में इसे टीपणा कहते हैं। श्वेता० सम्प्रदाय के एक वर्ग के आचार्य श्रीपूज्य कहलाते हैं। उन्होंने इस प्रकार के पत्रलेखन का विशेष विकास किया। पहले ये पत्र खमापणा के लिए लिखे जाते थे पर पीछे स्थानीय जैन संघ, जिसे धर्मप्रभावना के लिए किसी आचार्य या मुनि को अगले वर्ष चातुर्मास कराने की उत्कण्ठा होती थी, उन्हें आमन्त्रित करने के लिए प्रार्थनापूर्ण निमन्त्रणपत्र या विनन्तिपत्र के रूप में विज्ञप्ति-पत्र का उपयोग करने लगा। ऐसे विज्ञप्ति-पत्रों का उद्गमस्थान गुजरात-काठियावाड़ था पर धीरे-धीरे राजस्थान से बंगाल तक के क्षेत्र में इनका प्रसार हो गया।

पहले ये मोटे कागज पर लिखे जाते थे जो १० या १२ इञ्च चौड़ा होता था पर पीछे तो इतने लम्बे होने लगे कि उनमें से एक वि० सं० १४६६ का १०८ हाथ का मिला है। इसी तरह बीकानेर से सं० १८९६ का

१. श्री अगरचन्द नाहटा का एतद्विषयक लेख देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७ फुट लम्बा और ११ इञ्च चौड़ा मिला है। इन लम्बे विज्ञप्ति-पत्रों में चित्रकारी को भरपूर स्थान दिया गया है। प्रेषण-स्थान का चित्रमय प्रदर्शन किया गया है। बीकानेर से प्राप्त उक्त पत्र के ५५ फुट में बीकानेर के मुख्य बाजार और दर्शनीय स्थानों का वास्तविक और कलापूर्ण चित्रण है। इन पत्रों में जैन संघ के सदस्यों का परिचय, क्षेत्रीय भौगोलिक वर्णन एवं कभी-कभी इतिहासविषयक घटनाएँ भी आ गई हैं। आगरा जैन संघ की ओर से युगप्रधान विजयसेनसूरि के पास पाटन में भेजे गये एक विज्ञप्तिपत्र में मुगल सम्राट जहांगीर द्वारा सं० १६१० में आगरा जैन समाज को फरमान दिये जाने की घटना अंकित है। उसमें जहांगीर, शाहजादा खुर्रम तथा राजा रामदास के भी चित्र हैं। चित्रकार प्रसिद्ध शालिवाहन है जो जहांगीरी दरबार के कुशल चितेरों में से है। उसमें आगरे की तत्कालीन जनता का भी अंकन है। इसी तरह मेड़ता से वीरमपुर भेजे गये ३२ फुट लम्बे विज्ञप्तिपत्र में १७ फुट में नाना प्रकार की चित्रकारी दी गई है।

ये विज्ञप्तिपत्र[1] कुछ तो संस्कृत में और अधिकांश संस्कृतमिश्रित स्थानीय भाषा में लिखे मिलते हैं। ये गद्य और पद्य दोनों में मिलते हैं। संस्कृत में लिखे गये कई विज्ञप्तिपत्र प्रथम श्रेणी के आलंकारिक काव्यों के नमूने हैं। इनमें कई खण्डकाव्य व दूतकाव्य के अच्छे उदाहरण हैं। जैन कवियों ने दूत-काव्य का उपयोग इस प्रकार के पत्रों के लिखने में भी किया है। इस प्रकार

---

१. **अनेक विज्ञप्तिपत्रों का परिचय श्री अगरचन्द नाहटा ने दिया है। इस विषय में उनके निम्नांकित लेख पठनीय हैं :**

   १. पौने छः सौ वर्ष प्राचीन विज्ञप्तिपत्र, विकास, १. १; वीर, २५. १०-१२.
   २. बीकानेर का सचित्र विज्ञप्तिपत्र, राजस्थान भारती, १. ४; वीर, २४.४८.
   ३. बीकानेर का एक प्राचीन सचित्र विज्ञप्तिलेख, राजस्थान भारती, ३. ३-४.
   ४. जयपुरी कलम का एक विज्ञप्तिलेख, अवन्तिका, १. १०.
   ५. उदय का सचित्र विज्ञप्तिपत्र, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ५७. २-३; जैन सन्देश, १७. १८.
   ६. उदयपुर का एक और विज्ञप्तिपत्र, शोधपत्रिका, ४. ३.
   ७. उपा० मेघविजय के चार विज्ञप्तिलेख, जैन सत्यप्रकाश, १३. १.
   ८. बीकानेर जैन लेखसंग्रह की भूमिका, पृ० ८७-९४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की कृतियों में विनयविजयकृत इन्दुदूत[१], विजयामृतसूरिकृत मयूरदूत,[२] मेघविजय-कृत मेघदूत—समस्यालेख[३] तथा चेतोदूत[४] हैं।

कतिपय विज्ञप्तियों का यहाँ संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं :

संस्कृत काव्य के रूप में सबसे प्राचीन विज्ञप्तिपत्र[५] सं० १४६६ का मिला है जो १०८ हाथ लम्बा था। इसका दूसरा नाम 'त्रिदशतरंगिणी' है। यह मुनि-सुन्दरसूरि ने अपने गुरु देवसुन्दरसूरि के लिए लिखा था। इसके एक भाग में तपागच्छ की गुर्वावलि भी थी। इसका वर्णन हम पहले कर आये हैं।

'विज्ञप्तित्रिवेणी'[६] नामक एक विज्ञप्तिपत्र सं० १४८४ में जयसागरगणि ने लिखा। इसमें सिन्धुदेश के मल्लिवाहनपुर से कवि ने अणहिलपुर में रहनेवाले अपने गुरु खरतरगच्छनायक जिनभद्रसूरि के लिए विज्ञप्तिरूप में एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अपने तीर्थप्रवासादि का वर्णन किया है। यह सुन्दर काव्य है।

ग्रन्थकर्ता जयसागरगणि[७] पृथ्वीचन्द्रचरित्र (सं० १५०३), पार्श्वजिनालय-प्रशस्ति (सं० १४७३), पर्वरत्नावली आदि अनेकों ग्रन्थों के रचयिता हैं। इनके दीक्षागुरु जिनराज, विद्यागुरु जिनवर्धन एवं उपाध्याय जिनभद्रसूरि थे।

सं० १६६० के लगभग तपा० आनन्दविजय के शिष्य मेरुविजयकृत संस्कृत में एक विज्ञप्तिपत्री का उल्लेख मिलता है।[८]

इसके बाद संस्कृत काव्यरूप में विनयविजयकृत तीन विज्ञप्तिपत्र मिलते हैं।[९] पहला इन्दुदूत है जो कालिदास के मेघदूत की शैली पर लिखा गया है। इसे विनयविजय ने जोधपुर से अपने सूरत नगर में विराजमान गुरु विजयप्रभसूरि के

१. काव्यमाला, १४, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.
२. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद, सं० २०००.
३. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, संख्या २४.
४. वही, संख्या २५.
५. मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित विज्ञप्तित्रिवेणी, पृ० ३० आदि.
६. जिनरत्नकोश, पृ०३५५; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१६.
७. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४७४-७५.
८. जिनरत्नकोश, पृ० ६५५.
९. काव्यमाला, १४, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए लिखा है। इसमें जोधपुर, जालोर, सिरोही, आबू, सिद्धपुर, अहमदाबाद, बड़ौदा, भड़ौच और सूरत का वर्णन है। इसका विशेष परिचय हम दूतकाव्यों के प्रसंग में देंगे।

विनयविजयकृत दूसरा विज्ञप्तिपत्र सं० १६९४ में लिखा गया था जिसे अहमदाबाद के समीप बारेजा ग्राम में विराजते हुए उन्होंने खम्भात में विराजते हुए अपने गुरु विजयानन्दसूरि के लिए लिखा था। तीसरा विज्ञप्तिपत्र विनयविजय द्वारा देवपट्टन (प्रभासपाटन) से अणहिलपुरपाटन में स्थित विजयदेवसूरि को भेजा गया था। इसकी रचना अद्भुत है। इसके पद्यों का अर्धांश प्राकृत में और अर्धांश संस्कृत में रचा गया है।[1]

विनयविजय हीरविजय के शिष्य कीर्तिविजय के शिष्य थे। इनके विरचित नयकर्णिका, षट्त्रिंशत्जल्प (संस्कृत गद्य), शान्तिसुधारस आदि अनेक ग्रन्थ हैं।[2]

डा० हीरानन्द शास्त्री द्वारा विरचित ग्रन्थ Ancient Vijnaptipatras[3] में लगभग २४ विज्ञप्तिपत्रों का परिचय दिया गया है। उनमें अनेक राजस्थानी एवं गुजराती में हैं। लगभग ६ संस्कृत में हैं: ३. घोघा विज्ञप्तिपत्र सं० १७१७; ४. देवास विज्ञप्ति (१८वीं शती); ७-८. दो भग्न विज्ञप्तिपत्र; ९. शिनोर विज्ञप्तिपत्र सं० १८२१; १५. शिनोर विज्ञप्तिपत्र सं० १८६३ (आंशिक संस्कृत और आंशिक राजस्थानी)।

अन्य विज्ञप्तिपत्रों में उपाध्याय समयसुन्दर (१८वीं शती) कृत विज्ञप्तिपत्र (महादण्डकस्तुतिगर्भ), ज्ञानतिलक (१८वीं शती) कृत विज्ञप्तिपत्र[4] आदि का उल्लेख मिलता है।

अभिलेख-साहित्य:

किसी भी राष्ट्र, भाषा एवं साहित्य का इतिहास जानने के लिए अभिलेखों का सर्वोपरि स्थान है क्योंकि इनमें प्रकृति की परिवर्तनशील दृष्टि का बहुत कम

१. मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित विज्ञप्तित्रिवेणी.
२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ६४८-४९.
३. बड़ौदा स्टेट प्रेस, १९४२; इसके द्वितीय, तृतीय अध्याय (अंग्रेजी में) विशेष रूप से पठनीय हैं।
४. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, खण्ड १, पृ० २४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असर हो सका है। इनमें सरलता से किसी प्रकार के संशोधन और परिवर्तन की भी गुंजाइश नहीं और यदि वह हुआ भी है, जैसा कि राष्ट्रकूट के ताम्रपत्रों में बहुधा देखा जाता है, तो शीघ्र ही पकड़ में आ जाता है।

अभिलेखों में प्रायः समकालीन घटनाओं का उल्लेख रहने से उनकी प्रामाणिकता में सन्देह नहीं होता। भारतीय इतिहास की अनेक समस्याओं को सुलझाने में इन लेखों से बड़ी सहायता मिली है। जहाँ साहित्य चुप है या कम प्रकाश डालता है वहाँ ये लेख हमें निश्चित सूचना देते हैं। यहाँ हम जैन अभिलेख साहित्य की कुछ विशेषताएँ बतलाते हैं।

जैन अभिलेख-साहित्य विविध उपादानों पर उत्कीर्ण मिलता है, जैसे शिला, शिलानिर्मित मन्दिर, स्तम्भ, गुफा, पाषाण, धातुप्रतिमा, चरण, देवली, स्मारक, शय्यापट, ताम्रपट एवं यंत्र आदि पर उत्कीर्ण तो मिलता ही है पर कतिपय लेख दीवालों एवं काष्ठपट्टिकाओं पर काली स्याही से लिखे हुए भी मिले हैं जो साढ़े पाँच सौ वर्ष जितने प्राचीन हैं। काली स्याही के अक्षरों का पाषाण पर ज्यों के त्यों रह जाना आश्चर्य की बात है। ये लेख आज तक विद्यमान रहकर प्राचीन स्याही के टिकाऊपन की ही साक्षी देते हैं। इसी तरह पुस्तक के परिवेष्टन पर सुई से कढ़ा हुआ भी जैन लेख (बीकानेर से) मिला है। वैसे ही बुहलर को सिल्क पर स्याही से छपा ग्रन्थ और पिटर्सन को कपड़े पर स्याही से छपा ग्रन्थ मिला है पर सुई से अंकित लेख नया ही प्रतीत होता है।

जैन अभिलेखों की प्रकृति समझने के लिए उन्हें हम अनेक दृष्टियों से विभक्त कर सकते हैं, जैसे उत्तर भारत के, दक्षिण भारत या पश्चिम भारत के लेख, सम्प्रदायगत दिगम्बर और श्वेताम्बर लेख, विस्तृत दृष्टिकोण से राजनीतिक एवं धार्मिक लेख। पर वास्तव में इनके दो ही भेद करना ठीक है : एक तो राजनीतिक जो शासनपत्रों के रूप में हैं या अधिकारीवर्ग से सम्बद्ध हैं और दूसरे सांस्कृतिक जो जनवर्ग से सम्बद्ध हैं। इनमें से राजनीतिक एवं अधिकारी वर्ग से सम्बन्धित लेख प्रायः प्रशस्तियों के रूप में होते हैं। इनमें राजाओं की विरुदावलियाँ, सामरिक विजय, वंशपरिचय आदि के साथ मन्दिर, मूर्ति या मुनि आदि के लिए भूमिदान, ग्रामदानादि का वर्णन होता है। इस प्रकार के लेखों में कलिंग नृप खारवेल का हाथीगुम्फा शिलालेख (प्रथम-द्वितीय ई० पूर्व), रविकीर्तिरचित चालुक्य पुलकेशि द्वितीय का शिलालेख (६३४ ई०), कक्कुक का घटियाल प्रस्तर लेख (वि० सं० ९१८), कवि श्रीपालविरचित कुमारपाल की बड़नगरप्रशस्ति (वि० सं० १२०८), हथुंडी के धवल राष्ट्रकूट का बीजापुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेख (९९७ ई०), विजयकीर्ति मुनिकृत विक्रमसिंह कछवाहा का दुबकुण्ड लेख (१०८८ ई०), जयमंगलसूरिविरचित चाचिग चाहमान का सुन्धाद्रि लेख आदि अनेक प्रशस्तिलेख ही हैं। इन प्रशस्तियों में कई का महत्त्व तो इतना है कि कतिपय राजशाखाओं का परिचय केवल इन जैन प्रशस्तियों से ही हुआ है, जैसे उड़ीसा के हाथीगुम्फा से प्राप्त शिलालेखों से खारवेल और उसके वंश का, हथुंडी के लेख से वहाँ के राष्ट्रकूटों का, ग्वालियर के सासबहू शिलालेख से कच्छवाहों की ग्वालियर शाखा का और दुबकुण्ड लेख से वहाँ के कच्छवाहों की शाखा का।

जनवर्ग से सम्बन्धित लेखों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। ये लेख अपनी धार्मिक मान्यता के लिए भक्त एवं श्रद्धालु पुरुष या स्त्रीवर्ग द्वारा लिखाये गये हैं। ऐसे लेख १-२ पंक्ति के रूप में मूर्ति की चौकियों पर तथा कुटुम्ब एवं व्यक्ति की प्रशंसा में उच्चकोटि के काव्य के रूप में भी पाये जाते हैं। इस प्रकार के अनेक लेख उत्तर भारत में मथुरा, आबूपर्वत, गिरनार, शत्रुंजय आदि तीर्थों से तथा दक्षिण भारत में श्रवणबेलगोला प्रभृति स्थानों से मिले हैं। इनसे अनेक जातियों के सामाजिक इतिहास और जैनाचार्यों के संघ, गण, गच्छ तथा पट्टावली के रूप में धार्मिक इतिहास के अतिरिक्त सांस्कृतिक एवं राजनीतिक इतिहास का परिचय मिलता है। इन लेखों में प्रायः मूर्तियों, धर्मस्थानों और मन्दिरों के निर्माण का काल अंकित रहता है, जिससे कला और धर्म के विकासक्रम को समझने में बड़ी सहायता मिलती है और सामाजिक स्थिति का परिज्ञान, जैसे एक देश से दूसरे देश में जैन कब कैसे फैले और वहाँ जैनधर्म का प्रसार अधिकाधिक कब हुआ, भी हो जाता है। अनेक भक्त पुरुषों और महिलाओं के नाम भी इन लेखों से ज्ञात होते हैं जो कि भाषाशास्त्र की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। ९वीं शताब्दी के बाद के अनेक लेखों में अधिकांश नाम अपभ्रंश और तत्कालीन लोकभाषा के रूप को प्रकट करते हैं।

जैनों का अभिलेख साहित्य प्राचीन समय से अर्वाचीन समय तक किसी एक भाषा की परिधि में नहीं बँधा रहा। उसमें प्राकृत, संस्कृत, मिश्र संस्कृत, कन्नडमिश्र संस्कृत, कन्नड, तमिल, मराठी, गुजराती और हिन्दी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। दक्षिण के कुछ लेख तमिल में और अधिकांश कन्नडमिश्रित संस्कृत में हैं। दक्षिण भारत से संस्कृत भाषा में लिखे ऐसे महत्त्व के लेख मिले हैं जो काव्य के सुन्दर नमूने हैं। उनमें चालुक्य पुलकेशि की एहोले प्रशस्ति, राष्ट्रकूट गोविन्द के मन्ने और कडब से प्राप्त लेख, अमोघवर्ष का कोन्नर शिला-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेख तथा अन्य लेखों में मल्लिषेण प्रशस्ति, सूदी, मदनूर, कुल्चुम्बरू और लक्ष्मेश्वर आदि से प्राप्त लेख संस्कृत पद्य और गद्य काव्यों के अच्छे उदाहरण हैं। उत्तर भारत के अधिकांश जैन लेख कुछ अपवाद के साथ विशुद्ध संस्कृत में ही रचे गये हैं।

प्राकृत भाषा में जितने भी अभिलेख मिले हैं उनमें सबसे प्राचीन एक जैन लेख मिला है जो अजमेर से ३२ मील दूर बारली (बड़ली) नामक ग्राम से एक पाषाणस्तंभ पर ४ लघुपंक्तियों में खुदा मिला है। उसे पढ़कर स्व० गौरीशंकर ही० ओझा ने बतलाया कि उसमें वी० नि० सं० ८४ लिखा है।[१] उक्त लेख की लिपि भी अशोक पूर्व की मानी गई है। इसके बाद अशोक के लेखों के पश्चात् हमें उड़ीसा से हाथीगुम्फा का शिलालेख[२] नृप खारवेल और उसके परिवार का मिलता है। इसके बाद मथुरा और पभोसा से प्राप्त जैन लेख प्राकृत में ही हैं। मथुरा के कुछ लेख[३] संस्कृतमिश्र प्राकृत में और कुछ संस्कृत में हैं। इसके बहुत समय बाद गुर्जर प्रतिहार की जोधपुर शाखा का एक लेख घटियाल[४] (वि० सं० ९१८) से महाराष्ट्री प्राकृत में मिला है। फिर १४-१८वीं

---

१. चूंकि अनेक प्राचीन जैन ग्रन्थों में इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि वीर-निर्वाण के इतने वर्ष बाद अमुक कार्य हुआ और इतने वर्ष बाद अमुक राजा या आचार्य हुए आदि, अतः उक्त लेख में वी० नि० सं० का उल्लेख शंका का विषय नहीं होना चाहिए।

२. यह लेख सन् १८२७ या उसके पूर्व स्टर्लिंग महोदय को मिला था। इसके बाद उसकी पाण्डुलिपि बनाने और उसे पढ़ने में उच्चकोटि के अनेकों विद्वानों ने अथक परिश्रम किया। उनमें जेम्स प्रिन्सेप, जनरल कनिंघम, राजेन्द्र-लाल मित्र, भगवानलाल इन्द्रजी, राखालदास बनर्जी, काशीप्रसाद जायस-वाल, वेणीमाधव बरुआ, शशिकान्त जैन प्रभृति उल्लेखनीय हैं।

३. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग १-२; इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग ३३; जैन शिलालेख संग्रह, भाग २; जैन हितैषी, भाग १०, १३; जैन सिद्धान्त भास्कर पत्रिका में अनेक लेख; प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ और वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ में अनेक लेख.

४. जर्नल ऑफ रोयल एशियाटिक सोसाइटी, १८९६, पृ० ५१३ प्रभृति; जैन लेखसंग्रह (नाहर), भाग १, संख्या ९४५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शती तक पश्चिम भारत के अनेक स्थानों से प्राकृत में मिले हैं जिनमें शत्रुंजय से ही ५० के लगभग और शेष आबू, पाटन, सिक्का और माण्डवी से हैं।

जैन विद्वानों ने ये सभी लेख अपने धर्मानुरागवश ही नहीं लिखे बल्कि इतिहासप्रियता से भी लिखे हैं। उन्होंने इनमें से अनेकों की रचना अपने धर्म-स्थानों और सम्प्रदाय के उपयोग के लिए ही नहीं की प्रत्युत अन्य धर्म और सम्प्रदाय के उपयोग के लिए भी की। हमें ऐसे अनेक लेख मिले हैं जिन्हें जैन विद्वानों ने इतर सम्प्रदाय के मन्दिरों या स्थानों के लिए ही बनाया है। उदाहरण-स्वरूप दिगम्बर रामकीर्ति ने चित्तौड़गढ़ प्रशस्ति[1] (११५० ई०) वहाँ के मोकलजी मन्दिर के लिए, बृहद्गच्छ के जयमंगलसूरिकृत सुन्धाद्रि लेख[2] चामुण्डादेवी के मन्दिर के लिए, यशोदेव दिगम्बर ने ग्वालियर के सासबहू[3] मन्दिर के लिए तथा रत्नप्रभसूरि ने गुहलोतों के घाघसा[4] और चिर्वा के[5] विष्णु मन्दिर के लिए लेख लिखे थे। यहाँ यह न समझना चाहिए कि वे लेख उन स्थानों में जैनों से छीन-कर ले जाये गये हैं, प्रत्युत इसके विपरीत वे लेख विशेषतः उन स्थानों के लिए ही जैनाचार्यों ने लिखे थे क्योंकि उन लेखों के अन्त में जैनाचार्यों के नाम, गुरुपरम्परा, गण, गच्छ के सिवाय हमें ऐसा कुछ नहीं मिलता जो जैनों से सम्बन्धित हो। यहाँ तक कि मंगलाचरण के पद्य भी अजैन देवी-देवताओं के मंगलाचरण से प्रारम्भ होते हैं। हाँ, कुछेक में ॐ सर्वज्ञाय नमः, पद्मनाथाय नमः आदि से उनका प्रारम्भ होता है। ये लेख निश्चित रूप से जैनाचार्यों की उदारता और विशाल हृदयता को सूचित करते हैं।

सबसे अधिक जैन शिलालेख दक्षिण भारत में सुरक्षित मिले हैं। पाश्चात्य विद्वानों—ई० हुल्श, जे० एफ० फ्लीट, लुइस राइस आदि ने साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स, इण्डियन एण्टीक्वेरी, एपिग्राफिया कर्णाटिका आदि ग्रन्थों में वहाँ के हजारों लेखों का संग्रह किया है। ये लेख पाषाणपट्टों एवं ताम्रपत्रों पर संस्कृत

---

१. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग २, पृ० ४२१; हिस्टोरिकल इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ गुजरात, भाग २, संख्या १४६.

२. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ९, पृ० ७०-७७; जैन लेखसंग्रह (नाहर), भाग १, संख्या ९०३.

३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, भाग १५, पृ० ३३-४६.

४. राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, १९२७, पृ० ३.

५. वियना ओरियण्टल जर्नल, भाग २१, पृ० १४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पुरानी कन्नड आदि भाषाओं में खुदे हैं। प्राचीन कन्नड के लेखों में जैनों के लेख बहुत अधिक हैं, क्योंकि उत्तर कर्णाटक और मैसूर राज्य में जैनों का निवास प्राचीन काल से था।

उत्तर भारत के लेखों में भी जैन लेखों की संख्या बहुत अधिक है। सन् १९०८ में फ्रेंच विद्वान् डा० ए० गेरिनो ने 'रिपोर्तेर द एपिग्राफी जैन' प्रकाशित की थी जिसमें सन् १९०७ के अन्त तक प्रकाशित ८५० जैन लेखों का संक्षिप्त परिचय दिया गया था। उनमें ८०९ लेख ऐसे हैं जिनका समय उन पर लिखा हुआ है अथवा दूसरी साक्षियों से ज्ञात हुआ है। ये लेख ई० सन् से २४२ वर्ष पूर्व से लेकर ई० सन् १८६६ तक के अर्थात् लगभग २२०० वर्ष के हैं। इनमें श्वेता० और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के लेख हैं। इसके बाद सन् १९१५, १९२७ और १९२९ में कलकत्ता से पूरणचन्द्रजी नाहर ने जैन लेखसंग्रह के क्रमशः तीन भाग निकाले जिनमें श्वेताम्बर सम्प्रदाय के हजारों मूल लेखों का संग्रह प्रकाशित किया जिनमें अधिकांश बीकानेर एवं जैसलमेर के हैं। सन् १९१७ और १९२१ में मुनि जिनविजयजी ने 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह' नाम से दो भाग[1] निकाले। पहले भाग में कलिंगनरेश खारवेल के शिलालेख को बड़ा महत्त्व दिया गया है और दूसरे में शत्रुञ्जय, आबू, गिरनार आदि अनेक स्थानों के ५५७ लेख प्रकाशित किये गये हैं।

दक्षिण के दिगम्बर सम्प्रदाय के जैन लेखों का संग्रह डा० हीरालाल जैन ने जैन शिलालेख संग्रह, प्रथम भाग, सन् १९२८ ई० में सम्पादित कर प्रकाशित किया। इसमें श्रवणबेलगोला तथा निकटवर्ती स्थानों के ५०० लेख संकलित हुए थे। जैन शिलालेख संग्रह के द्वितीय-तृतीय भाग में गेरिनो की सूची के आधार पर पं० विजयमूर्ति शास्त्री ने ८५० जैन लेखों का संकलन किया उनमें से ५३५ लेखों का पूरा पाठ एवं संक्षिप्त हिन्दी विवरण दिया गया है। शेष १४० लेख प्रथम भाग में आ चुके हैं तथा १७५ श्वेता० सम्प्रदाय के लेख हैं अतः उनका उल्लेख मात्र कर दिया गया है। इस तरह जैन शिलालेख के पहले तीन भागों[2] में कुल १०३५ लेखों का संग्रह हुआ है। गेरिनो और डा० हीरालाल जैन के संकलनों से शेष बाद में प्रकाशित लगभग ६५४ लेखों का संग्रह डा० विद्याधर

---

१. अहमदाबाद और भावनगर से प्रकाशित.

२. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित.

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

जोहरापुरकर ने जैन शिलालेख संग्रह, चतुर्थ भाग[1] के रूप में सन् १९६१ में प्रकाशित कराया। इस तरह १६८९ दिग० जैन शिलालेख उक्त चार भागों में प्रकाशित हो चुके हैं। इन चारों भागों में से प्रथम भाग में डा० हीरालालजी जैन की लिखी १६२ पृष्ठ की, तृतीय भाग में डा० गुलाबचन्द्र चौधरी द्वारा लिखित १७३ पृष्ठ की और चतुर्थ भाग में डा० विद्याधर जोहरापुरकर द्वारा लिखित ३३ पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनाएँ हैं।

श्रवणबेलगोला के शिलालेखों के संग्रह (जैन शि० सं० भाग १) के समान ही आबू के ६६४ लेखों का संग्रह 'अर्बुद प्राचीन लेखसंदोह'[2] के नाम से स्व० मुनि जयन्तविजयजी ने सं० १९९४ में प्रकाशित कराया। उक्त मुनिजी ने सं० २००५ में आबू प्रदेश के ९९ गांवों के ६४५ लेखों के संग्रहरूप में 'अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेखसंग्रह'[3] प्रकाशित किया। अन्य लेखसंग्रहों में आचार्य विजयधर्म-सूरि द्वारा सम्पादित 'प्राचीन जैन लेखसंग्रह'[4] उल्लेखनीय है जो सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ। इसमें सं० ११२३ से १५४७ तक के ५०० श्वेता० सम्प्रदाय के लेखों का संग्रह है।

प्रतिमा या मूर्ति-लेखसंग्रह :

भारत के राजनीतिक और विशेषकर संघीय इतिहास को जानने के लिए प्रतिमालेख महत्त्वपूर्ण साधन है। पुरातत्त्व से सम्बन्ध होने के कारण यह सामग्री अत्यधिक विश्वसनीय मानी जाती है। प्रतिमालेखों की ऐतिहासिकता इसलिए अधिक मानी जाती है कि उन पर किंवदन्तियों व अतिशयोक्तियों का प्रभाव अधिक नहीं हुआ है क्योंकि वहाँ लिखने की जगह कम होने से मुख्य-मुख्य बातें ही उल्लिखित होती हैं। हस्तलिखित ग्रन्थों में जो स्थान पुष्पिकाओं का है वही मूर्तियों पर प्रतिमालेखों का है।

भारत में प्रतिमालेख जितने जैन समाज में प्राप्त होते हैं उतने शायद ही किसी अन्य समाज में उपलब्ध होते हों।

सुविधा के लिए हम प्रतिमाओं या मूर्तियों को प्रस्तर अर्थात् पाषाणमूर्ति और धातुमूर्ति इन दो भागों में बाँट सकते हैं। अपेक्षाकृत धातुमूर्तियों की

---

१. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से प्रकाशित.

२-३. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर.

४. भावनगर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संख्या अधिक है। सलेख प्रस्तरमूर्तियों की संख्या यदि सैकड़ों होगी तो सलेख धातुमूर्तियों की हजारों। १०वीं शती के बाद की बहुत ही कम ऐसी धातु-प्रतिमाएँ होंगी जो सलेख न हों।

अद्यावधि प्राप्त सबसे प्राचीन प्रतिमा लोहानीपुर पटना से है जो पाषाण की है। यद्यपि इस पर कोई लेख नहीं पर विशेष पालिश व चमक के आधार पर इसका समय मौर्यकालीन (३०० ई० पू०) माना गया है। मथुरा से जैनों की अनेक सलेख मूर्तियाँ मिली हैं जो तीन मुख्य भागों में बाँटी जा सकती हैं : तीर्थंकर-प्रतिमाएँ, देवियों की मूर्तियाँ और आयागपट्ट। इन पर उत्कीर्ण लगभग सौ लेखों से हमें ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक महत्त्व की बहुत सामग्री मिलती है। इनमें उल्लिखित शक एवं कुषाण राजाओं के नाम तथा तिथियों से हमें उनके क्रमिक इतिहास तथा राज्यकाल की अवधि का पता चलता है। सामाजिक इतिहास की दृष्टि से भी ये लेख बड़े महत्त्व के हैं। इनमें गणिका, नर्तकी, लुहार, गन्धिक, सुनार, ग्रामिक, श्रेष्ठी आदि जातियों और वर्ग के लोगों के नाम मिलते हैं, जिन्होंने मूर्ति आदि का निर्माण, प्रतिष्ठा एवं दान कार्य किये थे। इससे विदित होता है कि २ हजार वर्ष पहले जैनसंघ में सभी व्यवसाय के लोग बराबरी से धर्माराधन करते थे। अधिकांश लेखों में दातावर्ग के रूप में स्त्रियों की प्रधानता थी जो बड़े गर्व के साथ अपने पुण्य का भागधेय अपने आत्मीयों को बनाती थीं। इन लेखों से एक और महत्त्व की बात सूचित होती है कि उस समय लोग व्यक्तिवाचक नाम के साथ माता का नाम जोड़ते थे, जैसे मोगलिपुत्र, कौशिकिपुत्र आदि।

जैनधर्म के प्राचीन इतिहास की दृष्टि से मथुरा के ये लेख और भी बड़े महत्त्व के हैं। इन लेखों में मूर्तियों के संस्थापकों ने न केवल अपना ही नाम उत्कीर्ण कराया है बल्कि अपने गुरुओं का भी जिनके कि सम्प्रदाय के वे थे। लेखों में अनेक गणों, कुलों और शाखाओं के नाम भी दिये गये हैं जो जैनागम कल्पसूत्र और नन्दिसूत्र की पट्टावली से मिलते हैं। उस काल में इन गणों आदि के अस्तित्व से उस महान् युग का, उसके जीवन की गतिविधि का तथा साथ ही सम्प्रदायों की परम्परा को रखने में विशेष सावधानी का अनुमान कर सकते हैं।

गुप्तकाल में हमें जैन मूर्तियों के न केवल उच्चतम उदाहरण मिलते हैं बल्कि उनसे उस काल के इतिहास की जटिल समस्याओं का समाधान करने में महत्त्वपूर्ण योगदान मिलता है। इतिहासज्ञों के बीच महाराजाधिराज रामगुप्त के सम्बन्ध में गत ५० वर्षों से काफी वादविवाद चल रहा था। उसके अस्तित्व को बतलाने के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक तथा कुछ तांबे के सिक्के मिले थे पर उसके अस्तित्व का अन्तिम निर्णय जैन मूर्तियों के लेखों से ही हो सका है। गत वर्ष गुप्तकाल की तीन जैन मूर्तियाँ विदिशा (मध्य प्रदेश) के वेशनगर के समीपस्थ ग्राम दुर्जनपुर में बुलडोजर से जमीन साफ करते समय मिली हैं जिनमें गुप्तकालीन लिपि में स्पष्ट रूप से महाराजाधिराज रामगुप्त लिखा मिला है। गुप्तकाल में पीतल आदि धातुओं द्वारा जैनों ने प्रतिमा निर्माणकला का विकास किया था और मुगलकाल आते-आते इसका प्रचुर मात्रा में प्रसार हो गया था। इसका प्रधान कारण यह था कि मुसलमान मूर्तिभंजक थे और पाषाणमूर्तियाँ शीघ्र ही नष्ट की जा सकती थीं जबकि धातुप्रतिमाएँ कम।

प्रतिमा-लेखों के महत्त्व को देखकर अब तक अनेक प्रतिमालेख संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य बुद्धिसागरसूरि ने सन् १९१७ और १९२४ में श्वेता० जैन धातु प्रतिमालेख संग्रह[1] के दो भागों में २६८३ प्रतिमालेख प्रकाशित कराये। विजयधर्मसूरि के उपरिनिर्दिष्ट प्राचीन जैन लेख संग्रह में भी अधिकांश प्रतिमालेख ही हैं। स्व० पूरणचन्द्र नाहर के जैन लेख संग्रह ३ भागों में प्रायः प्रतिमालेख ही अधिक हैं; दूसरे और तीसरे भाग में तो बीकानेर और जैसलमेर के ही प्रतिमालेखों का संग्रह है जिनकी संख्या १५८० से अधिक है। मुनि जयन्तविजय के आबू के लेखसंग्रहों में भी प्रायः हजारों प्रतिमालेख संकलित हैं। आचार्य विजययतीन्द्रसूरि के 'यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन'[2] के चारों भागों में अनेक प्रतिमालेख संगृहीत हैं। मुनि कान्तिसागर द्वारा सम्पादित 'जैन धातु प्रतिमालेख'[3] में ३६९ प्रतिमालेख संवत्क्रम से सं० १०८० से १९५२ तक के हैं। परिशिष्ट में शत्रुंजय तीर्थसम्बन्धित दैनन्दिनी भी छपी है। सन् १९५३ में उपाध्याय मुनि विनयसागर ने संवत् के अनुक्रम से १२०० लेखों का संग्रह प्रतिष्ठालेख संग्रह नाम से प्रकाशित किया जिसमें स्व० डा० वासुदेव-शरण अग्रवाल ने महत्त्वपूर्ण भूमिका लिखी। इसकी प्रधान विशेषता श्रावक-श्राविकाओं के नामों की है। अब तक सबसे बड़ा प्रतिमालेख संग्रह श्री अगरचन्द्रजी नाहटा का 'बीकानेर लेख संग्रह'[4] है जिसमें बीकानेर और

---

१. अध्यात्मप्रसारक मण्डल, पादरा.

२. यतीन्द्र साहित्यसदन, खुड़ाला.

३. जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार, सूरत.

४. नाहटा ब्रदर्स, ४ जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसलमेर प्रदेशों के ३००० प्रतिमालेख संगृहीत हैं; इनमें अनेक श्मशान एवं सतीलेख भी आ गये हैं। इसकी भूमिका, प्राक्कथन एवं परिशिष्ट आदि बड़े महत्त्व के हैं। नाहटाजी ने अपने 'वक्तव्य' शीर्षक लेख में अब तक संकलन किये हुए पर अप्रकाशित अनेकों प्रतिमालेखों की सूचना दी है जिससे इसकी विशालता ज्ञात होती है।

दिगम्बर जैन प्रतिमालेखों के भी कुछ संग्रह उल्लेखनीय हैं, यथा श्री छोटेलाल जैन ने सं० १९७९ में जैन प्रतिमा यंत्रसंग्रह प्रकाशित किया। सं० १९९४ में कामताप्रसाद जैन ने प्रतिमा लेखसंग्रह[1] में मैनपुरी की प्रतिमाओं के लेख प्रकाशित किये हैं। इसी तरह शान्तिकुमार ठवली ने नागपुर प्रतिमा लेखसंग्रह में ४९७ प्रतिमाओं का लेखसंग्रह जैन शिलालेख संग्रह, चतुर्थ भाग के परिशिष्ट ३ में प्रकाशित किया है। डा० विद्याधर जोहरापुरकर के भट्टारक सम्प्रदाय में भी अनेक प्रतिमालेखों का संग्रह आ गया है।

1. जैन सिद्धान्त भवन, आरा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण ५

ललित वाङ्मय

इस प्रकरण में शास्त्रीय महाकाव्य, गद्यकाव्य, चम्पू, दूतकाव्य, नाटक आदि (अलंकार तथा रस शैली पर लिखा हुआ साहित्य) का समावेश होगा।

शास्त्रीय महाकाव्य की तीन श्रेणियों—रीतिमुक्त, रीतिबद्ध एवं शास्त्रकाव्य-बह्वर्थककाव्य—का परिचय हम प्रास्ताविक में कर आये हैं। जैन कवियों ने प्राकृत में किसी प्रकार के शास्त्रीय महाकाव्य की रचना नहीं की। संस्कृत में इस प्रकार के काव्यों की संख्या बहुत कम है। ये प्रायः भारवि, माघ आदि के महाकाव्यों के अनुकरण पर रचे गये हैं जो कि रीतिबद्ध श्रेणी में या भट्टिमहाकाव्य आदि के अनुकरण पर शास्त्रकाव्य और बह्वर्थककाव्यों के रूप में ही मिलते हैं। इन महाकाव्यों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं :

१. इनकी रचना में लक्षणग्रन्थों में प्राप्त अधिकांश महाकाव्य-सम्बन्धी नियमों का पालन हुआ है।

२. भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष आदि के महाकाव्यों के आदर्श पर इनकी कथावस्तु अत्यन्त स्वल्प रखी गई है किन्तु वस्तुव्यापार का अनावश्यक विस्तार किया गया है। प्राकृतिक वर्णनों के बाहुल्य से इनका कथानक उखड़ा-सा लगता है।

३. इनमें स्थल-स्थल पर कवि ने पाण्डित्यप्रदर्शन, वाक्चातुरी और कल्पना-वैभव दिखाने की चेष्टा की है।

४. इनकी भाषा किरातार्जुनीय, शिशुपालवध आदि का आदर्श मानकर चली है। इससे भाषा-शैली उदात्त, प्रौढ़ और कहीं कहीं दुर्बोध हो गई है। इनमें रस, अलंकार और छन्दोयोजना पर बहुत बल दिया गया है। रसों में शृङ्गार, वीर और शान्त रस को प्रमुखता दी गई है। अन्य रसों का चित्रण गौणरूप में किया गया है। अलंकारों में शब्दालंकार तथा चित्रकाव्यों की श्रमसाध्य योजना उल्लेखनीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. इन महाकाव्यों में कवियों ने धर्म, राजनीति आदि विविध शास्त्रविषयक ज्ञान को प्रदर्शित किया है।

प्रद्युम्नचरितकाव्य :

इस काव्य की प्रकाशित[१] प्रति में १४ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर १५३२ पद्य हैं। नवम सर्ग सबसे विशाल है जिसमें विविध छन्दों में निर्मित ३४९ पद्य हैं। अष्टम में १९७ तथा पंचम में १५० पद्य हैं। सबसे कम छन्द १३वें सर्ग में हैं—४४।

रचयिता एवं रचनाकाल—प्रकाशित प्रति में ग्रन्थकर्ता की कोई प्रशस्ति नहीं दी गई पर कारंजा के जैन भण्डार की प्रति में ६ पद्यों की एक प्रशस्ति मिलती है जिसके अनुसार इस ग्रन्थ के कर्ता महासेनसूरि हैं। वे लाटवर्गट संघ में सिद्धान्तों के पारगामी जयसेन मुनि के शिष्य गुणाकरसेन के शिष्य थे। वे परमारनरेश मुंज के द्वारा पूजित थे और राजा भोज के पिता सिन्धुराज या सिन्धुल का महत्तम (महामात्य) पर्पट उनके चरणकमलों का अनुरागी था।[२] महासेन ने इस काव्य की रचना की और राजा के अनुचर विवेकवान् मघन ने इसे लिखकर कोविदजनों को दिया।

इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में महासेन को सिन्धुराज के महामहत्तम पर्पट का गुरु लिखा है जो इस बात का सूचक है कि पर्पट जैनधर्मानुयायी था और उसके लिए इस काव्य की रचना हुई थी। यद्यपि काव्यनिर्माण का समय प्रशस्ति में नहीं दिया गया परन्तु मुंज और सिन्धुल के उल्लेख से इसके समय का अनुमान किया जा सकता है। सिन्धुराज का समय लगभग ९९५-९९८ ई० है।[३] इस ग्रन्थ की रचना भी इन्हीं वर्षों में होनी चाहिए।

---

१. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९१७; पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४११; जिनरत्नकोश, पृ० २६४; इसके महाकाव्यत्व के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० १०९-१३९.

२. आसीत् श्रीमहसेनसूरिरनघः श्रीमुंजराजार्चितः ।
सीमा दर्शनबोधवृत्ततपसां भव्याब्जिनीबान्धवः ॥
श्रीसिन्धुराजस्य महत्तमेन श्रीपर्पटेनार्चितपादपद्मः ।
चकार तेनाभिहितः प्रबंधं स पावनं निष्ठितमंगलस्य ॥ प्रशस्ति पद्य ३-४.

३. डा० गुलाबचन्द्र चौधरी, पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया, पृ० ९५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रद्युम्नचरित पर लिखी रचनाओं की तालिका के अनुसार यह कहा जा सकता है कि इसे सर्वप्रथम स्वतन्त्र चरित एवं काव्य के रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय महासेनाचार्य को है।

कालक्रम से संस्कृत में प्रद्युम्नचरित पर दूसरी रचना सकलकीर्ति भट्टारक (१५वीं शती) रचित का उल्लेख मिलता है।[1]

नेमिनिर्वाणमहाकाव्य :

इस काव्य[2] में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनवृत्त वर्णित है। इसमें पन्द्रह सर्ग हैं। प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर दिये गये वाक्य में इसे 'महाकाव्य' कहा गया है। इसमें क्रमशः प्रथम से पन्द्रहवें सर्ग तक ८३ + ६० + ४७ + ६२ + ७२ + ५१ + ५५ + ८० + ५७ + ४६ + ५८ + ७० + ८४ + ४८ + ८५ = कुल ९५८ पद्य हैं। नागौर के शास्त्रभण्डार में इस काव्य की चार हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।[3] इन हस्तलिखित प्रतियों में १३वें सर्ग में ८५ पद्य और अन्तिम सर्ग में ८८ पद्य दिये गये हैं। इससे महाकाव्य में कुल मिलाकर ९६२ पद्य हो जाते हैं। तेरहवें सर्ग में नेमिनाथ के भवान्तरों का वर्णन है और शेष सर्गों में वर्तमान भव और उससे सम्बन्धित अन्य बातों का।

ग्रन्थ की भाषा सरल होते हुए भी अत्यन्त सरस है। विविध छन्दों का प्रयोग करने में प्रस्तुत महाकाव्य का रचयिता अति कुशल है। सातवें सर्ग में आर्या, शशिवदना, बन्धूक, विद्युन्माला, शिखरिणी, प्रमाणिका, माद्यद्भृङ्ग, हंसरुत, रुक्मवती, मत्ता, मालिनी, मणिरङ्ग, रथोद्धता, हरिणी, इन्द्रवज्रा, पृथ्वी, भुजङ्गप्रयात, स्रग्धरा, रुचिरा, मन्दाक्रान्ता, वंशस्थ, प्रमिताक्षरा, कुसुमविचित्रा, प्रियंवदा, शालिनी, मौक्तिकदाम, तामरस, तोटक, चन्द्रिका, मञ्जुभाषिणी, मत्तमयूर, नन्दिनी, अशोकमालिनी, स्रग्विणी, शरमाला, अच्युत, शशिकलिका, सोमराजी, चण्डवृष्टि, द्रुतविलम्बित, प्रहरणकलिका, भ्रमरविलसिता और वसन्ततिलका हैं। इन छन्दों में अनेक ऐसे छन्द हैं जिनका पता 'वृत्तरत्नाकर' के प्रणेता केदारभट्ट को भी नहीं था। इनमें कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग कालिदास, भारवि, माघ तथा पश्चात्वर्ती वीरनन्दि और हरिचन्द्र आदि प्रसिद्ध महाकवियों

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २६४.

२. काव्यमाला, ५६, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३६.

३. संख्या २१, ९९, १०७ और २५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के महाकाव्यों में भी नहीं मिलता। जैसे चण्डवृष्टि। इसका प्रयोग नेमिनिर्वाण के ७वें सर्ग के ४६वें पद्य में हुआ है।

प्रस्तुत महाकाव्य में अनुप्रास और यमक आदि अनेक शब्दालंकारों का तथा उपमा, दीपक, रूपक, श्लेष, परिसंख्या और विरोधाभास आदि अनेक अर्थालंकारों का सुन्दर प्रयोग हुआ है।[1] इस काव्य में प्रधान रस शान्त है। महाकाव्यों में नायिका का वर्णन प्रायः नख से शिखा तक मिलता है किन्तु नेमिनिर्वाण में इस प्रकार का वर्णन कहीं भी नहीं है। यह इस काव्य की विशेषता है।

कथावस्तु—प्रथम २५ पद्यों में मंगलस्तुति के बाद दो पद्यों में सज्जन-खल की चर्चा की गई है। इसके बाद कथा इस प्रकार चलती है :

सुराष्ट्र देश में द्वारवती (द्वारिका) नगरी थी। उसका राजा समुद्रविजय कुशलता से पृथ्वी का शासन कर रहा था। एक समय उसने अपने अनुज वसुदेव के पुत्र गोविन्द (श्रीकृष्ण) को युवराज पद देकर राज्य का बोझ हल्का किया और पुत्रप्राप्ति के लिए बहुत समय तक अनेक प्रकार के व्रत किये [प्रथम सर्ग], एक समय वह सभा में बैठा था कि आकाश से भूमितल पर उतरती हुई सुराङ्गनाएँ दिखीं। वे राजसभा में उतर कर राजा की जय बोलीं। उन्हें सुवर्णासनों पर बैठाया गया और आने का कारण पूछा। उन्होंने कहा—अब से ६ माह बाद आपकी महारानी शिवा के गर्भ में २२वें तीर्थंकर नेमि का जन्म होगा इसलिए देवराज इन्द्र ने महारानी की सेवा के लिए हमें भेजा है। वे महारानी की सेवा करने लगीं। समय आने पर रात्रि में जिनमाता ने सोलह स्वप्न देखे [द्वितीय सर्ग], जिनमाता ने उन स्वप्नों को राजा से कहा और राजा ने उन स्वप्नों का फल प्रतापी पुत्र होने को कहा। रानी ने गर्भ धारण किया [तृतीय सर्ग], महारानी शिवा ने नव मास के बाद सकल लोकनन्दन नन्दन को जन्म दिया। लोक में बड़ा आनन्द हुआ, देवतागण जन्मकल्याण मनाने आये [चतुर्थ सर्ग], उन लोगों ने बालक जिन को प्रणाम कर पाण्डुक शिला पर ले जाकर उसका अभिषेक किया और उत्सव मनाया। पीछे वे लोग स्वर्ग लौट गये [पंचम स्वर्ग]। धीरे-धीरे बालक शैशव अवस्था को पार कर युवा अवस्था में आया। इसके बाद कवि ने छठे सर्ग के १७वें पद्य से वसन्त वर्णन, रैवतपर्वत वर्णन [सप्तम सर्ग], जलक्रीड़ा वर्णन [अष्टम सर्ग], सायंकाल तथा

---

१. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० २९७ प्रभृति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रोदय वर्णन [नवम सर्ग] तथा मधुपान और सुरत वर्णन [दशम सर्ग] देकर माघ के शिशुपालवध के अनुसार महाकाव्य की परम्परा का निर्वाह करते हुए ११वें सर्ग से पुनः कथाक्रम को जारी किया है। चैत्र के महीने में राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती रैवतक पर्वत पर क्रीड़ा करने आती है और वहाँ वह नेमिनाथ को देख कामवेदना से पीड़ित हो जाती है। इधर राजा समुद्रविजय ने युवराज कृष्ण को नेमि के विवाह के लिए रूपवती राजीमती को माँगने के लिए भेजा। कृष्ण ने उग्रसेन से कन्यादान के लिए प्रस्ताव किया जिसे उसने सहर्ष स्वीकार किया। यह सुन राजीमती जो परमानन्द हुआ। स्वीकृति पाकर कृष्ण लौट आये [११वाँ सर्ग], विवाह की तैयारियाँ हुई। नेमिनाथ ने सजधजकर रथ पर चढ़ विवाह के लिए प्रस्थान किया। राजधानी में खूब उत्सव मनाया गया। उधर राजीमती को भी खूब सजाया गया। दोनों ओर आनन्द-लहर छा गई। नेमि उग्रसेन के नगर पहुँचे [१२वाँ सर्ग]। ज्योंही वे रथ से उतरनेवाले थे कि उन्होंने विवाहयज्ञ में बँधे हुए पशुसमूह के चीत्कार को सुना। उन्होंने नेत्र फाड़कर समीप की वाड़ी को देखा जिसमें पशुगण करुण क्रन्दन कर रहे थे। उन्होंने अपने सारथि से इतने एक साथ बँधे हुए पशुओं का क्या प्रयोजन है, यह पूछा। उसने कहा कि आपके विवा हमें आये हुए अभ्यागतों के निमित्त विशेष पाकविधि के लिए इनकी 'वसा' का प्रयोग होगा। यह सुनते ही उन्हें भवान्तर की स्मृति हो आई और वे समागत बन्धुवर्गों की अभिलाषा के प्रतिकूल बोले कि मैं इस परिग्रह (विवाह) को न करूँगा और परमार्थ-सिद्धि के लिए प्रयत्न करूँगा। उन्होंने हिंसा के भयावह रूप को लोगों के सामने रखकर अपने पिछले जन्मों का वर्णन किया [१३वाँ सर्ग]। उन्होंने समस्त वैभव को छोड़ रैवतक (गिरिनार) पर्वत पर जाकर मुनिव्रत ले लिया और घोर तपस्या की जिसके फलस्वरूप उन्हें केवलज्ञान (पूर्ण ज्ञान) हुआ [१४वाँ सर्ग]। इसके बाद भव्य जीवों के कल्याण के लिए समवसरण सभा द्वारा उपदेश देना प्रारम्भ किया। राजीमती ने भी जिनदीक्षा लेकर अपने कर्मबन्धन काटे (१५. ८७)। अनेक व्यक्तियों ने उनसे मुनिव्रत स्वीकार कर लिया और कुछ लोगों ने श्रावकव्रत।

सामान्यतया काव्यों का उद्देश्य अनुराग की शिक्षा देना है पर जैन काव्यों में यह बात पूर्णतया चरितार्थ नहीं होती है। यह काव्य अनुरक्ति से विरक्ति की ओर जाने की शिक्षा देता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई की काव्यमाला में प्रकाशित नेमिनिर्वाणकाव्य में सर्गान्त पंक्तियों में इस काव्य के रचयिता का नाम वाग्भट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया गया है पर कवि के परिचय के लिए कोई प्रशस्ति नहीं दी गई। किन्तु हस्तलिखित प्रतियों[1] में निम्नलिखित एक श्लोक की प्रशस्ति मिलती है जिससे कवि का बहुत थोड़ा परिचय मिल जाता है :

अहिच्छत्रपुरोत्पन्नप्राग्वाटकुलशालिनः ।
छाहडस्य सुतश्चक्रे प्रबन्धं वाग्भटः कविः ॥

इससे मालूम होता है कि नेमिनिर्वाण के कर्ता वाग्भट छाहड के पुत्र थे तथा प्राग्वाट या पोरवाड कुल के थे और अहिच्छत्रपुर[2] में उत्पन्न हुए थे। इन्होंने न तो अपने किसी गुरु आदि का नाम लिखा है और न कोई अन्य परिचय ही दिया है। अपने किसी पूर्ववर्ती कवि या आचार्य का भी कहीं स्मरण नहीं किया है, जिससे इनके समय पर कुछ प्रकाश डाला जा सके। ग्रन्थ के अन्तर्वीक्षण से ज्ञात होता है कि ये वाग्भट दिगम्बर सम्प्रदाय के थे। काव्य के प्रारम्भ के मंगलाचरण में मल्लिनाथ तीर्थंकर को इक्ष्वाकुवंशी राजा का सुत (श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुसार सुता नहीं) माना है तथा दूसरे सर्ग में दिगम्बर-मान्य १६ स्वप्नों का वर्णन है। इससे उनका दिग० सम्प्रदाय का होना निश्चित है। इस काव्य पर दिग० भट्टारक ज्ञानभूषण की एक पंजिका टीका उपलब्ध है। और कोई टीका प्राप्त नहीं हुई।

इस काव्य पर माघ के शिशुपालवध की स्पष्ट छाया है जो कि छठे सर्ग से १०वें सर्ग तक देखी जा सकती है। काव्य की विषयवस्तु गुणभद्र के उत्तरपुराण से

---

१. आरा के जैन सिद्धान्त भवन में सं० १७२७, पौष कृष्णा अष्टमी शुक्रवार को लिखी प्रति में (जैन हितैषी, भाग १५, अंक ३-४, पृ० ७९); श्रवण-बेल्गोल के स्व० पं० दौ० जिनदास शास्त्री के पुस्तकालय में प्राप्त प्रति में (जैन हितैषी, भाग ११, अंक ७-८, पृ० ४८२); गुलालवाड़ी, बम्बई के बीसपंथी जैन मन्दिर के भण्डार में इस काव्य की तीन प्रतियों (नं० २०, ६४, ६५) में जिन्हें स्व० पं० नाथूराम प्रेमी ने देखा था (जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३२७ पर टिप्पण)।

२. अहिच्छत्रपुर उत्तर प्रदेश के जिला बरेली का रामनगर माना जाता है परन्तु गौ० हीराचन्द्र ओझा के अनुसार नागौर (जोधपुर) का पुराना नाम नागपुर या अहिच्छत्रपुर था। कवि वाग्भट प्रथम का जन्म-स्थान नागौर ही होना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहीत मालूम होती है। इससे ये अवश्य उनके बाद हुए हैं। चन्द्रप्रभचरित महाकाव्य के रचयिता वीरनन्दि (११वीं शताब्दी का पूर्वार्ध) वाग्भट की शैली से अवश्य प्रभावित थे तथा वाग्भटालंकार में नेमिनिर्वाण के अनेक पद्यों को उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया गया है।[1] इससे नेमिनिर्वाण की रचना इन दोनों से बाद की नहीं हो सकती। इससे वाग्भट का समय दसवीं शताब्दी होना चाहिये। तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में महाकवि हरिचन्द्र ने अपने महाकाव्य धर्मशर्माभ्युदय में अनेक स्थानों में नेमिनिर्वाण से प्रचुर मात्रा में भाव, भाषा एवं शब्द लिये हैं।[2]

चन्द्रप्रभचरितमहाकाव्य :

इसमें अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित को महाकाव्यत्व का रूप दिया गया है। इसमें १८ सर्ग[3] हैं जिनमें पद्यों की कुल संख्या १६९१ है। अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति के ६ पद्य अलग से दिये गये हैं। सभी सर्गों के अन्तिम पद्यों में 'उदय' शब्द आया है अतः यह काव्य उदयाङ्क है।[4]

चन्द्रप्रभचरित की कथावस्तु का मुख्य आधार उत्तरपुराण है जिसके ५४वें पर्व में चन्द्रप्रभ के कुल मिलाकर सात भवों का वर्णन है। इसी के अन्त में केवल एक श्लोक में उन सातों भवों के नाम क्रम से दिये गये हैं :

---

१. जैसे वाग्भटालंकार २८ = नेमिनिर्वाण ७-१६; ३० = ७-५०; ३२ = ६-५१; ३३ = ७-२५; ३४ = ६-४६; ३९ = ६-४७; ४० = ७-२६; ६३ = १०-२५; ६९ = १०-३५.

२. जैन सन्देश, शोधाङ्क ८, पृ० २८५-२८६, पं० अमृतलाल जैन का लेख : वाग्भट और हरिचन्द्र में पूर्ववर्ती कौन। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने नेमिनिर्वाण महाकाव्य को चन्द्रप्रभचरित और धर्मशर्माभ्युदय के बाद की रचना माना है : देखें—संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० २८२-२८३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ११९; काव्यमाला, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९१२; जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर, १९७०; इसके महाकाव्यत्व के लिए देखें—संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ८१ प्रभृति.

४. इति श्रीवीरनन्दिकृतावुदयाङ्के चन्द्रप्रभचरिते महाकाव्ये......सर्गः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीवर्मा श्रीधरो देवोऽजितसेनोऽच्युताधिपः ।
पद्मनाभोऽहमिन्द्रोऽस्मान् पातु चन्द्रप्रभः प्रभुः ॥

इसी क्रम के अनुसार इस काव्य में भी चन्द्रप्रभ का चरित दिया गया है और प्रशस्ति-पद्यों के अन्त में एक शार्दूलविक्रीडित में क्रमशः सातों भवों का उल्लेख किया है :

यः श्रीवर्मनृपो बभूव विबुधः सौधर्मकल्पे तत-
स्तस्माच्चाजितसेनचक्रभृदभूद्यश्चाच्युतेन्द्रस्ततः ।
यश्चाजायत पद्मनाभनृपतिर्यो वैजयन्तेश्वरो,
यः स्यात्तीर्थकरः स सप्तमभवे चन्द्रप्रभः पातु नः ॥

ग्रन्थ के प्रारम्भ में ६ पद्यों में मंगलाचरण, दो पद्यों में सज्जन-दुर्जन चर्चा तथा दो में अपनी लघुता के बाद पाँचवें भव के जीव पद्मनाभ की कथा से विषयवस्तु प्रारम्भ होती है (१ सर्ग)। पद्मनाभ श्रीधर मुनि से अपने पूर्व भवों को सुनता है (२ सर्ग)। इसके बाद चन्द्रप्रभ के सातवें भव पूर्व के जीव श्रीवर्मा का वर्णन है जो तपस्या कर श्रीधर देव होता है (३-४ सर्ग)। श्रीधर का जीव अजितंजय राजा और अजितसेना से अजितसेन राजकुमार होता है। उसे युवराज पदवी मिलती है। उसका चन्द्ररुचि नामक असुर अपहरण करता है (५वाँ सर्ग)। तत्पश्चात् असुर द्वारा अजितसेन को मनोरमा सरोवर में गिराया जाना, फिर अटवी पर्वत में भटकना, युद्ध-वर्णन, विवाह-वर्णन, फिर अपने नगर में लौट आना आदि वर्णन (६ सर्ग); अजितसेन को लोकोत्तर ऐश्वर्य-प्राप्ति, राज्याभिषेक, दिग्विजययात्रा आदि का वर्णन (७ सर्ग) दिया गया है। तत्पश्चात् वसन्त, उपवन-विहार, जलकेलि, सायंकाल, चन्द्रोदय, रात्रिक्रीड़ा, निशावसान-वर्णन (८—१० सर्ग), राजा का सभा में आना, गजक्रीड़ा देखना तथा गज द्वारा एक की मृत्यु देख वैराग्य, तपस्या-वर्णन, मरकर अच्युतेन्द्र होना, उसके बाद पद्मनाभ का जन्म (पाँचवें भव का जीव), पद्मनाभ का अपने पूर्व भवों के प्रति मुनि के उपदेश में सन्देह, वनकेलि गज का आना और उसे वश में करना (११ सर्ग), पृथ्वीपाल राजा के दूत का गज के लिए आना और तर्क प्रस्तुत करना, राजा के इशारे पर युवराज की उक्ति-प्रत्युक्तियाँ तथा मन्त्रविचार-वर्णन (१२ सर्ग), पृथ्वीपाल पर अभियान, रास्ते में प्राप्त नदी (१३ सर्ग), मणिकूट पर्वत एवं सेना संनिवेश का वर्णन तथा सेनासहित पृथ्वीपाल नरपति का आगमन (१४ सर्ग), संग्राम तथा पृथ्वीपाल राजा का वध, शत्रु के कटे सिर को देखकर पद्मनाभ का वैराग्य और अपने पुत्र को राज्यभार देकर तपस्या,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर छोड़कर अहमिन्द्र होना आदि वर्णन (१५ सर्ग), पूर्व देश की चन्द्रपुरी नगरी में महाराजा महासेन और महारानी लक्ष्मणा से पुत्ररूप में गर्भग्रहण (१६ सर्ग), चन्द्रप्रभ जिन की उत्पत्ति, जन्मकल्याणक, बालक्रीड़ा, विवाह, साम्राज्यलाभ, संसार की असारता, तपग्रहण आदि (१७ सर्ग) जैन सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन दिया गया है।

काव्य की वर्ण्य-वस्तु को देखने से लगता है कि इसमें महाकाव्योचित सभी गुणों का समावेश किया गया है।[1] इस काव्य में प्रसङ्गतः अन्य रसों का प्रयोग हुआ है पर शान्तरस को मुख्यता प्रदान की गई है। शेष रस अंग बनकर रह गये हैं, अंगी नहीं बन सके।

ग्रन्थकार एवं रचनाकाल—प्रस्तुत कृति के रचयिता आचार्य वीरनन्दि हैं जिनकी यही एकमात्र कृति उपलब्ध है। इनकी गुरुपरम्परा ग्रन्थ के पीछे प्रशस्ति में दी है। इससे ज्ञात होता है कि आचारसार के कर्ता वीरनन्दि जिनके गुरु मेघनन्दि थे तथा महेन्द्रकीर्ति के शिष्य एक अन्य वीरनन्दि इनसे भिन्न थे।

इस काव्य की प्रशस्ति में वीरनन्दि के गुरु का नाम अभयनन्दि दिया गया है जिनके गुरु विबुधगुणनन्दि थे। विबुधगुणनन्दि के गुरु का नाम गुणनन्दि था। ये देशीयगण के आचार्य थे।

प्रशस्ति में लिखा है कि वीरनन्दि ने अपने बुद्धिबल से समस्त वाङ्मय को आत्मसात् कर लिया था—वे सर्वतन्त्र स्वतन्त्र थे। सज्जनों की सभाओं में कुतर्कों के लिए अंकुश के समान उनके वचन सदा विजयी थे, इस कारण उनका यश भी खूब था।[2]

---

१. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ८१ प्रभृति.

२. बभूव भव्याम्बुजपद्मबन्धुः पतिर्मुनीनां गणभृत्समानः।
सदग्रणीर्देशगणाग्रगण्यो गुणाकरः श्रीगुणनन्दिनामा ॥ १ ॥
गुणग्रामाम्भोधेः सुकृतवसतेर्मित्रमहसा-
मसाध्यं यस्यासीन्न किमपि महीशासितुरिव।
स तच्छिष्यो ज्येष्ठः शिशिरकरसौम्यः समभव-
त्प्रविख्यातो नाम्ना विबुधगुणनन्दीति भुवने ॥ २ ॥
मुनिजननुतपादः प्रास्तमिथ्याप्रवादः
सकलगुणसमृद्धस्तस्य शिष्यः प्रसिद्धः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभयनन्दि के शिष्य होने के नाते वीरनन्दि और गोम्मटसार के कर्ता नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती दोनों सतीर्थ्य थे। नेमिचन्द्र सि० च० उनसे बड़े प्रभावित थे। उन्होंने कर्मकाण्ड में इनका तीन बार ससम्मान उल्लेख किया है।[1] अपने सहाध्यायी द्वारा मंगलाचरण प्रसङ्गों में इस प्रकार का स्मरण वीरनन्दि की प्रतिष्ठा का द्योतक है। इसके अतिरिक्त प्रसिद्ध दार्शनिक और विशिष्ट कवि वादिराजसूरि ने अपने काव्य पार्श्वनाथचरित[2] में इनके नाम और कृति की प्रशंसा की है। कवि दामोदर ने अपनी कृति चन्द्रप्रभचरित[3] में इन्हें वन्दन करते हुए कवीश कहा तथा पण्डित गोविन्द[4] ने इनका उल्लेख अपनी रचना के प्रारम्भ में धनञ्जय, असग और हरिचन्द्र से पहले किया है। कवि आशाधर ने अपनी कृति सागारधर्मामृत[5] में चन्द्रप्रभचरित का एक पद्य उद्धृत किया है। महाकवि हरिचन्द्र ने धर्मशर्माभ्युदय की रूपरेखा प्रायः चन्द्रप्रभचरित को सामने रखकर बनाई थी। वीरनन्दि ने अपने ग्रन्थ में अपने पूर्ववर्ती किन्हीं कवियों और कृतियों का उल्लेख नहीं किया। इससे ज्ञात होता है कि इनका समकालीन और परवर्ती आचार्यों और कवियों पर बड़ा प्रभाव था। फिर भी नेमिनिर्वाण का उन पर कुछ प्रभाव अवश्य था।

चूँकि वीरनन्दि नेमिचन्द्र सि० च० के सतीर्थ्य थे इसलिए उनका समय वही होना चाहिये जो उनके सहाध्यायी का था। नेमिचन्द्र ने कर्मकाण्ड की रचना

अभवदभयनन्दी जैनधर्माभिनन्दी

स्वमहिमजितसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धुः ॥ ३ ॥

भव्याम्भोजविबोधनोद्यतमतेर्भास्वत्समानत्विषः

शिष्यस्तस्य गुणाकरस्य सुधियः श्रीवीरनन्दीत्यभूत्।

स्वाधीनाखिलवाङ्मयस्य भुवनप्रख्यातकीर्तेः सताम्

संसत्सु व्यजयन्त यस्य जयिनो वाचः कुतर्काङ्कुशाः ॥ ४ ॥

शब्दार्थसुन्दरं तेन रचितं चारुचेतसा।

श्रीजिनेन्दुप्रभस्येदं चरितं रचनोज्ज्वलम् ॥ ५ ॥

१. कर्मकाण्ड, गाथा ४३६, ७८५, ८९६.

२. पार्श्वनाथचरित, १. ३०.

३. चन्द्रप्रभचरित, १. १९.

४. पुरुषार्थानुशासन, २२.

५. १. ११ की व्याख्या में चन्द्रप्रभचरित का ४.३८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेनापति चामुण्डराय की प्रेरणा से की थी। इस चामुण्डराय ने गोम्मटस्वामी की मूर्ति की प्रतिष्ठा चैत्र शुक्ल पंचमी रविवार अर्थात् २२ मार्च सन् १०२८ में श्रवणबेल्गोल नामक स्थान में की थी अतः वीरनन्दि का समय ११वीं शताब्दी का प्रारम्भ माना जा सकता है।

वर्धमानचरित :

इसमें[1] भग० महावीर का वर्तमान भव और पूर्वजन्मों में मरीचि, विश्वनन्दी, अश्वग्रीव, त्रिपृष्ठ, सिंह, कपिष्ठ, हरिषेण, सूर्यप्रभ आदि की कथाएँ वर्णित हैं।

इसकी कथावस्तु यद्यपि उत्तरपुराण के ७४वें पर्व से ली गई है पर कवि ने कथावस्तु को महाकाव्योचित बनाने के लिए काट-छाँट भी की है। कवि असग ने पुरुरवा और मरीचि के आख्यान को छोड़ दिया है और श्वेतातपत्रा नगरी के राजा नन्दिवर्धन के आंगन में पुत्र जन्मोत्सव से कथानक प्रारम्भ किया है। यह आरम्भस्थल बहुत ही रमणीय बन पड़ा है। पूर्व भवावलि का प्रारम्भिक अंश घटित रूप में न दिखलाकर मुनिराज के मुख से कहलाया गया है। इस प्रकार उत्तरपुराण की कथावस्तु अक्षुण्ण रह गई है। कवि ने इस बात का पूर्ण प्रयत्न किया है कि पौराणिक कथानक महाकाव्य का रूप धारण कर सके। इस महाकाव्य में जीवन के प्रधान तत्त्वों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है यथा—पिता-पुत्र का स्नेह नन्दिवर्धन और नन्दन के जीवन में, भाई का स्नेह विश्वभूति और विशाखभूति के जीवन में, पति-पत्नी का स्नेह त्रिपृष्ठ और स्वयम्प्रभा के जीवन में, विविध भोग-विलास हरिषेण के जीवन में और शौर्य एवं अद्भुत कार्यों का वर्णन त्रिपृष्ठ के जीवन में।

इस काव्य की महाकाव्योचित गरिमामयी उदात्त शैली है और गम्भीर रसव्यंजना[2] भी इसमें विद्यमान है। साथ ही संध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, वन, सूर्य, नदी, पर्वत आदि का सांगोपांग वर्णन है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३४२; सम्पादन और मराठी अनुवाद—जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्रकाशक—रावजी सखाराम दोशी, सोलापुर, १९३१; हिन्दी अनुवाद—पं० खूबचन्द्र शास्त्री, प्रकाशक—मूलचन्द किसनदास कापडिया, सूरत, १९१८; इसका संक्षिप्त उल्लेख पहले पृ० १२६ में कर आये हैं। यहाँ विशेष परिचय प्रस्तुत है।

२. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० १५०-१५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकवि ने इस काव्य को विविध अलंकारों[1] और छंदों[2] से भी सजाया है।

वर्धमानचरित पर पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसकी शैली प्रायः भारवि के किरातार्जुनीयम् से मिलती-जुलती है। रघुवंश, शिशुपालवध, चन्द्रप्रभचरित, नेमिनिर्वाण आदि काव्यों का यत्किंचित् सादृश्य भी दिखाई देता है।

रचयिता एवं रचनाकाल—कवि के एक अन्य काव्यग्रन्थ शान्तिनाथचरित की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता असग कवि थे। उनके पिता का नाम पटुमति और माता का नाम वैरेति था। कवि के गुरु का नाम नागनन्दि था। कवि ने श्रीनाथ के राज्यकाल में चोलराज्य की विभिन्न नगरियों में आठ ग्रंथों की रचना की है। वर्धमानचरित की प्रशस्ति के अनुसार इस काव्य का रचनाकाल शक संवत् ९१० (ई० सन् ९८८) है। कवि के गुरु नागनन्दि संभवतः वे ही नागनन्दि हों जिनका उल्लेख श्रवणबेलगोल के १०८वें शिलालेख में नन्दिसंघ के आचार्य के रूप में है। पर नन्दिसंघ की पट्टावली से उनके सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

धर्मशर्माभ्युदय :

इस महाकाव्य[3] में पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का जीवनचरित वर्णित है। इसमें २१ सर्ग हैं जिनमें कुल मिलाकर १७६५ पद्य हैं। अन्त में ग्रन्थकर्ता की प्रशस्ति १० पद्यों में दी गई है। इस काव्य की कथावस्तु का आधार आचार्य गुणभद्रकृत उत्तरपुराण का ६१वाँ पर्व है जिसमें धर्मनाथ का चरित केवल ५२ पद्यों में वर्णित है जिनमें धर्मनाथ के केवल दो पूर्व भवों और वर्तमान भव का वर्णन है।[4]

---

१. इस महाकाव्य के अलंकारों के परिशीलन के लिए देखें—संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० १४३-१६१.

२. छन्दों के लिए भी—वही, पृ० १६१.

३. काव्यमाला, ८, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३; जिनरत्नकोश, पृ० १९३; हिन्दी अनुवाद—पं० पन्नालाल साहित्याचार्यकृत, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी.

४ उत्तरपुराण, पर्व ६१.५४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतनी छोटी कथावस्तु को लेकर सरस, सुन्दर शब्दावली, मनोहर भावों और कल्पना के सहारे एक विशाल काव्य की सृष्टि कवि की विशाल प्रतिभा का ही प्रतिफल है।

कथा प्रारम्भ करने के पहले ९ पद्यों द्वारा मंगलाचरण, अपनी लघुता, काव्य का सार-निःसार, सज्जन-दुर्जन निरूपण आदि २२ पद्यों द्वारा करके उत्तर कोशल देश के रत्नपुर नगर का वर्णन है। दूसरे सर्ग में राजा महासेन और रानी सुव्रता की पुत्राभावजन्य चिन्ता तथा वनपाल द्वारा उद्यान में चारण मुनि के आगमन की सूचना पाने का वर्णन है। तीसरे सर्ग में पुरजन-परिजन समेत राजा का मुनिदर्शन के लिए जाना और उनसे अपने विषय में तीर्थंकर के पिता होने की भविष्यवाणी सुनना वर्णित है। चौथे सर्ग में राजा के अनुरोध पर मुनि तीर्थंकर धर्मनाथ के दो पूर्व भवों का वृत्तान्त सुनाते हैं और सर्वार्थसिद्धि विमान से च्युत होकर महारानी सुव्रता के गर्भ में आने की बात कहते हैं। पाँचवें सर्ग में लक्ष्मी आदि देवियों द्वारा सुव्रता की परिचर्या, सुव्रता द्वारा १६ स्वप्नों का दर्शन तथा गर्भधारण होने पर देवताओं द्वारा पूजा-उत्सव का वर्णन है। छठे से आठवें सर्ग तक जन्मकल्याणक, जन्माभिषेक आदि का वर्णन है। नवें सर्ग में बाल्यकाल से युवावस्था प्राप्त करने तथा स्वयंवर के लिए विदर्भ देश के लिए प्रस्थान तथा मार्ग में प्राप्त गंगा का वर्णन है। दसवें[1] सर्ग में मार्ग में किन्नरेन्द्र की प्रार्थना पर धर्मनाथ का विन्ध्यगिरि में विश्राम तथा वहाँ कुबेर नगरी की रचना आदि का वर्णन है। ग्यारहवें सर्ग में धर्मनाथ की सेवा के लिए उपस्थित छः ऋतुओं का वर्णन है। बारहवें सर्ग में वनसुषमा एवं पुष्पावचय का वर्णन, तेरहवें सर्ग में नर्मदा नदी में जलक्रीड़ा का वर्णन, चौदहवें में संध्या, रात्रि, चन्द्रोदय आदि का वर्णन, पन्द्रहवें में मद्यपान एवं सम्भोग-शृंगार का वर्णन, सोलहवें सर्ग में प्रभात-वर्णन तथा धर्मनाथ का विदर्भ की ओर प्रस्थान, विदर्भ देश का वर्णन तथा विदर्भ नरेश से समागम दिखाया गया है। सत्रहवें सर्ग में स्वयंवर का वर्णन, राजकन्या इन्दुमती द्वारा धर्मनाथ का वरण, विवाह-वर्णन तथा पत्नी सहित स्वदेश लौटना वर्णित है। अठारहवें सर्ग में धर्मनाथ का नगर-प्रवेश, पिता महासेन द्वारा दीक्षाग्रहण तथा धर्मनाथ के राज्याभिषेक का वर्णन है। उन्नीसवें सर्ग में धर्मनाथ के सेनापति सुषेण का विदर्भ में अन्य राजाओं के साथ युद्ध और विजय प्राप्त कर लौटने का वर्णन है। बीसवें सर्ग में धर्मनाथ का उल्कापात देखकर

---

१. दसवें से सोलहवें सर्ग तक माघकृत शिशुपालवध की शैली का प्रभाव स्पष्ट द्रष्टव्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरक्त होना, दीक्षा, तपस्या, केवलज्ञान, समवसरण का वर्णन है और इक्कीसवें में धर्मदेशना, भ्रमण तथा मोक्षगमन का वर्णन है।

कथानक के उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कितने छोटे कथानक को लेकर कवि ने महाकाव्य का विस्तृत रूप दिया है। इसमें पहले से छठे सर्ग तक परम्परागत कथा की प्रमुखता है, किन्तु बाद के सर्गों में कथावस्तु को गौण कर अलंकृत वर्णन प्रमुख हो गये हैं। दस से सोलह सर्गों में महाकाव्यीय विषयों का वर्णन हुआ है। सत्रह से बीस सर्गों में पुनः कथावस्तु का क्रम लिया गया है।

प्रस्तुत काव्य के कथानक के लघु होने पर भी कवि ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण अच्छी तरह किया है। इसमें धर्मनाथ, महासेन, सुव्रता, चरणमुनि और सुषेण ये पाँच ही पात्र प्रमुखरूप से दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह प्राकृतिक वर्णन करने में कवि बहुत सफल रहा है। उसका क्षेत्र इस विषय में बहुत व्यापक है।[1] पात्रों का सौन्दर्य-चित्रण भी कवि ने यथास्थान प्रस्तुत किया है। कवि ने यत्र-तत्र तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी चित्रण किया है।[2] उसने इस काव्य के चौथे और इक्कीसवें सर्ग में जैनधर्म और दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन किया है।

धर्मशर्माभ्युदय रमणीय भावों और कल्पनाओं का विशाल भण्डार है। इसमें विविध रसों विशेषकर शान्त और शृंगार का अच्छा परिपाक हुआ है। नवम सर्ग में वात्सल्यरस, सत्रहवें में शृंगाररस, उन्नीसवें में वीररस तथा बीसवें में शान्तरस की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

इस काव्य की भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और परिमार्जित है। भाषा पर कवि का असाधारण अधिकार दिखाई पड़ता है। भाषा में स्वाभाविकता और सजीवता के दर्शन होते हैं। यथास्थान माधुर्य, ओज और प्रसाद तीनों गुणों का प्रयोग हुआ है पर माधुर्य सम्पूर्ण काव्य में छाया हुआ है। काव्य परम्परा के अनुसार इस काव्य में भी एक सर्ग (१९वाँ) पाण्डित्यप्रदर्शन और शब्दक्रीड़ा के लिए रचा गया है। इसमें विविध चित्रकाव्यों की योजना की गई है यथा—गोमूत्रिक, अर्धभ्रम, मुरजबंध, सर्वतोभद्र, षोडशदलकमल तथा चक्रबंध आदि। इसी

---

१. सर्ग २. ७७; ३. २६-२७, ३३-३४; १०. ९; ११. ७२; १४. ८, ३९; १६. १८, ४५-४६ आदि.

२. सर्ग २. १५, १९; ४. २८ आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह एकाक्षर, द्वयक्षर, निरोष्ठय, अतालव्य अक्षरों द्वारा पद्यरचना प्रस्तुत की गई है।

उपर्युक्त चित्रालंकारों के अतिरिक्त कवि ने विविध अलंकारों की योजना की है जिनमें स्वाभाविकता का ध्यान रखा गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का प्रयोग प्रचुर हुआ है और अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। छन्दों के प्रयोग में कवि का क्षेत्र व्यापक है। उसने २५ छन्दों का प्रयोग किया है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग कर सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है। दसवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग किया है। काव्य में उपजाति, अनुष्टुप् और वंशस्थ का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

कवि ने अपने इस काव्य में यद्यपि पूर्ववर्ती किसी कवि, ग्रन्थकार या ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया है फिर भी इसके निरीक्षण से ज्ञात होता है कि इस पर माघ के शिशुपालवध, वाग्भट के नेमिनिर्वाण तथा वीरनन्दि के चन्द्रप्रभचरित का प्रभाव प्रचुरमात्रा में विद्यमान है।

	धर्मशर्माभ्युदय के निम्न पद्य	नेमिनिर्वाण के निम्न पद्यों से तुलनीय हैं :
(१)	४. २९	१. ७०
(२)	५. २	२. २
(३)	५. ५४	२. ३९
(४)	६. ३	४. ५
(५)	६. २०	४. २३
(६)	७. १	५. १
(७)	३. ५२	५. ६८

	धर्मशर्माभ्युदय के निम्न पद्य	चन्द्रप्रभचरित के निम्न पद्यों से तुलनीय हैं :
(१)	२१. ८	१८. २
(२)	२१. ९०	१८. ७८
(३)	२१. ९९	१८. ८८

इसी तरह धर्मशर्माभ्युदय के चतुर्थ सर्ग तथा चन्द्रप्रभचरित की दार्शनिक चर्चा के पद्य तुलनीय हैं।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के १९वें सर्ग के अनेक चित्रबन्धों में तथा २१वें सर्ग के अन्तिम पद्य में इसके रचयिता का नाम हरिचन्द्र दिया गया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। कवि ने १० पद्यों की प्रशस्ति द्वारा भी ग्रन्थ के अन्त में अपना परिचय दिया है कि श्रीसम्पन्न बड़ी भारी महिमा वाला और सारे जगत् का अवतंस-रूप नोमकों का वंश है जिसके हस्तावलम्बन से राज्यलक्ष्मी वृद्ध होने पर भी दुर्गपथ से स्खलित नहीं हुई। कायस्थ कुल में आर्द्रदेव नाम के पुरुषरत्न हुए जिनकी पत्नी का नाम रथ्या था तथा उनसे हरिचन्द्र नाम का पुत्र हुआ जो अरहंत भगवान् के चरणकमलों का भ्रमर था और जिसकी वाणी सारस्वत स्रोत में निर्मल हो गई थी। अपने भाई लक्ष्मण की भक्ति और शक्ति से हरिचन्द्र उसी तरह निर्व्याकुल होकर शास्त्रसमुद्र के पार हो गये जिस तरह राम लक्ष्मण के द्वारा सेतु पार हुए थे।[1]

प्रशस्ति से यह ज्ञात होता है कि कवि एक राज्यमान्य कुल के थे और यह राज्यमान्यता उनके यहाँ पीढ़ी से चली आ रही थी। कवि ने माता-पिता, अपने नाम और अनुज के नाम के अतिरिक्त अपने वंश का तथा अपने पूर्वज गुरुओं और आचार्यों का कोई परिचय नहीं दिया। वे कहाँ के रहनेवाले थे यह भी उक्त प्रशस्ति से ज्ञात नहीं होता। कवि किस सम्प्रदाय के थे यह भी उनकी प्रशस्ति से नहीं मालूम होता पर ग्रन्थ के अन्तर्वीक्षण से यह स्पष्ट है कि वे दिगम्बर मत के अनुरागी थे। उन्होंने इस काव्य की कथा उत्तरपुराण से ली थी, धर्मदेशना के प्रसंग में उन्होंने चन्द्रप्रभचरित की शैली का अनुसरण किया है, नेमिनिर्वाणकाव्य के अनेक पद्यों से भी इस काव्य के अनेक पद्य मिलते हैं, तथा पाँचवे सर्ग में दिगम्बरमान्य १६ स्वप्नों का वर्णन है, तीसरे सर्ग के ८वें श्लोक में दिगम्बर[2] साधु का समागम आदि इनके दिगम्बर मतानुयायी होने के सूचक हैं। पर वे कट्टर दिगम्बर न थे। उन्होंने श्वेताम्बर ग्रन्थों का तथा जैनेतर ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। अन्तिम (२१वें) सर्ग में जिन खरकर्मों का उल्लेख है वे हेमचन्द्र के योगशास्त्र पर अवलम्बित हैं।[3]

कवि का अध्ययन विशाल था। उसने अपनी कृति के निर्माण में तत्त्वार्थ-सूत्र, आदिपुराण, उत्तरपुराण, यशस्तिलकचम्पू, गद्यचिन्तामणि, चन्द्रप्रभचरित,

---

१. प्रशस्ति, पद्य १-५.

२. दिगम्बरपदप्रान्तं राजापि सहकान्तया.

३. (१) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १३१=यो० शा०, पृ० १६६.
 (२) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १३६=यो० शा०, तृ० प्र०, पृ० ४९३.
 (३) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १४५=यो० शा०, तृ० प्र०, पृ० ५६७.
 (४) ध० श०, सर्ग २१, श्लोक १४६=यो० शा०, तृ० प्र०, पृ० ५६९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिनिर्वाण, योगशास्त्र, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित प्रभृति जैन ग्रन्थों का तथा रघुवंश, कुमारसंभव, नागानन्दनाटक, हर्षचरित, कादम्बरी, दशकुमारचरित, गउडवह, शिशुपालवध[1], नलचम्पू, नैषधीयचरित, ध्वन्यालोक, काव्यप्रकाश तथा हिन्दूपुराण, ज्योतिष, आयुर्वेद, कामशास्त्र, कोष, व्याकरण एवं अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था और धर्मशर्माभ्युदय की रचना में घोर परिश्रम किया था। इसीलिए वे अपनी ग्रन्थप्रशस्ति के अन्तिम पद में लिखते हैं—**'भवन्तु च श्रमविदः सर्वे कवीनां जनाः'**[2] अर्थात् सभी लोग कवियों के परिश्रम को समझें।

हरिचन्द्र ने अलंकारशास्त्र का गम्भीर अध्ययन किया था पर रसध्वनि सम्प्रदाय के सार्थवाह—मुखिया थे (रसध्वनेरध्वनि सार्थवाहः[3])। हरिचन्द्र की कीर्ति अपने समय में ही खूब फैल गई थी। वे सरस्वतीपुत्र समझे जाने लगे थे। यद्यपि वे अन्य कवियों से पीछे हुए थे पर उनकी गणना पहले होने लगी थी।[4] ये अपने समय में ही एक अधिकारी विद्वान् हो गये थे। कश्मीर के एक मंत्री कवि जल्हण (१२४७ ई०) ने अपनी 'सुभाषितमुक्तावलि' में धर्मशर्माभ्युदय का एक पद्य[5] उद्धृत कर इनका 'चन्द्रसूरि' नाम से उल्लेख किया है। संभव है 'चन्द्र' इनका उपनाम रहा हो और जैन विद्वान् होने से इनकी 'सूरि' उपाधि हो।[5]

इस काव्य की प्रशस्ति में या अन्यत्र कहीं धर्मशर्माभ्युदय का रचनाकाल नहीं दिया गया। फिर भी इसका रचनाकाल अन्य साधनों से जाना जा सकता है। इस काव्य की प्राचीनतम हस्तलिखित प्रति पाटन भण्डार से मिली है जिसमें प्रति-

---

१. जर्मन विद्वान् डा० ह० याकोबी ने वियना ओरियण्टल जर्नल, भाग ३, पृ० १३८ प्रभृति में 'माघ और भारवि' लेख में शिशुपालवध के अनेक पद्यों तथा गउडवह के अनेक पद्यों से धर्मशर्माभ्युदय के पद्यों की भाषा और भावों में साम्य दिखाया है।

२. पद्य सं० १० की अन्तिम पंक्ति.

३. प्रशस्तिपद्य ७.

४. वाग्देवतायाः समवेदि सभ्यैर्यः पश्चिमोऽपि प्रथमस्तनूजः (प्रशस्तिपद्य ६).

५. धर्म० श० के द्वि० सर्ग पद्य ४० से सु० मु० के पृ० १८५ में अंकित पद्य से तुलना करें—

सुहृत्तमावेकत उन्नतौ स्तनौ गुरुर्नितम्बोऽप्ययमन्यतः स्थितः।
कथं भजे कान्तिमितीव चिन्तया ततान तन्मध्यमतीव तानवम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपि काल सं० १२८७ दिया गया है अतः उस समय से पूर्व इसकी रचना अवश्य हुई होगी। इसकी पूर्वावधि आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र के बाद ही आती है क्योंकि इस काव्य के २१वें सर्ग में जिन खरकर्मों का उल्लेख है वे हेमचन्द्र के योगशास्त्र पर आधारित हैं, यह पहले कह चुके हैं। हेमचन्द्र का समय १२वीं शताब्दी का उत्तर भाग और तेरहवीं शताब्दी का पूर्वभाग है। इसलिए हरिचन्द्र का समय तेरहवीं शताब्दी (विक्रम) के उत्तर भाग में रखा जा सकता है। अनुमान है कि पाटन भण्डार से उपलब्ध धर्मशर्माभ्युदय की सं० १२८७ की प्रति सर्वप्रथम है अतः विद्वानों का मत है कि उक्त काव्य की रचना सं० १२५७ से १२८७ के बीच कभी हुई है।[१] हरिचन्द्र नाम के अनेक विद्वान् संस्कृत साहित्य में हो गये हैं पर ये उनसे भिन्न और परवर्ती विद्वान् कवि थे।

सनत्कुमारचरित :

यह[२] एक उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य है। इसमें सनत्कुमार चक्रवर्ती का चरित मनोहर शैली में वर्णित है। इस महाकाव्य में २४ सर्ग हैं। इस काव्य में घटनाओं का आधिक्य, उनका समुदित विकास तथा पात्रों की कर्मशीलता के कारण नाटक पढ़ने जैसा आनन्द मिलता है।

कथावस्तु इस प्रकार प्रारम्भ होती है : १-३ सर्ग में कांचनपुर का नरेश विक्रमयश अपने नगर के वणिक नागदत्त की सुन्दर पत्नी विष्णुश्री को अपहरण कर उसके प्रेमवश होकर अपनी अन्य रानियों की उपेक्षा करता है। रानियाँ मान्त्रिक विधि से विष्णुश्री को मरवा डालती हैं। राजा उसके अन्तिम दर्शन करने श्मशान जाता है पर विष्णुश्री के शव से भयंकर दुर्गन्ध के कारण विरक्त होकर तपस्या कर स्वर्ग जाता है। ४–६ सर्गों में विक्रमयश और नागदत्त के जीवों में देव और मनुष्य भवों में प्रतिशोध का वर्णन है। ७वें सर्ग में विक्रमयश का जीव हस्तिनापुर के राजा के कुमार के रूप में उत्पन्न होता है। आठवें सर्ग में उसका नामकरण सनत्कुमार और युवक होने पर उसे युवराज बनाने का

---

१. जैन सन्देश, शोधाङ्क ७, पृ० २५१–२५४, पं० अमृतलाल शास्त्री का लेख : महाकवि हरिचन्द्र.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२; विशेष परिचय के लिए देखें—तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य (डा० श्यामशंकर दीक्षित), पृ० २२२-२४९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन है। ९–११वें सर्ग में सनत्कुमार का अपहरण, उसके मित्र महेन्द्र द्वारा खोज तथा प्राप्ति का वर्णन है। १२–२२वें सर्ग में सनत्कुमार के संकेत पर उसकी पत्नी बकुलमती सनत्कुमार के अश्व द्वारा अपहरण से लेकर सनत्कुमार द्वारा यक्षविजय, भानुवेग की अष्ट कन्याओं से विवाह आदि, अशनिघोष से युद्ध और बकुलमती आदि कन्याओं से विवाह का वर्णन करती है। इसी प्रसंग में चौदहवें और सोलहवें सर्ग में क्रमशः चन्द्रोदय और शरद् ऋतु का वर्णन है। बाईसवें सर्ग के अन्त में सूचना मिलती है कि सनत्कुमार अपने माता-पिता से मिलने चल देता है।

तेईसवें सर्ग में सनत्कुमार का नगर-प्रवेश, कुछ समय बाद एक देव का सनत्कुमार के सौन्दर्य को देखने आना और उसकी कान्ति को अचानक क्षीण होते देख ६ मास में मृत्यु की सम्भावना कहकर जाना, इसे सुनकर सनत्कुमार का विरक्त होना वर्णित है।

चौबीसवें पर्व में सनत्कुमार का व्रत-उपवास करना, उसके शरीर में सात भयंकर व्याधियों का उदित होना, देव द्वारा परीक्षा, अन्त में पंचपरमेष्ठि मंत्र का स्मरण कर सनत्कुमार का मोक्ष जाना वर्णित है। यहीं काव्य समाप्त होता है।

इस काव्य का कथानक अच्छा संगठित और व्यवस्थित है। सभी घटनाएँ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं जिससे कथानक में अविच्छिन्नता और धारावाहिकता विद्यमान है। इसमें अन्य पौराणिक महाकाव्यों में मिलनेवाले दोषों अर्थात् अवान्तर कथाओं की योजना या लम्बे वर्णन का अभाव है।

सनत्कुमारचरित्र में अनेक पात्र हैं पर इनमें सनत्कुमार का चरित्र अच्छी तरह विकसित हुआ है। अन्य पात्रों में अश्वसेन (पिता), महेन्द्र (मित्र), बकुलमती (पत्नी) आदि हैं। प्रकृतिचित्रण भी इस काव्य में विविध रूपों में हुआ है। चौदहवें और सोलहवें सर्ग इस दिशा में अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। अन्य सर्गों में भी प्रकृति के व्यापक[1] रूप मिलते हैं। सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने नखशिख का वर्णन किया है, उसमें भी निसर्गसौन्दर्य का न कि प्रसाधन-सामग्री से अलंकृत सौन्दर्य का। सामाजिक चित्रण में कवि ने वैवाहिक रीति-रिवाजों के अतिरिक्त अन्य सामाजिक परम्पराओं का वर्णन प्रायः नहीं किया।

---

१. सर्ग १०. ६१, ५९, ६४, ६५; ११. ५, १४; १२. ४१, ६९; १५.१४; १६. ६१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह इस काव्य में जैनधर्म के नियमों या दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन भी नहीं के बराबर है। तृतीय सर्ग में गुणाढ्यसूरि की देशना का संकेत मात्र दिया गया है। पर परोक्षरूप से जैनधर्म की महत्ता का प्रतिपादन करना इस काव्य का उद्देश्य है।

इस काव्य का प्रधान रस शान्तरस[१] है पर अन्य रसों की भी अभिव्यक्ति इसमें हुई है। अष्टम सर्ग में सनत्कुमार की बाल-क्रीड़ाओं के वर्णन में वात्सल्य-रस[२] का सुन्दर उद्रेक हुआ है। दसवें सर्ग में सनत्कुमार की खोज के समय अटवी के वर्णन में भयानकरस[३] तथा मृत विष्णुश्री के दुर्गन्धित शव के चित्रण में वीभत्सरस[४] द्रष्टव्य है। अशनिघोष और सनत्कुमार के मध्य युद्ध-वर्णन में वीररस[५] देखा जा सकता है।

भाषा, रीति, गुण और अलंकार की दृष्टि से भी यह काव्य महनीय है। भाषा में गरिमा और उदात्तता है। रसों और भावनाओं के अनुकूल भाषा प्रवाहित हुई है। यत्र-तत्र मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया गया है।[६] केवल एक सर्ग 'इक्कीसवें' की भाषा में पाण्डित्यप्रदर्शन किया गया है जिसे समझने के लिए बौद्धिक व्यायाम करना पड़ता है। इसमें चित्रबंध के नाना उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। इसी सर्ग में शब्दालंकारों की छटा प्रदर्शित की गई है पर अन्य सर्गों में स्वाभाविकता की रक्षा करते हुए अर्थालंकारों का प्रयोग हुआ है। उनमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। अन्य अलंकारों में सन्देश, उदाहरण, संभावना, विशेषोक्ति, परिसंख्या, एकावली, मुद्रा आदि द्रष्टव्य हैं।

इस महाकाव्य के सर्गों में प्रायः एक छन्द का ही प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। कतिपय सर्गों में विविध छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। इसमें कुल मिलाकर चौंतीस छन्दों का प्रयोग हुआ है। सबसे अधिक उपजाति, अनुष्टुप् और वंशस्थ का प्रयोग हुआ है। अप्रचलित या अल्प-

---

१. सर्ग २३. ८-११; १६.६; १८. १४-२२.
२. सर्ग ८. ५, २३.
३. सर्ग १०. २७, ३१, ३४.
४. सर्ग ३. ३१-३५.
५. सर्ग २०.
६. सर्ग १. ८४; २. ३, ८८, ९०; ५. ४; १८. २३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित छन्दों में युग्मविमला, मणिगुणनिकरा, चण्डवृष्टिप्रयातोदण्डक, अर्णवाख्यदण्डक, व्यालाख्यदण्डक आदि हैं।

रचयिता और रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य के रचयिता जिनपालगणि हैं जो चन्द्रकुल की प्रवरवज्र-शाखा के मुनि थे। वे खरतरगच्छ के संस्थापक जिनेश्वरसूरि की परम्परा में जिनपतिसूरि के शिष्य थे। खरतरगच्छ की बृहद्गुर्वावलि के अनुसार जिनपाल ने सं० १२२५ में दीक्षा ग्रहण की थी, सं० १२६९ में जिनपतिसूरि ने उन्हें उपाध्याय पद प्रदान किया था, सं० १२७३ में पं० मनोजानन्द को हराकर जिनपाल उपाध्याय ने नगरकोट के राजा पृथ्वीचन्द्र से जयपत्र प्राप्त किया था। उनका स्वर्गवास सं० १३११ में हुआ था।[१] अभयकुमारचरित (सं० १३१२) के रचयिता चन्द्रतिलकगणि को जिनपाल उपाध्याय ने धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ाया था।[२] श्री मो० द० देसाई के अनुसार जिनपाल उपाध्याय ने सं० १२६२ में षट्स्थानकवृत्ति की रचना करने के बाद इस महाकाव्य की रचना की थी।[३] इस काव्य की प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १२७८ वैशाख वदी ५ की मिलती है। इससे सनत्कुमारचरित का रचनाकाल सं० १२६२ से १२७८ के मध्य का समय माना जा सकता है। कवि ने उक्त काव्य की रचना भक्तिभावना से प्रेरित होकर की थी।[४]

जयन्तविजय :

इस महाकाव्य[५] में मगधदेश के राजा जयन्त और उनकी विजयों का वर्णन किया गया है। इसमें १९ सर्ग हैं और यह महाकाव्य 'श्री' शब्दाङ्कित है। इसमें पद्य संख्या १५४८ है जो अनुष्टुभ्मान से २२०० श्लोक-प्रमाण है।

---

१. खरतरगच्छ-बृहद्गुर्वावलि (सि० जै० ग्र०), पृ० ४४-५०.

२. अभयकुमारचरित, प्रशस्ति, श्लो० ३८-४०.

३. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३९५.

४. सर्ग २४. ११२.

५. काव्यमाला, ७५, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई; जै० ध० प्र० स० भावनगर; जिनरत्नकोश, पृ० १३३; इसके महाकाव्यत्व के लिए देखें—संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३०८ प्रभृति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्गों के अनुसार इस काव्य का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है : प्रारम्भ में आठ पद्यों द्वारा मंगलाचरण, ६ पद्यों द्वारा सज्जन-दुर्जनस्वभाव-विवेचन के बाद कथा का आरम्भ होता है। तत्पश्चात् मगधदेश की जयन्ती नगरी के राजा विक्रमसिंह, उनकी पत्नी प्रीतिमती और मन्त्री सुबुद्धि का परिचय दिया गया है (१ सर्ग)। इसके बाद हथिनी और शिशुगज को देखकर रानी को सन्तान-अभाव से उदासीनता, राजा की प्राणों की बाजी लगाकर इच्छापूर्ति करने की प्रतिज्ञा का वर्णन है (२ सर्ग)। मन्त्री सुबुद्धि प्रतिज्ञापूर्ति का साधन पंच-परमेष्ठि मन्त्र को बताता है, उदाहरण के लिए धनावह सेठ की कथा दी गई है जिसने उक्त मन्त्र के प्रभाव से अनेक विपत्तियाँ पार की थीं (३ सर्ग)। तत्पश्चात् राजा द्वारा रात्रि में नगरवीक्षा करना, नारीचीत्कार का अनुगमन करते नमस्कार मन्त्र के बल से एक देवता को परास्त करना और उससे मुक्ताहार प्राप्त करना और आगे बढ़कर एक कन्या की बलि के लिए उद्यत एक योगी को परास्त कर कन्या प्राप्त करना वर्णित है (४ सर्ग)। कन्या के परिचय से यह मालूम करना कि वह उसकी रानी की बहिन है। फिर देवता द्वारा योगी का तथा राजा (विक्रमसिंह) के पूर्वजन्म का परिचय देना वर्णित है (५ सर्ग)। तत्पश्चात् राजा द्वारा कन्या को उसके पिता के पास लेकर जाना, कन्या के पिता विक्रमसिंह (राजा) के साथ उसका विवाह करना, नवविवाहिता पत्नी के साथ राजा का अपनी राजधानी जयन्ती नगरी को लौटना और देवता द्वारा प्रदत्त मौक्तिक आहार को रानी प्रीतिमती को देना, रानी का गर्भधारण करना और समय पर उसे जयन्त नामक पुत्र होना वर्णित है (६ सर्ग)। तत्पश्चात् जयन्त के युवा होने पर युवराज बनने तथा वसन्त ऋतु आने पर वनश्री देखने उपवन जाने का वर्णन है (७ सर्ग)। इसके बाद दोलान्दोलन, पुष्पावचय, जलकेलि, सूर्यास्त एवं चन्द्रोदय का वर्णन है तथा युवराज के संध्यासमय राजधानी में लौटने की सूचना दी गई है (८ सर्ग)।

एक समय सिंहलनरेश के हाथी के जयन्ती नगरी में भाग आने, उस हाथी को राजा द्वारा पकड़वाने, सिंहलनरेश के माँगने पर वापिस करने से अस्वीकार करने तथा सिंहलनृप द्वारा आक्रमण करने और उसका प्रतिरोध करने जयन्त का ससैन्य जाने का वर्णन है (९ सर्ग)। तत्पश्चात् सिंहलनृप की मृत्यु तथा जयन्त की विजय-यात्रा का वर्णन है (१० सर्ग)। इसके बाद जयन्त की दिग्विजय का वर्णन है (११ सर्ग)।

तत्पश्चात् एक देवता द्वारा गगनविलासपुर के नरेश की पुत्री कनकवती के विवाहार्थ जयन्त का अपहरण करना और उसका एक जिनमन्दिर में पहुँचकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मसूरि मुनि से देशना सुनना वर्णित है (१२ सर्ग)। तत्पश्चात् जयन्त-कनकवती के विवाह का वर्णन है (१३ सर्ग) और विवाहोपरान्त ईर्ष्यावश आक्रमण करनेवाले नरेश महेन्द्र का युद्ध में वध (१४ सर्ग) का वर्णन है।

इसके बाद जयन्त के पिता विक्रमसिंह को मुनि के उपदेश से सम्यक्त्व की प्राप्ति, एक ब्राह्मण का मुनि द्वारा वाद-विवाद में पराजय और सभा से निष्कासन, उसी समय जयन्त का प्रत्यागमन (१५ सर्ग) और एक स्वयंवर में जाकर रतिसुन्दरी का वरण (१६ सर्ग), विद्यादेवी द्वारा जयन्त और रतिसुन्दरी के पूर्व भव का वर्णन (१७ सर्ग), कवि के अनुसार जयन्त के द्वारा रतिसुन्दरी के समक्ष ग्रीष्म, वर्षा एवं शरद् ऋतु का वर्णन, रतिसुन्दरी के पिता द्वारा जयन्त को हस्तिनापुर का राजा बनाना वर्णित है (१८ सर्ग)। तत्पश्चात् पिता के द्वारा आमन्त्रित होकर जयन्त का हस्तिनापुर से जयन्ती नगरी पहुँचना, पिता से राज्य-भार ग्रहण करना, विक्रमसिंह का दीक्षा ग्रहण करना तथा जयन्त द्वारा नीतिपूर्वक प्रजापालन करना और जिनेन्द्रभक्ति का प्रचार करना एवं सौधर्मयति द्वारा सम्मान पाना, अन्त में सत्पात्र दान का महत्त्व दिया गया है (१९ सर्ग)।

इस काव्य की कथावस्तु में कहीं-कहीं पूर्वभवों के वर्णन के कारण प्रवाह में शिथिलता-सी दिखती है पर धारावाहिकता अविच्छिन्न है। नवें, दसवें और चौदहवें सर्ग के युद्ध-प्रसंगों में पात्रों के कथोपकथन से नाटकीय सजीवता दृष्टिगोचर होती है। वस्तुतः जयन्तविजय की कथासामग्री सरल, व्यापक एवं सुसम्बद्ध है। इसमें कई पात्र हैं पर विक्रमसिंह और जयन्त के चरित्र का अच्छा विकास हुआ है। प्रकृति-चित्रण भी इस काव्य में व्यापक रूप से किया गया है। देशों और ऋतुओं के वर्णन में इसके उदात्त दर्शन होते हैं।[1] प्रकृति-सौन्दर्य की भांति मानव-सौन्दर्य के विविध पक्षों का अंकन भी कवि ने इस काव्य में किया है।[2]

इस काव्य में तत्कालीन सामाजिक परम्पराओं की झलक भी यत्र-तत्र मिल जाती है।[3] इस काव्य का प्रधान लक्ष्य जयन्तकथा द्वारा पंचपरमेष्ठि नमस्कार मन्त्र की महिमा बताना है। कवि ने वैसे जैनधर्म के नियमों और सिद्धान्तों के प्रतिपादन में अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किये हैं फिर भी पन्द्रहवें सर्ग में

१. सर्ग ८. ६०, ६८; १२. ३३; १४. १५, १८-१९, ३१; १८.१९ आदि.

२. सर्ग १. ६७-६९; १३. ३५; १७. ८४.

३. सर्ग १९. १२, ५८; १३. ५१, ८१, ८४, ९४; १९. १४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक तत्त्वों का निरूपण प्रधान हो गया है। इस निरूपण में कुछ शास्त्रार्थ शैली अपना ली गई है। तर्कों के आधार पर सर्वज्ञसिद्धि भी की गई है।[१]

इस काव्य में विविध रसों का परिपाक हुआ है। इसमें प्रधान रस वीर है। वीर रस के सहायक के रूप में रौद्र और भयंकर रस का परिपाक हुआ है। इनके अतिरिक्त अंगरूप में वात्सल्य, शृंगार और शान्तरस भी विद्यमान है।[२]

इस काव्य की भाषा शुद्ध और सरल है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार दिखाई देता है। इसमें क्लिष्टता और अस्वाभाविकता का पूर्ण अभाव है। प्रसंग के अनुकूल रूपपरिवर्तन की क्षमता इस काव्य की भाषा की विशेषता है। भाषा में लोकोक्तियों और सूक्तियों का अच्छा प्रयोग किया गया है[३] जिससे भाषा अधिक प्रभावशालिनी हो गई है। इसी तरह इस काव्य की भाषा शब्दालंकारों और अर्थालंकारों से सुसज्जित है। इसमें श्रुतिमधुर अनुप्रासों और यमक आदि शब्दालंकारों के प्रचुर प्रयोग हुए हैं। अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, सहोक्ति आदि अनेक अलंकारों की योजना हुई है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में प्रधान रूप से एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन कर दिया गया है। कवि का प्रिय छन्द उपजाति मालूम होता है। उसका प्रयोग प्रथम, छठे, दसवें, चौदहवें, सत्रहवें, उन्नीसवें सर्ग में हुआ है। इस काव्य में कुल मिलाकर १८ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

अनुष्टुभ् मान से इस काव्य की श्लोकसंख्या २२०० है।[४] प्रकाशित रचना में १५४८ पद्य हैं।

रचयिता और रचनाकाल—कवि ने इस काव्य के अन्त में एक प्रशस्ति दी है। तदनुसार इसके रचयिता अभयदेवसूरि हैं। उन्होंने उक्त प्रशस्ति में अपनी गुरुपरम्परा देते हुए लिखा है कि चन्द्रगच्छीय वर्द्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि हुए, उनके शिष्य नवांगीटीकाकार अभयदेवसूरि हुए, उनके शिष्य प्रसिद्ध विद्वान् जिनवल्लभसूरि हुए और उनके शिष्य जिनेश्वरसूरि हुए जिनके शिष्य का

---

१. सर्ग १४. ८, १०, १२, १७, २२-४२ आदि.

२. सर्ग १०. २७-२९; ९. ३८-३९; ४. ९-१२, १४; १६. ३७; ६. ९१-९७; १८. ५०, ५५-५६ आदि.

३. सर्ग ५. २८, ३५, ५६, ५७; १३. १०९; १९. ४६.

४. द्वाविंशतिशतमानं शास्त्रमिदं निर्मितं जयतु।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम पद्मेन्दु मुनिराज था। इस काव्य के रचयिता इन्हीं पद्मेन्दु मुनिराज के शिष्य थे। उक्त प्रशस्ति से कवि के सम्बन्ध में अन्य बातें नहीं ज्ञात होती हैं। प्रशस्ति में इस काव्य की रचना का समय सं० १२७८ लिखा है (दिक्करिकुल-गिरिदिनकर (१२७८) परिमितविक्रमनरेश्वरसमायाम्)।

नरनारायणानन्द :

यह काव्य[1] महाभारत के उस कथा-प्रसंग, जिसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन की मैत्री, रैवतक पर उनका विहार तथा अन्त में अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण वर्णित है, को लेकर रचा गया है। इस लघुकथानक को शास्त्रीय महाकाव्य के अनुरूप व्यापकरूप प्रदान किया गया है।

इस काव्य में १६ सर्ग हैं और रचना-परिमाण ७४० श्लोक है। अन्तिम सर्ग प्रशस्तिसर्ग है जिसमें कवि ने अपना, अपनी वंशपरम्परा तथा अपने गुरु का परिचय दिया है। इस सर्ग का मूल कथानक से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल १५ सर्ग ही मूल कथानक से सम्बद्ध हैं। सर्गों का नाम वर्ण्य विषय के नाम से दिया गया है। प्रथम सर्ग 'पुरनृपवर्णन' है। इसमें द्वारवती नगरी तथा श्रीकृष्ण का वर्णन है। दूसरे सर्ग 'सभावर्णन' में अर्जुन के प्रभास तीर्थ में आने की सूचना मिलती है। तीसरे सर्ग 'नरनारायण-संगम' में श्रीकृष्ण की अर्जुन से भेंट तथा पूछने पर अर्जुन द्वारा रैवतक पर्वत का वर्णन है। चौथे में ऋतुवर्णन, पाँचवें में चन्द्रोदय, छठे में सुरापान-सुरत-वर्णन और सातवें में सूर्योदय-वर्णन परम्परागत शैली के अनुसार दिये गये हैं। आठवें सर्ग में बलराम का अपने परिवार और सेना सहित रैवतक पर्वत पर आने का वर्णन है, इसे 'सेनानिवेशवर्णन' सर्ग कहा गया है। नवम सर्ग में पुष्पावचयप्रपंच अर्थात् श्रीकृष्ण-अर्जुन का वनक्रीड़ा के लिए वन में जाना तथा स्त्रियों के झूलों और पुष्पचयनों का वर्णन है। दसवें सर्ग 'सुभद्रादर्शन' में जलक्रीड़ा के समय सुभद्रा और अर्जुन का एक-दूसरे के प्रति मुग्ध होना प्रदर्शित है। ग्यारहवें सर्ग में अर्जुन और सुभद्रा का एक-दूसरे के लिए व्याकुल होना तथा दूती के द्वारा दोनों की रैवतक पर्वत पर मिलने की

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०५; गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९१६; महाकाव्यत्व के लिए देखें—डा० श्यामशंकर दीक्षित, तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० ९७-१२०; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३२९–३५०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योजना वर्णित है। बारहवें सर्ग में सुभद्रा का कामदेव की पूजा के लिए रैवतक पर्वत पर जाना तथा अर्जुन द्वारा रथ में बैठा कर उसका अपहरण, बलराम की अर्जुन से युद्ध करने की तैयारी, श्रीकृष्ण द्वारा समझाना वर्णित है। तेरहवें सर्ग में सेनापति सात्यकि की सेना से अर्जुन का युद्ध और चौदहवें सर्ग 'अर्जुनावर्जन' में बलराम और श्रीकृष्ण द्वारा युद्ध शान्त करना और पन्द्रहवें सर्ग में बलराम द्वारा अर्जुन के साथ सुभद्रा का विवाह वर्णित है।

इस तरह यह काव्य महाभारत के लघुप्रसंग को महाकाव्योचित विधि से विस्तारपूर्वक वर्णित करता है। पर्वत, ऋतु, संध्या आदि वर्णन कथावस्तु के विकास में शिथिलता उत्पन्न करते हैं। कथावस्तु की धारावाहिकता भी इन वर्णनों से विच्छिन्न हुई है। परन्तु कवि ने कुछ प्राचीन काव्यों—शिशुपालवध एवं किरातार्जुनीयम्—को आदर्श बनाकर अपने इस काव्य की रचना की है इसलिए वह इन दोषों का दोषी नहीं है। उन काव्यों में भी ये दोष विद्यमान हैं। उन काव्यों की तरह ही 'नरनारायणानन्द' में भी कथानक गौण और वस्तुव्यापार-वर्णन एवं अलंकृत प्रकृतिचित्रण प्रधान हो गया है।

इस काव्य के सभी पात्र पौराणिक हैं अतः उनके चरित्र के विकास में पौराणिक रूप की रक्षा की गई है। इसमें श्रीकृष्ण और अर्जुन के चरित्र कुछ विशेष महत्त्व रखते हैं जो आदि से अन्त तक दिखाई देते हैं।

प्रकृतिचित्रण का भव्य रूप इस काव्य में दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न सर्ग के सर्ग इस ओर लगे हैं। पात्रों के सौन्दर्य-वर्णन में केवल सुभद्रा का सौन्दर्य-चित्र उपस्थित किया गया है, अन्य पात्रों का नहीं।

रस की दृष्टि से इसमें शृंगाररस की प्रधानता है। उसके अनुकूल सुरापान, सुरत, वनक्रीड़ा, पुष्पावचय, दोला एवं जलक्रीड़ा का वर्णन हुआ है। अन्य रसों में रौद्र, वीर और भयानक भी प्रसंग-प्रसंग पर दिखाई पड़ते हैं। इस काव्य में हास्य, करुण और शान्तरस का अभाव है।

भावानुकूल भाषा, रीति, गुण, अलंकार और छन्दयोजना की दृष्टि से भी यह एक भव्य एवं प्रौढ़ काव्य है। इस काव्य की भाषा भाव और परिस्थिति के अनुसार ही कहीं कोमल, कहीं मधुर और कहीं ओजस्विनी है। इस काव्य की भाषागत विशेषताओं में रूपपरिवर्तन की क्षमता, कान्ति और प्रसादगुणता, चित्रात्मकता और प्रभावोत्पादकता सर्वत्र देखने को मिलती है। इस काव्य में एक सर्ग (१४वाँ) ऐसा भी है जहाँ भाषा में अतिदुरूहता और कृत्रिमता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसमें कवि ने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए शब्दों में खिलवाड़ किया है। कहीं एकाक्षर (ल) श्लोक, कहीं द्व्यक्षर (प और र, ल और क), कहीं चतुरक्षर (न, क, त और र), कहीं षडक्षर (श, र, व, य, स, ल) श्लोक और कहीं अंतस्थ अक्षरों का ही प्रयोग किया गया है। इसी तरह किसी श्लोक में दन्त्य, किसी में तालव्य, किसी में ओष्ठ्य, किसी में मूर्धन्य, तो किसी में संयुक्ताक्षरों का बहिष्कार किया गया है।[1] महाकवि माघ के शिशुपालवध के समान ही कवि ने इस काव्य के पूरे १४वें सर्ग को चित्रालंकार से चित्रित किया है। इसमें सशर-शरासनबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, मुरजबन्ध, षोडशदलकमलबन्ध, खड्गबन्ध, सर्वतोभद्र, कविनामाङ्कशक्तिबन्ध आदि की रचना की गई है।[2] इस तरह १४वें सर्ग में शब्दालङ्कारों की भरमार है। इस सर्ग के अतिरिक्त सर्वत्र अर्थालंकार के प्रयोग में कवि ने स्वाभाविकता का ध्यान रखा है। अर्थालंकार में उपमा, उत्प्रेक्षा, अनन्वय, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति, परिसंख्या आदि अलंकारों[3] के सुन्दर उदाहरण इस काव्य में विद्यमान हैं।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में अलग-अलग छन्दों का प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्द बदले गये हैं। कुल मिलाकर २१ छन्दों का प्रयोग हुआ है। छठे सर्ग में एक अज्ञातनामा अर्धसम वर्णिक छन्द (न न र य स भ र य) का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्तिम सर्ग में कवि ने प्रशस्ति में अपना, अपनी वंशपरम्परा और गुरु का परिचय दिया है। तदनुसार इसके रचयिता वस्तुपाल हैं जो धोलका (गुजरात) के राजा वीरधवल तथा उसके पुत्र वीसलदेव के महामात्य थे। ये जैन धर्म और गुजरात के इतिहास में अद्वितीय व्यक्ति हुए हैं। इनके अनेकविध गुणों की प्रशंसा तत्कालीन लेखकों ने खूब की है। ये वीर योद्धा और निपुण राजनीतिज्ञ के साथ-साथ स्वयं बड़े विद्वान् कवि और काव्यमर्मज्ञ थे। नरनारायणानन्द के अतिरिक्त शत्रुंजयमण्डन, आदिनाथस्तोत्र, गिरिनारमण्डन, नेमिनाथस्तोत्र, अम्बिकास्तोत्र आदि अनेक स्तोत्रों की रचना इन्होंने की थी। इनके द्वारा रचित सुभाषित जल्हण की 'सूक्ति-

---

१. सर्ग १४. ३, ५, १३, २१, २२, २३, २५, २८, २९, ३३, ४२ आदि.

२. सर्ग १४. ९, ११, १६, १७, २७, ३४.

३. सर्ग १. २३, ४२; ३. ४; ८. २९, ३७; ११. ७, १३; १२. ५४, ६६, ७९; १३. २८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुक्तावली' और शार्ङ्गधर की 'शार्ङ्गधरपद्धति' में उद्धृत किये गये हैं। 'प्रबन्ध-चिंतामणि' (मेरुतुंग), 'चतुर्विंशतिप्रबन्ध' (जयशेखर), 'वस्तुपालचरित' (जिनहर्ष) और 'पुरातनप्रबन्धसंग्रह' आदि ग्रन्थों में भी वस्तुपाल की सूक्तियाँ मिलती हैं।

समकालीन अभिलेखों और काव्यों में वस्तुपाल के कई विरुद मिलते हैं, यथा—सरस्वतीधर्मपुत्र, कविकुंजर, कविचक्रवर्ती, वाग्देवतासुत, कूर्चालसरस्वती, सरस्वतीकण्ठाभरण आदि।[1] वह अनेक कवियों का आश्रयदाता भी था। उसके साहित्यमण्डल में राजपुरोहित सोमेश्वर, हरिहर, नानाकपण्डित, मदन, सुभट, मन्त्री यशोवीर और अरिसिंह थे। अन्य कवि और विद्वान् यथा—अमरचन्द्रसूरि, विजयसेनसूरि, उदयप्रभसूरि, नरचन्द्रसूरि, नरेन्द्रप्रभसूरि, बालचन्द्रसूरि, जयसिंहसूरि, माणिक्यचन्द्रसूरि आदि मुनिगण वस्तुपाल के अति सम्पर्क में थे।[2]

प्रशस्ति के अनुसार वस्तुपाल का दूसरा नाम वसन्तपाल[3] था। वह अणहिल्लपत्तन के एक शिक्षित कुटुम्ब में उत्पन्न हुआ था। उसके प्रपितामह चण्डप गुर्जरेश की राजसभा के दरबारी थे। उसके पिता का नाम अश्वराज या आशाराज था तथा माता का नाम कुमारदेवी था। उसने माता-पिता के पुण्यार्थ गिरनार आदि कई तीर्थों की यात्रा की थी। उसके गुरु विजयसेनसूरि थे।[4]

प्रस्तुत काव्य का रचनाकाल नहीं दिया गया है। वस्तुपाल ने आदिनाथ के दो मन्दिरों का सं० १२८७ (आबू पर्वत पर) और सं० १२८८ (गिरनार पर) में निर्माण कराया था। इनका उल्लेख इस काव्य में नहीं है। उसने सं० १२७७ में शत्रुञ्जय की यात्रा की थी और आदिनाथस्तोत्र रचा था। उसके बाद ही इस काव्य की रचना की गई है। अतः अनुमान होता है कि सं० १२७७ और १२८७ के बीच उसने यह काव्य रचा था। वस्तुपाल का स्वर्गवास माघ कृष्णा ५ सं० १२९६ (सन् १२४०) में हुआ था।[5]

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० ५५.
२. वही, पृ० ६०–११६.
३. सर्ग १६. ३८.
४. सर्ग १६. १६.
५. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ३९८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिसुव्रतकाव्य :

इस काव्य[1] में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी का जीवनवृत्त लिखा गया है। इसके कथानक का आधार गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण' है। इस काव्य का दूसरा नाम काव्यरत्न है।[2] यह १० सर्गों में विभक्त है जिनमें कुल मिलाकर ४०८ पद्य हैं। इस प्रकार इस छोटे काव्य में मुनिसुव्रत स्वामी का गर्भ-जन्म से लेकर मोक्ष तक का जीवनचरित्र बड़े रोचक ढंग से वर्णित है।

सर्गों का नाम वर्णित घटना के अनुसार दिया गया है। पहले भगवत्-अभिजन-वर्णन में मगध देश और राजगृह नगर का वर्णन है। द्वितीय में माता-पिता, तृतीय में गर्भावतरण, चतुर्थ में जन्मोत्सव, पंचम में मन्दराचल पर शिशु को लाने का तथा छठे में जन्माभिषेक एवं नामकरण का वर्णन है। सातवें में कुमारावस्था, यौवन, विवाह एवं साम्राज्यपद पाने का वर्णन है। आठवें में परिनिष्क्रमण, नवें में तप का और दसवें में उपदेश तथा मुक्तिपद पाने का वर्णन है।

इस तरह कथानक में सुनियोजित विकासक्रम दिखाई पड़ता है। कवि ने अन्य काव्यों की भांति पूर्वजन्मों के वर्णन से काव्य को बोझिल नहीं किया है। इसलिए इसमें धारावाहिकता और गतिशीलता अविच्छिन्न है। इस काव्य में सुमित्र (भग० के पिता), पद्मावती (माता) और मुनिसुव्रत ये ही तीन पात्र हैं। इन्हीं के चरित्र का इसमें विकास किया गया है। इस लघुकाय काव्य में विविध प्राकृतिक दृश्यों को स्थान देकर उसे मनोहर बनाने की चेष्टा की गई है।[3] इसी तरह मानवसौन्दर्य का भी चित्रण इस काव्य में किया गया है, माता पद्मावती के वर्णन में इसे भलीभांति देखा जा सकता है।

वैसे यह शास्त्रीय शैली का काव्य है। इसमें उक्त शैली के महाकाव्यों की तरह विस्तृत वस्तुवर्णन तथा काव्यात्मकता अधिक है और कवि का अलंकारों की ओर विशेष झुकाव है फिर भी इसमें पौराणिक रूप की रक्षा हुई है और उस ओर भी झुकाव है इसलिए इसमें दोनों शैलियों का मिश्रण देख सकते हैं।

---

१. देवकुमार ग्रन्थमाला, प्रथम पुष्प, जैन सिद्धान्त भवन, आरा, १९२९; जिनरत्नकोश, पृ० ३१२.

२. सर्ग १. २०.

३. सर्ग १. २४, ३०, ३६, ४०; ३. १९; ९. ३, ९, १०, १३, २२, २७, २८; १०. १७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर अन्य पौराणिक शैली के महाकाव्यों के विपरीत इसमें अवान्तर और प्रासंगिक कथाओं का अभाव है, साथ ही उपदेशात्मकता या देशनाओं का भी अभाव है। केवल दशम सर्ग में जिनेन्द्रकृत जीवाजीवादि तत्त्वों के निरूपण का संकेत मात्र किया गया है।

इस काव्य में कोमल रसों का ही चित्रण हुआ है इसलिए वीर, रौद्र, बीभत्स और भयानक रसों का नितान्त अभाव है। यह एक वैराग्यमूलक काव्य है इसलिए शान्तरस की प्रधानता है।[1] यत्र-तत्र हास्य और वात्सल्यरस के दर्शन भी होते हैं।[2]

इस काव्य की भाषा प्रौढ़ और सरस है। इसकी भाषा का सबसे बड़ा गुण एकरूपता है। इसमें कहीं भी अधिक क्लिष्टता और अव्यवस्था नहीं है। इस काव्य की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अलंकारों से सजी है। सम्पूर्ण काव्य में शायद ही कोई पद्य अलंकार से रहित हो। पर अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से किया गया है, न कि बलात्। शब्दालंकारों में अनुप्रास तथा अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान् और परिसंख्या का प्रयोग काव्य में बहुत हुआ है। अन्य अलंकारों में रूपक, अर्थान्तरन्यास, अतिशयोक्ति आदि भी द्रष्टव्य हैं। इस काव्य पर एक अच्छी संस्कृत टीका लिखी गई है जिसमें प्रत्येक पद्य के अलंकार सूचित किये गये हैं।

इस काव्य के एक सर्ग में एक ही छन्द का और सर्गान्त में विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पंचम में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है। षष्ठ और दशम में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। सब मिलाकर १२ छन्दों का प्रयोग हुआ है।

कविपरिचय तथा रचनाकाल—कवि ने प्रस्तुत काव्य के अन्त में कोई प्रशस्ति नहीं दी है फिर भी दसवें सर्ग के ६३वें पद्य से इस काव्य के रचयिता का नाम अर्हद्दास ज्ञात होता है।[3] इस काव्य के अतिरिक्त अर्हद्दासकृत दो अन्य कृतियाँ मिलती हैं: पुरुदेवचम्पू और भव्यकण्ठाभरण। प्रस्तुत काव्य और उपर्युक्त कृतियों के कुछ पद्यों से ज्ञात होता है कि अर्हद्दास के काव्यगुरु पं०

---

१. सर्ग ८. ३-४; २. ३०.३१.

२. सर्ग ५. ३१; ६. ३१; ७. ७.

३. 'अर्हद्दासः सभक्त्युल्लसितं', 'अर्हद्दासोऽयमित्थं जिनपतिचरितं' इत्यादि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशाधर थे। पं० आशाधर का समय उनके ग्रन्थों की प्रशस्तियों से सं० १३०० के आसपास का है। आशाधर का अन्तिम ग्रन्थ 'अनगारधर्मामृत' है जिसकी रचना वि० सं० १३०० में समाप्त हुई थी। अर्हद्दास ने १०वें सर्ग के ६४वें पद्य में आशाधर के 'धर्मामृत' पान का उल्लेख किया है तथा भव्यजनकण्ठाभरण के एक पद्य का निर्माण 'सागारधर्मामृत' के एक पद्य के अनुकरण पर किया है। इस सबसे ज्ञात होता है कि वे अवश्य ही आशाधर के निकटकालवर्ती कवि रहे होंगे। अनुमान से उनका समय सं० १३०० के बाद और सं० १३२५ के मध्य कभी रहा होगा।[1] इस काव्य पर एक अच्छी संस्कृत टीका उपलब्ध है। अनुमान है कि कवि की यह स्वोपज्ञ टीका है।[2]

श्रेणिकचरित :

इस महाकाव्य[3] का दूसरा नाम दुर्गवृत्तिद्वयाश्रय महाकाव्य है। इस काव्य में श्रेणिकचरित्र के साथ-साथ कातंत्रव्याकरण पर प्राप्त दुर्गसिंहरचित वृत्ति के अनुसार व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों को भी प्रदर्शित किया गया है। इसलिए इस महाकाव्य के दो नाम दिये गये हैं। इसमें १८ सर्ग हैं। इसमें प्रत्येक सर्ग का नाम सर्ग में वर्णित घटना के आधार पर रखा गया है।

इस काव्य के कथानक का क्रमिक विकास लक्षित नहीं होता है। कथानक के प्रारम्भिक ग्यारह सर्गों में जिनेश्वर और उनके उपदेशों की प्रधानता है। ये सर्ग धार्मिक वातावरण से व्याप्त हैं परन्तु बारहवें सर्ग से कथानक की धारा एकदम मुड़ गई है। इन सर्गों में देव द्वारा दिये गये हार के खो जाने और उसकी तत्परता से खोज का वर्णन किया गया है। इसके अन्तिम सात सर्गों के कथानक में धार्मिक वातावरण का अभाव है और लौकिकता की प्रवृत्ति अधिक है। कथानक के इस सहसा मोड़ ने कथा को दो भागों में विभक्त कर दिया है। दोनों में बहुत ही शिथिल सूत्र से सम्बन्ध जोड़ा गया है, इससे काव्य में पंच

---

१. तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० ३२६.

२. भूमिका, पृ० ३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १८६ और ३९९; जैन धर्मविद्या प्रसारक वर्ग, पालिताना से केवल प्रथम सात सर्ग प्रकाशित, शेष ग्यारह सर्ग अब तक अप्रकाशित हैं। विशेष परिचय के लिए देखें—डा० श्यामशंकर दीक्षित, तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० १२०-१४३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्धियों की योजना का निर्वाह पूर्णतः नहीं हुआ है। इस त्रुटि के अतिरिक्त इस रचना में महाकाव्य के अन्य सभी शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह किया गया है। इसके साथ-साथ उदात्त भाषा-शैली, प्रौढ़ कवित्व-कल्पना, गम्भीर पाण्डित्य, उच्च आदर्श एवं मानव जीवन की विविधता के दर्शन भी इस काव्य में होते हैं।

श्रेणिकचरित्र में शास्त्रीय शैली के साथ पौराणिक शैली के भी दर्शन होते हैं। इसमें अन्य पौराणिक महाकाव्यों के समान स्थान-स्थान पर भ० महावीर की देशनाएँ और देशनाओं में भी अवान्तर कथाओं की योजना की गई है। इस काव्य में भवान्तरों के वर्णन द्वारा पूर्वजन्म के पुण्य-पाप का फल उत्तर-भव में दिखाया है यथा सेडुक ब्राह्मण जैनधर्मविरुद्ध कार्य से मेंढक होता है और मेंढक भक्तिभावना से देव हो जाता है। कई अतिमानवीय घटनाओं का भी वर्णन इस काव्य में है। इन सब पौराणिक विशेषताओं के रहने पर भी श्रेणिकचरित को हम पौराणिक महाकाव्य नहीं मान सकते क्योंकि इसके प्रत्येक पद्य में कोई न कोई उक्त व्याकरण का सिद्ध प्रयोग अवश्य दिखाया गया है। अतः शास्त्रीयता की ओर अधिक बल होने से इसे शास्त्रीय काव्य मानना चाहिये।

इस काव्य की कथावस्तु का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—एक से छठे सर्ग तक राजगृह नगर, श्रेणिक नरेश, उसकी रानियाँ, राजकुमार अभय का वर्णन तथा महावीर का आगमन, उनके दर्शनार्थ लोगों का जाना, समवसरण में अर्चना-वन्दना तथा उनकी देशना का वर्णन है। सातवें सर्ग में देशना के समय एक कोढ़ी आकर महावीर की अपने पूय रस से पूजा कर उनसे 'मर जाओ' तथा श्रेणिक से 'जीओ' और अभयकुमार से 'जीओ चाहे मरो' और कालशौकरी कसाई से 'न जीओ न मरो' कहता है। इससे क्रुद्ध होकर श्रेणिक उसे पकड़ने का सैनिकों को आदेश देता है पर वह अन्तर्धान हो जाता है। तब आश्चर्य में पड़कर राजा महावीर से उस कोढ़ी के विषय में पूछता है। आठवें-नौवें-दसवें सर्ग में कोढ़ी सुर के पूर्व भव का वर्णन दिया गया है और उसके वक्तव्यों की व्याख्या दी गई है तथा श्रेणिक के राजभवन लौटने का वर्णन है।

ग्यारहवें सर्ग में वही देव श्रेणिक के सम्यक्त्व की परीक्षा करता है और प्रसन्न हो एक गोल्लक और अमूल्य हार का दान करता है। बारहवें सर्ग में कालशौकरी कसाई का मरण और उसके पुत्र सुलस के धार्मिक जीवन का वर्णन दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरहवें सर्ग में श्रेणिक द्वारा रानी नन्दा को गोल्लक तथा चेलणा को हार देने का वर्णन है। चौदहवें सर्ग में राजा श्रेणिक की दिनचर्या का वर्णन है। पन्द्रहवें सर्ग में हार के टूटने तथा उसके जोड़ने वाले मणिकार का मर कर बन्दर होना और जोड़ने के लिए राजा द्वारा पूरा धन न देने के कारण अवसर पाकर हार की चोरी कर अपने पुत्रों को हार देना वर्णित है।

सोलहवें सर्ग में हार की खोज के लिए अभयकुमार को आदेश देने का वर्णन है। सत्रहवें सर्ग में वानर द्वारा हार को लेकर सुस्थिताचार्य मुनि की ध्यानस्थ अवस्था में उनके कण्ठ में डालना तथा अभयकुमार का मुनि के दर्शन के लिए पहुँचना वर्णित है। अठारहवें सर्ग में आचार्य सुस्थित से हार प्राप्त कर अभयकुमार द्वारा पिता को सौंपना और कथानक की समाप्ति होना वर्णित है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी कथा की सूचना भी दी गई है।

इस काव्य में अनेक पात्र हैं पर महावीर, श्रेणिक, अभयकुमार और कुष्ठीदेव के चरित्र का ही अधिक विकास हुआ है।

यद्यपि इस काव्य में व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों की ओर ध्यान विशेष दिया गया है फिर भी यत्र-तत्र कवि ने प्रकृति-चित्रण विविध रूपों में किया है। पर सौन्दर्य-चित्रण इस काव्य में नहीं के बराबर है क्योंकि कवि का व्याकरण-स्वरूप विशेष प्रबल है। फिर भी धार्मिक आग्रह की प्रबलता के कारण कवि ने धार्मिक नियमों और सिद्धान्तों का विवेचन खूब किया है।[१]

व्याकरण पक्ष को १८ सर्गों में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है: प्रथम सर्ग में पाँचों संधियाँ तथा कुछ सर्वनाम रूप, द्वितीय सर्ग में शब्द रूप, तृतीय में कुछ सर्वनाम रूप और कारक, चतुर्थ में समास, पंचम में तद्धित, छठे में क्रियाओं के वर्तमानकालिक रूप, सातवें में भूतकालिक रूप, आठ से ग्यारह तक क्रियाओं के विविध सिद्ध रूप और बारहवें से अठारहवें तक कृदन्त के रूप—इस तरह कातन्त्र पर उपलब्ध दुर्गवृत्ति के अनुसार व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों को प्रदर्शित करने में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है।

वैसे इस काव्य का प्रधान रस शान्तरस है फिर भी श्रृंगार, करुण, रौद्र, वीर आदि अन्य रसों का अच्छा परिपाक दिखाया गया है।

---

१. सर्ग ५. १३, १४, १७, ४२, ६३, ७७, ८८-८९; ६. ६३, ६४, ८५, १६८, १६९ आदि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस काव्य की भाषा व्याकरण के प्रयोगों से बोझिल होने से भिन्न प्रकार की है। इसमें भाषा की स्वाभाविकता सुरक्षित नहीं रह सकी है। अनेक स्थलों पर अप्रचलित अथवा अल्पप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। फिर भी इसमें स्थान-स्थान पर भाषासौष्ठव, लालित्य और मनोहर पदविन्यास के दर्शन होते हैं। इस तरह इस काव्य में सरल और कठिन दोनों प्रकार की भाषा का प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं भाषा में मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है।

विविध अलंकारों की योजना भी इस काव्य में की गई है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का प्रयोग अधिक हुआ है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा के अधिक दर्शन होते हैं।

पाँचवें सर्ग को छोड़कर कवि ने प्रत्येक सर्ग की रचना अनुष्टुभ् छन्द में की है परन्तु सर्ग के अन्त में विविध छन्दों का प्रयोग किया है। पाँचवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग दर्शनीय है। कुछ अप्रचलित छन्द जैसे—वैश्वदेवी, निवास, वेगवती आदि का प्रयोग भी कवि ने किया है।

श्रेणिकचरित की कुल श्लोकसंख्या २२६७ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता जिनप्रभसूरि हैं जो लघुखरतरगच्छ के स्थापक तथा चन्द्रगच्छीय जिनेश्वरसूरि के प्रशिष्य और जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। ये मुस्लिम शासक मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे तथा उसके द्वारा बहुत सम्मानित हुए थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी थीं तथा अनेक स्तोत्रों की रचना की थी। ये प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विविधतीर्थकल्प' के रचयिता हैं। इस ग्रन्थ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना दयाकरमुनि की प्रार्थना पर वि० सं० १३५६ में की थी।[1]

शान्तिनाथचरित :

इस महाकाव्य[2] की कथावस्तु का आधार मुनिदेवसूरिकृत 'शान्तिनाथचरित' है। कवि ने अपने काव्य में मुनिदेवसूरि का अनुकरण किया है, फलस्वरूप कथानक में कवि की मौलिक देन कुछ भी नहीं है। मूलकथा के साथ इसमें अवान्तर कथाओं की भरमार है यथा मंगलकुंभकथानक, धनदपुत्रकथा,

---

१. प्रशस्तिपद्य २.

२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, वीर सं० २४३७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरदत्तनृपकथा, वणिकद्वयकथा, परिव्राटकथा, अमृताम्रभूपतिकथा, स्कन्दिल-पुत्रकथा, गुणवर्मकथा, अग्निशर्माद्विजकथा, भानुदत्तकथा, माधवकथा आदि। इनमें से कुछ अवान्तर कथाएँ बहुत लम्बी हैं। धनदत्तकथा ५-६-७ सर्गों को घेरे है। इन अवान्तर कथाओं के चयन में भी प्रस्तुत काव्य के रचयिता मुनिभद्र ने मुनिदेव का अनुकरण किया है। मुनिदेवसूरि के शान्तिनाथचरित्र में जो अवान्तर कथाएँ उपलब्ध हैं ठीक वे ही उसी क्रम से प्रस्तुत काव्य में विद्यमान हैं। इसी तरह प्रस्तुत काव्य में जैन धर्म के उन्हीं तत्त्वों का विवेचन हुआ है जिनका विवेचन मुनिदेवसूरि ने किया है। इस तरह इस काव्य में कथावस्तु पूर्णतया मुनिदेव के 'शान्तिनाथचरित्र' के पदचिह्नों पर चली है। इसमें मुनिभद्र ने मौलिक सृजनशक्ति का परिचय नहीं दिया फिर भी यह काव्य अपनी प्रौढ़ भाषाशैली और उदात्त अभिव्यंजनाशक्ति से अपना पृथक् स्थान रखता है। इस दृष्टि से यह मौलिक और नवीन लगता है।

यह काव्य उन्नीस सर्गों में विभक्त है। अनुष्टुभ्-मान से इसका रचना-परिमाण ६२७२ श्लोक-प्रमाण है।

भवान्तरों और अवान्तर कथानकों के प्राचुर्य के साथ इस काव्य में स्तोत्रों और माहात्म्यों का समावेश भी अधिक मात्रा में हुआ है तथा प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ में कवि द्वारा शान्तिनाथ का स्तवन तथा बीच-बीच में देवताओं और कथानक के पात्रों द्वारा जिनेन्द्र की स्तुतियाँ और मेघरथ आदि सत्पुरुषों की देवताओं द्वारा स्तुतियाँ की गई हैं। शत्रुञ्जयमाहात्म्य आदि एक-दो माहात्म्य भी इस काव्य में हैं।

इस काव्य में अनेक पुरुष एवं स्त्री पात्र हैं किन्तु चरित्रचित्रण की दृष्टि से इनमें शान्तिनाथ, चक्रायुध, अशनिघोष एवं सुतारा ही प्रमुख पात्र हैं, इन्हीं के चरित्र का विकास हुआ है, शेष पात्रों का नहीं। इस काव्य में प्रकृति-चित्रण कम किया गया है। कहीं-कहीं संक्षेप में प्रातः, संध्या, सर, उपवन एवं विभिन्न ऋतुओं का वर्णन किया गया है। सौन्दर्य-चित्रण भी कवि ने किया है परन्तु उसे परम्परागत उपमानों द्वारा ही, किन्तु इन प्रयोगों में भी कवि की कल्पनाएँ बहुत कुछ मौलिक एवं सुन्दर हैं।

इस काव्य में समसामयिक सामाजिक अवस्था का सुन्दर वर्णन हुआ है। अपने युग में जन्म, विवाह आदि अवसरों पर होनेवाले सामाजिक-धार्मिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यों के विस्तृत विवरण देकर कवि ने सामाजिक रीति-रिवाजों पर अच्छा प्रकाश डाला है ।[1]

काव्यकला के अन्तरंग पक्ष को कवि ने विविध रसों की योजना द्वारा पुष्ट किया है। इसमें प्रधान रस शान्तरस है पर शृंगार, वीर, रौद्र, भयानक एवं वात्सल्यरस की छटा भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है।

इस काव्य की भाषा में प्रौढ़ता, लालित्य और अनेकरूपता के दर्शन होते हैं। कवि ने इसे अलंकारों से सजाने की चेष्टा की है। शब्दालंकारों में यमक का प्रयोग तो स्थल-स्थल पर किया गया है पर भाषा की सरलता अक्षत है। इसी तरह अनुप्रास और विशेषकर अन्त्यानुप्रासों की योजना की गई है। अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकारों का अर्थात् उपमा, उत्प्रेक्षा और अर्थान्तरन्यास का प्रयोग बहुत हुआ है। इस काव्य में अधिकतर अलंकार यत्नसाध्य हैं फिर भी यत्र-तत्र स्वाभाविक योजना भी दिखाई पड़ती है।

इस काव्य के प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग हुआ है और सर्ग के अन्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है। चौदहवें सर्ग में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। कुल मिलाकर १९ छन्दों का प्रयोग इस काव्य में हुआ है। इनमें उपजाति का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

कविपरिचय और रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस काव्य के रचयिता मुनिभद्रसूरि थे जो बृहद्गच्छ के थे। उक्त गच्छ में मुनिचन्द्रसूरि नामक गच्छपति हुए थे जिनके पट्ट पर कालक्रम से देवसूरि, भद्रेश्वरसूरि, विजयेन्दुसूरि, मानभद्रसूरि तथा गुणभद्रसूरि हुए। गुणभद्रसूरि दिल्ली के बादशाह मुहम्मद तुगलक के समकालीन थे और उससे सम्मानित थे। इन्हीं गुणभद्र के शिष्य इस काव्य के रचयिता मुनिभद्रसूरि थे। तत्कालीन मुस्लिम नरेश फीरोजशाह तुगलक इनकी बड़ी इज्जत करता था। इसका उल्लेख कवि ने स्वयं किया है।[2]

इस काव्य की रचना मुनिभद्रसूरि ने भक्तिभावना और विशेषकर पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना से प्रेरित होकर की है। कवि ने काव्यपंचक—रघुवंश, कुमार-

१. सर्ग १. ५४; ३. ११३, ११९, १२०-१२८; ४. २६, ५९-६०, १०८-११०, ११५-११८ आदि.

२ प्रशस्तिपद्य ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधचरित—के समकक्ष जैन संस्कृत साहित्य में काव्य के अभाव की पूर्ति के लिए उक्त काव्य की रचना की है।[१] इस काव्य का संशोधन राजशेखरसूरि ने किया था।[२] कवि ने इस काव्य की रचना का समय भी उक्त प्रशस्ति में सं० १४१० दिया है।[३]

जयोदय-महाकाव्य :

इस काव्य में २८ सर्ग हैं जिनमें जिनसेन प्रथम द्वारा महापुराण में वर्णित ऋषभदेव-भरतकालीन जयकुमार-सुलोचना के पौराणिक कथानक को महाकाव्य का रूप दिया गया है।[४] इसके ३-५ सर्गों में स्वयंवर का वर्णन, ६-८ में युद्धवर्णन, ९वें में जयकुमार के विवाह का विस्तृत वर्णन आदि, १४वें सर्ग में वन-क्रीडा-वर्णन, १५वें में संध्या-वर्णन, १६वें में पानगोष्ठी, १७वें में रात्रि एवं संभोग-वर्णन, १८वें में प्रभात-वर्णन महाकाव्य के अनुरूप वर्णित हैं।

इस काव्य में कवि ने विविध छन्दों, शब्द और अर्थ अलंकारों तथा विविध रसों के सन्निवेश के साथ कथानक को बड़े रोचक ढंग से दिया है। अनुप्रास का जगह-जगह अधिक मात्रा में प्रयोग होने से कहीं-कहीं अर्थ की स्पष्टता में बाधा आती है। प्रस्तुत काव्य में कविपरम्परा के नियमों के निर्वाह के साथ आधुनिकता का पुट विशेष दिखाई देता है। नये परिवेश में पुराने छन्दों का प्रयोग देखने लायक है। सामान्यतः प्रत्येक सर्ग के उपान्त्य पद्य में प्रायः एक-न-एक चक्रबन्ध का प्रयोग किया गया है जो शब्दालंकार की प्रियता को सूचित करता है।

इस काव्य के उक्तिवैचित्र्य के कुछ नमूने इस प्रकार हैं :

कवितायाः कविः कर्ता रसिकः कोविदः पुनः।
रमणी रमणीयत्वं पतिर्जानाति नो पिता॥

× × ×

---

१. वही, पद्य १३-१४.

२. वही, पद्य ११.

३. वही, पद्य १२.

४. प्रका०—ब्रह्म० सूरजमल, वी० सं० २४७६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदालोकनतः सद्यः सरलं तरलं तराम्।
रसिकस्य मनोभूयात्कविता वनितेव सा॥

× × ×

सदुक्तिमपि गृह्णाति प्राज्ञो नाज्ञो जनः पुनः।
किमकूपारवत्कूपं वर्धयेद्विधुदीधितिः॥

कर्ता एवं रचनाकाल—यह आधुनिक काल की रचना है। इस काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति[1] से ज्ञात होता है कि इस काव्य के रचयिता बाल-ब्रह्मचारी वाणीभूषण पं० भूरामल शास्त्री हैं। ये जयपुर के पास राणाली ग्राम के निवासी दिग० जैन खण्डेलवाल जाति के छावड़ा गोत्र के थे। प्रशस्ति में इन्होंने अपने पिता का नाम श्रेष्ठि चतुर्भुज और माता का नाम घृतवरी देवी सूचित किया है। इसे कवि ने नव्यपद्धति से बनाया काव्य कहा है।[2] इस काव्य की रचना सं० १९९४ के लगभग हुई है।

कुछ जैन कवियों ने जैन कथानकों के अतिरिक्त अन्य कथानकों पर भी महाकाव्य लिखे हैं। उनमें अमरचन्द्रसूरि का बालभारत महत्त्व का है।

बालभारत :

यह 'महाभारत' की सम्पूर्ण कथा का सार है।[3] मूल महाभारत की तरह ही यह भी १८ पर्वों में विभाजित है और ये पर्व भी एक या एक से अधिक सर्गों में विभाजित हैं। इन सर्गों की संख्या ४४ है। इसमें कुल मिलाकर ५४८२ पद्य हैं जो कि विविध २३ छन्दों में हैं। इसका ग्रन्थाग्र ६९५० श्लोक-प्रमाण है।

इस काव्य की कथासामग्री महाभारत से ली गई है। मूल महाभारत को संक्षिप्त करने में लेखक ने केवल उसके कथाभाग पर ही ध्यान दिया है और नीति तथा धर्मशास्त्र की बातें प्रायः छोड़ दी हैं। इससे शान्ति और अनुशासन पर्व जैसे तथा बड़े पर्व एक-एक सर्ग में ही समाप्त कर दिये गये हैं। जहाँ महाभारत में विविध घटनाओं में महाकाव्योचित धारावाहिकता का अवरोध है वहाँ बालभारत के

१. पुरुषपदार्थधरालोकमिते विक्रमोक्तसंवत्सरे हिते।
श्रावणमासिमितिं प्रतियाति पूर्णा जिनपरहितैक जाति॥ २८. ११०.

२. नव्यां पद्धतिमुद्धरत्सुकृतिभिः काव्यं मतं तत्कृतम्। ३. ११७.

३. काव्यमाला (संख्या ४५), निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १८९४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथानक में इसका अच्छा प्रभाव दिखायी पड़ता है। यहाँ विविध घटनाओं में सामंजस्य स्थापित करके सुसंगठित कथानक बनाने में कवि अच्छा सफल हुआ है। कवि ने मूल महाभारत के कथानक में कोई परिवर्तन नहीं किया है। इस काव्य में यत्र-तत्र पात्रों के कथोपकथन में नाटकीय सजीवता विद्यमान है।

बालभारत में महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह करने के लिए आदिपर्व के ७वें सर्ग में वसन्त-वर्णन और आठवें से ग्यारहवें तक पुष्पचयन, जलक्रीड़ा, चन्द्रोदय, मद्यपान और कामकेलियों आदि का वर्णन दिया गया है। बारहवें में खाण्डव वन का वर्णन तथा सभापर्व के चौथे सर्ग में ऋतुवर्णन और द्रोण तथा भीष्मपर्वों में युद्धवर्णन और स्त्रीपर्व में स्त्रियों के विलाप द्वारा करुण भावों का प्रदर्शन किया गया है। इस तरह विशालकाय महाभारत का संक्षिप्त रूप देने का प्रयास किया गया है।

चरित्रचित्रण में पाण्डवों का चरित्र 'बालभारत' में सबसे अधिक व्यापक है। वे ही प्रधान पात्रों के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। इनके साथ भीष्म, कर्ण, दुर्योधन, द्रोण आदि पात्र भी अपनी परम्परागत विशेषताएं लिये हुए हैं। स्त्रीपात्रों में कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि का चरित्रांकन भी सुन्दरता से हुआ है। प्रकृति-चित्रण भी प्रायः प्रत्येक पर्व में हुआ है। अपने युग के बीच फैले हुए नाना प्रकार के अंधविश्वासों, शकुन-अपशकुनों, शुभ-अशुभ स्वप्नों के वर्णनों द्वारा तत्कालीन समाज की स्थिति के एक अंश का चित्रण भी इस काव्य में हुआ है।

इस काव्य में जैनधर्म के तत्त्वों के प्रतिपादन का प्रयत्न कहीं भी नहीं किया गया है क्योंकि इसकी रचना ब्राह्मणों की प्रार्थना पर की गई है। इसमें भीष्म द्वारा राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म का उपदेश महाभारत के अनुसार ही दिलाया गया है। इसमें कवि मौलिक नहीं है।

इस काव्य की भाषा वैविध्यपूर्ण, परिमार्जित, प्रांजल और प्रवाहयुक्त है। माधुर्यगुण अनेक स्थलों पर दृष्टिगत होता है। इसमें कर्णकटु शब्दों का नितान्त अभाव है। इसकी भाषाशैली में गरिमा, भव्यता और उदात्तता विद्यमान है जो अन्य काव्यों में बहुत कम प्राप्त है। स्वयं कवि ने बालभारत को 'वाणीवेश्म' तथा 'भाषारूपी पृथ्वी पर खड़ा किया गया श्रेय और शोभा का भवन' कहा है।

कवि ने इस काव्य की भाव और भाषा को अलंकारों से उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न किया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास का अधिक प्रयोग एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थालंकारों में उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, अपह्नुति, दीपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। 'बालभारत' में अधिकांश सर्गों में एक छन्द का ही प्रयोग हुआ है और सर्गान्त में छन्दपरिवर्तन किया गया है। सर्ग १९,३३,३४, ४३ और ४४ में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें कुल मिलाकर २७ छन्दों का प्रयोग हुआ है।[1] इनमें अनुष्टुभ् का प्रयोग सर्वाधिक हुआ है।

अन्तिम सर्ग को छोड़ सभी सर्गों के प्रारम्भ में लेखक ने एक-एक पद्य द्वारा व्यासदेव की प्रार्थना की है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में वीर शब्द का प्रयोग कर इसे वीराङ्क काव्य कहा है। इसमें कुल मिलाकर ५४८२ पद्य हैं जिनका ग्रन्थाग्र अनुष्टुभ् प्रमाण से ६९५० है।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—काव्य के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस काव्य के रचयिता प्रसिद्ध कवि अमरचन्द्रसूरि थे जो कि वायटगच्छीय थे। उनसे पूर्व वायटगच्छ में परकायप्रवेश विद्या में निपुण जीवदेवसूरि हुए थे। उनकी शिष्यपरम्परा में 'विवेकविलास' के रचयिता श्री जिनदत्तसूरि हुए। इन्हीं जिनदत्तसूरि के शिष्य अमरचन्द्रसूरि हुए। ये अपने समय के मूर्धन्य विद्वान् थे। गुर्जरनरेश वीसलदेव ने इन्हें कविसार्वभौम की उपाधि दी थी। इनके जीवन का परिचय इनकी अन्य कृति 'पद्मानन्द-महाकाव्य' से तथा रत्नशेखरसूरिकृत 'चतुर्विंशतिप्रबंध' एवं रत्नमन्दिरगणि-कृत 'उपदेशतरंगिणी' से भी मिलता है। इनके कलागुरु अरिसिंह ठक्कुर थे। कवि आशुकवि थे और वायटनिवासी ब्राह्मणों के अनुरोध पर उन्होंने समस्त महाभारत का संक्षेप 'बालभारत' शीघ्र रच दिया। कालान्तर में कोष्ठागारिक पद्म मन्त्री की प्रार्थना पर कवि ने 'पद्मानन्दमहाकाव्य' की रचना की।

कवि की अन्य कृतियों में (१) काव्यकल्पलता या कविशिक्षा, (२) काव्यकल्पलतावृत्ति, (३) चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरितानि, (४) सुकृत-संकीर्तन के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम चार पद्य, (५) स्यादिशब्दसमुच्चय, (६) काव्यकल्पलतापरिमल, (७) काव्यकल्पलतामंजरी, (८) काव्यकलाप, (९) छन्दोरत्नावली, (१०) अलंकारप्रबोध और (११) सूक्तावली है।

---

१. इन छन्दों के अध्ययन के लिए देखें—हरि दामोदर वेलंकर का लेख : प्रोसोडियल प्रेक्टिस ऑफ संस्कृत पोइट्स, जर्नल ऑफ दी बॉम्बे ब्रांच ऑफ दी रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग २४-२५, पृ० ५१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरचन्द्रसूरि ने बालभारत की रचना कब की, इसकी सूचना कहीं नहीं मिलती। 'चतुर्विंशतिप्रबंध' से ज्ञात होता है कि कवि वीसलदेव बघेला के समकालीन थे। इस नृप का राज्यकाल सं० १२९४ से सं० १३२८ माना जाता है। अतः बालभारत की रचना इसी समय के मध्य होनी चाहिए। पाटन के अष्टापद जिनालय में अमरचन्द्रसूरि की प्रतिमा है जिसे सं० १३४९ में स्थापित किया गया था। इससे पूर्व कवि का स्वर्गवास हो चुका होगा। अन्य अनुमानों से सिद्ध होता है कि 'बालभारत' का रचनाकाल सं० १२७७ से सं० १२९४ तक कभी होना चाहिए।[1]

लघुकाव्य :

जैन कवियों ने महाकाव्यों की संख्या से कहीं बहुत अधिक लघुकाव्यों की रचना की है। इन काव्यों में यद्यपि कथा जीवनव्यापी होती है पर सर्गों की संख्या कम रहती है। पौराणिक महाकाव्यों के अन्तर्गत एक वस्तुकथा को प्रतिपादित करने वाले ऐसे अनेक लघुकाव्यों का वर्णन हमने किया है, यथा वादीभसिंह का क्षत्रचूडामणिकाव्य, वादिराज का यशोधरचरित, जयतिलकसूरि का मलयसुन्दरीचरित, सोमकीर्ति का प्रद्युम्नचरित आदि। १५वीं-१७वीं शती तक भट्टारकों—सकलकीर्ति, ब्रह्म जिनदास, शुभचन्द्र आदि—ने इस प्रकार के अनेकों चरितात्मक लघुकाव्य लिखे थे। इन काव्यों में शास्त्रीय महाकाव्यों के समान कथात्मक नाना भंगिमाएँ नहीं मिलतीं और न बृहत् पौराणिक महाकाव्यों के समान नाना अवांतर कथाओं का जाल। इनमें प्रधान वस्तुकथा संक्षेप में परिमित सर्गों—६-८ या १०-१२—में दी गयी है तथा वस्तुवर्णन व्यापक रूप में उपस्थित नहीं किये गये हैं।

हम यहाँ ऐसी कुछ रचनाओं का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

श्रीधरचरितमहाकाव्य :

यह काव्य[2] ९ सर्गों में विभक्त है। इसमें सब मिलाकर १३१३ पद्य हैं जिनका ग्रन्थाग्र १६८९ है। कवि ने अपनी छंदज्ञता का विशेष परिचय दिया

---

१. तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ० २५५–२५७.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३९६; चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ४८, वी० सं० २४७८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, इसके लिए उसने प्रत्येक सर्ग के छंदों का निर्देश करने के लिए छंदों को पूरे लक्षण के साथ या तो सर्ग के आदि में या स्थान-स्थान पर सूचित किया है। उसने अनेक अप्रसिद्ध छन्दों का प्रयोग किया है और सौभाग्य से उनका नाम निर्देश करके पाठकों का बड़ा उपकार किया है। काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में कवि ने अपने नाम का माणिक्य शब्द दिया है और समाप्तिसूचक वाक्य में 'माणिक्याङ्के श्रीश्रीधरचरिते' पद से सूचित किया है कि काव्य 'माणिक्याङ्क' है।

इस काव्य में भगवान् पार्श्वनाथ के पूर्वभव के जीव विजयचन्द्र और पट्टरानी सुलोचना का रोचक चरित्र-चित्रण किया गया है। यद्यपि काव्य का नाम विजयचन्द्र के सातवें पूर्वभव के जीव श्रीधर के नाम से रखा गया है पर इस कथा का नायक विजयचन्द्र ही है और विजयचन्द्र के साहसिक कार्यों तथा वैराग्य का वर्णन इस काव्य की कथावस्तु है।

प्रस्तुत काव्य में इस कथा को निबद्ध करने में कवि ने महाकाव्य के सभी लक्षण अपनाये हैं पर सर्गों की संख्या कम होने से इसे लघुकाव्य कह सकते हैं। इसमें शृंगार, हास्य, अद्भुत, शान्त आदि रसों का वर्णन कवि ने बड़े कौशल के साथ किया है। भाषा प्रसादगुणपूर्ण है। कवि कल्पना करने में बड़ा चतुर है। इस काव्य पर कवि ने स्वयं दुर्गपदव्याख्या लिखी है जिसमें प्रत्येक सर्ग के आदि में छन्दों के सूचक लक्षण दिये गये हैं।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—ग्रन्थ के अन्त में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता माणिक्यसुन्दर हैं जिन्होंने इसे देवकुल-पाटकपुर में वि०सं० १४६३ में बनाया और मेरुमण्डल के सत्यपुर में श्री-पूज्य गच्छाधीश से शुद्ध कराया था। उक्त प्रशस्ति से यह भी ज्ञात होता है कि अञ्चलगच्छ के मेरुतुंग इनके दीक्षागुरु थे और जयशेखरसूरीश्वर गुरु थे।

इनकी अन्य रचनाओं में चतुष्पर्वी, शुकराजकथा, पृथ्वीचन्द्रचरित्र (प्राचीन गुजराती), गुणवर्मचरित्र, धर्मदत्तकथा, अजापुत्रकथा एवं आवश्यकटीका प्रभृति हैं।

जैनकुमारसंभव :

प्रस्तुत काव्य ११ सर्गों में विभक्त है और इसमें भरतकुमार की कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णित है।[१] इसकी रचना महाकवि कालिदास के कुमारसंभव काव्य से प्रेरणा ग्रहण कर की गयी है।

इसकी कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है—अयोध्या के राजा नाभिराय और रानी मरुदेवी के पुत्र ऋषभ का जन्माभिषेक हुआ। वे शैशवावस्था समाप्त कर युवावस्था धारण करते हैं (१ सर्ग)। ऋषभ का यश सर्वत्र व्याप्त था। इन्द्र आदि देवों को ऋषभदेव के विवाह की चिंता हुई। महाराज नाभिराय ने भी ऋषभदेव से विवाह का अनुरोध किया (२ सर्ग)। अन्य प्रजाजनों ने भी अनुरोध किया। इन अनुरोधों का ऋषभदेव ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। 'मौनं स्वीकृतिलक्षणं' इस नीति से उनके विवाह की तैयारियाँ की गईं (३ सर्ग)। सुमंगला और सुनंदा को विवाहमंडप में लाया गया। ऋषभदेव को भी विवाहमंडप में उपस्थित किया गया। अप्सराएं नभोमण्डल में नृत्य करने लगीं आदि (४ सर्ग)। ऋषभदेव का सुमंगला और सुनन्दा के साथ पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ। चारों ओर जय-जय ध्वनि सुनाई पड़ी। इस सर्ग में पति-पत्नी के संबंधों एवं कर्त्तव्यों का निरूपण है (५ सर्ग)। अनन्तर रात्रि, चन्द्रोदय, षड्ऋतु आदि वर्णनात्मक प्रसंग दिये गये हैं। सर्गान्त में सुमंगला के गर्भाधान का संकेत दिया गया है (६ सर्ग)। एक रात्रि के पिछले पहर में सुमंगला ने चौदह स्वप्न देखे। वह उनका फल जानने के लिए प्रभु के वासगृह में जाती है (७ सर्ग)। ऋषभदेव ने एक-एक स्वप्न का फल बतलाकर कहा कि सुमंगला को चक्रवर्ती पुत्र होगा (८ सर्ग)। सुमंगला अपने वासभवन में आती है और सखियों को समूचे वृत्तान्त से अवगत कराती है (१० सर्ग)। इन्द्र आकर सुमंगला के भाग्य की सराहना करता है और उसे बताता है कि अवधि पूर्ण होने पर उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। उसके पति का वचन मिथ्या नहीं हो सकता। उसके पुत्र के नाम से यह भूमि भारत तथा वाणी 'भारतीय' कहलाएगी। मध्याह्न वर्णन के साथ काव्य समाप्त होता है (११ सर्ग)।

यद्यपि कवि कालिदासकृत कुमारसंभव की भाँति जैनकुमारसंभव का उद्देश्य कुमार (भरत) के जन्म का वर्णन करना है किन्तु जिस प्रकार कुमारसंभव के प्रामाणिक अंश (प्रथम आठ सर्ग) में कार्तिकेय का जन्म वर्णित नहीं

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९४,११४; भीमसी माणेक, बम्बई द्वारा प्रकाशित; जैन पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत, १९४६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वैसे ही जैन कवि के महाकाव्य में भी भरतकुमार के जन्म का उल्लेख कहीं नहीं हुआ है और इस तरह दोनों काव्यों के शीर्षक उनके प्रतिपाद्य विषय के अनुसार चरितार्थ नहीं होते। *जैनकुमारसंभव* में ६ठे *सर्ग* में *सुमंगला* के गर्भाधान का निर्देश करने के पश्चात् भी काव्य को पाँच अतिरिक्त सर्गों में घसीटा गया है। इससे कथाक्रम विशृंखलित हुआ है और काव्य का अन्त अतीव आकस्मिक एवं निराशाजनक ढंग से हुआ है, भले ही वह कवि की वर्णनात्मक प्रकृति के अनुरूप हो। जो हो पर कालिदास का प्रभाव कवि पर बहुत है और वह उसकी कृति कुमारसंभव से विशेष रूप से प्रभावित है। कुमारसंभव और जैनकुमारसंभव की परिकल्पना, कथानक के विकास एवं घटनाओं के संयोजन में पर्याप्त साम्य है। इस काव्य की शैली में जो प्रसाद तथा आकर्षण है वह भी कालिदास की शैली की सहजता एवं प्रांजलता के प्रभाव के कारण ही है।

यद्यपि इस काव्य की कथा बहुत छोटी है जो ३-४ सर्गों की सामग्री मात्र है परन्तु कवि ने उसे नाना वर्णनों, संवादों, स्तोत्रों तथा प्रशस्तिगानों से भरकर ११ सर्गों की बना दी। इस काव्य की भाषा-शैली उदात्त एवं प्रौढ़ है। कवि ने विभिन्न रसों का चित्रण तो किया है पर प्रधान रूप से किसी एक रस का पल्लवन नहीं किया। इस काव्य में अलंकारों की सुरुचिपूर्ण योजना की गई है। काव्य में चित्रबंध की योजना कहीं नहीं की गई। छन्दों की योजना में कवि ने शास्त्रीय नियमों का पालन किया है। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग हुआ है, सर्गान्त में छन्द बदल दिया गया है। कुल मिलाकर कवि ने १७ छन्दों का प्रयोग किया है। ये सभी सुज्ञात छन्द हैं।

कविपरिचय एवं रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता कवि जयशेखरसूरि हैं जो अंचलगच्छीय महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। जैनकुमारसंभव की प्रशस्ति में इस काव्य का रचनाकाल वि० सं० १४८३ दिया गया है। प्रशस्ति में इनकी अन्य रचनाओं[१] का निर्देश भी किया गया है: यथा—उपदेशचिन्तामणि[२] (सं० १४३६), प्रबोधचिन्तामणि[३] (सं० १४६४), धम्मिलचरित[४]।

---

१. प्रबोधश्चोपदेशश्च चिन्तामणि कृतोत्तरौ।
कुमारसंभवं काव्यं चरितं धम्मिलस्य च॥

२. हीरालाल हंसराज, जामनगर.

३. जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर.

४. हीरालाल हंसराज, जामनगर.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस काव्य पर कवि के शिष्य धर्मशेखरगणि ने टीका लिखी है। काव्य का संशोधन माणिक्यसुन्दरसूरि ने किया था।

अन्य लघुकाव्यों में मण्डनकवि के तीन लघुकाव्य उल्लेखनीय हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

कादम्बरीमण्डन :

कवि मण्डन की अन्यतम कृतियों में से यह एक है।[1] इसकी रचना मण्डन ने मालवा के बादशाह होशंगशाह के अनुरोध पर की थी। होशंगशाह को मण्डन जैसे विद्वानों की संगति से संस्कृत साहित्य से बड़ा प्रेम हो गया था। एक समय सायंकाल उसने एक विद्वद्गोष्ठी की और मण्डनकवि से कहा कि मैंने कादम्बरी की बड़ी प्रशंसा सुनी है, उसकी कथा सुनने की मेरी बड़ी लालसा है परन्तु राज्यकार्य में व्यस्त रहने के कारण इतनी मोटी पुस्तक के सुनने का समय नहीं। तुम तो बड़े विद्वान् हो, उसे संक्षेप करके सुना दो। उसकी इस इच्छा को तृप्त करने के लिए मण्डन ने इस ग्रन्थ को संक्षेप में अनुष्टुभ् छन्दों द्वारा चार परिच्छेदों में रचा है।

चन्द्रविजयप्रबंध :

इस काव्य[2] में चन्द्र और सूर्य के बीच संग्राम होने का वर्णन है और अष्ट प्रहर के भयंकर संग्राम के पश्चात् चन्द्रमा की विजय दिखाई गई है।

इस अपूर्व काव्य के रचयिता विद्वान् मंत्री एवं कवि मण्डन हैं। इस ग्रन्थ की रचना का कारण मनोरंजक है। एक रात्रि को मण्डन के निवास पर प्रसिद्ध विद्वानों और कवियों का भारी समारोह लगा था। पूर्णिमा की तिथि होने के कारण चन्द्रमा भी पूर्ण कलाओं के साथ था। सभा समस्त रात्रि और दूसरे दिन संध्यापर्यन्त जुड़ी रही। विद्वानों ने चन्द्रमा को अपनी समस्त कलाओं के साथ पूर्व में उदय होते देखा, फिर प्रातः रवि की किरणों से परास्त होकर पश्चिम में निस्तेज होकर विलीन होते देखा और पुनः अपनी समस्त कलाओं सहित पूर्व में

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ८४; हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली, संख्या ८, पाटन (गुजरात) से प्रकाशित। इस ग्रन्थ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १५०४ में लिखी मिलती है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १२०; हेमचन्द्राचार्य सभा, पाटन (गुजरात), संख्या १०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही उदय होते देखकर उन्हीं भावों को लेकर एक काव्य की रचना करने का प्रस्ताव रखा जिसमें चन्द्र-सूर्य के बीच संग्राम का वर्णन हो और अन्त में चन्द्रमा की विजय दिखायी जाय। मंडन ने इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उस काव्य की रचना की।

काव्यमण्डन :

इस काव्य[1] में १३ सर्ग हैं जिनमें विविध छन्दों में कौरवों और पाण्डवों की कथा वर्णित है। ग्रन्थाग्र १२५० श्लोक-प्रमाण है। इस काव्य में वर्ण्यविषय को अधिक रोचक बनाने के लिए कवि ने रसों, अलंकारों तथा अनेक छन्दों की योजना की है। ग्रन्थ में अनेक स्थल ऐसे हैं जो कवि की प्रौढ़ काव्य सुषमा का आनन्द देते हैं।

कर्ता—इस काव्य का कर्ता महाकवि मण्डन मंत्री है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में कवि ने अपनी छोटी सी प्रशस्ति दी है।[2] ग्रन्थ की समाप्ति में स्रग्धरा छन्द में एक प्रशस्ति द्वारा कवि ने अपने स्थान, वंश आदि का परिचय दिया है।[3] तदनुसार यह श्रीमाल वंश के झांझण संघवी के द्वितीय पुत्र बाहड़ का छोटा पुत्र था। यह बड़ा प्रतिभाशाली, विद्वान् और राजनीतिज्ञ था। इसमें लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का अपूर्व मेल था। मालवा में माण्डवगढ़ के होशंगशाह का यह मंत्री था। यह व्याकरण, अलंकार, संगीत तथा अन्य शास्त्रों में बड़ा विद्वान् था। विद्वानों पर इसकी बड़ी प्रीति थी और सदा कला की उपासना में रत

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९०; हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली, संख्या १७, पाटन से प्रकाशित। इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति सं० १५०४ भाद्रपद शुक्ल पंचमी की लिखी मिलती है।

२. श्रीमद्वन्द्यजिनेन्द्रनिर्भरनतेः श्रीमालवंशोन्नतेः।
श्रीमद्बाहडनन्दनस्य दधतः श्रीमण्डनाख्यां कवेः॥
काव्ये कौरवपाण्डवोदयकथारम्ये कृतौ सद्गुणे।
माधुर्यं प्रथु काव्यमण्डन इते सर्गोऽयमाद्योऽभवत्॥

३. अस्त्येतन्मण्डपाख्यं प्रथितमरिचमूदुर्ग्रहं दुर्गमुच्चै-
र्यस्मिन्नाक्रमसाहिर्निवसति बलवान्दुःसहः पार्थिवानाम्।
यच्छौर्यं रंमन्दो प्रबलधरणिभृत्सैन्यवन्याभिपाती,
शत्रुस्त्रीबाष्पवृष्ट्याऽप्यधिकतरमहो दीप्यते सिच्यमानः॥ ५३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता था। इसकी कविगोष्ठी में अनेक विद्वान्, कलाकार इकट्ठे होते थे और उन्हें यह भूमि, वस्त्र आदि से सन्तुष्ट किया करता था। इसके जीवनचरित पर कवि महेश्वर ने एक मनोहर काव्य लिखा है। मण्डन द्वारा लिखे एवं लिखवाये ग्रन्थों की प्रतियों में दी गई प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि वह १५वीं शताब्दी के अन्त तक जीवित था।[१]

मंडन ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से जो प्रकाश में आये हैं वे निम्नांकित हैं : १. कादम्बरीमण्डन, २. चम्पूमण्डन, ३. चन्द्रविजयप्रबंध, ४. अलंकारमण्डन, ५. काव्यमण्डन, ६. शृंगारमण्डन, ७. संगीतमण्डन, ८. उपसर्गमण्डन, ९. सारस्वतमण्डन, १०. कविकल्पद्रुम।[२] कर्ता ने अपने प्रत्येक ग्रन्थ के साथ अपना नाम जोड़ दिया है। मण्डन का अर्थ भूषण भी लिया जा सकता है। इनमें से अलंकारमण्डन और कविकल्पद्रुम काव्यशास्त्र पर, संगीतमण्डन संगीतशास्त्र पर, उपसर्गमण्डन संस्कृत के प्र, परा आदि उपसर्गों पर और सारस्वतमण्डन सारस्वत व्याकरण पर लिखे गये हैं। शेष काव्य हैं।

संधान या अनेकार्थक काव्य :

संस्कृत भाषा में एक ओर जहाँ एक वस्तु के अनेक पर्यायवाची होते हैं वहाँ कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनके अनेक अर्थ पाये जाते हैं। संस्कृत की इस विशिष्टता का जैन मनीषियों ने काव्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम प्रयोग किया। उन्होंने संधान अर्थात् श्लेषमय चित्रकाव्यों की रचना और उसका स्तोत्र साहित्य के रूप में भी विकास किया है। उन्होंने द्विसंधान, चतुस्संधान, पंचसंधान, सप्तसंधान एवं चतुर्विंशतिसंधान काव्य रचे हैं।

अनेकार्थ काव्यों की ओर जैन कवियों की प्रवृत्ति ५वीं-६ठी सदी ईस्वी से हुई है। वसुदेवहिण्डी की चत्तारि अट्ठगाथा के चौदह अर्थ किये गये हैं। संस्कृत के

---

१. यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, खुडाला (राजस्थान), वि० सं० २०१५, पृ० १२८-१३४, दौलतसिंह लोढ़ा, मंत्री मण्डन और उसका गौरवशाली वंश.

२. इनमें से प्रथम छः ग्रन्थ हेमचन्द्राचार्य सभा, पाटन से प्रकाशित हो चुके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध संधान काव्यों में सबसे प्राचीन और उत्तम धनञ्जय का द्विसन्धान[1] काव्य (८वीं शताब्दी) है। जैन सिद्धान्त भवन, आरा में ११वीं शती के एक पंचसंधान[2] महाकाव्य की कन्नड पाण्डुलिपि उपलब्ध है। इसके रचयिता शान्तिराजकवि हैं। एतद्विषयक ११वीं शताब्दी की एक रचना सूराचार्यकृत नेमिनाथचरित[3] (नाभेयनेमिद्विसन्धान) (सं० १०९०) है। इसके श्लेषमय पद्यों से नेमिनाथ के साथ ऋषभदेव के जीवनचरित का अर्थ भी घटित होता है। इस प्रकार की एक दूसरी रचना नाभेयनेमिद्विसन्धान[4] (१२वीं शती) है। इस काव्य में भी नेमि और ऋषभ की कथाएँ समानान्तर रूप से वर्णित हैं। कहा जाता है कि इसका संशोधन कविचक्रवर्ती श्रीपाल ने किया है। इस काव्य की पाण्डुलिपियाँ बड़ौदा और पाटन-भण्डार में सुरक्षित हैं।

प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र के शिष्य वर्धमानगणि ने कुमारविहारप्रशस्तिकाव्य बनाया। उसमें ८७वाँ पद्य ऐसा अद्‌भुत अनेकार्थी निर्मित किया[5] कि प्रारंभ में उसके उन्होंने ६ अर्थ निकाले पर पीछे उनके शिष्य ने ११६ अर्थ किये। उनमें ३१ कुमारपाल, ४१ हेमचन्द्राचार्य और १०९ अर्थ वाग्भट मंत्री के सम्बन्ध में निकलते हैं। यह पद्य टीका के साथ प्रकाशित हो चुका है।[6]

वर्धमानगणि के समकालीन सोमप्रभाचार्य ने शतार्थिक काव्य के रूप में एक पद्य की रचना की और उस पर अपनी टीका लिखी। इससे उन्होंने १०६ अर्थ निकाले हैं जिनमें २४ तीर्थंकर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा चौलुक्य नृप जयसिंह, कुमारपाल, अजयपाल आदि के अर्थ शामिल हैं। यह भी प्रकाश में आ गया है।[7]

---

१. काव्यमाला, ग्रन्थांक ५७, निर्णयसागर प्रेस, बंबई, १९२६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २२९.

३. वही, पृ० २१६.

४. वही, पृ० २१०.

५. अनेकार्थ-साहित्य-संग्रह, प्राचीन साहित्योद्धार ग्रन्थावली, पुष्प २, अहमदाबाद.

६. वही, पृ० १-६८.

७. वही, पृ० ६८-१३४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पीछे १५वीं से २०वीं शती तक जैन कवियों ने इस दिशा में प्रचुर रचनाएं लिखीं। उनमें महोपाध्याय समयसुन्दररचित 'अष्टलक्षी' (सं० १६४९) भारतीय काव्य-साहित्य का ही नहीं, विश्व-साहित्य का अद्वितीय रत्न है। कहा जाता है कि एक बार अकबर की सभा में जैनों के **'एगस्स सुत्तस्स अणंतो अत्थो'** वाक्य का किसी ने उपहास किया। यह बात उक्त महोपाध्याय को बुरी लगी और उक्त सूत्रवाक्य की सार्थकता बतलाने के लिए **'राजानो ददते सौख्यम्'** इस आठ अक्षर वाले वाक्य के दस लाख बाईस हजार चार सौ सात अर्थ किये और विद्वानों के समक्ष अकबर को सुनाये। इससे सब चकित हो गये। पीछे कवि ने उक्त अर्थों में से असम्भव या योजनाविरुद्ध अर्थों को निकाल कर इस ग्रन्थ का 'अष्टलक्षी'[1] नाम रखा।

कवि लाभविजय ने **'तमो दुर्वाररागादि वैरिवार निवारणे। अर्हते योगिनाथाय महावीराय तायिने ॥'** इस पद्य के पाँच सौ अर्थ किये हैं।[2] इस प्रकार की अन्य रचनाओं में मनोहर और शोभनरचित चतुस्संधानकाव्य का उल्लेख मिलता है। इस प्रसंग में नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य पं० जगन्नाथ (सं० १६९९) की दो रचनाएं 'सप्तसन्धान' और 'चतुर्विंशतिसंधान' भी उल्लेखनीय हैं। पिछले ग्रन्थ में श्लेषमय एक ही पद्य से २४ तीर्थंकरों का अर्थबोध होता है। वह पद्य निम्नलिखित है :

श्रेयान् श्रीवासुपूज्यो वृषभजिनपतिः श्रीद्रुमाङ्कोऽथ धर्मो,
हर्यङ्कः पुष्पदन्तो मुनिसुव्रतजिनोऽनन्तवाक् श्रीसुपार्श्वः।
शान्तिः पद्मप्रभोरो विमलविभुरसौ वर्धमानोऽप्यजाङ्को,
मल्लिर्नेमिर्नमिर्मां सुमतिरवतु सच्छ्रीजगन्नाथधीरम् ॥

इस काव्य के संस्कृत टीकाकार स्वयं कवि जगन्नाथ ही हैं। कुछ विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ (रसगंगाधरकार) उक्त पद्य के रचयिता को मानते हैं[3]

---

१. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, ग्रन्थांक ८१.

२. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ८, किरण १.

३. जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ५, किरण ४, पृ० २२५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर टीका के अन्त में दी हुई पुष्पिका से स्पष्ट है कि कवि उक्त पण्डितराज से भिन्न ही है।

१८वीं सदी के महोपाध्याय मेघविजय की रचना 'सप्तसन्धान' (सं० १७६०) भी अनुपम है। यह काव्य ९ सर्गों में लिखा गया है। प्रत्येक श्लेषमय पद्य से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों एवं राम और कृष्ण इन ७ महापुरुषों के चरित्र का अर्थ निकलता है।

उक्त काव्यों के अतिरिक्त अनेकार्थविषयक कई स्तोत्र भी पाये गये हैं, यथा ज्ञानसागरसूरिरचित नवखण्डपार्श्वस्तव, सोमतिलकसूरिरचित विविधार्थमयसर्वज्ञस्तोत्र, रत्नशेखरसूरिरचित नवग्रहगर्भितपार्श्वस्तवन तथा पार्श्वस्तव, मेघविजयरचित पंचतीर्थीस्तुति, समयसुन्दररचित द्व्यर्थकर्णपार्श्वस्तव आदि।[१]

यहाँ संधान विषयक दो काव्यों का विशेष परिचय दिया जाता है।

द्विसन्धानमहाकाव्य :

इस महाकाव्य[२] में १८ सर्ग हैं। काव्य का यह नाम रचना के साँचे को सूचित करता है जिसका प्रत्येक पद्य दो अर्थ प्रदान करता है। इसका दूसरा नाम राघवपाण्डवीय भी है। यह नाम काव्य की कथावस्तु की सूचना देता है अर्थात् इस काव्य में रामायण और महाभारत की कथा एक साथ बड़ी कुशलता से ग्रथित की गई है। इन दोनों महाकाव्यों से सम्बद्ध कथाचक्र भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का अविभाज्य अंग बन गया है और कोई भी कवि एक काल में एक साथ दोनों की विषयवस्तु को यदि ग्रहण करे तो वह सरलता से ऐसा कर सकता है। विशेषकर इसलिए कि इन कथाओं का वर्णन करने वाले अनेक स्वतन्त्र महाकाव्य उपलब्ध हैं जिनमें किसी एक के चयन और विवेचन के लिए अनेक प्रकार के विचार और सन्दर्भ दिये गये हैं। उस

१. वही, भाग ८, किरण १, पृ० २४ में श्री अगरचन्द नाहटा का लेख.

२. काव्यमाला सिरीज, संख्या ४२, बम्बई, १८९५; जिनरत्नकोश, पृ० १८५; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से नेमिचन्द्र की टीका के साथ प्रकाशित, १९७०; इस काव्य के महाकाव्यत्व और अन्य गुणों के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ३६३-३८७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय के साहित्य में 'राघवपाण्डवीय' शीर्षक बड़ा प्रिय था। कवि धनंजय की कृति के अतिरिक्त कविराज और श्रुतकीर्ति आदि कवियों ने इस नामवाली कृतियाँ लिखी हैं और इस प्रकार के नामवाली—राघवयादवीय, राघव-पाण्डव-यादवीय आदि कृतियाँ भी हैं। जो हो, धनंजय की अपनी कृति का प्रधान नाम 'द्विसंधान' है और महाकवि दण्डी के बाद वह इस प्रकार के लेखकों में अग्रणी था। 'राघव-पाण्डवीय' केवल गौण नाम प्रतीत होता है।

कथावस्तु—काव्य के आरंभ में मंगल पद्य में मुनिसुव्रत अथवा नेमि (श्लेष द्वारा) तथा सरस्वती को नमस्कार किया गया है। फिर श्लेषालंकार की सहायता से राम और पाण्डवों की कथा का वर्णन किया गया है। प्रथम सर्ग में अयोध्या और हस्तिनापुर का वर्णन है। दूसरे सर्ग में दशरथ और पाण्डुराज का, तीसरे में राघवकौरवोत्पत्ति, चतुर्थ में राघव-पाण्डवारण्यगमन, पांचवें में तुमुल युद्ध, छठे में खरदूषण-वध और गोग्रहनिवर्तन, सातवें में सीता-हरण, अष्टम में लङ्का-द्वारावतीप्रस्थान, नवम में माया-सुग्रीव-विग्रह तथा जरासंध-बलविद्रावण, दसवें में लक्ष्मण-सुग्रीव-विवाद तथा जरासंधदूत एवं नारायण के बीच विवाद, ग्यारहवें में सुग्रीव-जाम्ब-हनुमान के बीच परामर्श एवं नारायण-पाण्डवादि परामर्श, बारहवें में लक्ष्मण द्वारा तथा वासुदेव द्वारा कोटिशिला का उद्धरण, तेरहवें में हनुमन्नारायणदूताभिगमन, चौदहवें में सैन्यप्रयाण, पन्द्रहवें में कुसुमावचय एवं जलक्रीड़ा-वर्णन, सोलहवें में संग्राम-वर्णन, सत्रहवें में रात्रिसंभोग-वर्णन और अठारहवें में रावण एवं जरासंध का वध तथा यादव-पाण्डवों की निष्कण्टक राज्यप्राप्ति का वर्णन किया गया है।

कवि ने इस कथा को गणधर गौतम के द्वारा श्रेणिक के लिए कही गई बताया है, जैसा कि प्रायः सभी दिगम्बर जैन कवि अपनी कथावस्तुओं के प्रति कहते हैं। कवि ने घटनाओं के कथनों की अपेक्षा महत्त्वपूर्ण वर्णनों पर ही अधिक बल दिया है। अन्य जैन काव्यों की अपेक्षा इस काव्य में कुछ विशेषताएँ ये हैं कि इसके किसी भी सर्ग में जैन सिद्धान्त या नियमों का विवेचन नहीं है जबकि अन्य काव्यों के किसी एक सर्ग में ऐसा रहता है। सभी जैन काव्य प्रायः मुख्य नायक के निर्वाणगमन पर समाप्त होते हैं परन्तु यह काव्य निर्विघ्न राज्यप्राप्ति पर ही समाप्त हो जाता है।

इस काव्य की भाषा क्लिष्ट संस्कृत है जिसे समझने के लिए श्रम की आवश्यकता है। इस काव्य के अधिकांश पद्य विविध अलंकारों से सजाये गये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। टीकाकार नेमिचन्द्र ने इन्हें अपनी टीका पदकौमुदी में भलीभांति दिखाया है। अन्तिम सर्ग में (विशेषकर पद्य संख्या ४३ प्रभृति में) शब्दालंकारों के अनेक भेदों का प्रयोग किया है। यह प्रवृत्ति भारवि, माघ आदि कवियों में भी देखी जाती है। पद्य संख्या १४१ सर्वगत प्रत्यागत का उदाहरण है।

इस काव्य के आठवें सर्ग को छोड़ प्रत्येक सर्ग में एक प्रकार के छन्द का प्रयोग किया गया है और सर्गान्त के कतिपय पद्यों में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। कुल मिलाकर २१ विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है।

इसके अठारह सर्गों में कुल पद्यसंख्या ११०५ है। यह काव्य अपने से पूर्ववर्ती रचनाओं—रघुवंश, मेघदूत, किरातार्जुनीय एवं शिशुपालवध से अनुप्राणित है।

कविपरिचय और रचनाकाल—इस काव्य के रचयिता महाकवि धनंजय हैं। कवि ने अपने वंश या गुरुवंश आदि का कुछ भी उल्लेख किसी भी ग्रन्थ में नहीं किया और न अपने पूर्ववर्ती किसी कवि या आचार्य का उल्लेख किया है।। टीकाकार नेमिचन्द्र ने इस काव्य के अन्तिम पद्य की व्याख्या में कवि के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ सूचित किया है। संभवतः कवि गृहस्थ था।

धनंजय की यह कृति अपने ही युग में बड़ी उत्कृष्ट समझी जाने लगी थी और इस काव्य की रचना के कारण ही कवि 'द्विसंधानकवि' नाम से प्रसिद्ध हो गया था। कवि ने अपने उत्कृष्ट काव्य को अकलंक के प्रमाणशास्त्र और पूज्यपाद के व्याकरण के समान उच्च कोटि का कहा है :

प्रमाणमकलंकस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसंधान कवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥ नाममाला,२०१.

कवि और उसके काव्य की ख्याति पश्चात्कालीन कवियों में बहुत थी। धारानरेश भोज ने अपने 'शृंगारप्रकाश' (११वीं शती का मध्य) में '**दण्डिनो धनञ्जयस्य वा द्विसंधानप्रबंधौ रामायणमहाभारतार्थावनुबध्नाति**'[१] द्वारा उक्त कवि का स्मरण किया है। भोज के समकालीन प्रभाचन्द्राचार्य ने भी अपने ग्रन्थ

१. भोज, शृंगारप्रकाश, मद्रास, १९६२, पृ० ४०६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमेयकमलमार्तण्ड में इस काव्य का उल्लेख किया है। वादिराज ने अपने पार्श्वनाथचरित (सन् १०२५) में द्विसंधान की प्रशंसा में लिखा है:

अनेकभेदसन्धानाः खनन्तो हृदये मुहुः।
बाणा धनञ्जयोन्मुक्ताः कर्णस्येव प्रियाः कथम् ॥

अर्थात् अनेक (दो) प्रकार के सन्धान (निशाना और अर्थ) वाले और हृदय में बारंबार चुभने वाले धनंजय (अर्जुन और धनंजय कवि) के बाण (और शब्द) कर्ण को (कुन्तीपुत्र कर्ण और कानों को) प्रिय कैसे होंगे ?

इसी तरह कन्नड कवि दुर्गसिंह (सन् १०२५ के लगभग) ने अपने ग्रन्थ पंचतंत्र में धनंजय और उनके राघवपाण्डवीय का स्मरण किया है। दूसरे कन्नड कवि नागवर्मा (सन् १०९० के लगभग) ने भी अपने ग्रन्थ 'छन्दोम्बुधि' में धनंजय का उल्लेख किया है।

धनंजय और द्विसंधान की प्रशंसा में महाकवि राजशेखर (सन् ९०० के लगभग) ने एक पद्य इस प्रकार लिखा है (इसका संग्रह जल्हण (१२वीं सदी) ने अपनी 'सूक्तिमुक्तावलि' में किया है):

द्विसंधाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयः।
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः ॥

धनंजय ने द्विसंधान में जो निपुणता प्राप्त की उससे उन्हें सज्जनों के समूह में धन और जयरूप फल प्राप्त हुआ।

यद्यपि धनंजय ने अपने किन्हीं ग्रन्थों में अपने समय का कोई उल्लेख नहीं किया परन्तु उपर्युक्त उल्लेखों से उनके समय-निर्णय में अवश्य सहायता मिलती है।

धनंजय की उत्तरावधि राजशेखर, भोज, प्रभाचन्द्र, वादिराज आदि के द्वारा किये उल्लेखों से १०वीं शताब्दी के पूर्व बैठती है क्योंकि उस शताब्दी तक वह पूर्ण ख्याति प्राप्त कर चुका था। उसकी उत्तरावधि को और सीमित करने के लिए एक और प्रमाण है। उसके अन्यतम ग्रन्थ 'अनेकार्थनाममाला' के एक पद्य का उद्धरण ९वीं शताब्दी के आचार्य वीरसेन (सन् ८१६) ने अपनी धवला टीका में दिया है। वह पद्य है :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतावेवं प्रकारादौ व्यवच्छेदे विपर्यये।
प्रादुर्भावे समाप्तौ च इति शब्दः प्रकीर्तितः ।।

इससे धनंजय का समय ९वीं शताब्दी के बाद नहीं हो सकता।

पूर्वावधि के लिए धनंजय की नाममाला का उपर्युक्त पद्य 'प्रमाणमकलंकस्य' उद्धृत किया जा सकता है। इस पद्य के अकलंक का समय ७-८वीं शताब्दी है। अतः धनंजय उससे पूर्व नहीं हो सकते। संक्षेप में हम धनंजय को आठवीं के मध्य और सन् ८१६ के बीच कभी हुआ मान सकते हैं।[1]

कवि की अन्य कृतियों में उपलब्ध नाममाला अनेकार्थनाममाला नामक लघु एवं उपयोगी कोश तथा विषापहार स्तोत्र है। इनकी एक अन्य कृति यशोधरचरित थी। भट्टारक ज्ञानकीर्ति (वि०सं० १६५०) ने अपने यशोधरचरित में पूर्व के ७ यशोधरचरितों के कर्ताओं के नाम दिये हैं जिनमें धनंजय का भी है। सम्भव है ये धनंजय कोई दूसरे हों क्योंकि वि०सं० १६५० के पूर्व किसी अन्य लेखक ने इस महाकवि के यशोधरचरित का उल्लेख नहीं किया। उनकी अनुपम लेखनी से प्रसूत कृति का इस बीच इतने दिनों तक अज्ञात रहना सम्भव न था।

द्विसंधान अपने प्रकार का सर्वश्रेष्ठ और संभवतः उपलब्ध प्रथम काव्य है। इसके अनुकरण पर पीछे इस प्रकार की काव्य-परम्परा चल पड़ी। श्रुतकीर्ति त्रैविद्य (सन् ११००-११५०) का राघवपाण्डवीय, माधवभट्ट का राघवपाण्डवीय, संध्याकरनन्दि का रामचरित, हरिदत्तसूरि का राघवनैषधीय, चिदम्बरकृत राघवपाण्डवयादवीय आदि इसी परम्परा के काव्य हैं।

द्विसंधान काव्य पर कुछ टीकाएं उपलब्ध हैं। उनमें एक पदकौमुदी है जिसके कर्ता विनयचन्द्र के शिष्य और पद्मनन्दि के प्रशिष्य नेमिचन्द्र हैं। दूसरी राघवपाण्डवीयप्रकाशिका है जिसके कर्ता परवादिघरट्ट रामभट्ट के पुत्र कवि देवर हैं। इन दोनों का समय ज्ञात नहीं है।[2]

---

१. धनंजय और द्विसंधानकाव्य पर एक विस्तृत लेख डा० आ० ने० उपाध्ये ने विश्वेश्वरानन्द इण्डोलॉजिकल जर्नल (मार्च-सित० १९७०, भा० ८, अं० १-२, पृ० १२५-१२४) में लिखा है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १८५ और ३२९; जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १०८ प्रभृति.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तसंधान :

मेघविजयगणि के उल्लेखानुसार एक सप्तसंधान महाकाव्य[1] की रचना अनेक ग्रन्थों के लेखक प्रसिद्ध आचार्य हेमचन्द्र ने की थी जो कि पूर्व में ही लुप्त हो गया था।

उपलब्ध दूसरे सप्तसंधान महाकाव्य की रचना मेघविजयगणि ने की है। इस काव्य के प्रत्येक श्लेषमय पद्य से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों एवं राम तथा कृष्ण इन सात महापुरुषों के चरित्र का अर्थ निकलता है। इस काव्य में ९ सर्ग हैं। इसका कथानक पूर्ववर्ती रचनाओं—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित आदि से लिया गया है।

कथावस्तु—भरतक्षेत्र में कोशल, कुरु, मध्य और मगध देश नाम के जनपदों में क्रमशः अयोध्या, हस्तिनापुरी, शौर्यपुरी, वाराणसी, मथुरा और कुण्डपुर नगरियाँ हैं। इनमें से अयोध्या में ऋषभदेव और रामचन्द्र का हस्तिनापुरी में शान्तिनाथ का, शौर्यपुरी में नेमिनाथ का, वाराणसी में पार्श्वनाथ का, वैशाली में महावीर का और मथुरा में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। इन नगरियों में रहने वाले उक्त महापुरुषों के पितृनामों के उल्लेख के पश्चात् उक्त महापुरुषों की माताओं को गर्भधारण के पूर्व स्वप्नदर्शन तथा स्वप्नफल-श्रवण के वर्णन के साथ प्रथम सर्ग समाप्त हो जाता है। दूसरे सर्ग में उक्त पाँच तीर्थंकरों के जन्म और जन्माभिषेक का वर्णन है। तृतीय में उक्त सात महापुरुषों के बाल्यकाल, युवावस्था और राज्यप्राप्ति का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में तीर्थंकरों के राजा होते ही देश की सम्पत्ति का विकास, ऋषभादि को पुत्रादि की प्राप्ति के वर्णन के साथ श्रीकृष्णकालीन कौरव-पाण्डवों का निरूपण किया गया है। इस सर्ग के अन्तिम भाग में कवि ने श्लेष के आधार पर ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व, महावीर और राम की जीवन-घटनाओं का विवेचन किया है। राम अन्तःपुर के षड्यन्त्र के कारण वन जाते हैं, भरत विरक्त होकर राज्यशासन का संचालन करते हैं। तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करने की तैयारी करते हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१६; अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला, बीकानेर; विविध साहित्य शास्त्रमाला (संख्या ३), वाराणसी, १९१७; जैन साहित्यवर्धक सभा, सूरत, वि० सं० २०००, श्रीमद् विजयामृतसूरीश्वरविरचित 'सरणी' टीकासहित प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाँचवें सर्ग में तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण कर विभिन्न देशों में विहार करते हैं, वे कठोर तपश्चरण करते हैं तथा बाईस परीषह और अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन करते हैं। तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीता का वनवास-वर्णन, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा को दण्डित किया जाना, रावण द्वारा सीता का अपहरण, हनुमान द्वारा सीता की खोज और रावण की सभा को आतंकित करना वर्णित है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में कहा गया है कि शिशुपाल-जरासन्ध से लड़ने के लिए उन्होंने पाण्डवों से दृढ़ मित्रता की और द्वारका को सुदृढ़ बनाया।

छठे सर्ग में तीर्थंकरों द्वारा कर्मों की निर्जरा कर केवलज्ञान प्राप्त करना तथा देवों द्वारा केवलज्ञान-कल्याण की पूजा करने के वर्णन के बाद राम द्वारा रावण पर सुग्रीव आदि की सहायता से विजय प्राप्त करना और श्रीकृष्ण द्वारा अपने शत्रुओं का उन्मूलन कर अर्धचक्रवर्ती पद प्राप्त करना वर्णित है। सातवें सर्ग में तीर्थंकरों के समवसरण की रचना, भरत आदि राजाओं की उपस्थिति, तीर्थंकरों द्वारा विहार और उससे प्राणियों के कल्याण के वर्णन के बाद षड्ऋतुओं का वर्णन और तीर्थंकरों के उपदेश से अनेक व्यक्तियों द्वारा दीक्षाग्रहण करना आदि वर्णित है। अष्टम सर्ग में भरत चक्रवर्ती की दिग्विजययात्रा एवं शिलातीर्थ पर जिनप्रतिमाओं का वन्दन तथा भगवान् ऋषभदेव के मोक्षगमन के बाद भरत द्वारा उनकी परिपालित भूमि की रक्षा करने का तथा राम-कृष्ण के पक्ष में अनेक नृपों पर विजय का वर्णन दिया गया है। ७-८वें सर्गों की विशेषता यह है कि इनमें विविध छन्दों के प्रयोग हैं। यमकालंकार के सभी भेदों और अन्तिम भेद महायमक के भी उदाहरण दिये गये हैं।

नवम सर्ग में ऋषभ की संसार में व्याप्त कीर्ति के वर्णन पूर्वक अन्य तीर्थंकरों की निर्वाणप्राप्ति का वर्णन दिया गया है। इसके बाद राम द्वारा अयोध्या के राज्य की प्राप्ति, सीता से दो पुत्रों की प्राप्ति, सीता की अग्निपरीक्षा एवं उसके द्वारा संसार से विरक्त हो दीक्षा धारण करना तथा कालान्तर में राम की विरक्ति, तपस्या एवं निर्वाणप्राप्ति का वर्णन दिया गया है। इसी तरह श्रीकृष्ण द्वारा द्वारका की रक्षा, यादवों के उपद्रव से द्वैपायन मुनि द्वारा द्वारका का सर्वनाश तथा बलराम द्वारा विरक्त हो तपस्या करके निर्वाण-प्राप्ति के वर्णन के साथ काव्य की समाप्ति होती है। इस काव्य में कुल मिलाकर ४४२ पद्य हैं।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता तपागच्छ के प्रसिद्ध उपाध्याय मेघविजय हैं। इनके परिचय और इनकी कृतियों के विषय में हम अन्यत्र

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

इनकी एक कृति लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित के प्रसंग में पर्याप्त कह आये हैं। इस ग्रंथ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसकी रचना वि० सं० १७६० में हुई थी।[1]

गद्यकाव्य :

संपूर्ण संस्कृत काव्य-साहित्य में गद्यकाव्यों की संख्या गिनी-चुनी है। संस्कृत में गद्यकाव्य लिखना कवियों की कसौटी माना गया है—**'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'**।

ईस्वी ६ठी शती से ८वीं शती तक गद्यकाव्य के कुछ नमूने सुबन्धु की 'वासवदत्ता', बाण की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' तथा दण्डी के 'दशकुमारचरित' के रूप में मिले हैं। फिर दो शताब्दी बाद धनपाल की 'तिलकमंजरी' और वादीभसिंह की 'गद्यचिन्तामणि' के रूप में दो जैन गद्यकाव्यों के दर्शन होते हैं। इन दोनों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है :

तिलकमंजरी :

यह[2] एक गद्य-आख्यायिका है। इस काव्य का नाम नायिका के नाम से रखा गया है और यह पूर्व कवियों की कृतियों, यथा बाण की कादम्बरी और उद्योतनसूरि की कुवलयमाला आदि के अनुकरण पर ही रचित है।

कथावस्तु—कोशल देश के इक्ष्वाकु नृप मेघवाहन और रानी मदिरावती को निःसन्तान होने से दुःख था। पुत्र-प्राप्ति के लिए वन में जाकर देवोपासना करने का विचार हुआ पर एक वैमानिक देव के अनुरोध पर घर पर ही श्रीदेवी की उपासना की गई। प्रसन्न देवी ने राजा को पुत्र-प्राप्ति का वरदान और बालारुण नामक अंगूठी प्रदान की। पुत्र का नाम हरिवाहन रखा गया। वह धीरे-धीरे वृद्धिगत होकर सभी विद्याओं का पारगामी हो गया। एक समय एक

---

१. वियद्रसमुनीन्दूनां (१७६० वि० सं०) प्रमाणात् परिवत्सरे। कृतो यमुश्रमः....। सप्तसन्धान-प्रान्तप्रशस्ति.

२. काव्यमाला सिरीज, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३८; शान्तिसूरिरचित टिप्पणी तथा विजयलावण्यसूरिरचित टीका (पराग) के साथ, विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, बोटाद, वि० सं० २००८; गुरु गोपालदास बरैया स्मृतिग्रन्थ, पृ० ४८४-९१ में डा० हरीन्द्रभूषण जैन का लेख 'महाकवि धनपाल और उनकी तिलकमंजरी'.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूत ने उक्त राजा को उसके प्रधान सेनापति वज्रायुध की दक्षिण-विजय का समाचार सुनाया और कहा कि उस विजय में एक समरकेतु नामक कुमार को, जो घायल पड़ा हुआ था, वज्रायुध उठा लाया है और उसे राजा के समीप भेजा है।

राजा ने उस कुमार को अपने पुत्रवत् रखा और हरिवाहन तथा समरकेतु दोनों मित्रवत् रहने लगे। एक बार एक क्रीड़ामण्डप में मनोरंजन में व्यस्त कुमार को एक बन्दीपुत्र ने एक ताडपत्र लाकर दिया जिसमें एक आर्याछन्द लिखा हुआ था। उसका अर्थ समरकेतु के सिवाय कोई न समझ सका। समरकेतु इसके बाद ही बड़ा उदास दिखाई पड़ा। अन्य लोगों के बार-बार पूछने पर उसने दक्षिण दिशा में द्वीपान्तरों में अपनी सामुद्रिक विजय-यात्रा[1] का विस्तार से वर्णन किया और वहाँ कांचीनरेश कुसुमशेखर की रूपवती पुत्री मलयसुन्दरी के प्रति तीव्र आकर्षण की बात कह उसकी स्मृति से व्याकुल हो गया।

इसी बीच एक प्रतीहारी ने राजकुमार हरिवाहन को एक सुन्दरी का चित्र दिखाया जिसे गन्धर्वक नामक युवक लाया था। गन्धर्वक ने बतलाया कि यह विद्याधर नृप चक्रसेन की पुत्री तिलकमंजरी का चित्र है जो पुरुषमात्र की आकृति से अरुचि करती है। शायद किसी अपूर्वसुन्दर राजकुमार के दर्शन से उसकी यह अरुचि हट सके इसलिए वह पृथ्वीतल पर ऐसे राजकुमार के चित्र को उतार कर उसके पास ले जाने के लिए प्रयत्नशील है और अभी वह कांची-नरेश कुसुमशेखर के पास अपने राजा का सन्देश लेकर जा रहा है।

यह सुनकर समरकेतु ने कांची की राजकुमारी मलयसुन्दरी के पास सन्देश भेजने का अच्छा मौका पाया और उसे लिखकर वह सन्देश दिया भी। गन्धर्वक के चले जाने पर हरिवाहन के चित्त में तिलकमंजरी की धुन लग गई।

एक समय वे दोनों राजकुमार अन्य मित्रों के साथ देशान्तरभ्रमण में निकले और कामरूप देश पहुँचे। उस देश के राजा ने उनका खूब सत्कार किया। वहाँ हरिवाहन ने एक बिगड़े हाथी को अपने वश में कर लिया। हाथी थोड़ी देर बाद अपनी पीठ पर बैठने पर हरिवाहन को लेकर न जाने किधर

---

१. डा० मोतीचन्द्र ने जर्नल ऑफ उत्तर प्रदेश हिस्टोरिकल सोसाइटी के भाग २०, अंक १-२ में उक्त अंश का अनुवाद प्रकट कर तत्कालीन नाविकतंत्र पर अच्छा प्रकाश डाला है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गायब हो गया। कुछ काल बाद एक शुक ने हरिवाहन का समाचार एक दूत को दिया जिसे सुनकर समरकेतु उसकी खोज में निकल पड़ा और धीरे-धीरे वैताढ्य पर्वत के अदृष्टपार नामक सरोवर के पास पहुँच गया।

वहां विश्राम करते हुए उसने एक अति मधुर स्वर सुना और उसका अनुसरण करके उसने एक सुन्दर मठ में गन्धर्वक को देखा और कदलीवन में कुमार हरिवाहन को देखा, दोनों मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। हरिवाहन ने समरकेतु से तिलकमंजरी के दर्शन की बात कही और साथ ही पास में एक वन में एक तापस कन्या को भी देखने की बात कही जो अन्य कोई नहीं बल्कि समरकेतु की प्रेमिका मलयसुन्दरी थी और जो उसके विरह में वहाँ तपस्या कर रही थी। हरिवाहन उसका अतिथि बन कर रहने लगा। वहीं तिलकमंजरी का हरिवाहन के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा और दोनों पत्रादिप्रेषण द्वारा व्याकुल होने लगे। इसी बीच वे लोग एक महर्षि द्वारा चारों के पूर्वजन्म के वृत्तान्त को जान सके।

अन्त में हरिवाहन का विवाह तिलकमंजरी से और समरकेतु का मलय-सुन्दरी से हो जाता है और आख्यायिका भी समाप्त होती है।

बाणकृत कादम्बरी और तिलकमंजरी की कथावस्तु में बहुत समानता है। जिस तरह कादम्बरी काव्य किन्हीं उपविभागों में विभक्त नहीं है उसी तरह तिलकमंजरी भी विभक्त नहीं है। दोनों कथाओं का प्रारम्भ पद्यों से होता है जिनमें दोनों कवियों ने कथा, गद्य एवं चम्पू के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। दोनों कथाओं में गद्य के बीच में यत्र-तत्र पद्यों का प्रयोग हुआ है। जिस तरह कादम्बरी की नायिका गन्धर्वकुलोत्पन्न कादम्बरी विवाह के पहले परकीया एवं मुग्धा तथा विवाह के बाद स्वकीया एवं मध्या है उसी प्रकार तिलकमंजरी की नायिका विद्याधरी तिलकमंजरी पहले परकीया एवं मुग्धा तथा पश्चात् स्वकीया एवं मध्या है। इसका प्रधान नायक हरिवाहन और सहनायक समरकेतु आपस में कादम्बरी के चन्द्रापीड और वैशम्पायन की ही भांति परम मित्र हैं तथा अनुकूल एवं धीरोदात्त हैं। नायक की नायिका से भेंट भी कादम्बरी के समान ही है। इन दोनों में प्रथम उपनायिका और तद-नन्तर नायिका आती है। उपनायिका मलयवती और उसके तप की विधि का वर्णन महाश्वेता की ही भांति है। दोनों गद्यों के कथानक के अन्य अंशों में भी समानता दिखाई पड़ती है, यथा कादम्बरी में उज्जयिनी का नृप तारापीड और रानी विलासवती निःसन्तान होने के कारण दुःखी हैं। तिलकमंजरी में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेघवाहन और रानी मदिरावती भी पुत्र-प्राप्ति न होने से दुःखी हैं। दोनों कथाओं में समान रूप से देवताओं की पूजा आदि पुत्रोत्पत्ति में निमित्त बतलाये गये हैं। तिलकमंजरी में अयोध्या का शक्रावतार सिद्धायतन (जैन मंदिर) कादम्बरी में उज्जयिनी के महाकाल देवायतन की याद दिलाता है। कादम्बरी के समान ही तिलकमंजरी में अनेक लौकिक और अलौकिक (विद्याधरजगत्) पात्रों को कथानक में अवतरित किया गया है।

शैली की दृष्टि से भी दोनों काव्यों में समानता है। दोनों ने शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के प्रयोग द्वारा घटना तथा वर्णन को बोझिल बनाया है। अर्थालंकारों में बाण को परिसंख्यालंकार और विरोधाभास अतिप्रिय हैं उसी तरह तिलकमंजरीकार को भी दोनों अलंकार प्रिय हैं।

कथा और शैली में सादृश्य होते हुए भी कादम्बरी को तिलकमंजरी का उपजीव्य नहीं कहा जा सकता। कादम्बरी का उपजीव्य जिस तरह गुणाढ्य की बृहत्कथा है उसी तरह तिलकमंजरी के उपजीव्य उससे पूर्व की अनेक कृतियां हैं।[१]

तिलकमंजरी में अन्य गद्यकाव्यों की अपेक्षा कई विशेषताएं हैं:[२] १. इसके गद्य अधिक लम्बे और अनेक पदों से निर्मित समास की बहुलता से रहित हैं, २. इसमें अधिक श्लेषालंकार की भरमार नहीं है, ३. इसमें अगणित विशेषणों का आडम्बर नहीं है, इससे कथा के आस्वाद में चमत्कृति है, ४. इसमें श्रुत्यनुप्रास द्वारा श्रवण-मधुरता उत्पन्न की गई है आदि। कवि ने इसे 'अद्भुतरसा रचिता कथा' कहा है। यह काव्य अपने वर्णनवैविध्य एवं वैचित्र्य के कारण बाण से आगे बढ़ गया है। इसमें सांस्कृतिक जीवन, राजाओं का वैभव, उनके विनोद के साधन, तत्कालीन गोष्ठियां, अनेक प्रकार के वस्त्रों के नाम, नाविक तंत्र, युद्धास्त्र आदि का जीता-जागता वर्णन मिलता है।

---

१. प्रारंभिक पद्यों में कवि ने अपने से पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का उल्लेख किया है।

२. विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, बोटाद से प्रकाशित तिलकमंजरी की प्रस्तावना, पृ० १४-१६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह गद्यकाव्य ऐतिहासिक महत्त्व का भी है। इसके प्रारम्भ में धारा के परमार राजाओं की वैरिसिंह से लेकर भोज तक वंशावली दी गयी है।[1] कवि स्वयं परमार राजा मुञ्ज की सभा का सदस्य था तथा उक्त राजा द्वारा सरस्वती पद[2] से विभूषित किया गया था।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता का नाम धनपाल है। कवि के पिता का नाम सर्वदेव और पितामह का नाम देवर्षि था। पितामह मध्यदेश के सांकाश्य नामक ग्राम (वर्तमान फर्रुखाबाद जिले में 'संकिस' नामक ग्राम) के मूल निवासी ब्राह्मण थे और उज्जयिनी में आ बसे थे। धनपाल का शोभन नामक एक अनुज और सुन्दरी नामक एक बहिन थी। कवि वेद-वेदांग आदि के पण्डित थे। कहा जाता है कि धनपाल के अनुज शोभन जैन मुनि हो गये थे और अपने अनुज से प्रभावित होकर कवि ने जैनधर्म ग्रहण कर लिया। धनपाल के सम्बन्ध में प्रभावकचरित के 'महेन्द्रसूरिप्रबंध', प्रबंधचिन्तामणि के 'धनपालप्रबंध', रत्नमन्दिरगणि के 'भोजप्रबंध' आदि में कई आख्यान दिये गये हैं। धनपाल का समय मुंज और भोज के समकालीन होने से विक्रम की ११वीं शती है।

इनकी अन्य रचनाओं में पाइयलच्छीनाममाला, ऋषभपंचाशिका और वीरथुइ मिलती हैं। कवि ने पाइयलच्छीनाममाला की रचना वि० सं० १०२९ में धारा नगरी में अपनी छोटी बहिन सुन्दरी के लिए की थी।[3] धनपाल ने तिलकमंजरी की रचना राजा भोज के जिनागमोक्त कथा सुनने के कुतूहल को मिटाने के लिए की है।[4]

---

१. पद्य ३८-५१.

२. पद्य ५३ : श्रीमुंजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणिभृता व्याहृतः।

३. विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि······

कज्जे कणिट्ठबहिणीए 'सुन्दरी' नाम धिज्जाए।

४. निःशेष वाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ताः,

श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य।

तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतोः,

राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिलकमंजरीकथासार :

धनपाल के प्रसिद्ध गद्यकाव्य 'तिलकमंजरी' के आधार से अनुष्टुभ् छन्द में 'तिलकमंजरीसार'[1] की रचना हुई है। इसमें १२०० से कुछ अधिक पद्य हैं।

इसके रचयिता एक अन्य धनपाल हैं जो अणहिल्लपुर के पल्लीवाल जैन कुल में उत्पन्न हुए थे। उक्त धनपाल ने इसकी रचना कार्तिक सुदी अष्टमी, गुरुवार वि० सं० १२६१ में समाप्त की थी।

गद्यचिन्तामणि :

यह द्वितीय गद्य काव्य है।[2] इसके लेखक ने जीवन्धर के लौकिक कथानक को लेकर सरल से सरल संस्कृत पद्यों में क्षत्रचूडामणि जैसे लघु काव्य की सृष्टि की तो अलंकृत गद्यकाव्य शैली में कठिन से कठिन संस्कृत में गद्यचिन्तामणि की।

यह गद्यकाव्य क्षत्रचूडामणि के समान ही ११ लम्भों में विभक्त है और उसी के अनुसार जीवंधर का चरित इसमें वर्णित है। इसमें विशेषता यह है कि कवि को अपने अप्रतिम कल्पनावैभव, वर्णनपटुता एवं मानवीय भावनाओं के मार्मिक चित्रण का खुलकर अवसर मिला है। इस काव्य में अन्य कलावादी कवियों के समान ही कवि ने शब्दक्रीड़ा–कुतूहल दिखाया है, भावभंगिमाओं के रमणीय चित्रण प्रस्तुत किये हैं तथा सानुप्रासिक समासान्त पदावली एवं विरोधाभास और परिसंख्यालंकार के चमत्कार दिखलाये हैं। गद्यलेखक के रूप में शब्दों की पुनरुक्तता से बचने के लिए कवि ने नये-नये शब्द गढ़े हैं जैसे पृथ्वी के लिए अम्बुधिनेमि, मुनि के लिए यमधन, इन्द्र के लिए बलनिषूदन, सूर्य के लिए नलिनसहचर, चन्द्रमा लिए यामिनीवल्लभ आदि।

इस काव्य की रचना में पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव तो परिलक्षित होता है पर उस प्रभाव में वह अन्धानुकरण का दोषी नहीं। सुबन्धु के गद्यकाव्य वास-

---

१. लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से सन् १९७० में प्रकाशित.

२. वाणी विलास प्रेस, श्रीरंगम्, १९१६; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से हिन्दी अनुवाद और संस्कृत टीका सहित पं० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित, वि० सं० २०१५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वद्त्ता में श्लेष तथा अन्य अलंकारों की भरमार से उसके सौन्दर्य का घात ही हुआ जबकि गद्यचिन्तामणि में परिमित और सारगर्भित अलंकारों के प्रयोग के कारण इस काव्य की शोभा ही बढ़ी है। बाण की कादम्बरी जिस किसी वर्णन में विशेषणों की भरमार से इतनी उलझी हुई है कि पाठक उसके रसास्वादन से वंचित-सा रह जाता है, वह एक प्रकार से जंगल में फंस जाता है, पर गद्यचिन्तामणि इस दोष से मुक्त है। इस काव्य में पदलालित्य, श्रवणीय शब्दविन्यास, स्वच्छन्द वचनविस्तार के साथ सुगम रीति से कथाबोध हो जाता है। कवि ने इस काव्य के भाषाप्रवाह को उतना ही प्रवाहित किया है जिससे रसवृक्ष सींचा तो गया है परन्तु डुबाया नहीं गया है। दण्डी के दशकुमारचरित में आदि में ही इतनी घटनाओं का अवतारण हुआ है कि पाठक के लिए उनका अवधारण कठिन है। भाषा का प्रवाह एवं पदलालित्य भी प्रारम्भ में जितना प्रदर्शित हुआ है वह उत्तरोत्तर क्षीण ही होता गया है और अंत में कथानक का अस्थिपंजर ही दिखाई देता है परन्तु गद्यचिन्तामणि में ऐसी बात नहीं है। इसमें भाषा का प्रवाह आदि से अन्त तक अजस्र प्रवाहित है।[1]

इस काव्यग्रन्थ के प्रथम सम्पादक स्वर्गीय पं० कुप्पुस्वामी ने इसकी विशिष्टताओं को इन पंक्तियों में प्रकट किया है :[2]

"अस्य काव्यपथे पदानां लालित्यं, श्राव्यः शब्दसंनिवेशः, निरर्गला वाग्वैखरी, सुगमः कथासारावगमश्चित्त-विस्मापिका कल्पनाश्चेतः प्रसादजनको धर्मोपदेशो, धर्माविरुद्धा नीतयो, दुष्कर्मणो विषयफलावाप्तिरिति विलसन्ति विशिष्टगुणाः।"

अर्थात् इस काव्य में पदों की सुन्दरता, श्रवणीय शब्दों की रचना, अप्रतिहत वाणी, सरल कथासार, चित्त को आश्चर्य में डालने वाली कल्पनाएं, हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला धर्मोपदेश, धर्म से अविरुद्ध नीतियाँ और दुष्कर्म के फल की प्राप्ति आदि विशिष्ट गुण सुशोभित हैं।

इस काव्य में तत्कालीन सांस्कृतिक चित्रण, नाना प्रकार के वाद्य, वस्त्र, भोजनगृहवर्णन, आकाश में उड़ने के यंत्र, कन्दुक-क्रीड़ा आदि का बड़ा मनोहारी

१. इस काव्य की अन्य विशेषताओं के लिए गुरु गोपालदास बरैया स्मृति-ग्रन्थ, पृ० ४७४-४८३ में प्रकाशित पं० पन्नालाल साहित्याचार्य का लेख 'गद्यचिन्तामणि परिशीलन' देखें।

२. गद्यचिन्तामणि, श्रीरंगम्, प्रस्तावना, पृ० ९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णनमिलता है। आचार्य आर्यनन्दि का जीवंधर को शिक्षान्त उपदेश कादम्बरी में शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये उपदेश की याद दिलाता है।

रचयिता और रचनाकाल—इसके रचयिता और क्षत्रचूडामणि के रचयिता एक ही व्यक्ति हैं—आचार्य वादीभसिंह अपरनाम ओडयदेव। इनका परिचय उक्त काव्य के प्रसंग में दिया गया है।

अन्य गद्यकाव्यों में सिद्धसेनगणिकृत बंधुमती नामक आख्यायिका का भी उल्लेख मिलता है पर वह **अद्यावधि** उपलब्ध नहीं है।

चम्पूकाव्य :

मध्यकालीन भारतीय जनरुचि ने गद्य-पद्य की मिश्रण शैली में एक ऐसी साहित्यविधा को जन्म दिया जिसे चम्पू कहते हैं। वैसे पश्चात्कालीन संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने इस विधा को स्वीकार कर 'गद्य-पद्यमयी वाणी चम्पू' इस प्रकार लक्षण किया है पर यथार्थ में चम्पू शब्द संस्कृत का न होकर द्रविड भाषा[1] का है। धारवाड़ निवासी कवि द० रा० वेन्द्रे का मत है कि कन्नड और तुलु भाषाओं में मूल शब्द केन-चेन केंपु और चेम्पु के रूप में निष्पन्न होकर सुन्दर और मनोहर अर्थ का बोध कराते हैं। गद्य-पद्यमिश्रित काव्य विशेष को जनता ने सर्वप्रथम सुन्दर एवं मनोहर अर्थ में चेम्पु के नाम से पुकारा होगा और वही बाद में रूढ़िबल से चेम्पु या चम्पु के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उक्त कवि का यह भी मत है कि चम्पू का सीधा सम्बन्ध जैन तीर्थंकरों के पंचकल्याणों से है और पंच-पंच शब्द ही गम्-गम् गम्पू की तरह चम्पू बन गया। संस्कृत साहित्यक्षेत्र के लिए यह जैनों की अनुपम देन है। कन्नड में चम्पूकाव्य के रचयिता प्रसिद्ध जैन कवि पम्प, पोन्न और रन्न हैं जो संस्कृत में उपलब्ध चम्पुओं से पहले रचे गये थे। कन्नड में इस साहित्य की सृष्टि अवश्य ही ८-९वीं शताब्दी में हो गई थी।

१०वीं शताब्दी में राष्ट्रकूट नरेशों के राज्यकाल में संस्कृत के प्रथम चम्पुओं की—पहले त्रिविक्रमभट्टकृत नलचम्पू (सन् ९१५) और बाद में सोमदेवकृत जैन चम्पू 'यशस्तिलक' (सन् ९५९ ई०) की—रचना हुई थी।

जैन चम्पूकाव्यों में अब तक ३-४ कृतियाँ ही उपलब्ध हो सकी हैं। उनका क्रमशः संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:

---

१. मरुधरकेशरी अभिनन्दन ग्रन्थ, जोधपुर, वि० सं० २०२५, पृ० २७९-८१ में पं० के० भुजबली शास्त्री का लेख.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुवलयमाला :

यह महाराष्ट्री प्राकृत का गद्य-पद्यमिश्रित चम्पू है। इसका परिचय हम कथा-साहित्य में दे आये हैं।

यशस्तिलकचम्पू :

यह[1] चम्पूविधा का विकसित और प्रौढ़ रूप है जिसकी कोटि का संस्कृत साहित्य में कोई दूसरा काव्य नहीं है। यह चम्पू न केवल गद्य-पद्य का श्रेष्ठ नमूना है बल्कि जैन और अजैन धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का भण्डार, राजतन्त्र का अनुपम ग्रंथ, विविध छन्दों का निधान, प्राचीन अनेक कहानियों, दृष्टान्तों और उद्धरणों का संग्रहालय और अनेक नवीन शब्दों का कोश है। सोमदेव की यह कृति उनकी साहित्यिक प्रतिभा और कविहृदय से सम्पन्न विशाल पाण्डित्य की द्योतक है।

इस चम्पू में जैन पुराणों में वर्णित एवं जैन कवियों के लिए अतिप्रिय यशोधर नृप की कथा को लिया गया है, जो घरेलू दुर्घटना पर आश्रित एक यथार्थ कहानी है। इस दुःखान्त घटना के चारों ओर एक प्रकार से नैतिक एवं धार्मिक उपदेशों का जाल बुना गया है। सोमदेव के कवित्व की यह सबसे बड़ी कसौटी थी कि वे व्यभिचार और हत्या पर आश्रित एक कथा पर सुबन्धु और बाण की शैली पर उपन्यास लिखने का साहस कर उसमें सफल हुए। वास्तव में समस्त संस्कृत साहित्य में यशस्तिलक ही अकेला ऐसा काव्य है जो दाम्पत्य जीवन की घटना को ले, उसके कृत्रिम प्रेम भाग को छोड़, भाग्यचक्र के खेल और जीवन के कठोर सत्यों का निरूपण करता है।

यह काव्य आठ आश्वासों में विभक्त है। घटनास्थल योधेय देश का राजपुर नामक नगर है। वहाँ राजा मारिदत्त वीरवैभव तान्त्रिक के प्रभाव से चण्डमारि देवी के मन्दिर में प्रत्येक वर्ग के प्राणियों के जोड़े बलि देने को

१. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से २ भागों में प्रकाशित, १९०१-३; पं० सुन्दरलाल जैन द्वारा संस्कृत-हिन्दी टीका के साथ महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी से १९६० और १९७१ में प्रकाशित; इसके सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययन के लिए देखें—जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर से १९४५ में प्रकाशित प्रो० कृष्णकान्त हान्दिकी का 'यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर' तथा पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी से १९६७ में प्रकाशित डा० गोकुलचन्द्र जैन का 'यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन'.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्यत था। नरयुगल के रूप में नवदीक्षित जैन यति अभयरुचि और क्षुल्लिका अभयमति वहाँ लाये जाते हैं। राजा में उनके प्रति स्नेहभाव जागता है (भाग्य से वे दोनों उसकी बहन के पुत्र-पुत्री थे, जिन्हें वह तत्काल पहचान न सका था)। वह उन दोनों बालयतियों को सिंहासन देता है। दोनों एक-एक कर उस राजा की प्रशंसा कर उसे जैनधर्म की ओर झुका लेते हैं (१ आश्वास)। उनमें से बालकयति अभयरुचि मारिदत्त नृप को अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त कहता है और यशोधर नृप की कथा[1] सुनाता है। यह कथा पाँचवे आश्वास में समाप्त होती है। इसके बाद हिंसारत उस राजा में वह अहिंसा-धर्म की ज्ञानज्योति जगाता है और ६-८ तीन आश्वासों में उपदेश के रूप में रोचक शैली से श्रावकाचार का वर्णन किया गया है। उक्त अंश को 'उपासकाध्ययन'[2] नाम से भी कहा जाता है। चम्पू के अन्त में दिखाया गया है कि राजा मारिदत्त और उसकी कुलदेवी चण्डमारि जैनधर्म में दीक्षित हो गये।

उक्त यशोधर की कथा का स्रोत पूर्ववर्ती रचना प्रभंजनकृत यशोधरचरित और हरिभद्रसूरिकृत समराइच्चकहा के चतुर्थ भव में मिलता है, परन्तु कवि ने उसमें कई परिवर्तन किये हैं। हरिभद्र की रचना में मारिदत्त और युगल मनुष्यों की बलि की कथा नहीं दी तथा दोनों में प्रधान पात्रों के नामों में भी अन्तर है। उक्त चम्पू के लेखक ने कथा को साधन बना कर ब्राह्मणधर्म पर आक्षेप किये हैं जबकि हरिभद्र के कथानक में इनका एकदम अभाव है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता आचार्य सोमदेवसूरि[3] हैं जो देवसंघ के यशोदेव के शिष्य नेमिदेव के शिष्य थे। ये बहुश्रुत विद्वान् थे, यह उनका उक्त ग्रन्थ पढ़ने से ज्ञात होता है। इन्होंने न्याय और राजनीतिविषयक कई ग्रन्थ लिखे थे पर उक्त चम्पू के अतिरिक्त दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ नीतिवाक्या-

---

१. इस कथा पर लिखे गये विस्तृत साहित्य का हम पूर्व में परिचय दे आये हैं।

२. यह अंश उक्त नाम से पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं अनूदित तथा संस्कृत टीका सहित भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९४४ में प्रकाशित हुआ है। उसकी भूमिका पठनीय है।

३. इनके विशेष परिचय के लिए देखें—पं० नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० १९० आदि; उपासकाध्ययन (भारतीय ज्ञानपीठ), प्रस्तावना, पृ० १३-२६; यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० २७-४१; प्रो० कृष्णकान्त हान्दिकी, यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर, प्रथम अध्याय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मृत हो उपलब्ध है। 'नीतिवाक्यामृत' की प्रशस्ति में जिस 'यशोधर-चरित' का उल्लेख है वही यह यशस्तिलकचम्पू है। इसमें भारवि, भवभूति, भर्तृहरि, गुणाढ्य, व्यास, भास, कालिदास, बाण आदि कवियों, गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, पराशर, भीष्म, भारद्वाज आदि राजनीतिशास्त्रप्रणेताओं तथा कई वैयाकरणों का उल्लेख है। यशोधर नृप के चरित्रचित्रण में कवि ने राजनीति की विस्तृत एवं विशद चर्चा की है। यशस्तिलक का तृतीय आश्वास राजनीतिक तत्त्वों से भरा पड़ा है। इस चम्पू की रचना राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण के सामन्त चालुक्य अरिकेशरी तृतीय के राज्यकाल में हुई थी।

रचनाकाल वि० सं० १०१६ (सन् ९५९) दिया गया है। इसमें तत्कालीन संस्कृति एवं सभ्यता की अनेकों बातों का सुन्दर वर्णन है।

प्रो० हान्दिकी के शब्दों में—'भारतीय साहित्य के इतिहास में सोमदेव प्रमुख बहुमुखी प्रतिभाओं में से एक थे और उनका अनुपम ग्रन्थ यशस्तिलक उनकी अनेकविध प्रतिभा का परिचायक है। वे गद्य-पद्य की रचना में बड़े कुशल, बहुस्मृतिसम्पन्न, जैन सिद्धान्त के पारगामी और समकालीन दर्शनों के अच्छे समालोचक थे। वे राजनीति के गम्भीर पण्डित थे तथा इस विषय में उनके दोनों ग्रन्थ यशस्तिलक और नीतिवाक्यामृत एक-दूसरे के पूरक हैं। वे प्राचीन जनकथासाहित्य एवं धार्मिक कथाओं के अच्छे सम्पादक के साथ-साथ नाटकीय संवादों को प्रस्तुत करने में बड़े ही प्रवीण थे। वे मानव और उसके स्वभाव की विविधता के अच्छे अध्येता थे। इस तरह संस्कृत साहित्य में सोमदेव की स्थिति सचमुच अतुलनीय है।'

इस चम्पू पर श्रीदेवरचित पंजिका उपलब्ध है और पांच आश्वासों पर श्रुतसागर भट्टारककृत संस्कृत टीका तथा ६-८ आश्वासों पर पं० जिनदास फडकुले कृत उपासकाध्ययन-टीका प्रकाशित हो चुकी है।

जीवन्धरचम्पू :

इस ग्रन्थ[1] के पुष्पिका-वाक्यों में सर्वत्र ग्रन्थ का नाम 'चम्पुजीवन्धर'

१. टी० एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री द्वारा सम्पादित-प्रकाशित, श्रीरंगम्, १९०५; पं० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से सं० २०१५ में प्रकाशित—इसमें संस्कृत में कौमुदी टीका तथा हिन्दी अनुवाद दिया गया है। इस संस्करण की ४४ पृ० की प्रस्तावना पठनीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है पर विद्वज्जन इसे उपर्युक्त नाम से कहते हैं। इसमें जीवन्धर के चरित का वर्णन है। यह संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कुछ चम्पूकाव्यों में से एक है तथा जैन साहित्य के चम्पुओं में यशस्तिलकचम्पू के बाद इसी का नाम आता है। यह ११ लम्भों में विभक्त है। इसकी कथा का आधार गद्यचिन्तामणि एवं क्षत्रचूडामणि है जिनमें जीवन्धर की कथा गद्य और पद्य में विस्तार से वर्णित है। इसमें प्रत्येक लम्भ की कथावस्तु तथा पात्रों के नाम आदि उक्त दोनों ग्रन्थों से मिलते-जुलते हैं। इस चम्पू में वह वैशिष्ट्य तो नहीं है जो यशस्तिलकचम्पू में मिलता है परन्तु इसकी रचना सरसता और सरलता की दृष्टि से प्रशंसनीय है। इसमें अलंकारों की योजना विशेषरूप से हृदय को आकृष्ट करती है। पद्यों की अपेक्षा गद्य की रचना अधिक पाण्डित्यपूर्ण है। कितने ही गद्य इतने कौतुकभरे हैं कि उन्हें पढ़कर कवि की प्रतिभा का चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। नगरीवर्णन, राजवर्णन, राज्ञीवर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय, वनक्रीड़ा, जलक्रीड़ा, युद्ध आदि वर्णनों को कवि ने यथास्थान सजाकर रखा है।

कुछ अलंकारों की छटा यहाँ द्रष्टव्य है :

"यश्च किल संक्रन्दन इवानन्दितसुमनोगणः, अन्तक इव महिषीसमधिष्ठितः, वरुण इवाशान्तरक्षणः, पवन इव पद्मामोदरुचिरः, हर इव महासेनानुयातः,.........भद्रगणोऽप्यनागो, विबुधपतिरपि कुलीनः, सुवर्णधरोऽप्यनादित्यागः, सरसार्थपोषकवचनोऽपि नरसार्थपोषकवचनः।"[1]

यहाँ श्लिष्ट पूर्णोपमालंकार और विरोधाभासालंकार दर्शनीय है।

"यस्य प्रतिपक्षलोलाक्षीणां काननवीथिकादम्बिनीशम्पायमानतनुसम्पदां वदनेषु वारिजभ्रान्त्या पपात हंसमाला, तां कराङ्गुलीभिर्निवारयन्तीनां तासां करपल्लवानि चकषुः कीरशावकाः.........ततश्चलित वेणीनामेणाक्षीणां नागभ्रान्त्या कर्षन्तिस्म वेणीं मयूराः।"[2]

इस गद्यांश में भ्रांतिमदलंकार है और करुणरस का परिपोष भी दर्शनीय है। इस गद्यांश का पूरा भाग उपलब्ध संस्कृत साहित्य में अनूठा है।

१. भारतीय ज्ञानपीठ संस्करण, पृ० ८.
२. वही, पृ० ११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस चम्पू के पद्यों, गद्यों और भावों से सादृश्य रखने वाले अंशों का तुलनात्मक अध्ययन स्व० कुप्पुस्वामी शास्त्री ने अपने सम्पादित इस ग्रन्थ के संस्करण में तथा क्षत्रचूडामणि के संस्करण में अच्छी तरह किया है जो वहीं से द्रष्टव्य है। कुछ उल्लेखों का भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित संस्करण की भूमिका में भी दिग्दर्शन कराया गया है। लगता है कि इस काव्य की रचना गद्यचिन्तामणि और क्षत्रचूडामणि को सामने रख कर की गई है। अन्य कृतियों की भाँति इस कृतिमें भी रघुवंश, कुमारसंभव, शिशुपालवध और नैषध के प्रभाव द्रष्टव्य हैं।

कर्ता एवं रचनाकाल—इस चम्पू और धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य के कर्ता एक ही महाकवि हरिचन्द्र माने जाते हैं। दोनों काव्यों के भावों तथा शब्दों में जो समानता है तथा पद-पद पर सादृश्य, अलंकारयोजना और शब्दविन्यास की जो एक-सी शैली है वह पर्याप्त रूप से सिद्ध करती है कि दोनों का कर्ता एक है।[1] जीवन्धरचम्पू की हस्तलिखित प्रति के पुष्पिका-वाक्यों[2] में इसके कर्त्ता हरिचन्द्र का उल्लेख मिलता है। ग्रन्थान्त में ग्रन्थकर्ता ने स्वयं अपने नाम का उल्लेख किया है।[3]

पुरुदेवचम्पू :

यह चम्पू[4] दस स्तबकों में विभाजित है। इसमें पुरुदेव अर्थात् भगवान् आदिनाथ का चरित वर्णित है। इसकी रचना में अर्थगांभीर्य की अपेक्षा शब्दों के चयन में विशेष ध्यान दिया गया है। सर्वत्र अर्थालंकार की अपेक्षा शब्दालंकार का प्रयोग अधिक दिखाई पड़ता है। इस ग्रन्थ के अन्तःपरीक्षण से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के पद्य भाग की रचना में जिनसेनाचार्य के

---

१. प्रस्तावना में सादृश्यपरक अनेक अवतरण द्रष्टव्य हैं, पृ० ३७-४०.

२. इति महाकविहरिचन्द्रविरचिते...... ।

३. सिद्धः श्रीहरिचन्द्रवाङ्मय आदि, पद्य ५८, लम्भ ११.

४. भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९७२, पं० पन्नालाल साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित एवं अनूदित; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई (सं० १९८५) से पं० फड़कुले शास्त्री द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित; जिनरत्नकोश, पृ० २५३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदिपुराण (महापुराण) का अच्छा उपयोग किया गया है क्योंकि ग्रंथ में उक्त पुराण के कहीं तो पूरे श्लोक और कहीं एक या दो चरण ज्यों के त्यों काव्य के अंग के रूप में ग्रहण कर लिये गये हैं। इसके गद्य सरल हैं। कठिन गद्यों को समझाने के लिए सहायक टीका भी दी गई है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता कवि अर्हद्दास हैं। इनका परिचय इनके अन्य ग्रंथ मुनिसुव्रतकाव्य के प्रसंग में दिया गया है।[१] अर्हद्दास का समय वि० सं० १३२५ के लगभग माना गया है। इसलिए यह चौदहवीं शताब्दी के पूर्व भाग की रचना है।

चम्पूमण्डन :

यह[२] आठ पटलों में विभाजित है। इसमें द्रौपदी और पांडवों की कथा वर्णित है। यह गद्य-पद्य की सुललित शैली में लिखा गया लघु चम्पूकाव्य है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता मालवा के प्रसिद्ध कवि मण्डन है जिन्होंने कादम्बरीमण्डन आदि ग्रंथ लिखे हैं। ये १५वीं शताब्दी के कवि थे।

इसकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति सं० १५०४ में लिखी मिलती है।

अन्य चम्पुओं में जयशेखरसूरि का नलदमयन्तीचम्पू उल्लेखनीय है।

गीतिकाव्य :

यद्यपि संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने गीतिकाव्य नाम से कोई भी काव्य-विधा नहीं मानी, परन्तु संस्कृत में गीति काव्य हैं। गीतिकाव्य उसे कहते हैं जिसमें गेयरूप से रसपूर्ण एक भाव की अभिव्यक्ति हो। पाश्चात्यशास्त्रियों और हिन्दी के काव्यमर्मज्ञों ने गीतिकाव्यों पर पूर्ण विचार प्रकट किये हैं। उनकी पर्यालोचना करने से कुछ प्रमुख तत्त्व इस प्रकार सामने आते हैं : १. अन्तर्वृत्ति की प्रधानता, २. संगीतात्मकता, ३. निरपेक्षता, ४. रसात्मकता, ५. रागात्मक अनुभूतियों की सघनता, ६. भावसान्द्रता, ७. चित्रात्मकता, ८. समाहित प्रभाव, ९. मार्मिकता, १०. संक्षिप्तता, ११. स्वाभाविक अभिव्यक्ति और १२. सहज अन्तःप्रेरणा।

---

१. तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य (डा० श्यामशंकर दीक्षित), पृ० ३२५-३२६ में कविपरिचय द्रष्टव्य है।

२. हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थमाला, पाटन (गुजरात), १९१८; जिनरत्नकोश, पृ० १२१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्कृत में प्रबंधात्मक गीतिकाव्य और मुक्तक गीतिकाव्य ये दो प्रकार मिलते हैं। प्रबंधात्मक गीतिकाव्य मेघदूत या उसके अनुसरण पर लिखे गये अनेक संदेशकाव्य हैं। पर अधिकांश गीतिकाव्य मुक्तक शैली में लिखे गये हैं। मुक्तक काव्य के दो भेद हैं: १. रसमुक्तक और २. रसेतरमुक्तक। रस-मुक्तक में मेघदूत, पार्श्वाभ्युदय, चौरपंचाशिका, गीतगोविन्द, गीतवीतराग काव्य आते हैं। रसेतर गीति-साहित्य में स्तोत्र, शतक आदि साहित्य का स्थान है।

यहाँ हम गीतिकाव्य के क्षेत्र में जैन कवियों के योगदान की चर्चा करेंगे।

रसमुक्तक पाठ्य गीतिकाव्य—दूत या सन्देशकाव्य (खण्डकाव्य):

इस विधा के साहित्य ने संस्कृत साहित्य में गीतिकाव्य (Lyric Poetry) के अभाव की पूर्ति की है। दूतकाव्य विरह या विप्रलंभ शृंगार की पृष्ठभूमि लेकर लिखे गये हैं। इनमें नायक द्वारा नायिका के प्रति या नायिका द्वारा नायक के प्रति किसी दूत के माध्यम से प्रेमसन्देश भेजा जाता है। दूत का कार्य कोई पुरुष, पक्षी, भ्रमर, मेघ, पवन, चन्द्रमा, चरणचिह्न, मन या शील आदि तत्त्वों द्वारा कराया जाता है। इस शैली में दो तत्त्व देखे जाते हैं: एक वियोग और दूसरा प्रकृति या भावना का मानवीकरण। यद्यपि प्रसंगवशात् दूतकाव्यों में नगर, पर्वत, नदी, सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, वसन्त और जल-क्रीड़ा आदि का वर्णन रहता है पर वह इतना संक्षिप्त होता है कि काव्य बड़े आकार का नहीं बन पाता इसलिए इन्हें हम खण्डकाव्य या गीतिकाव्य कहते हैं।

वैसे तो भावनाक्रान्त मानस द्वारा प्राणिविशेष को दूत बनाकर प्रेयसी[1] के पास सन्देश भेजने की सूझ प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलती है पर महाकवि कालिदास का मेघदूत इसका अनोखा उदाहरण है। संस्कृत के दूतकाव्यों का प्रारम्भ भी इसी से होता है। बाद के दूतकाव्यों की रचना में उक्त काव्य से सहायता ग्रहण करने के संकेत दिखाई देते हैं।

जैन कवियों ने दूतकाव्य के क्षेत्र और वस्तुकथा को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। पहला तो विप्रलंभ शृंगार के स्थान में शान्तरस

१. सरमा-पणिसंवाद, ऋग्वेद, मण्डल १०, अनुवाक ८, सूक्त १०८, मंत्र १-११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्रतिपादन में, इस प्रकार की सर्वप्रथम रचना जिनसेन का पार्श्वाभ्युदय है; दूसरा दूतकाव्यों द्वारा धार्मिक नियमों और तात्त्विक सिद्धान्तों के उपदेश में; तीसरा काव्यात्मक पत्ररचना के रूप में, इन पत्रों को विज्ञप्तिपत्र कहते हैं। ये विज्ञप्तिपत्र पर्यूषण पर्व के समय श्वेताम्बर जैन साधुओं द्वारा अपने गुरुओं को लिखे पत्र हैं जो दूतकाव्य के ढंग से लिखे गये हैं। इस प्रकार के काव्य १७वीं और बाद की सदियों में विशेष रूप से लिखे गये हैं।

दूतकाव्य में जो ये नूतन संस्कार किये गये हैं उनसे प्रकट होता है कि जैनों में दूतकाव्य बहुत प्रिय था। लोकमानस को पहचानने वाले जैन कवियों ने इसीलिए अपने नीरस धर्मसिद्धान्तों और नियमों का प्रचार करने के लिए इस विधा का आश्रय लिया है। इस कार्य में भी उन्होंने साहित्यिक सौन्दर्य और सरसता की क्षति नहीं होने दी।

जैनों के सभी दूतकाव्य संस्कृत में मिले हैं, प्राकृत में एक भी नहीं। प्रधान दूतकाव्यों में पार्श्वनाथ और नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवनवृत्त अंकित हैं। कुछ जैन कवियों ने मेघदूत के छन्दों के अन्तिम या प्रथम पाद को लेकर समस्यापूर्ति की है। इस प्रकार का प्राचीन दूतकाव्य जिनसेनकृत पार्श्वाभ्युदय (सन् ७८३ ई० से पूर्व) है। पीछे १३वीं सदी से अब तक जैन कवियों ने इस दूत परम्परा का पर्याप्त विकास एवं पल्लवन किया है। इनमें उल्लेखनीय रचनाएं हैं: विक्रम का नेमिदूत (ई० १३वीं शती का अन्तिम चरण), मेरुतुंग का जैनमेघदूत (१३४६-१४१४ ई०), चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत (१५वीं शती), वादिचन्द्र का पवनदूत (१७वीं शती), विनयविजयगणि का इन्दुदूत (१८वीं शती), मेघविजय का मेघदूतसमस्यालेख (१८वीं शती), अज्ञातकर्तृक चेतोदूत एवं विमलकीर्तिगणि का चन्द्रदूत।

जैन दूतकाव्यों का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत है:

पार्श्वाभ्युदय:

इस काव्य में ४ सर्ग हैं।[1] प्रथम में ११८ पद्य, द्वितीय में ११८, तृतीय में ५७ और चतुर्थ में ७१ इस प्रकार ४ सर्गों में ३६४ पद्य हैं। इसका प्रत्येक पद्य मेघदूत के क्रम से पद्य के एक चरण या दो चरणों को समस्या के रूप में लेकर

१. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९, टीकासहित; बालबोधिनी टीका एवं अंग्रेजी अनुवादसहित, संपा०—मो० गो० कोठारी, प्रकाशक—गुलाबचन्द्र हीराचन्द्र कंस्ट्रक्शन हाउस, बेलार्ड इस्टेट, बम्बई, १९६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूरा किया गया है। मेघदूत के समान ही इसमें मन्दाक्रान्ता छन्द का व्यवहार किया गया है और वैसी ही काव्य की भाषा भी प्रौढ़ है, पर समस्यापूर्ति के रूप में काव्य की शैली जटिल हो गई है जिससे पंक्तियों के भाव में यत्र-तत्र विपर्यस्तता आ गई है।

इस काव्य का वर्ण्यविषय २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के ऊपर घोर उपसर्ग से सम्बद्ध है जिसमें उपसर्ग करने वाले शम्बर यक्ष के पूर्वजन्म के कथानकों से जोड़कर कथावस्तु[1] दी गई है। पुराणों में वर्णित पार्श्वनाथ के चरित्र को अनेक स्थलों में कवि ने आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया है फिर भी मेघदूत के उद्धृत अंश के प्रचलित अर्थ को विद्वान् कवि ने अपने स्वतंत्र कथानक में प्रसंगोचित अर्थ में प्रयुक्त कर बड़ी विलक्षणता का परिचय दिया है। एक-दो या दस-पचीस पंक्तियों की समस्या एक बात हो सकती है, पर सम्पूर्ण काव्य को इस तरह आत्मसात् करना सचमुच में विलक्षण ही है।[2]

इस काव्य में समस्यापूर्ति का आवेष्टन तीन रूपों में रखा गया है: १. पादवेष्टित, २. अर्धवेष्टित और ३. अन्तरितावेष्टित। अन्तरितावेष्टित में भी एकान्तरित, द्व्यन्तरित आदि कई प्रकार हैं। प्रथम पादवेष्टित में मेघदूत के पद्य का कोई एक चरण लिया गया है, द्वितीय अर्धवेष्टित में कोई दो चरण और तृतीय अन्तरावेष्टित में मेघदूत के पद्य के प्रथम चतुर्थ या द्वितीय-चतुर्थ या प्रथम-तृतीय या द्वितीय-तृतीय चरणों को रखा गया है। तीनों प्रकार के उदाहरण अन्यत्र द्रष्टव्य हैं।[3] विस्तारभय से यहां देना सम्भव नहीं।

वैसे पार्श्वाभ्युदय मेघदूत की समस्यापूर्ति में लिखा गया है, इससे उसे इस श्रेणी में रख सकते हैं पर इसमें दूत या सन्देश शैली के कोई लक्षण नहीं

---

१. विस्तृत कथावस्तु के लिए देखें—डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४७३-४७४.

२. प्रो० काशीनाथ बापूजी पाठक का कहना है :

The first place among Indian poets is allotted to Kalidas by consent of all. Jinasena, however, claims to be considered a higher genius than the author of the Cloud Messenger (मेघदूत).

३. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४७१-४७७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इसे हम एक अच्छा पादपूर्तिकाव्य कह सकते हैं। प्रस्तुत काव्य में जैन धर्मविषयक कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध जिनसेनाचार्य हैं जिन्होंने महापुराण (आदिपुराण) की रचना की थी। उक्त प्रसंग में उनका विस्तृत परिचय दिया गया है। पार्श्वाभ्युदय का उल्लेख द्वितीय जिनसेन ने हरिवंश-पुराण (शक सं० ७०५, सन् ७८३ ई०) में किया है, अतः यह काव्य उससे पूर्व अवश्य रचा गया था।

इस पर योगिराट् पण्डिताचार्यकृत टीका (सन् १४३२) मिलती है जिसका नाम सुबोधिका है। उसमें उक्त काव्य की बहुत प्रशंसा की गई है।

नेमिदूत :

इसमें[1] १२६ पद्य हैं जिनकी रचना में मेघदूत काव्य के अन्तिम चरण की समस्यापूर्ति की गई है। इसमें २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ और राजीमती या राजुल के विरह-प्रसंग का वर्णन है। वस्तुतः यह मेघदूत पर आधृत एक मौलिक काव्य है। इसके नामकरण का यह अर्थ नहीं कि इसमें नेमिनाथ ने दूत का काम किया है, बल्कि आराधक नायक नेमि के लक्ष्य से दूत (वृद्ध ब्राह्मण) भेजने के कारण इसका नेमिदूत नामकरण हुआ है। मेघदूत में दूत नायक की ओर से भेजा गया है तो नेमिदूत में नायिका की ओर से।

घटना-प्रसंग यह है कि नेमिनाथ अपने विवाह-भोज के लिए बाड़े में एकत्र किये गये पशुओं का करुणक्रन्दन सुनकर विरक्त हो रैवतक पर्वत पर योगी बन जाते हैं। दुलहिन राजीमती एक वृद्ध ब्राह्मण को दूत बनाकर उन्हें मनाने के लिए भेजती है। यहां द्वारिका से रैवतक पर्वत तक का सुन्दर वर्णन किया गया है। अन्त में राजीमती का विरह शमभाव में परिणत हो जाता है।

सखीसहित राजीमती के नेमिनाथ को गृही बनाने के प्रयत्नों का वर्णन ही संक्षेप में इस काव्य की विषयवस्तु है।

यह काव्य अपनी भाषा, भाव और पद्य रचना में तथा काव्यगुणों से बड़ा ही सुन्दर बन गया है। कवि ने विरही जनों की यथार्थ दुःख-अवस्था का जो वर्णन किया है उससे मालूम होता है कि वे ऐसे अनुभवों के धनी थे।

---

१. कोटा प्रकाशन, वि०सं० २००५; काव्यमाला, द्वितीय गुच्छक, पृ० ८५-१०४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाठक पद्य-पद्य में वर्णित राजीमती की दुःखित अवस्था में तन्मय होकर इस दुःख को स्वयं अनुभव करने लगता है। शान्तरसप्रधान होने पर भी नेमिदूत सन्देशकाव्य की अपेक्षा विरहकाव्य अधिक है। इसमें काव्यचमत्कार, उक्तिवैचित्र्य और रागात्मक वृत्ति की गंभीरता का मधुर एवं करुण परिपाक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके कर्ता खम्भातनिवासी सांगण के पुत्र कवि विक्रम हैं। ये किस सम्प्रदाय के थे, यह विवादग्रस्त है।[१] स्व० पं० नाथूराम प्रेमी इन्हें हूंबड (दिग०) जाति का मानते हैं तो मुनि विनयसागरजी खरतरगच्छाधीश जिनेश्वरसूरि के शिष्य होने से हूम्बड (श्वेताम्बराम्नायी) बतलाते हैं। नेमिदूत के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि यह कृति असाम्प्रदायिक है। इसमें श्वेताम्बर या दिगम्बर आम्नाय की कोई बात नहीं कही गई है।

इस काव्य की प्राचीनतम प्रति वि० सं० १४७२ की और दूसरी वि० सं० १५१९ की मिली है अतः वि० सं० १४७२ के पूर्व कवि को मानने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। प्रेमीजी के मत से कवि १३वीं शती और विनयसागर के मत से १४वीं शती में हुए थे।

जैनमेघदूत :

नेमिनाथ और राजीमती के प्रसंग को लेकर यह दूसरा दूतकाव्य है।[२] इसमें कवि ने दूसरे दूतकाव्यों की तरह मेघदूत की समस्यापूर्ति का आश्रय नहीं लिया। यह नामसाम्य के अतिरिक्त शैली, रचना, विभाग आदि अनेक बातों में स्वतंत्र है। इसमें ४ सर्ग हैं और प्रत्येक में क्रमशः ५०, ४९, ५५ और ४२ पद्य हैं।

कथावस्तु संक्षेप में इस प्रकार है—नेमिकुमार पशुओं का करुण चीत्कार सुनकर वैवाहिक वेष-भूषा का त्याग कर मार्ग से ही रैवतक (गिरनार) पर मुनि बन तपस्या करने चले गये। राजीमती, जिसके साथ उनका विवाह हो रहा था, उक्त समाचार से मूर्च्छित हो गई। सखियों द्वारा उपचार करने पर उसे

---

१. विवेचन के लिए देखें—संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४७८-४७९.

२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होश आया। उसने अपने समक्ष उपस्थित मेघ को अपने विरक्त पति का परिचय देकर प्रियतम को शान्त करने, रिझाने के लिए दूत के रूप में चुना और अपनी दुःखित अवस्था का वर्णन कर अपने प्राणनाथ को भेजने वाला सन्देश सुनाया। इस सन्देश को सुनकर सखियां राजीमती को समझाती हैं कि नेमिकुमार मनुष्यभव को सफल बनाने के लिए वीतरागी हुए हैं, वे अब अनुराग की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते। कहां मेघ, कहाँ तुम्हारा सन्देश और कहां उनकी वीतरागी प्रवृत्ति ? इन सबका मेल नहीं बैठता। अन्त में राजीमती शोक त्यागकर नेमिनाथ के पास जाकर साध्वी बन जाती है।

पदलालित्य, अलंकारबाहुल्य और प्रासादिकता के कारण यह उच्चकोटि का काव्य है पर श्लेषपदों और व्याकरण के क्लिष्ट प्रयोगों के कारण यह काव्य दुरूह हो गया है। इसमें मेघ और नेमिनाथ का परिचय तो दिया गया है पर भौगोलिक स्थानों के निर्देश का अभाव है।

रचयिता और रचनाकाल—इस दूतकाव्य के रचयिता मेरुतुंग आचार्य हैं जो अञ्चलगच्छीय महेन्द्रप्रभसूरि के शिष्य थे। ये प्रबंधचिन्तामणि के रचयिता मेरुतुंग से भिन्न हैं। इस काव्य का रचनासमय तो कहीं नहीं दिया गया, पर मेरुतुंग का समय वि० सं० १४०३ से १४७३ तक सिद्ध होता है। इस समय में कवि ने जैनमेघदूत, सप्ततिकाभाष्य, लघुशतपदी, धातुपारायण, षड्दर्शनसमुच्चय, बालबोधव्याकरण, सूरिमंत्रसारोद्धार आदि आठ ग्रन्थ लिखे थे।

इस पर शीलरत्नसूरिविरचित वृत्ति प्रकाशित है।[1]

शीलदूत :

यह[2] कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर बनाया गया है और उसके प्रत्येक पद्य के चौथे चरण को समस्यापूर्ति के रूप में अपनाया गया है। इसलिए इसका छन्द मन्दाक्रान्ता है। पद्य-संख्या १३१ है। इसमें स्थूलभद्र और कोशा वेश्या के प्रसिद्ध कथानक को लेकर स्थूलभद्र के ब्रह्मचर्य महाव्रत को

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९२८.

२. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, १९१५.; जिनरत्नकोश, पृ० ३८४; जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० ४६९.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार बनाकर उनके जगत् विस्मयकारी शील का वर्णन किया गया है। कोशा स्थूलभद्र को नानाभाँति से शील से च्युत करने का प्रयत्न करती है पर इसके बाद स्थूलभद्र के अनुपम उपदेशों से स्वयं शीलव्रत धारण कर लेती है।

शील जैसे भावात्मक तत्त्व को दूत का रूप देकर कवि ने अपनी मौलिक कल्पनाशक्ति का अच्छा परिचय दिया है। इसमें दीर्घसमास प्रायः नहीं हैं। अलंकारों में उत्प्रेक्षा की योजना दर्शनीय है। मेघदूत की श्रृंगारपरक पंक्तियों को शान्तरसपरक बनाने में कवि ने अद्भुत प्रतिभा दिखायी है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसकी रचना बृहद् तपागच्छ के आचार्य चारित्रसुन्दरगणि ने सं० १४८४ में खम्भात में की थी। चारित्रसुन्दरगणि ने अन्य ग्रन्थों में कुमारपालचरित, महीपालचरित एवं आचारोपदेश ग्रन्थ लिखे थे। इनका परिचय उनके अन्य काव्यों के प्रसंग में दिया गया है।

पवनदूत :

यह मेघदूत की समस्यापूर्ति न होकर एक स्वतंत्र कृति है पर इसे हम मेघदूत की छाया कह सकते हैं। इसमें १०१ मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं।[1]

इसमें मेघ के स्थान पर पवन को दूत बनाया गया है। इसकी कथावस्तु छोटी है : उज्जयिनी के एक नृप विजय की रानी तारा को अशनिवेग नामक विद्याधर हर ले जाता है। राजा अपनी प्रिया के पास पवन को दूत बनाकर अपने विरह-सन्देशों के साथ भेजता है। पवन भी साम, दाम, दण्ड और भेद के प्रयोग के साथ अन्त में तारा को लेकर विजय को सौंप देता है।

पवनदूत एक विरह-काव्य है। इसमें विप्रलम्भ-श्रृंगार का परिपाक खूब हुआ है। रचना में प्रसादगुण और भाषा में प्रवाह लाने में लेखक सफल रहा है। इसमें लेखक ने नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा भी दी है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता भट्टारक वादिचन्द्र (१७वीं शती) हैं। इन्होंने पार्श्वपुराण, पाण्डवपुराण, यशोधरचरित आदि अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। इनका परिचय पूर्व में दिया गया है।

---

१. **हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई से १९१४ में हिन्दी अनुवाद-सहित प्रकाशित; काव्यमाला, गुच्छक १३, पृ० ९-२४.**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७-२०वीं शती के दूतकाव्य :

१७वीं शती के मुनि विमलकीर्ति ने चन्द्रदूत नामक एक अन्य दूत-काव्य की रचना की जिसमें १६९ पद्य हैं। यह काव्य मेघदूत की पादपूर्ति के रूप में रचा गया है पर कवि ने कहीं-कहीं भावों के स्पष्टीकरणार्थ अधिक पद्य रचकर स्वतन्त्रता से भी काम लिया है। इसका वर्ण्यविषय यही है कि कवि ने चन्द्र को सम्बोधित कर शत्रुंजयतीर्थस्थ आदिजिन को अपनी वन्दना कहलाई है। पूर्ण काव्य पढ़ लेने के बाद भी यह ज्ञात नहीं होता कि कवि ने अपना नमस्कार चन्द्रमा को किस स्थान से कहलाया है। फिर भी रचना बड़ी भाव-पूर्ण और विद्वत्ता की परिचायक है। अनेकार्थ काव्य की दृष्टि से भी इस दूतकाव्य का महत्त्व है। इसके रचयिता विमलकीर्ति साधुसुन्दर[1] के शिष्य थे जो कि साधुकीर्ति पाठक के शिष्य थे। रचनाकाल वि० सं० १६८१ है।

१८वीं शती में हमें प्रमुख ३ दूतकाव्य मिलते हैं। प्रथम चेतोदूत, द्वितीय मेघदूतसमस्यालेख तथा तृतीय इन्दुदूत। प्रथम 'चेतोदूत'[2] में अज्ञात कवि अपने गुरु के चरणों की कृपादृष्टि को ही अपनी प्रेयसी के रूप में मानकर उसके पास अपने चित्र को दूत बनाकर भेजता है। इसमें गुरु के यश, विवेक और वैराग्य आदि का विस्तृत वर्णन है। इसमें १२९ मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं।

द्वितीय 'मेघदूतसमस्यालेख'[3] में उपाध्याय मेघविजय ने औरंगाबाद से अपने गुरु के चिरवियोग से व्यथित होकर उनके पास मेघ को दूत बनाकर भेजा है। मेघ गुरु के पास जिस प्रकार सन्देश लेकर जाता है उसी तरह प्रति-सन्देश लेकर लौट आता है। इसमें १३० मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं और अन्त में एक अनुष्टुभ्। इस काव्य में औरंगाबाद से देवपत्तन (गुजरात) तक के मार्ग का वर्णन आता है। विषय, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह काव्य सभी दूतकाव्यों से श्रेष्ठ है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता अनेक काव्यग्रन्थों के रचयिता विद्वान् महोपाध्याय मेघविजयजी हैं। इन्होंने कई समस्यापूर्तिकाव्य भी रचे हैं। इनका परिचय उनके अन्य ग्रन्थों के प्रसंग में दिया गया है। यह काव्य सं० १७२७ में पूर्ण हुआ था।

---

१. चन्द्रदूत, प्रशस्ति-पद्य १६७-१६८, जिनदत्त सूरि ज्ञानभण्डार, सूरत.
२. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७०.
३. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८वीं शती का तीसरा दूतकाव्य 'इन्दुदूत' है।[1] इसमें १३१ मन्दाक्रान्ता वृत्त हैं। यह कोई समस्यापूर्तिकाव्य नहीं बल्कि स्वतंत्र रचना है। इसमें जोधपुर में चातुर्मास करनेवाले विनयविजयगणि ने अपने सूरत में चातुर्मास करनेवाले गुरु विजयप्रभसूरि के पास चन्द्रमा को दूत बनाकर सांवत्सरिक क्षमापना सन्देश और अभिनन्दन भेजे हैं। इसमें जोधपुर से सूरत तक जैन मन्दिरों और तीर्थों का वर्णन भी खूब आया है, यह एक प्रकार का विज्ञप्तिपत्र है। काव्य की भाषा प्रवाहमय और प्रसादपूर्ण है। इसमें कवि की वर्णनशक्ति और उदात्त भावों के दर्शन प्रचुर मात्रा में होते हैं। दूतकाव्य परम्परा में इस प्रकार के काव्य का प्रयोग नवीन है।

इन्दुदूत की कोटि का दूसरा काव्य 'मयूरदूत'[2] है जो वि० सं० १९९३ में रचा गया था। इसमें १८० पद्य हैं जिनमें अधिकांश शिखरिणी छन्द में रचे गये हैं। इसके रचयिता मुनि धुरंधरविजय हैं। इसमें कपडवणज में चातुर्मास करनेवाले विजयामृतसूरि द्वारा जामनगर में अवस्थित अपने गुरु विजयनेमिसूरि के पास वन्दना और क्षमापना सन्देश भेजने की कथावस्तु है। इसमें दूत के रूप में मयूर को चुना गया है। यहाँ मयूर का वर्णन काव्यदृष्टि से बड़े महत्त्व का है, साथ में कपडवणज से लेकर जामनगर तक के स्थानों और तीर्थों का भौगोलिक वर्णन भी दिया गया है।

उक्त दूतकाव्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य दूतकाव्यों का भी ग्रन्थभण्डारों की सूचियों से पता लगता है। यथा जम्बूकवि का इन्दुदूत[3] जो २३ मालिनी छन्दों में है जिसमें अन्त्य यमक को प्रत्येक पद्य में चित्रित किया गया है, विनयप्रभ द्वारा संकलित चन्द्रदूत[4] एवं अज्ञातकर्तृक मनोदूत[5]।

---

१. जैन साहित्यवर्धक सभा, शिरपुर (पश्चिम खानदेश), १९४६; काव्यमाला, गुच्छक १४.

२. जैन ग्रन्थप्रकाशक सभा, ग्रन्थांक ५४, अहमदाबाद, वि० सं० २०००.

३. Notices of Sanskrit Mss., vol. II, p. 153; जिनरत्नकोश, पृ० ४६४.

४. Third Report of Operations in Search of Sanskrit Mss., Bombay Circle, p. 292; जिनरत्नकोश, पृ० ४६४.

५. जैन ग्रन्थावली, पृ० ३३२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन पादपूर्ति-साहित्य :

उक्त दूतकाव्यों के परिशीलन से हमें ज्ञात होता है कि पार्श्वाभ्युदय, शील-दूत, नेमिदूत, चन्द्रदूत एवं मेघदूतसमस्यालेख आदि पादपूर्ति या समस्यापूर्ति काव्यविधा के अन्तर्गत ही आते हैं। इस काव्यविधा को जैन कवियों ने विकसित करने में बड़ा योगदान दिया है, यही कारण है कि जैन काव्यों में अनेकविध एवं बहुसंख्यक पादपूर्तिकाव्य उपलब्ध होते हैं। संभवतः जैनेतर साहित्य में ऐसे काव्य बहुत ही कम हैं।

पादपूर्तिकाव्य की रचना करना कोई सामान्य काम नहीं। इस विशिष्ट कार्य में मूलकाव्य के मर्म को हृदयङ्गम करने के साथ-साथ रचयिता में उत्कृष्ट कवित्वशक्ति, असाधारण पाण्डित्य, भाषा पर पूर्ण अधिकार एवं नवीन अर्थों को उद्भावन करने वाली प्रतिभा की परम आवश्यकता होती है। वह इसलिए भी कि दूसरे की पदावलियों को उनके भाव, अर्थ एवं लालित्य के गुणों के साथ अपने ढांचे में ढालना अति दुष्कर एवं उलझनों से भरा कार्य है और उसमें सफलता के लिए उपर्युक्त गुण होना बहुत जरूरी है। जो कवि मूल पदों के भावों के साथ अपने भावों का जितना अधिक सुन्दर सम्मिश्रण कर सकता है और ऐसे कार्य में सहज प्राप्त होने वाली क्लिष्टता और नीरसता से अपने काव्य को बचा सकता है वह कवि उतनी ही अधिक मात्रा में सफल कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकता है। जिस पादपूर्तिकाव्य को पढ़ते समय काव्यमर्मज्ञ भी पादपूर्ति का भान न कर मौलिक उत्कृष्ट काव्य का रसास्वादन करने लगे वहां ही कवि की सफलता है।

जैन कवियों में पादपूर्तिकाव्य के निर्माण की सूझ कब से आई, यह कह नहीं सकते पर इस दिशा में सर्वप्रथम जिनसेनाचार्य का पार्श्वाभ्युदय ई० ९वीं शताब्दी का है। इसका वर्णन हम पहले कर आये हैं। उसके बाद १५वीं शताब्दी के पहले का ऐसा कोई काव्य उपलब्ध नहीं है। १५-१७वीं शताब्दी में इन काव्यों में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और १८वीं शताब्दी में तो इसका पूरा विकास हुआ मालूम होता है। २०वीं शताब्दी में पादपूर्तिकाव्य केवल गुरुस्तुतिपरक रचे गये हैं।

जैन पादपूर्तिकाव्यों को हम सुविधा की दृष्टि से निम्न प्रकार से विभक्त कर सकते हैं :

१. मेघदूत की पादपूर्ति के काव्य : इनका विवरण हम दूतकाव्यों में प्रस्तुत कर चुके हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. शिशुपालवध की समस्यापूर्ति : यथा महोपाध्याय मेघविजयकृत देवानन्दाभ्युदय[1], इसका विवरण भी हम दे चुके हैं। इसमें माघकवि के शिशुपालवध के प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण को लेकर शेष तीन पाद स्वयं नये बनाकर सप्तसर्गात्मक रचना की गई है।

३. नैषधकाव्य की समस्यापूर्ति : यथा पूर्वोक्त मेघविजयकृत शान्तिनाथ-चरित्र।[2] इसमें नैषधकाव्य के प्रथम सर्ग के समस्त पद्यों के चरणों (केवल २८वें पद्य के चतुर्थ पाद के अतिरिक्त) की समस्यापूर्ति कर ६ सर्गों के एक काव्य की रचना की गई है। नैषध के प्रथम चरण को प्रथम चरण में, द्वितीय को द्वितीय, तृतीय को तृतीय एवं चतुर्थ को चतुर्थ चरण में नियोजित कर प्रथम सर्ग को पूर्णतः समाविष्ट कर दिया गया है। इतना ही नहीं, इस काव्य में कहीं-कहीं नैषधीयकाव्य के एक ही चरण को भिन्न-भिन्न अर्थों की अपेक्षा से दो-दो, तीन-तीन बार भी पूरित या नियोजित किया गया है।

४. जैन स्तोत्रों की पादपूर्ति : यथा—१. प्रसिद्ध भक्तामरस्तोत्र की समस्यापूर्ति : इसका विवरण हम स्तोत्र-साहित्य में दे रहे हैं। २. कल्याणमन्दिरस्तोत्र की समस्यापूर्ति : यथा भावप्रभसूरिकृत जैनधर्मवरस्तोत्र, पार्श्वनाथस्तोत्र, विजयानन्दसूरीश्वरस्तवन, वीरस्तुति आदि।[3] ३. उवसग्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति।[4] ४. प्रसिद्ध विभिन्न जैन स्तुतियों की पादपूर्ति।[5]

५. जैनेतर स्तोत्र-व्याकरणादि की पादपूर्ति : यथा—१. शिवमहिम्नस्तोत्र की पादपूर्ति म रत्नशेखरसूरिकृत ऋषभमहिम्नस्तोत्र।[6] २. कलापव्याकरणसंधि-

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, १९३७.

२. पं० हरगोविन्ददास द्वारा संशोधित और विविध साहित्य शास्त्रमाला द्वारा १९१८ में प्रकाशित.

३. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ८०; जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ५, अंक १२ में प्रकाशित श्री अगरचन्द नाहटा का लेख.

४. जैन स्तोत्र तथा स्तवनसंग्रह अर्थसहित १९०७ में प्रकाशित.

५. श्री अगरचन्द नाहटा का लेख—श्री महावीरस्तवन (संसार-दावा पादपूर्तिरूप), जैन सत्यप्रकाश, ५.१० तथा नाहटाजीलिखित भावारिवारण पादपूर्त्यादि स्तोत्रसंग्रह—प्रस्तावना.

६. जिनरत्नकोश, पृ० ५८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्भितस्तव—इसमें 'सिद्धोवर्णसमाम्नाय' आदि कलापव्याकरण के संधिसूत्रों की पादपूर्ति में २३ पद्य रचे गये हैं। ३. शंखेश्वरपार्श्वस्तुति—इसके प्रथम चार पद्यों में अमरकोष के प्रथम श्लोक के चारों चरणों को बड़ी कुशलता के साथ समाविष्ट किया गया है।[1] प्रथम पद्य के प्रथम चरण में अमरकोष के प्रथम श्लोक का प्रथम चरण, द्वितीय पद्य के द्वितीय चरण में उसका दूसरा चरण, तृतीय पद्य के तृतीय चरण में उसका तृतीय चरण तथा चतुर्थ पद्य के चतुर्थ चरण में उसका चतुर्थ चरण है।

इसके अतिरिक्त कई सुभाषितों, फुटकर पद्यों और अप्रसिद्ध काव्यों की पादपूर्ति के रूप में जैन पादपूर्ति-साहित्य मिलता है।[2] सबका परिगणन यहां सम्भव नहीं है।

दूतकाव्यों और पादपूर्ति-साहित्य के अतिरिक्त गीतिकाव्य के गेय रस-मुक्तक काव्य का एक सुन्दर जैन उदाहरण गीतवीतराग काव्य है।

गीतवीतरागप्रबन्ध :

इसकी[3] रचना जयदेव के गीतगोविन्द के अनुकरण पर की गई है। इसका जिनाष्टपदी नाम से भी उल्लेख जिनरत्नकोश में किया गया है जो संभवतः इसकी अष्टक या अष्टपदों में रचना के कारण है।[4] इसमें कवि ने तीर्थंकर ऋषभदेव के दस पूर्वभवों की कथा का वर्णन करते हुए स्तुति की है। कथावस्तु को २५ लघु प्रबन्धों में विभक्त किया गया है जिनके नाम इस प्रकार हैं: १. महाबल-सद्धर्मप्रशंसा, २. महाबल-वैराग्योत्पादन, ३. ललिताङ्ग-वनविहार, ४. श्रीमती-जातिस्मरण, ५. वज्रजंघ-पट्टकथा, ६. श्रीमती-सौरुप्यवर्णन, ७. श्रीमती-विरह-

---

१. जैन स्तोत्रसन्दोह, भाग २ में प्रकाशित.

२. श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'जैन पादपूर्ति काव्य-साहित्य', जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग ३, किरण २–३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १०५, १३९; डा० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी से १९७२ में प्रकाशित; शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की पत्रिका (१९६९) में डा० उपाध्ये का लेख 'पण्डिताचार्य का गीतवीतराग'.

४. उक्त काव्य पर डा० उपाध्ये की अंग्रेजी भूमिका, पृ० ३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन, ८. भोगभूमिवर्णन, ९. आर्य के गुरुगुण का स्मरण, १०. श्रीधर-स्वर्ग-वैभव-वर्णन, ११. सुविधिपुत्र-संबोधन, १२. अच्युतेन्द्र-दिव्यशरीरवर्णन, १३. वज्रनाभि-श्रीवर्णन, १४. सर्वार्थसिद्धि-विमानवर्णन, १५. मरुदेवी-वर्णन, १६. षोडशस्वप्नवर्णन, १७. प्रभातवर्णन, १८. भगवज्जन्माभिषेकवर्णन, १९. भगवत्परमौदारिकदिव्यदेहवर्णन, २०. भगवद्वैराग्यवर्णन, २१. भगवत्तपोऽतिशयवर्णन, २२. भगवत्-समवसरणशालवेदीवर्णन, २३. समवसरणभूमिवर्णन, २४. अष्टप्रतिहार्यवर्णन, २५. भगवान् का मोक्षगमन और ग्रन्थकर्ता का परिचय।

इस गीतिकाव्य में दशावतार के समान राजा जयवर्मा, महाबल विद्याधर, ललिताङ्गदेव, वज्रजंघ, आर्य, श्रीधर, सुविधि, वज्रनाभि, सर्वार्थसिद्धिविमान और ऋषभदेव का गीतात्मक निरूपण किया गया है।

उक्त काव्य में प्रेम, ज्ञान, सौन्दर्य और भक्ति का समन्वयात्मक रूप दिखाई पड़ता है तथा काव्यकला का उचित समवाय भी है। यहां प्रबन्धकाव्यों की स्वाभाविक सुन्दरता, गीतिकाव्यों की मधुरता और स्तोत्रकाव्यों की तन्मयता के दर्शन होते हैं। इसमें गीतगोविन्द के समान ही शृंगार एवं शान्तरस की धारा मिलती है और कवि स्वकल्पना-वैभव से नित्य नवीन सृष्टि करते हुए दिखाई पड़ता है।

इस काव्य में कल्पना-चमत्कार के साथ उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, अनुमान, काव्यलिंग आदि अलंकारों का समावेश हुआ है। समस्यन्त पदों के प्रयोग से हम इसकी शैली को गौडी शैली कह सकते हैं पर कोमल कान्त पदावली के सद्भाव से इसमें कटुता नहीं आ पाई है।

इस काव्य में गीतगोविन्द के समान ही गीतितत्त्व दिखाई पड़ते हैं: यथा गुर्जरीराग, देशीराग, वसन्तराग, माणवगौडीराग, कन्नडराग, आसावरीराग तथा तालों में अष्टताल, यतिताल, यतियतिताल, एकताल आदि। इस तरह राग और ताल की योजना से यह काव्य पूर्ण गेयरूप है।[1]

इस नूतन काव्य के कुछ नमूने देखें:

---

१. डा. नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृतगीतिकाव्यानुचिन्तनम्, पृ० १२६-४०; पी० जी० गोपालकृष्ण अय्यर, Gita Govinda: A Prosodic Study, जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, १९२८, पृ० ३५०-३६५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुवि धृतसुरपतिलीलापात्र वरिष्ठ
भवसि महाबल पुण्यगरिष्ठ ।
भूमिप तव धर्मफलेन जय धरणीशपते
खेचरभूप जय धरणीशपते ।—१.८.
सुरगिरिनन्दनप्रभृतिमनोहरविलसदुद्यानसंघाते
सुरपरिवृतललिताङ्गसुरो दिविजोत्तमविहरणपूते ।
व्यहरदति सुरभिभरित वसन्ते
नर्तनसक्तजनेन समं निजविरहिसुरस्य दुरन्ते ।—३.८.
मंजुलचम्पककुसुमसमायतरञ्जितनासासारं
पुञ्जितनायकमणिगणराजितसिञ्जितवक्षोहारम्
दध्रे वृषभजिनो ललितामलघृणिभरितमनुपमशरीरम् ।—१९.४.

रचयिता एवं रचनाकाल—इस काव्य के अन्त में २५वें प्रबंध में दी गई प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता श्रवणबेलगोल जैनमठ के भट्टारक अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य हैं। इनका जन्म सिंहपुर में हुआ था। भट्टारक पद पाने के पूर्व इनका क्या नाम था यह हमें मालूम नहीं। भट्टारक पद पाने के बाद इनका नाम चारुकीर्ति पड़ा, वैसे श्रवणबेलगोल के मठाधीशों का सामान्य नाम चारुकीर्ति ही है। इस काव्य की रचना गंगवंशी राजपुत्र देवराज के अनुरोध पर श्रवणबेलगोल के बाहुबलि की प्रतिमा के समीप की गई थी।

श्रवणबेलगोल के शिलालेख नं० २५४ (१०५) जो कि सन् १३९८ ई० का है और नं० २५८ (१०८) जो सन् १४३२ ई० का है, से अभिनव पण्डिताचार्य के विषय में हमें कुछ ज्ञात होता है। सन् १३९८ में उक्त आचार्य ने अपने परलोकगत गुरु की स्मृति में एक लेख स्थापित किया था और सन् १४३२ में उन्होंने सल्लेखना धारण की थी और लेख में उनके शिष्य श्रुतसागर ने पण्डितेन्द्र योगिराट् नाम से उनका उल्लेख किया है।[1]

---

१. उक्त काव्य की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० १६-२०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह गीतवीतरागप्रबंध जिस गंगवंशी देवराज के लिए लिखा गया था उसके विषय में श्रवणबेलगोल के शिलालेखों (संख्या ३३७ ४१) में सूचना मिलती है। इन शिलालेखों में उक्त कवि को श्रीमद् अभिनव चारुकीर्ति पण्डिताचार्य, श्रीमद् पण्डिताचार्य या श्रीमतु पण्डितदेवरु कहा गया है और उन्हें मूलसंघ, देशीयगण, पुस्तकगच्छ, कुन्दकुन्दान्वय का बतलाया गया है। शिलालेख संख्या ३३७ में उनकी शिष्या भीमादेवी का उल्लेख है जो देवराय महाराय की रानी थी। श्री आर० नरसिंहाचार के मतानुसार यह देवराय विजयनगरनृप देवराय प्रथम (सन् १४०६-१६) होना चाहिए और उक्त लेख का समय लगभग १४१० ई० होना चाहिए। गीतवीतरागप्रबंध में देवराज को राजपुत्र कहा गया है और यदि इसे ठीक अर्थ में लें तो उक्त ग्रंथ की रचना १४०० ई० के लगभग होनी चाहिए। तब देवराय राजपुत्र था।

योगिराज पण्डिताचार्यकृत पार्श्वाभ्युदय की टीका भी मिलती है जो सन् १४३२ ई० के लगभग रची गई होगी क्योंकि सन् १४३२ के लेख में ही उन्हें योगिराज शब्द से उल्लिखित किया गया है।

पाठ्य मुक्तक काव्यों में सुभाषितों का भी प्रमुख स्थान है।

सुभाषित :

सुभाषित और सूक्ति के रूप में जैन मनीषियों की प्राकृत और संस्कृत में अनेक रचनाएं मिलती हैं। सुभाषित काव्यों को प्रधान रूप से धर्मोपदेश या धार्मिक सूक्तिकाव्य, नैतिक सूक्तिकाव्य और काम या प्रेमपरक शृंगार-सूक्तिकाव्यों के रूप में देख सकते हैं। जैन विद्वानों ने सदाचार और लोकव्यवहार का उपदेश देने के लिए स्वतंत्र रूप से अनेक सुभाषित पदों का निर्माण किया है जिनमें प्रायः जैनधर्मसम्मत सदाचारों एवं विचारों से रंजित उपदेश प्रस्तुत किये गये हैं। वैसे तो जैन पुराणों और अन्य साहित्यिक रचनाओं में सुभाषित पद भरे पड़े हैं पर केवल उनका ही अध्ययन करने वालों को तथा विविध प्रसंगों पर दूसरों को सुनाने आदि के लिए उनकी स्वतंत्र रूप से रचना भी की गई है।

प्राकृत में धार्मिक सूक्तिकाव्य के रूप में धर्मदासगणिकृत उपदेशमाला, हरिभद्रसूरिकृत उपदेशपद, हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्रप्रकाश, मलधारी हेमचन्द्रकृत उपदेशमाला और आसढमुनिकृत विवेकमंजरी, लक्ष्मीलाभगणिकृत वैराग्यरसायनप्रकरण, पद्मनन्दिकृत धम्मरसायणप्रकरण आदि विशेष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उल्लेखनीय हैं। इनका परिचय इस बृहद् इतिहास के चतुर्थ भाग के तृतीय प्रकरण धर्मोपदेश के अन्तर्गत दिया गया है। इसी तरह संस्कृत में गुणभद्र का आत्मानुशासन (९वीं शती), शुभचन्द्र प्रथम का ज्ञानार्णव, हरिभद्रकृत धर्मबिन्दु और धर्मसार, रत्नमण्डनगणिकृत उपदेशतरंगिणी, पद्मानन्द का वैराग्यशतक आदि द्रष्टव्य हैं। इनका संक्षिप्त परिचय भी उक्त भाग के तृतीय प्रकरण में दिया गया है।

नैतिक सूक्तिकाव्य के रूप में संस्कृत में अमितगति का सुभाषितरत्नसन्दोह, अर्हद्दास का भव्यजनकण्ठाभरण, सोमप्रभ का सूक्तिमुक्तावलिकाव्य, नरेन्द्रप्रभ का विवेकपादप, विवेककलिका आदि हैं।[1] इस प्रकार के अन्य ग्रन्थों में मल्लिषेण का सज्जनचित्तवल्लभ (१२वीं शती), अज्ञातकर्तृक सिन्दूरप्रकर या सोमतिलक-सोमप्रभकृत शृंगारवैराग्यतरंगिणी, राजशेखरकृत उपदेशचिन्तामणि, हरिसेन का कर्पूरप्रकर, दर्शनविजय का अन्योक्तिशतक, हंसविजयगणि का अन्योक्तिमुक्तावली, अज्ञातकर्तृक आभाणशतक, धनदराजकृत धनदशतकत्रय, तेजसिंहकृत दृष्टान्तशतक आदि उल्लेखनीय हैं।

काव्य की दृष्टि से इनमें अनेक (धर्म एवं नीतितत्त्व-प्रधान) रसेतर मुक्तक काव्य हैं और अनेक रस-मुक्तक काव्य हैं।

प्राकृत में हाल के गाथासप्तशती के समान ही वज्जालग्ग नामक एक रसमुक्तक काव्य उपलब्ध हुआ है।

वज्जालग्ग :

इसमें[2] ७९५ गाथाएँ हैं जिनका संकलन श्वेताम्बर मुनि जयवल्लभ ने किया है। इसमें भी अनेक प्राकृत कवियों की सुभाषित गाथाएँ संगृहीत हैं।

वज्जालग्ग का वज्जा शब्द देशी है जिसका अर्थ अधिकार या प्रस्ताव होता है। एक विषय से सम्बद्ध कतिपय गाथाएँ एक वज्जा के अन्तर्गत संकलित की गई हैं, जैसे भर्तृहरि के नीतिशतक में। जयवल्लभ ने प्रारंभ में ही इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है :

---

१. जिनरत्नकोश में इनका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३४०; पृ० २३६ में इसके पद्यालय, वज्रालय आदि नाम दिये हैं; बिब्लिओथेका इंडिका सिरीज (रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल), कलकत्ता, १९१४-१९२३.

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

विविहकइविरइयाणं गाहाणं वरकुलाणि घेत्तूण ।
रइयं वज्जालग्गं विहिणा जयवल्लहं नाम ॥ ३ ॥
एक्कत्थे पत्थावे जत्थ पढिज्जन्ति पउरगाहाओ ।
तं खलु वज्जालग्गं वज्ज त्ति य पद्धई भणिया ॥ ४ ॥

अर्थात् जयवल्लभ ने विभिन्न कवियों द्वारा विरचित अच्छी गाथाओं को लेकर विधिवत् वज्जालग्ग की रचना की। यहां एक प्रस्ताव या अधिकार में सम्बद्ध प्रचुर गाथाओं का संकलन किया गया है। वज्जा शब्द पद्धति (नीतिशतक की पद्धति) का नामान्तर है इसलिए इसे वज्जालग्ग कहते हैं।

इस काव्य के वर्गों या प्रस्तावों में कवि ने लोकजीवन से सम्बद्ध भावनाओं का संग्रह किया है। कतिपय वज्जाओं के नाम इस प्रकार हैं: श्रोतृ, गाथा, काव्य, सज्जन, दुर्जन, मित्र, स्नेह, नीति, धीर, साहस, दैव, विधि, दीन, दारिद्र्य, सुगृहिणी, सती, असती, कुट्टिनी, वेश्या, वसन्त, ग्रीष्म, प्रावृट्, शरत्, हेमन्त, शिशिर, कमल, चन्दन, वट, ताल, पलाश, रत्नाकर, सुवर्ण, दीपक आदि।[1]

सज्जनवज्जा में कवि ने सज्जन के विषय में जिन उदात्त भावाभिव्यंजक गाथाओं का संकलन किया है या उनमें कुछ अपनी भी रचित गाथाएं रखी हैं वैसे भावों का निरूपण अन्य किसी कवि ने संभवतः नहीं किया है। सुघरिणी-वज्जा में भारतीय ललना का सुन्दर वर्णन किया गया है। दरिद्रवज्जा आदि में भी कवि ने हृदयस्पर्शी भावों की ही अभिव्यक्ति की है। शृंगाररसपरक पद्यों में भी कवि ने धार्मिक और वीरभावों को व्यक्त किया है। ग्रन्थकार के जैन होने पर भी इस संग्रह में किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता दृष्टिगोचर नहीं होती है।

अनुमान किया जाता है कि इसका रचनाकाल चौथी शताब्दी है।

इस काव्य पर सं० १३९३ में रत्नदेवगणि[2] ने एक संस्कृत टीका लिखी। इस टीका के लेखन में प्रेरक कोई धर्मचन्द्र थे जो बृहद्गच्छ के मानभद्रसूरि के शिष्य हरिभद्रसूरि के शिष्य थे। इस ग्रन्थ में अनेक गाथाएं हेमचन्द्ररचित और सन्देश-रासक के लेखक अब्दुलरहमानरचित संकलित हैं। अनुमान है कि टीकाकार

---

१. इनके विशेष परिचय के लिए देखें—डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ३७७-३८३.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २३६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने इन गाथाओं को पीछे से जोड़ दिया है। इस ग्रन्थ की विषयवस्तु के अन्तरंग-परीक्षण से यह बात स्पष्ट-सी लगती है कि इस काव्य के कलेवर में बाद-बाद की शताब्दियों में वृद्धि होती रही है।

ग्रन्थकर्ता के विषय में नाम के अतिरिक्त किन्हीं स्रोतों से कुछ भी नहीं मालूम होता है।

संस्कृत में इस प्रकार के ग्रन्थों में आचार्य सोमदेवसूरि का 'नीतिवाक्यामृत' उल्लेखनीय है। इसका परिचय इस इतिहास के पांचवें भाग में राजनीति के ग्रन्थ के रूप में दिया गया है।[1] सूत्रबद्ध शैली में रचे गये इसके ३२ समुद्देशों में से धर्म, अर्थ और काम समुद्देशों में तथा दिवसानुष्ठान, सदाचार, व्यवहार, विवाह और प्रकीर्ण समुद्देशों में कितने ही सूत्र दैनिक व्यवहार में लाने लायक सुभाषित जैसे हैं जिनमें जैनधर्मसम्मत उपदेश अंकित किये गये हैं। इन सूत्रों की प्रधानता के कारण ग्रन्थ का नाम नीतिवाक्यामृत रखा गया है। ग्रन्थकार सोमदेव का परिचय अन्यत्र यशस्तिलकचम्पू काव्य के प्रसंग में दिया गया है।

सुभाषितों का एक प्रमुख ग्रन्थ आचार्य अमितगतिकृत 'सुभाषितरत्नसन्दोह' है।[2] इसमें सांसारिक विषयनिराकरण, ममत्व-अहंकारत्याग, इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्री-गुणदोष-विचार, सदसत्स्वरूपनिरूपण, ज्ञाननिरूपण आदि ३२ प्रकरण हैं और प्रत्येक में बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस पद्य हैं। कर्ता का परिचय उनके अन्य ग्रन्थ धर्मपरीक्षा के प्रसंग में दिया गया है। इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १०५० पौष सुदी पंचमी को समाप्त हुई थी जबकि राजा मुंज पृथ्वी का पालन कर रहे थे। ग्रन्थ में ९२२ पद्य हैं।

सोमप्रभाचार्यकृत 'शृंगारवैराग्यतरंगिणी'[3] में विविध छन्दों के ४६ पद्यों में नैतिक उपदेशों का संकलन है। इसमें कामशास्त्रानुसार स्त्रियों के हाव-भाव व लीलाओं का वर्णन कर उनसे सतर्क रहने का उपदेश दिया गया है। इस पर आगरा के पं० नन्दलाल ने संस्कृत टीका लिखी है।

---

१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, पृ० २३९-४०.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५-४४६; काव्यमाला, ८२, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९०९; जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, पृ० २२१-२२; नाथूराम प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, पृ० २७९; नेमिचन्द्र शास्त्री, संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान, पृ० ४९४-९६.

३. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९४२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एतद्विषयक अन्य रचनाओं में रामचन्द्र का सुभाषितकोश, कीर्तिविजय का सुभाषितग्रन्थ, मुनिदेव आचार्य का सुभाषितरत्नकोश (५८ कारिकाएं), सकलकीर्तिकृत सुभाषितरत्नावली या सुभाषितावली (३९२ श्लोक), तिलकप्रभसूरिकृत सुभाषितावली, ज्ञानसागरकृत सुभाषितषट्त्रिंशिका, लुंकागच्छ के यशस्त्रीगणिकृत सुभाषितषट्त्रिंशिका, धर्मकुमारकृत सुभाषितसमुद्र, शुभचन्द्रकृत सुभाषितार्णव आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं।[1]

स्तोत्र-साहित्य :

जैनों का स्तोत्र-साहित्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तथा अन्य जनपदीय भाषाओं में विपुल राशि में पाया जाता है। उसमें से संस्कृत-प्राकृत में ही उपलब्ध विपुलराशि को प्रस्तुत करना शक्य नहीं, और की बात ही अलग, फिर भी उसका यहाँ सिंहावलोकन मात्र किया जा रहा है।

भारतीय वाङ्मय में स्तोत्र-स्तवन की परम्परा आदि काल से चली आ रही है। इन्द्र, वरुण, उषा आदि के ऋग्वेद में सुरक्षित सूक्त स्तवन ही हैं। सामवेद को गेय स्तोत्रों का संकलन कह सकते हैं। यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक स्तोत्र द्रष्टव्य हैं। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त एक राष्ट्रीय स्तोत्र है। रामायण, महाभारत, पुराणादि में प्रचुर मात्रा में स्तोत्र अन्तर्निहित हैं। संस्कृत साहित्य के सभी महाकाव्यों में मंगलाचरण के रूप में या बीच में भी स्तुतियां दी गई हैं। स्वतंत्र रूप से भी कवियों ने अष्टकों, कुलकों, चतुर्दशकों, द्वात्रिंशिकाओं, षट्त्रिंशिकाओं, चत्वारिंशकों एवं शतकों[2] के रूप में स्तोत्रों की रचना की है। बाणभट्ट का चण्डीशतक, मुरारि का सूर्यशतक और वल्लभाचार्य के यमुनाष्टक प्रसिद्ध ही हैं।

स्तोत्र-काव्य का स्वतंत्र रूप से प्रारम्भ बौद्धों में हुआ था। कवि मातृचेट का अध्यर्धशतक सबसे प्राचीन मालूम होता है। उसके बाद पुष्पदन्त का शिवमहिम्नस्तोत्र, मयूर का सूर्यशतक आदि अनेक स्तोत्र-गीतिकाव्य आते हैं।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४४५-४४६.

२. जैन कवियों ने इन विधाओं में अपने अनेक स्तोत्रों की रचना की है। सिद्धसेन दिवाकर और रामचन्द्रसूरिरचित द्वात्रिंशिकात्मक स्तोत्र प्रसिद्ध ही हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साहित्य में स्तोत्र को थुइ, थुति, स्तुति या स्तोत्र नाम से कहा गया है। स्तव और स्तवन भी इसके नाम हैं। यद्यपि स्तव और स्तोत्र में कुछ विद्वानों ने अर्थभेद दिखाने का प्रयत्न किया है पर वह पहले कदाचित् रहा है, पीछे तो सब एकार्थक माने जाने लगे।

प्राचीन जैनागमों में आचारांग, सूत्रकृतांग आदि में उपधान-श्रुताध्ययन और वीरस्तव (वीरत्थय) जैसी विरल भावात्मक स्तुतियां देखने को मिलती हैं पर मध्यकाल आते-आते उवसग्गहर, स्वयम्भूस्तोत्र, भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि हृदय के भावों को जगाने वाले अनेक स्तोत्र लिखे गये। इन स्तोत्रों में २४ तीर्थंकरों के गुणकीर्तन पर लिखे गये स्तोत्र प्रमुख हैं। इनमें सबसे अधिक संख्या पार्श्वनाथ से सम्बन्धित स्तोत्रों की है।[१] लगभग इतने ही स्तोत्र २४ तीर्थंकरों की सम्मिलित स्तुतिरूप में लिखे गये हैं।[२] इसके बाद ऋषभदेव[३] और महावीर[४] पर लिखे स्तोत्रों की संख्या आती है, शेष तीर्थंकरों से सम्बन्धित स्तोत्र और भी कम हैं। पंचपरमेष्ठी अर्थात् अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधुओं की भक्ति पर लिखे गये स्तोत्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम ही है।

जैनधर्म में भक्ति का रूप आराध्य को खुशकर कुछ पा लेने का नहीं इसलिए यहाँ भक्ति का रूप दास्य, सख्य एवं माधुर्यभाव से सर्वथा भिन्न है। उत्तराध्ययन में स्तोत्र के फल के विषय में एक रोचक संवाद[५] मिलता है : **थवथुइमंगलेण भंते ! जीवे किं जणयइ ? थवथुइमंगलेणं नाणदंसणचरित्तबोहिलाभं जणयइ। नाणदंसणचरित्तबोहिलाभसम्पन्ने य णं जीवे अंतकिरियं कप्पविमाणोववत्तियं आराहणं आराहेइ** अर्थात् स्तुति करने से जीव ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप बोधिलाभ करता है। बोधिलाभ से उच्च गतियों में जाता

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २४७-२४८, ४५३ में पार्श्वनाथ पर लिखे स्तोत्रों की सूची दी गई है।

२. वही, पृ० ११३-११६, १२५-१२८ में इन स्तोत्रों की सूची प्रस्तुत है।

३. वही, पृ० २७-२९, ५७-५९, ३२१ (युगादिदेवस्तुति आदि).

४. वही, पृ० ३०७, ३६३.

५. अध्ययन २९, सू० १४; उत्तराध्ययन, अंग्रेजी प्रस्तावना-टिप्पणी-सहित—जार्ल चार्पेंटियर, उपसला, १९२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, उसके रागादि शान्त होते हैं आदि। आचार्य समन्तभद्र स्तुति को प्रशस्त-परिणाम-उत्पादिका[1] बतलाते हैं। जैनधर्म के अनुसार आराध्य तो वीतरागी होता है, वह न तो कुछ लेता है और न देता है पर भक्त को उसके सान्निध्य से एक ऐसी प्रेरक शक्ति मिलती है जिससे वह सब कुछ पा लेता है।[2]

जैनधर्म के प्राचीनतम स्तोत्र प्राकृत भाषा में मिलते हैं। उनमें कुन्दकुन्दाचार्यकृत[3] 'तित्थयरसुद्धि' तथा 'सिद्धभक्ति' आदि प्राचीन हैं। भद्रबाहु के नाम से रचित कहा जाने वाला 'उवसग्गहरस्तोत्र' भी प्राचीन है जो ५ प्राकृत गाथाओं में है। यह इतना प्रभावक स्तोत्र समझा गया कि इसके ऊपर एक अच्छा परिकर साहित्य तैयार हो गया है।[4] इस पर अब तक ९ टीकाएं लिखी गई हैं। प्राकृत के अन्य उल्लेखनीय स्तोत्रों में नन्दिषेण का अजियसंतिथय,[5] धनपालकृत ऋषभपंचाशिका[6] और वीरथुइ[7], देवेन्द्रसूरिकृत अनेक स्तोत्र[8] यथा चत्तारिअट्ठदसथव, सम्यक्त्वस्वरूपस्तव, गणधरस्तव, चतुर्विंशतिजिनस्तव, जिनराजस्तव, तीर्थमालास्तव, नेमिचरित्रस्तव, परमेष्ठिस्तव, पुण्डरीकस्तव, वीरचरित्रस्तव, शाश्वतचैत्यस्तव, सत्ततिशतजिनस्तोत्र और सिद्धचक्रस्तव, धर्मघोषसूरि का इसिमण्डलथोत्त, नन्नसूरि का सत्तरिसयथोत्त, महावीरथव, पूर्णकलशगणि का स्तम्भनपार्श्वजिनस्तव, जिनचन्द्रसूरि का नमुक्कारफलपगरण

---

१. स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशलपरिणामाय स तदा।
अवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः॥—स्वयंभूस्तोत्र, २१.१.

२. सुहृत्त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत् प्रलीयते।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि प्रभो! परं चित्रमिदं तवेहितम्॥
—वही १४.१४.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १६८; प्रभाचन्द्राचार्यकृत संस्कृत टीकासहित, दशभक्ति, सोलापुर, १९२१.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ५४; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई, १९३३; जैनस्तोत्रसंदोह, द्वितीय भाग, पृ० १-१३, अहमदाबाद.

५. जिनरत्नकोश, पृ० ३, यहाँ इस स्तोत्र की ६ टीकाओं का उल्लेख है।

६. वही, पृ. ५८, यहाँ इसके कई संस्करणों तथा ७ टीकाओं का उल्लेख है।

७. वही, पृ० ३६३; देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई, १९३३.

८. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, बम्बई.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि। अभयदेवसूरिकृत जयतिहुअणस्तोत्र[1] अपभ्रंश भाषा में है और इसमें स्तंभनक पार्श्वनाथ की स्तुति है। यह भी प्रभावक स्तोत्रों में से एक है। दिगम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित प्राकृत का निर्वाणकाण्डस्तोत्र[2] भी प्रिय स्तोत्रों में से एक है।

संस्कृत भाषा में तो जैन स्तोत्र बहुमुखी धारा में प्रवाहित हुए हैं। अनेक स्तोत्र विविध छन्दों और अलंकारों में रचे गये हैं। कई श्लेषमय भाषा में तो कई पादपूर्ति के रूप में और कितने ही दार्शनिक एवं तार्किक शैली में भी लिखे गये हैं।

तार्किक शैली में लिखे गये आचार्य समन्तभद्रकृत स्वयम्भूस्तोत्र,[3] देवागमस्तोत्र,[4] युक्त्यनुशासन[5] और जिनशतकालंकार[6], आचार्य सिद्धसेन की कुछ द्वात्रिंशिकाएं[7] तथा आचार्य हेमचन्द्रकृत अयोगव्यवच्छेद-द्वात्रिंशिका[8] और अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका[9] विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन पर कई टीकाएं भी लिखी गई हैं जो कि जैनन्याय के ग्रन्थों का काम देती हैं।

आलंकारिक शैली में लिखे गये स्तोत्रों में महाकवि श्रीपाल (प्रज्ञाचक्षु) की सर्वजिनपतिस्तुति (२९ पद्यों में), हेमचन्द्र के प्रधान शिष्य रामचन्द्रसूरिकृत अनेक द्वात्रिंशिकाएं और स्तोत्र,[10] जयतिलकसूरिकृत चतुर्हारावलीचित्रस्तव[11]

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० १३२, यहाँ इसकी ६ टीकाओं का उल्लेख है।

२. वही, पृ० २१४.

३-६. वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली, १९५०-१९५१.

७. जिनरत्नकोश, पृ० १८३, ३४३, ३६९; जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर से प्रकाशित.

८. वही, पृ० १५.

९. वही, पृ० ११.

१०. इन स्तोत्रों के परिचय के लिए देखें—नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३५-२३७.

११. स्तोत्ररत्नाकर, द्वि० भाग, वि० सं० १९७०; अनेकान्त, प्रथम वर्ष, किरण ८-१०, पृ० ५२०-५२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि. श्लेषमय शैली में विवेकसागररचित वीतरागस्तव (३० अर्थ), नयचंद्रसूरिकृत स्तंभपार्श्वस्तव (१४ अर्थ) तथा सोमतिलक[1] एवं रत्नशेखरसूरिरचित अनेकों स्तोत्र हैं।

पादपूर्ति या समस्यापूर्ति के रूप में लिखे गये स्तोत्रों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। उनमें मानतुंग के भक्तामरस्तोत्र की समस्यापूर्ति में कई स्तोत्र[2] प्रकाश में आये हैं—यथा महोपाध्याय समयसुन्दरकृत ऋषभभक्तामर ४५ पद्यों में (इनमें चतुर्थ पाद की पूर्ति है), कीर्तिविमल के शिष्य लक्ष्मीविमलकृत भक्तामर की चतुर्थपाद की पूर्ति के रूप में शान्तिभक्तामर, धर्मसिंह के शिष्य रत्नसिंहसूरिकृत नेमि-राजीमती की स्तुति के रूप में ४९ पद्यों में नेमि-भक्तामर (इसका दूसरा नाम प्राणप्रियकाव्य है), धर्मवर्धनगणिकृत वीरस्तुति के रूप में वीर-भक्तामर, धर्मसिंहसूरि का सरस्वतीभक्तामर, इसी तरह उक्त स्तोत्र की समस्यापूर्ति में जिनभक्तामर, आत्मभक्तामर, श्रीवल्लभभक्तामर एवं कालूभक्तामर आदि उल्लेखनीय हैं। कल्याणमन्दिरस्तोत्र की समस्यापूर्ति में भावप्रभसूरिकृत जैनधर्मवरस्तोत्र, अज्ञातकर्तृक पार्श्वनाथस्तोत्र, वीरस्तुति तथा विजयानन्दसूरीश्वरस्तवन उपलब्ध हैं।[3] उवसग्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति[4] में भी अनेक स्तोत्र उपलब्ध हुए हैं। अन्य स्तोत्रों में अज्ञातकर्तृक पार्श्वनाथ-समस्यास्तोत्र[5] उल्लेखनीय है। इस प्रकार के कई स्तोत्रों का उल्लेख हम पादपूर्ति-साहित्य में कर आये हैं।

संस्कृत भाषा की अन्य स्तुतियों में देवनन्दि पूज्यपाद (छठी शती) की सिद्धभक्ति आदि बारह[6] भक्तियाँ और सिद्धिप्रियस्तोत्र, पात्रकेशरी (छठी शती)

---

१. जैनस्तोत्रसमुच्चय, भाग १, पृ० ७६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० २८९; हीरालाल र० कापड़िया, काव्यसंग्रह, भाग १-२, आगमोदय समिति, बम्बई; स्तोत्ररत्नाकर, प्रथम भाग, मेहसाना, १९१३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ८०.

४. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ८०, पृ० ४५-४८.

५. जिनरत्नकोश, पृ० २४७; सिद्धान्तसारादिसंग्रह (मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला, भाग २१), बम्बई, वि० सं० १९७९.

६. नित्यपाठसंग्रह, कारंजा, १९५६; सिद्धिप्रिय—काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० ३०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का जिनेन्द्रगुणसंस्तुति या पात्रकेशरीस्तोत्र[1], मानतुंगाचार्य (७वीं शती) का भक्तामरस्तोत्र[2] (आदिनाथस्तोत्र), बप्पभट्टि[3] (८वीं शती) के सरस्वती-स्तोत्र, शान्तिस्तोत्र, चतुर्विंशतिजिनस्तुति, वीरस्तव, धनंजय (८वीं शती) का विषापहार[4], जिनसेन (९वीं शती) का जिनसहस्रनाम[5], विद्यानन्द का श्रीपुरपार्श्वनाथ[6], कुमुदचन्द्र (सिद्धसेन ११वीं शती) का कल्याणमन्दिर[7], शोभनमुनि (११वीं शती) कृत चतुर्विंशतिजिनस्तुति[8], वादिराजसूरिकृत ज्ञानलोचनस्तोत्र[9] एवं एकीभावस्तोत्र[10], भूपालकवि (११वीं शती) कृत जिनचतुर्विंशतिका[11], आचार्य हेमचन्द्र (१२वीं शती) कृत वीतरागस्तोत्र, महादेवस्तोत्र[12] और महावीरस्तोत्र[13], जिनवल्लभसूरि (१२वीं शती) रचित[14] भवादिवारण, अजितशान्तिस्तव आदि अनेक स्तोत्र, पं० आशाधर (१३वीं शती) कृत सिद्धगुणस्तोत्र, जिनप्रभसूरि[15] (१३वीं शती) के सिद्धांतागमस्तव, अजितशान्ति-स्तवन प्रभृति अनेक स्तोत्र, महामात्य

---

१. प्रथम गुच्छक, प्रकाशक—पन्नालाल चोधरी, काशी, वि० सं० १९८२.
२. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १.
३. आगमोदय समिति, बम्बई, १९२६; जैनस्तोत्रसंदोह, भाग १.
४. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० २२.
५. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४.
६. वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली, वि० सं० २००६.
७. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १०.
८. वही, पृ० १३२-१६०; आगमोदय समिति, बम्बई.
९. सिद्धांतसारादिसंग्रह (मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला), पृ० १२४.
१०. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १७-२२.
११. वही, पृ० २६.
१२. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक १.
१३. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १०२-१०७.
१४. जैनस्तोत्रसन्दोह, भाग १.
१५. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक पृ० ८६, १०७-११९; जैनस्तोत्रसन्दोह, भाग १; जिनप्रभसूरि ने ऋषभदेव पर ११ पद्यों में एक स्तोत्र फारसी भाषा में भी लिखा (जैनस्तोत्रसमुच्चय, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, ९०वाँ स्तोत्र संस्कृत अवचूरि के साथ)।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुपाल (१३वीं शती) का अम्बिकास्तवन[1], पद्मनन्दि भट्टारक[2] कृत रावण-पार्श्वनाथस्तोत्र, शान्तिजिनस्तोत्र, वीतरागस्तोत्र आदि, शुभचन्द्र भट्टारककृत शारदास्तवन[3], मुनिसुन्दर (१४वीं शती) कृत स्तोत्ररत्नकोष[4], भानुचन्द्रगणिकृत सूर्यसहस्रनामस्तोत्र[5] आदि स्तोत्र हजारों की संख्या में ज्ञात एवं अज्ञातकर्तृक उपलब्ध हुए हैं जिनका उल्लेख करना दुष्कर है।

जैन समाज में सबसे प्रिय दो स्तोत्र माने गये हैं : एक तो मानतुंगाचार्य का भक्तामरस्तोत्र जो कि प्रथम तीर्थंकर की स्तुति के रूप में (४४ या ४८ पद्यों में) रचा गया है और दूसरा कुमुदचन्द्र का कल्याणमन्दिरस्तोत्र (४४ पद्यों में) जिसमें पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। ये दोनों स्तोत्र अपने आराध्य के प्रति व्यक्त किये भक्तिभरे उदार एवं समन्वयात्मक भावों के कारण उच्च कोटि के माने गये हैं। भक्तामरस्तोत्र के कुछ पद्य[6] ध्यातव्य हैं :

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥ २३ ॥
त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ २४ ॥

---

१. महामात्य वस्तुपाल का विद्यामण्डल, पृ० १९३; जैनस्तोत्रसमुच्चय, पृ० १४३.

२. अनेकान्त, वर्ष ९, किरण ७.

३. डा० कैलाशचन्द्र जैन, जैनिज्म इन राजस्थान, सोलापुर, १९६३, पृ० १६७.

४. जैनस्तोत्रसंग्रह, भाग २; जिनरत्नकोश, पृ० ४५३.

५. जिनरत्नकोश, पृ० ४५२; जैन युवक मंडल, सूरत, वि० सं० १९९८.

६. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० ६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ।
धातासि धीर ! शिवमार्गविधेर्विधानात्
व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

आराध्य की उदारता और स्तोता की विनयशीलता को व्यक्त करने वाले कल्याणमन्दिरस्तोत्र के दो पद्य[1] पठनीय हैं :

त्वं नाथ ! दुःखिजनवत्सल ! हे शरण्य !
कारुण्यपुण्यवसते ! वशिनां वरेण्य !
भक्त्या नते मयि महेश ! दयां विधाय
दुःखांकुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥ ३९ ॥
देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिलवस्तुसार !
संसारतारक ! विभो ! भुवनाधिनाथ !
त्रायस्व देव ! करुणाह्रद ! मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयदव्यसनाम्बुराशेः ॥ ४१ ॥

स्तोत्ररचना में हेमचन्द्राचार्य सबसे बड़े समन्वयवादी थे। उनके द्वारा रचित वीतरागस्तोत्र[2], महादेवस्तोत्र[3] के पद्य सदा स्मरणीय हैं :

भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥
यत्र यत्र समये यथा यथा योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया ।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते ॥
त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं
साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलिं ।
रागद्वेषभयान्तकजरालोलत्वलोभादयो

---

१. काव्यमाला, सप्तम गुच्छक, पृ० १७.

२. देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार, ग्रन्थांक ।

३. वही.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ।।
यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलविधेर्भंगिनः पारदृश्वा
पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ।
तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तं
बुद्धं वा वर्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ।।

दक्षिण भारत के जैन शिलालेखों में भी इस तरह के समन्वयवादी मंगलाचरण[1] द्रष्टव्य हैं: **जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोऽपि शिवाय.... धात्रे सुगताय विष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ।**

जैन स्तोत्रों के संग्रह[2] के रूप में अनेक संस्करण निकल चुके हैं। उनमें से काव्यमाला, बम्बई के प्रथम गुच्छक और सप्तम गुच्छक में अनेक स्तोत्र संकलित हैं। मुनि चतुरविजयजी द्वारा सम्पादित जैनस्तोत्रसन्दोह, भाग १-२ में अनेकों प्राकृत-संस्कृत स्तोत्र संकलित हैं। इसके भाग १ के परिशिष्ट में प्रकाशित सभी स्तोत्रों की सूची दी गई है जो बड़ी उपयोगी है। चतुरविजयजी द्वारा सम्पादित एक अन्य संकलन जैनस्तोत्रसमुच्चय के दो भागों में तथा यशोविजय जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित जैनस्तोत्रसंग्रह के दो भागों में अनेक स्तोत्रों का संकलन हुआ है। आगमोदय समिति, बम्बई ने प्रो० हीरालाल रसिकदास कापड़िया के सम्पादकत्व में स्तोत्रों के सटीक, सचित्र और समंत्र कई भाग निकाले हैं जो स्तोत्र-साहित्य के ज्ञान के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। साराभाई मणिलाल नवाब, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित महाप्राभाविक नवस्मरण में गुजराती अनुवाद और माहात्म्यकथाओं के साथ उवसग्गहर, भक्तामर, कल्याणमन्दिर आदि ९ स्तोत्रों का विस्तार के साथ निरूपण किया गया है। जर्मन विदुषी Dr. Charlotte Krause कृत Ancient Jain Hymns[3] में ८ स्तोत्रों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ स्तोत्र-साहित्य के महत्त्व को बतलाने के लिए ९ पृष्ठों की भूमिका दी गई है जो पठनीय है। मा० दिग० जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित

---

१. जैन शिलालेख संग्रह, भाग ३, पृ० ८५.

२. जैन स्तोत्रों के संग्रह की विधि प्राचीन है। वि० सं० १५०५ में हिमांशुगणिकृत एक संकलन मिलता है—जिनरत्नकोश, पृ० १४५; अन्य स्तोत्रकोशों की सूची जिनरत्नकोश, पृ० ४५३ में दी गई है।

३. सिंधिया ओरियण्टल सिरीज, संख्या २, उज्जैन, १९५२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्तसारादिसंग्रह भी अनेक स्तोत्रों के परिज्ञान के लिए श्लाघनीय है। जैनों के असंख्य अप्रकाशित स्तोत्रों के नाम और नमूने ग्रन्थभण्डारों की प्रकाशित सूचियों में भलीभांति देखे जा सकते हैं।

दृश्यकाव्य—नाटक :

काव्य के दो प्रधान भेदों—श्रव्य और दृश्य—में से नाटक या रूपक दृश्यकाव्य विधा है। इसका विकासक्रम भारतीय परम्परा में ऋग्वेदकाल से ढूंढ़ा जा सकता है। ऋग्वेद के सरमा और पणि, यम और यमी, विश्वामित्र और नदी, पुरुरवा और उर्वशी के संवादों में नाटक साहित्य के प्राचीनतम रूप मिलते हैं। नाटक के प्रधान तत्त्व संवाद, संगीत, नृत्य और अभिनय हैं। अधिकांश विद्वान् इन चारों तत्त्वों को वेद में उपलब्ध होने से नाटक की उत्पत्ति वैदिक सूक्तों से मानते हैं।

रामायण और महाभारत काल में आकर नाटक के कुछ स्पष्ट रूप उल्लिखित पाये जाते हैं। विराटपर्व में रंगशाला का निर्देश है। हरिवंशपुराण में रामायण की कथा पर एक नाटक के अभिनीत होने की चर्चा है। रामायण में रंगमंच, नट, नाटक का विभिन्न स्थलों में निर्देश है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में नटसूत्र और नाट्यशास्त्र का भी उल्लेख है। पातंजल महाभाष्य में कंसवध और बालिबंधन नामक दो नाटकों का स्पष्ट नाम है।

रायपसेणियसुत्त (द्वितीय उपांग) में सूर्याभदेव अधिकार में उल्लेख है कि देव-देवियों ने महावीर स्वामी से ३२ प्रकार के नाटक खेलने की तीन बार अनुमति मांगी पर उत्तर नहीं मिला तब उन्होंने महावीर के स्वर्ग च्यवन, गर्भ, जन्म, अभिषेक बालक्रीड़ा, यौवन, निष्क्रमण, तपश्चर्या, केवलज्ञान, तीर्थप्रवर्तन, निर्वाण आदि प्रसंगों का बाजे बजाकर, संगीत सुनाकर, नृत्य और अभिनय कर मूक अभिनय जैसा नाटक किया। १०वें उपांग पुष्पिका में इन्द्र ने महावीर के समक्ष सूर्याभदेव के द्वारा नाट्यविधि का प्ररूपण कराया है। वहां सूर्य, शुक्र आदि दस व्यक्तियों की ओर से अभिनीत नाटक का उल्लेख मिलता है। पिण्डनिज्जुत्ति (गा० ४७४-४८०) में 'रट्ठवाल' नाटक का उल्लेख आया है। इसमें भरत चक्रवर्ती का जीवनवृत्त आषाढभूति मुनि ने अभिनीत किया है। इसे देख राजा-राजकुमार आदि संसार से उद्विग्न हो गये। कहते हैं कि संसार की हानि होते देख यह नाटक नष्ट कर दिया गया। उत्तराध्ययन की वृत्ति में नेमिचन्द्र ने मधुकरीगीत और सोयामणि इन दो नाटकों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का उल्लेख किया है। प्रबंधकोश में कहा गया है कि बप्पभट्टि के गुरुभाई नन्नसूरि ने वृषभध्वजचरित नाटक आम राजा (कन्नौजनरेश) के राजदरबार में अभिनीत किया था। प्राचीन जैन नाटक कृतियों में शीलांकाचार्य के चउप्पण्णपुरिसचरिय में विबुधानन्द नाटक दिया गया है। वर्धमानसूरि के मनोरमाचरित्र की प्रशस्ति (वि० सं० ११४०) में उल्लेख है कि बुद्धिसागरसूरि ने कोई नाटक लिखा था।

यद्यपि वर्तमान में उपलब्ध जैन-अजैन संस्कृत-प्राकृत नाटक कृतियाँ सैकड़ों हैं परन्तु उनमें उत्कृष्टतम तो २० से कदाचित् अधिक होंगी। प्राचीन कवियों भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भवभूति और हर्ष की रचनाएँ उन उच्चकोटि की कृतियों में से हैं। उत्तरकालीन नाटक कृतियाँ केवल अनुकरण जैसी ही हैं।

मध्ययुग के प्रारंभ काल तक संस्कृत नाटक के इतिहास का युग समाप्त हो चुका था फिर भी विद्या और अध्ययन की परम्परा बड़ी लगन के साथ सुरक्षित रखी गई और नाटक की कला और अभिनय का पोषण राजदरबारों और समाज के सुसम्पन्न वर्ग के आश्रय में होता ही रहा।

मध्ययुग के उत्तरकाल में जैन कवि दृश्यकाव्य के क्षेत्र में आगे बढ़े। चौलुक्य युग के गुजरात में जैनों द्वारा न केवल नाटक रचे और खेले गये थे बल्कि नाट्यशास्त्र पर भी ग्रन्थ लिखे गये थे। हेमचन्द्र के काव्यानुशासन का ८ वाँ अध्याय और उनके शिष्य रामचन्द्र, जो स्वयं १०-११ नाटकों के लेखक थे, का नाट्यदर्पण उस काल की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। यह परम्परा उत्तरकालीन चौलुक्य युग में भी चलती रही।

उपलब्ध जैन नाटकों को कथावस्तु के आधार पर हम ५ विभागों में बाँट सकते हैं: पौराणिक, ऐतिहासिक, रूपक (allegorical), काल्पनिक एवं साम्प्रदायिक। पौराणिक यथा रामचन्द्रकविकृत नलविलास, रघुविलास आदि, हस्तिमल्लकृत मैथिलीकल्याण, विक्रांतकौरव आदि; ऐतिहासिक यथा देवचन्द्रकृत चन्द्रलेखविजयप्रकरण, जयसिंहसूरिकृत हम्मीरमदमर्दन एवं नयचन्द्रकृत रंभामंजरी; रूपकात्मक यथा मोहराजपराजय, ज्ञानसूर्योदय आदि; काल्पनिक यथा रामचन्द्रकृत मल्लिकामकरन्द, कौमुदीमित्रानन्द आदि; साम्प्रदायिक यथा मुद्रितकुमुदचन्द्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वप्रथम यहाँ हम रामचन्द्र कवि की नाटक कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं। पहले कवि का परिचय दिया जा रहा है।

कवि रामचन्द्र :

ये हेमचन्द्राचार्य के शिष्यों में सर्वप्रधान थे।[१] ग्रन्थकार के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में अधिक नहीं मालूम फिर भी पं० लालचन्द्र गांधी ने नलविलास की भूमिका में लिखा है कि रामचन्द्र वि० सं० ११४५ में उत्पन्न हुए थे। उन्हें सं० ११६६ में सूरिपद मिला था। वे सं० १२२८ में हेमचन्द्र के शिष्य हुए एवं पट्टधर हुए और सं० १२३० में स्वर्गवासी हुए। प्रभावकचरित में हेमचन्द्र का जीवनचरित्र बतलाते हुए कहा गया है कि रामचन्द्र एक योग्य शिष्य थे जो हेमचन्द्र की परम्परा को चला सकते थे।

गुजरात के नाट्यकारों में रामचन्द्र सर्वोच्च थे। उन्होंने नाट्यशास्त्र का पूर्ण अध्ययन किया था। उनकी एतद्विषयक कृति नाट्यदर्पण एक मौलिक रचना है। इसमें नाटक के प्रकारों, स्वरूप और रसों का ऐसा वर्णन किया गया है जो भरत के नाट्यशास्त्र से भिन्न है। इसमें संस्कृत के कितने ही उपलब्ध और अनुपलब्ध नाटकों के भी उल्लेख हैं जिनमें कुछ तो स्वयं कवि की रचनाएं हैं। इस ग्रन्थ में विशाखदत्त के लुप्त नाटक 'देवीचन्द्रगुप्त' के अनेक उद्धरण दिये गये हैं जो गुप्त इतिहास की लुप्त कड़ियाँ संकलित करने में बड़े महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं।

उनकी शैली में प्रतिभा और प्रवाह है। वे इस कला में निपुण थे कि साधारण से साधारण कहानी को कैसे सुन्दरतम नाटकीय ढंग से परिवर्तित किया जाय। उन्होंने भावाभिव्यक्ति में पर्याप्त मौलिकता दिखलाई है। इसके अतिरिक्त वे प्रथम श्रेणी के समालोचक, कविता के हार्दिक प्रशंसक और तत्काल समस्यापूर्ति करने वाले थे। इन्होंने अनेक आलंकारिक स्तोत्र भी रचे हैं। रामचन्द्रसूरि चार प्रकार की संस्कृत नाटक-कृतियों के लेखक थे : नाटक, प्रकरण, नाटिका और व्यायोग।

उनकी पौराणिक एवं काल्पनिक कथावस्तु पर लिखी कृतियों का परिचय इस प्रकार है :

---

१. भोगीलाल ज० सांडेसरा, हेमचन्द्राचार्य का शिष्यमण्डल; नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २०९-२२२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. सत्यहरिश्चन्द्र :

रामचन्द्रसूरि ने इसे[१] अपना आदि रूपक कहा है। इसे नाटक कहा गया है और इसकी कथावस्तु सत्यवादी हरिश्चन्द्र से सम्बद्ध है। इस कथा का आधार महाभारत है पर अभिनय के अनुकूल आवश्यक परिवर्तन किये गये हैं। इसमें ६ अंक हैं।

महाभारत में हरिश्चन्द्र स्वप्न में विश्वामित्र को राज्य दे अपने सत्य की परीक्षा में दुःख उठाता है। यहाँ वह एक आश्रम की हरिणी का शिकार करने से उसके प्रायश्चित्तस्वरूप यातनाओं को मोल लेता है। रानी सुतारा और राजपुत्र रोहिताश्व के साथ राजा के निर्वासित होते समय प्रजा के उद्वेग के रूप में कवि जोश में आ जाता है। इस कारुणिक घटना को कवि ने इस ढंग से वर्णित किया है कि भवभूति के उत्तररामचरित का स्मरण हो आता है। चतुर्थ अंक में मांत्रिक द्वारा सुतारा की राक्षसीरूप में उपस्थिति से राजशेखर के कर्पूरमंजरीसट्टक की याद हो आती है, जिसमें भैरवानन्द कर्पूरमंजरी को स्नानार्द्र वस्त्र में उपस्थित करता है। पर रामचन्द्र का यह चित्रण रंगमंच की मर्यादा का उल्लंघन करता है। इसी तरह पंचम अङ्क में हरिश्चन्द्र द्वारा मांसखण्ड देना नागानन्दनाटक की याद दिलाता है, जिसमें शंखचूड को बचाने के लिए जीमूतवाहन गरुड के लिए अपनी बलि देता है।

कवि ने अपने 'नाट्यदर्पण' के सिद्धांत 'नाटक जीवन के सुख और दुःख दोनों का प्रतिबिम्ब होता है' को दिखाने का पूरा प्रयत्न किया है। कवि ने समस्त नाटक में इतने अधिक पद्यों की योजना की है कि नाट्य-व्यापार के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा पहुँचती है। संभवतः इस विषय में उनकी यह आदि कृति थी इसलिए ऐसा हुआ हो। यह नाटक सुभाषितों और मुहावरों से भरपूर है। इसका सन् १९१३ में इटालियन भाषा में अनुवाद हो चुका है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४१२, ४६०; निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, अत्रे और पुराणिक द्वारा सम्पादित; सत्यविजय जैन ग्रंथमाला में मुनि मान-विजय द्वारा सम्पादित एवं सत्य श्री हरिश्चन्द्र नृपति प्रबन्ध के अन्तर्गत बिना अङ्क-विभाग के प्रकाशित, अहमदाबाद, १९२४; नाट्य-दर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२४ में संक्षिप्त परिचय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. नलविलास :

इस नाटक[1] में ७ अंक हैं। इसकी कथावस्तु का आधार भी महाभारत ही है। यह जैन साहित्य में प्राप्त नल-कथा पर बिल्कुल आश्रित नहीं है और न इसमें साम्प्रदायिकता की थोड़ी भी गन्ध है।

महाभारत में नल-कथा के कुछ ऐसे प्रसंग हैं, जैसे हंस के द्वारा नल का सन्देश, कलि का नल के शरीर में प्रवेश और पक्षियों द्वारा नल के वस्त्राभूषण ले जाना आदि, जो कि रंगमंच में नहीं दिखाये जा सकते, उन्हें इस नाटक में बदल कर रंगमंच के अनुरूप बनाया गया है। लेखक के ये परिवर्तन मौलिक सुन्दरता में वृद्धि ही करते हैं। प्रत्येक अंक में लेखक की प्रतिभा, उक्तिवैचित्र्य झलकता है। इसमें दमयन्ती का चरित्र महाभारत की अपेक्षा अधिक उदात्त है। इसमें कई ऐसे संवाद हैं जो पाठकों को द्रवीभूत कर देते हैं। नल और दमयन्ती के बीच वियोग के करुण दृश्य से संवेदनशील पाठक बिना द्रवित हुए नहीं रहेंगे। यह उत्तररामचरित की याद दिलाता है। कवि रामचन्द्र में भाव व्यक्त करने की शक्ति कालिदास और भवभूति के ही समान है। वे अपने वर्णन और संवादों से लोगों के सामने अनोखे दृश्य खड़े कर देते हैं। स्वयंवर का दृश्य बड़ा ही प्रभावक है और हमें रघुवंश के छठे सर्ग की याद दिलाता है।

इस नाटक में अनेकों मुहावरे और सुभाषित भरे पड़े हैं। यथा—

सुस्थे हृदि सुधासिक्तं, दुःस्थे विषमयं जगत्।
वस्तुरम्यमरम्यं वा मनः संकल्पतस्ततः ॥ (पृ० ५९)
शतेऽपि शिरसां छिन्ने दुर्जनस्तु न तुष्यति। (पृ० ८५)

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० २०५; गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, २९, बड़ौदा, १९२६, इसकी प्रस्तावना द्रष्टव्य है। डा० सुशीलकुमार डे ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर', पृ० ४६५ में इस पर सहानुभूति-पूर्वक नहीं लिखा; नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२३ में इसका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. मल्लिकामकरन्द :

इसकी प्रस्तावना में इसे नाटक कहा गया है पर वास्तव में यह प्रकरण है क्योंकि इसकी कथा काल्पनिक है।[1] यद्यपि प्रकरण में १० अंक रखने का विधान है पर इसमें केवल ६ अंक हैं। रामचन्द्रसूरि ने अपने नाट्यदर्पण में इसे प्रकरण ही कहा है। यह इस कवि की अन्य रचना कौमुदीमित्राणन्द के समान ही सामाजिक नाटक है।

नायिका मल्लिका एक विद्याधर-कन्या थी जिसे नवजात शिशु के रूप में मल्लिका वृक्ष के कुंज में पड़ी पाकर एक सेठ ने उसका पालन किया था। उसकी अंगुलियों में वैनतेय की मुहर वाली अंगूठियाँ थीं और बालों में एक भूर्जपत्र बंधा था जिसमें लिखा था : '१६ वर्ष के बाद चैत्र कृष्णा चतुर्दशी को मैं इसके पति और रक्षक को मारकर इसे बलात् ले जाऊँगा'।

मल्लिका युवती होने पर एक रात्रि में कामदेव के मन्दिर में फाँसी लगाती है और नायक मकरन्द उसे बचा लेता है। दोनों में प्रेम बढ़ जाता है। मल्लिका उसे अपने दोनों कानों के आभूषण देती है। मकरन्द को एक समय जुआड़ी लोग पकड़ते हैं जिसे मल्लिका का धर्मपिता सेठ रुपया देकर छुड़ाता है। सेठ द्वारा यह मालूम कर कि मल्लिका के अपहरण का समय आ रहा है, मकरन्द उसे बचाने का प्रयत्न करता है पर किसी अदृष्ट शक्ति द्वारा मल्लिका का अपहरण हो जाता है (१-२ अंक)। वह विद्याधरों के लोक में जाती है जहाँ एक राजकुमार चित्राङ्गद से विवाह करना अस्वीकार करती है। मकरन्द वहाँ पहुँच जाता है पर मल्लिका की माता चित्रलेखा उसे देख कर क्रुद्ध होती है (३ अंक)। मकरन्द निराश होता है पर उसे एक तोता मिलता है जो उसके स्पर्श से वैश्रवण नामक मनुष्य बन जाता है। वह अपनी विपत्ति की कथा कहता है। इस बीच मकरन्द चित्राङ्गद से मिलता है और उसके आदमियों द्वारा पकड़ा जाता है (४ अंक)। मकरन्द के इस काम में वैश्रवण और उसकी पत्नी मनोरमा सहायता करने की प्रतिज्ञा करते हैं। मल्लिका मकरन्द से अपने दृढ़ प्रेम की बात करती है और पीछे अपनी माता और चित्रांगद से भी (कपटरूप में) (५ अंक)।

छठे अंक के प्रारंभ में विष्कम्भक में मल्लिका मकरन्द के बदले अपना प्रेम और अनुराग चित्राङ्गद के प्रति दिखलाती है, जो छलरूप में उसके मन में

---

१. नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३० में संक्षिप्त परिचय.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वास उत्पन्न करने जैसा था। इस अंक में आते ही हम देखते हैं कि एक गंधमूषिका तापसी की आज्ञा से चित्रांगद और मल्लिका के असली विवाह के पूर्व एक दूसरा विवाहोत्सव होता है जिसमें सामान्य प्रथा के अनुसार मल्लिका और यक्षाधिराज से विवाह का अभिनय है। मल्लिका और यक्ष के बीच विवाह सम्पन्न होता है परन्तु यक्षाधिराज में स्वयं मकरन्द प्रकट हो जाता है। अन्त में उस विवाह से सब राजी हो जाते हैं और नाटक की समाप्ति आनन्दपूर्वक मेल में होती है। अन्त में मुद्रालंकार द्वारा रचयिता का नाम (रामचन्द्र) सूचित किया गया है। यह एक शुद्ध प्रकरण है।

४. कौमुदीमित्राणन्द :

यह एक सामाजिक नाटक[1] है जिसे लेखक ने प्रकरण कहा है। इसमें १० अङ्क हैं। इसमें कौतुकनगरवासी धनी सेठ जिनसेन के पुत्र मित्राणन्द और एक आश्रम के कुलपति की पुत्री कौमुदी के बीच प्रेमकथा का वर्णन है। इसे कौमुदीनाटक भी कहते हैं।

प्रथम अंक में मित्राणन्द अपने मित्र मैत्रेय के साथ समुद्रयात्रा में जाता है और उनका जहाज वरुणद्वीप में टूट जाता है। वहां वे एक सुन्दर कन्या को झूला झूलते पाते हैं। दोनों एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। मित्राणन्द कुलपति के साथ आता है जो उसका बड़े स्नेह के साथ स्वागत करता है और अपनी पुत्री कौमुदी से विवाह करने का प्रस्ताव करता है। इसी समय वरुण आता है और सब चले जाते हैं। दूसरे अङ्क में मित्राणन्द वरुण के द्वारा वृक्ष में कीलित एक व्यक्ति की रक्षा करता है जो कि एक सिद्ध था। वरुण उसे दिव्य हार भेंट में देता है।

तीसरे अङ्क में मित्राणन्द और कौमुदी मिलते हैं। कौमुदी मित्राणन्द के यौवनरूप और दिव्यहार के कारण उस पर पूर्ण आसक्त है और मित्राणन्द से अपने पिता कुलपति और दूसरों का रहस्य बता देती है कि वे वास्तविक साधु नहीं हैं। प्रत्येक वणिक् जिसने उससे विवाह किया उसे विवाहगृह के नीचे ढंके हुए कुएँ में डाल दिया जाता है। इसलिए उसने मित्राणन्द से वहां से अपने

---

1. जिनरत्नकोश, पृ० ९६; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७३; इसके अङ्कों के संक्षिप्त परिचय के लिए देखें—नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२५-२२७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्व पतियों से प्राप्त धन को लेकर लंका भाग जाने का और अपने पिता से सर्पदंश का मंत्र सीखने का प्रस्ताव रखा। दोनों का विवाह होता है। मित्राणन्द कुलपति से सर्पदंश का मंत्र सीखता है। कवि भावी घटनाओं को द्व्यर्थक पद्यों से सूचित करता है। चतुर्थ अङ्क में दोनों लंका की राजधानी रंगशाला में आते हैं। नगर में प्रवेश करते ही मित्राणन्द चोर के रूप में पकड़ा जाता है और उसे गदहे पर बैठाकर नगर में घुमाया जाता है। उसका शरीर रक्तचन्दन से लेपा जाता है। पांचवें से लेकर दसवें अङ्क तक यह पूरा प्रकरण अनेक अलौकिक वातावरणों एवं घटनाओं से पूर्ण है जो कि एक-दूसरे से शिथिल रूप में सम्बद्ध हैं। सातवें अङ्क में एक वणिक्पुत्री सुमित्रा सामने आती है जो कि मकरन्द की प्रेमिका बन जाती है। मित्राणन्द—कौमुदी और मकरन्द-सुमित्रा अनेक घटनाचक्र पार कर अन्त में आनन्दपूर्वक समागम करते हैं। हास्य रस की कमी को कवि ने प्रचुर मात्रा में प्रदर्शित अद्भुत रस से पूरी की है।

डा० कीथ ने इस प्रकरण की आलोचना में कहा है कि यह कृति पूर्णरूप से अनाटकीय है, इसमें कई कथाप्रसंगों को नाटकरूप में गठित किया गया है, परिणामस्वरूप यह आधुनिक मूकनाटक (Pantomime) जैसा ही है। आगे चलकर उन्होंने कहा है कि इस रचना में दर्शकों में अद्भुत रस जाग्रत करने वाले अनेक चमत्कारों के सिवाय और किसी प्रकार का रस नहीं है।[१] इसी तरह डा० डे ने कहा है कि इसकी कथा दण्डी के दशकुमारचरित जैसी है और लेखक को उसी रूप में लिखने का प्रयत्न करना था। नाटकीय कृति के रूप में इसमें कोई अधिक तत्त्व नहीं और न साहित्यिक दृष्टि से भी कोई उल्लेखनीय कृति है। पश्चात्कालीन इस जैसे प्रकरणों में नाटकीय प्रसंगों की अपेक्षा जटिल कथानक ही विशेष देखे जाते हैं।[२]

५. रघुविलास :

यह ८ अंकों का नाटक है।[३] इसमें राम के वनवास और सीता-मिलन की

१. ए० बी० कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ० २५८-५९; गुजराती अनुवाद, भा० २, पृ० ३७६-३७७.

२. सु० कु० डे, हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७५-७६.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ३२६; इसके अंकों के संक्षिप्त परिचय के लिए देखें—के० एच० त्रिवेदी, नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २२८.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटना जैन रामायण के अनुसार वर्णित है। रामचन्द्रसूरि के नाटकों में यह ऐसा नाटक है जिसे नाट्यदर्पण में बहुत बार उद्धृत किया गया है।

प्रथम अंक में राजा दशरथ के वचन-प्रतिपालनार्थ राम, सीता और लक्ष्मण का वनगमन। दूसरे अंक में रावण द्वारा सीता का हरण, जटायु का सीता के बचाने में जीवन-त्याग। तीसरे अंक में राम का करुण विलाप, हनुमान-सुग्रीव से परिचय। चतुर्थ अंक में रावण की राजधानी का वर्णन, सीता को आकृष्ट करने में रावण का असफल रहना।

पंचम अंक में विभीषण रावण को सत्परामर्श देता है पर कोई फल नहीं होता। राम का सन्देश लेकर दूत का आना और लौट जाना। अन्त में दोनों ओर से युद्ध छिड़ जाता है। छठे अंक में युद्ध का विवरण, रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना और हनुमान आदि का मूर्च्छा दूर करने का प्रयत्न करना है। ७वें अंक में मन्दोदरी आदि का रावण को समझाना पर कोई फल न निकलना, रावण का राम से अन्त तक लड़ने का निश्चय करना है। ८वें अंक में राम और रावण में युद्ध का वर्णन है। रावण छल से सीता को उसके पिता जनक द्वारा राम के मरने की सूचना देता है, सीता अग्नि में कूदने की तैयारी करती है, हनुमान से सूचना पा राम सीता को बचाने के लिए दौड़ते हैं। रावण के मरने की सूचना नेपथ्य से दी जाती है। नाटक का अन्त राम-सीता के सानन्द सम्मिलन से होता है। जाम्बवन्त अन्तिम शुभाशंसा पढ़ता है।

यहाँ सीता के अपहरण की घटना दूसरे ढंग से निरूपित है।। रावण का वेश बदलकर राम के पास आना—यह कवि का नूतन निर्माण है और बड़ा रोचक तथा नाटकीय है परन्तु लम्बे-लम्बे पद्यों की भरमार से वातावरण का सौन्दर्य नष्ट हुआ है और कथा के स्वाभाविक प्रवाह में बाधा हुई है। राम का सीता के खो जाने पर करुण विलाप कालिदास के विक्रमोर्वशीय की याद दिलाता है जो बड़ा हृदयद्रावक है। नाटक में दिव्यतत्त्व—राक्षसों की दिव्य-शक्ति—की भरमार है जो कौतूहल बढ़ाने में आवश्यक समझा गया है।

इस नाटक का संक्षिप्त रूप 'रघुविलासनाटकोद्धार' मिलता है जिसमें गद्य भाग को हटाकर केवल पद्य रखे गये हैं और इस तरह वह नाटक का आधा रह गया है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

६. निर्भयभीमव्यायोग :

यह एक अंक का रूपक[1] है जिसे 'व्यायोग' कहते हैं। इसमें महाभारत में वर्णित बकासुर के वध को कथावस्तु बनाया गया है। इसमें भीम एक ब्राह्मण युवक को राक्षस बक के चंगुल से छुड़ाता है और स्वयं अपने को बलिरूप में प्रस्तुत कर बकासुर का वध कर देता है।

यह व्यायोग भास के मध्यम व्यायोग जैसा है। यद्यपि दोनों के घटनाप्रसंग भिन्न हैं पर नायक भीम दोनों में एक है। वध्य ब्राह्मण की माता और पत्नी का करुण क्रन्दन श्रीहर्ष के नागानन्द की याद दिलाता है।

यह रचना बड़ी सरल और प्रसादपूर्ण है। इसमें जिज्ञासा तथा कौतूहल क्रमशः बढ़कर चरम बिन्दु पर पहुँचे हैं। इसमें अरस्तू के सिद्धांत संकलन-त्रय स्थान की एकता, समय की एकता और घटना की एकता-का पूरी तरह पालन हुआ है।

७. रोहिणीमृगांक :

यह रामचन्द्रसूरि का अन्यतम प्रकरण[2] है जो अनुपलब्ध है। इसे 'नाट्यदर्पण' में दो स्थलों पर उद्धृत किया गया है। प्रकरण होने से इसकी कथा-वस्तु कल्पित ही है। इसका विषय रोहिणी और मृगांक के प्रणय का वर्णन मालूम होता है।

८. राघवाभ्युदय :

राम की कथा पर आधारित यह एक नाटक[3] है जो अनुपलब्ध है। रामचन्द्रसूरि ने इसका अपने नाट्यदर्पण में १० बार उल्लेख किया है। बृहट्टि-प्पणिका में कहा गया है कि इस नाटक में १० अंक हैं। राम की कथा पर आधारित इस कवि का दूसरा नाटक रघुविलास भी है पर दोनों का घटना-प्रसंग भिन्न है। रघुविलास में राम के वनवास और सीता-मिलन की घटना है तो राघवाभ्युदय में सीता के स्वयंवर की घटना है। ज्ञात होता है कि रघुविलास से पहले राघवाभ्युदय की रचना हुई थी क्योंकि रघुविलास की प्रस्तावना में रामचन्द्रसूरि की पाँच उत्तम कृतियों में इसका भी उल्लेख है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३१४; यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, संख्या १९, वाराणसी, वी०सं० २४३७.

२-३. नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३२-२३३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. यादवाभ्युदय :

रामचन्द्रसूरि का यह नाटक[1] भी अनुपलब्ध है पर 'नाट्यदर्पण' में इसका आठ बार उल्लेख है। इसमें मुख्य रूप से कृष्ण के जीवन की घटना दी है जिसमें कंस और जरासंध के वध के बाद कृष्ण के राज्याभिषेक का अभिनय है। रघुविलास में रामचन्द्रसूरि की पांच उत्तम कृतियों में राघवाभ्युदय के साथ इसका भी उल्लेख है। इसमें भी १० अंक मालूम होते हैं। नाटककार ने अन्तिम पद्य में मुद्रालंकार द्वारा अपना नाम सूचित किया है।

१०. वनमाला :

रामचन्द्रसूरिकृत यह एक नाटिका[2] है। यह रचना भी अनुपलब्ध है। नाट्यदर्पण में यह एक बार उद्धृत है। इसमें राजा (संभवतः नल) और दमयन्ती का संवाद है जिसमें दमयन्ती उस पर अन्य नारीरक्त होने से क्रुद्ध है।

संभवतः इसमें नल और नायिका वनमाला के बीच प्रेमव्यापार का वर्णन है। इसका नायक नल है। इसमें नाटिका की प्रकृति के अनुसार नायक गुप्त रूप से नायिका से प्रेम करता है। ज्येष्ठ रानी रोष प्रकट करती है और बाधाएँ उपस्थित करती है पर अन्त में नायक-नायिका के विवाह की स्वीकृति दे देती है।

चन्द्रलेखाविजयप्रकरण :

यह[3] हेमचन्द्राचार्य के अन्यतम शिष्य देवचन्द्र की रचना है। इसमें पांच अंक हैं।

यह कुमारविहार के मूलनायक पार्श्वजिन के समीप में स्थापित अजितनाथ के मन्दिर में वसन्तोत्सव पर कुमारपाल की परिषद् के सन्तोष के लिए खेला

---

१. वही, पृ० २३३.

२. नाट्यदर्पण, पृ० ११५; जिनरत्नकोश, पृ० ३४१; नाट्यदर्पण : ए क्रिटिकल स्टडी, पृ० २३३.

३. जिनरत्नकोश, पृ० १२०; यहाँ इसके कर्ता देवचन्द्र को हेमचन्द्राचार्य का गुरु लिखा गया है जो गलत है। ये देवचन्द्र हेमचन्द्राचार्य के शिष्य थे। हेमचन्द्र के गुरु का नाम भी देवचन्द्रसूरि था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया था। इस नाटक में सपादलक्ष या शाकम्भरी (आधुनिक सांभर–राजस्थान) के नृप अर्णोराज पर कुमारपाल की विजय और अर्णोराज की भगिनी से उसके विवाह का वर्णन है।

इसकी नायिका चन्द्रलेखा एक विद्याधरी है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता हेमचन्द्राचार्य के शिष्य देवचन्द्र हैं।[1] इसकी रचना में उन्होंने शेष भट्टारक से सहायता ली थी। इनकी दूसरी रचना मानमुद्राभञ्जन नाटक[2] है जो सनत्कुमार चक्रवर्ती और विलासवती को लेकर रचा गया है परन्तु वह उपलब्ध नहीं है।

प्रबुद्धरौहिणेय :

यह ६ अंकों का नाटक है।[3] इसमें भगवान् महावीर के समकालिक राजगृह-नरेश श्रेणिक के राज्यकाल के प्रसिद्ध चोर रौहिणेय के प्रबुद्ध होने का वर्णन किया गया है।[4] इसकी रचना पार्श्वचन्द्र के पुत्र व्यापारशिरोमणि दो भ्राता यशोवीर और अजयपाल के अनुरोध से की गई थी और लगभग वि० सं० १२५७ में यह उनके द्वारा बनवाये जालौर के आदीश्वर जिनालय के यात्रोत्सव पर खेला गया था।

हेमचन्द्र ने अपने योगशास्त्र में रौहिणेय की कहानी दृष्टान्तरूप में दी है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता प्रसिद्ध तार्किक देवसूरि (वि० सं० १२२६ में स्वर्गवासी) सन्तानीय जयप्रभसूरि के शिष्य रामभद्र हैं। इनके सम्बंध में विशेष कुछ ज्ञात नहीं है।

---

१. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, पृ० २८०.

२. वही; जिनरत्नकोश, पृ० ३०९.

३. जैन आत्मानन्द सभा, संख्या ५०, भावनगर, वि०सं० १९७४; जिनरत्नकोश, पृ० २६५; ए० बी० कीथ, संस्कृत ड्रामा, लन्दन, १९५४, पृ० २५९-६०, इसका गुजराती अनुवाद संस्कृत नाटक, भाग २, पृ० ३७७-७८ में है।

४. इसका परिचय 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' में पृ० ३२५ में दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रौपदीस्वयंवर :

यह दो अंकों का संस्कृत नाटक[1] है जिसे गुजरातनरेश 'अभिनव सिद्धराज' विरुदधारी महाराज भीमदेव द्वितीय (वि० सं० १२३५-९८) की आज्ञानुसार त्रिपुरुषदेव के सामने वसन्तोत्सव के समय खेला गया था। इसके अभिनय से राजधानी अणहिलपुर की प्रजा बहुत खुश हुई थी। यह बात नाटक के प्रारम्भ में सूत्रधार के कथन से ज्ञात होती है। इसमें कवि ने ऐसे कई छन्दों का निर्माण किया है जिन्हें पदशः विभक्त कर अनेक पात्रों से कहलाया गया है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता[2] महाकवि श्रीपाल के पौत्र एवं सिद्धपाल के पुत्र महाकवि विजयपाल हैं। कवि की अन्य कोई कृति नहीं मिली है। अन्य उल्लेखों से पता चलता है कि कवि का कुल बड़ा प्रतिष्ठित और सरस्वती-भक्त था। कवि के पिता और पितामह राजकवि थे। ये प्राग्वाट (पोरवाड) वैश्य तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के जैन थे। इनके कुटुम्ब की ओर से अणहिलपुर में स्वतंत्र जैन मन्दिर एवं उपाश्रय बनाये गये थे।

नाटक में कर्ता को महाकवि कहा गया है जिससे ज्ञात होता है कि कवि ने इस कृति के अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थ बनाये थे जो या तो नष्ट हो गये या किन्हीं ग्रन्थभण्डारों में प्रकाश की प्रतीक्षा में पड़े हों। इस नाटक में विजयपाल के पिता का नाम सिद्धपाल दिया है। ये भी महाकवि थे। यद्यपि इनका अब तक कोई ग्रन्थ नहीं मिला है पर शतार्थीकाव्य, सूक्तमुक्तावली, सुमतिनाथचरित्र, कुमारपालप्रतिबोध आदि संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थों के प्रणेता सोमप्रभसूरि ने उक्त अन्तिम दो ग्रन्थों की प्रशस्तियों में सिद्धपाल का उल्लेख किया है। ये दोनों ग्रन्थ उन्होंने सिद्धपाल के बनाये उपाश्रय में रह कर लिखे थे।

कुमारपालप्रतिबोध में दो-चार स्थानों में सिद्धपाल का उल्लेख है और एक स्थान पर लिखा है :

कइयावि निवनियुत्तो कहइ कहं सिद्धपालकई।
(कदापि नृपनियुक्तः कथयति कथां सिद्धपालकविः।)

कुमारपालप्रतिबोध में उक्त कवि द्वारा रचित कुछ पद्यों के अतिरिक्त और कोई कृति प्राप्त नहीं हुई है।

सिद्धपाल के पिता श्रीपाल थे जो अपने समय के एक प्रसिद्ध महाकवि थे।

---

१. जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, १९१८, सम्पादक—मुनि जिनविजयजी.

२. भूमिका, पृ० १-७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोमप्रभाचार्य ने इनका यशोगान सुमतिनाथचरित्र तथा कुमारपालप्रतिबोध की अन्तिम प्रशस्तियों में किया है। गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के ये बालमित्र थे।

मोहराजपराजय :

इस नाटक[1] के शीर्षक का अर्थ है मोह याने अज्ञान पर विजय।

यह पांच अङ्कों में विभक्त है।

इसमें गुजरात के चौलुक्य नरेश राजा कुमारपाल द्वारा आचार्य हेमचन्द्र के उपदेश से जैनधर्म स्वीकारना, प्राणिहिंसा को रोकना तथा अदत्त मृतधनापहरण का त्याग करने आदि का चित्रण है। यह नाटक प्राचीन काल के जैन रूपक (Allegory) का अच्छा नमूना है। विषयवस्तु और अभिनय की दृष्टि से यह नाटक मध्ययुगीन यूरोप के ईसाई नाटकों के सदृश लगता है। संस्कृत साहित्य में ऐसे और भी नाटक हैं जिनमें उल्लेखनीय चन्देल राजा कीर्तिवर्मा के राज्य (१०६५ ई०) में कृष्णमिश्र द्वारा रचा गया 'प्रबोधचन्द्रोदय' है जो कि इस नाटक से सौ वर्ष पहले रचा गया था।

ऐसा ज्ञात होता है कि यह नाटक अजयपाल के राज्यकाल में (सन् ११७४–७७) में लिखा गया था और थारापद्र (आधुनिक थराद, बनासकांठा जिला) में बनाये कुमारपाल के मन्दिर कुमारविहार में महावीर की रथयात्रा के महोत्सव के समय खेला गया था जहां कि नाटककार या तो शासक था या वहां का केवल निवासी।

इस नाटक में राजा, विदूषक और आचार्य हेमचन्द्र को छोड़कर शेष सभी पात्र भावात्मक—पुण्यात्मक और पापात्मक वस्तुओं के रूपक हैं।

पक्ष-विपक्ष के पात्रों के नाम इस प्रकार हैं :

पक्ष—राजा–विवेकचन्द्र, दूत–ज्ञानदर्पण, ज्योतिषी–गुरूपदेश, मंत्री–पुण्यकेतु, सिपाही–धर्मकुञ्जर, रानी–शान्ति और पुत्री–कृपासुन्दरी, मौसी–शान्तिसुन्दरी, कूप–सदागम, नदी–धर्मचिन्ता, उद्यान–धर्म, वृक्ष–दम, घट–ध्यान, सखी–सोमता, कवच–योगशास्त्र, गुटिका–वीतरागस्तुति।

---

1. गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, संख्या ९, बड़ौदा १९१८; विस्तारभय से यहां इसका सार देना सम्भव नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विपक्ष—राजा–मोहराज, रानी–राज्यश्री, सहेली–रौद्रता, कुमारपाल की रानी–कीर्तिमंजरी और साला–प्रताप।

इस नाटक में अनेक गुण हैं। सर्वप्रथम यह सरल संस्कृत में लिखा गया है। इसमें इस प्रकार की कृत्रिमता नहीं है जो कि आडम्बरपूर्ण अन्य नाटकों को दूषित कर देती है। इस ग्रन्थ से हमें कुमारपालकालीन जैनधर्म की विविध गतिविधियों के विशद चित्रण मिल जाते हैं जिनका समर्थन गुजरात के शिलालेखों एवं अन्य उपादानों से होता है। जिनमण्डनगणि ने अपने 'कुमारपालप्रबंध' (सं० १४९२) में इस रूपक का वस्तुसंक्षेप दिया है और बताया है कि कृपासुन्दरी से कुमारपाल का विवाह सं० १२१६ में हुआ[1] था अर्थात् उस दिन कुमारपाल ने प्रकट रूप में जैनधर्म स्वीकारा था। इस नाटक में जुए के अनेक प्रकार तथा प्राणिवध पर जोर देने वाले अनेक मतों का उल्लेख मिलता है। इसकी प्राकृतें हेमचन्द्राचार्य के प्राकृत व्याकरण के नियमों से प्रभावित हैं। इसमें मागधी तथा जैन महाराष्ट्री का प्रयोग हुआ है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस नाटक के रचयिता ने अपना परिचय सूत्रधार के मुख से दिलाया है। तदनुसार उसका नाम यशःपाल कवि है। वह मोढवंश (मोढवणिक्) के मंत्री धनदेव और माता रुक्मिणी का पुत्र था। वह चक्रवर्ती अजयदेव के चरणसरोज का हंस था। चक्रवर्ती अजयदेव चौलुक्य अजयपाल ही है जो कुमारपाल का उत्तराधिकारी था। इस अजयदेव ने सन् १२२९-१२३२ तक राज्य किया था।

नाटक के अन्त में **'मंत्रियशःपालविरचितं मोहराजपराजयो नाम नाटकं'** लिखा है।[2] संभव है कि यशःपाल उक्त राजा का मंत्री या शासक रहा हो। इस नाटक की रचना का काल उक्त नृप का राज्यकाल माना जा सकता है।

---

१. **कृपासुन्दर्याः सं० १२१६ मार्गसुदि द्वितीया दिने पाणिं जग्राह श्रीकुमारपाल महीपालः श्रीमर्हद्देवतासमक्षम्।**

२. **श्रीमोढवंशावतंसेन श्रीअजयदेवचक्रवर्तिचरणराजीवराजहंसेन मंत्रिधनदेवतनुजन्मना रुक्मिणीकुक्षिलालितेन ''परमार्हतेन यशःपालकविना विनिर्मितं मोहराजपराजयो नाम नाटकम्।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुद्रितकुमुदचन्द्र :

इस नाटक में पाँच अंक हैं।[1] कथावस्तु बहुत छोटी है जो कि पांचवें अंक की समाप्ति के कुछ पहले सूचित की गई है। तदनुसार इसमें तार्किक देवसूरि द्वारा किन्हीं दिग० मुनि कुमुदचन्द्र की सिद्धराज जयसिंह के दरबार में स्त्री-मुक्ति-सिद्धि विषय पर पराजय दिखाना है।

स्त्री-मुक्ति की बात तो ११-१२वीं शता० के जैन न्यायग्रन्थों में खण्डन-मंडनरूप में दी गई है। दिग० प्रभाचन्द्राचार्य ने अपने दो ग्रन्थों—न्याय-कुमुदचन्द्र और प्रमेयकमलमार्तण्ड-—में स्त्रीमुक्ति का खण्डन किया है और उसका मण्डन वादिदेवसूरि ने स्याद्वादरत्नाकर नामक ग्रन्थ में किया है। स्याद्वादरत्नाकर और प्रभाचन्द्र के ग्रन्थों की विषयवस्तु में तुलना करने पर यह कहा जा सकता है कि प्रकरणों के क्रम और पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष के स्थापन की पद्धति में स्याद्वादरत्नाकर न्यायकुमुदचन्द्र के बहुत समीप है और कहीं-कहीं तो दोनों ग्रन्थों में इतना अधिक शब्दसादृश्य है कि दोनों ग्रन्थों की पाठशुद्धि में एक-दूसरे का मूल प्रति की तरह उपयोग किया जा सकता है।[2]

प्रस्तुत नाटक में स्त्रीमुक्ति के पक्ष-विपक्ष में कुछ भी न कह केवल दर्शकों के आगे १०-१५ मिनट का शाब्दिक अभिनय मात्र कराया गया है। इसके पूर्व के अंक उक्त विवाद-अभिनय की भूमिका मात्र हैं जिनमें दिखाया गया है कि दो सम्प्रदायों के लोग एक-दूसरे को लाञ्छित करने में कैसा रस लेते थे और राजवर्ग किस तरह एक-दूसरे के पक्ष-समर्थन में आनन्द लेता था। इस कार्य में लांच घूंस की भी आशंका की गई है तथा दैवी प्रयोग भी किये गये हैं, यथा अन्त में वज्रार्गला योगिनी का आविष्कार।

---

१. यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, संख्या ८, काशी, वी० सं० २४३२.

२. स्मरण रहे कि न्यायकुमुदचन्द्र के इतने महत्त्वपूर्ण होने पर भी उसकी प्राचीन प्रतियां कम मिली हैं। अनुमान है कि उक्त विषय को रोचक एवं आलंकारिक शैली में प्रतिपादन करने वाले नूतन ग्रन्थ स्याद्वादरत्नाकर के प्रभाव के कारण उसका वाचन-पाठन-प्रसार रुद्ध हो गया हो। इस रुके प्रचार-प्रसार को साम्प्रदायिक द्वेषवश व्यक्तिविशेष की पराजय के रूप में प्रस्तुत करने की दृष्टि से मुद्रितकुमुदचन्द्र नामकरण समझा जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस नाटक में जयसिंह को निर्णायक की भूमिका अदा करते दिखाया गया है।

इस नाटक की घटना को कुछ विद्वानों ने प्रभावकचरित और प्रबंधचिन्तामणि में दिये वर्णनों के अनुसार ऐतिहासिक माना है पर इसकी ऐतिहासिकता में सबसे बड़ी बाधक बात यह है कि इसमें वादीरूप से चित्रित दिगम्बराचार्य कुमुदचन्द्र की पहचान अब तक नहीं हो सकी है। वादिदेवसूरि के समय वि० सं० ११४३-१२२६ के बीच दिगम्बर सम्प्रदाय में इस नाम के तथाकथित चतुराशीति-विवादविजयी, वादीन्द्र कुमुदचन्द्र का नाम नहीं मिलता है।

नाटक की कथावस्तु—घटना भले ही वास्तविक न हो पर यह नाटक तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजकीय स्थिति की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने में सफल है। इससे उस समय की धार्मिक स्पर्धा, धर्माचार्यों की पारस्परिक असहिष्णुता, राजा का स्वदेशज के प्रति पक्षपात और उसकी विजय देखने की उत्कण्ठा आदि मानव-स्वभाव पर आश्रित बातें हैं।

इस नाटक का अभिनय किस प्रसंग में हुआ है, यह सूचित नहीं किया गया है पर यह कुतूहलवर्धक अच्छी साहित्यिक कृति है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इस नाटक के लेखक धर्कटकुल के सेठ धनदेव के पौत्र तथा पद्मचन्द्र के पुत्र कवि यशश्चन्द्र हैं। उन्होंने सपादलक्ष देश में किसी शाकम्भरी (वर्तमान सांभर) राजा से अभ्युन्नति प्राप्त की थी। उनके पितामह शाकंभरी-नरेश के राजसेठ थे।

यशश्चन्द्र ने अनेक प्रबंधों की रचना की थी, ऐसा निम्न पद्य से ज्ञात होता है :

> कर्ताऽनेकप्रबंधानामत्र प्रकरणे कविः।
> आनन्दकाव्यमुद्रासु यशश्चन्द्र इति श्रुतः॥

इनका 'राजीमतीप्रबोध' नामक एक अन्य नाटक मिलता है।[1] शेष रचनाओं का पता नहीं है।

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३३१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्माभ्युदय :

यह एकांकी नाटक है।[1] इसमें राजर्षि दशार्णभद्र के जीवन का घटना-प्रसंग वर्णित है। इसका अभिनय, जैसा कि प्रस्तावना में सूचित किया गया है, पार्श्वनाथ के मन्दिर में किया गया था। इसके रचयिता एक जैन साधु मेघप्रभाचार्य हैं जिनके सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं है। बहुतकर ये गुजरात के थे क्योंकि इसकी प्रतियां गुजरात में ही मिली हैं। इसका रचनाकाल यद्यपि मालूम नहीं है पर पाटन के संघभण्डार में इसकी एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति है जिसका लेखन-समय वि० सं० १२७३ है इसलिए यह उसके पहले की रचना अवश्य है।

इसे 'छायानाट्यप्रबंध' कहा गया है और इसका रंगमंच पर अभिनय किये जाने के स्पष्ट निर्देश दिये गये हैं, जैसे कि जब राजा साधु हो जाने का विचार व्यक्त करे तो यवनिका के भीतर की ओर साधु के वेश में एक पुतला बैठा दिया जाय (**यवनिकान्तरात् यतिवेशधारी पुत्रकस्तत्र स्थापनीयः, पृ० १५**)।

संस्कृत रूपकों और उपरूपकों की सूची में छायानाटक का कोई उल्लेख नहीं है, इससे उसका स्वरूप क्या होना चाहिए, हम नहीं जानते। अंग्रेजी में छायानाटक को 'शेडो प्ले' कहा जाता है। यहां उक्त प्रकार के नाटकों से कवि का क्या अभिप्राय है, ज्ञात नहीं होता। गुजराती में इस प्रकार का एक नाटक सुभटकृत दूताङ्गद और एक अज्ञात कवि कृत 'शमामृत' है।

शमामृत :

नेमिनाथ के जीवन पर आधारित एक दूसरा एकांकी छायानाटक है।[2]

इसकी प्रस्तावना में कहा गया है—**भगवतः श्रीनेमिनाथस्य यात्रामहोत्सवे विद्वद्भिः सभासद्भिरादिष्टोऽस्मि। यथा-श्रीनेमिनाथस्य शमामृतं नाम छाया-नाटकमभिनयस्वेति (पृ० १)**।

---

1. जैन आत्मानन्द सभा, संख्या ६१, भावनगर, वि० सं० १९७५; इसका जर्मन अनुवाद जेड० डी० एम० जी०, भाग ७१, पृ० ६९ प्रभृति और Indische Shatten-theater में पृ० ४८ प्रभृति में हुआ है; जिनरत्नकोश, पृ० १९५; कीथ, संस्कृत ड्रामा, पृ० ५५ और २६९.
2. जिनरत्नकोश, पृ० ३७८; जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, वि० सं० १९७९ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके रचयिता का नाम रत्नसिंह दिया है। यद्यपि कर्ता ने अपना समय और अन्य परिचय नहीं दिया है पर संभव है कि ये नेमिनाथचरित पर आधारित ४८ पद्यों के समस्यापूर्तिकाव्य 'प्राणप्रिय' के कर्ता हों।

छायानाटकों की इन कुछ रचनाओं को देखकर हम इतना कह सकते हैं कि संस्कृत के छायानाटक संक्षिप्त और सरल एकांकी रचनाएं होती थीं। दोनों रचनाओं में गद्य-पद्य का प्रयोग है पर धर्माभ्युदय में पद्य से कहीं अधिक गद्य है। इनमें कुछ पात्रों से प्राकृत में भी संवाद कराये गये हैं। साहित्य में छाया-नाटक कही जाने वाली शैली अपेक्षाकृत पीछे की है क्योंकि नाट्य-शास्त्र के ग्रन्थों में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। फिर भी इन नाटकों में पुतलिका का प्रयोग इस बात का संकेत कर रहा है कि संस्कृत-नाटक के विकास में कठपुतली के छायानाटकों का भी हाथ है।[१]

हम्मीरमदमर्दन :

इस नाटक[२] का संस्कृत साहित्य में अपना एक स्थान है। पौराणिक घटनाओं पर लिखे संस्कृत नाटक तो बहुत मिले हैं पर उनमें ऐतिहासिक नाटक तो गिने-चुने हैं और उनमें भी समकालिक घटनाओं का चित्रण करने वाले तो नहीं ही हैं। पर सौभाग्य से हम्मीरमदमर्दन की रचना समकालिक ऐतिहासिक घटना पर हुई है।

इसमें गुजरात के बघेलवंशी नरेश वीरधवल और उसके मंत्री वस्तुपाल द्वारा मुसलमानों के आक्रमण के रोकथाम का चित्रण है।

इसके नाम का हम्मीर अरबी शब्द अमीर का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ उस भाषा में 'एक सरदार' होता है। यहाँ यह दिल्ली के सुल्तान के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस सुलतान को नाटक में कहीं-कहीं मिलच्छीकार भी कहा गया है।

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल, पृ० १६६.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ४५९; गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला, संख्या १०, बड़ौदा, १९२०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस नाटक के हम्मीर और नयचन्द्रसूरिरचित पश्चात्कालीन हम्मीर-महाकाव्य के हम्मीर में भ्रान्ति न होना चाहिए क्योंकि वह महाकाव्य मेवाड़ के चौहान राजा हम्मीर के इतिहास से सम्बंधित है और इस नाटक से २०० वर्ष बाद की कृति है।

इस नाटक में ५ अंक हैं। इसका अभिनय वस्तुपाल के पुत्र जयन्तसिंह के अनुरोध पर खम्भात में भीमेश्वर के यात्रोत्सव[1] में हुआ था।

इस नाटक का घटनास्थल खम्भात के आस-पास का है। तुरुष्क हम्मीर तथा यादवनृप सिंहण और लाट-देश के कुछ सरदार खम्भात पर आक्रमण करना चाहते हैं। वीरधवल का मंत्री वस्तुपाल मारवाड़ के राजा, सुराष्ट्र के सरदार तथा महीतट और लाट के कुछ सरदारों के साथ सामना करता है। चरों द्वारा शत्रुदल में फूट डाली जाती है। युद्धस्थल का वर्णन रंगमंच पर दूतों के संवाद द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। दूतप्रयोग द्वारा स्थानीय शत्रुओं को मिलाकर वस्तुपाल दूतों द्वारा ही तुरुष्क सेना में हंगामा, भगदड़ मचवाता है। अन्त में अपनी रणनीति के कारण वह शत्रु को भगा देता है। नृप वीरधवल को इससे इसलिए निराशा होती है कि वह अपने शत्रुओं को कैद न कर सका पर वह अपने मंत्री की रणनीति का उल्लंघन करने में लाचार था। नाटक के अन्त में मिलच्छीकार को बाध्य होकर वीरधवल से संधि करते हुए दिखाया गया है।

इसमें दिये हुए पात्रों के नाम तत्कालीन इतिहास से पहचाने गये हैं।

यह नाटक उत्तरमध्ययुगीन संस्कृत रचना होने से अत्यन्त अलंकारबहुल है और कृत्रिम शैली में लिखा गया है। फिर भी संवाद जोरदार हैं, कविताएं मनोहारिणी एवं उपमाओं से भरी हैं। वस्तुपाल, तेजपाल और वीरधवल का चरित्रचित्रण बहुत अच्छा किया गया है तथा वह जीवन्त है। पांचवें अङ्क में वीरधवल के नरविमान में चढ़कर अनेक स्थानों को देखते हुए लौटने के वर्णन द्वारा कवि ने काल्पनिक युग में विचरण करने का प्रयास किया है। समस्त नाटक में केवल एक स्त्रीपात्र है और वह है रानी जयतलदेवी (वीरधवल की

---

१. 'श्रीभीमेश्वरस्य यात्रायां श्रीमता जयन्तसिंहेन समादिष्टोऽस्मि कमपि प्रबंधमभिनेतु'' आदि।—पृ० १.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानी)। कवि का दावा है कि प्रस्तुत नाटक में नवरसों का समावेश किया गया है। संभव है कि स्त्रीपात्र के बिना शृंगारिक भाव की कमी थी इसलिए उसकी पूर्ति के लिए उसे उपस्थित किया गया है। यदि हम उसे नाटक की नायिका समझें तो वीरधवल को नाटक का मुख्य नायक मानना होगा और नाटककार ने संभवतः ऐसा मानकर ही अन्त में उसी से भरतवाक्य कहलाया भी है। दूसरे रूप में नाटक का मुख्य पात्र वस्तुपाल लगता है क्योंकि उसके महान् व्यक्तित्व से सब घटनाएं आच्छादित हैं। मुद्राराक्षस में चाणक्य की भांति वस्तुपाल को भी इस नाटक में चित्रित करने जैसा प्रयत्न दिखायी पड़ता है।

रचयिता और रचनाकाल—इस नाटक के लेखक जयसिंहसूरि हैं जो वीरसिंहसूरि के शिष्य तथा भड़ौच में मुनिसुव्रतनाथ चैत्य के अधिष्ठाता थे। इस नाटक के कर्ता और द्वितीय जयसिंहसूरि में भ्रान्ति न होना चाहिए क्योंकि द्वितीय जयसिंहसूरि कृष्णर्षिगच्छ के आचार्य तथा महेन्द्रसूरि के शिष्य थे। उन्होंने सं० १३०८ में कुमारपालचरित की रचना की थी।

नाटककार इस कृति में वस्तुपाल-तेजपाल के दान से प्रभावित दिखायी पड़ते हैं। उन्होंने वस्तुपाल के पुत्र के अनुरोध पर इस नाटक की रचना की थी।

इसकी रचना वि० सं० १२७९ अर्थात् जयन्तसिंह के राज्यपालत्व की प्रारंभ-तिथि और जैसलमेर के भण्डार में प्राप्त ताड़पत्रीय प्रति की लेखनतिथि वि० सं० १२८६ के बीच की अवधि में किसी समय हुई होगी।[1]

जयसिंहसूरि की दूसरी कृति ७७ पद्यों में रचित वस्तुपाल-तेजपाल-प्रशस्ति है।

करुणावज्रायुध :

यह एक एकांकी नाटक है।[2] इसकी कथावस्तु में वज्रायुध चक्रवर्ती द्वारा बाज पक्षी को अपना मांस देकर कबूतर की रक्षा करना दिखाया गया है।

---

१. महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन, पृ० १०९.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ६८; जैन आत्मानन्द सभा, संख्या ५६, भावनगर, वि० सं० १९७३; इसका गुजराती अनुवाद अहमदाबाद से वि० सं० १९४३ में प्रकाशित.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसकी रचना वीरधवल के महामात्य वस्तुपाल के अनुरोध से शत्रुंजय तीर्थ पर ऋषभदेव के उत्सव में खेलने के लिए की गई थी।

इस नाटक की कथा का नायक वज्रायुध चक्रवर्ती पूर्वभव मे तीर्थंकर शान्तिनाथ का जीव था। उस भव में उसकी दयालुता एवं धर्मिष्ठता की परीक्षा दो देवों ने कबूतर और बाज का रूप धारण कर की थी। जैनेतर साहित्य में भी यह कथा रूपान्तर में मिलती है, जैसे महाभारत के वनपर्व में शिवि और कपात की कथा और बौद्ध जातक संख्या ४९९ की कथा। यह कथा जैन कथाग्रन्थों में सर्वप्रथम संघदासगणि (लगभग ५०० ई०) की वसुदेवहिण्डी के २१वें लम्भक और पीछे अनेक जैन पुराणों में मिलती है।

यह नाटक मोहराजपराजय, प्रबुद्धरौहिणेय और धर्माभ्युदय की भांति ही जैनधर्म के प्रचार के लिए जनप्रिय कथानक को लेकर रचा गया था। इसका अधिकांश राजा और उसके मंत्री एवं राजा और बाज पक्षी के बीच हुए धार्मिक वाद-विवाद के रूप में है। कभी-कभी विदूषक की हास्योक्तियों से वातावरण में सजीवता आ जाती है परन्तु सब मिलाकर इसमें अभिनय कम है। संवाद की अपेक्षा कविताएँ अधिक हैं। इस छोटे से नाटक में १३७ पद्य पाये जाते हैं। कुछ पद्य ध्यान देने योग्य हैं। विदूषक परलोक के अस्तित्व में संदेह करता है तो राजा उदाहरण द्वारा समाधान करता है :

करस्थमप्येवममी कृषीवलाः क्षिपन्ति बीजं पृथुपंकसंकटे।
वयस्य केनापि कथं विलोकितः समस्ति नास्तीत्यथवा फलोदयः ॥५०॥

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता महाकवि बालचन्द्रसूरि हैं। इनका विस्तृत परिचय हम इनकी अन्यतम कृति वसन्तविलास[1] नामक ऐतिहासिक महाकाव्य के प्रसंग में दे आये हैं।

दक्षिण भारत के कुछ जैन कवियों ने भी संस्कृत में दृश्यकाव्य लिखे हैं। उनमें से अधिक तो नहीं, केवल ४-५ ही कृतियाँ प्रकाश में आई हैं जिनमें चार के कर्ता कवि हस्तिमल्ल हैं और एक के हैं इनके ही वंशज ब्रह्मदेवसूरि।

नाटककार हस्तिमल्ल और उनका समय—दाक्षिणात्य जैन कवियों में संस्कृत नाटककार के रूप में कवि हस्तिमल्ल का एक विशेष स्थान है। हस्तिमल्ल वत्सगोत्री दक्षिणी ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम गोविन्दभट्ट था। वे अपने

१. इस भाग के पृ० ४०८ में.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पिता के पांचवें पुत्र थे। उनके शेष भाई श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण और वर्धमान भी कवि ही थे पर उनसे हम प्रायः अपरिचित हैं।

हस्तिमल्ल के विरुद थे सरस्वतीस्वयंवरवल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्तिरत्नाकर। राजावलीकथा के कर्ता ने कवि को उभयभाषाकविचक्रवर्ती लिखा है।

हस्तिमल्ल स्वयं गृहस्थ थे। उनके वंशज ब्रह्मसूरि ने अपने प्रतिष्ठासारोद्धार में कवि के पुत्र-पौत्रादि का वर्णन किया है और उनका निवासस्थान गुडिपत्तन (तंजौर का दीपगुडि) बतलाया है।

हस्तिमल्ल का असली नाम क्या था, इसका पता नहीं है। यह विरुद उन्हें पाण्ड्य राजा की ओर से मिला था। पाण्ड्य राजा का उल्लेख कवि ने कई स्थानों पर किया है पर वे पाण्ड्य राजा कौन थे और उनकी राजधानी कहाँ थी, कहीं उल्लेख नहीं मिलता है।

हस्तिमल्ल का समय कर्नाटककविचरित्र के कर्ता आर० नरसिंहाचार्य ने सन् १२९० ई० अर्थात् वि० सं० १३४८ निश्चित किया है। स्व० पं० जुगलकिशोर मुख्तार ब्रह्मसूरि को विक्रम की १५वीं शताब्दी का विद्वान् मानते हैं, और हस्तिमल्ल उनके पितामह के पितामह थे, इससे १०० वर्ष पूर्व हस्तिमल्ल का समय चौदहवीं शताब्दी अनुमान किया जा सकता है।

हस्तिमल्ल के अंजनापवनंजय, सुभद्रानाटिका, विक्रान्तकौरव और मैथिलीकल्याण (त्रोटक) ये चार दृश्यकाव्य प्रकाशित हो चुके हैं। इनके द्वारा रचित उदयनराज, भरतराज, अर्जुनराज और मेघेश्वर इन चार नाटकों का उल्लेख और मिलता है। अन्य रचना 'प्रतिष्ठातिलक' का भी उल्लेख मिलता है और सम्भवतः यह प्रति आरा के सिद्धान्तभवन में है। इनके कन्नड भाषा में लिखे आदिपुराण (पुरुचरित) और श्रीपुराण नाम के दो ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं।[1]

यहां उक्त कवि द्वारा रचित ४ दृश्यकाव्यों का परिचय दिया जाता है।

---

१. विशेष परिचय के लिए 'अञ्जनापवनंजय' (माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई) की अंग्रेजी प्रस्तावना, पृ० ५-१४ तथा हिन्दी प्रस्तावना, पृ० ६३-६८ देखें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजनापवनञ्जय :

इस नाटक[1] में ७ अंक हैं। इसमें विद्याधर राजकुमारी अंजना का स्वयंवर, राजकुमार पवनञ्जय के साथ विवाह और उनके पुत्र हनुमान के जन्म का घटना प्रसंग वर्णित है।

अंजना-पवनंजय का अनेक उतार-चढ़ाव से भरा चरित जैन साहित्य-जगत् में सुज्ञात है। विमलसूरि के पउमचरिय के १५-१८ उद्देशक और रविषेण का पद्मपुराण तथा स्वयम्भू के पउमचरिउ की सन्धि १८-१९ इस चरित के आधार हैं पर नाटककार ने इसमें आवश्यक परिवर्तन किये हैं। स्वयंवर की योजना कवि की अपनी कल्पना है। पूर्व चरितों में विवाह के पूर्व ही पवनंजय अंजना से विरक्त था पर यह बात यहाँ एकदम परिवर्तित है। रंगमंच में न दिखाने लायक अन्य घटनाएं, जैसे शिशु हनुमान का विमान से गिरना और शिला चूर हो जाना आदि इसमें नहीं बतलाई गई।

नाटक में कथोपकथन-शैली अच्छी है पर कहीं-कहीं नायक और विदूषक के कथन लम्बे और समासबहुल हो गये हैं। यह नाटक के रूप में एक महाकाव्य जैसा है। इसका रंगमंच पर अभिनय करना कठिन है।

छन्दों की योजना में, दृश्यावली उपस्थित करने में और मुहावरेदार[2] वाक्यों की रचना में कवि पूर्ण दक्ष है।

कुछ मुहावरे ध्यातव्य हैं।

१. दुरवगाहा हि भागधेयानां परिपाकाः। (पृ० ९)
२. न खलु दुष्करं नाम दैवस्य। (पृ० ९७)
३. अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसान्निध्यम्। (पृ० ११५)
४. स्वच्छन्दचारिणः खलु प्रभवो भवन्ति। (पृ० ८६)

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ४; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ४३, प्रो० माधव वासुदेव पटवर्धन द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९५०, इसमें सुभद्रा-नाटिका भी सम्मिलित है।

२. अंजनापवनंजय की अंग्रेजी प्रस्तावना में प्रो० पटवर्धन ने पृ० ४४-४५ में उन सभी मुहावरों का संकलन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभद्रानाटिका :

यह ४ अंकों की नाटिका है।[1] इसमें ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के साथ कच्छराज की पुत्री और विद्याधर नमि की बहन सुभद्रा के परिणय की घटना वर्णित है।

उक्त नाटिका की कथावस्तु जैन-जगत् में सुप्रसिद्ध है। सुभद्रा-भरत के विवाह की चर्चा जिनसेन ने आदिपुराण के ३२वें सर्ग के केवल ५ पद्यों में की है पर कवि हस्तिमल्ल का यह एक नाटकीय विस्तार है और इसे उन्होंने श्रीहर्ष की रत्नावली के अनुसरण पर एक नाटिका का सुन्दर रूप देने का सफल प्रयास किया है। इसमें साहित्यशास्त्रोक्त नाटिका के गुणों का पालन अच्छी तरह हुआ है पर संवादों में कहीं-कहीं विस्तार और समासबहुल पदों का प्रयोग औचित्य की मर्यादा अतिक्रान्त कर देता है। मुहावरे, सुभाषितों से युक्त संवाद इसकी अपनी विशेषता है। कुछ का नमूना इस प्रकार है :

१. **वामे विधौ भोः खलु को न वामः।** (पृ० ५४)

२. **गतं गतं, गन्तव्यमिदानीं चिन्त्यताम्।** (पृ० ७०)

३. **यत्नान्तरनिरपेक्षैव महाभागानां समीहितसिद्धिः।** (पृ० ८३)

४. **कुतो मितभाषिता लघुचेतसाम्।** (पृ० ८६)

विक्रान्तकौरव :

यह ६ अंकों का नाटक है।[2] इसमें हस्तिनापुरनरेश सोमप्रभ के पुत्र कौरवेश्वर (जयकुमार) और काशी के राजा अकम्पन की पुत्री सुलोचना के विवाह का चित्रण किया गया है। इसे सुलोचनानाटक भी कहते हैं।

---

१. माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ४३ में प्रो० मा० वा० पटवर्धन द्वारा सम्पादित, बम्बई, १९५०, यह अंजनापवनञ्जय के साथ प्रकाशित है। इसकी अंग्रेजी प्रस्तावना में नाटिका के अंकों का सार तथा मुहावरों का संकलन (पृ० ५६-५७) दिया गया है।

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३५०; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ३, बम्बई, १९७२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका कथानक जैन-जगत् में सुप्रसिद्ध है। कथावस्तु का आधार जिनसेन-कृत आदिपुराण है जिसमें ४३ से ४५ पर्वों में जयकुमार-सुलोचना का वर्णन है। हस्तिमल्ल ने आदिपुराण के कथानक का पूरी तरह अनुकरण किया है। केवल नामों में कुछ परिवर्तन है। आदिपुराण में कंचुकी राजाओं का वर्णन करता है पर यहां प्रतीहार का नाम दिया है। आदिपुराण में अकंपन की दूसरी पुत्री का नाम लक्ष्मीमती या अक्षमाला है जबकि यहां रत्नमाला। शेष कथानक प्रायः मिलता-जुलता है। इसे नाटकीय रूप में परिवर्तित करने में हस्तिमल्ल ने अपूर्व कौशल दिखाया है। इसमें पद्यों की बहुलता के कारण घटनाप्रवाह में बाधा उपस्थित हुई है पर वैसे सभी संवाद अच्छे हैं। वे सुभाषितों और मुहावरों से भरे हुए हैं। प्राकृत में निर्मित संवाद कहीं-कहीं लम्बे प्रतीत होते हैं। इसमें अनेक नूतन शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक हुआ है, यथा—निष्कुट (गृहाराम), गोसर्ग (प्रभात), पारी, वीटी (पान का बीड़ा), सहसान (मयूर), आन्दोलिका (डोली या शिविका), निष्टाप (भयानक गर्मी), संपेट (क्रुद्ध), अभिसार (आक्रमण) आदि।

मैथिलीकल्याण :

इस नाटक[1] में पांच अंक हैं तथा सीता और राम के स्वयंवर का वर्णन है।

प्रथम चार अंकों में राम-सीता के प्रथम मिलन, आकर्षण, विरह, काम-वेदना आदि का वर्णन है। पांचवें में सीता के स्वयंवर की तैयारी होती है। स्वयंवर में राम वज्रावर्त नामक दिव्यधनुष को तोड़ते हैं और सीता वरमाला डालती है। दोनों का विवाह उत्सवपूर्वक होता है।

सीता के स्वयंवर का वर्णन विमलसूरि के पउमचरिय के उद्देश २८ में और रविषेण के पद्मपुराण, पर्व २८ में तथा स्वयम्भू के पउमचरिउ (सन्धि २१) में दिया गया है। उक्त जैन पुराणों के अनुसार राजा जनक अपने राज्य की रक्षा के उपलक्ष्य में सीता का विवाह राम से करना चाहता है। नारद सीता के घर में आकर उससे निरादर पा उससे बदला लेने की भावना से इस विवाह में बाधक बनता है। वह जनक का अपहरण कराता है और विद्याधरों द्वारा प्रदत्त धनुष

---

१. **जिनरत्नकोश, पृ० ३१५; माणिकचन्द्र दिग० जैन ग्रन्थमाला, पुष्प ५, बम्बई, १९७३, इसका सार तथा समीक्षा 'अंजनापवनंजय' की भूमिका में प्रो० पटवर्धन ने देकर इसमें आये सभी मुहावरों का संकलन किया है**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तोड़ने में सफल वर के साथ विवाह करने का वचन पालता है। पर कविवर हस्तिमल्ल ने नाटकीय अभिनय के योग्य उक्त घटनाओं को न चुन कर उसे प्रारंभ से ही राम-सीता के प्रेम-व्यापार पर आश्रित किया है। वे नायक-नायिका के समागम को कई बार दिखला कर उद्दीपन भावों का चित्रण करते हैं।

हस्तिमल्ल की यह रूपकात्मक अन्तिम कृति है। यह अन्य कृतियों की अपेक्षा सरल तथा प्रवाहपूर्ण है। नाट्यशास्त्र के अनुसार इसे त्रोटक कहना चाहिए जो कि साहित्यदर्पण के अनुसार उपरूपकों का एक भेद है। त्रोटक का लक्षण इस प्रकार है :

सप्ताष्टनवपञ्चांकं दिव्यमानुषसंश्रयम्।
त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यंकं सविदूषकम्॥ ५.२७३

इसमें यह लक्षण पूर्ण घटित होता है।

इसकी संवाद-शैली सुन्दर तथा मुहावरों एवं सुभाषितों से भरपूर है।

ज्योतिष्प्रभानाटक :

इस नाटक[1] की कथावस्तु १६वें तीर्थंकर शान्तिनाथ के नवम पूर्वभव के जीव अमिततेज विद्याधर और त्रिपृष्ठ नारायण की पुत्री ज्योतिष्प्रभा का रोमांटिक चरित्र है। अमिततेज का पावन चरित्र तो गुणभद्र के उत्तरपुराण के ६२वें पर्व में वर्णित है पर वहाँ ज्योतिष्प्रभा के चरित्र का कोई विशेष वर्णन नहीं है। सम्भव है कि इस नाटक का आधार कोई शान्तिनाथचरित होगा जिसमें ज्योतिष्प्रभा के रोमांटिक जीवन का विवेचन हो।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके रचयिता ब्रह्मसूरि[2] हैं जो नाट्याचार्य हस्तिमल्ल के वंशज हैं और उनसे लगभग १०० वर्ष बाद विक्रम की १५वीं शताब्दी में हुए हैं। इनके त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठातिलक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं।

---

१. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४११; यह नाटक बेंगलोर के संस्कृत मासिक पत्र 'काव्याम्बुधि' (सन् १८९३-९४) में प्रकाशित हुआ है; जिनरत्नकोश, पृ० १५१.

२. प्रदोषे जायते प्रातः किं का मंगलवाचकम्।
किं रूपयन्तु तच्चेह ब्रह्मसूरिकृतिश्च का॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस नाटक की रचना भग० शान्तिनाथ के जन्मकल्याण के पूजा-महोत्सव के दिन खेलने के लिए की गई थी।

रम्भामंजरी :

यह एक सट्टक[1] है जो कि असम्पूर्ण है। इसकी केवल तीन ही यवनिकाएं उपलब्ध हैं। इसे भूल से हस्तलिखित और छपी प्रति में नाटिका कहा गया है—'समाप्ता रम्भामंजरी नाटिका'। लेखक ने तो नट और सूत्रधार के माध्यम से इसे सट्टक ही कहा है।

इसका कथानक छोटा है। तदनुसार बनारस का राजा पंगु उपनामधारी जैत्रचन्द्र या जयचन्द्र सात रानियों के होने पर भी अपने को चक्रवर्ती सिद्ध करने के लिए लाटनरेश देवराज की पुत्री रम्भा से विवाह करता है।

यह सट्टक विश्वनाथ की यात्रा में एकत्रित लोगों के मनोरंजनार्थ राजा की इच्छा से अभिनयार्थ लिखा गया था। इसमें जैत्रसिंह के पिता का नाम मल्लदेव और मां का नाम चन्द्रलेखा लिखा है।

लेखक नयचन्द्र ने इस कथानक को अन्यत्र से लेने का एकाधिक बार संकेत किया है। इसके पूर्व जैत्रचन्द्र का कुछ वर्णन प्रबन्धचिन्तामणि, पुरातनप्रबन्ध-संग्रह एवं प्रबन्धकोश में मिलता है। उनमें उसे वाराणसी का राजा तो लिखा है पर उसके पिता के नाम के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। उसकी सात रानियों तथा ८वीं रम्भा के विषय में प्रबन्धों में कोई उल्लेख नहीं है। राजा का उपनाम 'पंगु' या 'पंगुल' था, यह प्रबन्धों में भी पाया जाता है और उसकी जो व्याख्या रम्भामंजरी में दी गई है लगभग वैसी ही प्रबन्धों में भी दी गई है। इससे

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ३२९; रामचन्द्र शास्त्री और बी० केवलदास ने निर्णय-सागर प्रेस, बम्बई से सन् १८८९ में इसे प्रकाशित किया है। इस सट्टक की यवनिकाओं की विषयवस्तु के लिए देखें—डा० जगदीशचन्द्र जैन, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६३३; डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४२६-३१; डा० आ० ने० उपाध्ये, 'नयचन्द्र और उनका ग्रन्थ रम्भामञ्जरी', प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ४११.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्पष्ट हो जाता है कि नयचन्द्र का नायक गहढ़वाल जैत्रचन्द्र (जयचन्द्र) ऐतिहासिक था। उन्होंने कर्पूरमंजरी के ढङ्ग का सट्टक बनाने के लिए कथानक में कुछ और जोड़ा है।

यद्यपि लेखक ने प्रस्तुत कृति को एक तरह से कर्पूरमंजरी से श्रेष्ठ बताया है पर वास्तव में यह कर्पूरमंजरी का अनुकरण है। वसन्तवर्णन, विदूषक और दासी के बीच कलह, विरही राजा का द्वारपाल द्वारा प्रकृति-वर्णन की ओर चित्त ले जाना आदि कर्पूरमञ्जरी के वर्णनों की याद दिलाते हैं। कुछ भाव तो थोड़े अन्तर के साथ दोनों में समान हैं, यथा विदूषक का स्वप्नदर्शन तथा अशोक, बकुल और कुरबक द्वारा राजा की वासनाओं का उत्तेजित होना और प्रेमपत्र का आशय आदि।

यद्यपि कर्पूरमञ्जरी का कथानक छोटा है पर उसकी थोड़ी भी तुलना रम्भामञ्जरी से नहीं की जा सकती। इस सट्टक का उद्देश्य क्या है, यह अन्त तक नहीं ज्ञात होता और न फल की ही प्राप्ति हो पाती है। कथा का अन्त किस प्रकार हुआ, यह जिज्ञासा अन्त तक बनी रहती है। यह एक खण्डित सट्टक है। रम्भामञ्जरी के प्राकृत पद्य उतने प्रभावयुक्त नहीं जैसे कि कर्पूरमञ्जरी के। नयचन्द्र संस्कृत में भावाभिव्यक्ति करने में बड़े पण्डित थे और उनके कुछ पद्य सचमुच में उनकी कवित्वशक्ति के परिचायक हैं। दृश्यकाव्य के रूप में रम्भामञ्जरी का कोई अच्छा प्रभाव नहीं है। सभ्य दर्शकवृन्द के समक्ष रंगस्थल पर एक राजा का एक के बाद दो रानियों से कामविह्वलता दिखलाना कैसे अच्छा हो सकता है? इसके शृङ्गारपूर्ण भाव भी गम्भीर और उदात्त नहीं हैं। चित्रण में भी प्रभाव की अपेक्षा दिखावा अधिक है।

कवि ने नट, सूत्रधार, प्रतिहारी के द्वारा राजा की प्रशंसा में संस्कृत, प्राकृत एवं मराठी छन्दों का प्रयोग किया है। यह एक महत्त्वपूर्ण शैली है कि नयचन्द्र ने संस्कृत बोलने वाले कुछ पात्रों के मुख से प्राकृत पद्य भी कहलाये हैं और प्राकृत बोलने वालों से संस्कृत पद्य कहलाये हैं। सट्टक में संस्कृत का प्रयोग शास्त्रसम्मत न होकर कुछ व्यतिक्रमसूचक है।

रचयिता एवं रचनाकाल—इसके कर्ता नयचन्द्रसूरि हैं। इनका अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थ 'हम्मीरमहाकाव्य' है। उक्त काव्य के प्रसंग में इनका विस्तृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचय द्रष्टव्य है। रचना अपूर्ण होने से इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं हो सका।[1]

ज्ञानचन्द्रोदयनाटक :

इसकी[2] विषयवस्तु ज्ञात नहीं हो सकी पर यह श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय के उत्तर में लिखा हुआ नाटक लगता है। इसके रचयिता सम्राट् अकबरकालीन पद्मसुन्दर हैं। इनकी अन्यतम रचना 'रायमल्लाभ्युदयकाव्य' के प्रसंग में हम इनका परिचय दे आये हैं। इनका साहित्यिक काल वि०सं० १६२६ से १६३९ है।

ज्ञानसूर्योदयनाटक :

यह एक संस्कृत नाटक है।[3] यह भी श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय के उत्तर में लिखी कृति है। प्रबोधचन्द्रोदय में क्षपणक (दिग० जैन मुनि) पात्र को बहुत ही निन्दित एवं घृणित रूप में चित्रित किया गया है। शायद उसी का बदला चुकाने के लिए इसकी रचना की गई है। दोनों रचनाओं में बहुत-कुछ साम्य है। पात्रों के नामों में प्रायः साम्य है, इसके साथ एक ही आशय-वाले बीसों पद्य और गद्यवाक्य थोड़े से शब्दों के हेरफेर के साथ मिलते हैं।

ज्ञानसूर्योदय की अष्टशती प्रबोधचन्द्रोदय की उपनिषत् है। काम, क्रोध, लोभ, दंभ, अहंकार, मन, विवेक आदि एक से हैं। ज्ञानसूर्योदय की दया प्रबोध-चन्द्रोदय की श्रद्धा ही है। दोनों क्रमशः दया और श्रद्धा का गुमना बताते हैं। ज्ञानसूर्योदय में अष्टशती का पति 'प्रबोध' है और प्रबोधचन्द्रोदय में उपनिषत् का पति 'पुरुष' है।

ज्ञानसूर्योदय के कर्ता ने प्रबोधचन्द्रोदय के समान ही बौद्धों का उपहास किया है और क्षपणक के स्थान में सितपट को खड़ा कर श्वेताम्बर-वर्ग का भी। संभव है कि यह 'मुद्रितकुमुदचन्द्र' की प्रतिक्रिया में किया गया हो।

कर्ता एवं समय—इसके रचयिता वादिचन्द्र हैं जो मूलसंघ के भट्टारक ज्ञानभूषण के प्रशिष्य और प्रभाचन्द्र के शिष्य थे। इन्होंने उक्त नाटक को माघ

---

१. कुछ विद्वान् उक्त सट्टक को जैन कवि नयचन्द्र की रचना मानने को तैयार नहीं हैं।

२. जिनरत्नकोश, पृ० १४७.

३. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ३८५.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुदी ८ वि० सं० १६४८ को मधूक नगर (महुआ--गुजरात) में समाप्त किया था।[1] इनका परिचय पहले दे आये हैं।

अन्य नाटकों में आगमगच्छेश मलयचन्द्रसूरिकृत 'मन्मथमथननाट्य' अपरनाम 'स्थूलभद्रनाटक' उल्लेखनीय है। इसकी रचना आचार्य स्थूलभद्र और कोशा (वेश्या) के उपाख्यान पर की गई है। यह गायकवाड़ प्राच्य-विद्या संस्थान की पत्रिका (१९६६–६७) में प्रकाशित हुआ है।

मेघविजयगणिकृत 'युक्तिप्रबोधनाटक'[2] में वाणारसीय मत (दिग० तेरहपन्थ) का खण्डन किया गया है। इस पर स्वोपज्ञ टीका भी मिलती है।

जिनरत्नकोश में कवि अर्हद्दासरचित 'अंजनापवनंजय'[3] और केशवसेन भट्टारककृत 'ऋषभदेवनिर्वाणानन्द'[4] नाटक का उल्लेख मिलता है।

साहित्यिक टीकाएँ :

जैन विद्वानों ने केवल स्वतन्त्र रूप से काव्य-साहित्य की ही सृष्टि नहीं की अपितु आनेवाली पीढ़ी के लिए उस साहित्य को बोधगम्य बनाने के लिए लघु एवं विशालकाय टीकाएँ (विभिन्न नामों से) भी लिखीं। उन टीकाओं का यथासम्भव उल्लेख हम उन-उन काव्यों के प्रसंग में कर आये हैं। फिर भी ग्रन्थ-भण्डारों की प्रकाशित बृहत् सूचियों से अनेक अज्ञात टीकाओं का पता लग रहा है जिन्हें जिज्ञासु लोग कष्ट कर वहां से जान लें।

जैन विद्वानों ने न केवल जैन साहित्य पर ही टीकाएं लिखीं हैं बल्कि साम्प्रदायिकता का मोह छोड़ उन्होंने जैनेतर साहित्य के न्याय, व्याकरण, ज्योतिष आदि ग्रन्थों पर संस्कृत भाषा में बहुविध टीकाएं लिखने के साथ ही जैनेतर काव्यों, नाटकों, दूतकाव्यों आदि पर विशिष्ट एवं समादरणीय टीकाएं भी लिखी हैं जिनमें से अनेकों से संस्कृत का अध्येतावर्ग सुपरिचित एवं लाभान्वित है।

---

१. वसुवेदरसाङ्जाङ्के वर्षे माघे सिताष्टमीदिवसे । (८ ४ ६ १)
श्रीमन्मधूकनगरे सिद्धोऽयं बोधसंरम्भः ॥ ३ ॥

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३२०.

३. वही, पृ० ४.

४. वही, पृ० ५७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कादम्बरी पर एक मात्र प्रकाशित प्राचीन टीका[1] के लेखक भानुचन्द्रगणि-सिद्धिचन्द्रगणि का नाम किस संस्कृतज्ञ को ज्ञात नहीं है ? काव्यप्रकाश के मर्मज्ञ माणिक्यचन्द्रसूरि को उस पर लिखी संकेतटीका[2] के लिए कभी नहीं भूल सकते ।

१५-१६वीं शती में जैन विद्वानों में अनेक टीकाकार हुए हैं जिन्होंने स्वतंत्र रचनाओं की अपेक्षा टीकाएं लिखना ही अपने जीवन का व्रत बना लिया था। खरतरगच्छ के चारित्रवर्धनगणि (१५वीं शती) अनेक साहित्यिक कृतियों पर टीकाएं लिखने के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनकी जैन काव्यों में सूक्ति-मुक्तावली आदि अनेक ग्रन्थों के अतिरिक्त रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, नैषध और शिशुपालवध काव्यों पर लिखी टीकाएं[3] भी मिलती हैं। खरतरगच्छ के ही गुणविनयोपाध्याय (१६वीं शती) ने भी अनेक जैन ग्रन्थों पर टीकाएं लिखने के साथ रघुवंश, नल-दमयन्तीचम्पू, खण्डप्रशस्ति आदि पर टीकाएं[4] लिखी हैं। इसी तरह शान्तिसूरि ने घटकर्परकाव्य, वृन्दावनकाव्य, शिवभद्र-काव्य एवं राक्षसकाव्य पर[5] टीकाएं लिखी हैं।

सर्वाधिक टीकाएं जैन कवियों ने महाकवि कालिदास के काव्यग्रन्थों—रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत पर लिखीं।

'रघुवंश'[6] पर निम्नलिखित टीकाएं निम्नोक्त आचार्यों की मिलती हैं :

१. शिष्यहितैषिणी—चारित्रवर्धन (वि० सं० १५०७)

२. टीका—क्षेमहंस (१६वीं शती)

३. विशेषार्थबोधिका—गुणविनय (वि० सं० १६४६)

---

१. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई.

२. आनन्दाश्रम सिरीज, पूना, १९२१.

३. जिनरत्नकोश.

४. वही.

५. वही, पृ० ११३, ३२९, ३६४, ३८३.

६. वही, पृ० ३२५; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. सुबोधिनी—गुणरत्न (वि० सं० १६६७)

५. अर्थालापनिका—समयसुन्दर (वि० सं० १६९२)

६. टीका—जिनसमुद्रसूरि (१६वीं शती)

७. सुबोधिनी—धर्ममेरु (१७वीं शती)

८. सुगमान्वया—सुमतिविजय (वि० सं० १६९८)

९. टीका—श्रीविजयगणि

१०. टीका—पुण्यहर्ष (१८वीं शती)

दूसरे काव्य कुमारसम्भव[1] पर निम्नांकित टीकाएं जैन विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं :

१. कुमारतात्पर्य—चारित्रवर्धन (१६वीं शती)

२. टीका—क्षेमहंस (१६वीं शती)

३. अवचूरि—मित्ररत्न (वि० सं० १५७४) (सात सर्ग पर्यन्त)

४. टीका—धर्मकीर्ति (दिगम्बर)

५. टीका—जिनसमुद्रसूरि (१६वीं शती)

६. टीका—लक्ष्मीवल्लभ (वि० सं० १७२१)

७. टीका—समयसुन्दर (१७वीं शती)

८. टीका—जिनवल्लभसूरि

९. टीका—कुमारसेन

१०. वृत्ति—कल्याणसागर

११. बालबोधिनी—जिनभद्रसूरि (१५वीं शती)

महाकवि कालिदास के खण्डकाव्य मेघदूत[2] पर भी बहुत-सी जैन टीकाएं मिलती हैं यथा :

---

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९३; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति-ग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २२.

२. जिनरत्नकोश, पृ० ३१३–१४; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २४; समयसुन्दरोपाध्याय ने मेघदूत के प्रथम पद्य के तीन अर्थ किये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. टीका—आसढ़ कवि

२. वृत्ति—क्षेमहंस (१६वीं शती)

३. बालावबोध—महीमेरु

४. अवचूरि—कनककीर्ति (१७वीं शती)

५. ,, ,,—सुमतिविनय

६. ,, ,,—विनयचन्द्र (वि० सं० १६६४)

७. पंजिका—गुणरत्न (१७वीं शती)

८. टीका—चारित्रवर्धनगणि (१५वीं शती)

९. ,, ,,—जिनहंससूरि

१०. ,, ,,—महिमसिंह (वि० सं० १६९३)

११. ,, ,,—सुमतिविजय (१८वीं शती)

१२. ,, ,,—समयसुन्दरोपाध्याय (१७वीं शती)

१३. ,, ,,—श्रीविजयगणि

१४. ,, ,,—विजयसूरि (वि० सं० १७०९)

१५. ,, ,,—मेघराजगणि

१६. मेघलता—अज्ञातकर्तृक

महाकवि कालिदास के काव्यों के पश्चात् महाकवि भारवि के प्रसिद्ध महाकाव्य 'किरातार्जुनीय'[1] पर भी दो जैन टीकाएं मिलती हैं : वि० सं० १६०३ या १६१३ में रचित विनयसुन्दरकृत टीका और तपागच्छ के धर्मविजयगणिकृत दीपिका टीका।

प्राचीन गद्यकाव्यों में सुबन्धु की वासवदत्ता[2] पर सिद्धिचन्द्रगणिकृत वृत्ति मिलती है तथा सर्वचन्द्रकृत वृत्ति और नरसिंहसेनकृत टीका का उल्लेख मिलता है। इसी तरह महाकवि बाणकृत गद्यकाव्य कादम्बरी के पूर्व खण्ड पर भानुचन्द्रगणिकृत तथा उत्तर खण्ड पर सिद्धिचन्द्रगणिकृत टीका[3] प्रकाशित

१. जिनरत्नकोश, पृ० ९१.

२. वही, पृ० ३४८; जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग २, किरण १.

३. जिनरत्नकोश, पृ० ८४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। इस पर सूरचन्द्र (१७वीं शती) कृत एक अन्य टीका का भी उल्लेख मिलता है।

अन्य महाकाव्यों में भट्टिकाव्य पर कुमुदानन्दकृत सुबोधिनी एवं शिशुपालवध[1] महाकाव्य पर चारित्रवर्धन (१५वीं शता०) एवं धर्मरुचि (१७वीं शती) कृत टीकाएं तथा ललितकीर्ति (१७वीं शती) कृत सन्देहध्वान्तदीपिका' टीका मिलती है। समयसुन्दरोपाध्याय ने भी इस काव्य के तृतीय सर्ग पर टीका[2] लिखी है। इसी तरह श्रीहर्ष के नैषधीयचरित काव्य पर ४ टीकाएं[3] मिलती हैं। इनमें सबसे प्राचीन वि० सं० ११७० में लिखी गई मुनिचन्द्रसूरिकृत टीका है। दूसरी टीका वि० सं० १५११ में चारित्रवर्धन (खरतरगच्छ) ने तथा तीसरी जिनराजसूरि (खरतरगच्छ, १७वीं शती) ने लिखी। तपागच्छीय रत्नचन्द्रगणि (१७वीं शती) कृत सुबोधिका नामक टीका भी उक्त काव्य पर मिलती है।

अन्य जैनेतर काव्यों में से 'नलोदय' पर आदित्यसूरिकृत टीका, राघवपाण्डवीय[4] पर पद्मनन्दि, पुष्पदन्त और चारित्रवर्धनकृत टीकाएं, खण्डप्रशस्ति[5] (हनुमत्कृता) पर धर्मशेखरसूरि (वि० सं० १५०१) कृत वृत्ति, गुणविनयकृत सुबोधिका (वि० सं० १६४१) एवं अज्ञातकर्तृक वृत्ति, घटकर्परकाव्य[6] पर शान्तिसूरि एवं पूर्णचन्द्रकृत टीकाएं, वृन्दावनकाव्य, शिवभद्रकाव्य और राक्षसकाव्य पर शान्तिसूरिकृत[7] टीकाएं, दुर्घटकाव्य[8] पर पुण्यशीलमुनिकृत टीका और जगदाभरणकाव्य पर ज्ञानप्रमोदकृत टीका मिलती है।

चम्पूकाव्यों में दमयन्तीचम्पू[9] पर प्रबोधमाणिक्यकृत टिप्पणी तथा चण्डपालकृत टीका एवं नलचम्पू पर गुणविनयगणि कृत टीका मिलती है।

---

१. वही, पृ० ३३४; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २५.
२. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २५.
३. जिनरत्नकोश, पृ० २१९.
४. वही, पृ० ३२१.
५. वही, पृ० १०१.
६-७. वही, पृ० ११३, ३२९, ३६४, ३८३.
८. वही, पृ० ४६५.
९. वही, पृ० १६६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुभाषितों में भर्तृहरि के शतकत्रय[1] पर धनदराज (वि० सं० १४९०), धनसार-सूरि एवं अभयकुशल (वि०सं० १७५५) तथा रामविजयोपाध्याय (वि०सं० १७८८) कृत टीकाएं मिलती हैं। उनके केवल वैराग्यशतक[2] पर गुणविनयोपाध्याय (वि०सं० १६४७), सहजकीर्ति (१७वीं शती), जिनसमुद्र (वि०सं० १७४०) एवं ज्ञान-सागर (१८वीं शती) कृत टीकाएं लिखी गई हैं। उनके केवल शृंगारशतक पर जिनवल्लभसूरि (१२वीं शती) कृत टीका मिलती है। १८वीं शती के राम-विजय (रूपचन्द्र) ने भर्तृहरिशतक एवं अमरुशतक[3] पर टबार्थ लिखे हैं।

जैनेतर नाटकों में कवि मुरारि के अनर्घराघव[4] पर तपागच्छीय जिनहर्षगणि-कृत वृत्ति, नरचन्द्रसूरि (१३वीं शती) कृत टिप्पण और देवप्रभसूरिकृत रहस्यादर्श टीका मिलती है। इसी तरह श्रीकृष्ण मिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय[5] नाटकपर रत्नशेखरसूरि, जिनहर्ष तथा कामदासकृत वृत्तियां मिलती हैं। प्राकृत के प्रसिद्ध सट्टक[6] कर्पूरमञ्जरी पर भी प्रेमराजकृत लघुटीका एवं धर्मचन्द्र (१६वीं शती) कृत टीका मिलती है।

प्राचीन जैन ग्रन्थभण्डारों की समय-समय पर प्रकाशित होनेवाली सूचियों में हमें ऐसे अन्य काव्यग्रन्थों पर टीकाएं लिखे जाने की सूचनाएं मिलती हैं जिन सबका संकलन यहां सम्भव नहीं है। ये सब टीकाएं जैन मनीषियों की साम्प्र-दायिक भावना-रहित साहित्यिक सेवा[7] को बतलाती हैं।

---

१. वही, पृ० ३७०.

२. वही, पृ० ३६६; मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, खण्ड २, पृ० २५.

३. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, द्वितीय खण्ड, पृ० २१.

४. जिनरत्नकोश, पृ० ७.

५ वही, पृ० २६५; जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग १, किरण १.

६. जिनरत्नकोश, पृ० ६८.

७. साम्प्रदायिकता की भावना से ऊपर उठकर साहित्य-सेवा के उदाहरण और भी मिलते हैं। इसके लिए देखें—श्री अगरचन्द नाहटा के लेख : दिगम्बर ग्रन्थों पर श्वेताम्बर विद्वानों की टीकाएं एवं अनुवाद (वीरवाणी, '.२३) तथा जैन ग्रन्थों पर जैनेतर टीकाएं (भारतीय विद्या, २. ३-४).

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

अंकलेश्वर २९१
अंगदेश २९२
अंचलगच्छ ११०, १५७, १९७ १९९, २०३, ३१२, ३१४, ३५१, ३६३, ४६२, ५१६, ५१८, ५५०
अंचलगच्छ-पट्टावली ४५६
अंजना १३९, १६०, ५९५
अंजनाचरित १३९
अंजनापवनंजय ५९४, ५९५, ६०२
अंजनासुन्दरी १८३
अंजनासुन्दरीचरित १८३
अंबड ७३
अकंपन १७८, ५९६, ५९७
अकबर १०,६६,६७, ७८, १२५, १५७, १५८, २१७, २१९, २२९, ३१३, ४३२-४३५, ५२३, ६०१
अकबरशाहिश्रृंगारदर्पण ६७, ४३२
अकलंक २३५, २७९, ३१७, ५२६
अकलंककथा ३१७
अकालवर्ष ६२
अक्षमाला ५९७
अक्षयतृतीयाकथा २६२, ३६७, ३७१
अक्षयविधानकथा ३७१
अगडदत्त १४३, २५१, ३०८
अगडदत्तपुराण ३०८
अगरचन्द नाहटा ४१४, ४७३
अग्नि १८४
अग्निभूति १९५
अग्निमुख १३२
अग्निशर्मा २६७, ३४१, ५०९
अघटकुमार ३११
अघटकुमारकथा ३११
अघटनृपकुमारकथा ३११
अच्चंकारिभट्टिकाकथा ३५९
अच्युतेन्द्र ४८२
अज ८९
अजमेर ४१०, ४५७
अजयदेव ४२३, ५८६
अजयपाल ३९९, ४१०, ४२३, ५२२, ५८३, ५८५, ५८६
अजयमेरु ९
अजातपुत्रकथा ३६३
अजातशत्रु १९१
अजापुत्र ३२०
अजापुत्रकथा ५१६
अजापुत्रकथानक ३२०
अजितंजय ४८२
अजितदेव ११५, २५७
अजितदेवसूरि २०२
अजितनाथ ६०, ७२, ९५, ५८२
अजितनाथपुराण ९५
अजितप्रभसूरि १०७, ३२६, ३३४
अजितशान्तिस्तव ५६८
अजितशान्तिस्तवन ५६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजितसागर ३१०
अजितसिंहसूरि ८४
अजितसेन ६५, १५०, २९२, ३५३, ४८२
अजितसेना ४८२
अजियसंतिथय ५६५
अणहिलपाटन ३००, ४२१, ४५१
अणहिलपुर ९, १२९, ३९७, ३९८, ४२४, ४४२, ४४३, ४६४, ५८४
अणहिलपुरपाटन ४६५
अणहिलवाड ४०३, ४०४, ४४३
अणहिल्लपत्तन ४०६, ५०२
अणहिल्लपुर १०२, ११५, ४१७, ५३६
अणाढियदेव १४१
अतिभद्र २६१
अतिमुक्तक १९४, १९७, २४४
अतिमुक्तकचरित १७१, १९७
अथर्वण ३८४
अथर्ववेद १२७, १४२, ४३६, ५६३
अदीनशत्रु ११०
अद्दष्टगार ५३३
अध्यर्धशतक ५६३
अध्यात्मकमलमार्तण्ड १५८
अध्यात्मकल्पद्रुम १४८, २१७
अध्यात्माष्टक २८७
अनंगसिंहादिकथा २६५
अनंगसुन्दरी ३५६
अनंगसुन्दरीकथा ३५६
अनगारधर्मामृत ५०५
अनन्तकीर्ति २०८
अनन्तचतुर्दशीपूजाकथा ३७१
अनन्तनाथचरित १०४
अनन्तनाथपुराण १०४
अनन्तनाथस्तोत्र ९१
अनन्तनाहचरिय ८५
अनन्तभूषण ३७०
अनन्तवीर्य ३६८
अनन्तव्रतकथा ३७१
अनन्तव्रतविधानकथा ३७१
अनन्तहंस १६७, २६५, २७५, ३७१
अनर्घराघव ६०७
अनर्घराघवटिप्पण २५१
अनर्घराघवनाटक ४३९
अनाथमुनिकथा ३१८
अनीतिपुर ३०५
अनुत्तरोववाइयदसाओ १६८
अनुभवशतक २००
अनुभवसारविधि १३८
अनुयोगद्वार ५
अनुयोगद्वारसूत्र ३३४
अनेकार्थनाममाला ५२७
अन्तःकृद्दशांग १४७
अन्तकृतदशांग २९८
अन्तगड २४५
अन्तगडदसा १९७
अन्तरकथासंग्रह २५३
अन्तर्कथासंग्रह ४२९
अन्धकवृष्णि १४२
अन्निकाचार्य ३१९
अन्निकाचार्य-पुष्पचूलाकथा ३१९
अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ५६६
अन्योक्तिमुक्तामहोदधि २१८, २५३
अन्योक्तिमुक्तावली ५६०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्योक्तिशतक ५६०
अबंधनगर १४९
अबुलफज़ल ४३३–४३५
अब्दुल रहमान ५६१
अभय ५०६
अभयकीर्ति ४५७
अभयकुमार ६१, ६३, ७४, १६०, १७७, १९१, १९२, ५०७
अभयकुमारचरित १९१, ४९५
अभयकुशल ६०७
अभयचन्द्र ३७९
अभयतिलकगणि १९३, ३९९
अभयदेव ८८, २०५, २०६, २३८, २४८, ३५०, ३६०
अभयदेवसूरि ७१, ८०, ८२, ८९, १०२, १०९, १२९, १३३, १६४, १९३, २३८, ३४५, ४९८, ५६६
अभयदेवाचार्य ४२१
अभयधर्मवाचक २६५
अभयनन्दि ११९, ३८६, ४१६, ४८३, ४८४
अभयमति ५४०
अभयमती २८४–२८७
अभयरुचि २८४–२८७, ५४०
अभयश्रीकथा ३६०
अभयसिंह १९६, ३८६
अभयसिंहकथा ३३३
अभयसिंहसूरि ३८६
अभयसेन ४६
अभिज्ञानशाकुंतल ८९
अभिधानराजेन्द्र ३६९
अभिनन्दननाथ ८०
अभिनवचारुकीर्ति ५५८, ५५९
अभिनवपम्प ११९
अभिनिष्क्रमण २००
अभ्यंकर ११३
अमम १२७
अममस्वामिचरित ११२, १२७, ४४४
अमरकेतु ३४८
अमरकोष ५५६
अमरगुप्त २६८
अमरचन्द्र २५०, ३२१, ३२२, ३७२, ४०४, ४२७, ४२८
अमरचन्द्रसूरि १८, ३०, ७६, ६४, २५९, ५०२, ५१२, ५१४, ५१५
अमरतेजा-धर्मबुद्धिकथा ३१६
अमरदत्त १०७, ३२२, ५०९
अमरदत्त-मित्रानन्दकथानक ३२२
अमरदास ४३
अमरविजय ३१९
अमरसिंह १०३, २५७
अमरसुन्दर १६७
अमरसुन्दरसूरि १६८
अमरसेन ३२२
अमरसेन-वज्रसेनकथानक ३२२
अमरसेनवज्रसेनादिकथादशक २६४
अमरुशतक ६०७
अमितगति २७२–२७५, ५६०, ५६२
अमिततेज विद्याधर ५९८
अमितसेन ४६
अमीर ५९०
अमृतदेवसूरि १३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमृतधर्म १९६, २९१, २९४, ३६९ ४५४
अमृताम्र ५०९
अमोघवर्ष ९, १६, ३८, ५९, ४६७
अम्बड १६१, १६७, १९५, ३८०, ३८१, ४१५
अम्बडकथा ३८१
अम्बडचरित १६७, ३८१
अम्बादेवी ४४४
अम्बालाल प्रेमचन्द शाह २१३
अम्बिकाकथा ५३
अम्बिकास्तवन ५६९
अम्बिकास्तोत्र ५०१
अम्बुधिनेमि ५३६
अम्म ७१, ७२
अयोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ५६६
अयोध्या ३६, ६१, १७८, २९१, ३३८, ३४०, ५१७, ५२५, ५२९, ५३०, ५३४
अरनाथ ७३, ८६, ११०, १३०, १३२
अरब ४२७
अरविन्द ११८
अरस्तू २६, ५८१
अरह १४६
अरिकेशरी तृतीय ५४१
अरिकेसरिन् २४०
अरिमर्दन २९२
अरिष्टनेमि ३६१, ३९३
अरिष्टनेमिपुराणसंग्रह ४३
अरिसिंह ४०४, ४३७, ५०२
अरिसिंह ठक्कुर ४४१, ५१४
अरुणदेव १०३
अरुणमणि ९५, ९६
अर्ककीर्ति ५८, १७८
अर्गलपुर १५८
अर्जुन ४९९, ५००, ५२७
अर्जुनदेव ४४५
अर्जुनमालाकार १९५, १९९
अर्जुनमाली १९९
अर्जुनराज ५९४
अर्णोराज ३९८, ४००, ४०१, ४०५, ४१०, ४१५, ४३०, ५८३
अर्थालापनिका ६०४
अर्बुद प्राचीन लेखसंदोह ४७१
अर्बुदाचल प्रदक्षिणा लेखसंग्रह ४७१
अर्हद्दत्त २६८
अर्हद्गीता ७९
अर्हद्दास १४, ११४, २६०, ५०४, ५०५, ५४४, ५६०, ६०२
अर्हन्मुनि ४१
अलंकारप्रबोध ५१४
अलंकारमण्डन ५२१
अलंकारमहोदधिकारिका ४४०
अलबदाउनी ४३४
अलाउद्दीन ४११–४१३, ४२६
अवकर्णक १६२
अवचूरि ६०४, ६०५
अवन्तिसुकुमाल २९९
अवन्तिसुकुमालकथा २९९
अवन्ती ४५, ३५५, ३७६
अशनिघोष १०७, १०८, ४९३, ४९४, ५०९
अशनिनिर्घोष १०६
अशनिवेग ५५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अशोक १२७, १८८, २०४, ३१७, ३५३, ४६८
अशोकचन्द्र १९१
अशोकदत्त २५०
अश्वग्रीव ९०, ४८५
अश्वघोष १४, २५, १८६, १८८, ३३२
अश्वराज ४०५, ५०२
अश्वसेन ८८, ४९३
अष्टकर्मविपाक २४५
अष्टप्रकारपूजाकथा ३७१
अष्टलक्षी ५२३
अष्टादशकथा २६४
अष्टाध्यायी ५७२
अष्टापद जिनालय ५१५
अष्टाह्निका ३७२
अष्टाह्निकाकथा ३७१
अष्टाह्निकापूजा ५२
असंगल ११८
असग ९७, १०४, १२६, ४८४–४८६
अहमदाबाद १३, ५४, ८७, १७६, २५२, ३१७, ४३३, ४४१, ४५५, ४६५, ५७१
अहिच्छत्रपुर ४८०
आइनेअकबरी ४३३
आंचलिकगच्छ ९८
आकाशपञ्चमीकथा ३७१
आक्खाणयमणिकोस २४२
आख्यानकमणिकोश ७२, ८५, २४२
आख्यानकमणिकोश-वृत्ति २४२
आख्यानमणिकोश ९२, ३०४
आगमगच्छ १३४, २०२, २४७, २६१, ३३०, ३५१
आगमगच्छेश ६०२
आगमसार ५२
आगरा १३, १५८, २१७, ४३४, ४६३, ५६२
आघाटपुर ९
आचारांग ३, ७०, ५६४
आचारोपदेश ३८६, ४१६, ५५१
आजम खाँ ४३३
आशासुन्दर ३५३
आत्मबोधकुलक ९२
आत्मभक्तामर, ५६७
आत्मभावद्वात्रिंशिका २००
आत्मानुशासन ५६०
आदिजिन ५५२
आदित्यव्रतकथा ३७२
आदित्यसूरि ६०६
आदिनाथ ६३, १६६, ४०८, ४३८, ४४४, ५०२, ५४३
आदिनाथचरित्र ९५
आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ३९, १८८, २३५
आदिनाथपुराण ९५
आदिनाथमंदिर ४५१
आदिनाथस्तोत्र ५०१, ५०२, ५६८
आदिनाहचरिय ८०, ३५०
आदिपुराण ४६, ५१, ५५, ६६, ९५, १८७, ४५०, ४९०, ५४४, ५४८, ५९४, ५९६, ५९७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदीश्वर ७२
आदीश्वर जिनालय ५८३
आनंदवंश ३७
आनंदीबाई २६३
आनन्द ७३, ११८, १९४, २६८, ४४४
आनन्दकुशल २३०
आनन्दप्रभ २६१
आनन्दप्रमोद ११०
आनन्दमेरु ६६, ६७, १२५, ४३२
आनन्दरत्नसूरि २६१
आनन्दविजय ४६४
आनन्दसुन्दर २५४, ३५३
आनन्दसुन्दरकाव्य १९९
आनन्दसूरि ९२, २५९
आनन्दादिश्रावकचरित १९९
आनर्तपुर १८५
आन्ध्रप्रदेश ४६
आबू ३६४, ३९८, ४०४, ४४४, ४४६, ४६५, ४६७, ४६९, ४७०, ४७१, ४७३, ५०२
आभड ४२८
आभाणशतक ५६०
आभीर ४१०
आभू ४४६
आम ४२२
आमण ४४५
आमनागावलोक ४२१
आम राजा ५७३
आमलकल्पा ८९
आमेर २९१, ४४१
आम्रकवि ७१
आम्रदेव ७२, ८५, ३०४
आम्रदेवसूरि २४३
आम्रदेवोपाध्याय ९२
आम्रभट ४१०, ४१६
आर० नरसिंहाचार ५५९, ५९४
आरा ९५, २८९, ५९४
आराधना २७३, ३४२
आराधना-कथाकोष १६५
आराधनाशास्त्र ९१
आराधना-सत्कथा-प्रबंध २३६
आरामतनय २४९
आरामनन्दनकथा ३२०
आरामनन्दनचौपाई ३२०
आरामशोभाकथा ३५६
आरामशोभाचरित्र ४१७
आर्द्रक १७७
आर्द्रककुमार १७७
आर्द्रककुमारचरित १७७
आर्द्रकुमार ७३, ७४, १९५
आर्द्रदेव ४९०
आर्य ५५७
आर्यआषाढकथा ३३३
आर्यखपट २०६
आर्यनन्दि ४६, ५९, ५३८
आर्यरक्षित ४, २०२
आर्यरक्षितसूरि २०६
आर्षभीमचरित्र ३१०
आलापकस्वरूपजम्बूदृष्टान्त १५७
आल्सडोर्फ १४४, ३०८
आवश्यक ५, ७६, २४३, २७१, ४४८
आवश्यककथासंग्रह २६४

आवश्यकचूर्णि ५, १४३, २०९ ३९०
आवश्यकटीका ३६३, ५१६
आवश्यकनिर्युक्ति ५, २४६, ३१९
आवश्यकनिर्युक्ति-चूर्णि ३४
आवस्सय २४५
आशाधर १४, ६५, १२८, १८३, ४६१, ४८४, ५०५, ५६८
आशापल्ली ३४५, ४१५, ४४३
आशाराज ४१७, ५०२
आशाशाह १३
आशुक ४४८
आशुकवि ५१४
आषाढ ७१
आषाढभूति ५७२
आसड २३४, ४०८
आसढ़कवि ६०५
आसढमुनि ५५९
आसापल्लिपुरी ८७
इक्ष्वाकु ३६, ९२, ४८०, ५३१
इण्डियन एण्टीक्वेरी ४६९
इण्डोचीन ३८९
इण्डोनेशिया ३८९
इन्दुदूत ४६४, ५४६, ५५२, ५५३
इन्दुमती ८९, ४८७
इन्द्र १८५, २१३, २३६, ३७८, ४७८, ५३६, ५६३, ५७२
इन्द्रगुरु ४१
इन्द्रजालिककथा ३३३
इन्द्रदेवरस २९५
इन्द्रनन्दि ११९, ४५०
इन्द्रभूति ८६, १९५
इन्द्रहंसगणि १०४, १४०, २२७
इन्द्रायुध ४५
इलाचीपुत्र ३१८
इलाचीपुत्रकथा ३१८
इलापतिराज १२७
इलाहाबाद ३९४, ३९६, ४३६
इष्टार्थसाधक ३६२
इसिदत्ताचरिय ३४६
इसिमण्डलथोत्त ५६५
ईडर ५१, १८०, २४८, ४५६–४५८
ईरान १७७
ईलियड २७
ईश्वरसेन ४६
ईसाई ५८५
ई० हुल्श ४६९
उकेशगच्छ ३५२
उकेशगच्छीय-पट्टावली ४५६
उग्रसेन ४७९
उज्जयिनी १६३, २०१, २३५, २८४, २९२, २९७, ३७४, ३८४, ३८५, ५३३–५३५, ५५१
उज्जैन ९, ३७, २१३, २६७, २९१, २९२, २९९, ३४७, ३५६
उज्जैनी १९४, २०९, २७१, ३०८, ३११, ३७८
उड़ीसा ८, १५२, १५३, ४६७, ४६८
उणादिनाममाला २४५
उत्तमकुमार ३०८
उत्तमकुमारचरित ३०८
उत्तमपुर १८४, १८५
उत्तमर्षि २५३
उत्तमविजय १९६
उत्तर कोशल ४८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरपुराण १७, ३४, ४१, ५१, ५२, ५५, ६०, ६६, ८९, १५०, १५४, १७०, ३०१, ४४२, ४५०, ४६१, ४८०, ४८१, ४८५, ४८६, ४९०, ५०३, ५९८
उत्तर प्रदेश ८, ४८०
उत्तररामचरित ५७५, ५७६
उत्तराध्ययन ४४, १६०, १६१, १९७, २४३, २४५, २६९, २७१, ३०८, ३१८, ४४८, ५६४, ५७२
उत्तराध्ययनकथाएँ २६४
उत्तराध्ययनकथासंग्रह २१७, २६४
उत्तराध्ययनचूर्णि २०९
उत्तराध्ययनटीका ३०४, ३५८
उत्तराध्ययननिर्युक्ति २०९
उत्तराध्ययनवृत्ति ९२, ३०८
उत्तरापथ ३४१
उदयचन्द्र ३१३
उद५दीपिका ७८
उदयधर्म २६१
उदयधर्मगणि ३२८
उदयन २०१, ४१०, ४९४
उदयनचरित्र १९४
उदयनन्दि २०७
उदयनराजकथा १९४
उदयप्रभ ११५, २५८, २६६, ४०३
उदयप्रभसूरि १८, २५, ५०, १२१, १२२, १५४, २५९, ३५३, ४०८, ४०९, ४२०, ४३८
उदयभूषण ५९४
उदयराज ४४५
उदयविजय १४०
उदयवीरगणि १२५
उदयसागर ११०, १७६
उदयसागरगणि ८९४
उदायन ७३, ७४, १९६
उदायननृपप्रबन्ध १९६
उदायनराजकथा १९६
उदायनराजचरित्र १९७
उदायी ७४
उद्योतनसूरि ३३, ३९, ४२, ४८, ९२, १५६, १७९, १८०, १८७, १८८, २६९, २८६, ३०४, ३३५, ३४१, ३४३, ४५१, ५३१
उद्योतपंचमीकथा ३७२
उद्योतसागर १६९, १७४
उपकेशगच्छ ८३, २२९, ३६२
उपदेशकंदली २३३, २३४, ४०८
उपदेशचिन्तामणि २३३, ५१८, ५६०
उपदेशतरंगिणी २२८, २३३, २४६, ३३१, ३८३, ४२९, ४३०, ५१४, ५६०
उपदेशपद ३२५, ३२९, ३३१, ३३२, ५५९
उपदेशप्रकरण २३३
उपदेशप्रासाद २३४, २६२, ३१८, ३१९, ३२४, ३२५, ३२७, ३२८, ३३१, ३५७, ३५९, ३७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपदेशमाला ११५, १५४, २३३, २५०, २५५, ३१८, ३१९, ३२४, ५५९
उपदेशमालाकथानकछप्पय १२२
उपदेशमाला-कथासमास २५०
उपदेशमाला-प्रकरण २३३, २३४
उपदेशरत्नाकर २३४
उपदेशरसायन २३३
उपदेशवृत्ति ३३१
उपदेशसंग्रह २६३
उपदेशसप्तति ४३०
उपदेशामृत २००
उपमितिभवप्रपंचा ८६, १२८
उपमितिभवप्रपंचाकथा १३४, २७६ ३४२
उपमितिभवप्रपंचाकथासारोद्धार २८०
उपमितिभवप्रपंचाकथोद्धार २८०
उपमितिभवप्रपंचानामसमुच्चय २८०
उपमितिभवप्रपंचोद्धार २८०
उपसर्गमण्डन ५२१
उपासकदशाकथा १९९, २६४
उपासकाचार २७३
उपासकाध्ययन ५४०
उपासकाध्ययन-टीका ५४१
उमाकान्त प्रेमानन्द शाह २०९
उमास्वाति १२८
उर्वशी ५७२
उलुगखाँ ४२६
उल्लूखान ४११, ४१२
उवएसमाला ३२४
उवसग्गहर ५६४, ५७१
उवसग्गहरप्रभावकथा ३७०
उवसग्गहरस्तोत्र ५५५, ५६५, ५६७
उवासगदसा २६९
उषा ५६३
ऋग्वेद ४३६, ५६३, ५७२
ऋद्धिचन्द्र ३१३
ऋषभ ७, ३६, ५३, ५५, ७७, ७९, ९०–९२, ११५, १५८, ३६०, ५१७, ५२४, ५२९
ऋषभदत्त ७३
ऋषभदास २१७, ३६२
ऋषभदेव १०, ५६, ५७, ७४, ८०, ९३, १३२, १४२, १६०, १७६, १७९, १८१, २५८, ३०४, ३४२, ५११, ५२२, ५३०, ५५६, ५५७, ५६४, ५९३, ५९६
ऋषभदेवचरित ६६, ८०, ९५, ६६
ऋषभदेवनिर्वाणानन्दनाटक ६०२
ऋषभपंचाशिका ५३५, ५६५
ऋषभपुर ३४०
ऋषभभक्तामर ५६७
ऋषभमहिम्नस्तोत्र ५५५
ऋषभवीरस्तव १४८
ऋषभशतक २५६
ऋषिगुप्त ४६
ऋषिदत्ता ३४६
ऋषिदत्ताचरित ३४६
ऋषिदत्तापुराण ३४७
ऋषिदत्तासतीआख्यान ३४७
ऋषिभाषितसूत्र १६०, १६६, १६७, १७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषिमण्डलस्तोत्रगतकथा ३७१
एकादश-गणधरचरित २६६
एकादशीव्रतकथा ३७२
एकीभावस्तोत्र २८७, ५६८
ए० गेरिनो ४७०
एजर्टन ३८८
एणिका ३४०
एन० डब्ल्यू० ब्राउन २१३
एपिग्राफिया कर्णाटिका ४६९
एबरक्रोम्बी २६
एम० डिक्सन २६
एलाचार्य ५९
एलाषाढ २७१
एहोले ४६७
ऐल ४३
ओडयदेव १८, ११९, १५२, ५३८
ओडेय १५२, १५३
ओसवाल २२९, ४४७
ओडिसी २७
औदार्यचिन्तामणि २४८
औपपातिक १६७
औरंगाबाद ५५२
कंकाली टीला ४४९
कंचनपुर ३०४
कंचनमाला १४५
कंचनरथ ३४०
कंचुकी ५९७
कंडरीक ७३, २७१
कंस १२७, १३१, १९७, ५८२
कंसवध ५७२
कक्कसूरि २२९, ३३०, ३६२
कक्कुक ४६६
कच्छ ४१०
कच्छराज ५९६
कच्छवाहा १९
कछवाहा ४६७
कटाहद्वीप ३८४
कट्टगेरी ११९
कठ ८८
कडब ४६७
कण्टेश्वरी ४१५
कण्हचरिय १३१
कथाकल्लोलिनी २५५
कथाकोश ४७, २३६, २३७, २३९, २४४, २४६, २४७, २९९, ३१०, ३३२, २८७
कथाकोशप्रकरण २३७, २३८
कथाकोष १६५
कथाकोषप्रकरण २३८, ३१६, ३४५, ३६०
कथाग्रन्थ २५३, २५५
कथाद्वात्रिंशिका २५५
कथानककोश २३९, २५३
कथानुक्रमणिका २५३
कथाप्रबन्ध २५५
कथामहोदधि २४३
कथारत्नकोश ९१, २४०
कथारत्नकोष ८९
कथारत्नसागर २५१, ४३९
कथारत्नाकर २१८, २५१, ३८८
कथारत्नाकरोद्धार २५३
कथार्णव २५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथावली २४८
कथाशतक २५५
कथासंग्रह २५३, २५४, २९९, ३३२, ३८८
कथासंचय २५५
कथासमास २५०
कथासमुच्चय २५५
कथासरित्सागर ३७५, ३८२
कदम्ब ८, १८६
कनक ८८
कनककीर्ति ६०५
कनककुशल ३२४, ३६६, ३६७, ३७१, ३७२, ३५७, ३५८
कनककुशलगणि २६१, ३५९, ३६८
कनकचन्द्रसूरि १७५
कनकध्वज १७५
कनकनन्दि ११९
कनकनिधान २१२
कनकपुर १४९
कनकप्रभ ११०, १३२, १७१
कनकप्रभसूरि ५०, ११२, २७१
कनकबाहु ८९
कनकमंजरी १६३
कनकमाला १६३, ३०३, ३४८
कनकरथ २६१, ३२४, ३४४, ३४६
कनकरथकथा ३२४
कनकरथचरित ३२४
कनकवती ४९६, ४९७
कनकविजय ११७, २१८
कनकविजयगणि २६४
कनकवेग ८८
कनकश्रेष्ठ्यादिकथा २६५
कनकसुन्दरी १७५
कनकसेन ६५, १५०
कनकसोम २१२
कनकामर १६५
कनकावती ३२२, ३५८
कनकावतीआख्यान ३५९
कनकावतीचरित ३५८
कनकावली ३०३
कन्नान नगर ४२७
कन्नौज १३, २३६, ४२१, ४२२, ५७३
कपडवणज ५५३
कपिलकेवली ७३
कपिष्ठ ४८५
कमठ ८८, ८९, १२५
कमलप्रभसूरि १८२
कमलभव १८८
कमलराज ३१२
कमलविजय १२५
कमलविजयगणि २१८
कमलश्रेष्ठी १२७
कमलसंयमोपाध्याय २१२
कमलसेन १०३, १७४, ३०४
कमला ९९
कमलावती ३४८, ३५८
कमलावतीकथा ३५८
कमलावतीचरित ३५८
कमलावतीरास ३५८
कयवन्नाकथा ३१६
करकण्डु १६०–१६२, १६४, १६५
करकण्डुचरिउ १६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करकण्डुचरित १६५, १६६
करिणी ३४९
करिराजकथा ३२३
करिराजमहीपाल, २६१
करुणावज्रायुध ५९२
कर्क २४०
कर्ण ३९७, ४०२, ५१३, ५२७
कर्णदेव ४४४, ४४६, ४४७
कर्णराज ५४१
कर्णसिंह ५२
कर्णाट ४१५
कर्णाटक ५९, १८८, २४०, ४७०
कर्णामृतपुराण ६६
कर्नाटक ४६, ४७, ६४, ११९, ४४१, ५९४
कर्पूरकथामहोदधि २४३
कर्पूरप्रकर ५६०
कर्पूरप्रकरटीका १३९ २४४
कर्पूरप्रकरणटीका १५४
कर्पूरमंजरी ५७५, ६००, ६०७
कर्पूरमंजरीसट्टक ५७५
कर्मकाण्ड ४८४
कर्मचन्द्र बच्छावत ४३३
कर्मचन्द्र मंत्री २२९
कर्मवंशोत्कीर्तनकाव्य २२९, ४३३
कर्मविपाक ५२
कर्मसारकथा ३२३
कलकत्ता ४७०
कलापकरणसंधिगर्भितस्तव ५५५, ५५६
कलावती ९७, १३६, १७४, १७५, ३५८
कलावतीचरित ३५८
कलाविचक्षण ३८४
कलिंग १५२, ४१५, ४६६, ४७०
कलि ५७६
कलियुग ४०६
कल्कि ४५
कल्चूरि ९
कल्पनिरुक्त १२२
कल्पमंजरी २४७
कल्पवल्ली ११४
कल्पसूत्र ३४, ४४६, ४७२
कल्याणकीर्ति २८३, २९०
कल्याणचन्द्र ३५४
कल्याणतिलक २१२
कल्याणमंदिर ५६४, ५६८, ५७१
कल्याणमंदिरस्तोत्र ५५५, ५६७, ५६९, ५७०
कल्याणमंदिरस्तोत्रटीका २६१
कल्याणविजय ३८, ७८, २१८
कल्याणविजयगणि २५२, ४५०, ४५४ ४५६
कल्याणसागर ६०४
कल्हण ३९४, ४०२, ४१७, ४२१, ४२५
कविकल्पद्रुम ५२१
कविपरमेश्वर ६०
कविराज ५२५
कविशिक्षा ५१४
कश्चिन्द्रट १८४
कश्मीर १४९, ४१५, ४२१, ४२२, ४२४, ४८१

कसाई ५०६
कसाम्बित १०६
कसायपाहुड ३, ४५०
कस्तूरचन्द्र कासलीवाल ५१
कस्तूरीप्रकर २५३
कहाकोसु १९८
कहाणयकोस ३५०
कहारयणकोस ९१, २४०
कहावली ६, ३४, ३५, ७०, १५४, २०३, २०४, २०९
कांचनपुर १६२, ४९२
कांची ५३२
कांपिल्यनगर १६२
कांपिल्यराज ११०
काकजंघ १०३, १२७
काकजंघकोकासककथा ३३३
काकन्दीनगरी ३४०
काकुत्स्थकेलिनाटक ४४०
काकुस्थकेलिकाव्य २०१
काठियावाड़ ४६, ४७, २३५, ४६२
काणभिक्षु ६०
कातंत्रव्याकरण २२१, ५०५
कातंत्रव्याकरणवृत्ति ३१२
कादम्बरी १८, २३, २६७, ३४१, ४९१, ५१९, ५३१, ५३३, ५३४, ५३७, ५३८, ६०३, ६०५
कादम्बरीउत्तरार्धटीका २१९
कादम्बरीमण्डन ५१९, ५२१, ५४४
कान्तिसागर ४७३
कान्यकुब्ज ३९८
कान्ह ४४६
कान्हणसिंह ९५
कान्हा ४४७
काबुल ४३३
कामकुम्भकथा ३१६
कामकुम्भादिकथा-संग्रह २६४
कामगजेन्द्र ३३८, ३४०
कामघटकथा ३१६
कामचाण्डालीकल्प ६५, १५०
कामताप्रसाद जैन ४७४
कामदास ६०७
कामदेव १९४, २८१, ५००, ५७७
कामदेवचरित ९६, १९९
कामराज १७९, १८०
कामरूप ५३२
कामांकुर १२७, ३५३
कारंजा ४५६, ४७६
कार्तिकशुक्लपञ्चमीकथा २६१, ३६५
कार्तिकशुक्लपञ्चमीमाहात्म्यकथा ३६६
कार्तिकेय २३४, ५१७
कालक ४—६, २१३, ४५२
कालककुमार २१३
कालकाचार्य २०३, २१०, २१३, ३७९
कालकाचार्यकथा २०९
कालशौकरी ५०६
कालसंवर विद्याधर १४५
कालिक १२४, १६०
कालिकाचार्य २०९
कालिकाचार्यकथा १२२
कालिदास १४, १८, २४, २५, ८९, १८८, २५२, ३९६, ४६४, ४७७, ५१७, ५१८, ५४१, ५४५, ५५०, ५७३, ५७५, ५८०, ६०३, ६०५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालीदेवी ३३६
कालूगणि २००
कालूभक्तामर ५६७
काव्यकलाप ५१४
काव्यकल्पलता ५१४
काव्यकल्पलतापरिमल ५१४
काव्यकल्पलतामंजरी ५१४
काव्यकल्पलतावृत्ति ५१४
काव्यप्रकाश १८, २१, १०४, १०६, १२०, १२१, ४९१, ६०३
काव्यप्रकाशखण्डन २१९
काव्यमण्डन ५२०, ५२१
काव्यमीमांसा ९५
काव्यरत्न ५०३
काव्यशिक्षा १२२
काव्यादर्श १४
काव्यानुशासन ४३०, ५७३
काव्यालंकार १४
काव्योपदेशशतक ७७
काशी ८९, ३९८, ४१७, ५९६,
काशीनाथ जैन ३१५
काशीप्रसाद जायसवाल ३९३
काष्ठाङ्गार १५१
काष्ठासंघ ५४, ६७, ९६, १४६, २७३, ३३२, ४५०
काष्ठासंघ-माथुरगच्छपट्टावली ४५९
काष्ठासंघ-माथुरसंघ २७३
काष्ठासंघ-लाडबागड-पुन्नाटगच्छपट्टावली ४५९
कासद्रहगच्छ ८१, २००, ३७७
किन्लाक फार्वस ४२४
किरातसमस्यापूर्ति ७८
किरातार्जुनीय १४, १८, २५, ७८, ४७५, ४८६, ५००, ५११, ५२६, ६०५
कीथ ५७८
कीर ४१५
कीर्तिकल्लोलिनी २१८, २५३
कीर्तिकौमुदी ४२५
कीर्तिचन्द्र २१२
कीर्तिधर ४०, ४२
कीर्तिपाल ४१५
कीर्तिमंजरी ५८६
कीर्तिराज ११६
कीर्तिवर्मा ५८५
कीर्तिविजय ४६५, ५६३
कीर्तिविजयगणि ३९१
कीर्तिविमल ५६७
कीर्तिषेण ४६
कीर्तिहर्ष ३३०
कुंचिक २९६, २९७
कुञ्जर ३४६
कुणिक १९१
कुण्डपुर ५२९
कुन्तदेवी ३५९
कुन्तलदेवीकथा ३५९
कुन्ती २४६, ५१३, ५२७
कुन्थु १४३
कुन्थुचरित ११२
कुन्थुनाथ ७३, ८६, ११०, १३० १३२
कुन्दकुन्द ३, २३४, २५६, ५६५
कुन्दकुन्दान्वय ५५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुप्पुस्वामी ५३७, ५४३
कुबेर ११७, १२७
कुबेरदत्त १४१
कुबेरपुराण १३५
कुमार १८५, ४४५, ५१७
कुमारकवि १२८
कुमारगुप्त ३७
कुमारतात्पर्य ६०४
कुमारदेवी ४०५, ४१७, ५०२
कुमारनन्दि सोनी ७४
कुमारपाल ९, १७, १८, ७४, ७५, ८०, ८२, ८३, ८७, २०६, २२३, २४४, २४६, २५७, २५८, ३४२, ३७४, ३७५, ३९६, ४०२, ४०५, ४०९, ४१०, ४१५, ४१६, ४१८, ४२१, ४२३, ४२५, ४३०, ४४३, ४४५, ४६६, ५२२, ५८२, ५८३, ५८५, ५८६
कुमारपालचरित २५, २२३, ३८६, ३९७, ४१५, ४१६, ५५१, ५९२
कुमारपालचरित्रसंग्रह २२४
कुमारपालप्रतिबोध ७५, ८०, ८१, १३९, २२४, २५७, ३५३, ३७५, ५८४, ५८५
कुमारपालप्रबन्ध २२५, २७४, ४१८, ५८६
कुमारपालभूपालचरित २२४, २२५, ४१०, ४१४, ४१६, ४१८
कुमारवालचरिय ३९७
कुमारवालपडिबोह २५७
कुमारविहार ५८२, ५८५
कुमारविहारप्रशस्तिकाव्य ५२२
कुमारसंभव १४, २५, ४९१, ५१०, ५११, ५१७, ५१८, ५४३, ६०३, ६०४
कुमारसिंह २७१,
कुमारसेन ४८,६०४
कुमुदचन्द्र ५६८, ५६९, ५८७, ५८८
कुमुदानन्द ६०६
कुम्भकर्ण ३५
कुम्मा ११६
कुम्मापुत्त १६१, १६६
कुम्मापुत्तचरिय १६६
कुरु ४१०, ५२९
कुरुचन्द्र २५५, ३२९
कुरुचन्द्रकथानक ३२९
कुरुष १७७
कुर्ग ६३
कुलचन्द्र ४२३
कुलचुम्बरू ४६८
कुलध्वज १०३
कुलध्वजकथानक ३३०
कुलध्वजकुमार ३२१, ३३०
कुलध्वजकुमाररास ३३०
कुलपति ५७८
कुलपुत्रक १०२
कुलमण्डन २१२
कुलवालुक ७४
कुवलयचन्द्र ३३८, ३४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुवलयमालकथा ३४२,
कुवलयमालकथासंक्षेप ३४२, ३४३
कुवलयमाला ३३, ३९, ४२,४५, ४८, ८६, १५६, १७९, १८७, १८८, २६९, २८३, २८६, ३३५, ३३७, ३४४, ५३१, ५३९
कुवेर-नगरी ४८७
कुश ६१
कुशराज २९०
कुशलप्रमोद ३८०
कुशललाभ ३२३
कुशाग्रपुर ३४७, ३४८
कुषाण ४७२
कुष्ठीदेव ५०७
कुसुमकेतु १७५
कुसुमशेखर ५३२
कुसुमसार ३३३
कुसुमायुध १७५
कूर्मापुत्र १६६
कूलवाल ३२५
कूलवालककथा ३२५
कृतकर्मनृपतिकथा ३१६
कृतकर्मराजर्षि ३३३
कृतपुण्य २५७
कृतपुण्यकथा ३१६
कृतपुण्यचरित १७१, १९७, ३१६
कृपाचन्द्र २२३
कृपाचन्द्रसूरि २२२
कृपारसकोश २१७, ३३४
कृपारसकोष १४८
कृपाविजय ७८, ३९१
कृपाविजयगणि २१९
कृपासुन्दरी ५८५, ५८६
कृष्ण ७, ३१, ३४, ४४, ४५, ५१, ७३, १३१, १४०, १४१, १४८, १८३, १८७, ३६१, ४७९, ५२४, ५२९, ५४१, ५८२
कृष्णगच्छ ४१४
कृष्णचरित १३१
कृष्णजिष्णु १०३
कृष्ण तृतीय ४०२
कृष्णदास १०३, ११४
कृष्णदेव ५१०
कृष्णमिश्र ५८५
कृष्णर्षिगच्छ २२५, ३८४, ५९२
के० आर० चन्द्र ३८
के० एच० ध्रुव ३८
केतुमती १४३
केम्स २६
केरल ५९
केवलिचरित १७७
केशरियाजी २०९
केशरी १०१
केशव १२६
केशवसेन ६६, ११४, ४५९, ६०२
केशी १९६, ३१८
कैकेयी ३६, ६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैलाश ५६, १४३, ४६०
कोंकण ३९८, ४१०, ४१५
कोकासककथानक ३३३
कोटा ४१४
कोटिकगण ८१, १००, ४२८
कोटिशिला ५२५
कोणिक ७३, ७४
कोन्नर ४६७
कोशल ५२९, ५३१
कोशा ५५०, ५५१, ६०२
कोसे गार्टन ३८८
कौतुक ५७८
कौमुदी ५७८, ५७९
कौमुदीनाटक ५७८
कौमुदीमित्राणन्द ५७३, ५७७, ५७८
कौरव ५२०, ५२५, ५२९
कौरवेश्वर ५९६
कौशाम्बी १९४, २०१, २९२, ३०८, ३३९, ३४४
कौशिकीपुत्र ४७२
क्षत्रचूडामणि ११९, १५०, १५१, ५१५, ५३६, ५३८, ५४२, ५४३
क्षत्रियकुण्ड ९०
क्षमाकलश ३३०
क्षमाकल्याण १९६, २६९, २८३, २९१, २९४, ३२४, ३१७, ३६९, ३७३, ४५४
क्षमाकल्याणज्ञानभण्डार ४५३
क्षमाविजय १५९
क्षितिप्रतिष्ठितपुर १६४, ३६३
क्षीरकदम्बक १२७
क्षेत्रपाल ४२३, ४५९
क्षेत्रसमासवृत्ति २९८
क्षेत्राधिप ४२३
क्षेमंकर १२७
क्षेमंकरगणि ३८०
क्षेमकीर्ति ४१६
क्षेमराज २३०, ३९७, ४०४, ४१५
क्षेमलक २९५
क्षेमशाखा २३०
क्षेमसौभाग्यकाव्य २३०
क्षेमहंस ६०४, ६०५
खंडपाना २७२
खंभात ८६, १०३, १९३, ३०२, ३६२, ४०५, ४०६, ४०८, ४३१, ४३३, ४४१, ४६५, ५४९, ५५१, ५९१
खण्डप्रशस्ति ६०३, ६०६
खण्डेलवाल ५१२
खरतरगच्छ ८३, ११६, १३३, १७२, १७५, १८३, १९६, २००, २२०, २२२, २३०, २४४, २५१, २६३, २९१, २९४, २९५, ३०२, ३०९, ३२०, ३२२, ३२४, ३३३, ३४५, ३४८, ३५६, ३६७ ३६९, ४५१, ४५२, ४५४,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६४, ४९५, ५४९, ६०३, ६०६
खरतरगच्छ-गुर्वावलि ४५४
खरतरगच्छ-पट्टावलि-संग्रह ४५४
खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि १६४, ३०२, ४५२
खरतरशाखा ८३
खरदूषण ५२५
खर्परचौरकथा ३३३
खुर्रम ४६३
खांडिल्यवंशी ६५
खारवेल ४६६, ४६८, ४७०
खीमसौभाग्याभ्युदय २३०
खेंगार १४७, ४४२, ४४३
खेचरराज ८९
गउडवह ४९१
गंगदत्तकथानक ३३३
गंगनरेश ६५, १५०
गंगमह ४००
गंगराज ११९
गंगवंश ५५८, ५५९
गंगा ७५
गंगामह ४००
गंजाम १५२
गंधमूषिका ५७८
गंधार ४४६
गगनविलासपुर ४९६
गजनी ४१५
गजपंथ १०४
गजपुर ३०४
गजसिंह ३२५
गजसिंहपुराण ३२५
गजसिंहराजचरित ३२५
गजसुकुमाल २४४
गजसुकुमालकथा २९८
गणधर १५३
गणधरवलयपूजा ५२
गणधरसार्धशतक ४५२
गणधरस्तव ५६५
गणरत्नमहोदधि ४३०
गणा २८१
गण्डूरायकथा ३३३
गद्यकथाग्रन्थ ६२
गद्यचिन्तामणि १८, ११९, १५०, १५२, १५३, ४९०, ५३१, ५३६, ५४२, ५४३
गन्ति ४००
गन्धर्व २८९
गन्धर्वक ५३२, ५३३
गन्धर्वदत्ता १४२
गन्धारपुरी १९८
गयासुद्दीन खिलजी १९९, २२९, ४३२
गयासुद्दीन तुगलक ४३०, ४३१
गर्गगोत्र १५८
गर्गर्षि २८१
गर्दभिल्ल २१३
गहढ़वाल ६००
गांगेय १९५, १९६
गांगेयभंगप्रकरण १९६
गांधार १६३
गाथाकोश ३३
गाथालक्षण ८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गाथासप्तशती १४, ५६०
गाहालक्खण ३५७
गिरनार १०३, १४९, ४३६, ४४२, ४४६, ४६०, ४६७, ४७०, ५०२, ५४९
गिरिनगर १४९
गिरिनार २५९, ३६५, ४०६, ४७९
गिरिनारमण्डन ५०१
गिरिनारोद्धार ३६५
गिरिसुन्दर १७५
गिरिसेन २६७, २६८
गीतगोविन्द २४, ५४५, ५५६, ५५७
गीतवीतराग ५४५
गीतवीतरागप्रबन्ध ५५६
गुजरात ८, ९, ५२–५४, ५९, ७२, १८२, १८३, २०५, २२३, २२६, २२९, २४८, २९९, ३९६, ३९७, ४०३, ४०५, ४०९, ४१०, ४१७, ४२१, ४२६, ४२७, ४३०, ४३१, ४३३, ४३४, ४३६, ४४१, ४४४, ४४८, ४५३, ४६२, ५०१, ५५२, ५७३, ५७४, ५८४–५८६, ५८९, ५९०, ६०२
गुड्डिपत्तन ५९४
गुणकीर्ति २९०, ४५७
गुणचन्द्र ८९, १३०, २६८
गुणचन्द्रगणि ८९, ९१, २३८, २४१
गुणचन्द्रसूरि ९०, ३०३
गुणचन्द्राचार्य ३७३
गुणनन्दि ४८३
गुणपाल १५४, १५६, १५७, ३४
गुणपालमुनि १५४
गुणभद्र ९, १०, ३४, ४१, ५५, ५९, ६१, ६२, ६५, १५०, १७०, १६८, १७९, २५६, ४५०, ४८०, ४८६, ५०३, ५६०, ५९८
गुणभद्रसूरि २९४, ५१०,
गुणभद्रसूरिदेव ३३२–३३३
गुणभद्राचार्य ६८, १५४, ३०१
गुणमंजरी ३६६
गुणमंजरीकथा ३६६
गुणमेरुसूरि ३९१
गुणरत्न ६०४, ६०५
गुणरत्नसूरि ९८, १२३, १३४, २१२, २५१, ३१५
गुणवचनद्वात्रिंशिका २९४, ४२८, ४३६, ४३७
गुणवती १८४
गुणवर्म १८८ ५०९
गुणवर्मचरित ३०२, ३६३, ५१६
गुणवर्मा ३०२, ३०३
गुणविजय २१८, २३०
गुणविजयगणि ११७, १३९, ४५६
गुणविनय ६०३, ६०६, ६०७
गुणशेखर २००
गुणशेखरगणि ३३३
गुणसमुद्रसूरि ३०१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणसमृद्धिमहत्तरा १८३
गुणसागर १७४, १७५, ३२३
गुणसागरचरित ३२३
गुणसागरसूरि ३०१
गुणसुन्दर २५४
गुणसुन्दरसूरि ३३२, ३७०
गुणसुन्दरी ३५७
गुणसुन्दरीचतुष्पदी ३५७
गुणसुन्दरीचरित ३५७
गुणसेन ११०, २६७
गुणसेना १७४
गुणस्थानक्रमारोह २९४
गुणाकरकवि ३३४
गुणाकरसूरि ३१३
गुणाकरसेन ४७६
गुणाढ्य ४४, १४४, २६९, ५३४, ५४१
गुणावली ३५३
गुणावलीकथा ३५३
गुप्त ८, १०, १३, ३७, ५७४
गुप्तकाल ४७२, ४७३
गुप्तवंश ३९, ४५, ३४१, ३९६, ४२८
गुप्तिगुप्त ४५७
गुरु ५४१
गुरुगुणरत्नाकर २१६, ४३२
गुरुगुणषट्त्रिंशिका २९४
गुर्जर-प्रतिहार १३, २१४, ४२१, ४६८
गुर्वावली ४६, ४४९, ४५५
गुलाबचन्द्र चौधरी ४७१
गुहलोत ४६९
गुहिलोत १९
गोरिनो ४७०
गोढ़िली २९०
गोडेय १५२
गोधनकथा ३३३
गोधरा ४४३
गोपाचल २९०
गोपाल १९७
गोभद्र १७०
गोमटेश्वरचरित्र ३६४
गोम्मटसार ४८४
गोम्मटस्वामी ४८५
गोरखयोगिनी ३८१
गोरखादेवी १६७
गोवर्द्धनश्रेष्ठि ८९
गोवर्धन ४२३
गोविन्द ४६७, ४७८, ४८४
गोविन्दभट्ट ५९३
गोविन्दराज ४११
गोशाल ९०
गोशालक ७३, ७४
गौड २४१, ३९८, ४२२
गौडवह २६, ४२२
गौतम ४०, १९५, १९६, ५२५
गौतमचरित १६०, १९५
गौतमस्वामी ७३
गौतमीयकाव्य १६०, १९५
गौतमीयप्रकाश १९६
गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा ४६८
ग्राहरिपु ४००
ग्वालियर ९, १९, २९०, ४१४, ४४२, ४६७, ४६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटकर्परकाव्य ६०६, ६०६
घटियाल ४६६, ४६८
घर्कटकुल ५८८
घाघसा १९, ४६९
घृतवरी देवी ५१२
चउप्पण्णपुरिसचरिय ५७३
चउप्पन्नमहापुरिसचरिय ६, ३५, ६७, ७१, ८०, ८६
चउहत्थ ३२०
चंदप्पहचरिय ८२
चक्रसेन ५३२
चक्रायुध १०६, १०८, ५०९
चक्रेश्वर ३०४
चक्रेश्वरसूरि १८२
चक्रेश्वरी १०, ३८५
चड्डावलिपुरी ३०४, ३४८
चण्डकौशिक ९०
चण्डप ४०५, ५०२
चण्डपाल ६०६
चण्डपिंगलचोरकथा ३३३
चण्डप्रद्योत ७३, १४९, १६३
चण्डप्रसाद ४०५
चण्डमारी २८३, २८५, ५३९, ५४०
चण्डसिंह ४४६
चण्डसोम ३३८, ३३९, ३४०
चण्डीशतक ५६३
चतुःपर्वकथा ३७२
चतुःपूर्वीचम्पू ३०३, ३६३
चतुरविजय ५७१
चतुरशीतिधर्मकथा २६५
चतुर्भुज ५१२
चतुर्मुख ३४
चतुर्विंशतिजिनस्तव ५६५
चतुर्विंशतिजिनस्तुति ५६८
चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र ४३९
चतुर्विंशतिजनेन्द्रचरित्र ३५
चतुर्विंशतिजिनेन्द्रसंक्षिप्तचरित ७६, ५१४
चतुर्विंशतितीर्थंकरपुराण ६३, ६४
चतुर्विंशतिपुराण ६४
चतुर्विंशतिप्रबन्ध ४२७, ४२८,, ५०२, ५१४, ५१५
चतुर्विंशतिसंधान ५२३
चतुर्विंशतिस्तोत्रटीका २६१
चतुर्हारावलीचित्रस्तव ५६६
चतुष्पर्वी ५१६
चतुस्संधानककाव्य ५२३
चत्तारिअट्ठदसथव ५६५
चन्दनबाला १६०, २५७, ३३५
चन्दनमलयगिरि ३०३
चन्दनमुनि २००, ३१५
चन्दनषष्ठी ३७२
चन्दना ८६, १९५, २००
चन्दनाकथा ५३
चन्दनाचरित २००
चन्दप्पहचरिय ८७
चन्देल ९, १७०, ३०१, ५८५
चन्द्र १०३, ५१९, ५२०, ५५२
चन्द्रकीर्ति ४२, ९५, १२५, २४८, ४५७, ४५८
चन्द्रकुल ७५, ८९, ९१, १२४, २०५, ४९५

चन्द्रगच्छ १७, ९६, १००, १२२, १२७, १२९, १६१, १८२, १९३, २७१, २८०, २९७, ३५३, ३८५, ४०८, ४९८, ५०८
चन्द्रगणि ५६९
चन्द्रगिरि २३५
चन्द्रगुप्त २३५, ३४०, ३६४, ३९६, ४२८, ४३६
चन्द्रगुप्त मौर्य २०७
चन्द्रच्छाय ११०
चन्द्रतिलक १९३
चन्द्रतिलकगणि ४९५
चन्द्रदूत ५४६, ५५२–५५४
चन्द्रदेवसूरि १०२
चन्द्रधवल ३१३, ३१४
चन्द्रधवल-धर्मदत्तकथा ३१३
चन्द्रनखा ६८
चन्द्रपुरी ४८३
चन्द्रप्रभ ६३, ६४, ७९, ८२, ८५, ९७, १२८, १५३, २०५, २४९, २९०, ४२५, ४८१–४८३
चन्द्रप्रभचरित ५३, ८४, ९७, १०४, ११५, ११९, १२३, १२६, ४८१, ४८४, ४८६, ४८९, ४९०
चन्द्रप्रभमहत्तर ८५, १३३, ३७१
चन्द्रप्रभसूरि ८५, ९८, १००, १२७, १८२, २०२
चन्द्र-भा ७८
चन्द्र: ागा नदी ३४१
चन्द्रमा ३६८, ५१९, ५२०, ५३६, ५५३
चन्द्रमुनि ७९
चन्द्रयश ३५२
चन्द्रराज ३१५
चन्द्रराजचरित ३१५
चन्द्ररुचि ४८२
चन्द्रलेखविजयप्रकरण ५७३
चन्द्रलेखा ३६४, ५८३, ५९९
चन्द्रलेखाविजयप्रकरण ५८२
चन्द्रवंश ३६
चन्द्रवर्ण १३२
चन्द्रविजयप्रबंध ५१९, ५२१
चन्द्रश्री ३८५
चन्द्रसागर ४२
चन्द्रसाधु ४३२
चन्द्रसूरि ५०, ८७, १००, १०७, २८०, ४९१
चन्द्रापीड ५३३, ५३८
चन्द्रावती ३४८, ४४४
चन्द्रोदयकथा ३३३
चन्द्रोदर १०१, १०३
चम्पक ३१०
चम्पकमाला ३५८, ३५९
चम्पकमालाकथा ३५८
चम्पकमालाचरित्र ३५८
चम्पकश्रेष्ठिकथा १७२
चम्पकश्रेष्ठिकथानक ३१०
चम्पकश्रेष्ठी ३१०, ३११
चम्पा ११०
चम्पानगरी १६२, ३१०
चम्पानेर २५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चम्पापुर १६२, २९२, २९३, ४६०
चम्पूजावन्धर ५४१
चम्पूमण्डन ५२१, ५४४
चरणप्रमोद २४४
चरणमुनि ४८८
चरित्रकीर्तिगणि २६५
चरित्रहंसगणि २१६
चाचिग ४६७
चाणक्य २०४, २३४, ३२१, ४०३, ५९२
चाणक्यर्षिकथा ३२१
चातुर्मासपर्वकथा ३७२
चातुर्मासिकपर्वकथा ३७२
चातुर्मासिकपर्वव्याख्यान ३७२
चातुर्मासिकव्याख्यान ३७२
चापोत्कट ४०३, ४२३
चामरहारिकथा ३३३
चामुण्ड ४०४
चामुण्डराज ३९७
चामुण्डराय १४, ६५, १५०, १८७, ४८५
चामुण्डरायपुराण १४, ४१, १८७
चामुण्डा १९, ४६९
चारण ४८७
चारित्रचन्द्र १६७
चारित्रभूषण ३८६, ४१६
चारित्ररत्न २०७
चारित्ररत्नगणि ३२९
चारित्रराज ९७
चारित्रवर्धन ६०४, ६०६
चरित्रवर्धनगणि ६०३, ६०५
चारित्रसुन्दर ३८६
चारित्रसुन्दरगणि ३८६, ४१६, ५४६, ५५१
चारित्रोपाध्याय ३१९
चारुकीर्ति १३३
चारुचन्द्र ३०९
चारुदत्त ४४, १२७, १३१, १४२
चार्लोस क्राउस ३११
चार्वाक ३१
चालुक्य ८, ११९, १८६, ४१५, ४६६, ४६७
चावड़ा ४०३, ४०४, ३२३, ४३० ४३७, ४४४
चावच्य १८८
चाहड ४००, ४०१
चाहमान ९, ४११, ४६७
चिक्कनसोगे ६४
चित्तौड़ १९, ५९, ४१७
चित्तौड़गढ़ ४६८
चित्रकूट ९, ५९, ६१, ३०७
चित्रगति ३४८
चित्रलेखा ५७७
चित्रवेग ३४८
चित्रसेन ३५४, ३८३
चित्रसेन-पद्मावतीचरित ३५४
चित्रांगद ५७७, ५७८
चित्रापालकगच्छ १३१, ३६४
चिदम्बर ५२८
चिन्तामणि पार्श्व ४३५
चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर २९१
चिर्वा १९, ४६९
चिलातिपुत्र २५०
चीन २६, १४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेटक ७३, १९१, १९६
चेतोदूत ४६४, ५४६, ५५२
चेदि ३९८
चेदिराज ३९७
चेलना ७३
चेल्लना १९१, १९२, २४४, ५०७
चैत्रगच्छ १७
चैत्रपूर्णिमाकथा ३७२
चोलराज्य ४८६
चौरपंचाशिका ५४५
चौलुक्य ९, ७५, ८२, ११९, १८६, २०२, २०५, २२३, २२६, २८७, ३४२, ३९६, ३९७, ३९९, ४०१, ४०३, ४०६, ४०९, ४२१, ४२३, ४२५ ४३०, ४३७–४३९, ४४४, ५२२, ५७३, ५८५, ५८६
चौवीसी १३०
चौहान १३, ४११, ४१२, ५९१
छत्रसेन २३६, ४५६
छन्दोनुशासन ४३०
छन्दोम्बुधि ५२७
छन्दोरत्नावली ५१४
छावड़ा गोत्र ५१२
छाहड ४८०
छोटेलाल जैन ४७४
जंगलदेश ३९८
जंबूसामिचरिय १५८
जगच्चन्द्रसूरि १३१, १९०, ३६४
जगडू २०६, ४१८
जगडूचरित २२७, ४१७
जगडूशाह १८, २२७, २२८ २४९
जगडूशाहप्रबंध २२८
जगत्सेठ १४
जगदाभरणकाव्य ६०६
जगदेव ४४५
जगद्गुरुकाव्य २१६, ४३४
जगद्देव १२७
जगद्देव-परमर्द्दि ४२३
जगधर १६४
जगन्नाथ २०, २१, १३१, २९५,५२३
जगन्मल्ल ३५५
जगसिंह २४९
जटाचार्य ६०, १८७
जटानन्दि ४८
जटायु ५८०
जटासिंहनन्दि ४८, १८३, १८७, १८८
जटिल ३९, १८७
जडिल १८७
जनक ६१, ५८०, ५९७
जन्न १८८
जमालि ७३, ९०
जम्बुकेवलिचरित १७७
जम्बू १३२, १४७ १५५, २०५
जम्बू-अध्ययन १५७
जम्बूकवि २९७, ५५३
जम्बूचरित ६७
जम्बूचरिय १५४-१५७, ३४६
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूनाग २९७
जम्बूस्वामिचरित ५२, १५३, १५७, १५८, ४३३
जम्बूस्वामी १४१, १५५, १५६, १५८ १५९, १९५, २०३, २०४ २५८
जय ७३, २६८
जयंधर १४९
जयकटक ११९
जयकीर्ति २१२, २३४, ३८६, ४१६
जयकीर्तिसूरि २९५
जयकुमार ५६, ५८, १६०, १७८, १७९, ५११, ५९६,५९७
जयकुमारचरित १७८, १७९, १८०
जयकुमार-सुलोचनाचरित १७८
जयचक्रीचरित्र १३१
जयचन्द्र १०९, १६७, १७२, ४२३, ५९९, ६००
जयचन्द्रसूरि ३०७, ४१७
जयचरिय २००
जयतलदेवी ५९१
जयतिलक १७२, ३८६
जयतिलकसूरि २०२, २४७, ३०७, ३५१, ५१५, ५६६
जयतिहुअणस्तोत्र ५६६
जयदत्त १०३
जयदेव २४, १५०, ५५६
जयधवला ६०
जयधवलाटीका ४५०
जयन्त ४९५, ४९७
जयन्तविजय ४७१, ४७३, ४९५, ४९७
जयन्तविजयकाव्य २३८
जयन्तसिंह ४२०, ५९१, ५९२
जयन्ती १६०, १९५, २०१, २०२
जयन्तीचरित २०१
जयन्तीनगरी ४९६
जयन्तीप्रश्नोत्तरप्रकरण २०२
जयन्तीप्रश्नोत्तरसंग्रह २०१
जयपाण्डु १७२
जयपुर ५२, ९८, २४७, ४१४, ४३४, ४४१, ४५७, ४५८, ५१२
जयपुराण १८०
जयप्रभसूरि ५८३
जयमंगलसूरि १९, ४६७, ४६९
जयमेरु १६७
जयराम ५७३, २७४
जयवर्मा ५५७
जयवल्लभ ५६०, ५६१
जयविजय २७५, ३१६
जयविमलगणि ३११
जयशेखर ५०२
जयशेखरसूरि १२८, १५४, १५७, ५१६, ५१८, ५४४
जयसागर ५५
जयसागरगणि १७४, १७५, ४६४
जयसागरसूरि २२३
जयसिंह ९८, ११९, १८२, २८७, २८८, ३९७, ३९८, ४०२, ४०५, ४१८, ४३९, ४४८, ५२२, ५८८
जयसिंहदेव ११९, २३६, ४१५, ४२९
जयसिंह सिद्धराज ३९६, ४०२, ४१०
जयसिंहसूरि ८२, १२८, १२९, १५४, २०२, २२४, २२५, २३३, ३१६,

३८४, ४०९, ४११, ४१४, ४१६, ४१८, ४३९, ४४०, ५०२, ५७३, ५९२
जयसुन्दर १७५
जयसुन्दरीकथा ३६०
जयसूरि १३३
जयसेन ४६, ५९, ६०, ३४४, ३५६, ४७६,
जयसोम २३०, ३११
जया १०१
जयानन्द ५५, १६८, १७२
जयानन्दकेवलिचरित १७७
जयानन्दसूरि १३४, २०८, २११
जयोदयमहाकाव्य १७९, ५११
जरासंघ ४४, ७३, ११७, १२७, ५२५, ५३०, ५८२
जल्हण ४९१, ५०१, ५२७
जवाछपुर १६६
जसहरचरिउ २८९
जहांगीर १०, २१९, ३१३, ४३२, ४३४, ४३५, ४६३
जहानाबाद ९६
जाजाक ६५
जाबालपुर ४१०
जाबालिपुर ९
जामनगर ५५३
जाम्ब ५२५
जाम्बवन्त ५८०
जायसी १७२, ३०७
जालिनी २६८
जालिहर ८१
जालिहरगच्छ ८१, ८२
जालोर १६४, ३४२, ४४१, ४६५, ५८३
जावड़ १९९, २१६, २२९
जावड़कथा २४५
जावड़चरित्र २२९, ४१८, ४३२
जावडप्रबन्ध २२९, ४१८, ४३२
जावालिपत्तन ३४६
जावालिपुर १६४, ३४२
जितदण्ड ४६
जितशत्रु ११०, १६३, ४२२
जिन ४३९
जिनऋद्धिसूरिचरित्र २२३
जिनकीर्ति १६८, १७२, १७३, ३०९, ३११, ३१६
जिनकुशलसूरि २२१, २२२, ३०२, ३५७
जिनकुशलसूरिचरित २२३
जिनकुशलसूरि-चहुत्तरी २२१
जिनकृपाचन्द्रसूरीश्वरचरित २२२
जिनचन्द्र ८३, १३०, २२१, २४३, ४५८
जिनचन्द्रसूरि १६४, १८३, १९३, २१२, २२२, २३०, २३४, २३८, ३४५, ३५३, ३५६, ५६५
जिनदत्त २३९, ३००, ३४४
जिनदत्तकथासमुच्चय ३००
जिनदत्तचरिउ, ३०१
जिनदत्तचरित ६२, २९९

जिनदत्तसूरि १६४, १९३, ३४५, ४०४, ४५२, ५१४
जिनदत्तसूरिचरित्र २२३
जिनदास ४२, ५१, ५२, १३९, १५७, १८३, ३४९, ३७३, ५१५
जिनदासकथा ३३३
जिनदासगणि १४३, २७२
जिनदास फडकुले ५४१
जिनदेव ८४, ११५, २५७, २८२
जिनदेवसूरि १२४, २११, ४२७
जिनधर्मप्रतिबोध २५७
जिनधर्मसूरि १७२
जिनपति १९७, १९९, २२०, २२१, २९८, ३१६
जिनपतिसूरि १६४, १७१, १९३, ३१६, ३४५, ४५२, ४५३, ४९५
जिनपतिसूरि-पंचाशिका २२०
जिनपद्मसूरि २२२, ४५२
जिनपाल १८, १३०, १९३, ४५३
जिनपालगणि ४९५
जिनपूजाष्टकविषयकथा ३७२
जिनप्रबोध २२१
जिनप्रबोधचतुःसप्ततिका ३०२
जिनप्रबोधयति ३४६
जिनप्रबोधसूरि ३२६, ३४५
जिनप्रबोधसूरि-चतुःसप्ततिका २२१
जिनप्रभ १९१
जिनप्रभसूरि १०, २४६, २४९, ३४९, ३६५, ३७५, ४२६, ४२७, ४३१, ४५३, ४५४, ४६२, ५०८, ५६८
जिनभक्तामर ५६७
जिनभद्र १०६, १२१, २०६, २५०, ४०९, ४१९, ४२०, ४२९, ४५२
जिनभद्रक्षमाश्रमण ७१, १२८, १४३
जिनभद्रसूरि ८३, ३५२, ४६४, ६०४
जिनभद्रसूरिस्वाध्यायपुस्तिका २२२
जिनमण्डन २२६
जिनमण्डनगणि २२५, २७४, ४१८, ५८६
जिनमाणिक्य १६७, २१६, ३२०
जिनमुखावलोकनव्रतकथा ३७२
जिनयशःसूरिचरित्र २२३
जिनरत्न १६१
जिनरत्नकोश १११, १२३, २४६, २५४, २८२, २९८, ३२६, ३८०, ३८६, ५५६, ६०२
जिनरत्नसूरि १६४, ३०२, ३४६, ४४५
जिनराज ४६४
जिनराजसूरि २१८, ६०६
जिनराजस्तव ५६५
जिनलब्धिसूरि २२१, २२२
जिनलब्धिसूरि-चहुत्तरी २२१
जिनलब्धिसूरि-नागपुर-स्तूप-स्तवन २२२
जिनलब्धिसूरि-स्तूपनमस्कार २२२
जिनलाभसूरि २१२
जिनवर्धन ४६४
जिनवर्धनगणि ८३, १६१, १६४, १७५, २४४
जिनवल्लभ ८६
जिनवल्लभसूरि ९२, १६४, १९३, ३०६, ३४५, ४५२,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९८, ५६८, ६०४, ६०७
जिनविजय ३८, १५५, १५८, २२४, २३९, ४१७, ४२०, ४२८, ४५०, ४५४, ४२९, ४७०
जिनविजयगणि, ३९१
जिनशतक ६४
जिनशतककाव्य २९७
जिनशतलंकार ५६६
जिनशेखर १७२
जिनसमुद्र ६०७
जिनसमुद्रसूरि ६०४
जिनसहस्रनाम ५६८
जिनसहस्रनामटीका २४८
जिनसागर १४७, २४४
जिनसागरसूरि १३९
जिनसागरसूरि-प्रतिष्ठासोम १५४
जिनसिंहसूरि ४५१, ५०८
जिनसुन्दर ३७०
जिनसुन्दरीकथा ३६०
जिनसूरि ३२३, ३२५, ३५८
जिनसेन ६, ९, १७, २१, २३, ३४, ४२, ४५, ४७, ४८, ५१, ५२, ५४, ५७, ५९, ६०–६२, ६५, ६८, ७३, ७६, ९५, ११७, १३१, १४८, १५०, १७९, १८०, १८७, २३५, २५६, ४५०, ५११, ५४३, ५४६, ५४८, ५५४, ५६८, ५७८, ५९६, ५९७
जिनस्तुति २६१
जिनहंस १८३
जिनहंससूरि ३२९, ४५४, ६०५
जिनहर्ष ३६७, ५०२, ६०७
जिनहर्षगणि १६५, २२६, ३०७, ४१७, ६०७
जिनहर्षसूरि २१३, ३५६, ३६२, ३७०
जिनेन्द्रगुणसंस्तुति ५६८
जिनेन्द्रगुणसम्पत्ति ३१८
जिनेन्द्रचरित्र ९३
जिनेन्द्रपुराण १६६
जिनेन्द्रभूषण १६५
जिनेन्द्रसागर ३६८
जिनेश्वर ३१६, ३४०
जिनेश्वरसूरि २४, ८२, ८३, ८६, ८७, ८९, १००, १२९, १४५, १६४, १६५, १७१, १९३, २२१, २३८, २३९, २८०, ३१६, ३२६, ३४५, ३४८, ३५०, ३६०, ४५२, ४९५, ४९८, ५०८, ५४९
जिनेश्वरसूरिचतुःसप्ततिका २२१
जिनोदयसूरि ३३२
जीतविजयगणि ११७
जीमूतवाहन २४९, ५७५
जीरावाला ४४६
जीवदेव ८५, २०६
जीवदेवसूरि ५१४
जीवन्धर ६०, ६१, १३२, १५०–१५२, ५३६, ५३८, ५४२
जीवन्धरचम्पू १५१, १५३, ५४१
जीवन्धरचरित ५३, १५०, १५१, १५३
जीवराज ३७२, ४५८
जीवराजगणि २९५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवसमासवृत्ति ४४८
जुगलकिशोर मुख्तार ३१८, ५९४
जूनागढ़ २२०
जे० एफ० फ्लीट ४६९
जैतुगिदेव ६६, ४६२
जैत्रचन्द्र ५९९, ६००
जैत्रसागर ४११
जैत्रसिंह ४०५, ४०८, ४११, ४१९
जैनकुमारसंभव १२८, ५१६
जैन ग्रन्थावली १३९, ३१७
जैनधर्मवरस्तोत्र ५५५, ५६७
जैन धातुप्रतिमालेख ४७३
जैन पुस्तकप्रशस्तिसंग्रह ४४१
जैन प्रतिमायंत्रसंग्रह ४७४
जैन प्रतिमालेखसंग्रह १३८
जैनमहाभारत ४४, ५२
जैनमेघदूत ५४६, ५४९, ५५०
जैनमेघदूत सटीक ३१२
जैनरामायण ७३, ५८०
जैन लेखसंग्रह ४७०, ४७३
जैन शिलालेखसंग्रह ४७०, ४७१, ४७४
जैनस्तोत्रसंग्रह ५७१
जैनस्तोत्रसन्दोह ५७१
जैनस्तोत्रसमुच्चय ५७१
जैसलमेर ८७, १३०, १५७, १७१, २९१, ३१७, ३२६, ४४१, ४७०, ४७३, ४७४, ५९२
जोधपुर ६७, १९६, २०९, ४६४, ४६५, ४६८, ४८०, ५५३
जोहरापुरकर ५१
ज्ञाताधर्मकथा ३४
ज्ञानकीर्ति २८३, २८६, २९१, ४५८, ५२८
ज्ञानचन्द्रोदयनाटक ६०१
ज्ञानतिलक ६४, ४६५
ज्ञानदर्पण ५८५
ज्ञानदास २८३, २९०
ज्ञानपंचमीकथा २६२, ३६५–३६७
ज्ञानप्रमोद ६०६
ज्ञानभूषण ५३, ९६, १२५, १९०, ४८०
ज्ञानमेरु २१२
ज्ञानलोचनस्तोत्र ५६८
ज्ञानविमल २१८
ज्ञानविमलसूरि २९४
ज्ञानसागर १०३, ११०, ३०५, ४६२, ५६३, ६०७
ज्ञानसागरगणि १७४
ज्ञानसागरसूरि ५२४
ज्ञानसूर्योदय १८०, ५७३
ज्ञानसूर्योदयनाटक ५३, ६०१
ज्ञानार्णव ५६०
ज्योतिःसार २५१, ४३९
ज्योतिप्रसाद जैन ५१, ६४
ज्योतिष २८१
ज्योतिष्प्रभा ५९८
ज्योतिष्प्रभानाटक ५९८
ज्योतिस्फुलिंग २००
ज्वालामालिनी १०
ज्वालिनीकल्प ६५, १५०
झंझणप्रबंध २२८
झांझण २२८, ४१८, ५२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टिलयार्ड २६
टोडर १५८
ठाइआ ४४६
ठाकुरदेव २८२
डंडिल पदनिवेश ३०४
डब्ल्यू० पी० केर २६
डामरनागर ४३०
डूंगर ४४६, ४४७
डूंगरपुर ५१, २००
डेला उपाश्रय भण्डार ३१७
ढण्ढणकुमारादिकथा २६५
ढींपुरी ४२६
ढुण्ढुक ४२२
णरविक्कमचरिय ३०३
णाग ३४१
णीईधम्मसुत्तीओ २००
णेमिणाहचरिउ ८३, ८७
तंजौर ५९४
तंत्राख्यायिक ३८८
तत्त्वकौमुदी ३५६
तत्त्वत्रयप्रकाशिका २४८
तत्त्वबिन्दु ८४
तत्त्वविकाशिनी टीका ३८५
तत्त्वाचार्य ३४१
तत्त्वादित्य ७०
तत्त्वार्थवृत्ति २४८, २९०
तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण २३७
तत्त्वार्थसारदीपक ५२
तत्त्वार्थसूत्र ४९०
तपागच्छ ४२, ५४, ६६, ११७, १२५, १३१, १४०, १४५, १४७, १४८, १५७, १६७, १७२, १७७, १७८, १९९, २०७–२०९, २१५, २१९, २२६, २२८, २३०, २४४, २५२, २६१, २६३, २६४, २७४, २७५, २७७, २८३, २९३, २९४, २९९, ३०५, ३०७, ३०९–३११, ३१४, ३१७, ३१९, ३२१, ३२३, ३२४, ३२५, ३२७, ३३०, ३५३, ३५८, ३६२, ३६४, ३६६, ३६८, ३७०, ३८०, ३८३, ३८६, ३९१, ४३२, ४३३, ४५१, ४५५, ४५६, ४६४, ५३०, ६०५–६०७
तपागच्छ-पट्टावली १३२, १५९, १६७, ४५६
तपागच्छ-पट्टावलीसूत्र ४५५
तपागच्छशाखा-पट्टावली ४५६
तपागच्छ-संविग्नशाखा १७६
तपागणयतिगुणपद्धति ४५६
तमिलदेश १५२, ४४१
तमिलनाडु १५२
तरंगलोला ३३५
तरंगवईकहा ३३४
तरंगवती ३३, ८५, १२८, ३३५, ३३६
तरंगवतीकथा २१४, ३३४, ३३६
तरुणप्रभ २२१
तरुणप्रभसूरि २२२
तामिलिनी नगरी ३०४
तारउर ४६१
तारा ५५१
तारापीड ५३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तारापुर ४६१
तित्थमालथवण ४६२
तित्थयरसुद्धि ५६५
तिलकप्रभ १०७
तिलकप्रभसूरि ५६३
तिलकमंजरी १४, १८, १२८, १३६, ५३१–५३३, ५३५, ५३६
तिलकमंजरीकथासार ५३६
तिलकमंजरीवृत्ति २१७
तिलकमंजरीसार ५३६
तिलकमंजरीसारोद्धार ११५
तिलकमती ३६९
तिलकविजयगणि ३५६
तिलकसुन्दरी ३०४
तिलकसुन्दरी-रत्नचूड़कथानक ३०४
तिलकसूरि ४२८
तिलकाचार्य ११७
तिलोत्तमा ३१०
तिलोयपण्णत्ति ४४, ४५०
तीर्थमाला ४५९, ४६२
तीर्थमालाप्रकरण ४६२
तीर्थमालास्तव ५६५
तीर्थमालास्तवन ४६२
तीर्थावली ४६२
तुंगीगिरि ४६१
तुगलकवंश ४३०, ४३१
तुगलकाबाद ४२७
तुरुष्क ७५, ५९१
तुलसीगणि २००
तेजपाल २२६, ४०४, ४०७, ४०९, ४१७, ४२३, ४३०, ४३७–४३९, ४४६, ५९१, ५९२
तेजसार ३२३
तेजसारनृपकथा ३२३
तेजसाररास ३२३
तेजसिंह ५६०
तेरहपंथी ५३
तेरापन्थी २००, ३१५
तेरापुर १६५
तैलंगाना ४३१
तोमर ४१४
तोमरवंश २९०
तोरमाण ३४१
तोरराय ३४१
तोसिल १२७
त्रिदशतरंगिणी ४५५, ४६४
त्रिपुरुषदेव ५८४
त्रिपृष्ठ ९०, १४३, ४८५
त्रिपृष्ठनारायण ५९८
त्रिभुवनकीर्ति ३७२, ४५९
त्रिभुवनपाल ४१५
त्रिभुवनरति १४९
त्रिभुवनसिंहचरित ३२७
त्रिलक्षणकदर्थन ३१८
त्रिलोकप्रज्ञप्ति ३४
त्रिवर्णाचार ५९८
त्रिविक्रम ३४१
त्रिविक्रम भट्ट ५३८
त्रिशला ९०
त्रिषष्टिपुरुषचरित्र ४५९
त्रिषष्टिमहापुराण ६५
त्रिषष्टिशलाकापंचाशिका ७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिषष्टिशलाकापुराण ६५
त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ६, १७, ३५, ४१, ४९, ७२, ७८, ७९, ९३, १२५, १२८, १३१, १३८, १७१, १८७, २०२, २०३, ४९१, ५२९
त्रिषष्टिशलाकापुरुषमहाचरित ७०
त्रिषष्टिशलाकापुरुषविचार ७९
त्रिषष्टिस्मृति ३५,१२८
त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र ६५, ६६
त्रैलोक्यदीपिका २८७
थराद ५८५
थानेश्वर १३
थारापद्र ५८५
थेरावलीचरिय २०३
दण्डी १४, २५, ५२५, ५३१, ५३७, ५७९
दत्तगच्छ १९६
दधिवाहन १६२
दमघोषमुनि २९७
दमयन्ती ११७, १२७, १३५, १३६, १६०, ५७६, ५८२
दमयन्तीचम्पू ६०६
दयाकरमुनि ५०८
दयापाल ११९
दयावर्धन १६८, २४८
दयावर्धनगणि ३०७
दयावर्धनसूरि १७२
दयाविमल ३६८
दयासुन्दरकाव्य २८९, २९०
द० रा० वेन्द्रे ५३८
दर्दुराङ्कदेव ७३, ७४
दर्पफलिह ३४०
दर्रेदानियाल ४३४
दर्शनभद्र १३२
दर्शनविजय ३५०, ५६०
दर्शनशुद्धि ८५, १२८
दर्शनसार ४४९
दवयंतीकथा १३९
दवयंतीचरित १३९
दवयंतीचरिय १३९
दवयन्तीप्रबन्ध १३९
दशकुमारचरित २३, १९१, ५३१, ५३७, ५७९
दशदृष्टान्तकथा २६५
दशदृष्टान्तचरित्र २६५
दशपर्वकथा ३७२
दशपुर ३७
दशरथ ३६, ६१, ५२५, ५२६, ५८०
दशरथजातक ४१, ६१
दशरथनगरी ३२५
दशरथमुनि ५९
दशरथ शर्मा ४१४
दशवैकालिकचूर्णि ३३४, ३९०
दशश्राद्धचरित १९९, २१६
दशश्रावकचरित्र २६५
दशार्ण ३९८
दशार्णभद्र ७३, १९४, २५७, ५८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशार्णभद्रचरित १९४
दशाश्रुतस्कन्धचूर्णि २०९
दसवेयालिय २४५
दाक्षिण्यचिह्नसूरि ८६
दानकल्पद्रुम १७२, १७३, ३११
दानचतुष्टयकथा २६५
दानचन्द्र ३६७
दानप्रकाश २६१
दानप्रदीप २९९, ३२३, ३२९, ३५९
दानविजय २६४
दानसार ६४
दामनन्दि ६३, ६४, १४९
दामन्नक १२७, २५७, २६४
दामिनी ३७८, ३७९, ३८१
दामोदर ८४, ९८, ११५, ४८४
दिग्विजयकाव्य २१९, ४३५
दिग्विजयमहाकाव्य ७८
दिल्ली १३, ११६, २२९, २५२, ४११, ४१२, ४१७, ४२७, ४२८, ४३१, ४५३, ४५६, ४५७, ४५८, ५१०, ५९०
दिवाकर यति ४१,
दिव्यमुनि केशवनन्दि २५६
दीपगुडि ५९४,
दीपमालिकाकथा ३७०, ३७२
दीपमालिकाकल्प १२२
दीपसेन ४६
दीपालिकाकल्प २६२
दीपावलीकल्प १२२
दीपिकाटीका ६०५
दीपोत्सवकथा ३७२
दुग्ग ३४१
दुबकुण्ड ४६७
दुरियरायसमीरस्तोत्र ९२
दुर्गन्धा ७३
दुर्गपदप्रबोधटीका २२१
दुर्गविप्र १२७
दुर्गवृत्तिद्वयाश्रय ५०५
दुर्गसिंह ५०५, ५२७
दुर्गस्वामी २८१
दुर्घटकाव्य ६०६
दुर्जनपुर ४७३
दुर्मति १२७
दुर्मुख १६०
दुर्योधन १४५, ५१३
दुर्लभराज ३९७, ४२३, ४४४
दुष्यन्त ८९
दुष्षमासंघस्तोत्रयंत्रक ४५५
दूताङ्गद ५८९
दृढ़प्रहारि १९५
दृढ़प्रहारिकथा ३३३
दृढ़मित्रकथा १२७
दृढ़रथ १६३
दृढ़वर्मा ३३८, ३४०
दृष्टान्तरहस्यकथा ३३३
दृष्टान्तशतक ५६०
दृष्टिवाद ४
देल्लमहत्तर २८१
देव ६०
देवकल्लोल २११
देवकी ९७, १४३, १९७, २४६, २९८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवकीर्ति १९८
देवकुमार ३२७, ३७७
देवकुमारचरित ३२७
देवकुमार-प्रेतकुमारकथा ३३३
देवकुलपाटकपुर ५१६
देवकुशल ३६२
देवगिरि १२५, ४१८, ४३१
देवगुप्त ३४, ३९, १७२, ३४१
देवगुप्तसूरि ८३
देवचन्द्र २००, २७५, ३४२, ३५४, ५७३, ५८२, ५८३
देवचन्द्रसूरि ९७, १०९, १२९, १४०, २१०, ३४९, ३५०, ३७७
देवचन्द्राचार्य ८६
देवदत्त १०३
देवदत्तकुमार ३२७
देवदत्तकुमारकथा ३२७
देवदत्तगणि ३२८
देवदत्त दीक्षित, ३६४
देवदत्त भांडारकर ४४३
देवदत्ता ३११
देवनन्दा ७३
देवनन्दि ४८, ६०
देवनन्दि पूज्यपाद ५६७
देवपट्टन ४६५
देवपत्तन ५५२
देवपाल १०३, ११५, २५०
देवपाल पद्मोत्तर २५७
देवप्रभसूरि ५०, ५२, ५४, ८९, ९६, १३९, २५१, ३६३, ४३९, ६०७
देवभद्र, ८४, ९१, १३१, ३८५
देवभद्रमुनि ३६४
देवभद्रसूरि ९०, १२८, १२९, २३८, २४१
देवभद्राचार्य ८९, १००, ३२९
देवमति २६३
देवमूर्ति २००, ३७६, ३७७, ३७९, ३८०
देवर ५२८
देवरथ १७५
देवरवल्लभ ५९४
देवराज ३८२, ५५८, ५५९, ५९९
देवराजप्रबंध ३८३
देवराज-वत्सराजप्रबंध ३८३
देवराय महाराय ५५९
देवर्धिकथा ३१७
देवर्धिगणि १०, ३१७
देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ४४९
देवर्धिगणिक्षमाश्रमणचरित ३१७
देवर्षि ५३५
देवविजय ४२, २७५
देवविजयगणि ५४, १३९
देवविमल २१७, ४३४
देवसंघ ५४०
देवसिंह १७४
देवसुन्दरसूरि ३८०, ४५५, ४६४
देवसूरि ८१, ८२, ९२, १०७, १०९, १२०, २८०, २८३, ४२१, ४२३, ५१०, ५८३, ५८७
देवसेन १८०, २०७, २७३, २७५, ४४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवागमस्तोत्र ५६६
देवाचार्य २०६, ३२१
देवानन्दमहाकाव्य ७८, २१९, ४३५
देवानन्दसूरि ५०
देवानन्दाभ्युदय ५५५
देविंद ९२
देवीचन्द्रगुप्त ४७३, ५७४
देवेन्द्र ९२, ९७
देवेन्द्रकीर्ति २४८, ३७३, ३५७, ४५८
देवेन्द्रगणि ८१, ८४, ९२, २४२, २४३, ३०४, ३०८
देवेन्द्रसूरि ९१, १२९, १३१, १९०, २१०, २८०, ३०५, ३२३, ३२६, ३३०, ३४२, ३६४, ५६५
देशीनाममाला ७०
देशीयगण ४८३, ५५९
देहड़ १२१
दोघट्टी टीका ३२४
दौलताबाद १२५, ४३१
द्यूतकारकुन्द १२७
द्रंगबन्दर ११७
द्रविड़संघ ११८, २८७
द्रोण ५१३
द्रौपदी ११७, १२७, १३१, १६०, १८३, २४६, ५१३, ५४४
द्रौपदीचरित १८३
द्रौपदीसंहरण १८३
द्रौपदीस्वयंवर ५८४
द्रौपदीहरणाख्यान १८३
द्वात्रिंशिका ५६६
द्वादशकथा २६५
द्वादशपर्वकथा ३७२
द्वादशभावनाकथा २६५
द्वादशव्रतकथा २६५
द्वादशानुप्रेक्षा ५२
द्वादशारनयचक्र २१४
द्वारका १४८, ५३०
द्वारवती ४७८, ४९९
द्वारावती ५२५
द्वारिका ४३, ४४, ११७, १३१, १४५, ४७८, ५४८
द्वाविंशतिपरीषहकथा २६५
द्विमुख १६२, १६४
द्विसंधान ५२५
द्विसंधानकाव्य ५२२
द्विसंधानमहाकाव्य ५२४
द्विसप्ततिकाप्रबंध ४२९
द्वैपायनमुनि ५३०
द्व्यर्थकर्णपार्श्वस्तव ५२४
द्व्याश्रय ७२
द्व्याश्रयकाव्य १८, २५, २६, ४२५
द्व्याश्रयमहाकाव्य २२४, ३९६
धंधुकनगर ८२
धंधुका ४४३
धन २६८, २८५
धनंजय २५, २८७, ३०८, ४८४, ५२२, ५२५–५२८, ५६८
धनचन्द्र १६९, ३७३
धनद २४०, ३३२, ५०८
धनदकथानक ३३२
धनदचरित ३३२

धनदत्त ९७, २५५, ३०३, ३२१, ३४८, ५०९
धनदत्तकथा ३२१, ३२२, ३३२
धनदराज ५६०, ६०७
धनदरास ३३२
धनदशतकत्रय ५६०
धनदेव ८३, ३२१, ५८६, ५८८
धनदेव–धनदत्तकथा ३२१
धनधर्मकथा ३२१
धनपति २६१
धनपतिकथा ३३३
धनपाल १४, १८, १२८, १२९, ३३५, ३६३, ३६४, ३६६, ३६७, ४२३, ५३१, ५३५, ५३६, ५६५
धनप्रभसूरि २२७
धनमित्रादिकथा २६५
धनरत्नगणि ३९०
धनवाहन २७९
धनविजय २१८
धनविजयगणि २४४
धनश्री १३१, २६८, ३६४
धनसारसूरि ६०७
धनावहसेठ ४९६
धनेशसूरि १००
धनेश्वरसूरि १०२, २१५, २३८, ३०९, ३४८, ३६०–३६२, ४६०
धन्ना ७३
धन्नाकाकदीकथा ३३३
धन्नाशालिभद्ररास १५९
धन्य २५७
धन्यकथा १६८
धन्यकुमार १६८, १६९, १७०, १७३, १९४, ३३२
धन्यकुमारचरित ५१, ६४, १६८, १७०, १७२, १७३, ३०१
धन्यचरित्र १६८, १७३
धन्यनिदर्शन १६८, १७२
धन्यरत्नकथा १६८
धन्यविलास १६८, १७३
धन्यशालिचरित १६८, १७२, १७३, ३११
धन्यशालिभद्र ३३२
धन्यशालिभद्रकाव्य १७१
धन्यशालिभद्रचरित १६८, १७२, १९७, २०५
धम्मक्खाणयकोस २५३
धम्मरसायनप्रकरण ५५९
धम्मिल्ल १४१
धम्मिलचरित ५१८
धम्मिल्लहिण्डी १४१
धरण २६८
धरणेन्द्र ५६, ३०६
धरसेन ४६
धरादेव ४०८
धरावास नगर २१३
धर्म १०१
धर्मकथा २६३
धर्मकथारत्नाकरोद्धार २५३
धर्मकल्पद्रुम २६०
धर्मकीर्ति ४२, ५५, ९५, ३२३, ६०४
धर्मकुञ्जर ५८५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मकुमार १६८, १७१, २०५, ५६३
धर्मघोष १९७, २६८, ३०५, ४६२
धर्मघोषगच्छ १७, ३५४, ३८३
धर्मघोषसूरि ८१, ९८, १००, १२७, १८२, २०२, २११, ३६२, ५६५
धर्मचन्द्र ९८, १९५, २४८, ३५२, ३७३, ४५७, ५६१
धर्मचन्द्रगणि ११०, २९०, ३२२
धर्मदत्त ३१३, ३१४
धर्मदत्तकथा ५१६
धर्मदत्तकथानक ३०३, ३१३, ३६३
धर्मदासगणि १३९, १४१, १४३, २३३, ३२४, ५५९
धर्मदेव १६६, २६१, ३२३
धर्मदेवगणि ३५२
धर्मधर १४८
धर्मधीर १४८, २९४
धर्मनन्दन ३०३, ३३९
धर्मनाथ ७३, ८५, १०४, ३३९, ४८६–४८८
धर्मनाथचरित १०४
धर्मपरीक्षा २१७, २२६, २७२, ३७३, ३१७, ३४२, ५६२
धर्मपरीक्षाकथा २७२, २७५
धर्मपाल ४२१, ४२२
धर्मपालकथा ३२३
धर्मपितासेठ ५७७
धर्मप्रभसूरि २११
धर्मबिन्दु ५६०
धर्मभूषण १८९, १९०
धर्ममंजूषा ७८
धर्ममन्दिरगणि ३७२
धर्ममित्रकथा ३३३
धर्ममेरु ६०४
धर्मरत्नकरण्डवृत्ति ८०, ३५०
धर्मरत्नटीका १९०
धर्मराजकथा ३३३
धर्मरुचि ६०६
धर्मवर्धन १९०
धर्मवर्धनगणि ५६७
धर्मविजय १९६
धर्मविजयगणि २९८, ६०५
धर्मविधिवृत्ति १२२
धर्मविलास ३२२
धर्मशर्माभ्युदय १४, १८, १०४, ४८१, ४८४, ४८६, ५४३
धर्मशेखर ५१९
धर्मशेखरसूरि ६०६
धर्मसिंह १९०, ४११, ४१२, ५६७
धर्मसिंहसूरि १६९, ९७३, ५६७
धर्मसागर २०९, २७४, २८३, ३२०, ४३०
धर्मसागरगणि ४२, २१७, ४५५
धर्मसार ५६०
धर्मसुन्दर २९६
धर्मसूरि ४९७
धर्मसेन ४६, १८४
धर्मस्तव १४८
धर्महंसगणि १४०
धर्माख्यानकोश २६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्माभ्युदय १८, २५, ५०, १५४, २२६, २५८, ४०८, ४३८, ५८९, ५९०, ५९३
धर्मामृत ५०५
धर्मोपदेशकथा २६५
धर्मोपदेशकुलक ९२
धर्मोपदेशप्रकरण ३०९
धर्मोपदेशमाला १५४
धर्मोपदेशमालाप्रकरण २३४
धर्मोपदेशमालाविवरण २३४, ३१६
धर्मोपदेशशतक ७७, ८०,
धवल ७३, ७६, १२३, १८०, १८७, २०२, ४४३, ४४३, ४६६
धवलकवि १७९
धवलक्क १८२
धवलक्कक ४०६, ४०७
धवलसार्थ २६१
धवला टीका ५९, ४५०, ५२७
धन्यसुन्दरीकथा ३३४, ३६०
धाकड़ ४४७
धातुपारायण ५५०
धारवाड़ ६५, ५३८
धारा ४२९, ५२६, ५३५
धारादेवी ५१३
धारानगर ९, २३६
धारानगरी ४२, ६५, २३८, ४६१
धारिणी १९२
धाहिल ३५७
धीरविजयगणि ३७३
धुरंधरविजय ५५३
धूर्तचरित्रकथा ३३४
धूर्ताख्यान २७१–२७३
धृष्टकथा ३३४
धोलका १८२, ४४३, ५०१
ध्वजभुजंग २६१
ध्वजभुजंगमकथा ३३४
ध्वन्यालोक ४९१
नंद्यावर्तपुर ३७
नगरकोट ४९५
नग्गई १६०
नग्गति १६२-१६४
नथमल ३१५
नदी ५७२
नन्ति ४००
नन्द २०४, २४६
नन्ददत्तकथा ३३४
नन्दन ४८५
नन्दयतिकथा ३३२
नन्दराज ४२३
नन्दराजकुमार ३३२
नन्दराज्यवंश ३१७
नन्दलाल ५६२
नन्दा १९१, ५०७
नन्दिताढ्य ८४, ३५७
नन्दिरत्नगणि २२८
नन्दिल २०६
नन्दिवर्धन ३७, ९०, २७८, ४८५
नन्दिविजय ४३५
नन्दिषेण ४६, ७३, १२७, १९१, ५६५
नन्दिषेणकथा ३३४
नन्दिसंघ ११८, २८७, ४५०, ४५९, ४८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दिसंघ-विरुदावली ४५८
नन्दिसूत्र ५, १६०, ४४९, ४७२
नन्दीतटगच्छ ५४
नन्दीश्वरकथा ५३, ३७२
नन्दोपाख्यान ३३२
नन्नराजवसति ४७
नन्नसूरि ५६५, ५७३
नमस्कारकथा ३७१
नमस्कारफलदृष्टान्त ३७१
नमस्कारस्तव १७२, ३११
नमि ५६, १६०, १६२–१६४, ३५२
नमिनाथ ८७, ११५
नमुक्कारफलपगरण ५६५
नयकर्णिका ४६५
नयचन्द्र ४१५, ५७३, ५९९
नयचन्द्रसूरि १८, २२, २२५, ४१३, ४१४, ५६७, ५९१, ६००
नयनन्दि १९८
नयनन्दिसूरि २९८
नयनावली २६९, २८५
नयरंग २००, ३३३
नयविजय ३५५
नयविमल २९४
नयसुन्दर ३४९, ४५६
नयसेन ११९, १८८
नरचन्द्र २५१
नरचन्द्रसूरि ५०, २५१, ४३९, ४४०, ६०७
नरदेवकथा ३३४
नरनारायण ४९९
नरनारायणानन्द १४, १८, २५, ४९९
नरबद ४४६
नरब्रह्मचरित्र ३३४
नरवर्म ३०१
नरवर्मकथा ३०१
नरवर्मचरित ३२६
नरवर्ममहाराजचरित्र ३०१
नरवाहनदत्त १४४, ३४७
नरविक्रम ९०, ३०३
नरसंवादसुन्दर ३३१
नरसिंह ११७, ३०३, ३८४
नरसिंहसूरि ११२, १२२
नरसिंहसेन ६०५
नरसुन्दरनृपकथा ३३१
नरसेन २९६
नरेन्द्रकीर्ति २९९, ३२०, ४५८, ५२३
नरेन्द्रदेव ३५७
नरेन्द्रप्रभ ११२, ५६०
नरेन्द्रप्रभसूरि १२२, ४०९, ४३९, ४४०
नरेन्द्रसेन १५०
नर्मदा २६३, ४८७
नर्मदासुन्दरी २६४, ३४९
नर्मदासुन्दरीकथा ३४९
नल ७, ११७, १२७, १३२, १३५, १३६, २४०, २५७, ५७६, ५८२
नलकच्छपुर ६५, ६६
नलकूबर ४९
नलचम्पू ३४१, ४९१, ५३८, ६०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नलचरित १३८, १३९
नलदमयन्तीचम्पू ५४४, ६०३
नलविलास १३८, ५७३, ५७४, ५७६
नलायन १३५
नलायनमहाकाव्य २८९
नलिनसहचर ५३६
नलिनीगुल्म ९९
नलोदय ६०६
नलोपाख्यान १३९
नवखण्डपार्श्वस्तव ५२४
नवग्रहगर्भितपार्श्वस्तवन ५२४
नवतत्त्वप्रकरण ८३
नवनन्दचरित ३१७
नवपदप्रकरण ८३
नवसहसांकचरित २६
नवानगर १५९
नवीननगर १५३
नव्यव्याकरण १२५
नसीरुद्दीन ४१७
नाइलकुल ३८, ३४६, ३४७
नाइलगच्छ १५६
नाउ श्राविका २०२
नागकुमार १३२, १४८, १४९
नागकुमारकाव्य ३५, १४९
नागकुमारचरित ६४, १४८
नागकेतुकथा ३३४
नागदत्त २५५, ३१९, ४९२
नागदत्तकथा ३१९
नागदत्तचरिय ३१९
नागदेव २६०, २८२
नागदेश १४९
नागनन्दि ४८६
नागपुर ९, २९३, ३५३, ३६२, ४७४, ४८०
नागपुरीयशाखा २९३, २९४
नागभट्ट ४२२
नागभट्ट द्वितीय ४२१
नागर ४४७
नागवर्मा ५२७
नागश्रीकथा ३३४, ३६०
नागहस्ति ४६
नागानन्द ५८१
नागानन्दनाटक ४९१, ५७५
नागार्जुन ४२६-४२८
नागार्जुनीकोण्डा ४६
नागावलोक ४२२
नागिल ८७, १०१, ४४३
नागेन्द्रकुल १७१
नागेन्द्रगच्छ १७, ८४, ९७, १०२, ११५, २५९, ४२५, ४३७, ४४०
नागौर ६६, ८४, ४७७, ४८०
नागौरी १२५
नागौरीगच्छ १५७
नाट्यदर्पण ५७३-५७५, ५७७, ५८०-५८२
नाट्यशास्त्र ४४, ५७४
नाडोललाखन ४२९
नाणपञ्चमीकहा ३६६
नाथूराम प्रेमी ६०, ५४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नानजी २९०
नानाकपण्डित ५०२
नानूगोधा २९१
नाभाक ३१२
नाभाकनृपकथा ३१२
नाभिनन्दनोद्धारप्रबंध २२९, ३६२, ४३१
नाभिराय ५८, ५१७
नाभेयनेमिद्विसंधान ५२२
नाममाला ५२६, ५२८
नायकुमारचरिउ १४८
नायाधम्मकहा २४५, २६९
नारचन्द्रज्योतिःसार ४३९
नारद १२७, १४२, १४५, १४६, ५९७
नारायण ५२५
नालछा ६५
नालन्दा १०
नासिक्य १०४
नाहडराय ४२९
निःदुःखसप्तमी ३७२
निधिदेव-भोगदेवकथानक ३३४
निन्नय ४४४
निमिराज ३३३
निमिराजकाव्य ३३३
निम्बकमुनि १२७
निर्दोषसप्तमी ३७२
निर्नय ४४५
निर्भयभीमव्यायोग ५८१
निर्भाग्य १०३
निर्वाणकाण्ड ४६०
निर्वाणकाण्डस्तोत्र ५६६
निर्वाणभक्ति ४६०
निर्वाणलीलावती २४
निर्वाणलीलावतीकथा २३८, ३४३
निर्वाणलीलावतीकाव्य ३४५
निवृत्तिकुल २८१
निवृत्तिवंश १३३
निव्वाणलीलावई ३४५
निशीथ २४३
निशीथचूर्णि १४३, २०९, २७२, ३३५, ४४८
निशीथवृत्ति ३२५
निषध १३५
निसुरत्तखान ४१२
नीतिवाक्यामृत ३९१, ५४०, ५४१, ५६२
नीतिशतक २४, ५६०
नीलजलसा १४२
नीली ४००
नूरजहां ४३५
नृपशेखर १०३
नेमप्रभ ३०६
नेमि ७७, ७९, १३१, १९७, ४७८, ४७९, ५२४, ५२५, ५२९, ५६७
नेमिकुमार ९५, ४३०, ५४९, ५५०
नेमिचन्द्र ८५, १०४, ११९, १५०, १७५, २३६, ३००, ३३३, ३७२, ४८४, ५२६, ५२८, ५७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नेमिचन्द्रगणि ३३६
नेमिचन्द्रसूरि ८५, ९२, १२१, २४२, २४३, ३०४, ३०८
नेमिचरितकाव्य ११५
नेमिचरित्र ११५
नेमिचरित्रस्तव ५६५
नेमिदत्त ४३, ११७, १६५, १६८, १७३, १९८, १९९, २३७, २८३, २९५, २९९, ३२०, ३७३
नेमिदूत ५४६, ५४८, ५४९, ५५४
नेमिदेव ५४०
नेमिद्विसंधान ११५
नेमिनाथ ४३, ४४, ४९, ५१, ६३, ७३, ७७, ८७, ११५, ११७, १२७, १३१, १३९, १६०, १७६, १८३, १८४, २४४, २५८, ४३८, ४७७, ४७९, ५२२, ५४६, ५४८-५०, ५८९
नेमिनाथचउपई १२२
नेमिनाथचरित ११५, ११६, १३९, २५८, ५२२, ५९०
नेमिनाथपुराण ४३
नेमिनाथमंदिर ६६
नेमिनाथमहाकाव्य ११६
नेमिनाथस्तोत्र ५०१
नेमिनाहचरिउ १३०, ४४३
नेमिनाहचरिय ८३, ८७
नेमिनिर्वाण ४८४, ४८६, ४८९, ४९१
नेमिनिर्वाणकाव्य ११५, ११७, ४९०
नेमिनिर्वाणमहाकाव्य ४७७
नेमिपुराण ११७
नेमि-भक्तामर ५६७
नेमिविजय ३५३
नेमिषेण २७३
नेमिसेन १७०
नैगम १६९
नैषध ५४३, ६०३
नैषधकाव्य ५५५
नैषधचरित ५११
नैषधमहाकाव्य २१७
नैषधमहाकाव्यवृत्ति १४८
नैषधीय ७८
नैषधीयचरित १४, ११०, १३५, ४९१, ६०६
नोघकनगर ५३
नोमक ४९०
न्यायकन्दली ४३९
न्यायकन्दलीपंजिका २५१, २५४, ४२९
न्यायकुमुदचन्द्र २३७
न्यायदीपिका १८९
न्यायरत्न २६२
न्यायविनिश्चयविवरण २८७
न्यायसार-टीका २२५
पंगु ५९९
पंगुल ५९९
पंचकल्पभाष्य ४, ५, ६, २०९
पंचकल्पभाष्यचूर्णि २०६
पंचजिनस्तव १७२, ३११
पंचतंत्र १९, २४०, २४६, २५०, २५२, २८२, ३१६, ३६७, ३८८, ३९०, ३९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचतीर्थी २००
पंचतीर्थीस्तुति ५२४
पंचदण्डकथा ३७९
पंचदण्डछत्रकथा ३७९
पंचदण्डछत्रप्रबन्ध १९
पंचदण्डपुराण ३७९
पंचदण्डप्रबंध ३७९
पंचदण्डात्मकविक्रमचरित्र ३७८
पंचनद ४१०
पंचनाटक १३८
पंचपरमेष्ठीपूजा ५२
पंचमीस्तुति २६१
पंचलिङ्गीप्रकरण २३८
पंचवर्गसंग्रहनाममाला २४५
पंचवास्तुक ४४८
पंचशतीप्रबंध २४५
पंचशतीप्रबोधप्रबंध २०७, २४५
पंचसंग्रह २७३, ३४२
पंचसंधान-महाकाव्य ५२२
पंचस्तूपान्वय ५९
पंचाख्यान ७८, ३८८, ३९०
पंचाख्यानक ३८९
पंचाख्यानककथासार ३७०
पंचाख्यानचौपई ३९१
पंचाख्यानवार्तिक ३९१
पंचाख्यानसारोद्धार ३९०
पंचाख्यानोद्धार ३९१
पंचाणुव्रतकथा २६५
पंचाध्यायी १५८
पंजाब ४५३
पंजिका ५४१, ६०५
पइन्नय २४५
पउमचरिउ २६, ३४, ४०, ५९५
पउमचरिय ६, ३४, ३५, ४०, ४१, ६१, ६८, ७०, १४२, १८३, ५९७
पउमपभचरिय ८१, १२०
पउमसिरिचरिउ ३५७
पञ्चमीकथा ३६५
पटना ४७४
पट्टावली २१७, ३०९, ४४९, ४५५
पट्टावलीपराग २६६
पट्टावलीसारोद्धार ४५६
पटुमति ४८६
पटोदी ९८
पडोचन्द्र २८९
पणि ५७२
पण्डिताचार्य ९८, ५५९
पत्तन १३९
पत्तननगर १२७
पथिकपञ्चदशक २००
पदकौमुदी ५२६, ५२८
पद्म ३५, ४०, ९४
पद्मकुमार ३२०
पद्मचन्द्र २७१, ३१९, ५८८
पद्मचन्द्रसूरि २८९
पद्मचरित १४, ३९, ४०, ४४, ४८, ६१, ७३, १८०, १८३
पद्मनन्दनसूरि २०९
पद्मनन्दि १२६, २४८, २७५, २८३, ४५७, ४५८, ५२८, ५५९, ५६९, ६०६

पद्मनाथ ४२, ९६, २९०, ४८२,
पद्मनाभकवि ३३४
पद्मनाभ कायस्थ २८३
पद्मनाभचरित ५३
पद्मनाभपुराण ९६
पद्मपुराण २६, ४०, ४२, ४८, २५६, ५९५, ५९७
पद्मपुराण-पंजिका ४२
पद्मप्रभ ८१, ११०, ११२,
पद्मप्रभचरित्र ९६, ३८५
पद्मप्रभसूरि ११२
पद्ममंत्री ९३, ५१४
पद्ममन्दिरगणि २५१, ४५२
पद्ममहाकाव्य ४२
पद्ममूर्ति २२२
पद्ममेरु ६६, १२५
पद्मरथ १६३, ३५२
पद्मलोचना १०३
पद्मलोचनकथा ३३४
पद्मविजय १७८, १९६, ३२७
पद्मसागरगणि २१७
पद्मविजयगणि १७६
पद्मश्री ३५७
पद्मश्रीकथा ३५७
पद्मसागर ४२, २०९, २१७, २८३, ४३४
पद्मसागरगणि २६४, २७४
पद्मसुन्दर ६६, ६७, १२५, १५५, १५७, ३६६, ४३२, ६०१
पद्मसुन्दर नागौरी १५५
पद्मसेन ४५, १०२, १०३, ३५५
पद्मा ८९
पद्माक १६४
पद्माकर २५५, २६१
पद्माकरकथा ३२९, ३३४
पद्मादित्य ४०८
पद्मानन्द ७७, ५६०
पद्मानन्द-महाकाव्य ९३, ५१४
पद्मावत १६५, १७२, ३०७
पद्मावती १०, १०३, १४३, १६२, ३०६, ६१२, ३१३, ३५४, ३८६, ५०३
पद्मावतीचरित्र ३५४
पद्मिनीचरित ३६०
पद्मेन्दु ४९९
पद्मोत्तर १७५
पनसोगे ६४
पभोसा ४६८,
पम्प ९, १८८, ५३८
परदेशीचरित ३१८
परव्रत ४४६, ४४७
परमर्दि ३०१
परमर्दिदेव १७०
परमहंससंबोधचरित ३३३
परमात्मराजस्तोत्र ५२
परमानन्द २५५
परमानन्द शास्त्री ३८
परमानन्दसूरि ३०४, ३४३
परमार ९, १३, ४२, ६३, ६६, १०२, ११५, १४६, २३६, ३४२, ४०१, ४०२, ४१८, ४२५, ४४४, ४६१, ४७६, ५३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमेष्ठिस्तव ५६५
परवादिघरट्ट ५२८
पराशर ५४१
परिशिष्टपर्व ७०, ७६, १५४, २०३, २०५, ३२१
पर्पट ४७६
पर्वकथा ३७३
पर्वकथासंग्रह ३७३
पर्वत १४२
पर्वतिथिविचार ३०७
पर्वरत्नावली १७५, ४६४
पर्वविचार ३०७
पल्यविधानव्रतोपाख्यानकथा ३७३
पल्लक्कीगुण्डु १८८
पल्लिवालगच्छीय-पट्टावली ४५६
पल्लीकोट ४१०
पल्लीगच्छ ३५१
पल्लीवाल ११५, ४४७, ५३६
पवनञ्जय ५९५
पवनदूत ५३, १२५, १८०, ५४६, ५५१
पवनवेग २७४
पट्टुपाल २९२
पांगुल ३६८
पांचाल १६२
पाटन ५२, ७४, ८३, १२४, १२९, २५३, २९९, ४२९, ४३१, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४६, ४६३, ४६९, ४९१, ४९२, ५१५, ५२२, ५८९
पाटनगर २२९
पाटन-सूचीपत्र ३२९
पाटलिपुत्र २०४, ३११
पाटोदी २४७
पाडिच्छयगच्छ ३००
पाणिनि ४२०, ५७२
पाण्डव ७, ५१३, ५२०, ५२५, ५२९, ५३०, ५४४
पाण्डवचरित ४९, ५२, ५४, ५५, १३९
पाण्डवपुराण ५२, ५३, ५४, ५५, ११९, १५३, १६६, १८०, ४५७, ५५१
पाण्डुदेश ४३१
पाण्डुराज ५२५
पाण्ड्य ५९४
पातंजल ५७२
पात्रकेशरी ६०, २३५, ३१८, ५६७
पात्रकेशरीकथा ३१८
पात्रकेशरीस्तोत्र ३१८, ५६८
पादपूज्य ४६१
पादलिप्त ३३, ८५, १६०, २०५, २०६, २१४, ३३६, ४१९
पादलिप्तसूरि १८२, ११४, ३३५
पादलिप्तसूरिकथा २१४
पापड़ीवाल ४५८
पापबुद्धि धर्मबुद्धिकथा ३१६
पार-प्रदेश ४१७
पार्श्व ५३, ७७, १२५, १६०, ५२४, ५२९
पार्श्वकीर्ति २७५

पार्श्वचन्द्र १०९, ३६७, ५८३
पार्श्वचन्द्रगच्छ-पट्टावली ४५६
पार्श्वचरित्र ९५
पार्श्वजिन ५८२
पार्श्वजिनालयप्रशस्ति ४६४
पार्श्वनाथ ४७, ६३, ६४, ७३, ७७, ७९, ८८, ८९, ९१, ११७-११८, १२०, १२२-१२५, १३८, १६०, १७१, १९६, ३५१, ३६१, ३६८, ३९३, ४०४, ४४४, ५१६, ५४६, ५४७, ५६४, ५६६, ५६९, ५८९
पार्श्वनाथकाव्य ६७, १२५, ४३२
पार्श्वनाथचरित ८१, ९८, १०६, १०७, ११२, ११४, ११७, ११८, १२०, २८७, २८८, ४८४, ५२७
पार्श्वनाथचरित्रसम्बद्धदशदृष्टान्तकथा २६५
पार्श्वनाथ-जिनमंदिर ३०३
पार्श्वनाथजिनेश्वरचरित ११८
पार्श्वनाथपुराण ५२
पार्श्वपुराण ५३, १२५, १८०, २९०, ५५१
पार्श्वनाथमंदिर ९६
पार्श्वनाथमहाकाव्य २१८, २५२
पार्श्वनाथसमस्यास्तोत्र ५६७
पार्श्वनाथस्तंभलेख ३०१
पार्श्वनाथस्तोत्र ५५५, ५६७
पार्श्वस्तव ११२, ५२४
पार्श्वाभ्युदय ६०, ११७, ५४५, ५४६, ५४८, ५५४, ५५९
पावापुर ४६०
पाल १३
पाल-गोपालकथा ३१५
पालड़ीग्राम २६३
पालनपुर १६४, १७५, १९७
पालनरेश ४२२
पालित्तसूरि १२८
पालीताना २२३, ४४६
पासनाहचरिय ८८, ८९, २३८, २४१
पिटर्सन ४४१, ४६६
पिण्डनिज्जुत्ति ५७२
पिन्हेरो ४३३
पिप्पलक ८३
पिप्पलकगच्छ ३२२, ३५१
पिप्पलकशाखा ३५६
पिप्पलाद १२७, १४२
पिहितास्रव १४९
पीठदेव ४१७
पीथा १३९
पुंजराज ४२३
पुण्डरीक ७३, १८१
पुण्डरीकचरित १६०, १८१
पुण्डरीकस्तव ५६५
पुण्यकुशल १२९
पुण्यकेतु ५८५
पुण्यतिलक ३०२
पुण्यधनचरित ३२६

पुण्यधननृपकथा २४५
पुण्यनन्दनगणि २६५
पुण्यपाल ३५७
पुण्यपालराजकथा ३५७
पुण्यप्रकाश २३०
पुण्यप्रदीप २१४
पुण्यरत्नसूरि १७५
पुण्यवतीकथा ३६०
पुण्यशीलमुनि ६०६
पुण्यसागर ३२९, ३७०
पुण्यसागरगणि १८३
पुण्यसार ३२६
पुण्यसारकथा २२१, २४५, ३२६
पुण्यसारकथानक ३०२
पुण्यहर्ष ६०४
पुण्याढ्य १०१
पुण्याढ्यनृपकथा ३३४
पुण्याश्रवकथाकोष १६५, १९८,२५५
पुन्नडकथा ३३४
पुन्नाट ४६, ४७
पुन्नाटसंघ ४६, ४७, २३५
पुरन्दर ३२६, ३४४
पुरन्दरदत्त ३३९
पुरन्दरनृपकथा ३२६
पुरन्दरनृपचरित्र ३२५
पुरन्दरविधिकथोपाख्यान ३२६
पुराण ५६३
पुराणसार ६., ६४,
पुराणसारसंग्रह ३४, ५२, ६३,
पुरातनप्रबन्ध २०६
पुरातनप्रबंधसंग्रह २४६, ४१८, ४२०, ४२९, ५०२, ५९९
पुरुदेव ५४३
पुरुदेवचम्पू ५०४, ५४३
पुरुदेवपंचकल्याणकथा २६५
पुरुरवा ४८५, ५७२
पुरुषचरित ५९३
पुर्तगाली ४३३
पुलकेशि ४६६, ४६७
पुलिन्द १८६
पुष्करगण ९६
पुष्पचूला ३१९
पुष्पदन्त ९, ४१, ६२, ७९, ८४, ९८, १४८, २८७, ५६३, ६०६
पुष्पदन्तचरिय ८४
पुष्पभूति १३
पुष्पवतीकथा ३६०
पुष्पसार १२७
पुष्पसुंदरी १७५
पुष्पसेन ११९, १५३
पुष्पांजलिव्रतकथा ५२
पुष्पांजलीकथा ३७३
पुस्तकगच्छ ५५९
पुहवीचंदचरिय १७४, १७५
पूज्यपाद २७५, ४६१
पूना २४९, ४४६
पूरणचन्द्र नाहर ४७०, ४७३
पूर्णकलश १०३
पूर्णकलशगणि ५६५
पूर्णचन्द्र १७५, ६०६
पूर्णचन्द्रसूरि ३७८
पूर्णतल्लगच्छ १७, ८६
पूर्णदेव २८३

पूर्णपाल ४४५
पूर्णभद्र १६८, २६४, ३८८, ३८९
पूर्णभद्रगणि १९७, १९९, ३१६
पूर्णभद्रसूरि १७१, ३८८, ३९०
पूर्णमल्ल ३५५
पूर्णिमागच्छ १०९, १६७, १७६, २०१, २६१, २९४, ३०१
पूर्णिमाशाखा २०२
पूर्वर्षिचरित २०५
पृथ्वी १४९
पृथ्वीचन्द्र १७४, १७५, ३२३, ४२३, ४९५
पृथ्वीचन्द्रगुणसागरचरित्र १७४
पृथ्वीचन्द्रचरित्र १७४-६, ३०३, ३६३, ३८४, ४६४, ५१६
पृथ्वीधर २२८, २२९
पृथ्वीधरचरित २२९
पृथ्वीधरप्रबंध २२८, ३३१, ३८३
पृथ्वीपाल ८३, ८७, ४४३, ४४४, ४८२
पृथ्वीराज २२१, ४११, ४२९, ४४२
पृथ्वीराजरासो ४२०
पृथ्वीसार ३३८, ३३९, ३४०
पृष्ठचम्पा १९४
पेथड २२८, २२९, ४१८, ४४६, ४४७
पेथडचरित ४१८
पेथडप्रबंध २२८
पेथडरास ४४७
पेथडशाह १८
पैराडाइज लास्ट २७
पोदनपुर २९१
पोन्न ५३८
पोरवाड २२६, २५७, ४३२, ४४४, ४४६, ४४७, ४८०, ५८४
पौर्णमासिकगच्छ ८५
पौर्णमिकगच्छ १०७, ११२
पौर्णमिकगच्छ-पट्टावली ४५६
पौषदशमीकथा ३६८
प्रजापति १३२
प्रजापाल २९१
प्रज्ञाकर ३२९
प्रताप ५८६
प्रतापसिंह ४१७
प्रतिक्रमणविधि ४१७
प्रतिबुद्ध ११०
प्रतिमालेखसंग्रह ४७४
प्रतिष्ठातिलक ५९४, ५९८
प्रतिष्ठानपत्तन ४२६
प्रतिष्ठानपुर ४२६
प्रतिष्ठापाठ १७०
प्रतिष्ठासारोद्धार ५९४
प्रतिष्ठासोम २१५
प्रतिहार ४२३
प्रतिहार-वंश २३६
प्रतीहार ५९७
प्रत्येकबुद्धचरित १६०, १६१, ३०२, ३४६
प्रत्येकबुद्धमहाराजर्षिचतुष्कचरित्र १६१
प्रदेशव्याख्याटिप्पन ८७
प्रदेशी ३१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशीचरित ३१८
प्रद्युम्न ४४, ६१, ११७, १२७, १३२, १४१, १४६, १७२
प्रद्युम्नचरित १४४, १४६, १४७, २९०, ५१५
प्रद्युम्नचरितकाव्य ४७६
प्रद्युम्नसूरि २४, ५०, १००, १०९, ११२, १५६, २०५, २७०, २७१, २८०, २९५, ३०४, ३४२, ३४३, ३४९
प्रद्योत २०१
प्रद्योतकथा १९४
प्रबंधकोश २०६, २१४, २४६, २५१, २५४, ३७५, ३७७, ४०४, ४१८, ४२६, ४२९, ४६१, ५७६, ५९९
प्रबंधचिन्तामणि १८, ७७, २०६, २२५, २४६, २५९, ३१०, ३७५, ३८२, ३८४, ४०८, ४१७, ४२२, ४२६, ४२९, ४४३, ४५२, ५०२, ५३५, ५५०, ५८८, ५९९
प्रबंधपंचशती २४६
प्रबंधसंग्रह १८
प्रबंधावलि १०६, १२१, २०६, ४०९, ४१९, ४२०, ४२९
प्रबुद्धरौहिणेय ५८३, ५९३
प्रबुद्धरौहिणेय-नाटक २००
प्रबोधचन्द्रोदय ५८५, ६०१, ६०७
प्रबोधचिन्तामणि ५१८
प्रबोधपंचपञ्चाशिका २००
प्रबोधमाणिक्य ६०६
प्रभंजन ३४, ३९, २८३, २८६, २८७, २८९, ५४०
प्रभव ४०, ४२
प्रभवबोधकाव्य २००
प्रभाचन्द्र ४२, ५०, ५३, ६०, ६६, ११२, १२५, १६९, १७२, १७३, १९८, २०५, २१०, २३५–२३७, २९९, ३१७, ३७५, ४१९, ४५७, ४५८, ४६१, ५२६, ५८७, ६०१
प्रभावककथा २०७, २४५
प्रभावकचरित १८, ५०, १७२, २०५, २०७, २२५, २४६, २८१, ३३५, ३७५, ४१८, ४२१, ४२६, ५३५, ५७४, ५८८
प्रभावती ७४, १९५, १९६, १९७
प्रभावती-कथा १९६
प्रभावतीकल्प १९७
प्रभावतीचरित्र १९७
प्रभावतीदृष्टान्त १९७
प्रभास ४९९, ४०६
प्रभासपाटन ४६५
प्रभुराज १७९, १८०
प्रमाणनिर्णय २८७
प्रमाणप्रकाश ८४, ९१
प्रमाणप्रकाश-सटीक २१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणशास्त्र ५२६
प्रमाणसुन्दर ६७
प्रमालक्ष्म २३८
प्रमेयकमलमार्तण्ड २३७, ५२७, ५८७
प्रमेयरत्नकोश ८५
प्रमोदमाणिक्य २३०
प्रवचनपरीक्षा ४३०
प्रवचनसारसरोजभास्कर २३७
प्रवचनसारोद्धारटीका ८४, ९६
प्रवचनोद्धार ३८५
प्रवरवज्रशाखा ४९५
प्रशमरतिवृत्ति २९८
प्रश्नवाहनकुल ४२८
प्रश्नसुन्दरी ७९
प्रश्नोत्तरमालिका ३८
प्रश्नोत्तरसंग्रह २०१
प्रश्नोत्तरोपासकाचार ५१
प्रसन्नचन्द्र ७३, ८९, ९१, १४१, २२५, २५०
प्रसन्नचन्द्रसूरि ४१४
प्रसेनचन्द्र १३२
प्रसेनजित १९१
प्राग्वाट २०२, ४०५, ४८०, ५८४
प्राचीन जैन लेख-संग्रह ४७०, ४७१, ४७३
प्राचीनतीर्थमालासंग्रह ४६२
प्राणप्रिय ५९०
प्राणप्रियकाव्य ५६७
प्रियंकर ३२५, ३७१
प्रियंकरकथा ३२५
प्रियंगुश्यामा ३३८
प्रियंगुसुन्दरी १४१, १४३
प्रियंवदा ३४७
प्रियंसुन्दरी ३४८
प्रियमित्र ९०
प्रीतिकर ३२०
प्रीतिकरमहामुनिचरित ३२०
प्रीतिमती ३४६, ३६८, ४९६
प्रीतिविमल ३११
प्रेमराज ६०७
प्रेमविजय २६३
प्रेमी ६२
प्रोठिल ९०
फत्तेन्द्रसागर ३७०
फर्रुखाबाद ५३५
फलधर्मकुटुम्बकथा ३३४
फलौधी ३९१
फिरोजशाह तुगलक २९४, ४३०, ५१०
बंकापुर ५९, ६२
बंगाल ८, १३, ४२१, ४६२
बंधुमती ५३८
बकासुर ५८१
बकुलनरेश १८४
बकुलमती ४९३
बकुलमाली ३०४
बघेरवाल ४५७
बघेल ९, ४२५, ४३०, ४३८
बघेलवंश ५९०
बघेला ४०४, ४०५, ४०६, ४४६
बघेलावंश २२६, ४३९
बटेश्वर ३४१
बड़गच्छ ८३, ८७, २८९
बड़नगर ४६६
बड़साजनपट्ट ५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बड़सेर ३४१
बड़ौदा ५९, ४४१, ४६५, ५२२
बढ़मान २३५
बनारस ६१, ५९९
बनासकांठा ५८५
बन्धुदत्त २९६
बप्पभट्टि २०५, २०६, ४२२, ५६७, ५७३
बप्पभट्टिकथा २१४
बप्पभट्टिचरित २१४
बप्पभट्टिसूरि २०२, ४२१
बप्पभट्टिसूरिप्रबन्ध २१४
बब्बरदेश ३४९
बम्बई ११०, ४७९, ५७१
बरेली ४८०
बर्बर १४२, ४४८
बर्बरक ४०२
बलदेव ४६, १३१
बलभद्र ७३, १३२
बलभद्रचरित्र १३२
बलमित्र ४६
बलराम ४४, ६१, १३१, १४१, १४६ ४९९, ५००, ५३०
बलात्कारगण ६२, १८९, १९८, २४८, २९०, ४५०, ४५६–४५९
बलि ५७२
बलिनरेन्द्रकथानक १४०
बलिनरेन्द्राख्यान १४०
बलिराज १३२
बलिराजचरित १४०
बल्लाल ३८२
बल्हण १७०
बागड़ ५१, ४५३
बागड़प्रदेश २००
बाडमेर १६४, १९३, ३४५
बाडली ४६८
बाण १८, २६७, ४२३, ५३१, ५३३, ५३७, ५३९, ५४१, ५६३, ६०५
बाणभट्ट ३४१, ३९४
बादामी १८६
बाबर ६७, ४३२
बारली ४६८
बारेजा ४६५
बालकवि ४४५
बालचन्द्र ४०८
बालचन्द्रसूरि १८, ४०८, ५९३
बालबोधव्याकरण ५५०
बालबोधिनी ६०४
बालभारत १८, ७७, ९३, ९४, ९५, ५१२
बालारुण ५३१
बालावबोध २४४, ३६२, ६०५
बालि ३६, ६८
बाहड ४३०, ५२०
बाहड़पुत्र बोहित्थ ३०२
बाहुबलि ५६–५८, ९०, ९३, १३२, १८१, १९०, २०२, २५०, २५८, ५५८
बिंद ३४१
बिंदुसार २०४
बिजौलिया १७०, ४५७
बिहार ८, ९६, ४५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीकानेर २२९, ४३३, ४५३, ४६२, ४६३, ४६६, ४७०, ४७३
बीकानेर लेख-संग्रह ४७३
बीजा ४४६
बीजापुर ४४६, ४६६
बुद्ध १०, १८५, १९६
बुद्धचरित १४, २५, १८८
बुद्धिविजय ३५४, ३५५
बुद्धिसागर ३१०
बुद्धिसागरसूरि ८९, २३८, ४७३, ५७३
बुधराघव ९६
बुहलर ७६, ४१८, ४६६
बुहिला ३४७
बृहट्टिप्पणिका २३९, ५८१
बृहट्टिप्पनिका ७०, १६१, २९७
बृहत्कथा ४४, १४४, २६९, ५३४
बृहत्कथाकोश १९८, २३४, २५६, २८३, ३१९, ३२८, ४४९
बृहत्कथाश्लोकसंग्रह ४४
बृहत्कल्पभाष्य २०९, ३९०
बृहत्कल्पभाष्यचूर्णि २०९
बृहत्खरतरगच्छ २१८
बृहत्तपागच्छ १०३, ३८६
बृहत्पौषधशालिक-पट्टावली ४५६
बृहद्गच्छ १९, ८०, ८४, ८८, ९२, १०८, १०९, १७५, २४२, २५७, २९८, ३०४, ४६९, ५१०, ५६१
बृहद्गच्छ-गुर्वावली ४५६, ४९५
बृहद्गुर्वावली ३४५
बृहद्टिप्पनिका ३४७
बृहद्-तपागच्छ ५५१
बृहद्वृत्ति ८३
बौद्ध ३१, ५६३
ब्यारानगर १८०
ब्रह्मअजित १३९
ब्रह्मचारिभर्तृभार्या १२७
ब्रह्मजयसागर ११०
ब्रह्मजिनदास १५४
ब्रह्मदत्त ७, ७३
ब्रह्मदत्तकथा १३१
ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिकथानक १३१
ब्रह्मदयाल १३९
ब्रह्मदेव ११०, २३६
ब्रह्मदेवसूरि ५९६
ब्रह्मबोध ७९
ब्रह्मस्थ १५१
ब्रह्मसूरि ५९४, ५९८
ब्रह्मा १८५, ५२२
ब्राह्मणदारक १४१
भक्तामर ५६४, ५६७, ५७१
भक्तामरकथा ३७०
भक्तामरस्तव १४८
भक्तामरस्तोत्र ५५५, ५६७-५६९
भक्तामरस्तोत्रचरित्र ३७०
भक्तामरस्तोत्रटीका २६१
भक्तामरस्तोत्रमंत्रकथा ३७०
भक्तामरस्तोत्रमाहात्म्य २४५
भक्तिलाभ ३०९
भक्तिविजय ३५५
भगवई २४५
भगवज्जिनसेन ५९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती-आराधना १९७, २३४
भगवतीदास ४६०
भगवतीसूत्र १९६, २०१
भट्टवोसरि ६४
भट्टसूदन ४४५
भट्टाकलंक ६०
भट्टिकाव्य २५, ३९७
भड़ौच ९, १३९, २४१, २९१, ३६३, ३७५, ३८४, ४१८, ४६५, ५९२
भत्तपइण्णा १९७
भद्र २६१
भद्रकीर्ति १२८
भद्रगुप्त १६८, १७२
भद्रनन्दिकुमारकथा ३३४
भद्रबाहु ३४, ४४, ८६, १४०, १६०, १८२, २०४, २०६, २०७, २३५, ४२७, ५६५
भद्रबाहुकथा २०८
भद्रबाहुचरित २०७, ४४९
भद्रबाहुस्वामी २३४
भद्रश्रेष्ठिकथा ३३४
भद्रा १७०
भद्रेश्वर ६, ३४, २०४, २०९
भद्रेश्वरसूरि ७१, १०९, १५४, २०३, ५१०
भरटकद्वात्रिंशिका ३८६
भरत ३६, ५५-५८, ९०, ९३, १२८, १३२, १५९, १७८, १८०, १८१, २४५, २५८, ३६१, ५११, ५१७, ५२९, ५३०, ५७२, ५७४, ५९६
भरतकुमार ५१६, ५१८
भरतक्षेत्र ५२९
भरतचक्रवर्ती ९१, ९२
भरतचक्री ७२
भरतचरित्र १२९
भरत-बाहुबलि ३६०, ३६१
भरतमुनि ४४
भरतराज ५९४
भरतसेन २३५
भरताष्टपद्नृपचरित्र २६५
भरतेश्वरचरित्र १२९
भरतेश्वरबाहुबलिमहाकाव्य १२९
भरतेश्वरबाहुबलिवृत्ति १३९, २०७, २४४, ३११, ३२६, ३५२, ३५७, ३८३
भरतेश्वरसूरि १००, १२१
भरतेश्वराभ्युदयकाव्य ६६, १२८
भरमल १३
भरुकच्छ २४१
भरुच ४४३
भर्तृहरि २४, २४६, ३८८, ५४१, ५६०, ६०७
भर्तृहरिशतक २५२, ६०७
भवभावना २३४
भवभूति ५४१, ५७३, ५७५, ५७६
भवादिवारण ५६८
भविष्यदत्त २९६
भविष्यदत्तकथा ७८, २९६, ३६६
भविष्यदत्तचरित ६७, ३६५-३६७
भविष्यदत्ताख्यान ३६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भविसत्तकहा ३६७
भविस्सयत्तकहा ३६६
भव्यकण्ठाभरण ५०४
भव्यभजनकण्ठाभरण ५०५, ५६०
भाण्डारकर ४४१
भानुकीर्ति १९५, ३५७, ३७२
भानुकुमार १४५, ३४०
भानुचन्द्र १०, २१९, ३१३, ४३४
भानुचन्द्रगणि ३१५, ३२२, ३३३, ३३४, ६०३, ६०५
भानुचन्द्रगणिचरित २१९, ४३५
भानुदत्त ५०९
भानुपुर ४५८
भानुमति ३३९
भानुवेग ४९३
भानुसतमीकथा ३७३
भामण्डल ३५
भामह १४, २०, २५
भामाशाह १३
भारत २०४, २२६, ५१७
भारतवर्ष ४५, २१३, २३५, ३८९, ३९२
भारतीयगच्छ १८९
भारद्वाज ५४१
भारवि १८, २५, ८१, १८८, ४७५, ४८६, ५२६, ५४१, ६०५
भावचन्द्र १६७, ३२६, ३२८, ३३३
भावचन्द्रगणि ३२२
भावचन्द्रसूरि १०९
भावदेव १२४
भावदेवसूरि २१०, ३२६
भावनगर ४४६
भावनाद्वात्रिंशिका २७३
भावनासार २३३
भावप्रभसूरि ३७२, ५५५, ५६७
भावविजयगणि १६१, ३५८
भावसंग्रह ४४९
भाष्यत्रय १९०
भास ४२८, ५४१, ५७३, ५८१
भास्करकवि १५१
भिन्नमाल ९
भिल्लमाल २८१, ३४१
भिल्लमालवंश १२१
भीम २२६, ३६१, ३९७, ४००, ४०३, ४०५, ४२१, ४२३, ४२५, ४४५, ५८१
भीमदेव २०२, ४०४, ४१५, ४२०, ४४४, ४४५, ५८४
भीमसिंह ४११, ४१२
भीमसेन ४६, ४७, १४६, ३०९, ३१०, ३६१
भीमसेननृपकथा ३०९
भीमादेवी ५५९
भीमासुर १४९
भीमेश्वर ५९१
भीष्म ५१३, ५४१
भुवनकीर्ति १३०, १५५, २६४, ४५७
भुवनचन्द्र १३१, ३६४
भुवनतुंगसूरि ३९, ४०, ८०, ८७
भुवनदीपक ११२
भुवनपाल १६४, ४४२
भुवनभानुकेवलिचरित्र १४०, १७७
भुवनसुन्दरी ३४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुवनसुन्दरीकथा ३४७
भुवनाभ्युदय २६
भूभट ४०४
भूयराज ४२३
भूरामल १७९, ५१२
भृगुकच्छ १२७, ३६३, ३६४, ४०६, ४१०, ४३८
भृगुकच्छपुर १३९
भृगुपुर ३७५
भैरवपद्मावतीकल्प ६५, १५०
भैरवानन्द ५७५
भोगकीर्ति १४५
भोज ४२, १२८, २३६, २४६, २५२, २७३, ३४२, ३८१, ३८४, ३९७, ४०१, ४१२, ४२१, ४३०, ४७६, ५२६, ५३५
भोजगांगेय ४२९
भोजचरित ३८२
भोजदेव ६३
भोजप्रबंध २२८, २४५, ३३१, ३८२-३८४, ४१८, ५३५
भोजमुंजकथा ३८१
भोजसागर ११७
मंकुशिला २०२
मंगरस ५५, ११७
मंगलकलशकथा ३२८
मंगलकलशकुमार ३२८
मंगलकुंभ १०७, ५०८
मंगलदास १०४
मंगलमालाकथा ३६०
मंगु ३१८
मंग्वाचार्यकथा ३१८
मंजुसूरि ३६७
मंडन १४, ४३१, ४३२, ५१९-५२१, ५४४
मंडनमंत्री ५२०
मंडलपुरी ८२
मंडलिक ४४६
मंडिकुक्षिचैत्य ३१८
मंडित १९५
मकरकेतु ३४७, ३४८
मकरध्वज २८१, २८२
मकरन्द ५७७–७९
मखदूमेजहाँबेगम ४२७
मगध ३९८, ४१५, ५२९
मगधदेश ४९५, ४९६, ५०३
मगधसेना ३३५
मगधसेनाकथा ३६०
मघन ४७६
मघवा ७३, १२९
मणिकूटपर्वत ४८२
मणिधारी जिनचन्द्र २२०
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि २२३
मणिपति २९६, २९७
मणिपतिकानगरी २९७
मणिपतिचरित २९६
मणिभद्रयति ३००
मणिरथ १६३, ३५२
मणिरथकुमार ३३८, ३४०
मतिनन्दनगणि ३२२
मतिवर्धन २७०
मतिशेखर ३५२

मतिसागर ११९, ३७३
मत्स्योदर ३२९
मत्स्योदरकथा ३२८
मथनसिंहकथा ३२७
मथुरा ८९, १४९, १५८, १८४, २०९, ३१८, ४२७, ४४९, ४६७, ४६८, ४७२, ५०२, ५२९
मदनकीर्ति ४२७, ४२८, ४६१
मदनचन्द्रसूरि १०९
मदनदत्त ३०१
मदनधनदेवीचरित्र ३६०
मदनपराजय २६०, २८१
मदनरेखा १६१, १६३, २५०, ३५२
मदनरेखाआख्यायिकाचम्पू ३५२
मदनरेखाचरित ३५२
मदनवर्मा ४१७, ४२७, ४२९
मदनवेगा १४२
मदनावलिकथा ३६०
मदनावली २५०, २५५
मदनूर ४६८
मदिरावती ३५२, ५३१, ५३४
मदिरावतीकथानक ३५२
मधुकरीगीत ५७२
मधुमालतीकथा ३६०
मधूकनगर ६०२
मध्यदेश ५२९
मध्यप्रदेश १७०, ४७३, ५३५
मनोज्ञानन्द ४९५
मनोदूत ५५३
मनोरमा २०२, ३५०, ४८२, ५७७
मनोरमाचरित ३५०, ५७३
मनोरमाचरिय ८०
मनोवेग २७४
मनोवेगकथा २७५
मनोवेग-पवनवेगकथानक २७५
मनोहर ५२३
मनोहरचरित १३८
मन्दरार्य ४६
मन्दसौर ४३६
मन्दोदरी ६१, १४३, ५८०
मन्ने ४६७
मन्मथमथननाट्य ६०२
मफतलाल ७९
मम्मट २१, १०५
मम्मड ३४१
मम्मण २४०
मयणपराजयचरिउ २८२
मयणल्लदेवी ३९७, ४२३
मयणा २९२
मयनासुन्दरी २९१, २९२
मयूर ४२३, ५६३
मयूरदूत ४६४, ५५३
मरीचि ९०-९३, ४८५
मरु ४१५
मरुदेवी ५७, ५८, ५१७
मरुभूति ८८, ८९
मलधारी अभयदेवसूरि ४२८
मलधारीगच्छ ५०, १४०, २५१, २५४, ३३२, ४३९
मलधारी देवप्रभसूरि २०१
मलधारी हेमचन्द्र ८७, १२९, १४०, २१०, २३४, ५५९
मलयकेतु १०३
मलयगिरिचरित २१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मलयचन्द्रसूरि ६०२
मलयप्रभ २०२
मलयप्रभसूरि २०१
मलयवती ३३५, ५३३
मलयसुन्दरी ३५१, ५३२, ५३३
मलयसुन्दरीकथा ३५१
मलयसुन्दरीकथोद्धार ३५२
मलयसुन्दरीचरित्र ३५१, ३५२, ५१५
मलयसूरि ४१०
मलयहंस ३२८
मलयहंसगणि ३५६
मलिक मुहम्मद जायसी १६५
मल्लदेव ४०५, ५९९
मल्लवादिकथा २१४
मल्लवादी २०५, २०६, २१४
मल्लि ११०, १११
मल्लिका ५७७, ५७८
मल्लिकामकरन्द ५७३, ५७७
मल्लिकार्जुन ३९८, ४१०, ४१५
मल्लिनाथ ८६, १११, ४०४, ४८०
मल्लिनाथचरित्र ५१, ९५, ११०, ११४, १२२
मल्लिनाहचरिय ८३
मल्लिभूषण ११७, १४५, १७३, १९८, १९९, २४८, २९५
मल्लिवाहनपुर ४६४
मल्लिषेण ९, ६५, ११९, १४८, १५०, १६८, २३७, २४८, २८३, ३१८, ३७३, ४६८, ५६०
मल्लिषेणप्रशस्ति ११९
महणसिंह ३२७, ४२८
महमूद खिलजी ४१२
महमूद गजनवी ४२७
महसाना ५२
महाउम्मग्ग जातक ३०५
महाकालेश्वर मंदिर २९९
महात्मा गांधी ३३३
महादण्डकस्तुतिगर्भ ४६५
महादेव ४३९
महादेवस्तोत्र ५७०
महानन्द ४४५
महानिशीथ ३३०
महापद्म १३१
महापुराण ६, १७, ३४, ४१, ४६, ५५, ६०, ६२, ६५, ६८, ७९, १५०, १७९, २०२, २५६, ५११, ५४४, ५४७
महापुराणटिप्पण २३७
महापुरुषचरित ७७, ४२६
महाबल ३५१
महाबलमलयसुन्दरी ३५१
महाबलमलयसुन्दरीकथा ३०३
महाबलमलयसुन्दरीचरित्र ३६३
महाबल विद्याधर ५५७
महाबलि १८८
महाभारत १४, २४, २६, ३४, ४४, १३५, २४६, २५२, २६९, ३६१, ४९९, ५१२, ५१४, ५२४, ५६३, ५७२, ५७५, ५८१, ५९३
महाभाष्य ५७२
महाभिषेकटीका २४८
महायान १०
महारथ ३४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महारथकुमार ३३८
महाराष्ट्र ५९
महावत २८४
महावस्तु ४२०
महावीर ४५-४७, ४९, ५३, ६३, ७३, ७७, ७९, ८९, १२६, १३८, १५१, १५३, १५५, १५९, १६६, १६८, १७५, १७७, १९०, १९२, १९४-२०२, २५२, २६३, ३३८, ३४०, ३६१, ३७५, ३९३, ४२७, ४४६, ४४९, ४५१, ४५५, ४६०, ४८५, ५०६, ५२४, ५२९, ५६४, ५७२, ५८३, ५८५
महावीरचरित १०४, १२६
महावीरचरिय ८५, ८९, ९१-९२, २३८, २४१-२४३, ३०३, ३०४
महावीरथव ५६५
महावीरपुराण १२६
महावीराचार्य ९
महाव्रत ५५०
महाशाल १९४
महाशुक्रदेव ९९
महाश्वेता ५३३
महासेघ ३०५
महासेन ४८, १०१, १४६, १७९, १८०, ४७७, ४८३, ४८७
महासेनसूरि ४७६
महासेनाचार्य १४५
महिंदसीह १६६
महिमसिंह ६०५
महिवालकहा ३८५
महीतट ५९१
महीतिलकसूरि ३८३
महीपाल २३६, ३६०, ३८४, ४१५
महीपालकथा ३८४
महीपालचरित ३८४, ४१६, ५५१
महीमेरु ६०५
महीराज ३६२
महुआ ६०२
महेन्द्र १०३, ४९३, ४९७
महेन्द्रकीर्ति ४८३
महेन्द्रपाल २३६
महेन्द्रप्रभसूरि ५५०
महेन्द्रसूरि २०५, २१०, २२४, २२५, २५९, ३१२, ३४९, ३५०, ३६६, ३८४, ४२१, ४६२, ५१८, ५३५, ५९२
महेन्द्रसेन ४५९
महेश ५२२
महेश्वर ५२१
महेश्वरदत्त १४१, ३४९
महेश्वरसूरि ३६६
महोबे १७०
मांगरोल २१७
मांडल ४४३
मांडलपत्तन १७६
मांडलिनगर १४७
मांडवगढ़ २१६, २२९, ४३१, ५२०
मांडवी ४६९
मांडोगढ़ २२८
माघ १४, २५, ८९, २१९, २८१,

४२३, ४७५, ४७७, ४७९, ४८०, ४८९, ५०१, ५२६
माणविजय १५९
माणिक्यचन्द्र १८, १०६, १२१, १६७
माणिक्यचन्द्रसूरि १०५, १२०, १२४, १४०, ५०२, ६०३
माणिक्यदेव १३७
माणिक्यविजय ३७०
माणिक्यसुन्दर १७४, ३१४, ३६३, ३७२, ३७४, ५१६
माणिक्यसुन्दरसूरि ३०३, ३२०, ५१९
माणिक्यसूरि. १३८, २१२, २१४, २७०, २८३, २८८, २८९, ३५१, ३६३
माणिक्यसेन १७०
मातंग १६२
मातृकाप्रसाद ७९
मातृचेट ५६३
माथुरगच्छ ९६
माथुरसंघ १७०, १७३
माधव ४२६, ५०९
माधवभट्ट ५२८
माधवसेन ४५९
मानतुंग १२२, २०२, २०६, ३५५, ४२३, ५६७–५६९
मानतुग-मानवतीचरित ३५५
मानतुंगसूरि ५०, ८४, ९९, १००, १२२, १२८, २०१, २०२
मानदेव २९८
मानदेवसूरि ६९, ९२
मानदेवेन्द्र २८३
मानभट्ट ३३८, ३३९
मानभद्रसूरि ५१०, ५६१
मानमुद्राभंजन ५८३
मानवती ३५५, ३५६
मानविजय २७५, ३१६
मानसिंह १५५, २९१
मान्यकूट ८
माया ५२५
मायादित्य ३३८, ३३९, ३४०
मारवाड़ २९०, ४०६, ४४३, ४५६, ५९१
मारिदत्त २८४–२८६, ५३९, ५४०
मार्गशीर्षएकादशी ३७३
मालदेव ६७, ३२६, ३७०
मालव ४१०, ४१५
मालवा ८, ५९, ११५, १९९, २२८, ४१७–४१९, ४२५, ४३०–४३२, ४६२, ५१९, ५४४
मालाकारकथा ३३४
माल्हण ११५
मित्रचतुष्ककथा ३२१
मित्ररत्न ६०४
मित्रवीर ४६
मित्रानन्द १०१, ३२२, ५७८, ५७९
मिथिला ६१, ११०, ३५२
मिथिलानरेश १६३
मिलच्छीकार ५९०, ५९१
मिहिरभोज ४२२
मीनलदेवी ४४८
मुंज ३४२, ३८१, ३८४, ४७६, ५३५, ५६२
मुंजनरेन्द्रकथा ३८४
मुंजभोजनृपकथा ३८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुंजाल २०२, ४०८
मुक्तापीड ४२२
मुक्तावली १७५
मुक्तावलीकथा ३७३
मुक्तिविमल ३६७–३६९
मुगल १३, २२९, ४११, ४३२
मुगलकाल ४३२
मुद्राराक्षस ५९२
मुद्रालंकार ५७८
मुद्रितकुमुदचन्द्र ५७३, ५८७, ६०१
मुनिचन्द्र १०८, १६७, २९७, ३३२
मुनिचन्द्रसूरि ५०, ३८५, ५१०, ६०६
मुनिचरित १३८
मुनिदेव ५०, ३४२, ५६३
मुनिदेवसूरि १०८, १०९, ५०८, ५०९
मुनिपतिचरित २९६
मुनिपतिचरित्रसारोद्धार २९८
मुनिभद्र ५०९
मुनिभद्रसूरि १८, १०५, १०८, १०९, ५१०
मुनिरत्न १२८, २६१, ४४५
मुनिरत्नसूरि ११२, १२७, १६७, ३८१
मुनिविजय ३१९
मुनिविमल ३५८
मुनिसागर २६१
मुनिसुन्दर १७७, २३४, २४५, ३१५, ३२१, ३८३, ४५५, ५६९
मुनिसुन्दरगणि २४५
मुनिसुन्दरसूरि २०७, २४७, ३०२, ३१७, ३२१, ३७७, ४५५, ४६४
मुनिसुव्रत ७३, ११३, १२७, १८२, २४१, ३६४, ५२५
मुनिसुव्रतकाव्य ११४, ५०३, ५४४
मुनिसुव्रतचरित ११२, ११३
मुनिसुव्रतनाथ ११२, ४१०
मुनिसुव्रतनाथचरित्र ९५
मुनिसुव्रतनाथचैत्य ५९२
मुनिसुव्रतस्वामिचरित १२२
मुनिसुव्रतस्वामी ११३, ३१५, ४३८, ५०३
मुनिसुव्वयसामिचरिय ८७, ४४२
मुनिसोम ३२४
मुनीन्द्रकीर्ति ४५९
मुमुक्षु १९८
मुरारि ४३९, ५६३, ६०७
मुलगुन्द ६५
मुसलमान ५९०
मुहम्मद तुगलक १७, ४२६, ४३१, ४५३, ५०८, ५१०
मुहम्मद बिन तुगलक ४३०
मूलदेव २७१, ३११
मूलदेवनृपकथा ३११
मूलराज ३९७, ४००, ४०४–४०६, ४१०, ४१५, ४२३, ४३३
मूलशुद्धिप्रकरण ३४९
मूलशुद्धिप्रकरणटीका ८६
मूलसंघ ४६, ५३, ५९, ६२, ११७, १३०, १८९, २४८, २९०, ५५९, ६०१
मूलसंघभारतीगच्छ १९८
मूलस्थान ४१०
मूलाचार २३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूलाचारप्रदीप ५१
मूलाराधना ६२, १९७
मृगध्वज ३२०
मृगध्वजचरित ३२०
मृगध्वजचौपाई ३२०
मृगसुन्दरी ३५९
मृगसुन्दरीकथा २६२, ३५९
मृगसेना १८४
मृगांक ३१२, ३१३, ५८१
मृगांककुमारकथा ३१२, ३१३
मृगांकचरित ३१२, ३१३
मृगापुत्र १९४, १९७
मृगापुत्रचरित १९७
मृगावती ७३, १६०, १९५, २०१, २५७
मृगावतीआख्यान २०१
मृगावतीकथा २०१
मृगावतीकुलक २०१
मृगावतीचरित २०१
मृच्छकटिक ४४
मेघकुमार ७३, १९१, २०२, २४५, ३३१
मेघकुमारकथा ३३१
मेघदूत २४, ७८, ११५, ११७, ४६४, ५२६, ५४५–५४८, ५५०–५५२, ५५४, ६०३, ६०४
मेघदूतसमस्यालेख ७८, ५४६; ५५२, ५५४
मेघनन्दि ४८३
मेघप्रभ १३२
मेघप्रभाचार्य ५८९
मेघमाला ३७३
मेघमालाव्रताख्यान ३७३
मेघमाली ८८
मेघमुनि १९६
मेघरथ ३५८
मेघराजगणि ६०५
मेघलता ६०५
मेघवाहन ११३, ५३१, ५३४
मेघविजय २५, ७८, ७९, ३६७, ३९१, ४५६, ४६४, ५२४, ५३०, ५४६, ५५२, ५५५
मेघविजयगणि ११०, २१९, ३६६, ४३५, ५२९, ६०२
मेघेश्वर १६०, १७८, ५९४
मेड़ता ४१०, ४३३, ४६३
मेतार्य १९५, २३५
मेरुतुंग ७७, ९६, २०६, ३१४, ३६३, ३७५, ३८४, ४०१, ४१७, ४५२, ५०२, ५१६, ५४६, ५५०
मेरुतुंगसूरि ९६, १९९, ३१२, ४२५
मेरुत्रयोदशीकथा ३६७, ३६८
मेरुत्रयोदशीव्याख्यान ३७३
मेरुपंक्तिकथा ३७३
मेरुप्रभसूरि ३२५
मेरुमण्डल ५१६
मेरुविजय ४६४
मेरुसुन्दर १८३, २४४, ३४९
मेवाड़ ४५३, ४५९, ५९१
मेषदेव १२७
मैत्रेय ५७८
मैथिलीकल्याण ५७३, ५९४, ५९७
मैनपुरी ४७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैसूर ६३, ४७०
मोकलजी १९, ४६९
मोगलिपुत्र ४७२
मोजदीन ४१७
मोढ ४४७
मोढवंश ५८६
मोढेरक ४०८
मोदकादिकथा २६५
मोहदत्त २३८–३४०
मोहनलालजी महाराज २२३
मोहनलाल दलीचन्द देसाई २२८, ४१४
मोहनविजय ३५५
मोहराज ५८६
मोहराजपराजय २२५, ५७३, ५८५, ५९३
मौखरी १३
मौनएकादशीकथा ३६७, ३७३
मौनव्रतकथा ३७३
मौनिभट्टारक ४७, २३५
मौर्यकाल ४७२
मौर्यचन्द्रगुप्त २०४
यक्ष ५७८
यक्षदत्त ३४१
यजुर्वेद ५६३
यज्ञदेव ३४०
यतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन ४७३
यतीन्द्रसूरि ३१४, ३३०, ३५८
यदुवंश ४३, ४४
यदुवंशचरित ४४
यन्ति ४००
यम ५७२
यमधन ५३६
यमी ५७२
यमुनाष्टक ५६३
यव १६२
यवद्वीप १४२
यवनदेश १४२
यवनद्वीप ३४९
यवराजर्षिकथा ३३४
यशःकीर्ति ८४, १३०, १६८, १७३, १९५
यशःपाल ४४५
यश ३३६
यशचन्द्र १८३
यशदेव ८९
यशपाल ५८६
यशश्चन्द्र ५८८
यशस्तिलक ५३८
यशस्तिलकचन्द्रिका २४८, २९०
यशस्तिलकचम्पू २८३, २८७, २९०, ४९०, ५३९, ५४२, ५६२
यशस्वीगणि ५६३
यशोदेव १९, ८३, ३०४, ३०९, ३१०, ४६९, ५४०
यशोदेवसूरि १२९
यशोधर १४५, २६८, २८२, २८४–२८६, ५३९, ५४१
यशोधर-चन्द्रमति-कथानक २८३
यशोधरचरित ३४, ३९, ५१, ५३, ११९, १३८, १४७, १८०, २१७, २४८, २८३, २८६, ५१५, ५२८, ५४०, ५५१

यशोधवल १२७, ४४५
यशोभद्रसूरि १२९
यशोवर्मा ३९९, ४००, ४०२, ४२२
यशोविजय १७८, २१५, २२०, २७५, ३१०
यशोविजयगणि २४४
यशोवीर ४४०, ५०२, ५८३
यादव ५२५, ५९१
यादवाभ्युदय ५८२
यापनीय ३८, ४१, ४७
यामिनीवल्लभ ५३६
यासासासा ७३
युक्तिप्रबोधनाटक ७८, ६०२
युक्त्यनुशासन ५६६
युगन्धर ९७
युगप्रधानचरित २६४
युगबाहु १६३, २५८, ३५२
यूनान २६
यूरोप ५८५
योगराज ४०४
योगशास्त्र ७६, ४९०-४९२, ५८३
योगशास्त्रप्रकाश ५५९
योगसारप्राभृत २७३
योगिनीपुर ११६
योगिराट् ५५८
योगिराट् पण्डिताचार्य ५४८, ५५९
योधेय ५३९
रंगशाला ५७९
रंभामंजरी ५७३
रइधू १८०, १६५, २९६, २९९, ३०१
रघुवंश १४, २५, ८९, ४८६, ४९१, ५१०, ५२६, ५४३, ५७६, ६०६
रघुवंशकाव्यवृत्ति १४८
रघुवंशमहाकाव्य ३९६
रघुविलास ५७६, ५७९, ५८१, ५८२
रघुविलासनाटकोद्धार ५८०
रजःपर्वकथा ३७०
रट्टवाल ५७२
रणगजेन्द्र ३४०
रणथंभोर ४११, ४४३
रणसिंह ३२४
रणसिंहनृपकथा ३२४
रणस्तंभपुर ४१२
रतिकेलि ३५३
रतिपाल ४१२
रतिसार १०१
रतिसुन्दरी ४९७
रतिसुन्दरीकथा ३६०
रत्नकरण्डटीका २३७
रत्नकरण्डश्रावकाचार २३४
रत्नकीर्ति १३०, २०८, ४५७
रत्नकुशल २३०
रत्नचन्द्र ५४, ८४, ११०, १३०, १४५, २०८, ३२५, ४५८
रत्नचन्द्रगणि १४८, २१७, ३११, ६०६
रत्नचूड़ १०२, ११०, ३०४, ३७६
रत्नचूड़कथा ९२, २४३, ३०४
रत्नत्रयविधानकथा ३७३
रत्नदेवगणि ५६१
रत्नद्वीप ३४८
रत्ननन्दि २०८, ३८६, ४१६, ४४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रत्ननन्दिगणि १०४
रत्नपाल ३१४, ३९१
रत्नपालकथा ३१४
रत्नपालचरित्र ३१५
रत्नपुर ३०६, ३५४, ३८४, ४८७
रत्नप्रभसूरि १९, ८८, १००, १५४, १७५, १८२, ३२४, ४६९
रत्नप्रभाचार्य ३४३
रत्नभूषण १०४
रत्नमंजरीकथा ३६०
रत्नमंजरीचरित्र ३६०
रत्नमंडनगणि २२८, ३३१, ३८३, ५६०
रत्नमण्डनसूरि २४७
रत्नमन्दिरगणि ४३०, ५१४, ५३५
रत्नमाला ३३०, ५९७
रत्नमूर्ति १८३
रत्नयोगीन्द्र १४८
रत्नलाभ ३१२
रत्नवती ३०६, ३२७
रत्नशेखर २०७, ३०६, ३०९, ३३३, ३५५
रत्नशेखरकथा ३०६, ४१७
रत्नशेखररत्नवतीकथा १७२, ३०७
रत्नशेखरसूरि ११०, २४४, २९३, २९४, ३०७, ३१५, ३३१, ५१४, ५२४, ५६७, ६०७
रत्नश्रावक ४२८
रत्नसंचयपुर ३८५
रत्नसार ९९, १७५, ३१४, ३५४
रत्नसारचरित्र ३१४
रत्नसारमन्त्रीकथा ३१४
रत्नसारमन्त्रीदासीकथा ३१४
रत्नसिंह १०३, १५४, ३०५, ३८६, ४१४, ५९०
रत्नसिंहसूरि १०३, ४१६, ५६७
रत्नसुंदरसूरि ३९१
रत्नाकर १४८, ३०४
रत्नाकरपंचविंशतिकाटीका २६२
रत्नाकरसूरि ३८६, ४१६
रत्नाकरावतारिकापंजिका २५४
रत्नादित्य ४०४
रत्नावतारिकापंजिका ४२९
रत्नावली १७५, २६७, ३०३, ५९६
रथ्या ४९०
रन्ति ४००
रन्न ११९, ५३८
रमलशास्त्र ७८
रम्भा ५९९
रम्भामंजरी ५९९
रयणचूडरायचरिय ३०४
रयणवालकहा २००, ३१५
रयणसेहरीकहा १६५, ३०७
रविकीर्ति ४६६
रविकुशल ३६२
रविचन्द्र ६४
रविप्रभसूरि ९५, ११२, १२२
रविवर्धन ४५६
रविव्रतकथा ३७२
रविषेण २६, ३९, ४०, ४८, ५१, ७६, १३९, १८०, १८३, २५६, ५९५
रविसागर ३२३, ३७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रविसागरगणि १४७
रसगंगाधर ५२३
रसमञ्जरी ३९१
राक्षसकाव्य ६०३, ६०६
राक्षसवंश ३६
राघव ५२५
राघवचरित ३५
राघवनैषधीय ५२८
राघवपाण्डवयादवीय ५२५, ५२८
राघवपाण्डवीय ५२४, ५२८, ६०६
राघवपाण्डवीयप्रकाशिका ५२८
राघवयादवीय ५२५
राघवाभ्युदय ५८१
राचमल्ल ११९
राजकीर्ति ३३२
राजकोट ३३३
राजगच्छ १७, ९६, १२१, २०५
राजगृह १५५, १६६, १६८, १७०, १९०-१९२, १९४, ३०१, ३१८, ३४०, ३४४, ४२२, ५०३, ५०६, ५८३
राजतरंगिणी २६, ३९४, ४०२, ४१७, ४२१, ४२४
राजपुर १५१, २८४, ५३९
राजपूत १३
राजमल्ल १५५, २२९, ४३२
राजमुनि २९५
राजमेरु ३७८
राजवर्धन ३०६
राजवल्लभ ३५४, ३८२
राजवल्लभ पाठक ३८३
राजशेखर ३३१, ३७५, ३८८, ४२८, ५२७, ५६०, ५७५
राजशेखरसूरि २०६, २१४, २५४, ३८७, ४१८, ४६१, ५११
राजसागर १४७, ३२३
राजसिंह ३२७
राजसिंहकथा ३२७
राजसिंह-रत्नवतीकथा ३२७
राजस्थान ८, ९, १९, १६४, २२९, ४१९, ४३६, ४५३, ४६२, ५८३
राजहंसकथा ३३४
राजावलीकथा ५९४
राजीमती ११७, १२७, १३१, १६०, १८३, ४७९, ५४८, ५६७
राजीमतीप्रबोध ५८८
राजीमतीप्रबोधनाटक १८३
राजीमतीविप्रलंभ ६६, १८३
राजुल ५४८
राज्यश्री ५८६
राणाप्रताप १३
राणाली ५१२
रात्रिभोजनत्यागकथा ३७३
राम ७, ३१, ३४, ३६, ३७, ४०, ६१, ६८, ७०, ७३, १३२, १४२, ३६१, ४६१, ४९०, ५२४, ५२५, ५२९, ५३०, ५७९–५८१, ५९७
रामकीर्ति १९, ४६९
रामगुप्त ४७२, ४७३
रामचन्द्र ५५, ७३, १८२, १९८, २७५, ३७९, ५६३, ५७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामचन्द्रगणि ३२१
रामचन्द्रमुमुक्षु १६५, २५६
रामचन्द्रसूरि १३८, २११, ३३४, ५७७, ५८०–५८२
रामचरित ४२, ५२, २४३, ५२८
रामदास ४६३
रामदेव ३४४
रामदेवचरित ३५
रामदेवपुराण ४२
रामन ११५
रामनगर ४८०
रामपुराण ४२
रामभट्ट ५२८
रामभद्र ४२२, ५८३
रामभद्रसूरि २००, २१०
रामराज्यरास ५२
रामलक्ष्मणचरित्र ४०
रामविजय ४२, ५४, ६०७
रामविजयोपाध्याय ६०७
रामसूरि १०२
रामसेन १४६
रामायण १४, २४, २६, ३४–३७, ४१, ४२, ६१, ६८, ७०, १४२, १४३, २४६, २५२, २७१, ५२४, ५६३, ५७२
रामारविन्दचरित ३५
रायचन्द्र ३३३
रायपसेणिय ३१८
रायपसेणियसुत्त ५७२
रायमल्ल ६५–६७, १५०, १५८, ३७०
रायमल्लाभ्युदय ६६, ६७, १५७, ४३२, ६०१
रावण ३५–३७, ४०, ६१, ६८, ७०, ७३, २४४, ३११, ५२५, ५३०, ५८०
रावण-पार्श्वनाथस्तोत्र ५६९
राष्ट्रकूट ८, ९, १६, ३८, ५९, ६२, १८६, ४०२, ४६६, ४६७, ५३८, ५४१
रासभवंश ४५
रासमाला ४२४
राहड ४०४
राहु ३८
रिपोर्तर द एपिग्राफी जैन ४७०
रिसभदेवचरिय ८०
रुक्मिणी १२७, १४२, १४५, १४६, १४८, १४९, १८३, २४६, २५३, ३४६, ५८६
रुक्मिणीकथानक १८३
रुक्मिणीचरित १८३
रुक्मी ११०
रुद्र १८५
रुद्रट १४
रुद्रदत्त १२७
रुद्रपल्लीयगच्छ १७२, ३५३, ३७०
रुद्रभूति ३७
रुद्रमाल ४२३
रुद्रशर्मा ४४५
रूपचन्द्र ६०७
रूपचन्द्रगणि १९६
रूपविजय १७४, ३२७
रूपविजयगणि १७६
रूपसिद्धि ११९
रूपसेन ३२२, ३५८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूपसेनकथा ३२२, ३२३
रूपसेनकनकावतीचरित्र ३२३
रूपसेनचरित्र ३२३, ३५८
रूपसेनपुराण ३२३
रेणा २४५
रेवती १९५, २०२, २६१
रेवतीमित्र ४००
रेवतीश्राविकाकथा २०२
रैवत ३६१, ४२३, ४७८
रैवतक ४०६, ४७९, ४९९, ५००,
५४८, ५४९
रैवताचलमाहात्म्य ३६०
रोम २६
रोरनारी २३९
रोहक ३०५
रोहणगिरि ३७६
रोहा ४४४
रोहिणी ३५७, २६८, ५८१
रोहिणीकथा ३५७, ३६७
रोहिणीचरित्र ३५७
रोहिणीतपमाहात्म्य ३६८
रोहिणीमृगांक ५८१
रोहिणीव्रतकथा ३६८
रोहिणेय २००
रोहिणेयकथा २००, ३५८, ३७७
रोहिणेयकथानक ३६८
रोहिण्यशोकचन्द्रनृपकथा २६२, ३५८,
३६८
रोहिताश्व ५७५
रौद्रता ५८६
रौहिणेय ७३, १०३, १९५, ५८३
लंका ३६, ५२५, ५७९
लंकाद्वीप ३६१
लक्षणपंक्तिकथा ३७३
लक्ष्मण ३७, ४०, ६१, ६८, ७३,
१८२, ४९०, ५२५, ५३०,
५८०
लक्ष्मणगणि ८२, ३३५, ४४३
लक्ष्मणसेन ४१, ४२३, ४२७
लक्ष्मणा ४८६
लक्ष्मी १४९, १६९, २६८, २७१,
४८७, ५२०
लक्ष्मीकर्ण ४००, ४०१
लक्ष्मीकुंज १०१
लक्ष्मीचन्द्र २४८
लक्ष्मीतिलक १६१, ३०२
लक्ष्मीतिलकगणि १६४, १९३, ३४६
लक्ष्मीपति २३८
लक्ष्मीभद्रसूरि ३२१
लक्ष्मीमती १४९, ५९७
लक्ष्मीलाभगणि ५५९
लक्ष्मीवल्लभ २१२, ६०४
लक्ष्मीविमल ५६७
लक्ष्मीसागर २०७, २१५, २४७
लक्ष्मीसागरसूरि १९९, २१६
लक्ष्मीसूरि २६५
लक्ष्मीसेन १४६, ४५६
लक्ष्मेश्वर ४६८
लघुक्षेत्रसमास २९४
लघुखरतरगच्छ ५०८
लघुत्रिषष्टि ७९
लघुत्रिषष्टिलक्षणमहापुराण ७९
लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित ७७, ५३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लघु-पाण्डवचरित्र ५५
लघुपोषधशालिक-पट्टावली ४५६
लघुमहापुराण ७९
लघुशतपदी ५५०
लघुशान्तिपुराण १०४
लब्धिमुनि २२३, २९५, ३३०
लब्धिविजय ३६९
लब्धिसागर १७४, १७६
लब्धिसागरगणि २७५, २९४, ४५५
ललितकीर्ति ५८, २०८, ६०६
ललितपुर १८४
ललितविस्तर ४२०
ललितांग ५८, १२७, ३५३, ५५७
ललितादित्य ४२२
लव ४२
लवणप्रसाद ४०४, ४०५, ४१७
लवांगकुश ३६
लहर ४४४
लाट ४०५, ४०६, ४१५, ५९१, ५९९
लाटबर्गटसंघ ४७६
लाटबागडसंघ ६२
लाटीसंहिता १५८
लाभविजय ५२३
लायमन ३३५
लालचन्द्र गांधी ५७४
लालजी १८३
लालबाग ११०
लालमणि ९५
लावण्यविजय २२७
लावण्यसमय २२७
लाहौर २३०, ४३५
लिम्बडी ४४१
लीलावती ३४४
लीलावतीकथा ३४६
लीलवतीकथासार ३४६
लीलावतीकाव्य ३४६
लीलावैद्य ४२३
लुंकागच्छ २८३, २९०, ५६३
लुंकामत २०८
लुइस राइस ६३, ४६९
लूणसाक ४०६
लोकसेन ६१, ६२
लोकादित्य ६२
लोकापवादकथा ३३४
लोभदेव ३३८–३४०
लोभनन्दी १२७
लोभाकर १०३
लोभानन्दी १०३
लोहाचार्य ४६
लोहानीपुर ४७२
वंकचूल २६४, ३२३, ४२६–४२८
वंकचूलकथा ३२३
वंग ४१५
वक्कचूडकहा ३२३
वघेला १९४
वज्जालग्ग ५६०
वज्र ३८
वज्रगुप्त ३३८, ३४०
वज्रघोष ११८
वज्रबंध ५८, ५५७
वज्रनाभ ८८, ८९, १०१, ११८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वज्रनाभि ५५७
वज्रशाखा ७५, ८९, ९१
वज्रसिंह ३४४
वज्रसूरि ४८
वज्रसेन ३८, ७९, २४३, २९३, ३२२
वज्रसेनचरित्र ३३४
वज्रस्वामिकथा २१३, ३३४
वज्रस्वामिचरित २१३
वज्रस्वामी १८२, २०३–२०५, २१३
वज्रायुध ९७, १०७, ५३२, ५९२
वज्रायुधादिकथा २६५
वज्रार्गला ५८७
वटगच्छ १३७, २०२
वटपद्र ५८
वट्टकेर २३४
वडगच्छ ९२, ३९१
वढमाण ४२५
वढवाण ४७
वत्सगोत्री ५९३
वत्सभट्टि-प्रशस्ति ४३६
वत्सराज ४५, ११०, १३२, ३३२, ३४२, ३८२, ४२२
वत्सराज उदयन ४२७
वत्सराजकथा ३३४
वत्सराजगणि ३९१
वघेरवाल ६५
वनकेलि ४८२
वनथली ४४२, ४४३
वनपाल ४८७
वनमाला ५८२
वनराज १४९, ४०४, ४२३, ४४४
वरंग २७५
वरदत्त १८४, १८५, ३६६
वरदत्तगुणमंजरीकथा २६२, ३६५–३६७
वरनाग ३००
वररुचि २०४
वरांग १८३–१८६, ४६१
वरांगचरित ३९, ४८, १८३, ४६१
वराहमिहिर ४२३
वराही ४४४, ४४५
वरुण ५६३, ५७८
वरुणद्वीप ५७८
वरुणसेठ १०३
वर्जावर्त ५९७
वर्द्धमानचरित ९७
वर्द्धमानसूरि २३८, ४९८
वर्धमान ४०, ६४, ७७, १८९, १९०, २४८, ५९४
वर्धमानकुंजर ४२२
वर्धमानगणि ५२२
वर्धमानचरित ५१, १२६, ४८५
वर्धमानजिनभवन ३०२
वर्धमानदेशना २३४, ३१४, ३२२, ३३०, ३३१, ३५२
वर्धमानपुर ४५, ४७, २३५, ४२५
वर्धमानपुराण ४८, १२६
वर्धमानसूरि ८३, ८९, १०२, १९३, २३४, २३९, २८०, ४३०, ४५२, ४५३, ५७३
वर्धमानस्वामी १८९
वर्धमानाचार्य ८०, ३५०
वर्षप्रबोध ७८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलभी १०, ३१७, ३६१, ४२७
वल्कलचीरि १४१
वल्लभराज ३९७
वल्लभाचार्य ५६३
वसन्तकीर्ति ४५७
वसन्तनिवास ४०३
वसन्तपाल ४०५, ४४१, ५०२
वसन्तविलास १८, ४०५
वसन्तसेना ४४, १२७
वसु ६१, १४२
वसुदत्त १४१
वसुदेव ४३, ११७, १२७, १३१, १४०, १४४, ३४४, ४७८, ५२६
वसुदेवचरित ३४, ४४, ८६, १४०, १४३
वसुदेवहिण्डी ४, ३४, ४४, १३१, १३९, १४०, १५४, २६९, ३०८, ३३८, ३४१, ३४९, ३९०, ५२१, ५९३
वसुदेवहिण्डीआलापक १४४
वसुदेवहिण्डीसार १४४
वसुन्धरा ८९
वसुपुज्जचरिय ८४
वसुभूतिकथा ३३४
वसुभूतिवसुमित्रकथा ३३४
वसुराज १२७
वसुराजकथा ३३४
वस्तुपाल १४, १७, १८, २५, १०६, १२१, १३२, २०६, २२६, २५१, २५८, ३६४, ४०३, ४१६, ४२३, ४२८, ४३०, ४३७, ४४६, ५०१, ५६९, ५९०–५९३
वस्तुपालचरित २२६, ३०७, ४१६, ५०२
वस्तुपाल-तेजपालचरित २२६
वस्तुपाल-तेजपालप्रशस्ति ४०९, ४३८, ५९२
वस्तुपालप्रशस्ति ४०९, ४३८, ४३९
वस्तुपालस्तुति ४०९
वस्त्रदानकथा ३३४
वाकाटक ३७
वाक्पति मुंज ४२३
वागड ५३
वागर्थसंग्रह ३४
वाग्भट २२, २९, ३०, ७५, ९५, ११५, ४१०, ४१६, ४२३, ४३०, ४७९–४८१, ४८९, ५२२
वाग्भटमेरु १६४, १९३, ३४५
वाग्भटालंकार ४३०, ४८१
वाग्वर ५३
वाटग्राम ५९
वाणीवल्लभ १२६
वादिचन्द्र ५३, १२५, १४५, १७९, १८१, २८३, २९०, २९९, ५४६, ५५१, ६०१
वादिदेवगच्छ ४०८
वादिदेवसूरि ८८, ५८७, ५८८
वादिभूषण २९१, ४५७
वादिराज ११९, १४९, १५०, २८३, २८७, ५१५, ५२७
वादिराजसूरि ११८, ४८४, ५६८
वादिवेताल शान्तिसूरि ३०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वादिसिंह ६०, २७५
वादीभसिंह १८, १५, ११९, १५२, ५१५, ५३१, ५३८
वादीभसिंह महामुनि पद्मनन्दि २५६
वानमन्तर २६८
वानर १०३
वानरवंश ३६
वामदेव २७८
वामा ८८
वायट ३७५
वायटगच्छ ५१४
वायडगच्छ ४०४
वायडा ४४७
वायस १४१
वायुभूति १२५
वाराणसी ६१, ८८, ११०, २१५, २३५, ४१९, ५२९, ५९९
वार्षिककथासंग्रह २६५
वाल्टेयर २६, २७२
वाल्मीकि १४, ३४-३७, ४१, ६८, १४३, १८६
वाल्मीकिनगर १२५
वासव ३३९
वासवदत्ता ३४१, ५३१, ५३६, ६०५
वासवदत्ताटीका २१९
वासवसेन १०४, २८३, २८६, २८९
वासुदेव ४११, ५२५
वासुदेवशरण अग्रवाल ४७३
वासुपूज्य ८४, १०१
वासुपूज्यचरित १०१
विंध्यगिरि ७५, ४८७
विंध्याचल ४४४
विंशतिस्थानकविचारामृतसंग्रह ४१७
विंशतिस्थानकसंग्रह ३०७
विक्रम १०१, ११५, २५२, ३७४, ३७८, ३८१, ३८२, ५४६, ५४९
विक्रमचरित १९, २००, २०७, ३७६, ३७९, ३८०, ३८३
विक्रमदेव २९०
विक्रमपञ्चदण्डप्रबंध ३७९
विक्रमप्रबन्धकथा ३७८
विक्रमयश ४९२
विक्रमसिंह ४६७, ४९६, ४९७
विक्रमसेन ३१९, ३७५-३७७
विक्रमसेनचरित ३१९
विक्रमांकदेवचरित २६, ३९४, ४०२
विक्रमादित्य ४५, १६७, २१३, २५०, २५४, २५७, ३७४-३८२, ३९६, ४२३, ४२७, ४५१
विक्रमादित्यचरित्र २४५
विक्रमादित्यपञ्चदण्डच्छत्र-प्रबंध ३७९
विक्रमोर्वशीय ५८०
विक्रांतकौरव १७८, ५७३, ५९४, ५९६
विचारश्रेणी ४२६, ४५१
विजय ३८, २६८, ५५१
विजयकीर्ति ५३, ११९, ४६७
विजयकुमार ३६३
विजयकुमारचरित्र ३३४
विजयगणि ३५७
विजयचन्द्र १३२, १३३, ३८६, ५१६
विजयचन्द्रकेवलिचरित्र १७७
विजयचन्द्रचरित ८५, १३३

विजयचन्द्रसूरि १३२, १४०, ३६४
विजयदयासूरि १५९
विजयदानसूरि ४२, ५४, ३५५
विजयदेव २२०, ४३५
विजयदेवमाहात्म्य २१८, ४३५
विजयदेवमाहात्म्यविवरण ७८, ४३५
विजयदेवसूरि २१७-२२०, ४६५
विजयधर्म २६८
विजयधर्मसूरि ४६२, ४७१, ४७३
विजयनगर ९, १८९, ५५९
विजयनीतिसूरि २६४
विजयनेमिसूरि ५५३
विजयपाल ५८४
विजयप्रभ ७८
विजयप्रभसूरि २१९, २७५, २९४, ४६४, ५५३
विजयप्रशस्तिकाव्य २१८
विजयप्रशस्तिमहाकाव्य २५३, ४३५
विजय भट्टारक ११९
विजयभद्र ३५८
विजयभूपेन्द्रसूरि ३१५
विजयमूर्ति शास्त्री ४७०
विजययतीन्द्रसूरि ४७३
विजयरत्नसूरि २९४
विजयराजेन्द्रसूरि ३१६, ३६९
विजयलक्ष्मी २३४, २६३, ३७३
विजयवर्द्धनगणि ३४५
विजयसंविग्नशाखा-पट्टावली ४५६
विजयसिंह २६८, ३४७
विजयसिंहसूरि ८०, ८२, ८४, ९७, १०२, १२४, १४०, २२०, २५७, २९५
विजयसूरि ५०, ११२, ६०५
विजयसेन २१८, २७१, ३२४, ३३९, ३४४
विजयसेनसूरि ११५, २५८, २५९, २६१, ३२४, ३५५, ३६८, ४३५, ४३७, ४५५, ४६३
विजयसौभाग्यसूरि २६३
विजयस्तुति २१८
विजयहीरसूरीश्वर ४५५
विजया १५१, ३२४
विजयानगरी ३३९, ३४०
विजयानन्दसूरि २६३, ४६५
विजयानन्दसूरीश्वरस्तवन ५५५, ५६७
विजयामृतसूरि ४६४, ५५३
विजयार्ध ५६
विजयेन्दुसूरि ४१६, ५१०
विजयोल्लासमहाकाव्य २२०
विजिता ४४६
विजौलिया ३०१
विज्ञप्तित्रिवेणी ४६४
विज्ञप्तिपत्र ४६२
विज्ञप्तिपत्री ४६४
विण्टरनित्स ५१, २५२, २६१, ३८६
विदर्भ ४८७
विदिशा ४७३
विद्याकीर्ति ३०२
विद्यादेवी ४९७
विद्याधर ५५१, ५७७
विद्याधर जोहरापुरकर ४७०, ४७४
विद्याधर नमि ५९६
विद्याधर वंश ३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्याधर शाखा ८१
विद्याधरी ५८३
विद्यानन्द ३६४, ५६८
विद्यानन्दि १३९, १७३, १९८, १९९, २०८, २४८, २९०, २९५, ३६९, ४५८
विद्यापति १०१
विद्यापतिश्रेष्ठिकथा ३३४
विद्याभूषण ९६, १५५
विद्यारत्न १६७
विद्याविलास ३२८
विद्याविलासनृपकथा ३२८
विद्याविलाससौभाग्यसुन्दरकथानक ३२८
विद्यासागरश्रेष्ठिकथा ३३४
विद्युच्चर १९५, २००
विद्युच्चरमुनिचरित्र ३३४
विद्युत ४०८
विद्रुमचरित्र ३३४
विनमि ५६
विनयंधर २४९, ३२८, ३६२
विनयंधरचरित ३२८
विनयकुशलगणि ३१४
विनयचन्द्र ९५, २११, २५३, २६५, ५२८, ६०५
विनयचन्द्रसूरि ११२, १२२, २१०
विनयधर ४६, ४५९
विनयप्रभ ३०२, ५५३
विनयमण्डनगणि ३५३
विनयविजय २९५, ४६४, ४६५
विनयविजयगणि ५४६, ५५३
विनयसागर १४७, १६९, ४७३, ५४९
विनयसागरगणि १७३
विनयसुन्दर ६०५
विनायकपाल २३६
विनीतदेश १८४
विनीतसुन्दर ३०९
विनोदकथासंग्रह २५३, ३८७
विन्सेण्ट स्मिथ ४३४
विपाकसूत्र १९७, २६९
विबुधगुणनन्दि ४८३
विबुधप्रभ ११२, १७१
विबुधप्रभसूरि ११०
विबुधाचार्य ८२
विबुधानन्दनाटक ५७३
विभीषण ५८०
विमल ३९, ४८, ४४४
विमलकमल १०३
विमलकीर्ति ५५२
विमलकीर्तिगणि ५४६
विमलगिरि ३६३
विमलचरिय ८५
विमलनाथ १०२, १०३
विमलनाथचरित १०२, ३०५, ३०६
विमलपुराण १०३
विमलप्रबंध २२७
विमलबोधि १०१
विमलमंत्रिचरित २२६
विमलमंत्री २२७
विमलमति ६९
विमलशाह २२६, २२७
विमलसंविग्नशाखा ४५६
विमलसागर २०९
विमलसागरगणि २१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विमलशाह ४४४
विमलसूरि ६, २६, ३४, ३५, ३८, ४१, ४८, ६८, ७०, ७६, ७९, ५९५, ५९७
विमलसेना १४१
विमलहर्षगणि ४५५
विमलांक ३३, ३९
विलासपुर १७०
विलासमती ५३३, ५८३
विलियम रोज बैनिट २६
विल्हण १६९, १७३, ३९४, ४०२
विविधतीर्थकल्प ३६५, ३७५, ४१८, ४२६, ४३१, ४५३, ४६२, ५०८
विविधार्थमयसर्वज्ञस्तोत्र ५२४
विवेककलिका ४४०, ५६०
विवेकचन्द्र ५८५
विवेकधीरगणि ३६२
विवेकपादप ४४०, ५६०
विवेकप्रमोद ३८०
विवेकमंजरी ४०८, ५५९
विवेकमंजरीप्रकरण २३४
विवेकविलास ५१४
विवेकसमुद्रगणि २२१, ३०१, ३२६
विवेकसागर ५६७
विवेकहर्ष ११७
विशाखदत्त ५७३, ५७४
विशाखभूति ४८५
विशाखाचार्य २३५
विशालकीर्ति ४५७, ४६१
विशालराज २०७, ३२३, ३२५
विशाललोचनस्तोत्रवृत्ति २६१
विशालाक्ष ५४१
विशेषणवती १४३
विशेषवादी ४८
विशेषार्थबोधिका ६०३
विशेषावश्यकभाष्य ३४, ३३५
विश्वनन्दि ४८५
विश्वनाथ २८, २९, ५९९
विश्वभूति ९०, ४८५
विश्वभूषण १६६, १९९, ३७०
विश्वसेनकुमारकथा ३३४
विश्वामित्र ५७२, ५७५
विषापहार ५६८
विषेण २६८
विष्णु १०, १८५, ४६९, ५२२
विष्णुकुमार १४२
विष्णुकुमारकथा ३७३
विष्णुपुराण ४१, ५६
विष्णुभट्ट ६४
विष्णुशर्मा १०३, ३८८
विष्णुश्री ४९२, ४९४
वीतरागस्तव ९१, ५६७
वीतरागस्तोत्र ५६९, ५७०
वीर ९०, ४४४, ५६७
वीरकलश २०९
वीरचन्द्र १४४
वीरचरित्रस्तव ५६५
वीरजयवराह ४५
वीरथुइ ५३५, ५६५
वीरदमन २९२
वीरदास ३४९
वीरदेव २०५
वीरदेवगणि ३८५, ३८६, ४२१
वीरदेशना २६१

वीरधवल २२६, ४०४, ४२३, ४३७, ४४०, ५०१, ५९०, ५९३
वीरनन्दि ९७, ११९, ४७७, ४८१, ४८३-४८५, ४८९
वीरप्रभ १०७
वीरप्रभसूरि १०७
वीरभक्तामर ५६७
वीरभद्र ३२९, ३३६
वीरभद्रकथा ३२९
वीरभद्रचरित्र ३२९
वीरभद्रसूरि १५६, २९५, ३४१
वीरभद्राचार्य १५६
वीरम ४१४
वीरमदेव २९०, ४१४
वीरमदेव तोमर ४१४
वीरमपुर ४६३
वीरवल्लाल ४३१
वीरवस्तु ५५५
वीरवित् ४६
वीरवैभव ५३९
वीरश्रेष्ठी ८९
वीरसिंह १३९
वीरसिंहसूरि ४३९, ५९२
वीरसूरि ८२, १०२, १२४, २०५, ४२१
वीरसेन ९, ४६, ४८, ५९, ६०, ६२, १०३, १४९, २७३, ५२७
वीरस्तव ५६८
वीरस्तुति ५६७
वीरस्वामी १२१
वीरांगदकथा ३३४
वीरा ४३२
वीरिका १०४
वीसलदेव ९४, १९४, ४१७, ४१८, ४४५, ५१४, ५१५
वीसायंत्रविधि ७९
वृद्धगच्छ १७
वृद्धतपागच्छ १७६, २९४
वृद्धवादी २०६
वृद्धाचार्य-प्रबंधावलि ४५३
वृन्द ३४१
वृन्दावनकाव्य ६०३, ६०६
वृषभध्वजचरित ५७३
वृषभनाथचरित्र ९५
वेणवत्सराजादीनांकथा २६५
वेतालपंचविंशतिका १९, ३८०
वेचर ३०९
वेशनगर ४७३
वैताढ्य ३४७
वैरसिंह ४०४
वैराग्यरसायनप्रकरण ५५९
वैराग्यशतक ६२, ५६०, ६०७
वैराग्यैकसप्तति २००
वैराट १५८, ४३४
वैरिशाखा १००
वैरिसिंह २१३, ५३५
वैरेति ४८६
वैशम्पायन ५३३
वैशाली १९१, १९६
वैश्रवण ५७७
वैश्रवणकथा ३३४
वैश्वानर २७८
व्यक्ताचार्य १९५
व्यवहारचूर्णि २०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहारभाष्य ३९०
व्याघ्रहस्ति ४६
व्यास १३५, ५४१
व्रतकथाकोश ५२, २४७, २७३
शंख ११०, १७४, ४०६, ५७५
शंखपुर २९२
शंखसुभट ४२३
शक २१३, ४७२
शकटाल २०४, २३४
शकुंतला ८९, १३६
शकुनरत्नावली २४८
शकुनिकाविहार १३१, ३६३, ४३८
शक्र २३६
शतकत्रय ३३२, ६०७
शतानीक ७३
शतानीकपुत्र ७३
शतार्थकाव्य ८१
शतार्थीकाव्य २५७, ५८४
शत्रुंजय २२१, २२९, २५८, ३१५, ३४३, ३४७, ३६१, ३६३, ४०६, ४०८, ४२३, ४३३, ४३८, ४४०, ४४६, ४६७, ४६९, ४७३, ५०२, ५९३
शत्रुंजयकथाकोश ३६२
शत्रुंजयकल्प १८२, ३६२
शत्रुंजयकल्पकथाकोश २४५
शत्रुंजयतीर्थ ३१२, ३६२, ४१०, ४५१, ४५२
शत्रुंजयतीर्थोद्धारप्रबन्ध ४३१
शत्रुंजयमण्डन ५०१
शत्रुंजयमहातीर्थोद्धारप्रबंध २२९, ३६२
शत्रुंजयमाहात्म्य १८१, ३०९, ३६०, ३६२, ४६०, ५०९
शत्रुंजयमाहात्म्योल्लेख ३६२
शत्रुंजयोद्धार ३६२
शब्दानुशासन ४३०
शब्दाम्भोजभास्कर २३७
शमामृत ५८९
शम्बुकुमार १४१
शरदुत्सवकथा ३७४
शश २७१
शशिप्रभा ३८५
शाकंभरी २२१, ४१५, ४४२, ५८३, ५८८
शाकटायन ९, ११९
शाकटायनन्यास २३७
शाणराज सेठ १०३
शान्त ४८
शान्ति ७७, १४३, ५२४, ५२९, ५८५
शान्तिकीर्ति ११०
शान्तिकुमार ठवली ४७४
शान्तिचन्द्र १०, ५४, १४८, २१७, २१९, ३२५, ४३४
शान्तिजिनस्तोत्र ५६९
शान्तिदास ९५
शान्तिनाथ ६३, ६४, ७३, ७७, ७९, ८६, १०४-११०, १३०, १३२, ५०९, ५९३, ५९८
शान्तिनाथचरित १८, ५०, ५१, ७८, ९७, १०५, १०७, १२६, १४०, ३२२, ३२८, ३४२, ३५५, ४८६, ५०८, ५९८
शान्तिनाथपुराण ५४, १०४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्तिनाथराज्याभिषेक ११०
शान्तिनाथविवाह ११०
शान्तिपुराण १०४
शान्तिभक्तामर ५६७
शान्तिमती १०३
शान्तिमतीकथा ३६०
शान्तिराजकवि ५२२
शान्तिषेण ४६
शान्तिसुधारस ४६५
शान्तिसुन्दरी ५८५
शान्तिसूरि ४३, १२९, २०५, २५९, ३५०, ३५१, ४२१, ४४१, ४४९, ६०३, ६०६
शान्तिस्तोत्र ५६८
शान्तीश्वर ६४
शान्तु ४४६
शान्तुक ४४८
शामदेववामदेवकथा ३३४
शाम्ब ११७, १२७, १४२
शाम्बप्रद्युम्नचरित १४५
शारदास्तवन ५६९
शार्ङ्गधर ५०२
शार्ङ्गधरपद्धति ५०२
शालक्ष्मीयकथा ३३४
शालिभद्र ७३, १६१, १६८-१७०, १७३, १९४, १९७, २५०
शालिभद्रचरित १७१, १७३
शालिवाहन ४, ३७६, ४६३
शालिवाहनचरित २४५, ३१७
शाश्वतचैत्यस्तव ५६५
शासनचतुस्त्रिंशिका ४६१
शाहजहाँ ४३२
शिक्षाचतुष्टयकथा २६५
शिखामणि १४८
शिखि २६८
शिलादित्य ४२३
शिवकुमारकथा ३३४
शिवकोटि ६०, ६२
शिवगुप्त ४६
शिवचन्द्रगणिमहत्तर ३४१
शिवनिधानोपाध्याय २१२
शिवप्रभसूरि १६१
शिवभद्रकाव्य ६०३, ६०६
शिवमहिम्नस्तोत्र ५५५, ५६३
शिवराजर्षिचरित १९४
शिवहेम २१६
शिवा ४७८
शिवाभिराम ९८
शिवार्य २३४-२३६
शिवि ५९३
शिशुपाल ५३०
शिशुपालवध १४, १८, २५, ५६, ७८, २१९, ४७५, ४७९, ४८०, ४८६, ४८९, ४९१, ५००, ५०१, ५११, ५२६, ५४३, ५५५, ६०३, ६०६
शिष्ट ९०
शिष्यहितैषिणी ६०३
शिहाबुद्दीन अहमदखान ४३३
शीतलनाथ ७२, ८४, ९८
शीता पण्डित ४२३
शीलगणसूरि १२२, २०२
शीलचन्द्र १००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलचन्द्रगणि ३५०
शीलचम्पकमाला ३५९
शीलतरंगिणी ३५४, ३५९
शीलदूत ३८६, ४१६, ५४६, ५५०, ५५३
शीलदेव २०९
शीलदेवसूरि ३२८
शीलप्रकाश २०९
शीलभद्रसूरि ९८
शीलरत्नसूरि ५५०
शीलवती १०१, १४१, २५७, ३०३, ३५३
शीलवतीकथा ३५३
शीलवतीचरित्र ३५३
शीलविजय ३५५, ४६२
शीलसिंहगणि १३४
शीलसुन्दर ३५९
शीलसुन्दरीरास ३५९
शीलसुन्दरीशीलपताका ३५९
शीलांक ६, ६८-७१, ७६, ५७३
शीलांकाचार्य ८६
शीलाचार्य ६९, ७०
शीलादित्य ३६१
शीलालंकारकथा ३५४
शीलोपदेशमाला २२४, ३२५
शीलोपदेशमालावृत्ति १३९
शुकद्वासप्ततिका ३९१
शुकपाठ १३५
शुकराज ३६३
शुकराजकथा २४५, ३०३, ३१४, ३६२, ५१६
शुक्र ५४१, ५७२
शुक्लध्यानवीर २८२
शुभकरण ३७०
शुभकीर्ति ४५७
शुभचन्द्र ५३, ९६, ९८, ११९, १४५, १५१, १५३, १६५, १६६, १९०, १९१, २००, २९५, ३७२, ३७४, ४५८, ५१५, ५६०, ५६३, ५६९
शुभचन्द्रगणि ३८६, ४१६
शुभचन्द्राचार्य ४५०
शुभमति २४९
शुभवर्धन १९९, २६५
शुभवर्धनगणि ४२, ५४, ११२, १३२, २३४, ३१४, ३२२, ३३०, ३३१, ३५२
शुभशील २६४, ३७९
शुभशीलगणि १३९, २०७, २११, २४५, २४७, ३०९, ३१७, ३१९, ३२६, ३५२, ३५७, ३६२, ३६३, ३७७, ३८३
शूद्रक ५७३
शूद्रकमुनि १२७
शूर ३४४
शूरसेन १७५
शूर्पणखा ५३०
शूलपाणि ९०
शृङ्गारदर्पण ६७
शृङ्गारप्रकाश ५२६
शृङ्गारमण्डन ५२१
शृङ्गारवैराग्यतरंगिणी ८१, २५७, ५६०, ५६२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शृङ्गारसिंह २९२
शृङ्गारसुन्दरी १०१
शेषगिरिराव १५२
शेषभट्टारक ५८३
शैलराज २७८
शैवधर्म ४१०
शोभन ५२३, ५३५
शोभनमुनि ५६८
शोभनस्तुतिटीका २१९
शौर्यपुरी ५२९
श्रमणकेशी ३५६
श्रमणद्वादशीकथा ३७४
श्रवणबेलगोल ४८६, ५५८, ५५९
श्रवणबेलगोला ११९, ४५१, ४६७, ४७०, ४७१
श्रवणबेलगोल २३५, ४८५
श्रवणबेल्गोला ६३, १८९, ३६४
श्राद्धगुणसंग्रह १७२, ३११
श्राद्धगुणसंग्रह-विवरण २२६, २७४
श्राद्धदिनकृत्य ८५
श्राद्धदिनकृत्यवृत्ति १९०
श्राद्धविधि ३२७, ३३१
श्रावकदिनकृत्यदृष्टान्तकथा २६५
श्रावकव्रतकथासंग्रह २६५
श्रावस्ती ९०, ११०, ३५०
श्रीकुमार ५९४
श्रीकृष्ण ६१, ११७, १२७, १४४, १८३, १७८, ४९९, ५३०
श्रीकृष्ण मिश्र ६०१, ६०७
श्रीगुणनिधानसुरि १४४
श्रीचन्द्र ४२, ६२, १३२, १६५, १९८
श्रीचन्द्रकेवलिचरित १३३, १७७
श्रीचन्द्रचरित्र १३४
श्रीचन्द्रसूरि ८१, ८३, ८७, १२९, ४४२, ४४३
श्रीतिलकसूरि १६१
श्रीदत्त ६०, ९९
श्रीदत्तपण्डित १६५
श्रीदत्ता ३४८
श्रीदेव ५४१
श्रीदेवकूपक १२१
श्रीदेवी ५२६, ५३१
श्रीधर १४९, ३६६, ४३९, ४८२, ५१६, ५५७
श्रीधरचरित ३०३, ३६२
श्रीधरसेन १४९
श्रीनन्दि ६२
श्रीनाथ ४८६
श्रीपर्वत ४६
श्रीपाल ६०, २५४, २९१-२९३, २९५, ४६६, ५२२, ५६६, ५८४
श्रीपालआख्यान ५३
श्रीपालकथा १७६, २९४, २९६
श्रीपालगोपालकथा १७२, ३११, ३१६
श्रीपालचरित ५२, २४८, २७५, २९०, २९४
श्रीपालचरित्ररास १५९
श्रीपालदेव ११९
श्रीपाल वर्णी ५३, १२०
श्रीपुरनगर ३६४
श्रीपुरपार्श्वनाथ ५६८
श्रीपुराण ९५, ५९४
श्रीपूज्य ४६२
श्रीपूज्य गच्छाधीश ५१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीभद्र १३२
श्रीभूषण ५४, ११०, १२०, १२५, १९५
श्रीमती ५७, ५८, १७७, १९५
श्रीमतीकथा १७७
श्रीमतु पण्डितदेवह ५५९
श्रीमल्लुगि २८२
श्रीमाल ४४४, ४४५, ४४७
श्रीमालकुल ८७
श्रीमालवंश ५२०
श्रीमाली २३९
श्रीवर्मा ४८२
श्रीवल्लभ ४५, २१८, ४३५
श्रीवल्लभभक्तामर ५६७
श्रीविजय १९६
श्रीविजयगणि ६०४, ६०५
श्रीषेण २४९
श्रीषेणकुमारादिकथा २६५
श्रीहर्ष १४, १३५, २१७, २६७, ४७५, ५८१, ५९६, ६०६
श्रुतकीर्ति ५५, ९६, २७२, २७५, ५२५
श्रुतकीर्ति त्रैविद्य ५२८
श्रुतपञ्चमीकथा ३६५
श्रुतसागर १९८, २४८, २८३, २९०, २९५, ३२५, ३६९, ३७१–३७४, ३७८, ५४१, ५५८
श्रुतावतार ४६, ४५०
श्रुतिगुप्त ४६
श्रेणिक ७३, ७४, १६०, १६८, १७०, १७७, १९०–१९२, १९४, २५२, ३१८, ३४०, ५०६, ५०७, ५२५, ५८३
श्रेणिकचरित १९०, ५०५
श्रेणिकद्व्याश्रयकाव्य १९०
श्रेणिकराजकथा १९०
श्रेयांसचरित्र २९८, ३८५
श्रेयांसनाथ ७३, ८४, ९९
श्रेयांसनाथचरित ५०, ९९
श्रेष्ठिपुत्र १०३
श्वेतातपत्रा नगरी ४८५
श्वेताम्बर जैन धातुप्रतिमालेख-संग्रह ४७३
षट्खण्डागम ३, ४५०
षट्त्रिंशत्जल्प ४६५
षट्त्रिंशत्जल्पविचार ३५८
षट्प्राभृत २३४, २४८
षट्प्राभृतटीका २४८
षट्स्थानकप्रकरण २३८
षट्स्थानकवृत्ति ४९५
षडावश्यकवृत्ति २५४, ३८३
षड्दर्शननिर्णय ३१२
षड्दर्शनसमुच्चय २५४, ४८९, ५५०
षष्ठांगोपनिषद् ४९
षोडशकारणकथा ३७४
संकाशश्रविक ११३
संकाशश्रावककथा ३२५
संकिस ५३५
संक्षिप्ततरंगवती ३३५
संगमक १६९
संगीतमण्डन ५२१

संग्रहणीरत्न ८७
संग्रामसूर ३२५
संग्रामसूरकथा ३२५
संघतिलकसूरि ३५६
संघदासगणि ३४, ४४, १४१, १४३, १५४, ५९३
संघपतिचरित २२६, २५८, ४०८
संघवीर १२५
संघाचारभाष्य ८५
संघाचारविधि ३२३
संडेर ४४७
संतिनाहचरिय ८६
संध्याकरनन्दि ५२८
संबोहसत्तरी २९४
संभवनाथ ९६
संभवनाथचरित्र ९६
संयमरत्नसूरि ३२१
संवर १०१
संविभागव्रतकथा ३३४
संवेगरंगशाला ९१, २३४, २३८, २४१
सकलकीर्ति ४२, ५१, ५४, ६४, ६६, ९५, १०४, ११२, १२५, १३०, १४५, १५७, १६८, १७२, १९४, १९८, २००, २४७, २६४, २८३, २९०, २९५, २९९, ३७३, ४५७, ४७७, ५१५, ५६३
सकलचन्द्र १३०, १५५, २१७, २१९
सकलहर्ष १५५
सकलार्हत्स्तोत्रटीका २६१
सगर ६०, १२९, १४३
सगरचक्रिचरित १२९
सगरचक्री ७२
सज्जन ३६६
सज्जनचित्तवल्लभ ५६०
सणंकुमारचरिय १२९
सण्डिल्ल १२४
सण्डेरकगच्छ ४४१
सण्डेरग्राम ४४६
सत्तपोगच्छ ४१६
सत्तरिसयथोत्त ५६५
सत्यंधर १५१
सत्यकिश्रेष्ठी ९९
सत्यकी २४४
सत्यपुर ३०३, ५१६
सत्यभामा १४२, १४५, १४६, १४८
सत्यराजगणि १७४, १७६, २९४, ३८४
सत्यवाक्य ५९४
सत्यहरिश्चन्द्र ५७५
सत्याचार्य १७४, १७५
सदयवत्सकुमारकथा ३२६
सद्भाषितावली ५२
सनत्कुमार ७३, १०१, १३०, १३२, १४२, २४४, २५०, २६८, ४९२–४९४, ५८३
सनत्कुमारचरित १८, १२९, ४९२
सनत्कुमारादिकथासंग्रह २६५
सन्देशरासक ५६१
सन्देहध्वान्तदीपिका ६०६
सन्मतिचरित्र १२६
सन्मतितर्क २१४
सपादलक्ष ५८३, ५८८
सप्ततिकाभाष्य ५५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्ततिशतजिनस्तोत्र ५६५
सप्तदशप्रकारकथा ३७४
सप्तनिह्नवकथा २६५
सप्तव्यसनकथा १४७, २६४, २९०
सप्तसंधान ५२३, ५२४
सप्तसंधानमहाकाव्य ७८
समन्तभद्र ४८, ६०, २३५, २८७, ५६५, ५६६
समयसुन्दर ३७२, ३८०, ४६५, ५२३, ५२४, ५६७, ६०४
समयसुन्दरगणि १६१
समयसुन्दरोपाध्याय २१२, ६०५, ६०६
समरकेतु ९७, ५३२, ५३३
समरभानुचरित्र २७०
समरमियंकाकहा २६९
समरस ४१०
समरसिंह २२९
समरसेन ३४४
समराइच्चकहा १०५, १४३, १५६, २६६, २७०, २८३, २८५, २८८, ३३८, ३४१, ३४२, ५४०
समरादित्य २६७, २६८
समरादित्यकथा ३९, ८६
समरादित्यचरित २४, ५०, २७०
समरादित्यसंक्षेप २७०, ३४२
समराशाह २२९, ४३१
समवायांग ५, ३४, ६७
समाधितन्त्रटीका २३७
समितिगुप्तिकषायकथा २६४
समीरणवृत्त १३९
समुद्रगुप्त ३९४, ३९६, ४३६
समुद्रघोषसूरि १२७
समुद्रविजय १४२, ४७८, ४७९
समुद्रसूरि ३४७
समुद्रसेन ४२२
सम्प्रति २०२, २०४, ३१७
सम्प्रतिनृपचरित ३१७
सम्भवनाथ ७२
सम्मेदशिखर ८९, ४६०, ४६१
सम्यक्त्वकौमुदी २४९, २६०, २८२
सम्यक्त्वकौमुदीकथा २६०
सम्यक्त्वकौमुदीकथाकोष २६०
सम्यक्त्वकौमुदीकथानक २६०
सम्यक्त्वकौमुदीचरित्र २६०
सम्यक्त्वसप्तति २१७
सम्यक्त्वसप्ततिका ३५६
सम्यक्त्वस्वरूपस्तव ५६५
सम्यक्त्वालंकारकाव्य ३०१
सरमा ५७२
सरस्वती ५९, ११९, २१३, ५२०, ५२५, ५३५, ५८४
सरस्वतीगच्छ ११७, १३०, २४८, २९०, ४५०, ४५९
सरस्वतीभक्तामर ५६७
सरस्वतीमंत्रकल्प ६५, १५०
सरस्वतीस्तोत्र ५६८
सर्वङ्गिल १२७
सर्वचन्द्र ६०५
सर्वजिनपतिस्तुति ५६६
सर्वजिनसाधारणस्तवन २५१
सर्वदेव २५७, ५३५
सर्वदेवगणि ८७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वदेवसूरि १२९, १७१, १७५, २०२, ३००
सर्वराजगणि ४५२
सर्वविजयगणि १९९, २१६, २२९
सर्वसुन्दर २५४
सर्वसुन्दरसूरि ३३२, ३३४
सर्वानन्द ८१, २२७
सर्वानन्दसूरि ८१, ९८, १२०, १२३, १२४
सलीम ४३३, ४३४
सलेतोरे २४०
सल्लखणपुर ११५
सहजकीर्ति ६०७
सहजपाल ४३१
सहजसागर १४७
सहस्रमल्लचौरकथा ३३१
सहाबदीन ४११
सांकाश्य ५३५
सांगण ११५
सांडेरगच्छ ३२०
सांभर ५८३, ५८८
साउथ इण्डियन इन्स्क्रिप्शन्स ४६९
साकेत ११०, २७९
सागरचन्द्र १२१, ३३१, ४४५
सागरचन्द्रकथा ३३१
सागरचन्द्रसूरि ३५३
सागरतिलकगणि २५४
सागरदत्त ३३८, ३३९, ३५९
सागरश्रेष्ठिकथा ३३१
सागरसंविग्नशाखा ४५६
सागरसूरि २१३
सागरसेठ ३३१
सागवाड़ा ५१, ५३
सागारधर्मामृत ४८४, ५०५
साचोर ४४३
साचौर ३०३
सादल १६४
सातवाहन १२८, २०९, २१३, २४६, २४९, ३१७, ३२३, ३३५, ४२६–४२८
सात्यकि ५००
साधुकीर्ति ५५२
साधुपूर्णिमागच्छ ३७९
साधुरत्न ३७८
साधुविजय १९९
साधुसुन्दर ५५२
साधुसोमगणि ८३
सान्तूमंत्री ४२३
सामन्त ३४४
सामवेद ५६३
सामायिकपाठ २७३
साम्ब ४४, १४७
साम्बप्रद्युम्नचरित १४७
साम्बमुनि २९७
सारंगदेव ४१८, ४४५
सारंगपुर २४९
सारचतुर्विंशतिका ५२
सारस्वतमण्डन ५२१
साराभाई मणिलाल नवाब ५७१
सार्थपति ३४४
सार्थपतिधन ३४४
सार्थवाहधन ३४४
सावणवाडा ४४४
सावद्याचार्यकथा ३३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहण ४११
साहसमल्लकथा ३३४
साहित्यदर्पण ५९८
साहुजी ४५३
सिंघी १४
सिंघ १४९, ४५३
सिंह १०१, २६८, ३४४, ४८५
सिंहण ५९१
सिंहनन्दि २३६, ३१७, ३७४
सिंहपुर ५५८
सिंहप्रमोद ३८०
सिंहबल ४६
सिंहरथ १४५, १६१, १६३
सिंहराज ४११
सिंहल १४२, १६५
सिंहलद्वीप ३०६, ३६३
सिंहलनरेश ४९६
सिंहविमलगणि २१७
सिंहसूरि २४८
सिंहसेन ४६, ३८६
सिंहासनद्वात्रिंशिका १६७, ३८०
सिक्का ४६९
सिद्धगुणस्तोत्र ५६८
सिद्धचक्रकथा ३७२, ३७४
सिद्धचक्रस्तव ५६५
सिद्धचक्राष्टकटीका २४८
सिद्धचन्द्रगणि ६०५
सिद्धजयन्तीचरित्र २०१
सिद्धपंचाशिका १९०
सिद्धपाल ५८४
सिद्धपुर ४६५
सिद्धभक्ति ५६५, ५६७
सिद्धभक्तिटीका २४८
सिद्धमहाकवि १२९
सिद्धराज ८३, ३४२, ३९९, ४०१, ४०२, ४२१, ४२३, ४४४
सिद्धराज जयसिंह ९, १८, ३९७, ४००, ४३०, ४४२, ४४८, ५८५, ५८७
सिद्धर्षि ८६, १२८, १३४, १७७, २०६, २८०, २८१, ३४२
सिद्धर्षिगणि २७६
सिद्धसूरि ८२, २२९, २९६, ३६२
सिद्धसेन ४६, ४८, ६०, ८४, ९६, २०५, २१४, २८२, ३७५, ३८५, ३९६, ५६६, ५६८
सिद्धसेनगणि ५३८
सिद्धसेनचरित २१४
सिद्धसेन दिवाकर १२८, ३७४, ३८०, ३९४, ४३६
सिद्धसेनसूरि ९६
सिद्धहेम ४२३
सिद्धहेमशब्दानुशासन ३९६
सिद्धांतागमस्तव ५६८
सिद्धान्तरत्निकाव्याकरण ३५३
सिद्धान्तरुचि ८३, ३२४
सिद्धान्तसारदीपक ५२
सिद्धान्तसारादिसंग्रह ५७२
सिद्धार्थ ९०
सिद्धिचन्द्र ४३५
सिद्धिचन्द्रगणि २१९, ६०३, ६०५
सिद्धिप्रियस्तोत्र ५६७
सिनोर २६३
सिन्दूरप्रकर ५६०
सिन्धु १९४, १९६, ४१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिन्धुदेश २१३, ४६४
सिन्धुराज १४६, ४७६
सिन्धुल ४७६
सिरिपालचरिउ २९६
सिरिवालकहा २९३
सिरोडी २६३
सिरोही ४६५
सी० एच० टानी २४०
सी० एम० बाबरा २६
सीता ३५, ११, ७०, १४३, १८२, ५२५, ५३०, ५७९, ५९७
सीताचरित्र ३९, ४०, ४३
सीताचरिय ६९
सीताविरह ३२१
सीया ४४३
सीलंक ६९
सुकंठ १४९
सु० कु० डे ५७९
सुकुमालचरित ५२, २९९
सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी ४०३, ४०९, ४३७
सुकृतसंकीर्तन २६, ४०३, ४३७, ४४१, ५१४
सुकृतसागर २२८, ३३१, ३८३, ४१८
सुकोशलचरित २९९
सुकोसलचरिउ २९९
सुकौशलमुनि २९९
सुखबोधा २१७
सुखबोधा–टीका ३०८
सुगन्धदशमीकथा ३६९
सुगमान्वया ६०४
सुगात्र १८५
सुगुणकुमारकथा ३३४
सुग्रीव ३५, १८२, ५२५, ५३०, ५८०
सुग्रीवचरित्र १८२
सुचन्द्राचार्य १५१
सुतारा १०६, १०७, ५०९, ५७५
सुदंसणचरिउ १९८
सुदंसणचरिय ३६३
सुदंसणाचरिय १३१
सुदत्ताचार्य २८५
सुदर्शन १९४, १९७, १९८, ३६३
सुदर्शनचरित ५२, १९७, २०८
सुदर्शनपुर १६३, ३५२
सुदर्शनसेठ २०२
सुदर्शना ३६३, ३६४
सुदर्शनाकथानक ३६३
सुदर्शनाचरित १९०, २०१
सुधर्म ३४४
सुधर्मा ४०, ४२, १९५, ४४९
सुधर्मागच्छ ८१, ९८, १२३, १६४, ३४५
सुधर्मास्वामी १५५, १५६, २६३
सुधाभूषण ३२३, ३७०
सुनंदा ५१७
सुनक्षत्रचरित्र ३३४
सुन्दरगणि ३६७
सुन्दरनृप ३३०
सुन्दरनृपकथा ३३०
सुन्दरप्रकाशशब्दार्णव ६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुन्दरबाहु १२७
सुन्दरराजारास ३३०
सुन्दरी ५३५
सुन्ध पहाड़ी १९
सुन्धाद्रि ४६७, ४६९
सुपार्श्व ९६
सुपार्श्वचरित ८१
सुपार्श्वनाथ ८१, ८२
सुपासनाहचरिय ८१, ३३५, ३५८, ४४३
सुपुरुषचरित ३४, ३९
सुप्रतिष्ठितनगर १६९
सुबन्धु ३४१, ५३६, ५३९, ६०५
सुबाला ६१
सुबाहुकथा ३२९
सुबाहुसंधि ३२९
सुबुद्धि १०२, १८४, ४९६
सुबोधिका ५४८, ६०६
सुबोधिनी ६०४, ६०६
सुभट ५०२, ५८९
सुभद्रा १८३, ३५९, ३६०, ४९९, ५००, ५१३, ५९६
सुभद्राचरित १८३, ३५९
सुभद्रानाटिका ५९४, ५९६
सुभानु १४२
सुभाषितकोश ५६३
सुभाषितग्रन्थ ५६३
सुभाषितमुक्तावलि ४९१
सुभाषितरत्नकोश ५६३
सुभाषितरत्नसन्दोह २७३, ५६०, ५६२
सुभाषितरत्नावली ५६३
सुभाषितषट्त्रिंशिका ५६३
सुभाषितसमुद्र ५६३
सुभाषितार्णव ५६३
सुभाषितावली ५६३
सुभूम २६४
सुभौम १३०
सुभौमचरित १३० १३१
सुमंगला ५१७, ५१८
सुमईनाहचरिय ८०
सुमति १२७
सुमतिकीर्ति ४५७, ४५८
सुमतिगणि ३००, ४५२
सुमतिनाथ ८०
सुमतिनाथचरित्र २५७, ५८४, ५८५
सुमतिवर्धन २६९, ३०९
सुमतिवाचक ८९, ९१
सुमतिविजय ६०४, ६०५
सुमतिविनय ६०५
सुमतिसंभव १९९, २१६, २२९
सुमतिसम्भवकाव्य २१५, ४३२
सुमतिसागर १८०
सुमतिसाधु १९९, २१५, २१६
सुमतिहंस २१२
सुमनगोपालचरित्र ३३४
सुमित्र १०१, ५०३
सुमित्रकथा ३२२
सुमित्रचरित्र ३२२
सुमित्रा १०१, ५७९
सुमुखनृपतिकाव्य ३२१
सुमुखनृपादिमित्रचतुष्ककथा ३२१
सुयोधन २६०
सुरदत्त १०३
सुरपत्तन ११७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुरप्रियमुनि ३२४
सुरप्रियमुनिकथा २६२
सुरप्रियमुनिकथानक ३२४
सुरसुन्दर ३३१
सुरसुन्दरनृपकथा ३३१
सुरसुन्दरी २९१, २९२, ३४७, ३४८
सुरसुन्दरीकथा २३८
सुरसुन्दरीचरित्र ३४९
सुरसुन्दरीचरिय ३४७
सुरसेन १०१
सुराष्ट्र ४७८, ५९१
सुरेन्द्रकीर्ति १००, ११४, १३९, ३७१
सुरेन्द्रदत्त १०३
सुलक्षण ३४४
सुलस ५०६
सुलसा ७३, १९५, २०२, २४५, २५०
सुलसाचरित २०२
सुलोचना ५६, १२७, १६०, १७८, ५११, ५१६, ५९६, ५९७
सुलोचनाकथा ३४, ३९, ४८, १७८
सुलोचनाचरित ५३, १७८, १७९, १८०
सुलोचनानाटक १७९, ५९६
सुलोचनाविवाहनाटक १७८
सुवर्णभद्राचार्यचरित्र ३३४
सुवर्णभूमि १४२, २०९, २१३
सुवर्णाचल ३६४
सुविधि ५५७
सुव्रत ३२४
सुव्रतऋषिकथानक ३२४
सुव्रता ३५२, ४८७, ४८८
सुव्रताआर्या ३३५, ३३६
सुषेण १८४, ४८७, ४८८
सुसढ ३३०
सुसढचरित ३३०
सुसुमारपुर ३१३
सुस्थिताचार्य ५०७
सुहस्तसूरि ३४९
सुहस्ति २९९
सूक्तमुक्तावली २५७, ५८४
सूक्तरत्नावली २५३
सूक्तावली ५१४
सूक्तिमुक्तावली ८७, ५०१, ५०२, ५२७, ५६०, ६०३
सूक्तिरत्नावली २१८
सूत्रकृतांग ७०, १७७, ५६४
सूदी ४६८
सूयगड २४५
सूयपञ्चमीकहा ३६६
सूरचन्द्र १०१, २०९, २१९, ६०६
सूरत ५४, १९८, २६३, ४५७, ४५८, ४६४, ४६५, ५५३
सूरदत्त ३६८
सूरसेना २३९
सूरा ४३२
सूराचार्य ११५, २०५, २८१, ४२१, ५२२
सूरिमंत्रसारोद्धार ५५०
सूर्पनखा ६८
सूर्य ५१९, ५२०, ५३६, ५७२
सूर्यप्रभ ४८५
सूर्ययशाकथा ३६०
सूर्यशतक ५६३
सूर्यसहस्रनाम ४३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यसहस्रनामस्तोत्र ५६९
सूर्याभदेव ५७२
सेठानी १०३
सेडुक ब्राह्मण ५०६
सेतुबंध १४
सेन १३, २६८
सेनगण ४५६
सेनगण-पट्टावली ४५०
सेनसंघ ४१
सेनान्वय ४६, ६२
सोजित्रा ५४
सोनागिर ३६४
सोम ११५, ४०५, ४३०
सोमकीर्ति १४५, १४६, २६४, २८३, २९०, २९५, २९९, ५१५
सोमकुल २८२
सोमकुशलगणि २६१, ३६८
सोमचन्द्र २४४
सोमचन्द्रगणि २४४, २९५
सोमचरित्रगणि २१६
सोमता ५८५
सोमतिलक ५६७
सोमतिलकसूरि १३९, २०८, ३५३, ५२४
सोमतिलक-सोमप्रभ ५६०
सोमदत्त ९६
सोमदत्ता ३०८
सोमदेव ९, २०७, २७८, २८३, २८७, ३९१, ५३८, ५४१
सोमदेवसूरि २१६, ५४०, ५६२
सोमनाथ ४१०
सोमप्रभ ७५, ७९, १७१, २२४, ५६०, ५८५, ५९६
सोमप्रभसूरि ८६, ५८४
सोमप्रभाचार्य ८०, १३९, २५७, ३७५, ५२२, ५६२
सोमभीमादिकथा २६५
सोममंडनगणि ३०९, ३१५
सोममुनिकथा ३३४
सोमविजय ४५५
सोमशर्मा १०३, ३०५, ३८८
सोमश्री ३८४
सोमश्रीकथा ३६०
सोमसिरी १४२
सोमसुन्दर १७२, १७७, २११, २१५, २४५, २७४, ३०९, ३८३
सोमसुन्दरगणि १६८, २१५, २१६, २२६
सोमसुन्दरसूरि २१५, २१६, २२६, ३११, ३१६, ३२१
सोमसूरि ३७८
सोमसेन ४२, १४५, ४५६
सोमसौभाग्यकाव्य २१५
सोमेश्वर १२९, ४०१, ४१८, ४४०, ४४५, ५०२
सोयामणि ५७२
सोरठ ४४३
सोलहकारणपूजा ५२
सौधर्मयति ४९७
सौन्दरनन्द १४, २५, ३३२
सौभाग्यनन्दि २२७, ३७३
सौभाग्यपंचमी ३६७
सौभाग्यपंचमीकथा २६२, ३६५, ३६६
सौभाग्यसागर २७५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सौभाग्यसुन्दरीकथा ३६०
सौभाग्यसूरि २९५
सौम्यमूर्तिगणि ३४६
सौर ४५
सौराष्ट्र ४५, ११७, १४७, २१७, २२०, ३६१, ४१०, ४४२
सौर्यपुर ५४
सौवीर १९४, १९६
स्कन्दिल ५०९
स्कन्दगुप्त ४३६
स्टोरी आफ कालक २१३
स्तंभतीर्थ १०३, ४३८
स्तंभनक ४२६, ५६६
स्तंभनक पार्श्वजिनस्तव ५६५
स्तंभनक पार्श्वनाथ ९१
स्तंभपार्श्वस्तव ५६७
स्तबक २४४
स्तुतित्रिदशतरंगिणी २५३
स्तोत्ररत्नकोष २६९
स्थविरावली ७०, ४२६, ४५१
स्थविरावलीचरित २०३
स्थानकप्रकरणटीका ८६
स्थानसिंह २१७
स्थूलभद्र १६०, २०४, २०८, २५७, ५५०, ५५१, ६०२
स्थूलभद्रगुणमालामहाकाव्य २०९
स्थूलभद्रचरित २०८
स्थूलभद्रनाटक ६०२
स्मरनरेन्द्रादिकथा २६५
स्यादिशब्दसमुच्चय ५१४
स्याद्वादकलिका २५३, ४२९
स्याद्वाददीपिका ४२८
स्याद्वादरत्नाकर ५८७
स्याद्वादसिद्धि १५३
स्वयंप्रभ ११८
स्वयंप्रभा ४८५
स्वयम्भू ९, १४, ४०, ७३, ७६, ५९५, ५९७
स्वयम्भूदेव ३३८, ३४०
स्वयम्भूस्तोत्र ५६४, ५६६
स्वर्णशेखर १०३
स्वर्णाचलमाहात्म्य ३६४
स्विफ्ट २७२
हंस १०१
हंसकेशव १०१
हंसचन्द्र ३२८
हंसपालकथा ३३४
हंसरत्न २८०, ३६२
हंसराज ३३२
हंसराजवच्छराजरास ३३२
हंसराज-वत्सराजकथा ३३२
हंसविजयगणि ५६०
हंसावली ३७६
हंसावलीकथा ३६०
हणादरा २६३
हथुंडी ४६६, ४६७
हनसोगे ६४
हनुमान ३५, १३२, १८३, ४६१, ५२५, ५३०, ५८०, ५९५
हनुमानचरित १३९
हनूमच्चरित्र १३९
हनूमान १३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हन्ति ४००
हम्मीर २२५, ४११-४१४, ५९०
हम्मीरमदमर्दन २२५, ४०९, ४३९, ५७३, ५९०
हम्मीरमदमर्दननाटक ५४०
हम्मीरमहाकाव्य १८, २२, २२५, ४११, ५९१, ६००
हरगोविन्ददास २१५
हरिगुप्त ३४१
हरिचन्द्र १८, १०४, ११०, १३३, १५१, ४७७, ४८१, ४८४, ४८९, ४९०–४९२, ५४३
हरिचन्द्रकथा १३३
हरिणी ३४९
हरिदत्त ३०१
हरिदत्तसूरि ५२८
हरिदास शास्त्री ३८
हरिदेवकवि २८२
हरिबलकथा ३३०
हरिबलचरित ३३०
हरिबलधीवर ३३०
हरिबलधीवरचरित ३३०
हरिबलसंबन्ध ३३०
हरिभद्र ३९, ८४, १२८, १४३, १५६, १६०, २०६, २७१, २७३, २८५, ३२९, ३३१, ३३२, ३४१, ४४९, ४५२, ५६०
हरिभद्रकथा २१५
हरिभद्रप्रबन्ध २१५
हरिभद्रसूरि ७६, ८१, ८३, ८७, १०५, १२९, १४०, २०३, २१५, २३४, २५९, २६९, २७२, २८१, २८३, २८८, २९८, ३२५, ३४१, ३५६, ४०८, ४४३, ५४०, ५५९, ५६१
हरिभद्रसूरिचरित २१५
हरिवंश ३९, ४३, ४६, १८७, २४१
हरिवंशकुल ५१, १४३
हरिवंशचरिउ १७९
हरिवंशचरिय ३९, ४८,
हरिवंशपुराण ६, ३४, ४२, ५२, ५४, ५५, ६०, ६६, ७३, ९५, १२६, १३१, १५७, १७९, १८७, २३५, २५६, ४४२, ४५०, ५४८, ५७२
हरिवंशोत्पत्ति ३४
हरिवंसुप्पत्ति ३९, ४८
हरिवर्ष ३४, ३९, ४८
हरिवाहन ५३१, ५३२, ५३३
हरिवेग १७५
हरिश्चन्द्र १४, ५७५
हरिश्चन्द्रतारालोचनीचरित ३६०
हरिश्चन्द्रनृपतिकथानक ३३४
हरिषेण ४७, ७३, ११४, ११७, १३१, १९८, २०७, २३४, २३५, २४३, २४९, २५६, २७२, २८३, २८६, २८९, २९१, २९९, ३१९, ३२०, ३२८–३३२, ३४६, ३७१, ३९४, ३९६, ४४९, ४८५
हरिषेणकथाकोष ४४२
हरिषेणचरित्र १३१
हरिषेण-प्रशस्ति ४३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हरिसेन ५६०
हरिहर ४२७, ४२८, ५०२
हर्टल ३८८-३९०
हर्मन याकोबी ३८, १३०, २०३
हर्ष ४२७, ४२८, ५७३
हर्षकुंजर ३२२
हर्षकुशल २४४
हर्षचरित २३, ३९४, ४९१, ५३१
हर्षदेव १०४
हर्षपुर ४४३
हर्षपुरीयगच्छ १७, ५०, ८२, ८७, ८८, २५१, २५४, ४२८, ४३९, ४४२
हर्षप्रमोद ११०
हर्षभूषणगणि ११०
हर्षवर्धन ३९४
हर्षवर्धनगणि ३८७
हर्षसमुद्रवाचक १६७
हर्षसागर १६६, ३२३
हर्षसिंहगणि २४९
हर्षसूरि २९५
हलायुध ४०२
हल्लविहल्ल ७३
हस्तसंजीवन ७८
हस्तिनापुर ११०, १७८, १९४, ३०३, ३४७, ३४८, ४२७, ४९२, ४९७, ५२५, ५९६
हस्तिनापुरी ५२९
हस्तिमल्ल ९५, १७९, ४५०, ५७३, ५९३, ५९४, ५९६, ५९७, ५९८
हाथीगुम्फा ४६६, ४६७, ४६८
हाब्स २६
हायनसुन्दर ६७
हालीक ७३
हितोपदेश २४०, २४६, २५६, ३६७, ३८८
हिरण्यपुर ३६४
हीरक आर्य २०८
हीरकलशगणि १४०
हीरविजय १०, १४७, १४८, २१८, ३१६, ४३३, ४३४, ४६५
हीरविजयसूरि ७८, २०१, २१६, २२०, ३५५, ४५५
हीरविजयसूरिरास २१७
हीरविजयसूरीश्वर ११७
हीरसौभाग्यकाव्य ४३४
हीरसौभाग्यमहाकाव्य २१७, ४३३
हीरादेवी ४११, ४१३
हीरानन्द शास्त्री ४६५
हीरालाल जैन १६५, २०७, ३९६, ४५१, ४७०, ४७१
हीरालाल रसिकदास कापडिया ५७१
हुण्डिकच्चोरकथा ३३४
हुताशिनीकथा ३७०
हुमायूँ ६७, ३३२, ४३२
हुम्मच १८९, १९०
हूंबड ५२, ४४७, ५४९
हूण ८
हेमकुंजर २८३, २९०
हेमकुमारचरित २५७
हेमकौमुदी ७८
हेमचन्द्र ६, ९, १७, २१, २८, ३४, ४१, ४९, ७०, ७४, १२५, १२८, १३०, १३८,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६०, १७१, २०३, २२३, २२४, २२६, २९३, ३५०, ३५५, ३९१, ३९७, ४००, ४१०, ४१५, ४१९, ४२०, ४२३, ४३०, ४४३, ४५३, ४९०, ४९२, ५२२, ५२९, ५५९, ५६१, ५६६, ५७०, ५७३, ५८२, ५८५
हेमचन्द्रसूरि ५०, ८२, ८७, ११५, १२९, २५७, २९४, ३९६, ४१०, ४२१
हेमचन्द्राचार्य ८६, १०९, १५४, ३२१, ४४५
हेमतिलक २९४
हेमतिलकसूरि २९३
हेमरत्नसूरि १३३
हेमराज २६३
हेमविजय १२५, ३८८
हेमविजयगणि २१८, २५२
हेमविमल १६७
हेमश्री ३५९
हेमसूरि २४६
हेमसेन ३७३
हेमसोम १२५
हेमाचार्य २५४
हैमव्याकरण ३९६
हैमशब्दचन्द्रिका ७८
हैमशब्दप्रक्रिया ७८
हैरक २१५
होलिकाचरित्र ५३
होलिकापर्वकथा ३७०
होलिकाव्याख्यान ३६९
होलिरजःपर्वकथा ३७०
होशंगशाह ५१९, ५२०
होशंगशाह गोरी ४३१
ह्रस्वकथासंग्रह २६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहायक ग्रन्थों की सूची

अकबर आणि जैनधर्म, सूरीश्वर आणि सम्राट्.

अनगारधर्मामृत-टीका.

अनेकान्त.

अनेकार्थक साहित्य संग्रह, अहमदाबाद, १९३५.

अर्ली चौहान डाइनेस्टीज : दशरथ शर्मा, देहली, १९५९.

ऑन दी लिटरेचर ऑफ दी श्वेतांबर्स : जे० हर्टल, लाइपजिग, १९२२.

आवश्यकचूर्णि.

आवश्यकनिर्युक्ति.

आवश्यक-हारिभद्रीयवृत्ति.

इण्डियन एण्टिक्यूरी

उपासकाध्ययन : संपा०—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९४४.

ऋषिभाषितसूत्र : अनु०—मनोहर मुनि, बम्बई, १९६३.

एपिग्राफिया इण्डिका.

काव्यानुशासन : हेमचन्द्र.

काव्यालंकार : भामह.

काव्याम्बुधि.

केटेलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, भा० ४, अहमदाबाद, १९६८.

क्रिटिकल स्टडी ऑफ पउमचरियं : के० आर० चन्द्र.

गुरु गोपालदास बरैया स्मृतिग्रन्थ, सागर, १९६७.

चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ, सरसावा, १९४९.

जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी.

जर्नल ऑफ ओरियण्टल इंस्टिट्यूट.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च.

जर्नल ऑफ बॉम्बे ब्रांच ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी.

जर्नल ऑफ यू० पी० हिस्टोरिकल सोसाइटी.

जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी.

जिनरत्नकोश : हरि दामोदर वेलणकर, पूना, १९४४.

जैन गुर्जर कविओ : मोहनलाल दलीचन्द देसाई, भाग १-३, बम्बई, १९२६-१९३१.

जैन पुस्तकप्रशस्तिसंग्रह : संपा०—मुनि जिनविजय, बम्बई, १९४३.

जैन प्रतिमालेखसंग्रह : बुद्धिसागरसूरि, भाग १.

जैन लेखसंग्रह : पूरणचंद नाहर, भाग १, कलकत्ता.

जैन शिलालेखसंग्रह, भाग २-३, बम्बई, १९५७.

जैन संदेश.

जैन सत्यप्रकाश.

जैन साहित्य और इतिहास : पं० नाथूराम प्रेमी, बम्बई, १९५६.

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १-५, वाराणसी, १९६६-६९.

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास : मो० द० देसाई, बम्बई, १९३३.

जैन साहित्य संशोधक.

जैन सिद्धान्त भास्कर.

जैन हितैषी.

जैनिज्म इन गुजरात : सी० बी० शेठ, बम्बई, १९५३.

डिस्क्रिप्टिव केटेलॉग ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स : सी० डी० दलाल, भा० १, बडौदा, १९५९.

तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य : डा० श्यामशंकर दीक्षित, जयपुर, १९६९.

थर्ड रिपोर्ट ऑफ ऑपरेशन्स इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स : बॉम्बे सर्कल.

द्विवेदी अभिनंदन ग्रन्थ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मविधिप्रशस्ति.

नागरी प्रचारिणी पत्रिका.

नाट्यदर्पण-ए क्रिटिकल स्टडी : के० एच० त्रिवेदी, अहमदाबाद, १९६६.

नोटिसेज ऑफ संस्कृत मेन्युस्क्रिप्ट्स, भाग २.

न्यू इण्डियन एण्टिक्यूरी.

पट्टावली-परागसंग्रह : पं० कल्याणविजयगणि, जालोर, १९६६.

पट्टावली-समुच्चय : संपा०—मुनि दर्शनविजय, भाग १, वीरमगाम, १९३३.

पाइय भाषाओ अने साहित्य : प्रो० ही० र० कापड़िया.

पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नॉर्दर्न इण्डिया फ्रॉम जैन सोर्सेज : जी० सी० चौधरी, अमृतसर, १९६३.

पुरातनप्रबन्धसंग्रह : संपा०—मुनि जिनविजय, कलकत्ता, १९३६.

प्रशस्तिसंग्रह : पं० परमानन्द शास्त्री.

प्राकृत जैन कथा-साहित्य : डा० जगदीशचन्द्र जैन, अहमदाबाद, १९७१.

प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९६६.

प्राकृत साहित्य का इतिहास : डा० जगदीशचन्द्र जैन, वाराणसी, १९६१.

प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, टीकमगढ़, १९४६.

प्रोसीडिंग्स ऑफ ऑल इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फरेंस.

बाबू छोटेलाल जैन स्मृतिग्रन्थ.

बीकानेर जैन लेखसंग्रह : संपा०—अगरचन्द नाहटा, कलकत्ता, वी० सं० २४८२.

बुलेटिन ऑफ दी स्कूल ऑफ ओरियण्टल स्टडीज.

भट्टारक सम्प्रदाय : डा० विद्याधर जोहरापुरकर, सोलापुर, १९५८.

भारतीय इतिहास—एक दृष्टि : डा० ज्योतिप्रसाद जैन, वाराणसी, १९६१.

भारतीय विद्या.

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान : डा० हीरालाल जैन, भोपाल, १९६२.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, दिल्ली, १९७१.
मध्यभारती पत्रिका.
मरुधर केशरी अभिनन्दन ग्रन्थ, जोधपुर, वि० सं० २०२५.
महामात्य वस्तुपाल का साहित्यमण्डल और संस्कृत साहित्य में उसकी देन : डा० भोगीलाल सांडेसरा, वाराणसी, १९५९.
महावग्ग.
महावीर जैन विद्यालय सुवर्ण महोत्सव ग्रन्थ, खण्ड १-२, बम्बई, १९६८.
मूलाराधना-टीका.
यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ, खुड़ाला (राज०), वि० सं० २०१५.
यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर : के० के० हांदिकी, सोलापुर, १९४९.
यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन : डा० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी, १९६७.
रसगंगाधर : पं० जगन्नाथ, बम्बई, १९३९.
राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट, १९२७.
राजस्थान के जैन शास्त्रभण्डारों की सूची, भाग २, जयपुर, १९५४.
राजस्थान के जैन सन्त : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर, १९६१.
राजस्थान भारती.
राजेन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ, खुड़ाला, १९५७.
लाइफ ऑफ हेमचन्द्र : जॉर्ज बुहलर, कलकत्ता, १९३१.
वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ.
वाग्भटालंकार : वाग्भट.
विकास.
विक्रम वॉल्यूम, उज्जैन, १९४६.
विक्रम्स एडवेंचर्स : एफ० हारवर्ड, १९२६.
विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीयना ओरियण्टल जर्नल.

वीर.

वीरवाणी.

वेलणकर कम्मेमोरेशन वॉल्यूम, बम्बई, १९६५.

शोधपत्रिका.

श्रमण.

संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९७१,

संस्कृत ड्रामा : ए० बी० कीथ, लंदन, १९५४.

संस्कृत द्व्याश्रयकाव्यमां मध्यकालीन गुजरातनी सामाजिक स्थिति : रा० चु० मोदी, अहमदाबाद, १९४२.

स्टेण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथोलोजी एण्ड लीजेण्ड, भा० १, न्यूयॉर्क, १९४९.

सुवर्णभूमि में कालकाचार्य : डा० उमाकान्त शाह, वाराणसी, १९५६.

हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन : डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, मुजफ्फरपुर, १९६५.

हिस्टॉरिकल इंस्क्रिपशन्स ऑफ गुजरात : जी० वी० आचार्य, भा० २, बम्बई, १९३५.

हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : एम० विण्टरनित्स, भा० २, कलकत्ता, १९३३.

हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर : एम० विण्टरनित्स, भा० ३, खं० १, वाराणसी, १९६३.

हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर : एम० कृष्णमाचारी, मद्रास, १९३७.

हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : एस० के० दे, कलकत्ता, १९४७.

हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर : ए० बी० कीथ.

हेमचन्द्राचार्य—जीवन-चरित्र : कस्तूरमल बांठिया, वाराणसी, १९६७.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि-वृद्धिपत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
९६	१९	पद्मप्रभ	पद्मनाभ (भावी प्रथम तीर्थंकर)
९६	१९-२३		भावी प्रथम तीर्थंकर के चरित हैं, न कि छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ के।
१०४	५		इन्द्रहंसगणिकृत रचना विमल मंत्री से सम्बद्ध है, न कि विमलनाथ तीर्थंकर से।
१०९	१६		इसके रचयिता भट्टा० सकलकीर्ति हैं जिनका परिचय पहले दिया गया है।
११५	२१		उदयप्रभकृत नेमिनाथचरित धर्माभ्युदय काव्य का ही अंश है, कोई स्वतंत्र काव्य नहीं।
११६	१५	कीर्तिराज उपाध्याय	यही आगे कीर्तिरत्नसूरि हुए और सं० १४९५ ही ग्रन्थरचनाकाल है।
१२६	२३		भट्टारक युग में प्रथम भावी तीर्थंकर पद्मनाभ पर कई रचनाएँ लिखी गईं।
१२८	७		इनकी अन्य रचना मुनिसुव्रतचरित है।
१४०	३०		स्वीडिश भाषा में भी इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ है।
१९१	८	अशोकचन्द्र	(यह रोहिणी-अशोकचन्द्रनृपकथा का पात्र है।)
३२०	१८	अजापुत्र	(अष्टम तीर्थंकर के प्रथम गणधर)
५४३	१६		पुरुदेवचम्पू के पहले १२वीं शती में जिनभद्रसूरि ने एक मदनरेखाख्यायिका-चम्पूलिखा था। यह प्रकाशित हो चुका है। भूल से परिचय नहीं दिया। पृ० ३५२ में इसका उल्लेख अन्य प्रसंग में किया गया है।

●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1.	Studies in Jaina Philosopy	Dr. Nathamal Tatia	100.00
2.	Jaina Temples of Western India	Dr. Harihar Singh	200.00
3.	Jaina Epistemology	I.C. Shastri	150.00
4.	Concept of Pañcaśīla in Indian Thought	Dr. Kamla Jain	50.00
5.	Concept of Matter in Jaina Philosophy	Dr. J.C. Sikdar	150.00
6.	Jaina Theory of Reality	Dr. J.C. Sikdar	150.00
7.	Jaina Perspective in Philosophy & Religion	Dr. Ramji Singh	100.00
8.	Aspects of Jainology (Complete Set : Vols. 1 to 7)		2200.00
9.	An Introduction to Jaina Sādhanā	Dr. Sagarmal Jain	40.00
10.	Pearls of Jaina Wisdom	Dulichand Jain	120.00
11.	Scientific Contents in Prakrit Canons	N.L. Jain	300.00
12.	The Heritage of the Last Arhat : Mahāvīra	C.Krause	20.00
13.	The Path of Arhat	T.U. Mehta	100.00
14.	जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सम्पूर्ण सेट सात खण्ड)		630.00
15.	हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (सम्पूर्ण सेट : चार खण्ड)		760.00
16.	जैन प्रतिमा विज्ञान—	डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी	150.00
17.	पंचाध्यायी में प्रतिपादित जैन दर्शन—	डॉ० (श्रीमती) मनोरमा जैन	125.00
18.	वज्जालग्ग (हिन्दी अनुवाद सहित)—	पं० विश्वनाथ पाठक	80.00
19.	प्राकृत हिन्दी कोश—	सम्पादक डॉ० के० आर० चन्द्र	200.00
20.	जैन धर्म और तान्त्रिक साधना—	प्रो० सागरमल जैन	350.00
21.	गाथा सप्तशती (हिन्दी अनुवाद सहित)—	पं० विश्वनाथ पाठक	60.00
22.	सागर जैन-विद्या भारती (तीन खण्ड)—	प्रो० सागरमल जैन	300.00
23.	गुणस्थान सिद्धान्त : एक विश्लेषण—	प्रो० सागरमल जैन	60.00
24.	भारतीय जीवन मूल्य—	डॉ० सुरेन्द्र वर्मा	75.00
25.	नलविलासनाटकम्—	सम्पादक डॉ० सुरेशचन्द्र पाण्डे	60.00
26.	अनेकान्तवाद और पाश्चात्य व्यावहारिकतावाद—	डॉ० राजेन्द्र कुमार सिंह	150.00
27.	दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति: एक अध्ययन—	डॉ० अशोक कुमार सिंह	125.00
28.	पाश्चाशक-प्रकरणम् (हिन्दी अनु० सहित)—	अनु० डॉ० दीनानाथ शर्मा	250.00
29.	सिद्धसेन दिवाकर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व—	डॉ० श्रीप्रकाश पाण्डेय	100.00
30.	जैन धर्म की प्रमुख साध्वियाँ एवं महिलाएँ—	हीराबाई बोरदिया	50.00
31.	मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म—	डॉ० (श्रीमती) राजेश जैन	160,00
32.	भारत की जैन गुफाएँ—	डॉ० हरिहर सिंह	150.00
33.	महावीर निर्वाणभूमि पावा : एक विमर्श—	भागवतीप्रसाद खेतान	60.00
34.	मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन—	डॉ० फूलचन्द्र जैन	80.00
35.	जैन तीर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन—	डॉ० शिवप्रसाद	100.00
36.	बौद्ध प्रमाण-मीमांसा की जैन दृष्टि से समीक्षा—	डॉ० धर्मचन्द्र जैन	200.00

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी-५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org